हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—१०६

रंगमंच

नाटक, अभिनय और मंच-शिल्प
के
तीन सहस्र वर्ष

(२७८ चित्रों के साथ)

लेखक
शेल्डान चेनी

अनुवादक
श्रीकृष्णदास

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६५

मूल्य
ग्यारह रुपये, पचास पैसे
११.५०

मुद्रक
वीरेन्द्रनाथ घोष
माया प्रेस प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद-३

रंगमंच

नाटक, अभिनय
और
मंच-शिल्प
के
तीन सहस्र वर्ष

प्लेट १
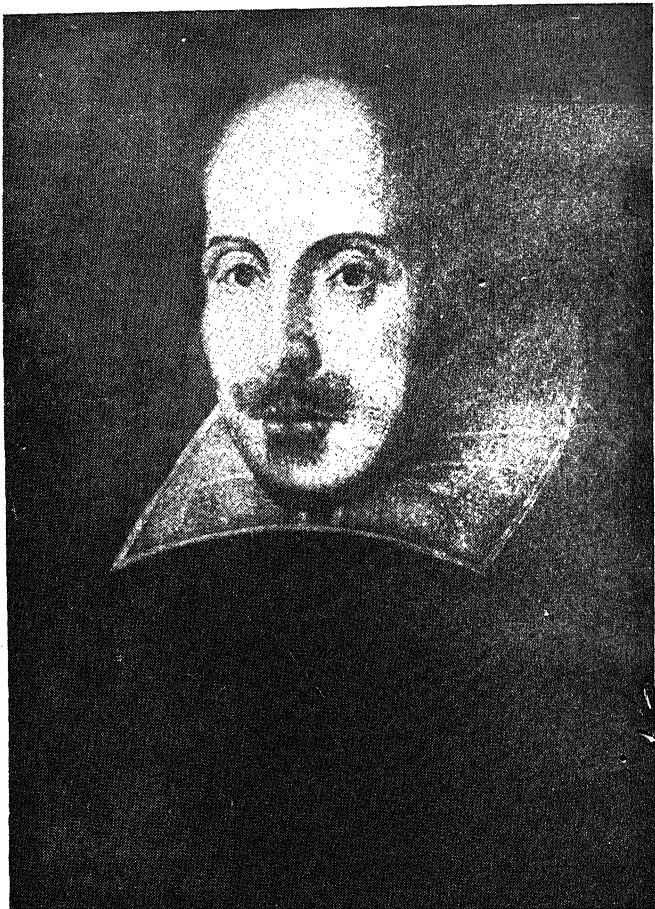
विलियम शेक्सपियर

स्ट्रेटफ़ोर्ड-आन-एवन में स्थित (शेक्सपियर मेमोरियल गैलरी के ड्रोशाउट चित्र से)

प्रकाशकीय

जब मनुष्य की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ीं, उसका आध्यात्मिक विकास एवं प्रस्फुटन हुआ और वह ईश्वरोन्मुखी हुआ तो इस सारी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति रंगशालाओं में हुई। जब मनुष्य अत्यधिक आध्यात्मिक हुआ तो उसको मन्दिरों और गिरजाघरों के समीप स्थान मिला। जब दरबारों की शान बढ़ी, जब राजप्रासादों की कीर्ति और महिमा बढ़ी तो उनमें रंगशालाओं का प्रवेश हुआ। नाटक के विकास की इस गाथा को शेल्डान चेनी ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'रंगमंच' में, जिसमें नाटक, अभिनय और मंच-शिल्प के तीन सहस्त्र वर्षों का विस्तृत विवेचन है, अत्यन्त रोचक रूप में तथा नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। अभिनय और मंच-शिल्प को रंगशाला की सम्यक् कला का अन्तरंग मानकर प्रणीत यह कृति नाट्यकला का रोचक, क्रमबद्ध इतिहास है---अतिशय लोकप्रिय, अत्यन्त प्रेरणादायी !

शेल्डान चेनी की उक्त पुस्तक का प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर सुपरिचित लेखक एवं भाषाविद् श्री श्रीकृष्णदास ने किया है जो नाट्यशास्त्र के विद्वान्, कुशल मंचशिल्पी एवं सफल नाटककार हैं। मूल अंग्रेज़ी कृति के इस हिन्दी अनुवाद में उसकी मूल भावना, सहजता एवं सरलता को क़ायम रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। साथ ही, मूल अंग्रेज़ी पुस्तक के सभी चित्रों को भी प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर में देकर उसकी चित्रात्मकता को पूर्ववत् बनाये रखा गया है जिससे हिन्दी के पाठकों के लिए नाटकों, अभिनय और मंच-शिल्प के न केवल इतिहास का अनुशीलन करना अपितु विभिन्न युगों की रंगशालाओं से अवगत होना भी सुविधाजनक हो सके।

आशा है, 'रंगमंच' में समाविष्ट तथ्यों एवं निष्कर्षों से नाटककारों, मंच-शिल्पियों, अभिनेताओं तथा नाटक एवं रंगमंच से सम्बन्धित शोधार्थियों को यथेष्ट सहायता एवं प्रेरणा प्राप्त होगी।

सुरेन्द्र तिवारी

सचिव, हिन्दी समिति

आकार में यह संस्करण पहले वाले संस्करणों से केवल ३२ पृष्ठ बड़ा है और जोड़े गये चित्रों की संख्या मुश्किल से बीस से कुछ अधिक होगी। लेकिन मूल पांडुलिपि के ५० पृष्ठों को हटा देना पड़ा और नयी पाण्डुलिपि के कोई ८० पृष्ठों को टाइप करा कर जोड़ दिया गया। इसके सिवा पहले के अध्यायों में १०० से अधिक स्थलों पर मैंने संशोधन किया है या नयी सामग्री जोड़ी है। एक अकेली पंक्ति से लेकर कभी-कभी नया पैराग्राफ तक जोड़ दिया गया है या आधा पृष्ठ तक बदल दिया गया है। सहायक ग्रंथों की पाद-टिप्पणियाँ पूरी तरह से पुनः लिखी गयी हैं। मैं आशा करता हूँ कि इन परिवर्तनों से यह मालूम होगा कि संशोधन की समस्या के सम्बन्ध में लेखक और प्रकाशक कितने ईमानदार रहे हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ प्रथम संस्करण से लेखक के आभार के अंश प्रकाशित किये जा रहे हैं। जिसमें वे संशोधन और संवर्धन किये गये हैं जो वर्षों बीतने के बाद उचित प्रतीत होते हैं।

मैंने उन अधिकांश विद्वानों और 'अधिकारियों' के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है, जिन्होंने परम्परागत रूप में पर्यवेक्षित यूनानी, रोमी, मध्यकालीन, एलिज़ाबेथी आदि युगों के आधिकारिक अनुशीलन ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, क्योंकि मेरा ग्रंथ मौलिक गवेषणा पर आधारित नहीं है, बल्कि संक्षिप्त सर्वेक्षण और सभी युगों में कला के प्रवाह की रूप-रेखा भर है। विशेषज्ञों और उनकी पुस्तकों का नाम सहायक ग्रंथों की टिप्पणी में दिया गया है। मैं उनके प्रति अपने आभार को सामान्य रूप से 'धन्यवाद' कह कर ही ज्ञापित कर सकता हूँ। फिर भी इतना और अवश्य कहूँगा कि 'अमेरिकन लाइब्रेरी', पेरिस, 'न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी' और इटली में स्थित रोम की 'लाइब्रेरी आव अमेरिकन स्टडीज़' के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं संरक्षकों को उनके बहुविध सौजन्य के लिए विशेष धन्यवाद देता हूँ। मूलपाठ में उद्धरणों के लिए मैं राबर्ट एडमंड जोन्स और प्रोफ़ेसर गिलबर्ट मरे का विशेष रूप से आभारी हूँ।

चित्रों के सम्बन्ध में प्रकाशकों का बहुत विपुल ऋण है। 'थियेटर आर्ट्स मंथली' के एडिथ जे० आर० आइसक्स को सतत् प्रोत्साहन और सहायता के लिए मैं धन्यवाद देता हूँ; और, निम्नलिखित संस्थाओं ने उन चित्रों को उद्धृत करने की सौजन्य पूर्वक स्वीकृति प्रदान की है, जिन पर उनका कापीराइट था : 'द मैकमिलन कम्पनी', न्यूयार्क और 'मैकमिलन ऐंड कम्पनी', लंदन; 'जे०एम० डेंट ऐंड संस', लंदन; 'जार्ज जी० हेरप ऐंड कम्पनी लिमिटेड', लंदन; 'डी० सी० हीथ ऐंड कम्पनी', बोस्टन; 'द जान डे कम्पनी', न्यूयार्क; 'टी० वर्नर लारी लिमिटेड', लंदन; 'द स्टेज', लंदन; 'डब्लू० डब्लू० नार्टन ऐंड कम्पनी,' न्यूयार्क; 'माइकेल जोसेफ लिमिटेड', लंदन; और 'थियेटर आर्ट्स बुक्स', न्यूयार्क। न्यूयार्क हिस्टारिकल सोसाइटी, स्मिथसोनियन इन्स्टीटच्यूशन, लन्दन के

विक्टोरिया और एलबर्ट म्यूजियम, तथा लंदन के नेशनल गेलरी के संचालकों ने अपनी-अपनी संस्थाओं द्वारा अधिकृत रेखाचित्रों और चित्रों को उद्धृत करने की अनुज्ञा दी और दूसरी प्रिंट डा० जोसेफ ग्रेगर, गोर्डोन क्रैग, आर्थर एडविन क्रोज़, केनेथ मेकगोवन, कल्चर सर्विस और कीन आर्काइव्ज़ के द्वारा दी गयी है ।

जहां बहुत से चित्र बहुत पहले ही दिवंगत कलाकारों द्वारा रचित और बहुत पहले अदृश्य हो गयीं संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों से लेकर संग्रहीत किये गये हैं; वहां कृतज्ञता के लिए कोई एक सामान्य विधि क़ायम करनी कठिन है। मैंने कलाकार का नाम यदि वह किसी तरह से ढूँढ़ा जा सका, दे दिया है; लेकिन जहाँ तक औपचारिक स्वीकृति की प्रार्थना के लिए प्रकाशकों को ढूँढ़ने का सम्बन्ध है, मैंने १९०० ई० के बाद प्रकाशित पुस्तकों के ही सम्बन्ध में समान रूप से यह किया है। मेरा विश्वास है कि यही कापीराइट नियम के अनुकूल और प्रकाशकों के बीच के सौजन्यपूर्ण व्यवहार के उपयुक्त है। तथापि इतना मैं जोड़ना चाहूँगा कि कुछ पुराने, विशेषत: प्राचीनतर चित्र मेरे अधिकार में सीन और दूसरे स्थानों में किताब की दूकानों से, जहाँ साहित्यिक शिष्टता की अच्छाई समान रूप से नहीं देखी जाती, खरीद द्वारा पृथक् होकर आये हैं, जिन्हें कदाचित अनुचित रूप में मूल संस्करणों से अलग कर लिया गया ।

जहाँ तक मूलपाठ का सम्बन्ध है तिथि, वर्तनी आदि की शुद्धता की रक्षा के लिए मैंने सारा मानव-साध्य प्रयत्न किया है। लेकिन पुस्तक 'लगे हाथों' लिखी गयी है और इसमें परिश्रमपूर्वक जाँचने-परखने की प्रक्रिया का अभाव है। यदि मैं धैर्यपूर्वक घर में पुस्तकों के बीच बैठ कर अध्ययन करता तो यह इसके प्रकाशन के पूर्व हो सकता था। वस्तुत: मैं वह आदमी हूँ जिसने तिथियों और नामों की परख करते हुए युरोप की राजधानियों में सार्वजनिक पुस्तकालयों के कोशों और विश्वकोशों को पढ़ कर फेंक दिया है। लेकिन मैं इतना स्वीकार कर सकता हूँ कि ग़लतियाँ रह गयी होंगी और बाद के संस्करण में तो एक आध ज़रूर ही रह गयी होंगी। मुझे आशा है कि इससे एक लाभ भी हुआ है, वह यह कि जो कहानी मैंने कही है, उसमें यात्रा के कारण व्यापकता, स्पष्टता और चित्रात्मक आकर्षण आ गया है। जब रोमनों से सम्बन्धित अध्याय लिखा गया तो मैं रोम में था, पुनर्जागरण-सम्बन्धी अध्याय लिखते समय फ़्लोरेंस में और क्रमश: लंदन, बर्लिन, पेरिस, न्यूयार्क और रंगमंचीय क्रियाशीलता के दूसरे केन्द्रों में था।

निश्चय ही इस पुस्तक की रचना के बारे में मुझे आरेंज और अर्लेस, ताओर्मिना और सिराकूज़ तक घूमने के लिए प्रिय बहाना मिल गया। कभी रंगमंच की नाप-जोख करने के लिए मुझे वार्साई या पोस्टडेम या विशेंजी जाने का अवसर मिला; कभी साल्ज़-बर्ग अथवा मांटि कार्लो, स्टटगार्ड या थेरेसी या क्लीवलैण्ड जाकर अद्वितीय अभिनयों

को देखने का सुयोग मिला। इस तीर्थ-यात्रा से मुझ पर दो शक्तिशाली प्रभाव पड़े— रंगमंच कला की विपुल विविधता का और उसके चमत्कार की समानता तथा उसकी अमोघता का। जहाँ भी रंगमंच है, भाग लेने वाले प्रेक्षक मोहित, कदाचित् स्थायी रूप से मोहित, हो जाते हैं। जब प्रेक्षागृह का प्रकाश मन्द होता है और यवनिका उठती है, जब चेतन मस्तिष्क जड़ हो जाता है और गहन प्रज्ञा के, आत्म-रसबोध के द्वार खुल जाते हैं, उन क्षणों तक ही यह चमत्कार रहता है। महान् नाटक दो घंटे तक सतत, पूर्ण निवृत्ति प्रदान कर सकता है और जीवन भर स्मृति को सन्तोष से पूरित कर सकता है। मैंने अपने इतिहास में नाटकों और मंच की तिथियों और नामों के ऊपर उठ कर पाठकों के पास उस चमत्कार को संप्रेषित करना चाहा है। प्रिय पाठक, मैं चाहता तो यही था कि मैं आप के हृदय में 'रंगमंच के लिए सहानुभूति' पैदा कर सकूँ : जिससे कि आगे आने वाले पृष्ठों के पढ़ने के बाद जब आप किसी नाटयाभिनय को देखें, तो इस पुस्तक में वर्णित रंगमंचों, अभिनेताओं, नाटकों, प्रेक्षकों और प्राचीन युगों से सम्पर्क स्थापित होने के कारण आपका अनुभव अधिक समृद्ध और पूर्ण हो सके!

डायोनिशस

थ्रेस के वन्य पहाड़ों से उतरकर डायोनिशस ने हेलास में पदार्पण किया। उस समय उसकी पूजा उपवनों, खेतों और उर्वरता के देवता के रूप में होने लगी थी। लोगों को यह विश्वास हो चुका था कि उसमें एक विशेष शक्ति है जिसके सहारे मानव प्राणी परमानन्द का अनुभव कर सकता है। यूनान के जन-साधारण ने उसे अपने देवता के रूप में स्वीकार कर लिया। उस देवता का वास उनके हृदय में हो गया था। वे आनन्दोत्सवों, लोकाचारों और त्योहारों पर इस देवता का (और उसके साथ स्वयं अपना भी) सम्मान करने लगे थे। अन्ततोगत्वा इस देवता की प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ गयी कि इसकी गणना सच्चे ओलिम्पियनों में होने लगी। इस प्रकार डायोनिशस के साथ अनेक लौकिक एवं पारलौकिक तत्वों का समावेश हो गया। लोगों को विश्वास हो गया कि उसके हृदय में मानव प्राणी के लिए असाधारण सहानुभूति है। वह अन्य देवताओं के साथ ही नवीनतम देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

उस युग की प्रथा के अनुसार कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं ने उसके आविर्भाव को लेकर एक पौराणिक कथा की सृष्टि भी कर दी। कडमस की पुत्री परम सुन्दरी राजकुमारी सिमली को परम पिता ज़िअस प्यार करते थे। राजकुमारी को ईर्ष्यालु जनों ने बहका दिया। उसने माँग की कि वह स्वर्ग निवासी परमपिता अपने पूरे ऐश्वर्य एवं वैभव के साथ सशरीर उसके सम्मुख उपस्थित हों। परमपिता ने ऐसा ही किया, परन्तु उनके तेज से सिमली सम्पूर्ण रूप से भस्म हो गयी। किन्तु इस घटना के पहिले ही उसके पुत्र डायोनिशस का जन्म हो चुका था। उस महान् देवता ने, इस शिशु के पिता ने, इस शिशु को भस्म नहीं किया, बल्कि उसे अपने ही शरीर के चर्म से ढँक दिया। जूनो की ईर्ष्यालु आँखों से वह बचा रहा। धीरे-धीरे डायोनिशस बढ़ने लगा। अपने दूसरे जन्म में एक चमत्कार के फलस्वरूप वह इस संसार में स्वर्गलोक के रमता जोगी परमपिता ज़िअस के पुत्र और सचमुच एक देवता के रूप में अवतरित हुआ।

परन्तु जन साधारण में डायोनिशस की प्रतिष्ठा सबसे पहिले प्रकृति और वन्य जनों के तथा समस्त मानवीय एवं दैवी आह्लादकारी भावनाओं के देवता के रूप में हुई। लोगों को भान हुआ कि धरती, खेतों, जंगलों, मधुवनों के सभी देवता मानो इसी देवता के आविर्भाव की राह देख रहे थे। अब यह देवता डायोनिशस, बाक्कुस, ब्रोमियस एवं नीसियस के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

तत्काल मादक मदिरा और अलौकिक प्रेरणा के इस देवता ने अपने भक्तों और उत्सवकारियों को आध्यात्मिक मादकता से अभिभूत कर दिया। वह उनके व्यक्तित्व में प्रवेश कर गया। उन्होंने स्वयं बाकांत और बाकंती के नाम से देवत्व का स्थान प्राप्त किया; डायोनिशस का अनुभव प्राप्त किया। उसने लोगों को इस बात के लिए विवश नहीं किया कि वे उसकी पूजा अर्चना करें। वरन् उसने अपने आनन्द में उन लोगों को भी साझीदार बनाया। उन्होंने देवताओं की भाँति उत्सव किया, इस उत्सव में आनन्द लिया, नृत्य किया, गीत गाये, जुलूस निकाले।

नाटक का उद्भव सीधे इन्हीं डायोनीशियन उत्सवों से हुआ। डायोनिशस के सम्मान में जो विधियाँ सम्पन्न हुईं, जो नृत्य हुए, गीत गाये गये, हाथ में तुरुही और मशाल लेकर तथा मुखपर चेहरे लगाकर जो जुलूस निकाले गये उन्हीं सबसे नाटक का आविर्भाव हुआ। और जिस पवित्र स्थान पर यह उत्सव मनाया गया उसे थियेटर (रंगशाला) कहा गया। इन उत्सवों में भाग लेने वाले कुछ लोग पुरोहित हो गये और वही बाद में अभिनेता कहे गये। और दूसरे लोग जिन्होंने गायन में नेतृत्व किया, जिन्होंने नये गीत बनाये, वे कवि कहे गये। और लोग दर्शक बने। ये वे लोग थे जो कि केवल डायोनिशस के आनन्दोत्सवों के उस भावनामूलक नैसर्गिक सुख में भाग लेना चाहते थे।

युग-युगान्तर में नाटकों के सम्बन्ध में जो सबसे बड़ी बात रही है वह थी डायोनीशियन मादकता, भावनामूलक-आध्यात्मिक सहयोग से उत्पन्न नैसर्गिक आनन्द, अलौकिक नाटकीय अनुभव। किसी अन्य देवता ने मनुष्य के अन्तर-देवत्व को इस प्रकार खोजकर नहीं निकाला, किसी अन्य कला ने कलाकारों की अलौकिक सृजनशीलता और दर्शकों की आत्मा की ग्रहणशीलता में इतना सहज संबंध स्थापित नहीं किया, दर्शक-जनता को आत्मा के प्रकाश में इस तरह नहीं डुबोया।

डायोनिशस पचीस सौ वर्षों तक जीवित रहा है। आज, वही संसार जो उसे घृणा करने लगा था, फिर उसकी ओर उन्मुख हो रहा है। उसकी आत्मा में वही पुरानी भूख है। पवित्र आध्यात्मिक जीवन के प्रति वही प्राचीन आकर्षण है। निर्बाध आनन्द के प्रति वही मोह है। डायोनीशियन युग के बाद के हम लोग जब अपने चारों ओर नैतिक धर्मों का पतन देखते हैं, विषयोन्मत्त सभ्यताओं द्वारा उत्पन्न अराजकता पर दृष्टिपात

करते हैं, वैभवशाली वैज्ञानिक जीवन के आध्यात्मिक दिवालियेपन पर विचार करते हैं, तो इस हम फिर भावनात्मक-आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत होने के लिए, परमानन्द प्राप्त करने के लिए, ईश्वरत्व का अनुभव करने के लिए, मार्ग ढूंढ़ने लगते हैं।

आश्वस्त होकर हम पीछे की ओर मुड़ते हैं; क्योंकि डायोनिशस अमर है और रंगशाला शाश्वत सत्य है।

रंगमंच

नाटक, अभिनय
और
मंच-शिल्प
के
तीन सहस्र वर्ष

रंगमंच

नाटक, अभिनय और मंच-शिल्प के तीन सहस्र वर्ष

अध्याय १

रंगमंच मानवीय और दैवी

जहाँ कहीं भी और जब कभी भी मानव प्राणी ने अपने शरीर की रक्षा के लिए, जीवित रहने के लिए, किये गये संघर्ष के आगे प्रगति की, वह देवताओं की ओर उन्मुख हुआ और मनोरंजन तथा आत्माभिव्यक्ति की ओर बढ़ा, रंगमंच किसी न किसी रूप में वहाँ अवश्य आ गया, क्योंकि रंगमंच ही अभिनय, नृत्य, कथोपकथन, नाटक आदि का अनिवार्य स्थल बन गया था।

फलतः इस स्थिति में उत्पन्न और विकसित विश्व नाटक तथा सामूहिक रंगमंच, आदिकालीन नृत्यों से आधुनिक नाटकों तक, धार्मिक पूजा-विधियों से अधार्मिक अभिनयों तक, यूनानी दुःखान्त नाटकों से आधुनिक चित्रों तक की समस्त 'रंगशाला' और नाटकों की परिभाषा को अपने भिन्न-भिन्न रूप-रंगों और पक्षों के कारण अपूर्ण बना देते हैं। संसार भर के रंगमंचों के चित्र को यदि सामने फैलाकर रख दिया जाय, यदि किसी चमत्कारपूर्ण पटल पर उनके कार्यों की सम्पूर्ण प्रदर्शनी क्षण भर के लिए सजायी जा सके, तो दर्शक तुरन्त जान लेगा कि कोई भी परिभाषा इतनी व्यापक अथवा लचीली नहीं हो सकती कि वह अपने शब्दों में इस कला के विभिन्न तत्त्वों और रूपों को, रंगमंचीय-नाटकीय जीवन के विभिन्न अंगों और दिशाओं को, समेट सके।

नाटकों के मिश्रित रूपों और विभिन्न तत्त्वों के सम्मिलित प्रकारों से—और यही वह कला है जहाँ समस्त कलाओं का संगम होता है—अनेकरूपता और अस्पष्टता का जन्म होता है। नाटकीय भावाभिव्यक्ति के पीछे भी, उसे आप दैवी और मानवीय कहें अथवा धार्मिक और सामाजिक कहें, अथवा आध्यात्मिक और मात्र मनोरंजनकारी कहें—भावनाओं का द्वन्द्वात्मक स्वभाव ही छिपा होता है। इसमें भी वही बात लागू होती है। इस सम्बन्ध में दूसरे महत्वपूर्ण उदाहरणों की भी चर्चा की जा सकती है। आनन्द और प्रकाश ही नाटक का सार है। नाटकों में उन्हीं घटनाओं का समावेश होता

है, जिनका सीधा और स्पष्ट सम्बन्ध जीवन से होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व की गम्भीरतम धाराओं से, उसके निजी अन्तर्द्वन्द्वों तथा अनुभवों के गहनतम क्षणों से, उसका लगाव होता है, परन्तु स्यात् सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रंगमंचीय कला वहीं निखरती है जहाँ आध्यात्मिक ज्योति मानव जीवन को उज्ज्वल बनाती है।

समुचित परिभाषाओं के न रहने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुसार एक परिभाषा गढ़ लेगा। पहिले तो वह रंगशालाओं में जो कुछ देखेगा उसके अनुसार परिभाषा बनायेगा, फिर जब तात्कालिक प्रभाव कम हो जायेगा तो उसके मानस-पटल पर विश्व रंगमंच की जो रेखाएँ अवशेष रह जायँगी उनका सहारा लेगा।

क्षण भर के लिए मान लीजिए कि समस्त युगों एवं स्थानों और सभी प्रकार के रंगमंचों का एक चित्र एक बहुत बड़े पटल पर हमारे सामने फैला हुआ है। तत्काल एक दर्शक देखेगा कि मुख्य अभिप्राय के रूप में उस चित्र में "नाटक" अंकित है। नाटक का सम्पूर्ण विकास-क्रम उसे दिखायी देगा। दूसरा दर्शक अभिनेता अथवा कलाकार को सबसे महत्वपूर्ण समझेगा। वह अभिनय की कलाओं को ही पूरे नाटक की सफलता का आधार मानेगा। तीसरा दर्शक रंगमंच को तथा रंगमंच की निर्माण-कला को, जनता के सम्मुख नाटक को उपस्थित करने की विधि को, सबसे अधिक महत्व देगा। परन्तु जो व्यक्ति सम्पूर्ण चित्र को दृष्टि-परिधि के भीतर रखना चाहता है, जो दृश्य की समग्रता का ध्यान रखता है, उसे यह आवश्यक लगता है कि वह इन वाह्य दृश्यों के पार और पीछे उस योजना को देखे जो सम्पूर्ण चित्र में तारतम्य बनाये हुए है—उस वस्तु को देखे जिसे व्यापक अर्थ में रंगमंच कहा जाता है।

आज हम रंगमंच का अध्ययन करते हैं तो हमें यह जानकर हर्ष होता है कि विद्यार्थी अथवा कलाकार किसी एक नाटक के अभिनय के सम्बन्ध में विचार करते समय इस बात का ध्यान रखने लगा है कि कोई एक तत्व ही मुख्य अथवा आवश्यक नहीं है, वरन् नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के जितने "साधन" एवं उपादान हैं सभी का सहयोग अनिवार्य है और सभी मिलकर सम्पूर्ण नाटकीय कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में योग देते हैं। कलाकार, प्रकाश, गति, कथोपकथन, स्वर-नाद, रंग, मौन, दृश्य–दृश्यावाली, मंच सभी का महत्व वह स्वीकार करता है, परन्तु वह यह भी मानता है कि ये सब साधन हैं और प्रावाहिक अथवा गतिमय रूप में नाट्य कला की अभिव्यक्ति को सम्भव बनाते हैं। दृश्य एवं श्रव्य तत्वों के परे वे अभिनय की उन लययुक्त लहरियों के प्रति भी जागरूक रहते हैं जो दर्शकों के चेतन मस्तिष्क से आगे बढ़कर उसकी आत्मा को आन्दोलित करती हैं।

ठीक इसी प्रकार इस विराट संसार के रंगमंच के नियमन-संचालन में रुचि

रखने वाले विद्यार्थी, दर्शक, अथवा पाठक को भी एक सूत्र में बाँधने वाले उस शक्ति-सूत्र को, नाटकीय एकता को, गहरे, सर्वत्र विराजमान सारतत्व को, मानस चक्षु से देखना चाहिए क्योंकि यही वह शक्ति है जो अभिनेता को नाटक, भौतिक रंगमंच एवं अभिनय कला के सम्बन्ध में मानस चित्र बनाने में सहायता देती है। आगे 'रंगमंचीय कला' के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कहूँगा, उसमें भी मैं इसी बात को सामने लाऊँगा। रंगीन प्रकाश व्यवस्था, मनोहारी दृश्य-दृश्यावलियों से भी अधिक गहरे—कलाकारों
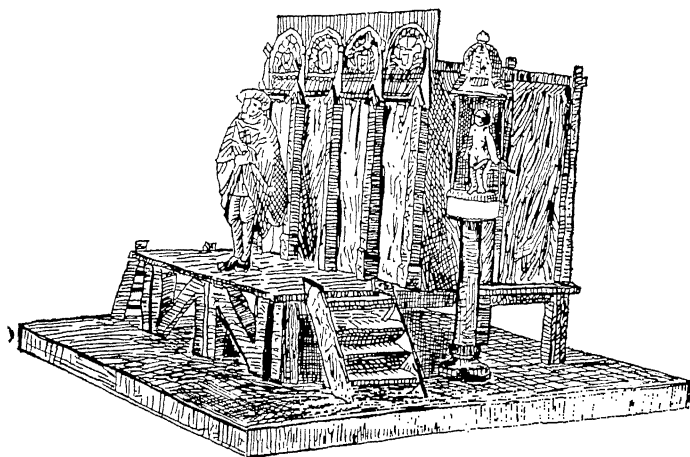
उन्नीसवीं शताब्दी के छवि दृश्य को भूलकर पाठकों को चाहिए कि वे अपने मानस पटल पर वह दृश्य अंकित करें जिसमें अभिनेता अपनी पृष्ठभूमि से अनवरत अपने सम्बन्ध को बदलता जा रहा है। यह एक सीधा-सादा चबूतरेनुमा मंच है जिस पर पुनरुत्थानकालीन प्राचीन अभिनय हुआ करते थे। (प्राचीन चित्र के आधार पर बने माडल का वारेन डी० चेनी द्वारा अनुकृति रेखांकन।)

के अभिनयों और स्वयं नाटक से भी परे—वे तत्व होते हैं जिनसे रागात्मक ज्योति प्रस्फुटित होती है, गंभीर भावनाएँ उभरती हैं।

इसके बाद यदि हम सम्पूर्ण चित्र से नाटक या कलाकार को पृथक करके थोड़े में उन पर विचार करें तो ज्यादा अच्छा होगा। यह तत्सम्बन्धी इतिहास की, जिसका चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे, भूमिका बन जायेगी। मैं यहाँ अपने पाठकों के साथ

क्षण भर रुककर तो र पूरक तत्वों पर दृष्टिपात कर लेना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इससे हमें अपने को फिर से तैयार करने में सहायता मिलेगी और विश्व रंगमंच के अध्ययन के दुर्गम बन्धुर पथ की ओर बढ़ने के लिए आरम्भिक स्थल-विन्दु मिल जायगा।

कलाकार-वह मानवीय निमित्त अथवा साधन जिसके माध्यम से नाटक हमारे आगे मुखर होता है-ही कला को प्रत्येक चित्र, रंग, पत्थर अथवा नाद से आगे बढ़कर सजीवता, स्पष्टता, गहराई और मानवीयता प्रदान करता है। पौरोहित्य और अश्लीलतावाद के बीच की खाई को कलाकार का इतिहास ही नापता है। कलाकार देवताओं के सेवक हुए हैं, उन्होंने शील और शिष्टता का नियमन किया है। परन्तु वे मानव की घृणित और निकृष्ट काम-पिपासा को शान्त करने के साधन भी रहे हैं। यूनान में डायोनिशियन त्योहारों, उत्सवों के समाप्त होने और उनके स्थान पर रचित नाटकों के प्रतिष्ठित हो जाने के बाद वे समाज के सम्मानित और विशिष्ट सदस्य बन गये थे; परन्तु रोम में उनका घोर पतन हुआ। इसके बाद सरकारों ने उन्हें सम्मानित किया, राजाओं एवं रानियों ने उन्हें निमंत्रित किया और आदर दिया। उन्होंने राज दरबारों में अपने लिए उच्च स्थान प्राप्त किया; उसी समय दूसरी सरकारों ने उन्हें आवारा घोषित किया; दूसरे राजाओं ने उन्हें देश निकाला दिया तथा घृणित, बदमाश, समय नष्ट करने वाले कहकर उन्हें दण्डित किया। चर्च ने उनकी सेवाएँ लीं, फिर उन्हें बहिष्कृत कर दिया और अनेक सदियों तक उन्हें ईसाइयों की तरह दफ़न किया जाना नसीब न हो सका। आज तो उन्हें सम्राट भी उपाधियाँ प्रदान करते हैं, परन्तु अपने ही जीवन-काल में हमने ईसाई धार्मिक नेताओं को यह कहते सुना है कि रंगमंच से कभी किसी प्रकार की भलाई नहीं हुई, न भविष्य में कभी हो सकती है क्योंकि मंच पर जाना ही अपने चरित्र को कलंकित करना है। (यह तो सही है, परन्तु आप घोषणा कर दें कि श्रीमती स्मिथ के घर पर मंगलवार को चाय के समय उक्त नामी अभिनेता उपस्थित रहेगा और विश्वास रखिये कि जितने लोगों को आप निमंत्रित करेंगे, उससे दूने वहाँ पहुँचना चाहेंगे।)

ये कलाकार जो कुछ करते हैं उसकी कहानी, अभिनय कला, समस्त रंगमंचीय कला के विकास की संक्षिप्त कहानी है। यूनानी युग से बीसवीं शताब्दी तक परम्परागत अथवा रूढ़िगत तरीक़ों से स्वाभाविक तरीक़ों की ओर उन्मुख होने का क्रम चलता रहा है। रूढ़ियों से अलग हटने का क्रम कभी टूटा नहीं। (आरम्भिक अध्यायों से लेकर अंत तक हम इसी सूत्र के आधार पर आगे बढ़ेंगे)। यूनान में अभिनय कला का आधार था राजसी अंग-भंगिमा, शानदार पदचालन, शब्दों का शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण। कलाकार मंच पर मंदगति से ठहर-ठहर कर चलता बोलता था। उसकी चाल से रोब

प्लेट २
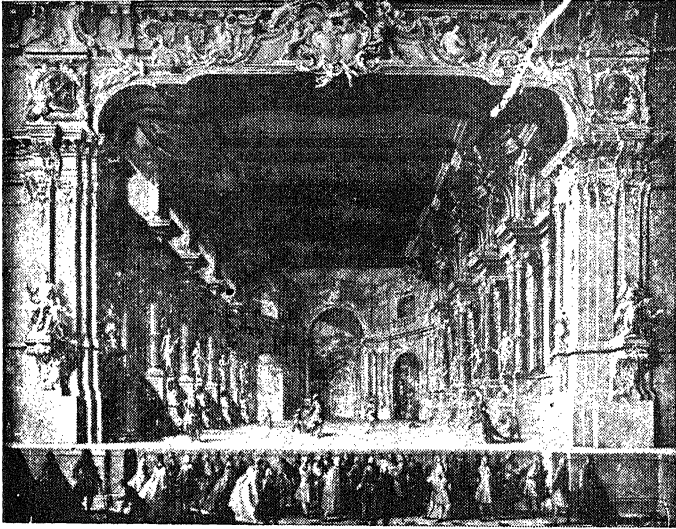
रेनासां रंगमंच जिसमें प्रोसीनियम के चौखटे के पीछे एक निर्मित और अंकित "चित्र दृश्य" है। यह उस रंगशाला का उदाहरण है जिसमें दृश्यगत प्रदर्शन पर अत्यधिक महत्व दिया जाता था। यही वह विन्दु है जहाँ से उस दरबारी मंचीयता का आरम्भ हुआ जो १६०० से १९०० ई० तक चलती रही। (नेशनल गैलरी, लन्दन, में स्थित एक चित्र से जिसका अंकन फ़र्डिनेन्डो बीबीयेना ने किया था।)
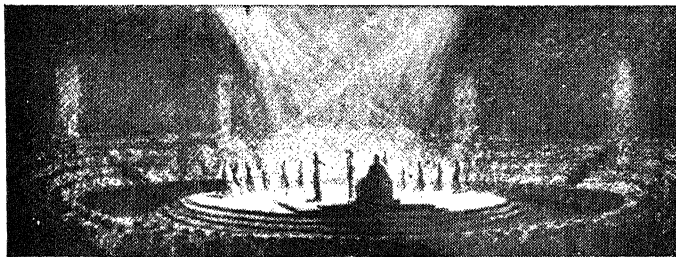
प्रांगण-रंगशाला में एक अभिनय। १९२२ ई० में इसकी डिज़ाइन बेल गेडेस ने तैयार की थी। गोलाकार रंगशाला का एक प्रारम्भिक उदाहरण जो १९५० ई० और उसके बाद अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

प्राचीन और आधुनिक पाश्चात्य रंगशालाओं की तुलना। ऊपर, प्रीन की रंगशाला की पुनर्रचना——जैसा कि वह बाहर से दिखायी देती है। इसमें विशाल खुला प्रेक्षागृह और छोटी-सी मंचीय इमारत है।
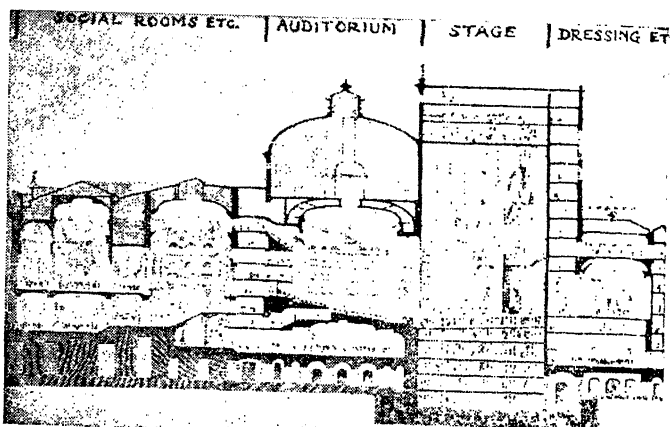
पेरिस ओपेरा हाउस का एक संभागीय दृश्य है। इसमें रंगमंच की व्यापकता और अलंकृति दृष्टव्य है। ऊपर नीचे यंत्रों की कुल आठ मंजिलें हैं। बड़े बड़े बैठने के कमरे हैं। ये कमरे "देखने के स्थान" से तुलनीय हैं। किसी भी रंगशाला के लिए ये परमावश्यक हैं। (ऊपर का चित्र ए० वान गेरकन कृत दास थियेटरवान प्रीन के एक अंकन से लिया गया है। यह संभाग का कार्ल फिचोट और हेनरी मेयेरकृत चित्र है जो इलस्त्रीर्ते जीतुंग में प्रकाशित है।)

टपकता था। विशाल गोलाकार रंगशाला होती थी। मुख पर चेहरे लगे होते थे। बदन पर लम्बे-चौड़े फूले हुए कपड़े और पाँव में मोटे तल्ले के ऊँचे बूट होते थे। इसके बाद जितने भी युग आये, रोम में, पुनरुज्जीवित इटली में, फ्रांस, इंगलैंड, जर्मनी में, अठारहवीं शताब्दी के "महान् अभिनयों" के युग में, सदैव यह सूचना मिली कि "अब अभिनय कला अधिक मानवीय, यथार्थतापरक, जीवनसे अधिक मिलती-जुलती हो गयी है।" अन्त में, बिजली की रोशनी के आ जाने के बाद चरित्र-चित्रण, जहाँ तक उसकी वाह्य स्वाभाविकता का सम्बन्ध है, पूर्णता को पहुँच गया। एक परंपरा से आरम्भ होकर यह कला अर्ध-कृत्रिमता, अर्ध-अनुकरण, पूर्ण चित्रात्मकता के विभिन्न युगों से होकर आगे बढ़ती हुई परिचित स्त्री-पुरुषों के चित्रीकरण तक पहुँची।
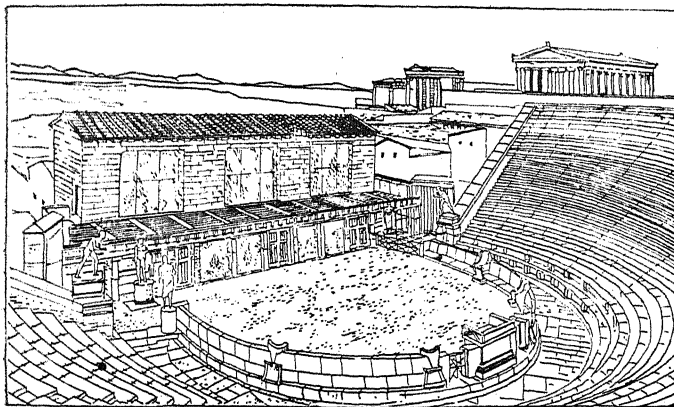
रंगशाला——मन्दिर वर्ग का एक अंग। प्रीन में स्थित ग्रीक-रोमन थियेटर का ए० वान गेरकन द्वारा पुनर्गठित चित्र। (बग़ल वाले पृष्ठ में जिस ऊपरी रंगशाला का चित्र दिया गया है, यह उसका भीतरी भाग है।)

विकास का यह पथ इतना सीधा नहीं है कि हम रंगशालाओं के रूप-रंग-सम्बन्धी परिवर्तनों को बहुत आसानी से जान लें। कुछ थोड़ी-सी आधुनिक रंगशालाओं को छोड़कर साधारणतया रंगशालाओं में खुलापन नहीं रह गया, न वह शान-शौक़त ही रह गयी, वरन् धीरे-धीरे वे संकुचित होती गयीं और उनमें अनावश्यक वस्तुओं की भरमार होने लगी। पहिले नृत्य के लिए बनी गोलाई ही रंगमंच का काम देती थी। यह

अक्सर किसी पहाड़ी की तलहटी में किसी पवित्र उपवन में बनायी जाती थी। धीरे-धीरे रंगमंच सुन्दर कटे हुए काठ का बनने लगा। इसके बाद यूनानियों ने संगमरमर के रंगमंच बनवाये। उनकी संगमरमर की रंगशालाएँ अत्यन्त भव्य होती थीं। रोमवासियों ने अपनी रंगशालाओं को और भी अधिक आकर्षक बनाया। इस प्रकार प्रगति होती रही। फिर रंगशालाओं का रूप बदलने लगा, परन्तु इस विकास-काल का पर्यवेक्षण करें तो पता चलेगा कि जिस प्रकार सभ्यता का विकास हुआ, ठीक उसी प्रकार रंगशालाओं की निर्माण-कला का भी विकास हुआ। जब मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं बढ़ीं, उसका आध्यात्मिक विकास एवं प्रस्फुटन हुआ और वह ईश्वरोन्मुखी हुआ तो इस सारी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति रंगशालाओं में हुई। जब मनुष्य अत्यधिक आध्यात्मिक हुआ तो इसको मन्दिरों और गिर्जाघरों के समीप स्थान मिला। जब दरबारों की शान बढ़ी, जब राज-प्रासादों की कीर्ति और महिमा बढ़ी, तो उनमें रंगशालाओं का प्रवेश हुआ। परन्तु जब पतन का युग आया तो उसका भी पतन हो गया। वह भी दिखावटी, सस्ता, सजावटवाला प्रदर्शन-गृह बनकर रह गया और आज तो काठ के चौखटे पर खिंचे पर्दे ही रह गये हैं। आज का रंगमंच इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

नाटक के विकास की भी यही कथा है। यूनानी नाटकों की अतल भावनात्मक गहराइयों और उत्कृष्ट मनोहारी काव्य और आज के यथार्थवादी, उथले, संकुचित नाटकों के बीच गहरी खाई है। नाटकों के विकास-क्रम का मार्ग भी सीधा नहीं रहा है। नाट्य साहित्य के इतिहास में अनेक ऐश्वर्यशाली युग आये हैं। सोफ़ोक्लीज़ के बीस शताब्दी बाद शेक्सपियर का आविर्भाव हुआ, और अभी मुश्किल से सौ वर्ष हुए होंगे जब कि गेटे और शिलर ने उन्हीं महान् कवियों की भांति महान चमत्कार दिखाये। तब से अब वह परमोल्लास, वह ओज कम होता जा रहा है, बल्कि प्रायः समाप्त हो गया है।

ऐसे लोग हैं (यद्यपि मैं उनमें नहीं हूँ) जो कहते हैं कि नाट्य साहित्य की यह अधोगति जनमत के आदेशों को स्वीकार करने के कारण हुई। उनके अनुसार दर्शक एवं प्रेक्षक अब विशाल हृदय, उन्नत मस्तिष्क एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के नहीं रहे गये हैं; अब वे भावुक, तुच्छ बुद्धि के तथा उच्छृंखल हो गये हैं। रंगशाला केवल उनका मनोरंजन करती है। परन्तु यह सम्भव है कि अच्छे प्रेक्षक सब कहीं हों। यदि अच्छे नाटकों, अच्छी रंगशालाओं, अच्छे अभिनय और अच्छे मंच के लिए समुचित राजनीतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक वातावरण हो तो सुबुद्ध, सुरुचिपूर्ण प्रेक्षकों की कमी न होगी। निश्चय ही ऐसे आशावादी लोग अब भी हैं (और आप मुझे भी उन्हीं लोगों में गिन लें) जो आधुनिक नाट्य कृतियों की तुच्छता एवं सस्तेपन से निराश अथवा उदास होने के लिए तैयार नहीं हैं, जो आजकल की अतिशय तड़क-भड़क वाली क्षुद्र रंगशालाओं,

चालू नाटकों और निरर्थक अभिनयों से हताश नहीं होते। क्योंकि हम देख रहे हैं और अपनी ही आँखों के सामने देख रहे हैं एक महान् प्रक्रिया——सभी युगों के रंगमंच से भी अधिक जीवन्त रंगमंच का उदय, एक नवीन उत्क्रमणशील विकास का प्रारम्भ ! हम देख रहे हैं कि अब रंगशाला और रंगमंच एक नयी सादगी और सहजता की ओर अभिमुख हो रहा है (आदिम युग की ओर वह नहीं जा रहा है, वरन् वह आधुनिक स्वयं-चालित वाहनों की तरह सादा होता जा रहा है। क्यों न हम ऐसी रंगशालाओं का निर्माण करें जिनकी दीवारें सीधी, स्वच्छ हों, जिनमें बहुत उतार-चढ़ाव पच्चीकारी न हो, जो इन स्वयंचालित वाहनों की तरह सुखदायी हों, तेजोमय हों, लक़-दक़ हों, मनोहारी हों ?) हम देख रहे हैं कि ऐसे नाटकों की रचना हो रही है जो केवल चित्रात्मक सूचना-मूलक कृतियाँ नहीं हैं, वरन् जिनमें जीवन की नवीन मानवीय गहराइयों तक पहुँचने का हौसला और हिम्मत है। हम देख रहें हैं कि अभिनय भी केवल अनुकरण नहीं रह गया है; उसमें परिवर्तन हो रहा है——अनुकरण की मात्रा कम हो रही है और अभिव्यक्ति की मात्रा बढ़ रही है।

सबसे बड़ी बात यह है कि हम पाश्चात्य रंगशाला में एक नयी प्राण-शक्ति और भावना का उदय देख रहे हैं। सच यही है कि किसी संस्था , जाति अथवा राष्ट्र को उसके विजय-पथ पर युगों-युगों तक ले चलने वाली उसकी यह अछूती भावना और प्राण शक्ति ही होती है। निश्चय ही रंगमंच की प्रोज्ज्वल, जाज्वल्यमान, सनातन, अछूती, प्राण-शक्ति ही नाट्यकला को मानव जाति के इतिहास के उत्क्रमणशील एवं पतनशील, महान् एवं कठिन, अश्लाध्य युगों में जीवित रखती आयी है। जिन दिनों जीवन और स्वाधीनता के आधार टूट रहे थे, उन दिनों इसी प्राण-शक्ति ने रंगमंच और रंगशाला को जीवित रखा। साम्राज्यों का निर्माण और विघटन भी हुआ, घोर विनाशकारी युद्ध हुए, विज्ञान का उदय हुआ; कायरता, स्वार्थपरता और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त के अनुसार दीक्षित और शिक्षित पीढ़ियों ने जो सीमाएँ अब तक बाँध रखी थीं उनका अतिक्रमण भी अब आरम्भ हो गया है।

जब हम आधुनिक रंगमंच को देखते हैं, उसे बाज़ार की शोभा बढ़ाते हुए पाते हैं, जब हमें यह मालूम पड़ता है कि रंगमंच का व्यापार उसी प्रकार हो रहा है जिस प्रकार ग़ल्ले का व्यापार होता है और उसके सम्बन्ध में भी क्रीड़ा-कौतुक अथवा बाज़ार की दलाली वाली सरगर्मी दिखायी जा रही है तो स्वभावतः हम निराश और उदास हो जाते हैं। यद्यपि हम देखते हैं कि रंगशलाओं में अपार धनराशि और सम्पदा खिंचती चली आ रही है। हमारे नगर में इस वर्ष अप्रत्याशित रूप से बड़ी संख्या में नाटक खेले जायेंगे और यह भी कि रंगशाला भीड़-भाड़, जोश, शोरगुल और सक्रियता का

केन्द्र बन गयी है। इस प्रकार यद्यपि चारों ओर सक्रियता और उत्साह के दृश्य दिखायी देते हैं—फिर भी हमें लगता है इनका कोई सम्बन्ध जीवन के गहरे स्रोतों से नहीं है। दूसरे युगों में रंगमंच का सम्बन्ध जिस अलौकिकता से, देवतत्व के गुणों से था आज वह उससे बहुत दूर जा पड़ा है। आज के रंगमंच ने जीवन की गहराइयों में धँसकर, उसके अनुभवों के भीतर पैठकर, देवत्व को खोज निकालने में सफलता नहीं प्राप्त की है। आज तो उसने मानवता के सामने उसके कमज़ोर, घृणित, विकृत, पक्षों को उघाड़ कर रख दिया है। आज का रंगमंच संकुचित ईर्ष्यापूर्ण, गप्पबाज़ी का अड्डा बन गया है। उसकी महत्ता, उसका गौरव, उसकी उत्कृष्टता लुप्त हो गयी है। सौ नाटकों में से शायद ही एक नाटक ऐसा होता होगा जिसमें हम उन्माद, आनन्द, उच्च गौरव और अछूते सौन्दर्य का दर्शन कर सकें।

फिर भी हममें से हर एक ने, अपने सामूहिक अनुभव के सहारे, एक दूसरे आध्यात्मिक रंगमंच की स्थिति को जाना है, अपने समय की रंगशालाओं में भी हम प्राचीन उत्तेजना से आन्दोलित हुए हैं, आनन्दमग्न दर्शक-समाज के अंग बनकर हमने भी आकर्षक नाटक देखे हैं, शान्त प्रेक्षागृह में बैठकर हमने भी ईश्वर से कुछ निकटता अनुभव की है। उस समय जो कुछ मंच पर हो रहा था उसके साथ हमारे आसपास के वातावरण का तादात्म्य हो गया था। उस समय चेतन मस्तिष्क ने सोचना बन्द कर दिया था। हम दुःखान्त नाटक से प्रभावित होकर पवित्र हुए थे; सुखान्त नाटक में हँसी की महौषधि से हमारे घावों पर मरहम लगा था; कभी हमने अपने को पापी समझा, कभी हमने ऐसा दृश्य देखा कि वितृष्णा से मन भर गया; कभी सौन्दर्य के, सुबुद्धि एवं ज्ञान के और पूर्ण प्रज्ञा के स्वर्ग में हम जा पहुँचे।

सौ में एक नाटक हमें ऐसा मिला और उसे देखने पर ऐसा ही हुआ। यहाँ हम अँधेरे प्रेक्षागृह में बैठे हुए हैं। सामने मंच पर हम सब प्रकाश देख रहे हैं। गर्मी की रात है। हमें भी गरमी लग रही है। एक साधारण कथानक को लेकर मंच पर अभिनय हो रहा है। बीच-बीच में हँसी के फौव्वारे छूटते हैं; कहीं कोई चाल चली जाती है, कहीं षड़यंत्र होता है; कहीं तरुणाई सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हो रही है। मगर इस चहल-पहल में हम अपनी गर्मी को नहीं भूल सके हैं। कथानक मनोहारी है, अभिनय उत्कृष्ट है, रंग और रोशनी की समुचित व्यवस्था है। सब कुछ अच्छा है, आनन्दमय है। हम देख रहे हैं कि अभिनेता हमारे सामने अपना कौशल दिखा रहे हैं; रोशनी, रंग और सक्रियता का सहयोग उन्हें प्राप्त है; कहानी ऐसी है कि उस गर्म प्रेक्षागृह में बैठकर बिना आन्दोलित हुए ऊपरी तौर से उसे नहीं देखा जा सकता।

तभी अपने एक वाक्य से अभिनेता हमें स्तम्भित कर देता है। हमारी साँस

रुक जाती है। कहानी, साज-सामान, रात का समय सब कुछ हम भूल जाते हैं; सब कुछ स्थिर हो जाता है; सारे प्रेक्षागृह में सन्नाटा छा जाता है; एक सहस्त्र की संख्या में उपस्थित व्यक्ति आगे झुक कर मंच के केन्द्र में एकत्र छोटे से दल को देखने लगते हैं; हमारे शरीर हिलडुल नहीं रहे हैं, हमारे गले रुँधे-रुँधे से हो रहे हैं; विचित्र भावनाएँ उमड़-घुमड़ रही हैं। हम अनुभव करते हैं कि हमारी आँखों से गर्म आँसुओं का सोता फूट चला है; एक "क्षण" आ पहुँचा है। इसके पहिले कि यह मौन असहनीय हो उठे, इस अभिनेत्री, इस महिला को जो कि हमारे सामने खड़ी है, अवश्य बोलना चाहिए, अवश्य सक्रिय होना चाहिए। हम इन्तज़ार करते हैं, अनिश्चित-से इस क्षण में यह स्त्री जो कुछ करेगी या कहेगी उसके फलस्वरूप एक हज़ार प्रेक्षकों की आँखों से आँसू उमड़ पड़ेंगे, एक हज़ार गलों से चीख़ निकल जायगी, या चारों ओर हँसी का वातावरण छा जायगा। उसके होंठों का एकाएक हिलना—वह कौन-सी प्रक्रिया है, जिससे एक सहस्त्र स्त्री-पुरुषों की साँस रुक जाती है, उनकी हिचकी बँध जाती है? उसकी कँपकँपी मानो हमारी रीढ़ में उतर आती है; उसकी एक अस्पष्ट "हाँ" हमें इस तरह विदीर्ण कर देती है मानो किसी ने चाकू से हमारे शरीर के मांस को तराश दिया हो।

कुछ क्षणों के लिए हमें लगा कि सारे संसार के बाह्य जीवन की गति बन्द हो गयी है। हमने आत्मा के जीवन को गहन होते हुए अनुभव किया। प्रत्येक बात बिलकुल स्पष्ट हो गयी थी। एक संकेत, एक हिचकी, लगता था. . .जीवन की हमारी सारी गुत्थियों को सुलझा देगी; लगता था हमें ऊपर उठा देगी, हमें गौरवान्वित कर देगी, महिमा-मंडित कर देगी।

यही वह क्षण है जिसके लिए प्रत्येक नाट्यकृति प्रयत्नशील रहती है। सौन्दर्य में, विमलता में आत्मा के आप्लुत होने की यही घड़ी है जहाँ तक पहुँचने के लिए रंगमंच की कला प्रयास करती है। यह होता है उसी संसार में जहाँ देवत्व और रहस्य का लोप हो चुका है। ईश्वरीय एवं आध्यात्मिक अनुभव के जितने भी निकट हम पहुँच सकते हैं, इसी स्थल पर पहुँचते हैं। यही डायोनीशियन अनुभव है। यही दैवी जीवन से हमारा आनन्दोल्लासमय तादात्म्य है। जब तक आपको उस क्षण का ज्ञान न हो जाय, रंगशाला और रंगमंच की आत्मा तक आपका प्रवेश नहीं हो सकता। यही वह अनुभव है जो रंगमंच, रंगशाला और नाटक की समस्त परिभाषाओं से परे है।

रंगमंचीय कला में आगामी परिवर्तनों की दिशा चाहे जो हो—और आगे युगान्तरकारी परिवर्तनों की पूरी सम्भावना है—इतना तो निश्चय है कि रंगशाला के कलाकार किसी न किसी प्रकार इसी अलौकिक क्षण के इर्द-गिर्द क्रियाशील रहेंगे।

हम दर्शकों को, प्रेक्षकों को, ऐहिक जीवन की यही अलौकिकता दिव्य दृष्टि और आध्यात्मिक सहभोग की संपूर्णता प्रदान करेगी।
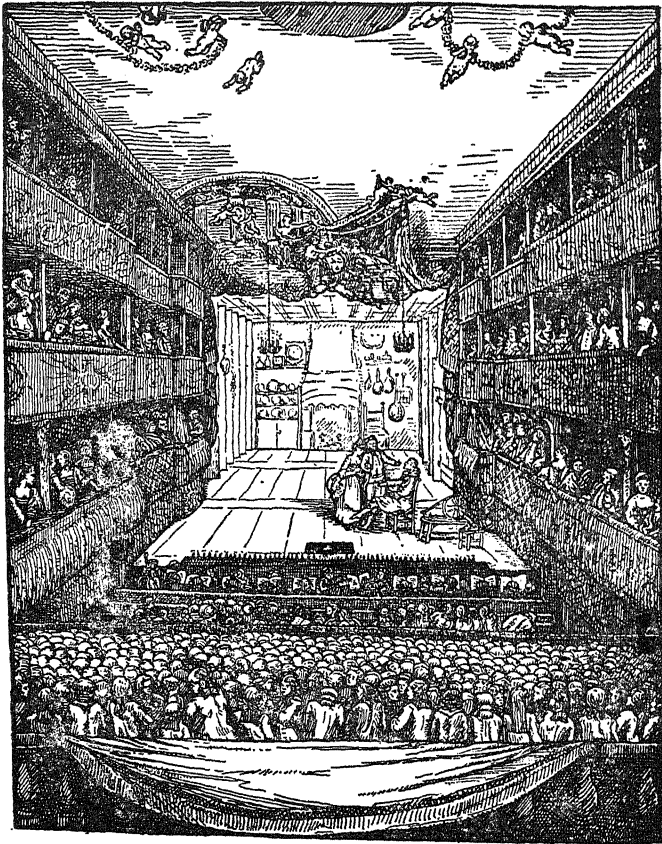
अठारहवीं शताब्दी की एक फ्रांसीसी रंगशाला जिसमें छवि-सेटिंग तब भी प्रचलित थी, मगर इसमें अभिनेता छवियों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता था क्योंकि उसे आगे बढ़कर जनता के बीच में अभिनय करने का अवसर मिल जाता था। इस चित्र में रईस दर्शकों के लिए दीर्घा बनी हुई थी और खड़े होकर अभिनय देखने वालों के लिए भी एक बड़ा-सा अग्र भाग सुरक्षित था। (१७६७ में पी० ए० वाइले कृत रेखांकन के आधार पर लेखक द्वारा पुनर्रेखांकन)।

क्योंकि हम मानव हैं, परन्तु ज़रा-सी देर में कलाकारों ने हमें देवता बना दिया है।
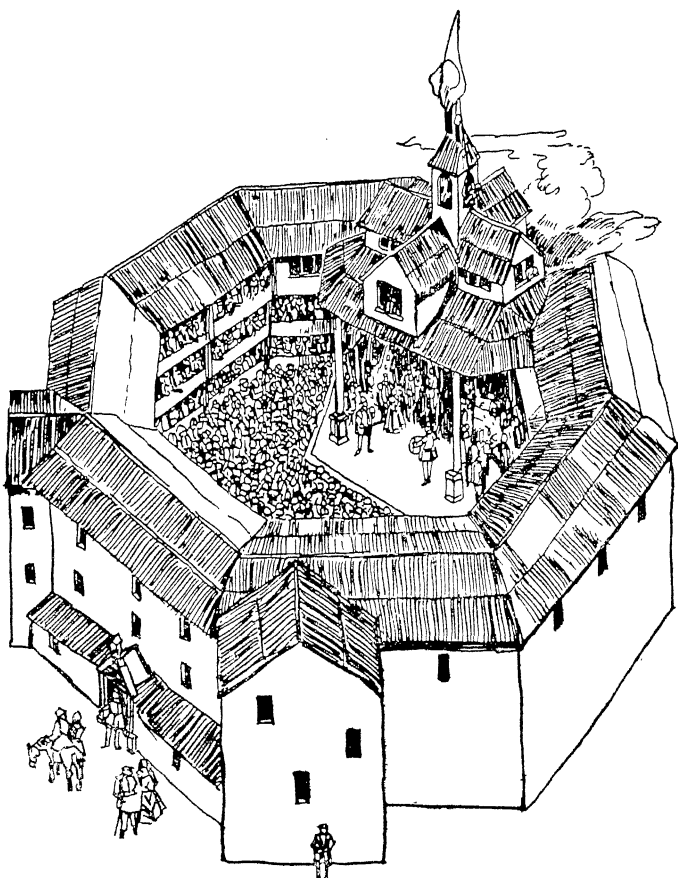
लगभग १६०० ई० में शेक्सपियर के लन्दन स्थित ग्लोब थियेटर में एक अभिनय। मारिस पर्सिवल कृत यह रेखाचित्र, जान क्रानफोर्ड एडम्स के एक रेखांकन के आधार पर निर्मित है। (इस अध्याय में दिए गए अन्य रेखा चित्रों की तुलना में) इस चित्र में प्रयुक्त रंगमंचों की विभिन्नता, 'सेटिंग' के सम्बन्ध में बदलते हुए विचारों और अभिनेता की प्रभावशाली अथवा निष्क्रिय, महत्वहीन व्यक्ति के रूप में, बदलती हुई स्थिति पर, विशेष बल दिया गया है।

अध्याय २

रंगशाला का विकास-स्रोत और उसका काल

मनुष्य नृत्य करता है। आदिम जातियों की भौतिक आवश्यकताओं, भोजन-छाजन, के बाद सर्वप्रथम स्थान इसे ही प्राप्त है। यह भावाभिव्यक्ति का, आदिम साधन है; यही समस्त कलाओं का उद्गम-स्थल है। आज का सभ्य मनुष्य भी, अपने दिखावटी संयम और बनावटी गम्भीरता के बावजूद, अपने भावनामूलक आनन्द को किसी सहज क्रिया के माध्यम से ही प्रकट करता है। आदि मानव के पास भावाभिव्यक्ति के लिए साधनों की कमी थी। उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा का भी आरम्भिक काल था। उस समय वह अपने गहरे भावों को हाथ-पाँव के संचालन-द्वारा ही प्रकट करता था। उसके आसपास की प्रकृति की गति भी लय-युक्त थी। वह जलाशयों में उठती लहरियों और लहराते खेतों को देखता था। वह सूर्य-चन्द्रमा के क्रमगत उदय एवं अस्त को देखता था। स्वयं उसके हृदय की धड़कन में भी एक लय थी। इसलिए स्वाभाविक था कि वह अपना आन्तरिक आनन्द प्रकट करने के लिए एक लय-युक्त पद-संचालन-क्रिया को अपनाता।

वह आनन्द के लिए नृत्य करता था; लोकाचार के लिए भी नृत्य करता था। नृत्य की भाषा में ही वह अपने देवताओं से बातें करता था; वह नृत्य की भाषा में ही प्रार्थना करता था और उसी भाषा में धन्यवाद भी देता था। किसी भी प्रकार हम उसकी इस क्रिया को नाट्य-परक नहीं कह सकते। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि नाटक और रंगशाला के बीज उसकी इसी नपी-तुली पद-चालन की क्रिया में थे। आज भी नृत्य कला मौजूद है। उसका कोई भी सम्बन्ध आदिकालीन नृत्यों के मूल उद्देश्यों से नहीं रह गया है। परन्तु नृत्यकला के विकास-क्रम में आदिकालीन नृत्य का स्थान कहीं-न-कहीं अवश्य है। कम्बोडिया में रंगशाला को 'नृत्यशाला' ही कहते हैं। नृत्य करती मूर्तियों, चित्रों तथा लिखित वर्णनों का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है जितनी

पुरानी स्वयं यह कला है। इन ऐतिहासिक तथ्यों एवं प्रमाणों के अतिरिक्त, अफ्रीका के जंगलों, दक्षिण सागर के द्वीपों, संयुक्त राष्ट्र आदि में बीसों ऐसी तथाकथित 'पिछड़ी' जातियाँ हैं जहाँ इस बात के प्रमाण एवं उदाहरण मिल सकते हैं। जहाँ कहीं भी 'आदिम' लोग मिलते हैं और उनकी रीतियों-रस्मों का अध्ययन होता है वहाँ ऐसे लोकाचारों के प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार नाट्य-नृत्य हैं।

यही नहीं कि नाट्य-सक्रियता जिसका एक केन्द्रीय तत्व है-का प्रादुर्भाव आदिम नृत्य से हुआ, बल्कि यह भी सत्य है कि बाद के काल में, नृत्य से सम्पर्क हो जाने के बाद, नाट्य ने नृत्य-मुद्रा के अंग विशेष-काव्य को भी अपने में समेट लिया। आधुनिक युरोपियन नाट्य का प्रादुर्भाव यूनान में हुआ। और, साधारणतया सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि कला-विशेष के रूप में यह सचमुच तब प्रतिष्ठित हुआ जब नृत्य के साथ आह्लाद पूर्ण पूजा-गीत का सम्बन्ध हुआ। सस्वर काव्य-पाठ नृत्य के द्वितीय पुत्र की भाँति ही स्थान प्राप्त कर सका। लय के साथ क़दम बढ़ाते समय मनुष्य ने जो नाद अथवा स्वर उत्पन्न किया उसका तारतम्य उसके अंग-संचालन और पग-ध्वनि के साथ था। धीरे-धीरे इसी स्वर ने युद्ध-गीत अथवा प्रार्थना का रूप लिया। विकसित होकर यही विभिन्न समुदायों का मंत्र अथवा गीत बन गया था। अन्ततोगत्वा सजग-सचेष्ट काव्य-रचना का आरम्भ हुआ। (यह आश्चर्य की बात नहीं है कि छन्दों की इकाई को अंग्रेजी में 'फुट' कहते हैं और 'बैलेड' तथा 'बैले' शब्दों में इतना अधिक साम्य है)। संगीत को नाट्य-कला के आरम्भिक काल से किसी भी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। इसका भी आरम्भ आदिम नृत्यकी लय को तीव्रता प्रदान करने वाले स्वरों से ही हुआ है। पाँव से ध्वनि करना, हाथ से ताली देना, खट-खट की आवाज़ करना, ढोल बजाना या लकड़ी बजाना—ये सब ऐसे ही स्वर थे।

इस प्रकार नृत्य कला अन्य कलाओं की महामाता है। यह बताना असम्भव है कि इसका प्रादुर्भाव सबसे पहिले कब और कहाँ हुआ। स्यात् मानव प्राणी को इसका ज्ञान सहस्त्रों स्थानों पर सहस्त्रों बार हुआ। जब जब किसी एकान्तिक मानव समुदाय ने आत्मभिव्यक्ति करनी चाही तब-तब ऐसा हुआ। जब से हमें मानव जाति के इतिहास का पता है, यह घटनाक्रम उसके पहिले का है। यह निश्चय करना भी सरल नहीं है कि नाट्य का प्रादुर्भाव कब हुआ; नृत्य, काव्य और संगीत ने मिलकर कब कथानक का सहारा लिया, कब उसमें घटना-तत्व का संश्लेष हुआ और इस प्रकार कब नाट्य-कला का संपूर्ण रूप निखरा। छिटपुट प्रमाण, उदाहरण एवं निष्कर्ष द्वारा जो कुछ तत्व मिल सकते हैं उन्हीं को जोड़-बटोर कर हम संपूर्ण चित्र बना सकते हैं। इसकी पृष्ठ-भूमि में सदैव नृत्य की सर्वव्यापी प्रक्रिया तथा मनुष्य की अनुकरण और

पुनर्कथन की प्रवृत्ति ही रहेगी।

जहाँ नृत्य बढ़कर नाटक के निकट पहुँचने लगता है और जिस क्षेत्र में काव्य-गायक अभिनय के छोरों को छूने लगता है (अधिकतर नृशास्त्रवेत्ता मानते हैं कि यह प्रक्रिया बाद में आरम्भ हुई) वहाँ, केवल परीक्षा के लिए पूछा जा सकता है कि क्या अभिनेता का कोई चरित्र बनता है, अथवा उसका रूप निखर आता है? और क्या, जो क्रिया की जाती है उसमें घटना होती है? केवल अंग-संचालन से सक्रियता का बोध नहीं होता। यदि कोई '**उग**' अथवा '**कर**' अन्तःप्रेरणा के फलस्वरूप अपने देवता के सम्मान में अथवा विजयोत्सव मनाने के लिए नृत्य करने लगता है तो वह नाटक नहीं करता। परन्तु यदि वह अपने नृत्य में यह प्रदर्शित करता है कि कैसे वह चुपके से आगे बढ़ा, कैसे उसने अपने शत्रु को देख लिया, कैसे संघर्ष किया, कैसे हाथा-पाई की, कैसे दाँव-पेंच खेले और किस प्रकार अपने शत्रु को मार कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया तो वह सच्चे नाटक के अत्यन्त समीप पहुँच जाता है।

लय-युक्त अंग-संचालन के आनन्द से आगे बढ़कर वह 'अभिनेता' अनुकरण की क्रिया-द्वारा यह प्रदर्शित करने को विवश हुआ कि उस संघर्ष में उसने क्या अनुभव किया अथवा क्या कल्पना की; उसने पहिले जो कुछ स्वयं किया था उसी को इस नृत्य में दोहराया अथवा किसी पूर्व-पुरुष, किसी पशु या देवता ने जो कुछ पहिले किया उसका अनुकरण किया? इस प्रकार कुछ समय तक क्रिया करके उसने नाट्य की पहिली शर्त पूरी की : यूनानी प्रतिशब्द की व्युत्पति के अनुसार नाटक का अर्थ है 'मैं करता हूँ'। बुनियादी तौर से उसका अर्थ होता है—'किया हुआ काम।'

आस्ट्रेलिया की आदिवासी जातियों में से एक जाति 'कैनो' नृत्य करती है। इस नृत्य में स्त्री और पुरुष आमने-सामने पंक्तिबद्ध होकर खड़े होते हैं। वे अपने हाथों में छड़ियाँ लिये होते हैं। ये छड़ियाँ डाँड का प्रतीक होती हैं। ज्यों-ज्यों शरीर हिलता है, त्यों-त्यों ये छड़ियाँ भी डाँडों की भाँति लय-युक्त ढंग से हिलने लगती हैं। जब पूरी की पूरी टोली इस प्रकार सक्रिय हो उठती है तो स्पष्ट पता चलता है कि वे पानी पर नाव चलाते समय डाँड मारने की प्रक्रिया को दोहरा कर उसका आनन्द ले रही हैं। यह एक साधारण सामाजिक उत्सव है। पहिले के नृत्यों के विरुद्ध यह नृत्य ऐसा है जिसका न तो कोई पूजा-विधिपरक महत्व है, न व्यावहारिक जीवन से ही कोई सम्बन्ध है। बस, मौलिक रूप से, स्मरणमूलक आनन्द के लिए अथवा भावनात्मक तृप्ति के लिए ही यह नृत्य किया जाता है। इस प्रकार के सामाजिक नृत्यों के कई स्तर हैं, आत्म-प्रेरित नृत्य से लेकर (जिसमें वर्तमान का ही रस लिया जाता है) स्मरण-परक अनुकृति-नृत्य और इसी प्रकार प्रहसन तथा श्रृंगारिक अभिव्यक्ति तक इसका विस्तार है।

हम यह नहीं जान सकते कि प्रागैतिहासिक काल के क़बीलों के कौन से सुखान्त-नृत्य होते थे (यद्यपि यह कहा जाता है कि गुरिल्लों में विनोदप्रियता अत्यधिक थी); परन्तु आज भी जो आदिम जातियाँ मौजूद हैं, उनका अनुशीलन करने पर पता चलता
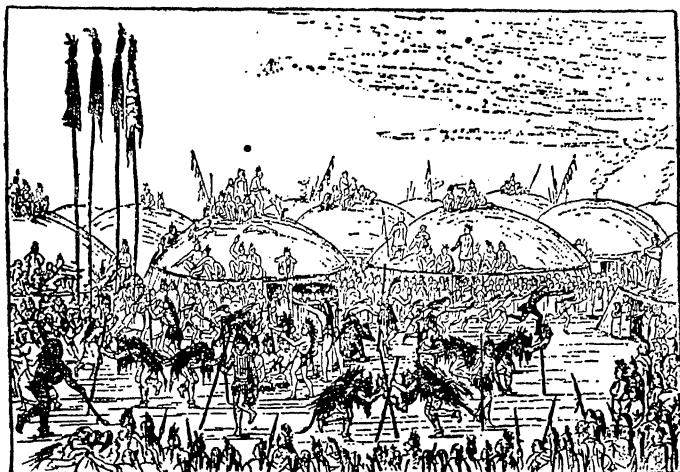
अमेर-इन्ड्स में एक धार्मिक-नाटकीय उत्सव : मन्दन क़बीले का वृषभ नृत्य —एक प्रत्यक्षदर्शी, जार्ज कैटलिन द्वारा चित्रित (स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन के सौजन्य से)।

है कि उनमें इस प्रकार के नृत्य के प्रमाण मिलते हैं। शिकार-नृत्य अथवा युद्ध-नृत्य में भी हास्य-विनोद के तत्व मिलते हैं, जिसमें पूरा जोर लगाकर वार करते हैं परन्तु निशाना चूक जाता है, अथवा जिस पर आक्रमण करना है उसके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति पर चोट कर देते हैं। पशुओं अथवा पक्षियों की नक़ल को भी हास्योत्पादक बनाया जा सकता है।

इन उदाहरणों की परीक्षा करने पर पता चलेगा कि अधिकतर ये धार्मिक अथवा प्रारम्भिक रीति-परक नृत्यों में ही प्राप्त होते हैं। प्रेम-परक मूक-नृत्यों में अक्सर दो व्यक्तियों को आमने-सामने प्रदर्शन करना होता है। ऐसे नृत्य, कभी-कभी यूरोप-वासियों की दृष्टि में, भोंडे और अश्लील प्रदर्शन की सीमा तक पहुँक जाते हैं। इन

नृत्यों में अक्सर यही दृश्य दिखाया जाता है कि पुरुष प्रशंसा करता है, इच्छा करता है, अपनी इच्छाओं को प्रदर्शित करता है, प्रेम-निवेदन करता है और स्त्री जो कि लजीली होती है, पहिले पुरुष को तंग करती है, चिढ़ाती है, मना करती है और अन्त में पुरुष के प्रेम-निवेदन को स्वीकार कर लेती है। परन्तु इन शृंगार-परक नृत्यों में से अधिकांश का धार्मिक महत्व होता है तथा इनमें कभी भूमि को उर्वरा बनाने के लिए पूजा की जाती है, कभी सन्तानोत्पत्ति की कामना की जाती है।

तथा-कथित असभ्य आदिवासियों की दुनिया शक्तिशाली भूत-प्रेतों और देवी-देवताओं से भरी रहती है। इनका सम्बन्ध प्रकृति के विभिन्न तत्वों, कारणों अथवा पुरखों की मृतात्माओं, काल्पनिक पशुओं, वृक्षों अथवा सितारों से होता है। जो हो, यह माना जाता है कि जब देवता प्रसन्न रहेंगे तभी मनुष्यों का कल्याण हो सकता है। देवताओं को जो अच्छा लगे मनुष्य को वही करना चाहिए। मनुष्य को पता होना चाहिए कि देवता की इच्छा क्या है। उसे हमेशा देवताओं की कृपा के लिए कृतज्ञता प्रदर्शित करनी चाहिए। हम जिस प्रकार पूजा-वन्दन करते हैं, आदिवासी उस तरह नहीं करते। पश्चिम के अमेरिकन-इण्डियन वर्षा के लिए केवल प्रार्थना नहीं करते। वे सक्रिय होते हैं। वे अपने देवताओं के सामने वर्षा-नृत्य करते हैं। दूसरे आदिवासी सूर्य-नृत्य करते हैं। जिन आदिवासियों को अकाल का सामना करना पड़ता है वे हिरन-सदृश देवता का नृत्य करते हैं।

देवताओं और भूत-प्रेतों के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना प्रदर्शित करने के लिए नृत्य तत्वतः एक ऐसी आदिकालीन प्रक्रिया है कि प्रायः हर जगह मन्दिर से पहिले नृत्य भूमि का ही निर्माण हुआ। यहाँ देवताओं का मुख्य प्रतिनिधि, पुरोहित, ओझा, वैद्य विभिन्न कार्यों के लिए नाना प्रकार के नृत्य आयोजित करते हैं। जो देवता वर्षा रोक देते हैं अथवा सूर्य को छिपाकर अँधेरा कर देते हैं उनको प्रसन्न करने के लिए नृत्य होते हैं। क़बीले के किसी सदस्य को यदि कोई बीमारी हो जाती है तो उसके शरीर से भूत को मार भगाने के लिए भी नृत्य किया जाता है। नई शराब को सौभाग्य-सूचक बनाने के लिए भी नृत्य किया जाता है।

जिस प्रकार के धार्मिक नृत्यों का हमने यहाँ वर्णन किया है उनमें से तीन विशिष्ट प्रकार के हैं। उन्हें हम अन्नोत्सव कह सकते हैं। आदिवासी चाहते हैं कि वर्षा हो जिससे खूब अन्न पैदा हो। इस प्रकार के नृत्य में ऐसे देवताओं का आवाहन किया जाता है जो मनुष्य को वरदान दे सकते हैं। इसके बाद वर्षा दिखाने के लिए वर्षा-नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है—बादल घिर रहे हैं, बिजली चमक रही है, बादल गरज रहे हैं, वर्षा हो रही है—फिर हर्षोल्लास! दक्षिण-पश्चिमी इंडियनों के बीच पुरोहित अथवा ओझा

पहले वर्षा करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होता है क्योंकि आकाश हमें पानी से अधिक मूल्यवान् कोई अन्य वस्तु प्रदान नहीं कर सकता।

ज्यों-ज्यों कृषि का महत्व बढ़ता गया त्यों-त्यों अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिए इस प्रकार के नृत्य-उत्सवों का विकास होता गया। अन्त में मौसमी उत्सवों का प्रादुर्भाव हुआ। विशेषतया वसंत ऋतु में और फ़सल के समय के नृत्य प्रचलित हुए। आज
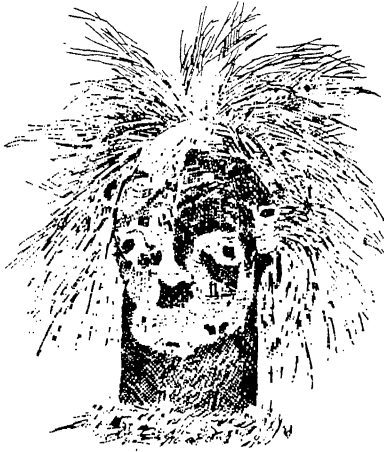
आदिम नाट्य-नृत्यों में प्रयुक्त चेहरे (वारेन डी० चेनी द्वारा रेखांकित)।

लगभग सारे संसार में इस प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं। इनमें से कुछ अनुकरणात्मक और कुछ प्रतीकात्मक नृत्य हैं। पौदा रोपने, फ़सल काटने और नयी मदिरा पहले पहल रसास्वादन करने के अवसर पर विशेष प्रकार के उत्सव होते हैं और खुशियाँ मनायी जाती हैं। इस प्रकार धरती के देवता और मदिरा के देवता भी मनुष्य द्वारा पूजित देवताओं के टाट में सम्मिलित हो जाते हैं।

अन्नोत्सवों के पहले शायद पशुओं के मांस प्राप्त करने के समय नृत्य हुआ करते थे। असभ्यता के उस युग में, जब कि शिकार खेलना ही मनुष्य का प्रधान पेशा था, उस समय भोजन की कमी नया शिकार करके ही पूरी की जाती थी। उत्तरी मिसूरी के मंडन इंडियन मांस की कमी होने पर 'भैंसा आओ' नृत्य किया करते थे। यदि देवताओं की ओर से देर होती तो नर्तक कई दिन अपना नृत्य जारी रखते थे। और वे तभी अपना नृत्य रोकते जब उन्हें यह सूचना मिल जाती कि आसपास के प्रदेश में ही

भैंसे का झुण्ड देखा गया है। न्यू ब्रिटेन में चिड़ियों का एक प्रेम नृत्य होता है जिसका अभिप्राय यह है कि शिकारी की जाने वाली चिड़ियाँ अधिक से अधिक बच्चे पैदा करें और फलस्वरूप अधिक से अधिक लोगों को भोजन के लिए मांस मिल सके।

जब क़बीले का बालक बड़ा होने लगता है, जब वह किशोर से तरुण होने लगता है, उस समय क़बीले में अनेक उत्सव होते हैं और नृत्य आयोजित किये जाते हैं। इसी

भयोत्पादक चेहरे

समय वह एक गुप्त समाज से परिचित कराया जाता है। इसलिए इस समय के नृत्य भी गुप्त होते हैं और इनका सम्पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करना सम्भव नहीं हो पाता। इस समय तक बालक की शिक्षा शिकार खेलने और मछली मारने तक ही सीमित रहती है। वे इस समय तक प्रायः उपेक्षित ही रहते हैं। वयःप्राप्ति के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने क़बीले का इतिहास जानें, उसकी रीतियों एवं परम्पराओं से परिचय प्राप्त करें। इसलिए क़बीले के बड़े लोग, क़बीले के देवता से सम्बन्धित कथाओं और गाथाओं को मूक-नृत्यों द्वारा प्रदर्शित करते हैं। अधिकतर अत्यन्त आकर्षक पशु-नृत्यों के मूल में हम इस प्रकार की शिक्षा देने की परंपरा पाते हैं। इन नृत्यों में नायक के रूप में पूर्व-पुरुषों की ही प्रधानता रहती है। अनेक ऐसे क़बीले होते हैं जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा इस बात को ध्यान में रखकर दी जाती है कि क़बीले के बालक अपने बड़ों से डरना सीखें, जिससे ये गुरुजन क़बीले की मर्यादा एवं अनुशासन को क़ायम रख सकें। यही वह स्थल है जहाँ से नृत्यों में भय एवं आतंक उत्पन्न करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। आदिवासी नृत्यों में जो भय उत्पन्न करने वाले अनेक चेहरे पाये जाते हैं, उनके मूल में यही प्रवृत्ति है।

प्रायः सभी आदिवासी क़बीलों में युद्ध-नृत्य पाये जाते हे। इनके दो अभिप्राय होते हैं---पहिला तो यह कि किसी भी आगामी युद्ध में देवता नृत्य करने वाले के पक्ष में हो जायं; दूसरा यह कि योद्धाओं में शौर्य और वीरता बनी रहे, उनका उत्साह कम न हो। नृत्य में युद्धोन्माद का जो अक्सर प्रदर्शन किया जाता है उसमें नाटक, धर्म और व्यावहारिक उपयोगिता के तत्व अपरिहार्य रूप से मिले रहते हैं। लूमिस[1] हेवमेयर ने उत्तर-पूर्व भारत के नागाओं के नृत्य के बारे में कहा था--

"यह नृत्य आरम्भ होता है उन योद्धाओं के कारनामों की प्रत्यालोचना से जो बाद में आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं, चोट बचाते हैं और वार करते हैं और इस तरह भाले फेंकते हैं मानो वे सचमुच युद्ध कर रहे हों। लड़ाई के मैदान में वे रेंग कर चलते हैं और धरती से, जहाँ तक सम्भव हो सकता है, अधिकाधिक चिपके रहते हैं, जिससे ढालों की एक पंक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। जब वे अपने काल्पनिक शत्रु के बिलकुल निकट पहुँच जाते हैं तो वे एकाएक उछल कर खड़े हो जाते हैं और आक्रमण कर देते हैं। विरोधी दल को मार डालने के बाद वे घास की फुनगियाँ खाते हैं। ये फुनगियाँ शत्रुओं के सिरों की प्रतीक होती हैं। इन फुनगियों को वे युद्ध में प्रयुक्त होने वाले गड़ासों से काटते हैं। घर वापिस आते समय वे घास की गाँठों को अपने कन्धों पर रखकर इस प्रकार चलते हैं, मानो वे सचमुच आदमियों का सिर रखे हुए हों। गाँव में इनकी भेंट औरतों से होती है। ये महिलाएँ उनके विजय-गीतों और नृत्यों में सम्मिलित होती हैं।"

युद्ध-सम्बन्धी एक और भी उत्सव है जिसका अध्ययन करने पर हम आदिम

---

१ देखिए लूमिस हेवमेयर कृत 'दि ड्रामा आव सैवेज पीपुल' (न्यू हेवन, १९१६)। आदिवासियों के नृत्यों और नाटकों के सम्बन्ध में यह अधिकृत ग्रन्थ है। जे० जी० फ्रेज़र का भी एक महान ग्रन्थ 'दि गोल्डेन बाउ---ए स्टडी इन मैजिक ऐण्ड रिलिजन', (बड़ा संस्करण जिसमें १३ भाग हैं) है। कोई भी इस विषय का विद्यार्थी बिना इस ग्रन्थ को पढ़े नहीं रह सकता। इसी नाम से इस ग्रन्थ का एक संक्षिप्त संस्करण प्राप्त है। जेन हैसिन कृत 'एंशियेंट आर्ट एण्ड रिचुअल' (लन्दन तथा न्यूयार्क १९१३) इस विषय का परिचय प्राप्त करने के लिए अच्छा ग्रन्थ है। विलियम रिजवे कृत 'दि ड्रैमेटिक डान्सेज़ आव नान युरोपियन रेसेज़' (कैम्ब्रिज, १९१५) एक कठिन परन्तु महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

नृत्य पर सामान्य दृष्टिपात करने से आगे बढ़कर उस क्षेत्र में पहुँच जाते हैं जहाँ कि नाटक स्पष्ट रूप से एक पृथक और पूर्ण इकाई की भांति उभर रहा है। हेनरी लिंग राथ ने एक ड्याक नाटक का वर्णन इस प्रकार किया है—

"एक योद्धा अपने पाँव से काँटा निकाल रहा है, परन्तु वह इस बात से भी चौकन्ना है कि कहीं आस-पास कोई शत्रु न छिपा हो। इसलिए वह अपने हथियार भी सम्भाले हुए हैं। अन्त में वह पास में छिपे शत्रु का पता पा जाता है। तड़ातड़ आक्रमण और बचाव की प्रक्रियायें चलती हैं। एकाएक शत्रु पर वह कूद पड़ता है और शत्रु मर कर पृथिवी पर गिर पड़ता है। उसके सिर को धड़ से अलग करने की प्रक्रिया नाट्य-नृत्य द्वारा प्रदर्शित की जाती है।...कहानी समाप्त होते-होते पता चलता है कि वह मरा हुआ आदमी कोई शत्रु नहीं, उसका अपना भाई था! इस स्थल पर पूरे अभिनय का सबसे कम रुचिकर भाग सामने आता है—एक आदमी जो आपे में नहीं है, जो भयानक रूप से हाथ-पाव पटकता है, एक मुर्दा जिलाने वाले वैद्य द्वारा फिर से जीवित कर दिया जाता है और उसका आपा भी वापिस आ जाता है।[1]

प्रोफ़ेसर अर्नेस्ट ग्रोस ने भी एक नाटक का वणन किया है जिसमें एक दूसरे प्रकार का विस्मयकारी तत्व प्राप्त होता है; परन्तु इसका कथानक कुछ ऐसा है जो अनेक जातियों की लोक-वार्ताओं में प्राप्त होता है। एक अल्यूत एक चिड़िया के पीछे दौड़ता है और अन्त में उसे तीर से मार गिरा देता है। फिर शिकारी इस पर रोता है। मरी हुई चिड़िया फिर जी उठती है और एक सुन्दर स्त्री बन जाती है। वह स्त्री शिकारी के अंक में आ जाती है। इस उदाहरण में तथा ड्याक वाले उदाहरण में भी, कथानक गढ़ने के सजग प्रयास के तत्व मिलते हैं। यह पता चलना कि मरा हुआ व्यक्ति शत्रु नहीं, भाई था और चिड़िया का रूप बदल कर स्त्री बन जाना—स्पष्टतः ये सब ऐसे क़दम हैं जो युद्ध और शिकारी नृत्य से आगे बढ़े हुए हैं; इनमें भावनात्मक उलझाव और नाटकीय पेचीदगियाँ बढ़ गयी हैं।

धार्मिक उत्सवों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किस तरह यह नाटकीय तत्व अधिक पुष्ट हो जाता है और वह स्थिति आ जाती है जब कि नाटक नृत्य से अधिक

---

१. 'दी नेटिव्ज आव सारावाक ऐण्ड ब्रिटिश नार्थ बोर्नियो,' लेखक हेनरी लिंग राथ (लन्दन, १८९६) से उद्धृत।

महत्वपूर्ण हो जाता है, नाटक में से नृत्य के सारे तत्व लुप्त हो जाते हैं। धीरे-धीरे एक प्रकार का पुरोहितवाद विकसित होता है : साधारण आदमी शिकार और युद्ध को छोड़कर अपने देवता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाता। एक बार जब पुरोहित को मान्यता मिल जाती है और उसकी प्रतिष्ठा हो जाती है तो वह अपनी स्थिति को दृढ़तर बनाने में लग जाता है। उन्हें यह साबित करना पड़ता है कि उनका सम्पर्क देवताओं, भूत-प्रेतों से है; यहां तक कि वे अक्सर देवताओं के निश्चयों को भी बदल दिया करते हैं। धार्मिक कृत्यों का रूप बदल जाता है। हर ऐसा काम अधिकाधिक मात्रा में किया जाता है जिससे रहस्य के तत्व बढ़ जाते हैं। इस प्रकार एक पुरोहित अभिनेताओं का समुदाय उभर कर सामने आता है। इसको नृत्य एवं नाट्य-नृत्य में कुशलता प्राप्त होती है। अन्त में एक नाट्य रचनाओं का समुच्चय, जो बाद के ईसाई रहस्यात्मक नाटकों की ही तरह के होते हैं, तैयार हो जाता है। हाँ, यह सही है कि अभी, विकास के इस स्तर तक पहुंचकर भी, लिखित नाट्य साहित्य का पता नहीं चलता।

पोलीनिशिया में एक अरोई सम्प्रदाय है। आरम्भ में यह एक गुप्त समाज था जिसे कुछ धार्मिक कृत्य करने पड़ते थे। उसे कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। इस सम्प्रदाय के सदस्य पोलीनिशिया प्रायद्वीप की आदिम जातियों के लोगों के सामने जो प्रदर्शन करते हैं उसमें पूजा-संस्कार-सम्बन्धी नृत्य से लेकर नाटक तक की पूरी श्रृंखला का अभिनय किया जाता है। हमें बताया गया है कि पूर्ण रूप से धार्मिक नृत्यों और नाट्य-नृत्यों के उपरान्त लम्बे ऐतिहासिक रेखाचित्र, श्रृंगारपरक नाट्य-नृत्य तथा सुखान्त नाटक भी यहाँ अभिनीत होते हैं। न्यू पोमीरेनिया की डक-डक सोसायटी, जिसका विकास धार्मिक पुरोहितवाद से हुआ है, अपने नाटकों को गाँव-गाँव में प्रदर्शित करती है।

जाहिर है कि मैं यहाँ इतिहास नहीं लिख रहा हूँ : यद्यपि इस अध्याय में ऐतिहासिक रंगमंच का वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ। मैंने आधुनिक आदिवासियों से प्रमाण एकत्र किये हैं। साउथ-सी प्रायद्वीपों, अमेरिका, एलूशियन प्रायद्वीपों, आस्ट्रेलिया, बोर्नियो तथा मध्य अफ्रीका जैसे दूर-दूर के देशों से मैंने प्रमाण और उदाहरण एकत्र किये हैं। नृशास्त्रवेत्ताओं को प्रतीत हुआ है कि इन विभिन्न स्थानों में नाट्य-नृत्य के जो प्रमाण मिले हैं उनसे आधुनिक मानव यह नतीजा निकाल सकता है कि संसार भर में इस प्रकार की प्रक्रिया चलती रही होगी। निश्चय ही यह प्रक्रिया यूनानियों के पहिले की है। और, यूनानियों तथा अन्य लोगों से ही युरोपियन तथा एशियाई रंगमंचों का विकास हुआ। संक्षेप में, आज की अविकसित और असभ्य

जातियों के नृत्य को देखकर हम यह कल्पना कर सकते हैं कि किस प्रकार हमारे पूर्वज जन्म, मृत्यु, विवाह, शिकार, युद्ध, ऋतु-परिवर्तन, देवताओं के लिए बलि आदि के अवसरों पर नृत्य करते थे। जब हमें यह मालूम हो गया कि किस प्रकार पूजा-नृत्य विकसित होकर नाट्य-नृत्य बन गये, तो हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यूनान में छठवीं शताब्दी ई० पू० में जब पश्चिमी नाटक का जन्म हुआ तो उसके पहिले से बहुत बाद तक किस प्रकार सारे संसार में रंगमंच-सम्बन्धी प्रक्रिया चल रही थी। अच्छा होगा कि हमसे इस चित्र के अधिक विवरण में न पड़ें। नृत्य के अनेक रूप उस समय प्रचलित रहे होंगे। और, अक्सर ताल-लय-युक्त अंग-संचालन, गीतात्मकता और वर्णनात्मक तत्वों का सम्मिश्रण हो गया होगा । और, धार्मिक अन्तःप्रेरणा तथा व्यावहारिक उपयोगितामूलक भावना से सौन्दर्य-बोध को अलग भी नहीं किया जा सकता। परन्तु अब यह प्रायः सुनिश्चित-सा हो गया है कि प्रागैतिहासिक मानव के विकास के जिस प्रकार अनेक लम्बे युग रहे हैं, उसी प्रकार प्रागैतिहासिक नृत्य और आदिकालीन नाट्य के विकास के भी लम्बे युग रहे हैं।

जहाँ तक नाट्य का सम्बन्ध है, हमारी जानकारी प्रायः नहीं के बराबर है और उसके जो कुछ चिन्ह मिलते भी हैं उनसे हम बहुत कम निष्कर्ष निकाल सकते हैं। जो हो, नृत्य का एक बाह्य रूप हमें सर्वत्र मिलता है और उसका प्रचलन प्राचीन तथा आधुनिक आदिवासियों में सदैव रहा है। यह रूप ऐतिहासिक नाट्य के आदिकाल से ही मिलता रहा है—यह रूप है नृत्य अथवा नाट्याभिनय के समय चेहरों को लगाने की प्रथा। अनेक बड़े संग्रहालय ऐसे हैं जिनमें संग्रहीत सामग्री में सबसे महत्वपूर्ण ये चेहरे ही हैं। इनको बनाने—संवारने में ही प्रत्येक देश के आदिकालीन कलाकारों ने सबसे अधिक परिश्रम किया और पूरी लगन के साथ इनका विकास किया। यहां इस बात का पता लगाने की आवश्यकता नहीं है कि उन चेहरों का उपभोग केवल चरित्र-चित्रण और नाटकीय प्रभाव को अधिक तीव्र करने में ही था अथवा उसका कोई अन्य उद्देश्य भी था। हम जानते हैं कि एक के बाद एक आदिम जातियों ने अपने नृत्यों एवं नाट्याभिनयों में चेहरों का प्रयोग किया। कभी-कभी केवल भेष बदलना ही चेहरा लगाने का उद्देश्य था। परिचित पशु, परिचित व्यक्ति तथा किसी मृत पुरखे का प्रतिनिधित्व करने के लिए ही इन चेहरों का प्रयोग होता था। परन्तु अधिकतर इन चेहरों का प्रयोग रीत्यानुसरण के लिए होता था। कभी ये किसी देवता के प्रतीक बनकर प्रयुक्त होते थे और कभी स्वयं देवता-स्वरूप मान लिये जाते थे। अक्सर चेहरा बनाने वाले कलाकार भय, दुःख अथवा ईर्ष्या की भावना को व्यक्त करने के लिए विशेष प्रकार के चेहरे बनाया करते थे। कुछ आधुनिक चेहरा बनाने वाले कलाकार अब भी ऐसा करते हैं। अक्सर

यह बताया जाता है कि इन चेहरों का प्रयोग किसी गुप्त संस्था और सम्प्रदाय की सदस्यता के वाह्य-चिन्ह के रूप में किया जाता था। इस कथन को स्वीकार करने के पहिले हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ये संस्थाएँ अभिनेता-पुरोहितों के समुदाय के अतिरिक्त और कुछ न थीं। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि चेहरा लगाने वाला व्यक्ति किसी रहस्यपूर्ण ढंग से अपने ऊपर उस पशु या देवता अथवा पुरखे की आत्मा को बुला लेता था जिसका प्रतिनिधित्व करने वाला चेहरा वह धारण करता था।

चेहरों के बारे में इससे अधिक बात हम फिर करेंगे। यहाँ तो हमें केवल इस बात पर ध्यान देना है कि आदिवासी लोगों में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सहायक तत्व के रूप में इनका प्रचलन कितना अधिक था। साथ ही, यहाँ पर हमारा ध्यान इन चेहरों के वैविध्यपूर्ण, चित्रात्मक, जड़ाऊ सौन्दर्य की ओर भी जाता है। सामान्य रूप से जिन पशुओं के अनुरूप चेहरे बनते थे वे भालू, भैंस, बाज आदि थे। परन्तु ये चेहरे सत्यमेव कलाकृति हुआ करते थे। वे बहुमूल्य होते थे, खूबसूरती के साथ ढले हुए होते थे, उन पर अच्छे ढंग से काम किया जाता था जिससे वे किसी देवता की प्रतिष्ठा के अनुरूप बन सकें। साधारण चेहरे लकड़ी के बनते थे। उन पर अच्छी तरह रँगाई की जाती थी। अक्सर चेहरे कुटे हुए कपड़े, चमड़ा, कौड़ी, क़ीमती धातु, माला के दानों, परों, कार्क आदि से बनाये जाते थे और हल्के भी होते थे जिससे उनको पाहनने में आसानी हो।

एक अत्यन्त लोक-प्रचलित एवं रीति-सम्मत चेहरा, जिसमें एक से अधिक-मुखाकृतियाँ होती थीं।

कुछ ऐसे भी प्राचीन चेहरे मिले हैं जो मनुष्यों की खोपड़ी के अगले हिस्से से बनाये गये थे। भय उत्पन्न करने वाले चेहरे एक विशेष प्रकार के होते हैं। वे अधिक आकर्षक भी

होते हैं। मैंने जिन उदाहरणों को चुना है उनसे इन चेहरों की विविधता पर भी प्रकाश पड़ता है और यह भी पता चलता है कि वे किन-किन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। सबसे कम 'कलापूर्ण' चेहरे वे होते हैं जो सचमुच पशुओं के सिर के बने होते हैं। इनका प्रयोग मण्डन जातियों के 'भैंसा आओ' नृत्य में होता है। पहले के पृष्ठों में हम इनकी चर्चा कर चुके हैं। सबसे अधिक कलापूर्ण और वैविध्यपूर्ण चेहरे वे होते हैं जो उतने ही वायवी, भयानक एवं हास्योत्पादक होते हैं जितने वे यह प्रदर्शित किये गये हैं।

यह सही है कि यूनानी, हिन्दू, जापानी तथा अन्य प्राचीन जातियों के नाटक नृत्य से आरम्भ हुए, परन्तु यह मान लेना अनुचित होगा कि नाटक कभी अनुकृति से

अफ्रीकी और एशियाई चेहरे

उत्पन्न नहीं हुआ, अथवा बिना ताल-लय-युक्त अंग-संचालन की क्रिया की सहायता के उसका आरम्भ नहीं हुआ। ऐसे अनेक अधिकारी विद्वान् हैं जो विश्वास करते हैं कि शिकारी नृत्य जो कि किसी सत्य कथा अथवा वीरतापूर्ण कार्य पर आधारित होता है, अलाव के चारों ओर बैठकर कही गयी और बार-बार दोहरायी गयी कथा से ही प्रसूत है। राबर्ट एडमण्ड जोंस ने इस प्रकार की नाट्य-कथा के विकास का विवरण अत्यन्त सजीव ढंग से और नाटकीय भाव-भंगी की पूर्ण समझ के साथ दिया है। यहाँ मैं उस वर्णन को उद्धृत कर रहा हूँ। इस वर्णन से हम प्रत्यक्ष रूप में यह समझ सकेंगे कि अब तक नृत्य अथवा लोकाचारों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जा चुका है, उसके बावजूद नाट्य-कला का उद्भव स्वतंत्र रूप से कैसे हुआ। इस वर्णन से इस बात की पुष्टि होगी और

सापेक्ष्य रूप से इस बात के महत्व पर भी अधिक प्रकाश पड़ेगा कि किस प्रकार नाट्य कला का मूल, अनुकरण करने, चित्रण करने अथवा किसी वीरतापूर्ण घटना का फिर से वर्णन करने की कला में गड़ा या छिपा हुआ है।

कल्पना कीजिए कि हम लोग प्रस्तर युग में पहुँच गये हैं। यह वह युग है जब कि मनुष्य गुफ़ाओं में रहते हैं। इस युग में बहुत ऊँचे और बड़े हाथी होते हैं। यह आल्तामिरा के भित्ति-चित्रों का युग है। रात हो गयी है। हम सभी लोग एक अलाव के चारों ओर बैठे हुए हैं। ऊक, पाउ, पुंग, ग्लप और जोवी तथा अन्य सभी लोग वहां हैं। अलाव के उस ओर क़बीले नेता के बैठे हुए हैं—वे अत्यधिक तगड़े और बलशाली हैं, ये लोग सबसे अधिक तेज़ दौड़ सकते हैं, सबसे अधिक ताक़त के साथ लड़ सकते हैं और सबसे अधिक समय तक दम साधे रह सकते हैं। आज उन्होंने एक शेर मारा है। इस लोमहर्षक घटना को सुनकर हम सभी उत्तेजित हो उठ हैं। हम सब इसी के बारे में बातें कर रहे हैं! . . .

आग के पास ही शेर की खाल पड़ी हुई है। एकाएक उस क़बीले का नेता खड़ा हो जाता है। 'मैंने शेर को मारा। मैंने ही यह काम किया। मैंने उसका पीछा किया! वह मेरी ओर झपटा। मैंने अपने भाले से उस पर वार किया! वह गिर पड़ा। वह ठंढा हो गया!' वह हमें अपनी बहादुरी की कहानी सुना रहा है! हम सुन रहे हैं! परन्तु उसके धुँधले मस्तिष्क में सहसा एक विचार पैदा होता है। इस कहानी को बताने का इससे अच्छा एक और ढंग है। 'देखो! यह ऐसे हुआ! मैं अभी तुम्हें करके दिखाता हूँ!'

ठीक इसी क्षण नाटक का जन्म हो गया!

नेता कहता जा रहा है—"मेरे चारों ओर एक घेरे में बैठ जाओ। तुम और तुम और तुम सब लोग यहाँ बैठो, ऐसे बैठो कि मैं तुम्हारे पास पहुँच सकूँ और तुम लोगों को छू सकूँ। . . .

"तुम ऊक तुम वहां—वहां जाकर शेर बनकर खड़े हो जाओ। यह शेर का चमड़ा है। तुम इसे ओढ़ लो और शेर बन जाओ। मैं तुम्हें मार डालूँगा और इस प्रकार लोगों को बताऊँगा कि यह घटना कैसे घटी।" ऊक उठता है। वह शेर की खाल को अपने कन्धे पर टाँग लेता है। वह कंधों और घुटनों के बल जमीन पर चलने लगता है। और शेर की तरह गुर्राने लगता है! वह कितना भयानक लग रहा है! निश्चय ही वह सत्यमेव शेर नहीं है। हम यह जानते हैं। सचमुच का शेर तो कब का मर चुका! हमने उसे आज ही मारा है! सचमुच ऊक शेर नहीं है। बिल्कुल नहीं। वह शेर की

तरह मालूम भी नहीं पड़ता, "ऊक, तुम हम लोगों को डराने की कोशिश मत करो! हम लोग तुम्हें जानतें हैं। हम लोग तुमसे डरते नहीं"

और फिर भी, किसी न किसी रहस्यात्मक ढंग से ऊक ही शेर है। अब वह हममें से किसी दूसरे की तरह का नहीं है। यह सही है कि वह ऊक ही है, परन्तु वह शेर भी है।

और अब ये दो व्यक्ति--संसार के सर्व प्रथम अभिनेता हमें दिखाने लगते हैं कि वह शिकार किस प्रकार खेला गया। वे हमें बताते नहीं। वे हमें दिखाते हैं। हमारे लिए वे शिकार का अभिनय करते हैं। शिकारी झाड़ी में छिपा बैठा है। शेर गुर्राता है। शिकारी अपना भाला सँभालता है। शेर उछलता है। उत्तेजना और भय के कारण हम एक साथ मिलकर चीख़ते---चिल्लाने लगते हैं। यही प्रथम समवेत गान है! भाला फेंक दिया जाता है। शेर गिर पड़ता है औ ठंडा हो जाता है!

नाटक समाप्त हो गया।[1]

नक़ल करने अथवा पूर्व क्रिया को फिर से दोहराने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप की अनुकृति की कला का जन्म हुआ। यदि नृत्य और दूसरे सम्मिलित रंगमंच के तत्वों के विकास के पहले इस काल का जन्म हुआ, तब तो हम कह सकते हैं---"यह स्वाभाविक था, ऐसा तो होना ही चाहिए था।" बहरहाल, मनुष्य के स्वभाव और रंगमंच के सम्बन्ध में जितनी भी समझ से यहाँ काम लिया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि अनेक स्थानों पर तथा अनेक युगों में नाटक का जन्म यूनानी रंगमंच के उद्‌भव के पहिले अवश्य हुआ होगा। हम यह भी कह सकते हैं कि यह नाटक अत्यन्त प्रारम्भिक स्थिति में था। इसमें केवल दो पात्र होते थे। इसमें ऐसी कहानी होती थी, जिसमें नाटक के कथानक के आरम्भिक तत्व मिलते हैं। इसे बिना किसी रिहर्सल के प्रस्तुत किया गया था। परन्तु जब अभिनेता अपनी कथा को इस प्रकार अनेक बार दोहराता है, तब उसका एक रूप बन जाता है; तब वह किसी एक शिकार की पुनरावृत्ति न रहकर सभी प्रकार के शिकारों का उत्सव-नाट्य बन जाता है और ज्यों-ज्यों वह जाति सांस्कृतिक दृष्टि से आगे बढ़ती जाती है त्यों-त्यों कथा 'संगीत'-नृत्य का एक समन्वित रंगमंच तैयार हो जाता है।

आदिम लोगों के बीच नाटक के आरंभ का यह सर्वेक्षण समाप्त करते समय मैं

---

१. केलीफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में दिये गये एक भाषण से उद्‌धृत। 'थियेटर आर्ट्स मन्थली', सितम्बर १९२७, में यह इसी रूप में प्रकाशित हुआ था।

यहाँ एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ। वह यह कि इस सम्बन्ध में यहाँ जो बार-बार 'पिछड़े लोग' शब्द का प्रयोग किया जाता है वह मुझे अच्छा नहीं मालूम देता। बीसवीं शताब्दी के मध्य के 'सभ्य' मानव समाज के लिए रंगमंच का जितना महत्व है उससे कहीं अधिक महत्व इन आदिवासी क़बीलों की निगाह में अपने नाटकों का था। आज जो हमारा भौतिक और वैज्ञानिक मानदंड है उसकी दृष्टि से इन आदिवासियों की सभ्यता फूहड़ थी। परन्तु नाटक और धर्म की दृष्टि से वे हमसे कहीं अधिक गहराई से अनुभव करते थे, कहीं अधिक गम्भीरतापूर्वक अपने को अभिव्यक्त करते थे और आज के 'आगे बढ़े हुए' लोगों से कहीं अधिक भावुकता के साथ अपने नाटकों में सप्राणता ले आते थे। उनके नृत्य-नाट्यों में घटना-सम्बन्धी विविधता नहीं होती थी परन्तु जब वे अभिनय करने लगते थे तो उनके कला-कौशल में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आती थी।

उनके नृत्य घंटों और कभी-कभी कई दिनों तक लगातार चलते थे। उनके पग और उनकी मुद्राएँ लगातार बदलती रहती थीं। एक भी ग़लत पग उस जाति के विरुद्ध अपराध समझा जाता था। और यह माना जाता था कि ऐसा करने से देवता रुष्ट हो जाते हैं। आज जो आदिम जातियां हैं उनमें अक्सर ऐसा होता है कि जरा सी गलती पर पूरा का पूरा नृत्य रोक दिया जाता है और सम्पूर्ण उत्सव को फिर से दुहराना पड़ता है। मावरियों में अगर एक शब्द भी भूल गया अथवा ग़लत उच्चारण हुआ तो यह विश्वास किया जाता है कि नर्तक अथवा अभिनेता की मृत्यु अवश्य हो जायगी। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब ऐसी ग़लती करने वाले अभिनेता को मृत्यु-दंड दिया जाता है (हमारी रंगशालाओं और नाट्य गृहों के दरवाज़े पर यदि यह सूचना लिखकर टाँग दी जाय तो बहुत लाभ होगा)। ऐसा नहीं है कि केवल किसी एक व्यक्ति के नृत्य में अथवा किसी छोटी टोली के नृत्य में ही शुद्धता का इतना अधिक ध्यान रखा जाता हो। आस्ट्रेलिया में अनेक ऐसी आदिम जातियाँ है जो अक्सर मिलकर एक साथ नृत्य करती हैं। एक बार एक सामूहिक नृत्य में चार सौ नर्तकों की गणना की गई थी और सभी सहमत हैं कि किसी भी क़दम में किसी भी प्रकार की ग़लती नहीं हुई थी। इन नर्तकों का एक नेता था जो नृत्य का निर्देशन करता था। यहाँ से मिले-जुले रंगमंच की दूरी तो एक क़दम की ही रह जाती है।

आदिवासियों के सम्बन्ध में ज्यों-ज्यों हमारी जानकारी बढ़ती जाती है त्यों-त्यों हमारी आँखों के सामने एक ऐसा ऐतिहासिक मानव उभरता आता है जो पहिले से ही किसी हद तक सुसंस्कृत और सभ्य है। जब वह हमारे सामने उपस्थित होता है तो वह अपने साथ अपना नृत्य भी लेकर आता है। प्राचीन जातियों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी इतनी शृंखलाबद्ध नहीं है; इसलिए यूनानियों के पहिले केवल दो प्राचीन जातियों

के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए हम ठहर सकते हैं। हमें जानना है कि मिस्रियों के प्रसिद्ध धार्मिक लोकाचारों की नाट्यमूलक विशेषताएँ क्या थीं और हिब्रू साहित्य और उनके जीवन में क्या क्या नाटकीय तत्व थे। यूनानी सभ्यता के पहिले की सभ्यताओं में रंगमंच की क्या स्थिति थी, इसके बारे में हम प्रायः बिल्कुल नहीं जानते। प्राचीन मिस्री नृत्य के विभिन्न रूपों के बारे में भी हम बहुत कम जानते हैं। उनके सम्बन्ध में हम केवल इतना जानते हैं कि उनके नृत्य थे और व्यापक रूप में प्रचलित थे। परन्तु तत्कालीन धार्मिक नाट्य के एक रूप का पता चलता है; साथ ही उत्सव-सम्बन्धी प्रदर्शनों के कुछ प्रकार भी मिलते हैं।

ओसिरिस मिस्र के मुख्य देवता थे। वह एक पौराणिक शासक थे और एक भावुकतापूर्ण नाटक "पैशन प्ले" के प्रमुख पात्र थे। आज इस बीसवीं शताब्दी में भी इस प्रकार के नाटक अभिनीत होते हैं। लगभग दो हज़ार ईसा पूर्व की कुछ ऐसी सामग्री मिली है जिसमें तत्कालीन उत्सव और नाटक की रूपरेखा मिलती है। उसका उद्देश्य ठीक वही था जो कि प्रसिद्ध ओबर-अमरगो और आज के टायरोलियन करुण नाटकों का होता है अथवा हुसैन से सम्बन्धित फ़ारसी करुण नाटक का है। ये सभी नाटक किसी न किसी पूज्य पुरुष अथवा देवता की यादगार को उनके भक्तों के हृदय में सजीव और ताज़ा रखते हैं। मिस्र देश के इस नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि यह है—ओसिरिस ने बहुत दिनों तक न्याय और बुद्धिमत्ता के साथ शासन किया। बाद में धोखे से उनकी हत्या कर दी गयी। और उनके शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके बहुत दूर-दूर फेंक दिया गया। परन्तु उनकी पत्नी आइसिस और उनके बेटे ने उनकी हत्या का बदला लिया; उनके शरीर के टुकड़ों को एकत्र करने के बाद राज्य-सिंहासन वापिस ले लिया, और ओसिरिस की पूजा करने वालों का एक सम्प्रदाय स्थापित किया। इस नाटक में ओसिरिस की यातनाओं का वर्णन किया जाता है और इस बात पर बल दिया जाता है कि उनका अवतार फिर से होगा। यह नाटक प्रति वर्ष खेला जाता था।

जो सामग्री मिली है उसका सम्बन्ध केवल अबिदोस में होने वाले उत्सव से है। इस प्रकार के नाटक प्रति वर्ष बूसिरिस, हेलियोपोलिस तथा अन्य स्थानों पर खेले जाते थे। रंगमंच अथवा वातावरण का बहुत कम वर्णन हमें मिलता है। घटनाएँ गतिशील थीं, स्थान-स्थान पर होनेवाली घटनाओं का वर्णन प्राप्त है। इन घटनाओं में भिन्नता बहुत होती था। कहीं मात्र अनुकरणात्मक नाटक होता था, कहीं चलते हुए जुलूस में अभिनय होता था और कहीं झूठे युद्ध भी दिखाये जाते थे (यहाँ नाटक व्यावहारिक जीवन से बहुत घनिष्ट रूप में सम्बद्ध है। इन झूठे युद्धों में जो लोग बन्दी बना लिये जाते थे उनके सम्बन्ध में यह माना जाता था कि जब नर-बलि का उत्सव हुआ था तो उसमें उन लोगों

ने बहुत अवांछित भूमिकाएं अदा की थीं)।

इससे जिस बात की जानकारी प्राप्त होती है वह यह है कि सम्राट् उसर्तसेन तृतीय ने ई–ख़र–नफ़र्त नामक एक आदमी को एक नया मक़बरा बनवाने के लिए अबिदोस भेजा। उस आदमी ने देवताओं की पूजा से सम्बन्धित उत्सवों का संचालन किया और उस अवसर पर जो नाटक खेला गया उसके लिए कुछ सामग्री भी बनायी, जैसे उसने उस पवित्र नाव को भी बनाया जिस पर बैठकर ओसिरिस अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए गये थे। इस बात का उल्लेख एक शिलालेख में[1] मिलता है, जो इस समय बर्लिन संग्रहालय में रखा हुआ है। इस शिलालेख के द्वितीय खण्ड से हमको पता चलता है कि उस वर्ष स्वयं ई–ख़र–नफ़र्त ने नाटक में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ की थीं। उल्लेख इस प्रकार है—

"मैंने अप-उवत के आगमन के उस अवसर का अभिनय किया था जब कि वह अपने पिता की रक्षा के लिए आगे बढ़ा. . . मैंने नेश्मेत नाव से शत्रु को भगा दिया। मैंने ओसिरिस के शत्रुओं को हरा दिया. . . मैंने महान् शुभागमन का अभिनय किया, मैं देवताओं के पीछे पीछे चला. . . मैंने देवता की नाव को चलाया. . . ।" इसके बाद फिर वर्णन आता है 'मैंने उनको (ओसिरिस) नाव में चलने के लिए तैयार किया। यह नाव उनके सौन्दर्य से उद्भासित थी। पूर्व के निवासियों के हृदयों को मैंने उल्लास से भर दिया। पश्चिम के निवासियों के हृदयों को भी मैंने उत्फुल्ल कर दिया। जब उन्होंने देखा कि यह सौन्दर्य-मण्डित नौका अबिदोस में पहुँच गयी है और अबिदोस के प्रभु ओसिरिस खेन्ती-अमिन्ती अपने राजमहल पहुँच गये हैं तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही।" इस वर्णन से हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय जिस प्रकार का नाटक होता था उसका रूप कुछ-कुछ निम्नांकित प्रकार का था। (यहाँ मैं मिस्रविद्या के पण्डितों द्वारा एकत्र प्रमाणों के आधार पर ही यह वर्णन प्रस्तुत कर रहा हूँ।)

पुरोहितों, पुजारियों, भक्तों, चाकरों और सैनिकों का एक सजा-बजा रंग-बिरंगा विशाल जुलूस राजमहल से बाहर निकल रहा है जिसके आगे-आगे हमारा

---

१. इस शिला लेख को ई–ख़र–नफ़र्त का शिलालेख कहा जाता है। इस पर बारहवीं पीढ़ी अर्थात् दो हज़ार वर्ष ईसा पूर्व की तिथि पड़ी हुई है। मैंने यहाँ जो उद्धरण लिया है वह इ० ए० वालिस बज की पुस्तक 'ओसिरिस ऐण्ड दी इजिप्शियन रिसरेक्शन' (लंडन और न्यूयार्क १९११) के श्राइन्स, 'मिरेकिल प्ले ऐण्ड मिस्टरीज़' नामक अध्याय से लिया गया है।

अभिनेता (ई—ख़र—नफ़र्त) अप-उवत का अभिनय करता हुआ चल रहा है। जुलूस में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु ओसिरिस की वह पवित्र नाव है जिसकी रक्षा सेवकों का एक दल कर रहा है। चलते-चलते वह स्थल आता है जहाँ पर ओसिरिस के शत्रुओं की भूमिका करने वाले कलाकार नाव पर हमला कर देते हैं। अप-उवत की सेनाएँ शत्रुओं को मार भगाती हैं और जलूस मन्दिर की ओर बढ़ चलता है। यहाँ पर जब दिखाया जाता है कि ओसिरिस का शुभागमन मन्दिर से हो रहा है तो एक शुद्ध नाटकीय दृश्य उपस्थित होता है। अन्त में दिखाया जाता है कि ओसिरिस का शव क़ब्र की ओर ले जाया जा रहा है और उसके साथ-साथ तत्सम्बन्धी कृत्य भी किये जा रहे हैं और सामूहिक रूप से सब लोग रो-पीट रहे हैं। जुलूस के रास्ते में फिर युद्ध होता है और जैसा कि बाद के यूनानी इतिहासकारों ने बताया है इन युद्धों में अनेक सैनिक अभिनेता चोट लगने के कारण मर भी जाते थे। इसके बाद दर्शकों के लिए थोड़ी देर का अवकाश होता है। इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि लोग देवता का पदानुसरण करते हैं। अभिनेता तीन दिन तक ओसिरिस के खोये हुए शव को ढूँढ़ते हैं (याद रखिए यह भक्तिपरक नाम है। इन तीन दिनों में प्रतिदिन एक बार बनावटी युद्ध होता है)।

जब शव मिल जाता है तो जुलूस फिर से बन जाता है; शव को एक ऊँचे और सजे-बजे मंच पर रख दिया जाता है और सारे लोग क़ब्र की ओर चलने लगते हैं। इस प्रकार ये ओसिरिस के मन्दिर से डेढ़ मील दूर तक चलते हैं। प्रातः होते-होते एक बड़ा युद्ध फिर होता है और अप-उवत की सेनाएँ अन्तिम रूप से निर्णयात्मक विजय प्राप्त करती हैं। उनकी विजय इस बात का प्रतीक है कि ओसिरिस के हत्यारों की हार हो गयी और ओसिरिस की मृत्यु का बदला लेने वालों ने सदैव के लिए शत्रुओं को मार भगाया। जुलूस जिस राजमहल से चला था वहीं फिर वापस आ जाता है। यहाँ वह अन्तिम गौरवशाली दृश्य उपस्थित होता है जिसमें नेश्मत नौका में ओसिरिस एक जीवित भगवान् के रूप में अवतरित होते हैं। और उनके इस पुनरागमन से जनता आनन्दोल्लसित हो जाती है।

स्वभावतः ई—ख़र-नफ़र्त ने उन्हीं स्थलों का वर्णन किया है जिसमें उसने स्वयं भूमिका की थी। उस समय यह तो मान ही लिया जा सकता था कि नाटक के प्रत्येक विवरण से सभी लोग परिचित रहे होंगे। और हमें नाटक के सम्बन्ध में चार हज़ार वर्ष के पुरानी बात का भी यत्‌किंचित प्रमाण मिल पाता है। इस शिलालेख से 'नाटक' के सम्बन्ध में संसार की सबसे प्राचीन सूचना भी हमें मिल जाती है।

धार्मिक जुलूसों में प्रस्तुत इन नाटकों में पुरोहित लोग अभिनय किया करते थे। ये नाटक राजाओं के राज्यारोहण-सम्बन्धी उत्सवों में खेले जाते थे। परन्तु इन्हें हम

अधिकारिक रूप से सचमुच नाटक नहीं कह सकते—यद्यपि मकबरों की दीवारों पर लिखे अभिलेखों में कथोपकथन और अभिनय के कुछ प्रमाण अवश्य मिलते हैं। ४४९ ईसा पूर्व में हेरोडोटस ने दो बचे हुए मिस्री करुण नाटकों की चर्चा की है और बताया है कि यूनान में जो गुप्त सम्प्रदाय थे उन पर इन नाटकों का बहुत प्रभाव था।

बाइबिल में नृत्य-सम्बन्धी अनेक वर्णन मिलते हैं जिनके अनुसार फ़राओं के डूब जाने के बाद मरियम और अन्य हेब्रू स्त्रियाँ तानपूरा लेकर नृत्य करती हुई जलूस में जाती हैं और इन नृत्यों में उसके नाम का गुण-गान करके पूर्वजों का उत्साह बढ़ाती हैं। यह वर्णन भी मिलता है कि हेरड के सामने सलोम ने किस प्रकार नृत्य किया। यह नृत्य बार-बार दोहराया जाता है और कभी-कभी उसका विकृत रूप भी सामने आता है। परन्तु इस संक्षिप्त वर्णन के आधार पर नृत्य के किसी विशेष रूप का चित्र खींच देना ख़तरनाक होगा। यह तो निश्चित ही है कि बाद के ईसाई धार्मिक उत्सवों में नृत्य का प्रचलन था और जब अ–हिब्रू तत्व बढ़ने लगे तो नृत्यों का प्रभाव भी बढ़ने लगा। यहाँ तक कि ७४४ ई० में यह आज्ञा प्रकाशित करनी पड़ी कि गिरजाघरों में और उसके आस-पास जहाँ कहीं भी नृत्यशालाएँ हों वे बन्द कर दी जांय। १२वीं शताब्दी में फिर से इसी प्रकार की निषेधाज्ञा निकालनी पड़ी थी।

केथेड्रल आव सेवाइल के पूजामंच के सामने अब भी लड़कों का एक दल विशेष प्रकार के कपड़े पहनकर नाचता है। इस दल को सीसेज़ कहते हैं क्योंकि इसमें आरम्भ में छः लड़के हुआ करते थे। इस प्रकार के नृत्य अनेक गिरजाघरों में प्रति वर्ष होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि शताब्दियों पहले एक बार पोप ने निश्चय कर लिया कि वह गिरजाघरों में होनेवाले सभी नृत्यों पर प्रतिबन्ध लगा देंगे। उस समय पोप से प्रार्थना की गयी थी कि वह सीसेज़ दल पर प्रतिबन्ध न लगावें। तब पोप ने आज्ञा दी कि वे तब तक नृत्य कर सकते हैं जब तक नर्तकों वाले उनके कपड़े फट न जांय। इसके बाद से अधिकारी इन नर्तकों को जब भी नये कपड़े देते थे तो उनमें पुराने कपड़ों की चिन्दी अवश्य लगा देते थे। इस प्रकार वे पोप की आज्ञा का पालन कर लेते थे। आज भी उनको पोप की कृपा प्राप्त है। कैथोलिक देशों में इस प्रकार के ईसाई धार्मिक नृत्य के उदाहरण अब भी मिल सकते हैं।

परन्तु यदि हम बाइबिल के साहित्यिक नाटकीय अंशों का अध्ययन करें तो अधिक लाभ होगा। बुक आव जाब और सांग आव सालोमन तो बिलकुल कथोपकथन की शैली में लिखे गये हैं। इन दोनों को हम काव्यमय नाटक न कहकर नाट्य में लम्बी कविता कह सकते हैं क्योंकि हमें यह पता नहीं है कि इनको मंच पर कभी अभिनीत भी किया गया था, या नहीं। इसे हम काव्य-सम्बन्धी विशेषता के आधार पर ग्रहण

करें, मंच पर प्रस्तुत होने वाले साहित्य के रूप में नहीं (हमें यह न भूलना चाहिए कि आधुनिक युग में विभिन्न अवसरों पर प्रस्तुत करने के लिए इन दोनों में यथा-आवश्यकता परिवर्तन-संशोधन कर लिया जाता है)।

'सांग आव सांग्स' नाटक के रूप में एक सुन्दर चित्रात्मक काव्य है। इसमें जिस प्रकार की क्रिया है वह चलते हुए जुलूस में तो संभव हो सकती है, रंगमंच पर नहीं। हो सकता है कि इसमें कई मंत्रों अथवा गीतों को एक साथ मिला कर प्राचीन पूजा-विधियों और जुलूसों में होने वाले नृत्य-नाट्यों से इसका तारतम्य स्थापित किया गया हो। या, यह भी हो सकता है कि केवल सस्वर पाठ के लिए ही इसकी रचना इस प्रकार की गयी हो, समवेत रूप से बोलने अथवा अभिनय करने के लिए नहीं। काव्यमय कथोपकथन की दृष्टि से इसका कलात्मक मूल्य इतना अधिक है कि बिना इस पर विचार किये हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसका सर्व-सम्मति से स्वीकृत अंग्रेज़ी अनुवाद समस्त नाट्य साहित्य के सर्वोत्कृष्ट अंशों में से एक माना जाता है।

प्रोफेसर रिचर्ड जी० मोल्टन ने 'माडर्न रीडर्स बाइबिल' में विभिन्न अध्यायों को फिर उसी प्रकार व्यवस्थित कर दिया है, जिस प्रकार वे अपने मूल रूप में थे। इस सम्बन्ध में कुछ वाद-विवाद अब भी चल रहा है। इसलिए नीचे हम ऐसी पंक्तियों को उद्धृत कर रहे हैं जिनका कथोपकथन का ही रूप रहा है। इसमें 'बेटियों के बीच' और 'बेटों के बीच' वाक्यों से अन्तिम रूप में प्रमाणित हो जाता है कि इसमें बोलने वाले दो व्यक्ति थे—

वधू

मैं तो शेरों की हूँ गुलाब
मैं लिली घाटियों की हूँ।

वर

जैसे काँटों के बीच लिली
बेटियों-बीच मेरी प्रेयसि!

वधू

जैसे जंगल के पेड़ों में है सेब—विटप
वैसे बेटों के बीच हमारा है प्रियतम!

वह पूरा दृश्य, जिसमें यह वाक्यांश आता है, काव्यात्मक कथोपकथन का उत्कृष्टतम नमूना है। परन्तु इससे भी अधिक स्थायी मूल्यवाले गीतात्मक भावुकतापूर्ण वार्तालाप का एक प्रमाण यह है—

वधू

आह मेरे प्रियतम का स्वर!
देखो, वह इस ओर आ रहा––
कूद-फांद पर्वत शिखरों से,
गिरिमालाओं पर पग धरता,
मेरा प्रियतम हिरण सदृश है,
या है वह मृगछौना जैसा,
देखो वह दीवार-पार से
खड़े-खड़े ही झाँक रहा है वातायन में
जंगलों के उस पार दिखायी वह पड़ता है।
मेरा प्रियतम मुझसे बोला और कहा यह––
"उठो प्रियतमे, मेरी रानी, परम सुन्दरी,
आओ, चली इधर आओ तुम,

"देखो, शरद् व्यतीत हो गया,
वर्षा ऋतु का अन्त हो गया, चली गयी वह,
धरती पर अब फूल खिल रहे,
चिड़ियों के चहचह की घड़ियाँ पुनः आ गयीं,
और हमारी धरती पर स्वर गूँज रहे हैं
मोहक सुन्दर वन-पंछी के।
उठो प्रियतमे, मेरी रानी, परम सुन्दरी,
आओ, इधर चली आओ तुम।"

इस प्रकार के उत्कृष्ट गीतात्मक और काव्यात्मक कथोपकथन को अन्यत्र ढूँढ़ लेना आसान नहीं है। यह सही है कि नाटक की दृष्टि से इसमें वैसे ही धीरे-धीरे प्रगति होती है जैसे कि प्राक्-ऐशीलियन पूजा-गीतों में होती है, फिर भी इसमें विचार-क्रिया

की एक अटूट श्रृंखला है। इसमें एक ऐसी गति है जिसकी अन्तिम परिणति का अनुमान पहिले से ही हो जाता है। इस अनाम हिब्रू लेखक की अन्य कृतियों से शायद प्राचीन दुनिया परिचित थी। जिस नाट्य साहित्य का यह अंश आज उपलब्ध है उस नाट्य को प्रस्तुत करने के लिए यदि उस समय रंगमंच भी था तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पाँचवीं शताब्दी के यूनान अथवा इलिजाबेथ के समय के इंगलैण्ड के रंगमंच की तुलना में यह रंगमंच अधिक विकसित था। बाइबिल में विश्व-साहित्य के जो उत्कृष्टतम नमूने हैं उनमें से जाव को ही सबसे पहिले चुना जाता है। सालमन सांग्स से कहीं अधिक नाट्य-मूलक बनावट जाव की है। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार की प्रत्यक्ष नाटकीय सक्रियता हम आज चाहते हैं जाब में वैसी सक्रियता नहीं मिलती; उसमें अकेले प्रधान अभिनेता ही अनेक घटनाओं से होकर गुज़रता है। परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उसमें आध्यात्मिक विचार और भावना की ज़ोरदार सक्रियता मिलती है।

छोटी सी व्याख्यामूलक भूमिका के बाद जाब के स्वगत कथन से यह नाटक शुरू होता है (हम चाहें तो कह सकते हैं, पर्दा ऊपर उठता है)।

मिट जाये वह दिवस कि मैंने जन्म लिया जब,
और मिटे वह रात कि जिसके मुँह से निकला--
बेटा आया।
अंधियारी छाये उस दिन पर,
ईश्वर उसकी करे न रक्षा आसमान से
अब उस पर प्रकाश की किरणें कभी न बिखरें
तमस, मौत की छाया दोनों उसे निगल लें।
बन्द कि उसने
गर्भ-द्वार मेरी माता का नहीं किया था,
क्योंकि हटायी पीड़ा उसने नहीं हमारी इन आँखों से।

इस भूमिका के बाद कथोपकथन के पाँच स्पष्ट स्थल आते हैं। अन्त में जाव प्रभु से निवेदन करता है—

मैंने कानों से सुनी तुम्हारी महिमा,
पर अब अपनी आँखों से तुमको देखा,

हो गयी घृणा अपने से मुझको प्रभुवर,
मैं पछताता हूँ धूल और मिट्टी में मिलकर।

जाब की आत्मा का नाटक पूरा हो गया। नाटक का सुखमय अंत करने के लिए बाइबिल के रचयिता ने उपसंहार के रूप में कुछ वाक्य जोड़ दिये। इस पूरी रचना में, जिसका अनुवाद हमें प्राप्त है, उसने अनन्त काल के लिए सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक नाटक रचकर हमारे लिए छोड़ दिया।

फिर भी मुझे ये सुन्दर रचनाएँ चाहे जितनी अच्छी लगें, लगता है कि किसी बात की कमी रह गयी है जिसके कारण मुझे पूरा संतोष नहीं हो पाता। ऐसा इसलिए कहता हूँ कि इन सब प्रमाणों के बावजूद मैं रंगशाला और नाटक, रंगमंच और कलाकार और उनकी गतिविधि के सम्बन्ध में कुछ नहीं पाता। इस अध्याय में जो कुछ पाठ्य-सामग्री, करुण नाट्य की रूपरेखा और आदिवासियों की नृत्य-सम्बन्धी सूचना मैंने एकत्र की है इनके बावजूद इस अकाट्य तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि जिस प्रथम पूर्ण रंगशाला को हम जानते हैं, जिस प्रथम अवशिष्ट नाटक, सुनिर्मित रंगशाला और रंगमंच तथा अभिनय प्रणाली का पता हमें है वह तो यूनानी ही है। हमने यह पता लगा लिया कि लगभग इस समय से कैसे विच्छिन्न रूप में रंगशाला का आरंभ हुआ परन्तु सजीव मानवीय संस्था के रूप में अभी इसका सम्यक् रूप से दर्शन पाना बाक़ी है।

अध्याय—३

दुःखान्त नाटक——महान् यूनानी

ईसा की छठवीं और पाँचवीं शताब्दी पूर्व यूनान में ऐसे सुन्दर जीवन और कलाओं का विकास हुआ था जैसा इसके पहिले कभी नहीं हुआ था। इसी युग में दुःखान्त नाटकों का भी जन्म हुआ। पाश्चात्य संसार में इन पिछली चौबीस शताब्दियों में, यूनानी सभ्यता की प्रतिस्पर्धा करने वाली किसी सभ्यता का जन्म नहीं हुआ। हेलेनवासियों ने उत्कर्ष का जो मानदण्ड निर्मित किया और जिसे सबसे अधिक कमनीय और सबसे अधिक सुन्दर माना गया वहां तक कोई भी राज्य नहीं पहुँच सका। ऐसी जातियां और ऐसे देश, यहां तक कि ऐसे नगर भी हुए हैं जिनके यहां रचना के ऐसे लघु क्षण आये हैं जब उन्होंने अपनी विजय के अभियान को आगे बढ़ाया और प्रगति के मार्ग की पार्थिव बाधाओं पर विजय प्राप्त की। परन्तु यदि कोई राष्ट्र अत्यन्त गर्व के साथ कोई दावा कर सकता है तो यही कि उसने प्राचीन यूनानियों का अनुगमन मात्र किया है। संक्षेप में, सारा संसार यह जानता है कि एक बहुत लम्बे अरसे तक यूनानवासियों ने, संसार की किसी भी अन्य जाति से अधिक अच्छी तरह इस समस्या को हल किया कि किस प्रकार जीवन को अधिक अच्छी तरह, अधिक सुन्दरतापूर्वक जिया जा सकता है।

हिम्मत और दिलेरी के साथ युद्ध में भाग लेना और विजय प्राप्त करना, बल-वीर्य का संचय करना और शरीर को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाना, जिससे अपनी सभ्यता की रक्षा की जा सके और उसे विस्तार भी दिया जा सके——यह सब कुछ तो उन्होंने किया ही, परन्तु इससे भी अधिक प्रगति उन्होंने कलात्मक क्षेत्र में और बौद्धिक समृद्धि के क्षेत्र में की। यहाँ उन्हें अत्यधिक सफलता मिली। जो सबसे बड़ा काम उन्होंने किया वह यह है कि उन्होंने कला और जीवन में एक सन्तुलन स्थापित किया; दर्शन और जीवन एक दूसरे के पूरक और समर्थक बन गये। उन्होंने अपनी इमारतों को सुन्दर बनाया, उन्हें सुन्दरता-पूर्वक सजाना सीखा, अपने आनन्द में भी उन्होंने

सुबुद्धि से काम लिया; उन्होंने अपनी भावनाओं, मस्तिष्क और सौन्दर्यमूलक वृत्तियों का संस्कार इस प्रकार किया कि वे उनका आनन्द तो ले सकें परन्तु उनके कारण मन भरजाने से सर-दर्द होने या ऊब जाने की स्थिति न पैदा हो जाय। आज भी उनकी स्थापत्य-कला, उनकी काव्य-कला, उनकी मूर्ति-कला, उनकी नाट्य-कला सभी हमारे सामने ऐसी महिमामयी होकर प्रस्तुत होती हैं कि हम उन्हें 'द्वितीयोनास्ति' कह उठते हैं। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में जब कि कुछ संशय एवं संकोच के साथ पुनर्मूल्यांकन की प्रणाली चल रही थी, जब कि आलोचक प्राचीन मानवीय एवं जातीय मूर्तियों को खण्डित करने में ही आनन्द का अनुभव कर रहे थे, उस युग में यूनान को नीचे गिराने की कोई कोशिश नहीं की गयी। जो लोग कला में आधुनिकतावाद के समर्थक हैं उन्होंने भी नवीन युग में यूनानियों को उनका समुचित स्थान दिया। केवल उन्होंने बाद की कमज़ोर यूनानी कलाओं के स्थान पर प्राचीन अधिक सशक्त कलाओं पर बल देकर सन्तोष कर लिया।

यूनानी रंगमंच का अध्ययन करते समय हमें यूनानी जीवन में मौजूद धार्मिक तत्व पर विचार करना ही होगा। यह एक ऐसा तत्व है जो आज के जीवन में, अपेक्षाकृत बहुत कम हो गया है। यूनान का नाटक धार्मिक भावना एवं धार्मिक कर्मकाण्ड से पूर्णतया सम्बद्ध था। वह एक ऐसा धर्म था जिसको लोग अपने जीवन में स्वीकार करते थे, जिसको जीते थे, जिससे प्रेरणा ग्रहण करते थे। परन्तु यह धर्म जीवन का नियामक नहीं था। यह धर्म यूनानी जीवन का आधार था।[1] यह ऐसा धर्म नहीं था जिसे

---

१. १९५१ में जब कि मैं यह पादटिप्पणी लिख रहा हूँ, मुझे यूनानियों के सम्बन्ध में लिखे गये आरम्भिक पैराग्राफों के अपने वक्तव्यों की अतिशयोक्तियों से कम सन्तोष हो रहा है। क्लासिकल (शास्त्रीय) शिक्षा के गौरवशाली समय हम जितने हेलनवादी थे अब उतने नहीं रह गये हैं। फ़ारसियों, चीनियों, मध्ययुगीन युरोप के क्रिश्चियनों और एलिज़ाबेथकालीन अंग्रेजों आदि की सफलता के बारे में हम अब बहुत बढ़-चढ़कर बातें नहीं करते। निश्चय ही, मैंने उचित ही इस बात पर बल दिया कि यूनानी रंगमंच को अपनी सर्वाधिक गौरवशाली विशेषताएँ एक सजीव धर्म से प्राप्त हुईं। मगर मुझे उन रहस्यवादी धर्मों में, जिनकी अभिव्यक्ति यूनानी दुःखान्त नाटकों में मिलती है तथा उस प्रकृतिवादी ओलम्पियन धर्म में जिसके प्रति साधारण जनता आस्थावान् थी, भेद करना चाहिए था। इस दूसरी बात के कारण ही अन्ततोगत्वा यूनानी सभ्यता, जो ईश्वर-प्रदत्त कम और मानवकृत अधिक थी और जिसके फलस्वरूप

ज़बरदस्ती स्वीकार करना ज़रूरी था, बल्कि यह एक ऐसा धर्म था जिसका रूप समारोह और उत्सव का था। यह मनुष्य को सृजन करने और स्वयं अपने को परमात्मा का प्रतिरूप बनाने की छूट देता था। कलाकार का अपनी सृजन-शक्ति का उपयोग करके देवताओं की सेवा में स्थापत्य और मूर्ति का निर्माण करना, नाट्योत्सव करना, नृत्य करना और पूर्ण रंगमंच का निर्माण करना, खेल-कूद करना और जुलूस निकालना ——इन सब का विकास जनमानस की आध्यात्मिक प्रेरणा और भक्तिमूलक स्रोतों से हुआ। आदि से लेकर दुःखान्त नाटकों के युग तक नाटक धर्म से सम्बद्ध रहा, पवित्र उत्सव का एक अंग रहा।

अंगूर की फ़सल तैयार होने पर आनन्द मनाने वाले यूनानी लोगों की टोलियां उत्सव करती थीं। जुलूस बनाकर ये टोलियां नगर की सड़कों और देहात के कुंजों तक गाती-नाचती और अभिनय करती जाती थीं। ये शराब पीती थीं; अंगूर की नयी फ़सल तैयार होने के कारण यह उचित ही था। और वे युग के देवता डायोनिशस के गीत उनके इर्द-गिर्द गाती थीं। वे उनके लिए बलि देती थीं, उनके प्रति पूजा और श्रद्धा की भावना प्रदर्शित करती थीं। परन्तु जैसे ही डायोनिशस की आत्मा उनमें प्रविष्ट होती थी वे स्वयं देवता बन जाते थे। मनुष्य-निर्मित आनन्दोत्सव का उत्साह, कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलना, शोर करना, गाना और नाचना——इन सब के कारण एक दैविक आह्लाद का वातावरण बन जाता था। मनुष्य के अन्तर में विराजमान देवता सजीव, दीप्त, सामाजिक और प्रेरणाप्रद हो जाता था।

इनके देवी-देवताओं में भी साधारण मानवों की कमज़ोरियां, विफलताएं इत्यादि पायी जाती हैं, जनता को संरक्षण न प्रदान कर सकीं और उसका नाश हो गया। दुःखान्त रंगशाला उस दूसरी बात के अधिक निकट थी, पतनशील धर्म के अधिक समीप थी जिसे इल्यूशीनियन रहस्यों में ही अपनी गहनतम महत्ता और उच्चतम आस्था की उपलब्धि हुई। यहीं पर दर्शन ने मनुष्य को ईश्वरी सत्ता के प्रति सजग किया और यहीं सामुदायिक आह्लाद ने नाट्योत्सव को जन्म दिया। ओरफिक, डायोनीशियन, इल्यूशीनियन सम्प्रदायों की पूजा-विधियों और पायथागोरियन बिरादरी में भी मिस्री रहस्यवादी "नाटकों" के तत्व आ गये थे। साथ ही उनमें एशियाई स्रोतों से भी कुछ तत्व आकर समाविष्ट हो गये थे। एथेन्स के लोगों के प्रारम्भिक नाटकों में ये तत्व पहुँच गये थे। समवेत गान, जो बाद के यूनानी नाटकों की विशेषता बन गयी थी, इन्हीं सम्प्रदायों का अवशेष है।

ऐसे अवसर पर सन्तोष केवल कलाओं—नृत्य, कविता और संगीत—से ही हो सकता था, ऐसा नहीं है कि उन प्राचीन दिनों में केवल थोड़े से लोग काव्य-पाठ करते थे, या नृत्य करते थे, या सुन्दर गीत गाते थे और बहुसंख्यक लोग श्रद्धापूर्वक चुपचाप सुनते थे। जहाँ प्रत्येक युवक और युवती ने किसी न किसी हद तक देवता का स्वरूप ग्रहण कर लिया हो, वहाँ सभी का उत्सव में सम्मिलित होना स्वाभाविक था—यद्यपि

यूनानी कोमस के अभिनेता (लियोनेल डी० बारनेट द्वारा 'दी ग्रीक ड्रामा' में उद्धृत एक फूलदान पर बने चित्र से)।

यह सही है कि उनमें से जो देवताओं के अधिक अनुरूप हो जाते थे वे गीतों को आरम्भ करते थे अथवा नृत्य की विशिष्ट टोली का नेतृत्व करते थे। फिर भी सारा आयोजन मिला-जुला होता था, बहुत सजीव होता था,और उसका अन्त हुड़दंग में होता था। ऐसा इसलिए कि डायोनिशस नाम का देवता, जो खेतों, खलिहानों और लाल-सुरा का अधिष्ठाता था और जो प्रत्येक पुरुष और स्त्री की आत्मा में प्रविष्ट होने की शक्ति रखता था, सबसे पहिले स्वच्छन्द तत्वों का देवता था। वह एक चमत्कारपूर्ण उर्वरता का अधिष्ठाता था, और जिस प्रकार के आह्लाद का वह सृजन करता था उसके नाना रूप थे। वह स्वच्छन्दता दैविक, उत्कर्षकारी और उत्कृष्ट थी। परन्तु उसे 'स्वैर' बनने से रोकने के लिए कोई चीज़ मौजूद न थी।

यूनानी धर्म में निश्चय ही कुछ ऐसे तत्व हैं, विशेषतया आह्लाद के देवता डायनिशस में, जिनके कारण आजकल के अनेक सच्चरित्र और कोमलचित्त वाले लोगों को धक्का लगता है। उनके अनुसार इस प्रकार के सभी देवतावाद का आधार मात्र मिथ्या विश्वास था। जो भी हो, इतनी बात तो ठीक है कि यूनानी लोग मनुष्य के शरीर-

सौन्दर्य के प्रति अतिशय सजग थे। इसकी सृजनात्मक शक्ति को वे उस महान् सृजन-शक्ति का अंश मानते थे जो हमारे जीवन पर अनुशासन रखती है। वे इसके सौन्दर्य और इसकी प्रजनन-क्षमता को धरती की समृद्धि और सफलता के साथ सम्बद्ध करते थे—बीज-वपन करना, अंकुर का फूटना, फ़सल का तैयार होना, फ़सल का काटना—इन सब को वे एक उत्सव के रूप में मनाते थे। ऐसे अवसरों पर उस समय जब कि धार्मिक उत्सवों के रूप में असली नाटक का विकास हो रहा था, कभी-कभी ऐसी निरंकुशता और अतिरेकों के भी प्रमाण मिलते थे जिनके कारण इन्हें वीभत्सतापूर्ण काण्ड कह दिया जाता है। किन्हीं-किन्हीं सम्प्रदायों में ऐसा हुआ है कि उत्सवों का अन्त सेक्स-सम्बन्धी उच्छृंखलता और नंगी मदोन्मत्तता में हुआ। परन्तु डायोनिशियन उत्सवों में केवल ऐसे अतिरेकों को ही ढूंढ़ना और उस समय की आनन्दमग्नता में—जिसे यूनान के लोग इतनी महत्ता प्रदान करते थे—केवल मद्यपों की निर्बन्ध उन्मत्तता ही देखना अनुचित और अवांछनीय है। प्राचीन काल के यूनानी लोग आध्यात्मिक जीवन के नियामक तत्व के रूप में सेक्स (काम) को महत्वपूर्ण स्थान देते थे। उनके उत्सवों में ऐसे देवताओं की पूजा भी शामिल रहती थी जो उर्वरता और सुफलता के अधिष्ठाता थे। उनके यहाँ की लिंग-पूजा का बहुत कुछ सम्बन्ध नाट्य-कला के उद्भव और विकास से है। इन तमाम वस्तुओं पर किसी दैवी प्रेरणा की भावना छायी रहती थी।

विभिन्न प्रकार की विशेषताओं के कारण डायोनिशस को पूर्णतया विकसित दुःखान्त एवं सुखान्त नाटक और व्यंग्य-नाट्य का पिता माना जाता है। हम उसे उर्वरता और नयी फ़सल की समृद्धि के देवताओं का —जिनकी चर्चा आदिकालीन नृत्य एवं पूजा-उत्सव के सम्बन्ध में हम कर चुके हैं—उत्तराधिकारी मान सकते हैं। परन्तु वह कुछ और भी है। जब उसका तादात्म्य मनुष्यों से होता है—ऐसा मनुष्य जिसके हृदय में आह्लाद के स्रोत उमड़ते रहते हैं, तो ऐसा लगता है कि उसका चमत्कारिक अवतार दैविक-लोकप्रिय कला को विकसित करने के लिए ही हुआ है। उसका पुराना नाम 'बाकुस' और 'इयाकुस' एक ऐसे देवता से सम्बद्ध है जिसका स्वागत कोलाहलपूर्ण ढंग से किया जाता था, और जिसको लेकर उत्सवकारी टोलियाँ खुले कण्ठ से 'इयाकुस-इयाकुस' का नारा लगा सकती थीं। क्या ऐसा उत्सव बिना किसी गति अथवा नृत्य के सम्भव था ? बलि के बाद अन्तर में जिस आह्लाद का उद्रेक होता था उत्सव-मूलक जुलूस में उसकी परिणति का होना क्या स्वाभाविक नहीं था ? और ऐसे जुलूस में क्या लोग चुपचाप चलते रहेंगे, गीत गायेंगे और हँसी ठट्ठा करेंगे नहीं ? जल्दी या कुछ देर बाद ऐसी स्थिति आ जायेगी जब कि जो देवता है उसे देवता की ही तरह कार्य भी

करना पड़ेगा। आध्यात्मिक प्ररणा की अनिवार्य मांग थी कि पहले अभिनय का कार्य किया जाय और फिर अभिनय की कला को विकसित किया जाय। यह कैसे हुआ ?

नाट्य के सम्बन्ध में अरस्तू पहला महान् अधिकारी विद्वान हुआ है। दो शताब्दियों बाद इस विषय पर लिखते हुए उसने दुःखान्त और सुखान्त नाटकों के जन्म के बारे में कहा है--"दुःखान्त और सुखान्त दोनों नाटकों का उद्भव असंस्कृत और अविचारित ढंग से हुआ। दुःखान्त नाटकों का जन्म यूनान के मद्य-देवता के उपासकों का नेतृत्व करने वाले गायकों द्वारा हुआ। सुखान्त नाटकों का जन्म उन लोगों द्वारा हुआ जो लिंग-पूजा सम्बन्धी गीतों का नेतृत्व करते थे।" इस वक्तव्य में नृत्य और गीत में नेतृत्व करने वालों पर बल दिया गया है। यह बात महत्वपूर्ण है। इससे हम एक प्रकार के संगठन का अनुमान लगा सकते हैं। इस संगठन में जो लोग गायकों और नर्तकों का नेतृत्व करते थे वही पहले अभिनेता बने। इस प्रकार विकास का एक नया क्रम आया जब कि टोली-नृत्य और जुलूस में से एक व्यक्ति-विशेष अलग हो गया और उसने अपने व्यक्तित्व को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति का अनुकरण करना आरम्भ किया।

अनुमान पर आधारित इस प्रकार के अनेक वर्णन प्राप्त हैं कि समूह में से एक व्यक्ति के अलगाव की यह प्रक्रिया कैसे आरम्भ हुई; किस प्रकार समूह-गायकों के बीच से एक नेता निकल आया; कैसे आकस्मिक प्रकरण में से एक घटना का जन्म हुआ; कैसे कथोपकथन के बीच से एक कथानक का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु हमें सन्तोष हो यदि उस प्रक्रिया का स्पष्ट चित्र प्राप्त हो जाय जब कि उत्सव मनाने वालों की टोलियाँ सिर पर सिरपेंचे का मुकुट धारण कर, चेहरे लगा कर शराब की तलछट पीती, क़दम बढ़ाती, नृत्य करती, गाती, धक्का-मुक्की करती आगे बढ़ती जाती थीं; किस प्रकार वे डायोनिशस का उत्सव मनाते समय अंगूर की माला और लिंग की मूर्तियाँ लेकर शराब पीते हुए उस आह्लाद का निर्माण करती थीं जो कि उस देवता की सबसे सच्ची पूजा थी; और जब नृत्य अथवा जुलूस अथवा समूह-गान के लिए टोलियाँ संगठित हो जाती थीं तो पता नहीं कैसे उन्हीं में से एक, सम्भवतः वह कवि होता था, दूसरों से भिन्न प्रकार का अभिनय करने लगता था।

इसके बहुत पहले से ही यूनानी लोग गेय-काव्य का आनन्द लेने के अभ्यस्त हो गये थे। बहुत दिनों से कविताओं का गायन वाद्यों की संगत के साथ होता था। कभी-कभी इस गायन के साथ नृत्य भी हुआ करता था। इस स्रोत से तथा महाकाव्यों के पुष्कल-कोश से, होमर और उनके साथी कवियों की रचनाओं से दुःखान्त नाटकों के साहित्यिक तत्व प्राप्त किये गये थे। नृत्य-उत्सव के समय जो नक़ल उतारी जाती थी उससे भी सहयोग लेकर यूनानी दुःखान्त नाटक के विशाल प्रासाद की नींव पड़ी।

अरस्तू ने डायोनिशस के उत्सव के अवसर पर उन्मत्त टोलियों द्वारा गाये जाने वाले जिस गीत के विशेष रूप का उल्लेख किया है उसमें इस देवता की कथा कही जाती थी और उसकी प्रशंसा की जाती थी। वाद में इस प्रकार के गीत का विकास हुआ और उसका एक स्पष्ट नाट्य रूप उभर कर सामने आया। अब वह समूह-गान और उसके नेता के लिए लिखा जाने लगा था। वाद में यही "अजा-गीत" के नाम से प्रसिद्ध हुआ और दुःखान्त नाटकों का भी यही नाम पड़ गया। इसका नाम "अजा-गीत" कैसे पड़ा, यह स्पष्ट नहीं। उत्सव के समय बकरी की बलि होती थी, इसलिए इसका यह नाम पड़ा, पुरस्कार-स्वरूप कवि को बकरी दी जाती थी, इसलिए यह नाम पड़ा, अथवा डायोनिशस के उपासक समूह-गान के समय बकरी के चमड़े का कपड़ा पहनते थे इसलिए इसे इस नाम से पुकारा गया—कुछ स्पष्ट नहीं है। (इस प्रकार के एक दर्जन और भी अनुमान लगाये जा सकते हैं)।

दुःखान्त नाटक के इस आरम्भिक रूप पर एक प्रभाव और है जो स्पष्ट नहीं है और जिसे नापा-तोला नहीं जा सकता। यह प्रभाव सीधे-सीधे कविता-पाठ से आया। समूह-गान अथवा नृत्य-गीत से भिन्न इस प्रकार कविता-पाठ करने वाला व्यक्ति एक ऊँचे चबूतरे पर अथवा लिपे-पुते स्थान पर खड़ा होकर जनता के सामने सस्वर काव्य-पाठ करता था। ये चारण बहुत दिनों से अपने काव्य-पाठ के कारण लोकप्रिय हो चुके थे। जिस सामग्री का प्रयोग ये करते थे वह महाकाव्यों से ही ली जाती थी। और यही सामग्री दुःखान्त नाटकों का आधार बनी। इसका तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है कि इन चारणों का अभिनय से कितना सम्बन्ध था।

इस समय तक नाटक के विकास की रेखाएँ अस्पष्ट ही नहीं, बिखरी हुई थीं। आयोनियन, डोरिक, ऐटिक अथवा जिस किसी भी स्रोत पर विचार किया जाय विकास की ये धाराएँ सुस्पष्ट नहीं होतीं। परन्तु यदि एथेन्स में स्थित डायोनिशस के रंगमंच के इतिहास का अनुशीलन किया जाय तो अभिनय का सर्व-प्रथम वर्णन प्राप्त हो जाता है। समस्त इतिहास में यह एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण रंगमंच है।

मान लीजिए कि हम छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में पहुँच गये हैं। उस युग में डायोनिशस उत्सव ऐक्रोपोलिस के उत्तर में हुआ करते थे। वहाँ नृत्य के लिए एक घेरा बना हुआ था और बैठने के लिए ऊबड़-खाबड़ कुर्सियाँ भी थीं। परन्तु पिसिस्ट्रेटस के शासन-काल में अर्द्ध-शताब्दी के थोड़े बाद यह सम्भावित रंगमंच हटाकर उस स्थान पर पहुँचा दिया गया जहाँ आज चौबीस सौ वर्षों के बाद भी हम 'थियेटर ऑव डायोनिशस' के ध्वंसावशेष को देख सकते हैं। ऐक्रोपोलिस के दक्षिणी-पूर्वी ढलाव पर डायोनिशस इल्यूथीरियस के पवित्र परिवेश में यह स्थान अब भी मौजूद है। देवता के मन्दिर के

निकट ही नृत्य के लिए एक घेरा है। वहाँ की ज़मीन कूटकर सख़्त बना दी गयी है। इन कुर्सियों के सामने पहाड़ी गुफ़ा है। (वहाँ कोई रंगमंच नहीं है।) पिसिस्ट्रेटस के शासन-काल में एथीनियन उत्सव, महान् अथवा नगर डायोनिशिया के नाम से प्रसिद्ध है, विस्तृत किया गया था। वहाँ पर डायोनिशस का एक नया मन्दिर बना हुआ है। वहीं पर नाट्य-'प्रतियोगिताओं' का उद्घाटन भी हुआ है।

इसी समय से अभिनीत नाटक का प्रथम सुनिश्चित वर्णन मिलता है। अभिनय के इतिहास में यही सर्वप्रथम नाम है। ५३५ ई० पू० में इकारिया का थेस्पिस प्रथम व्यक्ति था जो दुःखान्त नाट्य––प्रतियोगिता में विजयी घोषित किया गया। उसको अमरता प्राप्त हुई, विशेष कर इसलिए कि सम्भवतः प्रथम बार समूह-गान के नेता के अतिरिक्त उसने अभिनेता को रंगमंच पर प्रस्तुत किया। इसके बाद के काल में कथोपकथन में दो व्यक्ति भाग लेने लगे और अभिनेता विभिन्न पात्रों की भूमिका विभिन्न प्रकार के चेहरे लगाकर और कपड़े पहिन कर, करने लगा। इस प्रकार दुःखान्त-नाट्य की दो सुस्पष्ट आधारशिलाएँ बनीं––अनुकृति-मूलक नाट्यकला और साहित्यिक नाट्य कला दोनों घुल-मिल कर एक हो गयीं। यह सही है कि अब भी नाटक की पाण्डुलिपि अनगढ़ थी––उसमें मुश्किल से कुछ कविताएँ रहती थीं जिनका पाठ बारी-बारी से समूह-गान के नेता और अभिनेता किया करते थे। थेस्पिस का कोई भी नाटक अब नहीं मिलता, यद्यपि थेस्पिस को नाटककार और अभिनेता के रूप में माना जाता है। लेकिन अब केवल स्वांग बनाने और गीतों के माध्यम से कुछ कहने-सुनने का युग समाप्त हो चुका था।

"थेस्पिस की गाड़ी", जो किन्हीं कारणों से

एक दुःखान्त अभिनेता की यूनानी लघु प्रतिमा। इसके चेहरे और भड़कीले सजे-बजे वस्त्रावरण को लक्ष्य कीजिए। मगर पाँवों के नीचे जो पत्थर के टुकड़े हैं, उन्हें ग़लती से ऊँची एड़ियों वाला जूता समझ लिया गया था। ये महज खूंटे हैं जिनके सहारे यह लघु प्रतिमा फूलदान में लगा दी जाती थी। (ले थियेटर ग्रीस, आकटेव नेवेरे कृत)

चलते-फिरते अभिनेता के लिए विश्व-प्रतीक बन गया था, सम्भवतः एक पूर्णतया कपोल-कल्पित बात है। यह बात भी कपोल-कल्पित है और बार-बार दुहराये जाने वाले इस वक्तव्य का आधार भी मिथ्या ही है कि जब समूह-गान के लिए लोग आरकेस्ट्रा के बीच में एक चबूतरे के चारों ओर खड़े होते थे तब थेस्पिस एक मेज़ पर खड़ा होकर उनके नेता से वार्तालाप करता था। (यह मेज़ शायद जिस पर पहले बकरी का बलिदान होता था बहुत दिनों तक रंगमंच के निर्माण में प्रथम सोपान के रूप में स्वीकार की जाती थी, यद्यपि बाद की कई शताब्दियों तक आरकेस्ट्रा के क्षेत्र में किसी उठे हुए चबूतरे-नुमा मंच का कोई सही प्रमाण नहीं मिलता)।

थेस्पिस के उपर्युक्त युगान्तरकारी कार्य के दस ही वर्ष बाद इस्किलस का जन्म हुआ। इस्किलस को ही दुःखान्त नाटक के संसार-प्रसिद्ध रचनाकारों में से एक होना बदा था—कुछ लोग तो अब भी विश्वास करते हैं कि वह सबसे महान् था। इतना ही नहीं बल्कि उसके भाग्य में यह भी बदा था कि वह थेस्पिस की तरह ही एक युग-निर्माता बने। उसने द्वितीय अभिनेता को मंच पर प्रस्तुत किया। सोफ़ोक्लीज़ पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ। उसने तृतीय अभिनेता को प्रस्तुत किया। जिस प्रकार धीरे-धीरे अभिनेताओं को दुःखान्त नाटकों के विकास के इस युग में महत्व मिला उसे देखते हुए एक ऐसे तथ्य तक पहुँचा जा सकता है जिसे अक्सर लोग भूल जाते हैं—वह यह कि उस समय समूह-गान की एक बहुत बड़ी विशेषता थी, बल्कि समूह-गान नाटक का हृदय ही था। थेस्पिस के समय में समूह गान एक विशेष तत्व था। नाटक में अभिनीत अंश विष्कम्भक के रूप में प्रयुक्त होते थे। नृत्य के साथ जो गीत गाये जाते थे वे अवश्य महत्व-पूर्ण थे। सम्बन्धित घटनाओं का महत्व मूल कथानक के साथ ही बढ़ा। इस्किलस ने समूह-गान के महत्व को कम किया। परन्तु सोफ़ोक्लीज ही वह व्यक्ति था जिसने पूर्णतया अभिनीत नाटक को प्राथमिकता प्रदान की।

थेस्पिस को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसने 'मेक-अप' को इतना महत्व दिया कि रंगों के प्रयोग ने चेहरे को एकदम बदल दिया। बाद में उसने छद्मवेश का भी आविष्कार किया। यहाँ उस मान्यता से विरोध होता है कि छद्म-वेश की यह परम्परा आदिकालीन उत्सव-नृत्य का अवशेष है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि थेस्पिस के ज़माने से यूनानी रंगमंच के सम्पूर्ण इतिहास में ये चेहरे रूप बदलने में सहायता देते रहे हैं।

वर्ष में दो ऐसे महत्वपूर्ण अवसर आते थे जब कि डायोनिशस के सम्मान में आयोजित धार्मिक उत्सव के अवसर पर नाट्याभिनय होता था। एक अवसर था जिसे 'लीनियो' कहते थे। शरद्-ऋतु में डायोनिशस लीनियस के सम्मान में जो अभिनय

होता था। उसमें दुःखान्त से अधिक सुखान्त तत्वों का समावेश रहता था; यद्यपि यह बात स्पष्ट है कि उस अवसर पर भी दुःखान्त नाटकों में प्रतियोगिता अवश्य होती थी। दूसरा अवसर था डायोनीशिया। इस अवसर पर डायोनिशस इल्यूथीरियस का उत्सव होता था। यह उत्सव वसन्त ऋतु में मन्दिर और रंगमंच के पवित्र परिवेश में होता था। इसको ही हम दुःखान्त नाटक का सौरगृह कह सकते हैं। ५३५ ई० पू० से जब कि थेस्पिस को प्रथम बार पुरस्कृत किया गया, एस्किलस, सोफ़ोक्लीज़ और यूरीपिडीज़ के बहुत बाद तक, जब कि नाट्यकला का पतन आरम्भ हुआ, डायोनीशिया नगर में दुःखान्त नाटकों का अभिनय अनवरत रूप से होता रहा। सत्य यही है कि इसी पवित्र भूमि पर यूनानी नाटक मुकुलित और पुष्पित हुआ और यहीं उसका अवसान भी हुआ।

इस युगान्तकारी पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में जो समारोह होते थे उनमें जुलूसों, पूजाचारों, वृन्द-वाद्यों, खेल-कूदों, काव्य-प्रतियोगिताओं, सामूहिक गीतों, दुःखान्त-सुखान्त एवं व्यंग्य नाट्यों के अभिनय की धूम मची रहती थी। पाँच-छः दिन के लिए एथेन्स के लोग अपने-अपने कार्यों और पेशों से छुट्टी ले लिया करते थे, और दावतों, हँसी-मज़ाकों, संगीत और नाट्याभिनय में मस्त रहते थे। नाट्याभिनय अन्तिम तीन दिनों में होते थे। इन सभी अवसरों पर पाँच नाटक प्रस्तुत किये जाते थे। इनमें से तीन दुःखान्त, एक व्यंग्य-नाट्य और एक सुखान्त नाटक होते थे। (ऐसा लगता है कि कभी-कभी शायद आरम्भिक दिनों में सुखान्त नाटक अधिक संख्या में अभिनीत होते थे)। जो भी हो, दुःखान्त नाटकों की प्रतियोगिता लगातार तीन दिनों तक होती थी। प्रत्येक नाटककार को एक दिन अपना अभिनय प्रस्तुत करने के लिए दिया जाता था। उस दिन के कार्य-क्रम में उसे तीन पूर्ण दुःखान्त नाटक और अन्त में एक व्यंग्य-नाट्य प्रस्तुत करना पड़ता था। यह सही है कि आजकल के सम्पूर्ण संध्या तक चलने वाले नाटकों के मुक़ाबले में यूनानी नाटक बहुत छोटे होते थे; परन्तु एक ही कार्यक्रम में चार या पाँच नाटकों को समाविष्ट करने से कार्य-क्रम निश्चय ही बहुत बड़ा हो जाता होगा। हमें याद रखना चाहिए कि एथेन्स के लोग हर प्रकार के साहित्यिक और कलात्मक कार्य में अनुरक्त रहते थे। इन नाटकों में आन्तरिक अभिनेता का जो भी गुण रहा हो और इन अवसरों का जो भी धार्मिक महत्व रहा हो, लोगों की सहज अनुरक्ति के कारण भी दुःखान्त एवं सुखान्त नाट्य प्रतियोगिताएँ अत्यन्त व्यापक स्तर पर जन-समाज का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती थीं। किसी भी खेल-कूद, संगीत-प्रतियोगिता या साहित्यिक प्रतियोगिता में विजयी होने के कारण केवल विजेता को ही नहीं वरन् उसके सम्बन्धियों तथा उसके नगर अथवा ज़िले को भी सम्मान और गौरव प्राप्त होता था।

आरम्भ में हर दुःखान्त नाटक का लेखक अपने तीनों नाटकों की रचना इस

प्रकार करता था कि उनके विषय परस्पर-सम्बद्ध हों। शायद वे तीनों नाटक एक ही नायक के कार्य-कलाप का दिग्दर्शन कराते थे। बाद के नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों में अलग-अलग नायकों एवं कथानकों का चित्रण किया। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में एथेन्स में प्रत्येक नाटक एक ही बार रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता था। केवल इस्किलस की मृत्यु के बाद एक विशेष अधिनियम के अन्तर्गत उसके नाटकों को बाद के वर्षों में भी रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। आजकल जब कि नाटककार यह बात ध्यान में रखकर नाटक की रचना करते हैं कि वे बहुत दिनों तक खेले जायँगे, हमें यह याद रखना चाहिए कि रंगमंच एवं नाटकों के उन आरम्भिक दिनों में जब कि कुछ अमर नाटकों की रचना हो रही थी ये नाटक केवल एक ही दिन अभिनीत होने के लिए लिखे जाते थे। कुछ ही क्षणों बाद हम इस बात की जाँच-पड़ताल करेंगे कि उन रचनाओं में नाटक की दृष्टि से कौन-सी ऐसी विशेषताएँ थीं जिनके कारण इन चौबीस शताब्दियों में वे जीवित रह सकीं। पहले हम उन परिस्थितियों का एक सम्यक् चित्र अपने सामने रख लें जिनमें वे नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाते थे।

यूनानी रंगशाला एक अतिशय सरल परन्तु असामान्य रूप से आकर्षक स्थान है। आरम्भ में यहाँ कुछ बेंचों के घेरे में नृत्य के लिए कूट-पीट कर एक गोला मैदान तैयार कर लिया जाता था, अब वहाँ एक इमारत तैयार हो गयी है जिसके बीच में गहराई है और चारों ओर एक ही तरह की सुरम्य सीमा-रेखा है। परन्तु उसमें कोई सजावट नहीं है। आरकेस्ट्रा के चारों ओर ऊपर उठती हुई सीढ़ियाँ हैं जो उसे तीन ओर से घेरे हुए हैं। यह एक्रोपोलिस के ढलाव की तरह बनी हुई है और इनके अगल-बगल में स्थान छूटा हुआ है। नृत्य के घेरे के उस पार रंगमंच की सीधी आगे की ओर बढ़ी सादी इमारत है जिसे 'स्कीन' कहते हैं। शायद इसमें आडीटोरियम की तरफ़ बढ़े हुए बग़ल में दो पक्षों के बीच एक पोर्टिको भी है। अभी तक कोई ऊँचा उठा हुआ मंच नहीं है (यहाँ इस बात को दुहरा देना इसलिए आवश्यक है कि बाद के रंगमंचों में हम हमेशा ऊँचा उठे हुए चबूतरे की खोज अवश्य करते हैं)। कोई 'दृश्यावली' नहीं है, साज-सज्जा का सामान भी बहुत कम है। इस बात की याद दिलाने के लिए कि यह स्थान पवित्र है, पास में ही डायोनिशस का मन्दिर बना हुआ है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि १५००० दर्शकों में से एक भी व्यक्ति ऐसा है जो उस अवसर पर अभिनीत होने वाले नाटक के, अथवा स्वयं रंगमंच के धार्मिक महत्व को भूल सके।

अभी दो ही दिन पहले तो उनके साथ हम पास के आयोडीयों में नाटककारों, अभिनेताओं और समूह-गान करने वालों के जलूस को देखने के लिए गये थे जब कि यह सब उस धार्मिक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए विशेष रूप से सजे-बजे थे। वहीं

हमने घोषणाएँ सुनीं, नाटककारों के नाम, नाटककारों के समर्थकों के नाम और नाटकों के नाम उस समय बताये गये थे। इन तमाम वस्तुओं की गम्भीरता, मर्यादा और महत्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। ये अभिनेता, प्रबन्धकर्ता और नाटककार एथीनियन समाज के विशिष्ट रूप से सम्मानित सदस्य हैं। आगामी छुट्टी के दिनों में अभिनय के लिए जो सामग्री ये प्रस्तुत करेंगे वह केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है जिससे बेकार वक्त को गुज़ारा जा सके वरन् वह पवित्र वस्तु है—यद्यपि उसमें आनन्द, उत्सव और खेल-कूद के लिए गुंजाइश है। इस प्रारम्भिक समारोह में भी वे अपने सिर पर मुकुट धारण किए हुए हैं, और हमें बताया गया है कि प्रतियोगिताओं के उपरान्त उन नाटककारों में से एक और उसके संरक्षक अत्यन्त सम्मानपूर्ण चिन्ह सिरपेंचा का मुकुट पहनेंगे।

उत्सव के आरम्भ में भी हमने एक रोमांचकारी पूजा-विधि और जुलूस को देखा है। एथेन्स के नागरिक अच्छी तरह से सज-धज कर डायोनिशस की प्रतिमा को घर वापिस लाने को गये हुए हैं।

प्रातःकाल से ही वे मन्दिर के निकट एकत्र होने लगे हैं, और अब लगता है सारा नगर रंगमंच के पास ही स्थित डायोनिशस के मन्दिर में जमा हो गया है। आर्कन, पुरोहित, नगर पिता और चुने हुए मूर्ति-वाहक, होता, सम्मान प्रदर्शन करने वाली फ़ौजी टुकड़ी, समूह-गान में भाग लेने वाले लोग, कलाकार, प्रतियोगी संगीतज्ञों की टोलियाँ, कवि और वे लोग जो बाद में दर्शक बन जायेंगे परन्तु इस समय पूजा-समारोह में निजी रूप से भाग ले रहे हैं, पुरुष, स्त्री, बच्चे, अमीर, रईस, आज़ाद हुए गुलाम सभी एकत्र हैं।

लोग तेज़ी से मुख्य पुरोहित के इशारे पर मूर्ति को उसकी पाद-पीठिका से अलग कर रहे हैं। पहले से ही नियुक्त मूर्ति-वाहक मूर्ति को ऊपर उठाकर नगर से होते हुए 'एकेडमी' के पास के उद्यान में ले जा रहे हैं और जुलूस श्रद्धापूर्वक पीछे-पीछे आ रहा है। अब देवता की प्रतिमा जैतून के वृक्षों के नीचे एक चबूतरे पर स्थापित कर दी गयी है और यज्ञ की विधियाँ सम्पन्न हो रही हैं! बाक़ी दिन लोग खेल-कूद करते हैं; दावतें होती हैं और हलके-फुलके ढंग से मनोरंजन करते हैं। रात के समय मूर्ति के पास फिर भीड़ इकट्ठी होती है, नगर की ओर जुलूस चलता है; और तब उत्सव का वह सब से महत्वपूर्ण अंश आता है जब इल्यूथिरी से प्रतिमा एथेन्स लाई जाती है। यह प्रथा नाटक के उद्भव के पहले से चली आ रही है। आनन्दमग्न भक्तजन मशाल जला कर मूर्ति को ऊपर उठाये शराब के घड़े लिये, गले में माला डाले, सिर पर प्रतीकात्मक मुकुट धारण किये, नृत्य करते, नक़ल करते, गाते-बजाते ऐक्रोपोलिस की ओर चलते

आ रहे हैं। इसी आनन्दोत्सव और उत्तेजनापूर्ण वातावरण में उन तत्वों और भावनाओं के अवशेष मिलते हैं जिनमें रंगमंच के प्रादुर्भाव के बीज प्राप्त होते हैं। इसके बाद प्रतिमा रंगशाला में स्थापित कर दी जाती है जिसे उत्सव में भाग लेने वाले लोग समुचित विधियों के साथ आगामी कल के संगीत एवं नाट्य-सम्बन्धी कार्य-क्रमों के लिए उत्सर्ग करते हैं। इस आनन्दोत्सव के बाद उनमें गम्भीरता तो आ जाती है परन्तु उनकी मस्ती में कमी नहीं आती और आगे आने वाले नाटकों के लिए उनकी मनोवृत्ति अधिक सौष्ठव-पूर्ण पवित्रता और सौन्दर्य से मण्डित हो जाती है।

दूसरे दिन और शायद तीसरे दिन भी परम्परागत सामूहिक गीतों का दौर-दौरा रहता है; जिसमें यूनान के सभी भागों से एथेन्स आये हुए ५०० पुरुष और बच्चे सामूहिक गान-प्रतियोगिता में पुरस्कार प्राप्त करने के लिए भाग लेते हैं। जनता के सम्मुख कुल मिलाकर दस टोलियां संगीत-प्रतियोगिता में भाग लेती हैं। इनको नृत्य भी करना पड़ता है। यह सामूहिक गान-नृत्य प्राचीन युग में गाये जाने वाले उस काव्य के ही समान है जो दुःखान्त नाटक का दूसरा स्रोत है। परन्तु हम तो दूसरे दिन के प्रातः-काल की बाट जोह रहे हैं।

जिस समय हम रंगशाला की ओर बढ़ रहे हैं पौ फटने के पहिले का अँधियारा छाया हुआ है। सुन्दर पूर्वी आकाश में ज्योति की प्रथम किरणें फूट ही रही हैं, लेकिन लगता है कि समस्त एथेन्स जाग उठा है, उत्तेजित हो गया है और डायोनिशस के मन्दिर की ओर भागता चला जा रहा है।

अच्छा हुआ कि हम इतने सवेरे आ गये, क्योंकि हम भीड़ के धक्के खा रहे हैं और यह स्पष्ट है इस छोटी सी रंगशाला में ये सभी टिकट लिये लोग समा न सकेंगे। मगर इस कासा-नुमा स्थान के ऊपर ऊँचाई पर बैठने के लिए स्थान अब भी रिक्त है। उस स्थान पर मद्धिम-मद्धिम शीतल प्रकाश आ रहा है जो कि नृत्य के उस घेरे से दूर, बहुत दूर है जहाँ पर अभिनय होता है। हम नीचे उत्सुकतापूर्वक उस तपःपूत घेरे को देख रहे हैं जिसके केन्द्र में डायोनिशस का चबूतरा है और उसके आगे नीचे की ओर 'स्कीन' देख रहे हैं। पृष्ठभूमि में बनी यह है वह इमारत जिसके निचले भाग में खम्भे लगे हैं। शायद यह किसी प्रासाद या मन्दिर का अग्र-भाग है। इसके तीन दरवाज़े हमारी ओर खुल रहे हैं, और उसकी दो "विंग्ज़" या परस्कीनिया आगे की ओर इस प्रकार बढ़ी हुई हैं मानो वे अभिनय और नृत्य के स्थान को अपने घेरे में समेट लेना चाहती हों, जिससे नाटक एवं अभिनय का कोई भी अंश हमारी दृष्टि से बचने न पाये।

रोशनी, और अधिक रोशनी बढ़ी और रंगशाला अब एक मद्धिम ताज़गी, एक पीत उज्जवलता के वातावरण में स्नान कर उठी। दिन का यही सबसे मनोरम

क्षण है। आह! यह क्षण नाटक के आरम्भ के लिए कितना उत्तम है। लगे हाथ हर चीज़ तैयार है। डायोनिशस के पुरोहित अपनी सम्मानित कुर्सियों, अपने आसनों पर आरकेस्ट्रा के बिल्कुल किनारे विराजमान हो गये हैं और उनके सामने का ऊपर उठता हुआ मंच मधु का छत्ता जैसा हो गया है। उत्साहित, आन्दोलित दर्शकों के कारण कितनी सजीवता आ गयी है!

यह लो, पुकार हुई। हाँ, वह सोफ़ोक्लीज़ को बुला रहा है। इस वर्ष की दुःखान्त नाट्य-प्रतियोगिता में भाग लेने वाला वह प्रथम प्रतियोगी है। नाटक शुरू हो गया। नृत्य के घेरे के चबूतरे के चारों ओर 'अतिरिक्त अभिनेताओं' की एक भीड़ हो गयी है। यह थेबन नागरिक हैं—अभागे, अकिंचन। उनमें से एक ज़रा अलग खड़ा है। उनके आगे एक अभिनेता शान के साथ बढ़ रहा है। वह चेहरा लगाये हुए है और शाही पोशाक धारण किये हुए है। उस प्रातःकालीन शान्त वातावरण में उसका स्वर चमत्कारपूर्ण गमक के साथ फूट रहा है। नपे-तुले, चुने हुए, शान के साथ उच्चरित शब्द निःसृत हो रहे हैं।

मेरे बच्चो, कडमस के प्राचीन वृक्ष से—
जो वसन्त में निज समृद्धि से फूल रहा है—
उसके कारण झुके-झुके तुम
ओनये हो हम सब के ऊपर
पुष्पमाल्य से और विनीत डालियों
से क्या भरे-पूरे तुम?
और गंध से युक्त नगर है
मन्द-मन्द प्रार्थना-स्वरों से वह भारी है
और बधिक को आतंकित करने वाली
तीखी चीत्कारें गूंज रही हैं।
———देखो, तुम्हें पुकार रहा हूं,
मैं आया हूँ, अगजग में सम्मान प्राप्त
मैं ही ईडीपस।

तो यह होगी सम्राट् इडिपस की कहानी—अत्यन्त दुःखान्त, अत्यन्त भयानक। ये अभिनेता और पुरोहित हमें वह कहानी सुना रहे हैं जिसे हम पहले से ही जानते हैं (हमारे मानस-पटल पर पुरानी पौराणिक कथा खिंच गयी है) कि किस प्रकार इडिपस

स्फिंक्स की हत्या करने के बाद थीब्ज़ को आजाद करता है, विधवा महारानी जोकास्टा से विवाह करता है, बारह वर्ष तक आनन्दपूर्वक राज्य करता है और तब देखता है कि सम्पूर्ण नगर महारानी के कारण बरबाद हो रहा है। हमें आगे यह भी पता चलता है, और यह बात इतनी भयानक है कि शब्द उसको व्यक्त नहीं कर सकते, कि देवताओं के कारण ही वह महामारी आयी। ऐसा इसलिए हुआ कि अनजाने में इडिपस ने पूर्व राजा अपने पिता का ही बध कर डाला था और अपनी ही माँ से उसने विवाह कर लिया था। परन्तु नाटक के पात्र गर्वीले इडिपस और महारानी, जिसे सोफ़ोक्लीज़ ऐसी महती और इतनी करुणापूर्ण बना लेता है, इस बात को नहीं जानते। देवताओं की ही भाँति हम भी यह देखेंगे कि यह भयानक सत्य इन दो व्यक्तियों को कैसे बताया जाता है।

इडिपस और पुरोहित ने हमें बता दिया है कि थीब्ज़ का व्यंग्य तो देखिए कि सम्राट् इस दुःख के कारण का पता लगाने के लिए और हर क़ीमत अदाकर उसे दूर करने के लिए प्रण करता है। लेकिन अब प्रार्थी आरकेस्ट्रा के आगे उस द्वार की ओर एकत्र होते हैं जिधर से क्रियों प्रवेश कर रहा है—क्रियों जोकास्टा का भाई है और ओरेकिल (भविष्यवक्ता) का संदेशा लेकर डेल्फ़ी से आ रहा है। संदेशा यह है कि देश में एक ऐसा पापी पैदा हुआ है जिसने पहले के सम्राट् लायस का बध कर दिया है और जब तक कि उसे दण्डित नहीं किया जायगा यह महामारी दूर नहीं हो सकती। इडिपस और क्रियों का कथोपकथन सामने हो रहा है और हम देख रहे हैं और फिर वह स्थिति आती है कि सम्राट राजमहल (और वह साधारण पर्दा हमारे लिए महल बन गया है) के द्वार से पीछे लायस के बधिक को ढूँढ़ निकालेगा।

प्रार्थी हट जाते हैं और थीब्ज़ के वयोवृद्ध लोग आगे आते हैं। वे आधा गाते, आधा नृत्य करते नपे-तुले क़दमों से शान के साथ नृत्य के घेरे में आते हैं और अपोलो से प्रार्थना करने की मुद्रा बनाते हैं :

"वह वाणी, वह वाणी जो पावन मार्ग पर जनमती है..." यह वही पुराना धार्मिक नृत्य-जुलूस है जो कि नवीन मानवीय नाटक में प्राचीन पूजा-मूलक विधि का अनुकरण मात्र है। वे मन्त्रोच्चार करते हैं, महामारी की कथा सुनाते हैं; वे देवताओं से दया की भीख माँगते हैं। वे अपोलो, एथेना, आर्किनिस, ज़ियस, डायोनिशस की वन्दना करते हैं।

इडिपस राजमहल के बाहर आता है; वह बोलता है, सोचता है और लायस के अपराधी बधिक को ललकारता है कि वह सामने आवे और उसे देश-निकाला का दण्ड दिया जाय। वह टायरेशियस नामक ज्योतिषी को बुलाता है; हम दोनों का वार्तालाप सुनते हैं। सम्राट् सख्ती के साथ एक-एक बात की जाँच करता है जिससे अपराधी का

तुम अपने क्रोध भरे शब्दों से
करोगे क्या?
अन्ध-हृदय दम्भियो,
क्या तुम्हारी आँखों में करुणा के आँसू नहीं
जब कि सारा नगर रक्त में डूबा है,
कैसे तुम अब भी निजी ईर्ष्या-घृणा में पड़े हो?

और जोकास्टा ही सम्राट् के हृदय में आत्म-संशय के बीज बोती है। हम देखते हैं कि धीरे-धीरे उसकी आत्म-दृढ़ता कम होती जाती है और उसके मन में भय का संचार होना शुरू हो जाता है। वह बताता है कि कैसे एक बार उसने तिरमोहानी पर रथ में जाते एक सम्भ्रान्त व्यक्ति की हत्या कर दी थी। वह कोरिन्थ से भाग रहा था। किसी भविष्यवक्ता ने कहा था कि वह अपने पिता को मार डालेगा और अपनी मां से विवाह करेगा। यह सुनकर वह राज दरबार से भागा, रास्ते में इस वृद्ध व्यक्ति से उसकी मुलाक़ात हो गयी और उसने उस व्यक्ति को तथा उसके रक्षकों को मार डाला। परन्तु जोकास्टा अधिक भय से आन्दोलित हो उठती है। उसने उस चरवाहे को बुलवाया जिसने लायस का बध होते हुए देखा था और जो निष्कासित करके पहाड़ों-जंगलों में भेज दिया गया था।

हम लोग, जो दर्शक हैं, कुछ स्थिर हो जाते हैं और इडिपस तथा जोकास्टा जब अन्दर जाते हैं तो हमारी उत्तेजना भी कुछ कम हो जाती है। हम समूह-गान के साथ होने वाले नृत्य की मुद्राओं और भावों को अनमने ढंग से देखते हैं। हमारे मन में संशय और संभ्रम कुछ इस प्रकार समा गया है कि गीत और नृत्य हमें उससे पूर्णतया मुक्त कर नहीं सकते। जोकास्टा फिर सामने आ गयी है और कह रही हैं :

कठिन तीव्र तूफ़ान नृपति को कँपा रहा है
पाप और भय और ग्लानि के रूप बहुत हैं......

जिस समय वह अपोलो से प्रार्थना कर रही है, एक अजनबी फाटक से भीतर आता है। वह समूह–गान का अभिवादन करता है और सम्राट से मिलने की इच्छा प्रकट करता है। कुछ क्षण तक जोकास्टा के साथ हमको भी उस व्यक्ति से यह समाचार सुनकर राहत मिलती है कि इडिपस का प्रसिद्ध पिता तथा कोरिन्थ का सम्राट् मर गया और पितृ-वध की पुरानी भविष्यवाणी असत्य प्रमाणित हुई। परन्तु एकाएक एक नवीन

भय उत्पन्न हो जाता है। वह अजनबी इस रहस्य का उद्‌घाटन करता है कि इडिपस को कोरिन्थियन नहीं था, बल्कि वह थीब्ज़ का एक नन्हा बच्चा था जो उस जंगली पहाड़ी इलाक़े से बचाकर लाया गया था जहाँ वह मरने के लिए छोड़ दिया गया था।

और देखिए तो, इडिपस और अजनबी के बीच जिस समय इस रहस्य का उद्‌घाटन हो रहा है तो किस प्रकार जोकास्टा एक ओर घूम गयी है और किस प्रकार वह क्लान्त और विपत्ति-ग्रस्त सी होती जा रही है। क्या उसे कांपते-गिरते कोई देख नहीं रहा है?—अब उसका सिर उसके हाथों में झुक गया है। वह जान गयी है कि यह सम्राट्, उसका पति खुद उसका बच्चा है। अब चरवाहे के आने की ज़रूरत नहीं है। अब वह शीघ्र इस बात की कोशिश करना चाहती है कि इडिपस चरवाहे से किसी बात की तसदीक न करावे और फिर वह एकदम भयग्रस्त होकर बिना विदा मांगे ही चली जाती है। जहां तक हम दर्शकों का सम्बन्ध है, उसका दुःखपूर्ण अन्त तो आ ही गया। अब केवल कुछ क्षणों के लिए समूह—गान होता है। सभी आंखें चरवाहे की ओर लगी हुई हैं।

इडिपस कितनी तीव्रता के साथ उससे सवाल पूछता है! इस भयानक जानकारी को प्राप्त करने के अवसर पर वह बिना किसी लाग-लपेट के खरी सच्चाई को ढूँढ़ना चाहता है। उस स्थिति में ऐसा ही होना अनिवार्य था। एक के बाद एक परिस्थिति आती है। अन्त में इडिपस चमक उठता है। अब उसे अपने समस्त अपराध का पता चल चुका है। वह स्वयं लायस का बेटा है; वह स्वयं अपने पिता का वधिक है; वह स्वयं अपनी मां का व्यभिचारी पति है; वह स्वयं अपने बच्चों का भाई है। इस समय जब वह राजभवन में भागता है तो हमें सामूहिक गान-वाले विष्कम्भक की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी हमारा मन ऐसे अवसर पर किसी गीतिमय विवेचन में ही लगता है क्योंकि हम जानते हैं कि इसी अवसर पर मंच के परे नाटक की पार्थिव परिणति हो रही है! हम जानते हैं कि परम्परा के ही अनुसार एक दूत इस समय भी आयेगा और वह हमें उन अतिशय भयानक घटनाओं को बतायेगा जिनका अभिनय मंच के ऊपर उस निष्ठुर प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में देख सकना हमारे लिए असम्भव होता। यह सन्देशवाहक आ गया। वह कह रहा है—

अपने आवेगों में उलझी, भ्रान्त बिफरती
सिंहद्वार से गुज़र गयी वह
अपने सिर पर श्वेत करों को भांज रही सी
फल हों तेज छुरे के जैसे,

और भगी वह, बिना रुके ही भगी उधर ही
जिधर पुराना कमरा था उसके सोहाग का
और खो गयी उसमें, उसके द्वार मुंद गये !
पर हमने सुन लिया कि भीतर
वह रोती थी चीख-चीख कर––विगत दिनों की स्मृति उलीचती,
वह विसूरती मरे हुए अपने लेयस को......
उसके बाद बन गयी कैसे ग्रास काल की
पता नहीं वह !
क्योंकि क्रोध से गुर्राता ईडीपस
हम पर तुरत फट पड़ा।
पता नहीं फिर हमें चल सका
वह था क्या आवेश कि जिसने
सम्राज्ञी को ग्रास कर लिया......
और महल के फाटक को धक्का देकर के उसने खोला,
टूट गयी अर्गला द्वार की,
उसके बोझे से ही दबकर
निकल पड़ा अपनी चूलों से द्वार ओक का,
और घुस पड़ा वह उस अँधियारे कमरे में !
देखा हमने उसे वहाँ पर प्रथम बार जब
लटक रही थी वह फांसी की रस्सी पर ही
मरे विहग-सी !
उसे देखते ही पीछे को पलट गया वह !
फिर कराह दर्दीली उसकी सुनी...
खोली उसने गाँठ गले में बँधी डोर की,
उसे लिटाया वहीं भूमि पर––
आह, उसी क्षण दिया दिखायी दृश्य भयानक !
सोने की पिन जो चौड़ी थी दीपशिखा सम
उसके सीने से उतार ली,
दायें, बाँयें उसे घुमाकर फेंक दिया फिर
थर-थर करती अपनी दृष्टि परिधि के बाहर :
"दूर दूर ! अब तू न देख पायेगी मुझको

मेरी पीड़ा या पापों को......।"
............एक गीत सम
उसका स्वर फिर दिया सुनायी
और, और फिर हुए वार पर वार अनेकों,
लुढ़क पड़े उसकी आँखों के फूटे गोले
लोहूमय उसकी दाढ़ी पर--
वर्षा थी यह लाल रक्त की--
जिस वर्षा के साथ वहाँ ओले बरसे थे !
......जो कुछ देखा या कि सुना था पीड़ा क्या है
सभी यहाँ थी !

और तब इडिपस हमारे सामने लाया जाता है। उसकी आँखें फूट चुकी हैं। रक्त की धारा प्रवाहित हो रही है। उस दृश्य से बचने के लिए समूह–गान के वृद्धजन वहाँ से हट गये हैं। एक वितृष्णा एवं क्षोभपूर्ण दृष्टि से हम उस क्षत-विक्षत सम्राट्, उस पतित मनुष्य को देख रहे हैं। वह रास्ता टटोलता हुआ आगे बढ़ता है, देवताओं को पुकारता है, गौरव के साथ कहता है कि उसने अपने को एक अंधा गर्त बना दिया है, एक ऐसी काल-कोठरी बना लिया है जो अँधेरी है, जहाँ शब्द नहीं हैं...... उसने अपने को पीड़ाओं के संसार का क़ैदी बना लिया है। वह उस चरवाहे को बुरा-भला कहता है जिसने शैशव में उसकी रक्षा की थी।

मांस-पिण्ड ओ !
मांस पिण्ड के ओ भीषण भय !
तू ईश्वर के लिये,
उठा ले मुझे यहाँ से और फेंक दे दूर
जहाँ पर दृष्टि न पहुँचे कभी किसी की,
या फिर मेरी हत्या कर दे,
या सागर में मुझे डुबो दे,
जिससे मुझको कभी न कोई देख सके फिर !

लेकिन अब उसके मन में एक चिन्ता और उठ रही है। उसके बच्चों का, उसकी दो नन्हीं बेटियों का क्या होगा ? सामने बच्चियाँ हैं। क्रियों उन्हें हमारे और इडिपस के सामने ला रहा है।

बच्चो, अरे कहां हो आओ यहां बांह में
निज भाई के, जिसके वहशी जुर्मों की
छाई अँधियारी उस पापीकी उन आँखों में
जिसने बगिया यहाँ उगायी तुम लोगों की
जिसकी आँखें और समझ हर गयीं, और
जिसने ऐसा गड्ढा खोदा है
जिसे देखकर कांप उठेगी दुनियां सारी......
क्रियों, तुम्हीं हो पिता आज से इन बच्चों के
क्योंकि मिट गए हम दोनों जो इनको तकते।
ओह, अकेले कभी न इनको रहने देना!
कितने छोटे हैं ये कितने लुटे हुए हैं—
इन्हें बचा ले!
नौजवान, दे हाथ ज़रा मेरे हाथों में,
और वचन दे......

एक क्षण के लिए उसमें कमज़ोरी पैदा होती है। वह अपने बच्चों से चिपट जाता है। हम देखते हैं, ये बच्चे उससे छीनकर ले जाये जा रहे हैं। क्रियों कहता है —"अब इन पर अधिकार जताने की कोशिश मत करो।" उधर इडिपस मंच के बाहर ले जाया जाता है और इधर समूह-गान आरम्भ होता है। धीरे-धीरे समूह-गान भी समाप्त होता है और हमको चेतावनी मिलती है—

इसलिये ओ मानव सावधान!
और उन सारी वस्तुओं की अन्तिम परिणति को देख,
अन्तिम दृश्यों को देख,
अन्तिम दिनों को देख,
जब तक पूरी कहानी समाप्त नहीं हो जाती—
और वह शोक-पीड़ाहीन तमस में आवृत्त नहीं हो जाता—
किसी भी मनुष्य का जीवनवृत्त पूरा नहीं होता!

इस अतिशय रोमांचकारी, रोचक, भयानक नाटक का अन्त होते-होते हम दर्शक धीरे-धीरे आसपास की परिस्थिति के प्रति जागरूक हो उठते हैं। जब समूह-गान

अन्तिम रूप से समाप्त हो जाता है तो हम कुछ छोटी-मोटी बेसूद हरकतें करते हैं। हम खड़े हैं, हाथ-पाँव फैलाते हैं, धूप से अपने को थोड़ा बचा लेते हैं और फिर कांप उठते हैं क्योंकि बगल में खड़ा कोई आदमी सिसकियां भर रहा है। हमारी ये भावनाएँ सच ही हैं। हम अपने आसपास खड़ी उस जनता को अक्सर नज़र-अन्दाज़ कर लेते हैं जो बार-बार शून्य में ताकती रहती है। हम हिल उठते हैं—मगर फिर भी हमारी आत्माओं में सौन्दर्य की एक ज्योति जगमगा उठती है। हम विचारमग्न हो जाते हैं। हमारे अन्दर एक आश्वासन-मूलक आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। हम अभी-अभी अतिशय पीड़ाजनक स्थिति में थे। हम आतंक और विषाद के गर्त में गिर गये थे। वह स्थिति इतनी भीषण और कराल थी कि उसमें पड़कर ज़िन्दगी की समस्त क्षुद्रताएँ समाप्त हो गयीं। लगता है अब हम प्रक्षालित होकर, शुद्ध होकर निकल आये हैं। लगता है, हमारी आत्मा तनकर खड़ी हो गयी है। वह अनावृत एवं महिमामयी ज्योति को स्वीकार कर रही है।

आज दो बार फिर हमें सोफ़ोक्लीज़ के दुःखान्त नाटकों को देखने की पीड़ा झेलनी पड़ेगी। परन्तु हम उनका स्वागत करेंगे। हम इन्तज़ार कर रहे हैं, संतोष के साथ।

वह कौन-सी बात है जो इस कराल उत्पीड़न की भावना को दुःखान्त नाटक में समाहित कर देती है? यूनानी नाटकों की उस महत्ता का रहस्य क्या है जो प्रेक्षकों को देवताओं के समकक्ष बना देता है, जो मनुष्य-जीवन की कमज़ोरियों को, कटुताओं को, उच्छृंखलताओं को धोकर साफ़ कर देता है; जो प्रेक्षकों को परम आह्लाद और देवतुल्य करुणा के रस में डुबा देता है। इन नाटक की कथावस्तु बहुत प्रिय नहीं थी। हमें व्यभिचार, आत्म-हत्या, वध जैसे वितृष्णामूलक अपराधों की कहानी से होकर गुज़रना पड़ा है (हम यह सोच कर कांप उठते हैं कि आजकल के 'स्वाभाविक' युग के किसी नाटककार के हाथ में यदि यह सामग्री पड़ती तो वह उसका क्या बनाता)। परन्तु जब सोफोक्लीज़ ने इस सामग्री का उपयोग कर अपनी कहानी कही तो न हम कांप उठे, न हमारे मन में कोई वितृष्णा ही हुई; किसी तरह हमारी पीड़ा और वेदना को अत्यन्त गौरवशाली और उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। सबसे पहली बात यह कि रंगमंच के सारे तत्वों का अतिशय स्वाभाविक समन्वय हुआ। महती नाट्य-कथा के अनुरूप ही गौरवशाली काव्य भी था और उसका अभिनय भी उतना ही शानदार था। साथ ही समूह-गान में स्वर पाठ और लयात्मक गीत भी परिस्थिति के अनुरूप शानदार था। जो विराट रंगशाला सामने थी उसमें भी अनुपात और औचित्य का सर्वत्र ध्यान रखा गया था। इसे ही हम स्थायी

रंगमंच कहते हैं, जिसमें केवल घटना-वर्णन करने या मात्र चित्र उपस्थित करने या केवल छद्म-वेश धारण कर अनुकृति करने के लिए ही गुंजाइश नहीं रहती। इस दुःखान्त नाटक में एक व्यापक ओज था, एक अटूट आवेग था, एक शानदार मर्यादा थी, एक गौरवशाली अनिवार्यता थी। यह एक ऐसी कला है जो पूर्णत्व को प्राप्त होने पर मात्र नाट्य-साहित्य, अभिनय-कला, साज-सज्जा अथवा नृत्य की सीमाओं को पार कर जाती है।

इसके अतिरिक्त यदि हम इस नाटक की प्रभावोत्पादकता के रहस्य के बारे में और कुछ जानना चाहते हैं तो हमें अलग से कला के उन तत्वों का पता लगाना चाहिए। ऊपर हमने जो उद्धरण दिये हैं उनमें मात्र काव्यात्मक मूल्यों के काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। अनुवाद की (यद्यपि अनुवाद में मूल की सशक्तता नहीं रह पाती) प्रत्येक पंक्ति में दुःखान्त सौन्दर्य स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है। यहाँ जिस ज्ञान को हम देखते हैं उसकी मात्रा मूल यूनानी भाषा में इससे बहुत अधिक रही होगी। बर्कले स्थान में जो आधुनिक 'ग्रीक थियेटर' है उसमें मैंने यूनानी काव्य पाठ के सौन्दर्य से अपने को विचित्र प्रकार से आन्दोलित होते पाया है। उसमें महानता की एक ऐसी गूँज थी, ऐसी पवित्र स्थिरता थी, गति की ऐसी मन्थरता थी जिसने प्राचीन रंगमंच में प्रस्तुत अभिनयों को अवश्य ही वैशिष्ट्य प्रदान किया होगा। ताओरमिना के प्राचीन रोमन थियेटर में हमने मीठी, तरल इटैलियन भाषा सुनी है। मैंने आनुनासिक फ्रेंच और भारी भरकम जर्मन तथा अंग्रेजी भाषा भी सुनी है। परन्तु इनसे यूनानी भाषा का कोई मुक़ाबला नहीं। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि प्रत्येक भाषा का अपना विशेष गुण होता है। यह बात दूसरी है कि नाट्याभिनय में उसका उपयोग किया जाय अथवा नहीं। जहां तक यूनानी दुःखान्त नाटकों की बात है, उसमें काव्यात्मक अभिव्यक्ति और विस्तार एवं आवेग में भाषागत मूल्यों का पूर्ण सहयोग रहा है। इस प्रकार इन नाटकों में सम्पूर्ण सन्तुलन रहा है। फिर भी उन मूल्यों के न रहने पर भी यूनानी नाटकों के जो अनुवाद गिलबर्ट मरे ने किये हैं (हमने महान् यूनानी दुःखान्त नाटककारों के सारे उद्धरण इन्हीं अनुवादों से लिये हैं) उनमें हमें हिला देने की क्षमता है। वे काव्यात्मक सौन्दर्य से इतने भरे-पूरे हैं कि विलियम शेक्सपियर के नाटकों को छोड़कर संसार के किसी भी संग्रहालय में ऐसी रचनाओं का मिलना दुष्कर है।

जो कोई भी रंगमंच का कलाकार या कला-मर्मज्ञ किसी यूनानी नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत होते देखता है अथवा उसकी पाण्डु-लिपि का पाठ करता है वह इन रचनाओं में नाटक की निर्मिति एवं गठन के शिल्प को देखकर विस्मित हो जाता है। यूनानियों ने दुःखान्त नाटकों के लिए जो प्रतिमान स्थिर किये, बाद के युगों में उनसे

अलग कुछ नहीं किया जा सका। उन्होंने एक ऐसी गढ़न निश्चित की जो प्रेक्षक में रुचि उत्पन्न करे, भावनात्मक तीव्रता उत्पन्न करे, संशय और अवसाद की स्थिति निर्मित करे और अन्त में उदासी से भरे हुए एक ओजस्वी संतोष की रचना करे। पांचवीं शताब्दी के नाटको की महान् सरलता की तुलना जब हम बाद के विकास से करते हैं तो क्रिया की अथवा अभिनय की ऋजुता--जिसका प्रमाण वर्णनात्मक समूह-गान के विकास-क्रम के उस अवसर पर मिला जब कि वह कथोपकथन और अभिनय में परिणत हो रहा था--नाटक की प्रभावोत्पादकता को आश्चर्यजनक महत्ता प्रदान करती है। इन नाट्य-रचनाओं में एक विशिष्ट विशीर्णता है। इनमें एक महान् अलगाव अथवा पृथकता है जिनके कारण किसी पच्चीकारी अथवा किसी मीठी भावना या अलंकारिता की अतिशय सजावट नहीं रहती। यह उन मूर्तियों के समान है जो मानो किसी प्रतिमान का निश्चय किये बिना, किसी विषय-वस्तु को स्थिर किये बिना, किसी कमनीयता की कल्पना किये बिना, सीधे-सीधे किसी बड़े विशाल चट्टान से काट कर गढी गयी है।

परन्तु इन विशेषताओं का उद्भव मात्र नाट्य-सम्बन्धी प्रतिभा के फलस्वरूप हुआ। सम्पूर्ण कल्पना नाट्य-मूलक थी और नाट्य-विधि का जन्म रंगमंचीय कौशल से हुआ। (याद रखिए, ये नाटककार स्वयं अत्यन्त कुशल अभिनेता थे)। पिछले दिनों नाट्य-कला के सम्बन्ध में एक सम्पूर्ण साहित्य तैयार हो गया है और यूनानी नाट्य-रचना की चिन्दियां उड़ा दी गयी हैं। उनकी विवेचना की गयी है और उन्हें बाद के नियमों और क़ानूनों का आधार बनाया गया है। ये विवेचनाएँ निष्प्राण हैं। बाद के नाटककारों के लिए इनका कोई उपयोग नहीं। परन्तु अलग-अलग नाटकों में मौजूद कलापूर्ण सरलता और प्रभावपूर्ण अभिनय एवं भाव-भंगिमा आज भी सामान्य पाठक के अध्ययन के लिए प्रेरक और लाभदायी सिद्ध हो सकता है। इन नाटकों में प्रवेश से ही सुस्पष्ट प्रगति दिखती है। बाद में क्रमिक रूप से गति, विकास, चरमोत्कर्ष, अवरोह और अन्त में संकटों की परिणति होती है। यह एक ऐसा रचना-विधान है जो दर्शकों में अधिकाधिक सावधानी और भावनात्मक प्रतिक्रिया का उद्रेक करता है। इस विषय में हम उस समय फिर विचार करेंगे जब नाट्य-रचना और नाट्य-लेखन के सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे और जब हम अन्तर्गठन तथा दूसरे नियमों की बात उठायेंगे, जब हम फ्रेंच क्लासिक नाटकों के युग में पहुँचेंगे और नाट्य-शास्त्र में प्रयुक्त विधि-विधान की बात करेंगे। इस समय तो हम केवल यूनान के महान् नाट्य-शिल्पियों की ही बात कर रहे हैं।

रंगमंच को धार्मिक संस्था मानने के कारण यूनानी दुःखान्त नाटकों की विषय-वस्तु निश्चित रूप से सीमित हो गयी। नाटककार अपने नाटकों के कथानकों एवं

कहानियों के लिए देवताओं एवं पौराणिक नायकों के क्षेत्र के बाहर जा ही नहीं सकते थे। रोमांचकारी कृत्य, अपराध, आनुवंशिक पाप और इनका परिमार्जन यही उन नाटकों के विषय थे। देवताओं और नाटकों या साधारण लोगों और मामूली देवताओं की इच्छाओं एवं कामनाओं के बीच संघर्ष का चित्रण उपर्युक्त विषय-वस्तुओं के माध्यम से होता था। नाटक के आरम्भ में ही प्रत्येक दर्शक को यह पता चल जाता था कि फलागम क्या है—ठीक उसी तरह जैसे आज हम किसी भी ईसाई सलीबी नाट्य (क्रिश्चियन पैशन प्ले) में प्रत्येक घटना को पहले से ही जान लेते हैं। लेकिन इसके कारण नाटकीय उत्तेजना, संशय आदि में कोई कमी नहीं आती बल्कि उनमें स्थायित्व बना रहता है और शक्ति भी बनी रहती है। विषय-वस्तु की उत्कृष्टता—देवताओं, नायकों, राजाओं का चित्रण, दिलेरी से भरे संघर्ष और सर्वनाशकारी पतन—इन सब कारणों से नाटकों में ऐसी भावनात्मक उत्कृष्टता पैदा हो जाती है जो साधारण घरेलू दुःखान्त नाटकों या प्रेम-नाटकों में सम्भव नहीं।

तथाकथित आन्तरिक 'एकता' एक परिपाटी सी बन गयी थी जिसका पालन घटना-क्रिया के निर्माण में किया जाता था और कुछ आलोचकों के अनुसार यूनान के गम्भीर नाटकों में जो गरिमा और पवित्रता है उसका यही कारण है।

क्रिया, समय, स्थान—इन तीनों की 'एकताओं' मेंसे पहले की 'एकता' को सार्वदेशिक मान्यता मिल गयी थी। यह तो स्पष्ट ही है कि नाटक की क्रिया में प्रवाह की एकता होनी चाहिए। सम्पूर्ण नाटक को एक ही अन्तर्गठित टुकड़ा होना चाहिए। उसके प्रत्येक अंश में आन्तरिक गठन होना चाहिए। यही बात किसी भी कला की विशेषता के सम्बन्ध में कही जा सकती है, चाहे वह चित्र-कला का रंग हो, चाहे वह मूर्ति की धातु हो, चाहे किसी कविता में ध्वनि एवं विचार का प्रवाह हो। यदि क्रिया में 'एकता' न हुई तो अभिनीत नाटक लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकेगा, भावना और संवेग में उद्रेक नहीं होगा, स्थिरता नहीं आयेगी।

उस समय यह नियम बन गया था कि नाटककार को क्रिया के सम्पूर्ण समय को एक ही दिन में बटोर लेना पड़ेगा, और प्रत्येक दृश्य को एक ही स्थान पर केन्द्रित कर देना पड़ेगा। आज इस प्रकार की मर्यादाएँ हमें अनुचित मालूम पड़ती हैं। कुछ युगों से इन नियमों के प्रति जो अन्धी आस्था थी उसके कारण नाटककारों के सामने अनेक बाधाएं आयीं और रंगमंच के इतिहास में अनेक कठोरतम संघर्ष हुए। यूनानी नाटककार जो कि वर्णनात्मक, पूजामूलक नाटकों के अभ्यासी थे धीरे-धीरे उन सीमाओं से मुक्त हुए जो शायद गीतात्मक समूह-अभिनयों एवं नृत्य-रंगमंच के कारण उत्पन्न होती थीं। सामान्यतः वे किसी पौराणिक गाथा से किसी एक प्रकरण को उठा

लेते थे। ––ऐसा प्रकरण जो नायक के जीवन की किसी घटना से सम्बद्ध हो। उसका उपयोग भी वे इस प्रकार करते थे मानो वह घटना एक ही दिन में घटी है। उस समय नाटक में 'सेटिंग' की कल्पना ही नहीं थी (दृश्यावली की कमी की ओर तो आपका ध्यान गया ही होगा)। इसलिए सारी क्रिया एक ही स्थान पर होती थी। बाद के आलोचकों ने इन स्थितियों को गौरवपूर्ण बना दिया और सभी गम्भीर नाटककारों को इसका सम्मान करना पड़ा। यह विश्वास किया जा सकता है कि इन 'एकताओं' को बाद की नाटच-कला में स्वीकार करने के फलस्वरूप यूनानी नाटक की सादगी और प्रभावान्विति बढ़ी। बाद में जब परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गयीं तो नाटककारों ने इन नियमों का पालन नहीं किया। हम इनसे इन नियमों के पालन की मांग उसी प्रकार नहीं कर सकते जिस प्रकार इस बात की मांग नहीं कर सकते कि केवल देवता और सामाजिक नायक ही नाटच के मुख्य पात्र हों या विष्कम्भक के समय समूह-गानों द्वारा नाटच-क्रिया पर आलोचना अथवा उसकी परिणति की जाय। अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में यूनानी लेखकों के लिए कुछ ऐसे नियम बनाये जो अत्यधिक उपयोगी थे और कभी-कभी पुनरुत्थान युग और आधुनिक संसार के लिए अत्यन्त चमत्कारपूर्ण सिद्ध हुए। परन्तु उन्होंने कुछ ऐसे नियमों को भी स्थिर किया जिनके कारण बाद के बहुत दिनों तक अनेक कठिनाइयां हुईं।

एस्किलस ने, जो महान दुःखान्त नाटककारों में प्रथम थे, अपने नाटकों में सोफ़ोक्लीज और यूरीपिडीज़ से अधिक सादगी और प्राचीन समूह-गीतों के साहित्यिक आधार को बनाये रखा। 'इडिपस, दी किंग' में जो कथानक मिलता है उससे कम उलझे हुए कथानकों का निर्माण उन्होंने किया। वे दो दृष्टियों से महाकाव्यात्मक थे। उनमें सच्ची महाकाव्यात्मक महत्ता और स्मरणीय स्फुट काव्य-प्रणाली दोनों का सम्मिलन था। उनमें इस बात की कोशिश नहीं की गयी थी कि घटनाओं में बनावटी ढंग का पालिश किया हुआ हो जैसी और महान् नाटकों में रही है। महाकाव्यकारों द्वारा चुने गये विषय, पौराणिक और वीरगाथाकालीन एवं ऐतिहासिक कहानियां, जिनमें धार्मिक मन्तव्य छिपे रहते थे, उन्हें बहुत प्रिय थीं। सोफ़ोक्लीज और यूरीपिडीज़ ने जिन मानवीय कथाओं को अपने हृदय को छू लेने वाले नाटकों में स्थान दिया उनसे इनको विशेष प्रेम नहीं था।

एस्किलस का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब कि प्राचीन परिपाटियों पर नाटककारों का आवेग बह चुका था। उन्होंने उठते-उभरते नाटक की ओर रुख किया लेकिन डायोनिशियस की सेवा में अपनी प्रतिभा को लगाया, उसके अधिक पावन

पक्ष पर बल दिया, उन्होंने अपने को डायोनीशियन उत्सवों की उन मानवीय अभि-व्यक्तियों से बिल्कुल अलग रखा जिन्हें वे उच्छृंखलतापूर्ण समझते थे।

उनके जीवन के बारे में जो कुछ जानकारी है उससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और अनुमान कर सकते हैं कि कौन से वे कारण थे जिनके फलस्वरूप वह संसार के सर्वप्रथम महान् नाटककार हुए। वह अच्छी तरह जानते थे कि वह कौन सी पौराणिक परस्म्पराएं हैं जिनसे नाटक का उद्भव हुआ। इसका कारण यह है कि उनका जन्म-स्थान इल्युसिस था और वह वहाँ के अत्यन्त मनोहारी उत्सवों के स्वप्न देखा करते थे। उनका जन्म ५२५ ई० पू० में एक कुलीन घराने में हुआ और ४९९ ई० पू० में उन्होंने एक नाट्य-प्रतियोगिता में भाग लिया। एक सैनिक की हैसियत से उन्हें मैराथान और सलामिस में बड़ी मान्यता मिली। वहां अन्य ऐसे कवि-दार्शनिकों के साथ, जिन्हें युद्ध में भाग लेना पड़ता है, इस्किलस को भी जीवन की गहराइयों में उतरने का अवसर मिला। वह एक यात्री भी थे। और तत्कालीन ब्यौरों में उनके सुदूर सिसिली की यात्रा करने का वर्णन मिलता है जहाँ जाकर उन्होंने अपने कई नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये। चालीस वर्ष तक उनका जीवन घनिष्ट रूप में एथेन्स स्थित महान् डायोनिशिया और डायोनिशस की रंगशाला में होने वाली प्रतियोगिताओं से सम्बद्ध रहा। कहा जाता है कि ४९९ ई० पू० और ४९८ ई० पू० के बीच जब कि 'ओरिस्टिया' को मंच पर प्रस्तुत किया गया, उन्होंने नब्बे नाटक लिखे। इनके दुःखान्त नाटकों की पाण्डुलिपियों में से सात तो सम्पूर्णरूप से आज भी मिलती हैं। बारह बार दुःखान्त नाटक-प्रति-योगिताओं में वह पुरस्कृत भी हुए थे।

जो लोग एस्किलस को 'दुखान्त नाटकों का पिता' कहते हैं उनके मस्तिष्क में केवल एस्किलस की महान् काव्य-प्रतिभा ही नहीं थी जिसके कारण उसने अपने पूर्वजों द्वारा स्पर्श किये गये स्तर से बहुत ऊंचे स्तर पर नाट्य-कला को पहुँचाया, परन्तु वे ऐसा इसलिए भी कहते थे कि जब मंच पर केवल एक समूहगान के नेता और केवल एक अभिनेता प्रस्तुत होते थे और द्वन्द्व एवं नाट्य-रचना दोनों के क्षेत्र अत्यन्त सीमित थे, तब एस्किलस ने दो अभिनेताओं को प्रस्तुत किया (उनमें से प्रत्येक अभिनेता बार-बार चेहरा और वस्त्र बदल कर अनेक भूमिकाएं अदा करता था)। तब उसने कथानक और चरित्र-चित्रण को अधिक विकसित करने का द्वार खोल दिया और इस प्रकार कथानक के माध्यम से जो बातें हो चुकी हैं, मात्र उनका वर्णन न करके तात्कालिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त किया।

फिर भी उसके प्राप्त नाटकों में से सबसे प्राचीन नाटक 'दी सप्लायण्ट्स'

(सबसे प्राचीन यूनानी नाटक जो अब भी मिलता है) पुरानी सीमाओं के बाहर बहुत मुश्किल से निकल पाता है। इसमें गीतात्मक काव्य की बहुलता है, और क्रिया-शीलता बहुत कम है। नाटक का आधा अंश-समूह-गीतों से भरा है। साधारण-तया पात्र स्वयं कुछ करने के बजाय जो किया जाता है उसके बारे में चर्चा करते हैं। पूरे नाटक में केवल एक ही घटना का वर्णन है, घटनाओं की श्रृंखला तथा कार्य-कारण प्रभाव की अनिवार्यता नहीं है। 'सप्लायण्ट्स' मिस्र के सम्राट् दानौस की पचास बेटियां हैं। वे अपने पचास चचेरे भाइयों से जान बचाकर अरगोस में चली गयी हैं। ये भाई उनसे विवाह करना चाहते थे। यही 'सप्लायण्ट' कुमारियां समूह-गान की सदस्याएं बनती हैं। उनका नेता दानौस उनके पलायन का वर्णन करता है और उनकी सुरक्षा तथा मंगलमय भविष्य के लिए देवताओं से प्रार्थना करता है। अरगोस का शासन सुरक्षा-सम्बन्धी उनकी प्रार्थना को सुनता है। वह अपनी जनता और देवताओं के डर के कारण हिचकिचाता है, फिर सलाह करने के लिए चला जाता है। सूचना आती है कि शरणार्थियों का स्वागत करने के लिए आज्ञा जारी कर दी गयी है। तब तक उन लड़कियों का पीछा करने वाले लोगों का जहाज़ दिखायी देता है, और मिस्र का दूत उन कुमारियों को समुद्र-तट पर ले जाने के लिए आता है, परन्तु अरगोस का शासन उन लड़कियों को नगर की दीवार के भीतर सुरक्षित रखने की व्यवस्था कर देता है। ये लड़कियां खुश होकर, समूह-गान से तितिर-बितर होकर सुरक्षित स्थान में चली जाती हैं। यहां थोड़ी सी सक्रियता दिखायी पड़ती है लेकिन बड़ी सादगी है, और घटनाएं बहुत धीरे-धीरे बढ़ती हैं। "इडिपस दि किंग" की भांति अनिश्चयता का भी कहीं पता नहीं है। सारा सौन्दर्य केवल गीतात्मक अंशों में है।

एस्किलस के बाद नाटकों में नाटकीय विविधताएं बढ़ती जाती हैं। संघर्ष की मात्रा बढ़ जाती है। नाटकीयता के गुणों में भी बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। 'प्रोमिथियस बाउण्ड' सर्वोत्कृष्ट दुखान्त नाटकों में से एक है। परन्तु उसमें सक्रियता की कमी है। पहले ही दृश्य में प्रोमिथियस एक चट्टान से बंधा हुआ दिखाया जाता है। उसे इसलिए दण्डित किया गया था कि उसने मनुष्यों को आग दे दी थी। नाटक के बाकी अंश में केवल 'कोरस' तथा बाद में आने वाले अन्य पात्रों के साथ प्रोमिथियस की बातचीत होती है और अन्त में वह अर्न्तधान हो जाता है। परन्तु संघर्ष उस परिस्थिति में स्पष्ट होकर सामने आता है जब कि एक छोटा देवता ज़ियूस की आज्ञाओं का उल्लंघन करता है। यह एक ऐसा नाटक है जिसके कुछ अंशों की तुलना 'जाब' से की जा सकती है, यद्यपि यह सही है यह क्रियाविहीन

रूपक सम्पूर्ण नाटक है। पाठकों को यह याद रखना चाहिए कि एस्किलस के समय में प्रत्येक नाटक तीन सम्बद्ध नाटकों का एक अंग होता था और उन्हें एक ही कार्य-क्रम के अन्तर्गत मंच पर प्रस्तुत किया जाता था।

परन्तु 'अगामेमनान' एक ऐसा नाटक है जिसमें सम्पूर्ण घटना-विधान है और इसकी रचना उत्कृष्ट नाटकीय गुणों से युक्त है। प्राथमिक वक्तव्यों में ही आगामी सर्वनाश के संकेत मिल जाते हैं और तत्काल ही सक्रियता भी शुरू हो जाती है। ज्यों-ज्यों सक्रियता चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है त्यों-त्यों वक्तव्य बड़े होते जाते हैं। और अनेक वर्णनात्मक अंश भी आ जाते हैं। अब यूनानी दुःखान्त नाटक का विस्तार हो चुका है, उसकी महिमा बढ़ गयी है, घटना-क्रम में अनिवार्यता आ गयी है। उसका काव्यांश भी कम ओजस्वी नहीं है। क्लीटेमनेस्ट्रा बोल रही है। उसका राजा अगामेमनान आने वाला है। उसने इस बात का पता नहीं लगने दिया है कि वह क्लीटेमनेस्ट्रा के पाप को जानता है।

ओ बुजुर्गो, आर्गिवकी कौंसिल के जो लोग यहां उपस्थित हैं,
मैं आप लोगों के सामने, आपकी आंखों के सामने
अपनी वासना का उद्घाटन करने में संकोच न करूंगी।
नारी के जीवन में ऐसा भी अवसर आता है जब उसका
सारा भय तिरोहित हो जाता है सदैव के लिये।
मुझे किसी ने कुछ नहीं सिखाया, बताया,
मुझसे ही बढ़ती उम्र का बोझ सँभाला न गया,
सहा न गया, उस समय जब कि
यह आदमी इलियन में रहता था।
अगर किसी स्त्री को आधे खाली मकान में
अकेले रहना पड़े और आसपास एक आदमी भी न हो
तो वह भय के मारे आधी अंधी तो हो ही जायेगी।
और उसके कानों में गूँजते ही रहेंगे
आक्रोश के स्वर, कभी पाप के दूत, कभी वह भी नहीं...
अरे, अनेकों बार मेरा दिल टूट गया, और
मौत का फंदा मेरे गले में पड़ गया,
मगर इन्होंने उस फन्दे को ढीला कर दिया,
इन्हीं आवाजों ने जो मेरे इन कानों में गूँजा करती थीं।

अब इस बोझ के हट जाने के लिये,
और अपनी आत्मा के मुक्त हो जाने के लिए
मैं अपने प्रभु को प्रणाम करती हूँ !

अगामेमनान उन नाटकों में प्रथम है जो 'ओरिस्टीया-त्रय' का एक अंग है। और बहुत से लोग यह मानते हैं कि यह नाट्यत्रयी एस्किलस की ही सबसे बड़ी सफलता नहीं है वरन् यूनानी दुःखान्त नाटक की चरम उपलब्धि भी है। इनकी वाह्य रेखाएँ बड़ी व्यापक हैं। क्रिया में एक शान है, एक ऐसी शान जो बाद के रंगमंच के इतिहास में कम ही मिलती है। काव्य के आवरण में मिल्टनीय महानता है, पवित्रता है, भाषा का एक अछूता सौन्दर्य है। फिर भी सोफ़ोक्लीज़ अधिक कुशल शिल्पी है और यूरीपिडीज मानवीय पात्रों के प्रति अधिक सहानुभूति रखता है। एस्किलस स्वर्ण-युग में रहता था। उस वक्त के यूनानी जीवन में जो कोमलता और सहज शालीनता थी उसकी अभिव्यक्ति एस्किलस की नाट्य-रचनाओं में होती है। उस समय लोगों में एक कोमल आस्था थी जो जीवन के किसी महान् प्रयोजन और आत्मा की भव्यता से सम्बद्ध थी। सोफ़ोक्लीज़ बाद के अधिक शालीन युग की कला की परिष्कृति को अभिव्यक्त करता है। यूरीपिडीज़ में एक प्रकार की बेचैनी है, एक प्रकार की जिज्ञासा है, जो, लगता है, प्रारम्भिक यूनानी जीवन के पतन से ही आविर्भूत हुई थी।

सोफ़ोक्लीज़ में कठोर नाटकीय गम्भीरता और कथोपकथन में अधिकाधिक उन्मुक्तता की ओर होने वाली प्रगति के चिह्न दिखायी देते हैं। उसने अधिकाधिक सुसम्बद्ध और गठीले नाट्य-विधान की ओर प्रगति की। उसमें अधिक उन्मुक्त और कोमल मृदु भाषा का प्रयोग करने की प्रवृत्ति थी। फलतः एस्किलस के ऋजुतापूर्ण सौन्दर्य का आभास सोफ़ोक्लीज़ की रचनाओं में कम ही मिलता है। यह परिवर्तन उसके अपने वैयक्तिक जीवन के अनुकूल ही है। हमें पता है कि वह अपने निजी जीवन में बहुत ही संयत था। अपने अच्छे स्वभाव और मृदुलता के कारण वह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। उसके जीवन में शालीनता की मात्रा अत्यधिक है। शालीनता और राजसी शान उसके चरित्र के अंग थे। परन्तु उसे पेरीक्लियन युग की सम्पूर्ण सुषमा से समन्वित व्यक्ति होने का अवसर न मिलता यदि अपनी इन विशेषताओं के साथ वह मनुष्यों को अधिक प्यार न करके एस्किलस की भांति देवताओं की ही महिमा गाया करता।

सोफ़ोक्लीज़ का जन्म ४९५ ई० पू० में हुआ। उसकी मृत्यु ४०६ ई० पू० में

हुई, और अपने जीवन-काल में उसने सौ नाटकों की रचना की। उसके सात नाटक अब भी अपने पूर्णरूप में प्राप्त हैं। युवाकाल में ही उसने अभिनय करना बन्द कर दिया क्योंकि उसकी आवाज़ कमज़ोर थी। लेकिन निश्चित रूप से उसने अपने नाटकों को लिख कर उन्हें रंगमंच पर 'प्रस्तुत' किया। यूनानी दुःखान्त नाटकों में तीसरे अभिनेता को उसने ही प्रविष्ट कराया।

जहाँ तक उसके नाट्यालेखन की विशेषता का सम्बन्ध है हम 'इडिपस दि किंग' का उदाहरण देकर ही संतोष कर सकते हैं। हमने देखा है कि आदि से अन्त तक इस नाटक की रचना कितनी पूर्ण है, इसमें कितनी नाटकीय अनिश्चयता है, कितनी गहराई है। हमने देखा है कि किस प्रकार कौशल के साथ एक के बाद एक घटनाएं अनावृत होकर सामने आती हैं और दर्शकों का ध्यान लगातार उनकी ओर लगा रहता है, किस प्रकार नाटक का प्रत्येक अंश मुख्य रचना-विधान से बँधा रहता है, किस प्रकार प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक विचार, प्रत्येक गीत जीवित सक्रियता की महाधारा को अनुप्राणित करते हैं। एस्किलस के खंड-चित्र बड़े व्यापक होते थे। लोगों का कहना है कि नाटक की रचना करते समय वह कुछ 'पागल' हो जाया करता था। व्यापक प्रभाव छोड़ने के लिए अपनी रचनाओं के कूल-किनारों को अपरिमार्जित छोड़ देता था। परन्तु सोफ़ोक्लीज़ पूर्ण शिल्पी था। पहले वह अनुपातों को ठीक करता था, फिर बारीक सामंजस्य की ओर ध्यान देता था और सर्वोपरि अभिव्यक्ति के सन्तुलन को निभाता था। एकता, समरूपता, घटनाओं का केन्द्राभिमुख संगम और सुनियंत्रित क्रमिक विकास—इन बातों के विषय में उसकी समझ निर्दोष थी। रंगमंच के सम्पूर्ण इतिहास में, जहाँ तक नाट्य-शिल्प का सम्बन्ध है कोई भी उसके आगे नहीं बढ़ सका। इस शिल्प के साथ उसने अपनी रचनाओं में महान् सौन्दर्य को भी सुरक्षित रक्खा। (जहाँ तक केवल शिल्पी होने का सम्बन्ध है सम्भव है कि १९वीं शताब्दी के 'सुरचित नाटकों' के प्रणेता अत्यन्त पूर्णनाट्य-विधान तैयार करने में आगे बढ़ गये हों परन्तु उस नाट्य-विधान के चौखटे में उन्होंने किसी वस्तु-विशेष की प्रतिष्ठा नहीं की। जो तथ्यवादी नाटककार हुए उन्होंने भी पूर्ण कौशल के साथ अपने नाटकों में रोमांच और भय के भावों को भरा परन्तु उनमें न वह प्रसाद गुण है, न उत्कृष्ट सौन्दर्य।)

'इडिपस दि किंग' सोफ़ोक्लीज़ की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। उधर हमने जो उद्धरण प्रस्तुत किये हैं उससे सोफ़ोक्लीज़ की काव्यात्मक प्रतिभा का प्रमाण मिलता है। उसकी कौशलपूर्ण नाट्य-रचना के प्रमाण के लिए उसके इस काव्य-कौशल के वैशिष्ट्य को ध्यान में रखना पड़ेगा। फिर भी यह ध्यान में रखना

पड़ेगा कि दूसरे लोग उसके 'ऐण्टीगनी' या 'इडिपस ऐट कालोनस' या 'अजक्स' या 'एलेक्ट्र' को अधिक पसन्द करते हैं। अन्त में, उसके चाहे जिस भी नाटक को कोई पढ़े या देखे प्रत्येक व्यक्ति भाग्य के चंगुल में बुरी तरह फंसे हुए मनुष्य के संघर्ष-युक्त दृश्य को देखकर आन्दोलित हो उठेगा—वह मनुष्य, जो अपने जीवन के संघर्षों में बहादुरी के साथ डटा हुआ है और जिसके अन्दर उन देवताओं का भी कुछ अंश है जो उसे अपने हाथों का खिलौना बनाये हुए हैं। अपने मस्तिष्क की आँखों से यूनानी रंगशाला के सौन्दर्य को, शानदार अभिनय को, लययुक्त समूह-गान के पद-संचालन को हर कोई देख सकता है। और मस्तिष्क के ही कानों से काव्यात्मक पंक्तियों को उच्चरित होते, संगीत-सम्मत ढंग से गाए जाते और सस्वर पढ़े जाते सुना जा सकता है, क्योंकि ये रचनाएं नाटकीय हैं, केवल काव्यात्मक कथाएं नहीं।

कभी किसी ने कहा था—"मैं एस्किलस की प्रशंसा करता हूँ; मैं यूरीपिडीज़ को पढ़ता हूँ।" इन थोड़े से शब्दों में उस व्यक्ति ने इस बात का संकेत दे दिया है कि पिछले सैकड़ों नाटककारों के किस अन्तर का विवेचन वह कर रहा है। शायद एस्किलस को उसकी कृतियों की भव्यता के कारण ही बाद में कुछ क्षति पहुँची और यूरीपिडीज़ में जो अपनत्व है और सहज मानवीयता है उसी के कारण उसको लाभ हुआ।

यूरीपिडीज़ का जन्म ४८० ई० पू० में हुआ। यानी वह सोफ़ोक्लीज़ के ठीक पन्द्रह वर्ष बाद पैदा हुआ। परन्तु प्रायः अनिवार्य रूप से उसे एक भिन्न युग का प्रतिनिधि माना जाता है—उसे 'प्रथम आधुनिक' नाटककार भी कहा गया है। कुछ लोगों का कहना है कि यूरीपिडीज़ काव्य एवं नाट्य की दृष्टि से परम्परागत लीक से जो अलग हुआ उसका कारण यह है कि वह स्वभाव से ही एक भिन्न प्रकार का विचारक था। वह उतना कुलीन नहीं था जितना उसके पूर्वज थे। पहले वह पहलवानी करता था। फिर, लगता है, वह चित्रकार हो गया। अन्त में वह एक अध्येता और नाटककार के रूप में सामने आया। पचीस वर्ष की उम्र में उसने अपना पहला नाटक लिखा। वह सदैव नागरिक और सामाजिक व्यस्तताओं से दूर रहा। उसकी अपने समकालीन सामाजिक जीवन में भाग लेने की अपेक्षा चिन्तन में ही लीन रहने की प्रवृत्ति थी।

यदि हम उस काल के इतिहास को ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें उस आधारभूत कारण का पता चलेगा कि क्यों उसने अपने नाटकों में मानव-प्रतीकों को नहीं, मानवों को चित्रित किया है; क्यों उसने देवताओं में केवल दैवी गुण ही नहीं दुरा-

शयता आदि भी प्रदर्शित किया है; और क्यों अक्सर उसके नाटकों के अन्त में जीवन से सम्बन्धित प्रश्न-चिन्ह पाये जाते हैं। उस समय हेलास में एक नये प्रकार की संशयालुता फैल रही थी। उस समय की मांग यह नहीं थी कि मनुष्य बिना किसी प्रकार के प्रतिबन्ध के भाग्य के सामने हथियार डाल दे, या अन्धा होकर के देवताओं की प्रशस्ति किया करे। इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि यूरीपिडीज़ के मन में उन देवताओं के प्रति किंचित मात्र आस्था नहीं थी। फिर भी वह उन देवताओं को अपने नाटकों में सम्मिलित करने के लिए मजबूर था। कारण यह है कि उस युग में नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करना और नाटकों को देखना—इन दोनों को धार्मिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत ही माना जाता था। अच्छा, इसीलिए वह देवताओं को उसी प्रकार चित्रित करता था जैसे वे थे, और मनुष्यों को भी।

एक दूसरा अनुमान यह भी लगाया जा सकता है कि जिस प्रकार के प्रेक्षकों के लिए वह रचना करता था वे पहले के प्रेक्षकों की तुलना में कम सुसंस्कृत थे। अतः नाटकों में उनकी रुचि बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि नाटककार उन प्रेक्षकों को अधिक निकट से और निजत्व के साथ स्पर्श करे। अब प्रेक्षक गाये गये शब्दों के परम्परागत सौन्दर्य में उतनी रुचि नहीं रखते थे। प्रसंगवश जिन गीतों को देवताओं के सामने क्षन के लिए समाविष्ट कर लिया जाता था, उनको सुनने में प्रेक्षकों का मन उतना नहीं लगता था। वे अब यह नहीं मानते थे कि लय, ताल, गति की कला का सौन्दर्य नाटक का अनिवार्य एवं अविभाज्य अंग है; अब वे नाटक देखना चाहते थे, सुनना चाहते थे और अपने ही समान प्राणियों के सुख-दुःख में हिस्सा लेना चाहते थे।

इसलिए यूरीपिडीज ने नाटकों का मानवीयकरण किया। शायद उसके हृदय में जो करुणा थी वही इसका कारण थी। फलतः ऐसे नाटकों की रचना हुई जिनमें मनुष्य के दुःख और उसके प्रति संवेदना का स्पन्दन था। हम अभी इस विषय के अन्तर्गत सौन्दर्यानुभूति का विश्लेषण नहीं करना चाहते। हम इसका विवेचन नहीं करना चाहते कि पहले के दुःखान्त नाटकों में जो एक प्रकार की पवित्रता और उत्कृष्टता थी वह बाद के नाटकों में उपस्थित करुणा एवं संवेदनाशीलता से अधिक रुचिकर थी या नहीं। पवित्रतावादियों ने यूरीपिडीज़ की बड़ी भर्त्सना की है—फिर भी अधिकतर लोग जहाँ एस्किलस की प्रशंसा करते हैं; पढ़ते यूरीपिडीज को ही हैं। उसकी रचनाएं हमारे हृदय के अधिक समीप हैं।

उसने अपने नाटको में कुछ ऐसी नयी बातों का समावेश किया जिनके औचित्य पर आसानी से शंका की जा सकती है। अपने नाटकों की प्रस्तावनाओं में वह जनता के सामने नाटक की पृष्ठभूमि से सम्बन्धित तथ्यों को पेश कर देता था। उसका इस प्रकार

का यांत्रिक तरीका, जिसके सहारे वह नाटक की कठिन समस्याओं को मनमाना हल कर लेता था, स्पष्ट रूप से तर्कहीन है, एक प्रकार की तिकड़म है। और यहाँ न तो सोफ़ोक्लीज़ की कला के अनुपात और तारतम्य के दर्शन होते हैं, न घटना-क्रम की अनिवार्यता के।

फिर भी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में और उसके बाद भी यूरीपिडीज़ सब से अधिक लोकप्रिय एथीनियन नाटककार हुआ। उसी की सबसे अधिक आलोचना हुई; उसी का सब से अधिक विरोध भी हुआ। परन्तु देवताओं के सम्वन्ध में उसने जो शंकाएं प्रकट कीं और दुःखियारे मनुष्यों का उसने जो चित्रण अपने नाटकों में किया, लोग व्यग्रतापूर्वक उसकी राह देखते थे और उसका स्वागत करते थे। यह आसानी से देखा जा सकता है कि उसने 'दि ट्रोजन वीमेन' में युद्ध की भयानकता का जो चित्रण किया और उससे उत्पन्न पीड़ा और कष्ट को दर्शकों के सम्मुख रक्खा उससे किस प्रकार यूनान की जनता करुणा-विगलित हो जाती थी। सही यह है कि पिछले दिनों में उसने हममें से बहुतों को हिला दिया है। 'हिप्पोलीटस' में उसने एक अतिशय अवैध प्रेम को जिस प्रकार एथीनियन प्रेक्षकों के सामने रखकर उन्हें चमत्कृत कर दिया वैसा अन्य कोई नाटककार नहीं कर सका। कारण यह है कि इससे पहिले वहां के रंगमंच पर कभी ऐसी मानवीय कथा को प्रस्तुत नहीं किया गया था। 'मीडिया' जैसी घृणास्पद परन्तु सशक्त महिला का जो अनुशीलन प्रस्तुत किया, उसमें जिस प्रकार उसका प्यार घृणा में परिवर्तित हुआ, जिस प्रकार अपने स्वामी से बदला लेने के लिए उसने अपने ही बच्चों की हत्या कर डाली, यह सब एक ऐसा पात्र-चित्रण है जैसा इसके पहले कभी नहीं हुआ।

किन्तु एथेन्स ऐसे नाटककारों का स्वागत करने के लिए तैयार नहीं था जो खुले आम युद्ध की आलोचना करते थे, जो देवताओं को संकुचित मनोवृत्ति-वाले और घृणास्पद चित्रित करते थे, जो समाज के दबे पिसे लोगों के लिए युद्ध करते थे, जिन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि उनके ऐसा करने से किसको क्षति पहुंचती है। उसने अपने कुल ९२ नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किए। इन प्रतियोगिताओं में निर्णायकों ने उसके कुल पांच नाटकों को पुरस्कृत किया और अन्त में परम्परागत कट्टरता का निर्वाह न करने के अपराध में उसे देश-निकाले का दण्ड दे दिया गया। डायोनिशस की रंगशाला में जो अस्थिर-बुद्धि की जनता एकत्र होती थी उसके सम्मुख बड़े से बड़ा नाटककार भी अपने को सुरक्षित नहीं अनुभव करता था। एक बार तो दर्शकों ने सोचा कि अपने एक नाटक में एस्किलस ने धार्मिक रहस्यों का आवश्यकता से अधिक उद्घाटन कर दिया है। फलतः अपनी प्राण-रक्षा के लिए, समूह-गान की परिधि के

बीच स्थित डायोनिशस के मन्दिर में उसे शरण लेनी पड़ी। (कहा जाता है कि बाद में जब इस अपराध के लिए उस पर मुक़दमा चलाया गया तो उसे इसलिए मुक्त नहीं किया गया कि वह महान् नाटककार था, बल्कि इसलिए मुक्त किया गया कि वह बड़ा बहादुर सैनिक था)। उसके पहले एक दुखान्त नाटककार फ्रिनिगस हुआ। उसने एक नाटक लिखा जिसका नाम था 'दि कैप्चर आव् मिलिटस'। इस नाटक को देखने के बाद दर्शकों के हृदयों में ऐसे कटु संस्मरण जागृत हो उठे कि नाटककार पर इस अपराध के लिए एक हज़ार ड्रेकमा जुर्माना कर दिया गया। साथ ही यह क़ानून बना दिया गया कि इस विषय पर नाटक न लिखे जायँ। बाद में वह एथेन्स से निकाल बाहर किया गया। परन्तु इससे उस नगर के प्रति उसकी सेवाओं का अन्त नहीं हो गया। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि लोग सड़कों पर उसके समूह-गान के गीत गाया करते थे। और जब स्पार्टा के सैनिक एथेन्स को जलाने जा रहे थे तो सहसा एक गीत का स्वर उन्हें सुनायी पड़ा जिससे उन्हें पता चला कि वह यूरीपिडीज़ का नगर है। तब उन्होंने नगर में आग लगाने का इरादा छोड़ दिया।

अपने प्रवास-काल में उसने अपूर्ण एवं अन्तिम नाटक की रचना की थी। तथ्य के कारण नाटक में एक विशेष प्रकार की भावना आ गयी है और जीवन की समस्याओं-पर परिलक्षित होती है। इस नाटक का नाम 'दि बक्की' है। मैं यहां इसी नाटक से कुछ उद्धरण दूँगा। आशा है, इस उद्धरण में इस बात का संकेत मिल जायगा कि कैसे यूरीपिडीज़ ने अपनी शानदार परम्परा का ही निर्वाह नहीं किया, बल्कि जहां कहीं उसने परम्परा का परित्याग किया वहां अन्य प्रकार की विशेषता प्रदर्शित की। उसने अपनी लय में समूह-गीतों को मोतियों के दाने की तरह ऐसा जड़ दिया है जैसा उसके पहिले किसी भी कवि ने कभी भी नहीं किया था।

कुमारियों का समूह गान

क्या वे फिर, फिर संभव होंगे
लम्बे-लम्बे नृत्य
रात भर चलने वाले, तब तक जब तक
नैश-सितारे धूँधले-फीके हो जायेंगे ?
ओस-कणों की शीलतला से कंठ हमारा
सिंच जायेगा ?
और वायु के झोंके मेरे केश पाश को बिखरा देंगे ?

गोरे-गोरे पांव हमारे चमक उठेंगे
क्या धुँधले विशाल प्रांगण में ?
वह देखो, मृगशावक भागा वनप्रदेश की हरियाली में,
हरी घास पर सुन्दरता के उस प्रान्तर में,
निपट अकेला;
उछल रहा है वह मृगशावक
अब शिकार का उसे न भय है
वह कि शिकारी के जालों से और शिकंजे की
जकड़न से बहुत दूर है:
पर आती आवाज़ दूर से,
आती है आवाज़, और आतंक,
शिकारी कुत्तों की द्रुत दौड़-धूप की;
नौ दो ग्यारह हो जा रे, ओ तेज़ भाग मृगछौने
सरिता के कगार से और तरेटी से झटपट तू...

नेता

वही सुखी है, जिसने क्लांत जलधि के ऊपर
तूफ़ानों से जान बचाकर शरण प्राप्त की।
वही सुखी है जो कि उठा है, मुक्त हुआ है,
निज यत्नों से ।
जीवन का यह चक्र खचित है
अति विस्मयकारी तत्वों से,
भाई भाई से बढ़ कर है क्योंकि स्वर्ण से और शक्ति से
वह मण्डित है ।
अगणित मानव जीवन-सरिता की लहरों पर
तिरते रहते अगणित आशाओं को पाले
जैसे गीले किण्वपिष्ट हों या लेई हों !
उनमें से कुछ सफलकाम हो भी जाते हैं ।
उनमें से कुछ असफलता को ही वरते हैं,
कुछ की आशा मर जाती है, कुछ मृगतृष्णा में जीते हैं,

पर किसको यह ज्ञात हो सका—
अनुभव के लम्बे अरसे में—
जिसका जीवन सुखी हो गया, प्राप्त हो गया स्वर्ग उसे ही।

परन्तु जहाँ तक रंगमंच के ऊपर क्रियाशील का प्रश्न है उसका अभूतपूर्व कौशल किसी प्रकार कम नहीं है। हमने 'इडिपस दि किंग' में देखा है कि किस प्रकार हत्या, आत्म-हत्या या इस प्रकार के अन्य दुर्धर्ष एवं हिंसात्मक कार्य मंच के परोक्ष में ही सम्पन्न होते हैं—यूनानी नाटकों में यह एक अटूट परम्परा है—और इस प्रकार एक सन्देशवाहक मंच पर आकर उस घटना का वर्णन करता है (अक्सर उसका वर्णन अत्यन्त द्रावक एवं प्रभावोत्पादक होता है)। 'दि बक्की' में सन्देशवाहक बता रहा है कि किस प्रकार अभागे पेन्थियस ने बैकान्टिस पर आक्रमण किया—

दिया सुनायी फिर से वह स्वर।
और उन्हें जब, अपने ही आराध्य देव के
अनुशासन का पता चल गया
बूढ़े कडमस के कुटुम्ब के लोग उठ पड़े—
मानो जंगल के कबूतरों का दल यों फड़फड़ा उठा हो—
और भागते वे सब आये,
उसकी अंधी मां आगावे, फिर
उसकी बहिनें पीछे-पीछे,
उसके पीछे उत्तेजित लोगों का दल था,
जो उस समय अधिक पागल था,
वे सब आये, ऊबड़-खाबड़ चट्टानों को और
हहरते लहरों से आपूरित वादी रौंद-रौंद कर,
और देख ही लिया उसे फिर देवदारु के घने छाँव में।
......उसकी मां उस पर चढ़ बैठी—
वह ही तो थी उस रक्तारुण कर्मकाण्ड की प्रथम पुरोहित।

उसने निज कन्टोप उतारी और जोर से उसे फेंक दी।
जिससे मां उसको पहिचाने,
करे न उसकी हत्या फिर वह।

गला फाड़ कर वह चिल्लाया, "मां, यह मैं तेरा बेटा हूँ,
तेरा पन्थिस, इचियन के प्रकोष्ठ में जन्मा
तेरी कोख जुड़ाई मैंने,
अरे दयाकर मेरी माता!
मेरे दुराचरण के कारण ऐसा न हो कि
तू निज सुत का ही बध कर दे।"
उसके होंठ गाझ से बिफरे,
उसके आँखों से ज्वाला की लप्टें जैसे लपक रही थीं।
उसके मन में जो विचार थे, ऐसे थे,
जैसे इस धरती पर न कभी हों,
वह बक्कुई के वशीभूत थी पूरी पूरी,
रुकी नहीं वह, सुनी न उसकी चीख पुकारें
अपने दोनों हाथों में फिर उसकी बांह पकड़ कर
और बगल को दबा पांव से बहुत जोर से
खींच ही लिया...
उसका कंधा अलग हो गया...

शायद यह उचित ही है कि यूनानी नाटककारों का जो एक संक्षिप्त अध्ययन हमने यहां प्रस्तुत किया उसका अन्त हम यूरीपिडीज़ के अन्तिम नाटक की अन्तिम पंक्तियों से करें। ये पंक्तियां समूह-गान में गायी जाती थीं और समूह-गान यूनानी रंगमंच की एक विशेषता थी। इन शब्दों से यह भी प्रमाणित होता है कि किस प्रकार धार्मिक-भाग्यवादी आस्था सम्पूर्ण स्वर्ण एवं रजत युगों में बनी रही। ये पंक्तियाँ उस नाटक में हैं जिसकी कथावस्तु डायोनिशस सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों से ली गयी है। यह वही डायोनिशस है जिसके सम्मान में रंगमंच निर्मित हुआ—

समूहगान

विधि-रहस्य के रूप अनेकों हो सकते हैं।
अगणित ऐसी बातों को प्रभु संभव करता
जिनकी आशा या आशंका कभी न होती।
जिसकी आशा नर करता है, कभी न होता।
जिसकी आशा कभी न होती उसकी राह निकल आती है—
ऐसा ही कुछ यहाँ हो गया!

यूनानी दुःखान्त नाटकों की विशेषता से परिचित होने, एस्किलस, सोफ़ोक्लीज और यूरीपिडीज़ की रचनाओं का रसास्वादन करने और ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के सुखान्त नाटकों को देख लेने के बाद यह कहा जा सकता है कि हमें यूनानी नाटक के मूल तत्वों की जानकारी हो गयी। दूसरे अध्याय में हम सुखान्त नाटक का परिशीलन करेंगे।
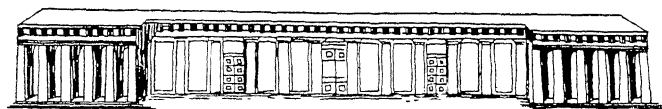
एथेन्स में स्थित पाँचवीं शताब्दी का 'थियेटर आव डायोनिशस' के 'स्कीन' का काल्पनिक चित्र। (जेम्स टर्नो एलेन द्वारा पुर्ननिर्मित होने पर रेखांकित।)

यहाँ अब हमें दुःखान्त नाटक के कम महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन करना बाक़ी है। अब हमें यह देखना है कि बाद के युग में किस प्रकार रंगशाला में और नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने ढंगों में परिवर्तन हुए और किस प्रकार यूनानी नाटक का पतन हुआ।

यूनान में उपर्युक्त तीन सर्वोत्कृष्ट नाटककारों के अतिरिक्त भी अनेक महान् दुःखान्त-नाटककार हुए।[1]

---

१. यूनानी रंगशाला के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी में कोई ऐसी विशद एवं पठनीय पुस्तक नहीं है जिसमें नाटक और रंगमंचीय परम्परा का एक साथ वर्णन मिल सके। राय सी० फिलीकिगर कृत 'दी ग्रीक थियेटर एण्ड इट्स ड्रामा' (चतुर्थ संस्करण, शिकागो, १९३६) शायद सर्वाधिक सम्पूर्ण और सर्वाधिक सही पुस्तक है, परन्तु इसमें निराशाजनक सतर्कता बरती गयी है और यह विवादास्पद भी है। ए० डब्ल्यू० पिकार्ड केम्ब्रिज कृत 'डिथीरैम्ब, ट्रेजेडी एण्ड कामेडी' (आक्सफोर्ड, १९२७) इससे भी अधिक विवादपूर्ण है, मगर जहाँ तक यूनानी रंगशाला के उद्भव सम्बन्ध है, यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। अब भी, ए० ई० हेग कृत 'दी ऐटिक थियेटर' (तृतीय संशोधित संस्करण, आक्सफोर्ड, १९०७) सबसे अधिक पठनीय ग्रंथ है; परन्तु यह कह देना जरूरी है कि इस लेखक को बाद के अनुसंधानकर्ताओं के ज्ञान से लाभान्वित होने का अवसर नहीं मिला था, इसलिए वह यूनानी रंगशाला का वर्णन करते हुए बताता है कि उसमें प्लैटफ़ार्म—रंगमंच था और चित्रित सेटिंग्ज़ भी थीं। जेम्स टूर्नो अलेन कृत 'स्टेज एण्टीक्विटीज़ आव दी ग्रीक्स एण्ड रोमन्स, (न्यूयार्क, १९२७) एक अच्छी छोटी-सी पुस्तिका है। मार्गरेट बीबर कृत 'दी हिस्टरी

इनमें से कुछ केवल इसलिए प्रसिद्ध हैं कि ऐसा वर्णन मिलता है कि उन्होंने वार्षिकोत्सवों की प्रतियोगिताओं में भाग लिया; कुछ का नाम योंही प्रसंगवश आ जाता है और कुछ के उद्धरण बाद के वैयाकरणों ने दिये हैं। परन्तु सामान्य पाठकों को, चाहे
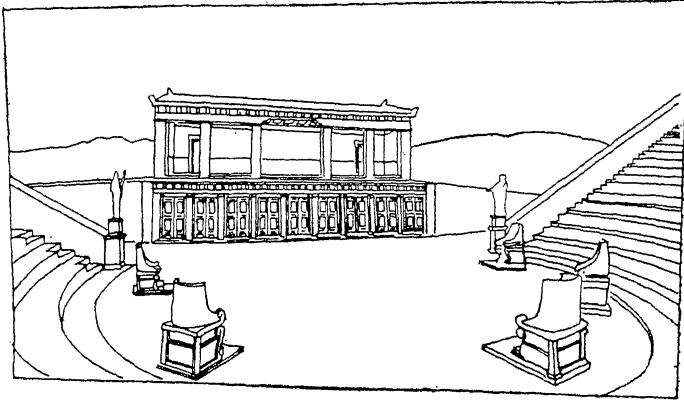
ओरोपस में स्थित रंगमंच की इमारत, जिसे अपनी कल्पना से ई० आर० फिएख्तेर ने पुर्ननिमित किया। (फिएख्तेर कृत दी बागेशिख्तलिखे एन्त्वीक्लुंग देस एन्तीकेन थियेतर्स।)

वह नाट्य एवं रंगमंच के इतिहास का विद्यार्थी ही क्यों न हो, यदि वह नाट्य-परम्परा के यूनानी काल के अध्ययन में विशेष योग्यता नहीं प्राप्त कर रहा है, तो उसे अपनी

आव दी ग्रीक एण्ड रोमन थियेटर' (प्रिन्स्टन, १९३९) एक विवेकपूर्ण और पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक है। इसमें ५६६ चित्र हैं। यूनानी रंगशाला के मूलतः साहित्य पर प्रकाश डालने वाली पुस्तकों में, शायद सबसे उपयोगी पुस्तक है ए० ई० हैग कृत 'दी ट्रेजिक ड्रामा आव दी ग्रीक्स' (आक्सफोर्ड, १८९६), ऐडिथ हैमिल्टन कृत 'दी ग्रीक वे' (न्यूयार्क, १९३०) और फ़िलिप व्हेले हार्श कृत 'ए हैण्ड बुक आव क्लासिकल ड्रामा' (स्टेनफ़ोर्ड युनिवर्सिटी, १९४४)। जहाँ तक यूनानी दुःखान्तकों के अनुवाद का प्रश्न है, इस लेखक को, गिलबर्ट मरे के ही अनुवाद सर्वश्रेष्ठ लगते हैं। यद्यपि कभी कभी मूल पाठ से अनुवाद का कोई अंश दूर पड़ जाता है, परन्तु काव्यात्मक अंशों की कमनीयता को ज्यों का त्यों क़ायम रखकर इसने इस कमी को पूरा कर दिया। एक विचित्र दो भागों का नाट्य संग्रह है जिसमें आसानी से ये अनुवाद प्राप्त हो सकते हैं: 'दी कम्पलीट ग्रीक ड्रामा,' (न्यूयार्क, १९३८)। इसका संपादन किया है व्हिटने जे० ओट्स और यूजीन ओ'नील जूनियर ने।

स्मृति को और बहुत से नामों के कारण बोझिल बनाने की ज़रूरत नहीं है। उसे सिर्फ़ यह जान लेना चाहिए कि प्रायः शाश्वत रूप से इसके बाद के युग में महान् दुःखान्त नाटकों की अनुकृति ही होती रही। प्रायः पाँच-छः सौ वर्षों तक प्रतियोगिताएँ होती रहीं। यहाँ तक कि द्वितीय शताब्दी ईसवी में रोमन एड्रियन के राजत्व-काल तक नव-निर्मित नाटक प्रतियोगिताओं में रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाते रहे। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के बाद उसके पहले की उत्कृष्ट रचनाओं को सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता था। तीसरी शताब्दी में यह कार्य रीत्यानुसारी बन गया। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया और डायोनिशस का उत्सव दूसरे नगरों और उपनगरों में होने लगा त्यों-त्यों एथीनियन नाटक के भाण्डार से ही लिये हुए नाटकों का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार जो अधिक महत्वपूर्ण नाटक थे वे बार-बार प्रदर्शित किये गये। ४७२ ई० पू० में ही एस्किलस ने सिराक्यूज में उन नाटकों को प्रदर्शित किया जिन्हें उसने साल भर पहले एथेन्स की नाट्य-प्रतियोगिता में प्रस्तुत किया था।

अभिनेताओं की टोलियां अधिक लोकप्रिय नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए प्रान्तो में भी गयीं। यह माना जा सकता है कि यह 'डायोनिशस के कलाकार' ही प्रथम 'अभिनेता संघ' के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जब रोम का रंगमंच अच्छी तरह स्थापित हो गया तो वहां भी यूनानी नाटक मूल भाषा में अथवा अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किये गये और अन्त में इन महान् नाटककारों की रचनाएँ नवीन रोमन साम्राज्य के विभिन्न अंचलो में और प्राचीन यूनान के औपनिवेशिक नगरों में मंच पर प्रस्तुत की गयीं। स्वयं एथेन्स में पाँचवीं शताब्दी ईसवी तक इन नाटकों के रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने के प्रमाण मिलते हैं।

इस प्रकार नाटक के उद्भव के सौ वर्ष के भीतर ही एथेनी नाटककारों का एक ऐसा दल उत्पन्न हुआ जो रंगमंच के अमर कलाकारों के एक छोटे से समुदाय में अपना स्थान रखता है। इन तीन नाटककारों की धार्मिक-कलात्मक रचनाओं में यूनानी जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हुई। इनके नाटकों में हेलेनिक सभ्यता एवं प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ। इसके बाद आठ-नौ शताब्दियों तक यूनानी रंगमंच को उन नाटकों के भरोसे ही जीवित रहना पड़ा जो निम्न कोटि के थे या जो इन महान् रचनाकारों के नाटकों की ही अनुकृति थे।

नाटक के विघटन-काल में भी यूनानी रंगमंच का पार्थिव स्वरूप विकसित होता रहा। और इसने उस यूनानी-रोमन रूप को ग्रहण किया जो कि रिनेसां रंगमंच का अग्रदूत था और जो सुनिश्चित रूप से आज के रंगमंच का पूर्वज माना जा सकता है। यूनानी नाट्य-रचना के स्वर्ण-युग में रगमंच की व्यवस्था सरल और सीधी थी।

गोलाकार ऊपर की ओर उठती सीढ़ियाँ, समूह-गान एवं अभिनय के लिए निर्मित खुली चिपटी जगह और पार्श्व में नीची ढकी हुई 'स्कीन', यही उस समय का रंगमंच था। प्रेक्षागृह और 'स्कीन' के बीच में आवागमन के लिए चौड़ा स्थान था और सम्पूर्ण मान-चित्र में एक ऐसा खुलापन था जो कि बाद की रंगशाला के निर्माण में दिखायी नहीं देता। धीरे-धीरे नृत्य के लिए सुरक्षित स्थान, समूह-गान के लिए सुरक्षित स्थान में संकोच होने लगा। मंच अधिक विशाल हो गया, वह अधिक निकट आ गया, अधिक महत्वपूर्ण समझा जाने लगा और अन्त में ढके हुए स्थान का ऊपरी हिस्सा रंगमंच का चबूतरा बन गया। अभिनय उसी स्थान पर होने लगा और उसके पीछे 'स्कीन' की दूसरी मंजिल बनी—इसी के पीछे मंच की वह दीवार थी जो यूनानी-रोमन तथा रोमन रंगशालाओं की एक विशेषता बन गयी।

हमें इस बात का कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसके आधार पर हम यह कह
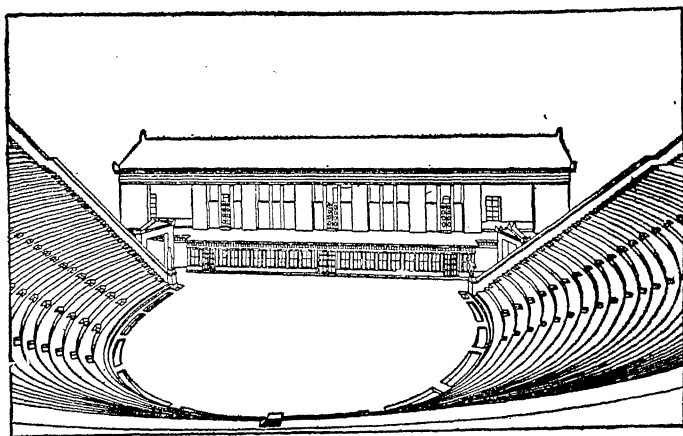
हेलेनिक युग की ईफीसस स्थित रंगशाला, जैसा उसे फ़िएख्लेर ने पुनर्निर्मित किया। दृष्टव्य यह है कि आरकेस्ट्रा के लिए अब भी खुली जमीन ही है, मगर मंच के आगे उठा हुआ चबूतरा जोड़ दिया गया है। वास्तविक यूनानी और वास्तविक रोमन प्रकार के बीच का एक संक्रान्ति-कालीन उदाहरण।

सकें कि अमुक रंगशाला विशिष्ट रूप से यूनानी अथवा रोमन है। इमारत का नक़्शा स्थानीय स्थितियों के अनुसार ही बनता था और नाटक प्रस्तुत करने वालों की आवश्य-

कता का भी विशेष ध्यान रक्खा जाता था। लेकिन जब रंगमंच में चबूतरे वाला शीर्ष जोड़ दिया गया तब रंगशाला में वे विशेषताएँ आ गयीं जिन्हें बाद के युग में रंगशालाओं के निर्माण में आधारभूत तत्व माना जाने लगा। ये वे विशेषताएँ थीं जिनकी अन्तर्सन्तुलित व्यवस्था के कारण संसार में रंगशालाओं का वर्गीकरण विभिन्न नामों से हुआ। प्रेक्षा-गृह (थियेट्रान) दर्शकों के बैठने के लिए एक स्थान था जहां पर नृत्य और अभिनय होता था। बाद में यह स्थान विभक्त हो गया और अन्त में संकुचित होकर यह प्रेक्षागृह में समाहित हो गया। मंच शुरू में केवल एक ऊँचा उठा हुआ चबूतरा था जिससे कि दर्शक कलाकारों को देख सकें। बाद में यह मंच-कक्ष की छत बन गया। 'स्कीन' आरम्भ में नृत्य के घेरे के बग़ल में मंच की एक इमारत थी ('स्कीन' का अर्थ केवल झोपड़ी या खेमा था), बाद में यही मंच की पिछली दीवार बन गया। उसमें कोई अन्य विशेषता नहीं थी। इसमें भवन-निर्माण कला की कोई विशषेता न थी। यह मात्र शोभा की वस्तु थी। (इसके बाद जब दीवार में एक खुली जगह भी बन गयी तो धीरे-धीरे दृश्य का अर्थ उस चित्र से लिया जाने लगा जो कि अभिनय के लिए सुनिश्चित स्थान के चारों ओर रहता था)—परन्तु यह स्थिति प्राचीन युग के बहुत बाद आयी।

समूह-गान के स्थान पर अथवा यूनानी मंच पर इतनी कम दृश्यावलियां रहती थीं कि उसका वर्णन संक्षेप में ही करना उचित होगा। बहुत दिनों तक विद्वान् लोग यह मान कर चलते थे कि यूनानी लोग अपने रंगमंच पर चित्रित 'सेटिंग' लगाते थे। परन्तु तत्कालीन कोई भी ऐसा वर्णन प्राप्त नहीं है और अधिकतर विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि इस निराधार कल्पना और अस्पष्ट संदर्भों की त्रुटिपूर्ण व्याख्या के कारण ही यूनानी रंगमंच की दृश्यावलियों के सम्बन्ध में यह धारणा बनी। यदि चित्रित 'सेटिंग्ज़' थीं तो भी लगता है कि शायद ये 'सेटिंग्ज़' और कुछ नहीं, रंगमंच के ऊपर बनी इमारत के अग्रभाग थे जिन्हें इस प्रकार प्रयुक्त किया जाता था कि मोटे खम्भों अथवा गवाक्षों के बनाने का खर्च बच जाय और इन 'सेटिंग्ज़' को उनके लिए प्रयुक्त किया जाय। दूसरे शब्दों में, मंच की पृष्ठभूमि में कोई खास चित्रण नहीं होता था वरन् वे परंम्परागत रूप से ही बनती थीं। 'सेटिंग' में किसी प्रकार के कल्पना-चित्र नहीं बनते थे। दृश्य में जो कुछ परिवर्तन होता था, उसका संकेत नाटककार के शब्दों से ही हो जाता था। यूनानी रंगमंच के पराभव के दिनों में जब कि दृश्य के प्रति ममता का रोमन प्रभाव यूनानी रंगमंच में प्रविष्ट हो गया था उस समय की बात दूसरी है। इसी प्रकार 'प्रभाव' उत्पन्न करने के लिए मंच पर जो व्यवस्था की जाती थी रोमन युग में उसमें भी वृद्धि हुई। इस बात का प्रमाण है कि कम से कम एक यन्त्र—देवताओं अथवा मनुष्यों के ऊपर चढ़ने या नीचे उतरने के लिए—बहुत पहले ही प्रयुक्त

होने लगा था। इस यन्त्र को ऐसे ढंग से बनाया जाता था कि अभिनेता समूह-गान की ज़मीन अथवा मंच के चबूतरे पर से दृश्य-भवन के ऊपरी हिस्से तक उठा दिया जा सकता था। यह विश्वास किया जाता है कि यूरीपिडीज़ में इस यन्त्र का उपयोग किया गया था—तभी 'डियु एक्स मेशीना' वाक्य बना। परन्तु मुख्य प्रमाण तो ऐरिस्टोफ़ेनीज़
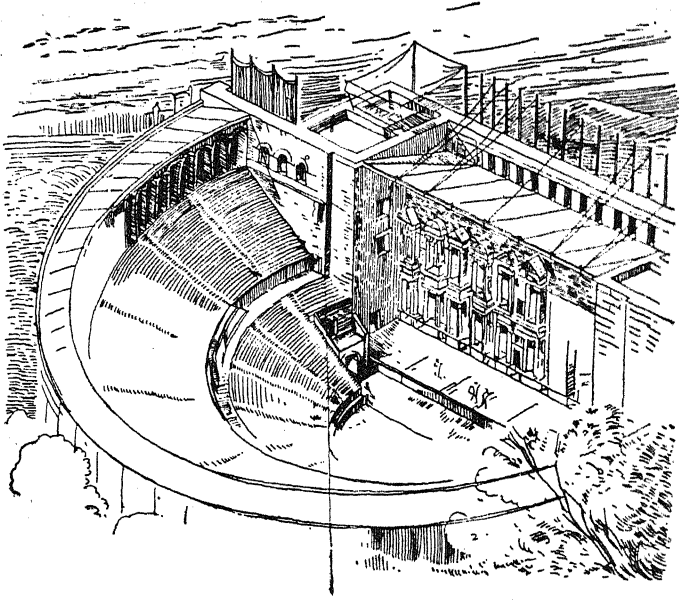
आस्पेन्डस स्थित रोमन रंगशाला का एक पुनर्निर्मित रूप—इसमें वास्तविक रोमन कासा-नुमा रूप स्पष्ट दिखायी देता है। सिकुड़े हुए आरकेस्ट्रा-दीर्घा ऊपर-उठा हुआ मंच और सजी-बजी मंच की दीवार दृष्टव्य हैं। (दर्म कृत बाउकुन्स्त देर रोमर से)।

में ही प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि सुखान्त नाटककार दुःखान्त नाटक में प्रयुक्त इस प्रकार के यन्त्र के सहारे हास्यमूलक स्थिति उत्पन्न करने का अवसर ढूँढ़ते होंगे। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि 'क्लाउड्स' नाटक में हम सुकरात को धरती और आसमान के बीच लटकती एक टोकरी में बैठकर दर्शन का अध्ययन करते हुए देखते हैं।

'एकीक्लीमा' नामक यन्त्र के सम्बन्ध में बहुत कम प्रमाण मिलता है, यद्यपि

नाटकों के अन्तर्साक्ष्य की दृष्टि से उनके सम्बन्ध में अधिक प्रमाण मिलने चाहिए थे। यह माना जाता है कि यह घूमने वाला मंच था। इसे इस प्रकार बनाया गया था कि इसे 'स्कीन' के बीच से बाहर निकाला जा सके जिसके ऊपर अभिनेता 'टेबला' की शकल में दिखाया जा सके। दुःखान्त नाटकों में एस्किलस-कृत 'अगामेमनान' में हत्या के दृश्य का उदाहरण आमतौर से दिया जाता है। यह सही है कि हत्या मंच के बाहर होती है और फिर यह दिखाया जाता है कि क्लीटेम्नेस्ट्रा अगामेमनान और कैसेंड्रा की लाशों के ऊपर खड़ी है। यह फिसलने या घूमने वाले मंच की सहायता से ही दिखाया जा सकता था, क्योंकि अभिनेताओं का यह दल एकाएक सामने आ जाता है।

जिस तरह रंगमंच के रूपों, दृश्य-दृश्यावलियों और यन्त्रों के सम्बन्ध में विवाद रहा है उसी प्रकार पिछले वर्षों में महान् पांचवीं शताब्दी के अभिनय के ढंग के सम्बन्ध में भी बहस हुई है; उसकी भर्त्सना की गयी है और अबाध रूप से उसके सम्बन्ध में लिखा भी गया है और यहाँ फिर एक ही पीढ़ी में लोगों के विचार मौलिक रूप से बदल गये हैं। अब यह प्रमाणित हो गया है कि अभिनेता जो दुःखान्त नाटकों में बहुत मोटे तल्ले के जूते पहिनते थे, फूले कपड़े पहिनते थे, बड़े-बड़े चेहरे लगाते थे, ये सब बातें बाद के युग की बातें हैं। अब यह अधिक सही मालूम होता है कि एस्किलस और यूरीपिडीज़ के काल में अभिनेता का क़द कुछ असाधारण हुआ करता था, वस्त्र बहुत अच्छे होते थे और जो चेहरे वे इस्तेमाल करते थे वे उस प्रकार के बेढंगे और ऊँचे बने नहीं होते थे जैसा बाद के यूनानी और रोमन चित्रों में प्रदर्शित किये गये हैं। निस्सन्देह अभिनय में कृत्रिमता होती थी और अभिनेता वार्तालाप में अलंकृत शैली का प्रयोग करते थे। लेकिन हम अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं कि उनका यह अभिनय अधिक शानदार और निर्बन्ध था, यद्यपि उसकी गति में मन्थरता थी और कभी-कभी उसमें बनावटीपन भी होता था। चेहरे (चाहे इसके अन्य कोई सूक्ष्म कारण न भी रहे हों, फिर भी इनकी आवश्यकता इसलिए पड़ती थी कि अक्सर एक ही अभिनेता को एक ही नाटक में लगातार कई पात्रों का अभिनय करना पड़ता था) के प्रयोग के कारण खुले मुँह अभिनय करने वाला नाटक असम्भव हो गया।

चेहरा एक परम्परा की वस्तु थी। वह एक प्रतीक था। उससे किसी पात्र के साथ मुख्य रूप से सम्बद्ध भावना की अभिव्यक्ति होती थी। जिस किसी ने भी इन चेहरों का अध्ययन किया है वह यह स्वीकार करेगा कि चेहरों से एक खास स्तर की अभिव्यक्ति सम्भव है। प्रकाश में चेहरे को विभिन्न स्थितियों में रखने से अथवा चेहरे युक्त सिर को हिलाने-डुलाने से इस प्रकार की अभिव्यक्ति सम्भव होती थी। परन्तु इस ढंग को अपनाने से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति सीमित हो जाती है। दूसरी ओर इससे देवताओं

के अनुरूप भावाभिव्यक्ति अधिक सुकर हो जाती है। हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि यूनानी अभिनेता ने भाव-भंगी और गतिशीलता की एक ऐसी भाषा बना ली थी जो कि आजकल के रंगमंचों पर अभिनीत भाव-भंगियों से कहीं अधिक प्रभावपूर्ण थी। हम अपनी कल्पना के ही कानों से उस अभिनेता को बोलते हुए, पाठ करते हुए, गाते हुए और सस्वरता के ही वातावरण में इस प्रकार अभिनय करते हुए सुन सकते हैं जिसकी क्षमता आज के अभिनेताओं में नहीं है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि वे अभिनय को एक ऐसी कला समझते थे जिसके लिए आजीवन अध्ययन एवं लगन की बड़ी आवश्यकता थी और अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को सम्भव बनाने के लिए वे कठिन परिश्रम करते थे। निश्चय ही अभिव्यक्ति के ये विभिन्न स्तर स्वाभाविक नहीं थे। परन्तु चेहरा पहिनने, संतुलित ढंग से अंग-संचालन करने और स्वर में नियमित रूप से आरोह-अवरोह के क्रम का ध्यान रखकर उच्चारण करने की परिपाटी के अन्तर्गत भावाभिव्यक्ति के इन भावनामूलक ढंगों का विशेष ध्यान था।

एस्किलस के ही समय में अभिनय एक मान्यता-प्राप्त पेशा बन चुका था और पांचवी शताब्दी में ही इसका महत्व बढ़ गया था। जब नाट्य-रचना का पराभव काल आ गया तब भी अभिनय-कला एक अलग कला के रूप में उत्कर्ष को प्राप्त हुई। यहां तक कि वह समय भी आया जब नाटककारों की प्रतियोगिता से अधिक महत्वपूर्ण अभिनेताओं की प्रतियोगिता हो गयी। अभिनेताओं का संघ एक शक्तिशाली आर्थिक और सामाजिक संगठन बन गया और उसके सदस्यों को उतने ही विशेष स्वत्व प्राप्त हो गये जैसे कि धार्मिक कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त थे।

जब नाटक का पराभव हुआ तो समूह-गान का भी महत्व घटा। समूह-गान रंगमंच के उद्भव के पूर्व के आनन्दोत्सव और साहित्यिक नाटक के विकास के बीच की कड़ी थी। नाटक के बीच में संगीत, काव्य और नृत्य के विष्कम्भक यूरीपिडीज के समय तक अभिनय को अधिक समृद्ध बनाने के साधन थे। दुःखान्त नाटकों में जो एक प्रकार का तनाव रहता था उनमें इन विष्कम्भकों के कारण कमी आ जाती थी। वे कुछ ऐसे ही थे जैसे आजकल नाटकों में अवकाश के क्षण होते हैं। परन्तु उनका महत्व अधिक था। समूह-गान करने वालों की टोली एक जुलूस बनाकर, पंक्तिवद्ध होकर, लययुक्त ढंग से, तारतम्य के साथ, जब चलती थी तो उस प्रार्थनामूलक गान का साकार रूप सामने आ जाता था। ये गीत सस्वर पढ़े या गाये जाते थे। एक तरह से इस समूह-गान से आगे आने वाली क्रिया पर प्रकाश पड़ता था। इससे देवताओं को प्रसन्न करने का अवसर मिलता था या यह अभिनय की शृंगारयुक्त शोभा भी थी। उस पूरे महान् युग में अभिनय के फलस्वरूप जो भावना जागती थी उसे इस समूह-गान से

शक्ति और गहराई प्राप्त होती थी। इस बात को और अच्छे ढंग से कहना चाहें तो कह सकते हैं कि ये समूह-गान जहां एक ओर अभिनय से उत्पन्न भावात्मक उथल-पुथल का शमन करते थे वहीं दूसरी ओर भावना को अधिक गहरा भी बनाते थे। हमने देखा है कि किस प्रकार एस्किलस के प्रथम नाटक में समूह-गान ही आधा समय ले लेता है। यह उस युग का अवशेष था जब कि नृत्य और संगीत को ही मुख्यता प्राप्त थी और नाटक का प्रयोग विष्कम्भक के रूप में होता था। हमने यह भी देखा है कि किस प्रकार यूरीपिडीज़ ने अपने नाटकों में समूह-गान के लिए रचे उत्कृष्ट गीतों को पिरोया है। परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये गीत अधिकतर सजावट के लिए ही रक्खे गये थे। एस्किलस और सोफ़ोक्लीज़ के नाटकों में ऐसी बात नहीं थी। और निश्चय ही यह नतीजा निकाला जा सकता है कि यूरीपिडीज़ ने परम्परा और रूढ़ि के कारण ही अपने नाटकों में गीतों को स्थान दिया। वस्तुतः उसके उन नाटकों की गढ़न में इनका ऐसा अनिवार्य स्थान नहीं था जो मनुष्यों के भाग्य का उद्घाटन करते। उस समय से समूह-गान नाटक के लिए अनावश्यक हो गया। जब से थेस्पिस ने पहिली बार समूह-गान के नेता के साथ-साथ एक अभिनेता को भी मंच पर प्रविष्ट किया तभी से समूह-गान का नेता एक प्रधान अभिनेता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। परन्तु अब इस युग में इनसे भेंट नहीं हो सकती—यद्यपि यह सही है कि बाद के दिनों में जब कि नाटक की भूमिका बताने वालों अथवा अभिनय के बीच नृत्य करने वालों या नाटक का उपसंहार करने वालों को हम समूह-गान के नेता जैसा ही कार्य करते पाते हैं।

पिछले पृष्ठों में हमने नाट्याभिनय को आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले कोरेगस की चर्चा की है। एथेन्स में एक ऐसी परिपाटी बन गयी थी कि कोई धनी व्यक्ति किसी कलाकार के नाटक के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में होने वाले सम्पूर्ण व्यय उठाने के लिए बुलाया जा सकता था। यदि नाटककार प्रतियोगिता में विजयी होता था तो कोरेगस को भी मुकुट पहनाया जाता था और नाटककार के साथ ही वह भी सम्मान का भागी होता था। वह धनी व्यक्ति अभिनेता और समूह-गान के सदस्यों को चुनने में नाटककार की सहायता करता था। वह पात्रों, गीतिकारों और नाट्य-शिक्षकों को वेतन देता था। वही वस्त्राभूषणों की व्यवस्था भी करता था। उसे इस बात का सन्तोष था कि रंगमंच के कार्यकर्ताओं की सहायता करके वह भी एक धार्मिक कृत्य में भागीदार हो रहा है।

एथेन्स में जो दुःखान्त नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये उनमें व्यंग्य-नाट्यों में महान अनुभवों के साथ-साथ हास्यास्पद स्थितियां भी आती थीं। दुःखान्त नाटक की प्रतियोगिताओं के लिए जो तीन दिन निश्चित होते थे उनमें से प्रत्येक कार्यक्रम में तीन

दुःखान्त नाटक और एक व्यंग्य-नाट्य होता था। इस प्रकार प्रत्येक महान् नाटककार को ऐसी भोंडी और अश्लील कृतियों की रचना करनी पड़ती थी। सुखान्त नाटक बहुत पहले ही अपना अलग रास्ता चुन चुके थे और उनका एक विशेष प्रकार का रूप बन गया था। शायद न दुःखान्त नाटक, न सुखान्त नाटक ही एथीनियन लोगों की दृष्टि में ऐसे थे जो प्राचीन डायोनिशियन लिंग-पूजा की परम्पराओं को सीधे-सीधे आगे ले चल सकते थे। जो भी हो सम्पूर्ण पांचवीं शताब्दी में व्यंग्य-नाट्यों का अपना अलग अस्तित्व बना रहा। व्यंग्यात्मक अभिनय करने वाले कलाकारों का समूह-गान ही, जिसमें सींग, दुम आदि लगाये, रोंये से भरे अभिनेता अपने व्यंग्यात्मक वाक्यों एवं संकेतों से दर्शकों को पागल बना दिया करते थे, उनकी मुख्य विशेषता थी। उस समय वीरतापूर्ण सम्भाषणों और मसखरेपन का एक विचित्र सम्मिश्रण होता था। कभी-कभी तो ऐसा होता था कि दुःखान्त नाटकों के अन्त में वही अभिनेता नायक और राजा हास्यास्पद भूमिका में अवतरित होते थे और अश्लील और भद्दे विदूषकों के साथ एक होकर अभिनय करते थे।
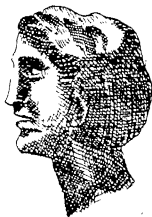
नाटकों में प्रयुक्त चेहरे (एफ० फ़िकोरोनियस कृत डिसर्टेशियो दे लारांवस स्कोनीसिस से)

आज इन दो अतिरेकों का सम्मिश्रण हमारे सामने आ ही नहीं सकता। एक तरफ़ तो संसार के सबसे महान् दुःखान्त नाटक और दूसरी ओर ऐसी घोर अश्लीलता, जिसकी तुलना आज के संसार भर के रंगमंच में नहीं हो सकती ! इसे समझने के लिए हमें याद रखना होगा कि डायोनिशस के दो रूप थे। आध्यात्मिक आह्लाद के अवसर पर महान् पवित्र नाटक के साथ गीत, नृत्य और संगीत का समावेश होता था। परन्तु दूसरी ओर निर्बन्ध उच्छृंखलता के कारण असंयमित नृत्य और अश्लील नाट्यानुकृति देखने को मिलती थी। यह व्यंग्य-नाट्य पुराने लिंगपूजा—सम्बन्धी नृत्य का ही एक रूप था। यह सुरा और समृद्धि के देवता के अनुरूप था। इसमें नाटकीयता तो थी परन्तु

उत्कृष्टता अथवा महत्ता नहीं थी। एथीनियन लोग डायोनिशिया के किसी भी ऐसे अंग को छोड़ना नहीं चाहते थे जो उनके परमप्रिय देवता को इतनी अच्छी तरह अभिव्यक्त करता हो। शायद देवता स्वयं ही नाराज होता यदि उससे सम्बन्धित व्यंग्य-नाट्यों की उपेक्षा की जाती।

रोम के दुःखान्त नाटकों की अलग से कोई सत्ता नहीं थी, वे सिर्फ़ यूनानी नाटकों के परिवर्तित रूप थे। तीस से अधिक लैटिन दुःखान्त नाटककार प्रसिद्ध हैं। उनमें से केवल सेनेका ही ऐसा नाटककार है जिसे हम स्मरण रख सकते हैं। केवल उसी के नाटक बचे हुए हैं। उनको उनके आन्तरिक गुणों के कारण संसार भर में ख्याति नहीं मिली। बल्कि उनको इसलिए ख्याति मिली है कि बाद के युगों में एक के बाद एक आने वाले 'नियो-क्लैसिमिस्ट्स' लेखकों के लिए यह नाटक प्रतिमान के रूप में रहे हैं।

सेनेका एक ऐसे युग में हुए जब पाश्चात्य संसार से सादगी और प्रशान्त भव्यता का लोप हो चुका था। ईसा की पहली शताब्दी में कैलिगुला, क्लाडियस और नीरो के राज्य में एक व्यक्ति जो राजनीतिक था, सेनेटर था, कोन्सल था, महारानियों का प्रेमी था, दार्शनिक था और अनेक विषयों का लेखक था—उसके लिए यह सम्भव ही नहीं था कि वह एस्किलस के महान् सौन्दर्य अथवा यूरीपिडीज़ की मानवीय करुणा की कल्पना भी कर सके। उस युग में एक चमक-दमक थी। वह चमक-दमक सेनेका में भी थी। परन्तु यह एक सतही विशेषता थी। उसने पुरानी 'इडिपस' और 'मीड़िया' और 'अगामेमनान' की कहानियों को अपने नाटकों में फिर से लिखा। परन्तु इसमें यूनानी भावना की ऊंचाई नहीं थी। ऋजुता का लोप हो चुका था। काव्य की सरलता उसकी वाग्मिता में खो गयी थी। दुःखान्त नाटक निष्प्राण हो गया था। पात्र नैतिक विचारों के वाहक बन गये थे। उनकी क्रियाशीलता में अनावश्यक वेग आ गया था। उनकी कविताएं अनावश्यक अलंकार की दृष्टि से ही रची जाती थीं।

यह कला अत्यन्त अलंकृत और निष्प्राण थी। इसमें मात्र शब्दाडम्बर और रीत्यानुसरण था। फिर भी शताब्दियों तक इसे ही संसार के दुःखान्त नाटक-साहित्य, यहां तक कि एस्किलस, सोफ़ोक्लीज और यूरीपिडीज के साहित्य, से भी अधिक उत्कृष्ट माना जाता था। हमें तो इस बात में भी सन्देह है कि ये अलंकारयुक्त दुःखान्त नाटक कभी रोम के लोकप्रिय रंगमंचों पर प्रस्तुत भी किये गये थे अथवा नहीं। उस समय के उच्छृंखल दर्शक लम्बे, उपदेशात्मक भाषणों, बनाव-शृंगार और अभिनय की मन्दगति शायद बर्दाश्त न करते। जो भी हो, सेनेका की ये रचनाएं अपनी जगह पर तो हैं ही। वे विश्व-रंगमंच के लिए कुतूहल का कारण अब भी बनी हुई हैं। उनका महत्व इसलिए है कि रिनेसांकाल के इटैलियन और फ्रांसीसी आलोचकों ने सम्पूर्ण पाश्चात्य

संसार से लगभग यह स्वीकार करवा ही लिया था कि सदैव के लिए दुःखान्त नाटकों को सेनेकावादी ही रहना पड़ेगा।

पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के बाद फिर कभी दुःखान्त नाटक इतना विराट्, इतना प्रशान्त एवं दिव्य और मानव आत्मा को इतना पवित्र करने वाला नहीं बन पाया। बहुत दिनों के बाद शेक्सपियर के युग में फिर इसकी पुनरावृत्ति हुई और महान् काव्य का सृजन हुआ; परन्तु ऐसे लोग मिल जायंगे जो आपसे कहेंगे कि यूनानी दुःखान्त नाटकों की ओर से मुख मोड़कर हम रंगमंच की दुःखान्त नाटक की सर्वोत्कृष्ट रचना की ओर से मुख्य मोड़ लेते हैं।

अध्याय ४

सुखान्त नाटक--यूनान और रोम

अगर हम ४२३ ई० पू० के बसन्त में डायोनिशस की रंगशाला में प्रेक्षकों के साथ उपस्थित होते और सुकरात का अभिनय करने वाले पात्र को आरकेस्ट्रा की भूमि के ऊपर और रंगमंच की छत के नीचे एक डोलची में लटका हुआ देखते तो हमें उस घटना में यूनानी सुखान्त नाटक के एक विशद तथ्य को समझने की कुंजी मिल जाती। संक्षेप में हमें यह पता चल जाता कि वह एक ऐसा नाटक है जिसमें क्रियाशीलता और परिस्थितियां हैं। परन्तु इसमें पात्रों का अन्तर्संघर्ष नहीं है। यदि हमने नाटक की उन पंक्तियों का सस्वर पाठ सुना होता जिसमें महान् सुकरात को एक नक़ली दार्शनिक और शरारती व्यक्ति से केवल थोड़ा-सा अच्छा कहा गया था तो हम उचित ही यह नतीजा निकालते कि प्राचीन यूनानी सुखान्त नाटक में जो थोड़ा-बहुत चरित्र-चित्रण रहता था, उसमें व्यंग्यात्मक अनुकृति और व्यक्तित्व को रूपायित करने की ओर अधिक ध्यान था। (यदि हम उस कहानी पर विश्वास कर लें जो कि सर्वथा प्रामाणिक नहीं है तो हम स्वयं सुकरात को भी व्यंग्य-अभिनेता की ही भांति मोटे तोंदवाला और हास्यास्पद वनमानुष-जैसे चेहरे वाला देखते—वह हमारे ही बीच से उठकर सामने खड़ा हो जाता और यह प्रदर्शित करता कि वह भी इस अभिनय का आनन्द ले रहा है)।

उसी दिन हम क्रैटीनस के नाटक **'दि वाइन फ्लैगन'** का अभिनय भी देखते जो ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के **'दि क्लाउड्स'** के स्थान पर पुरस्कृत किया गया था। डायोनी-शियन उत्सव के लिए यह नाटक सर्वथा उचित था क्योंकि इसमें शराब पीने वालों और पानी पीने वालो के गुणों पर प्रकाश डाला गया था। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यहाँ शराबख़ोरी से उत्पन्न हँसी-मज़ाक को किस प्रकार इस नाटक में प्रयुक्त किया गया होगा। दूसरे वर्ष लीनिया में हम ऐरिस्टोफेनीज़ के **'दि वास्पस्'** को रंगमंच पर

प्रस्तुत होता देखते। अन्य अवसरों पर **'दि बर्ड्स'** और **'दि फ्राग्स'** का अभिनय देखते। इनमें से प्रत्येक के समूह-गान के सदस्य अच्छी तरह से सजे-बजे होते थे। और वे **बरें, चिड़िया और मेढक** की नक़ल करके हास्य-विनोद की कला में पारंगत थे। इसे देखकर हमें यह विश्वास हो जाता कि यूरीपीडिज़ की मृत्यु के बाद भी सुखान्त नाट्य-कला का विकास भद्दे लिंगपूजक होलिहारों के जुलूसों के रूप से अधिक नहीं हुआ था। इन अनेक नाटकों के कथोपकथन में हम अश्लील भाव-भंगी और एकदम घृणित संकेतों को देखते; क्योंकि हममें से कुछ की विषय-वस्तु मिचली, खटमल, गोबर की ढेर और उससे भी गयी-गुज़री गालियां होती थीं जिसका सम्बन्ध कुम्हड़े, मूत्राशय, केले के छिलके तथा सासों के जिक्र से होता था और प्रेम-चक्र का निरूपण शिष्टतापूर्वक नहीं बल्कि रेबेला-वाले उल्लासपूर्ण ढंग से होता था।

इसी प्रकार के तत्वों से मिलकर पांचवीं शताब्दी के सुखान्त नाटकों का निर्माण हुआ था। घटना-क्रम में तारतम्य नहीं था, अनिवार्यता नहीं थी, कोई गम्भीर चरित्र-चित्रण नहीं था। इसी से, प्रिय पाठको, आप इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि एथीनियन लोगों के पास उच्चकोटि के सुखान्त नाटक नहीं थे।

अगर हम उच्च कोटि के दुःखान्त नाटकों और कम उत्कृष्ट नाटकों के अन्तर को देखें तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि यूनानी लोग सबसे अधिक उत्कृष्ट नाटककार थे। वे प्रेक्षक अथवा पाठक को ऊंचा उठा देते हैं; वे कल्पना-शक्ति को जागृत कर देते हैं; वे आध्यात्मिक करुणा के द्वार खोल देते हैं; आत्मा को दिव्य बनाते हैं, दुःख की भावना को उदात्त बना देते हैं—और हमें निष्पाप बना देते हैं। आरम्भ में हमारे मन में जो उत्कंठा होती थी उसकी परिणति वे अनुशासनपूर्ण सक्रियता और उत्कृष्ट काव्य के माध्यम से प्रोज्ज्वल संतोष में कर देते हैं। किसी ने कहा है कि कोई भी साधारण से साधारण नाटककार आत्मा को आन्दोलित कर सकता है परन्तु उसे ऊंचा तो कोई महान् दुःखान्त नाटककार ही उठा सकता है—और जब हम यूनानी नाटक से आधुनिक यथार्थवादी नाटकों की ओर बढ़ते हैं तो हमें इस कथन को याद रखना चाहिए। आत्मा को ऊंचा उठाना ही पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के दुःखान्त नाटकों का मूल मन्त्र है। सचमुच ये दुःखान्त नाटक महान् थे।

परन्तु जहाँ तक सुखान्त नाटक का सम्बन्ध है—जिसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि ऐसी सर्वश्रेष्ठ कृति का निकष यह है कि तर्कपूर्ण चरित्र-चित्रण के विकास से ही महत्वपूर्ण सुखान्त नाटक विकसित होता है—यूनानी रचनाएं निम्न कोटि की ही रहीं। इसके सम्पूर्ण इतिहास में एक भी ऐसा नाटक नहीं हुआ जिसमें भावनाओं की एकता हो, स्थायी व्यंग्य हो या मानव स्वभाव की कमज़ोरियों पर सहानुभूतिपूर्ण विनोद

हो। बची हुई पूर्ण अथवा अपूर्ण पाण्डुलिपियों, चित्रों आदि के परिशीलन से जहां तक हमें पता लग सका है यूनानी सुखान्त नाटकों में हास्य-विनोद के अधिक अश्लील, तीव्र एवं उच्छृंखलतापूर्ण तत्व ही पाये जाते हैं। एथेन्स के महान् युग में ये नाटक कुछ वैसे ही थे जैसे आज के युग के भोंडे, अश्लील प्रदर्शन; आधुनिक समीचीन सुखान्त नाटक नहीं।

यदि हमें याद हो कि किस तरह ऋतु-सम्बन्धी उत्सवों में डायोनिशस की पूजा करने के लिए होलिहारों की टोलियाँ गाती, नाचती, पीछे-आगे क़दम बढ़ाती, शराब का घड़ा और लिंग लिये विचित्र प्रकार के कपड़े और चेहरे धारण किये चलती थीं तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि किस तरह से उन लोगों ने अपने को कोरस के रूप में संगठित कर लिया और किस तरह इन्हीं में से एक अगुआ किसी की अनुकृति करने या विदूषक का अभिनय करने के लिए आगे आया और किस प्रकार हास्यमूलक उत्तर-प्रत्युत्तर की कला का जन्म हुआ। विचित्र प्रकार के कपड़े पहने हुए ये होलिहारे अनेक स्थानों के अनेक उत्सवों में समान रूप से पाये जाते थे। परन्तु किसी उत्सव में ऐसे लोगों को 'कोमस' की उपाधि दे दी गयी। और जब उनके अभिनय में नाटक का तत्व भी समाविष्ट हो गया तो 'कामेडी'--हास्यमूलक गीत--को हमेशा के लिए हास्य-विनोद-मूलक नाट्य के रूप में स्वीकृत कर लिया गया।

एथीनियन सुखान्त नाटकों के आरम्भ का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। लगता है कि एथेन्स में छठीं शताब्दी ई० पू० के आरम्भिक वर्षों में इस प्रकार के हास्यमूलक अभिनय प्रारम्भ हुए। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि किन गांवों अथवा जनपदों ने इस प्रकार के नाट्याभिनय में कौन से तत्व अथवा प्रभाव दिये। सुनिश्चित केवल इतना है कि इसके मूल में लिंग-सम्बन्धी जुलूस ही थे और परिधान-सम्बन्धी जो तत्व उसमें समाविष्ट हुए (जैसे पक्षियों, पशुओं का रूप धारण करने की परम्परा—और चेहरे) वे हास्यमूलक समूह-गानों में रहते थे। धीरे-धीरे पवित्र उपवनों और नगर की सड़कों से चलकर इन उत्सवों का प्रवेश रंगशाला में हुआ। यहां दुःखान्त नाटकों का वाह्य रूप जैसा बन गया था (कथोपकथन का वह रूप जिसमें विष्कम्भक की तरह बीच-बीच में समूह-गान, गीत और नृत्य रहा करते थे) उसने नाटक के उस ठाठ को प्रभावित किया जिसको हम ऐरिस्टोफेनीज़ के नाटकों में पाते हैं। ऐरिस्टोफेनीज़ स्वयं भी बहुत परिष्कृत कलाकार नहीं था। उसके पहिले डायोनीशियन सुखान्त नाटकों में धीरे-धीरे परिष्कार होता आया था। समूह-गान के दल का संगठन होता रहा। अन्त में २४ सदस्यों की इसकी संख्या सुनिश्चित कर दी गयी। मंच-प्रवेश से लेकर मंच से बाहर जाने तक के बीच एक ढीली-ढाली शृंखलाबद्धता आयी। बीच-बीच में सक्रियता-

और उनकी भर्त्सना की जाती थी वह हमें संयम की सीमा के बाहर मालूम होता है। यह सही है कि यह मात्र प्रहसन अथवा भड़ैती थी, जिसमें सच्चाई को उल्टे टांग दिया जाता था। इन प्रहसनों में देवताओं का भी मज़ाक उड़ाया जाता था और हेराक्लीज़ जैसा अधिदेवता भी मदिरा पीकर व्यंग्य—विनोद कर सकता था। परन्तु व्यंग्य करने और सार्थकतापूर्ण ढंग से खिल्ली उड़ाने के लिए लगातार जो नाट्य-विधान बनता रहा उसमें प्राचीन भड़ैती के तत्वों, बेढंगे जलूसों, अश्लील नृत्यों, और बन्दरों जैसी उछल-कूद की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया गया और कभी-कभी ज़बरदस्ती ठूंसे गये ये असम्बद्ध तत्व और व्यंग्य के टुकड़े, मन को आन्दोलित करने वाले काव्य अथवा अतिशय कल्पनापूर्ण घटना का रूप लेने लगे।

इसी अवसर पर ऐरिस्टोफ़ेनीज़ का प्रवेश होता है। आम तौर से उसकी रचनाओं में विचार अथवा तीव्र व्यंग्य-काव्य का महत्व नहीं है। सच यह है कि वह अपने नाटकों में अपने को अच्छा-खासा प्रतिक्रियावादी प्रमाणित करता है। वह अस्पष्ट रूप में अच्छे पुराने दिनों के लिए आहें भरता है, और प्रगतिशील रुझानों को मूल्यवान् विश्वासों के समेत बुरा-भला कहता है। परन्तु वह कवि था और अक्सर उसके गीतों में उत्कृष्ट रोचकता है, अक्सर उसकी कल्पना ने चमत्कारपूर्ण उड़ानें भरी हैं। इसके अतिरिक्त सरल काव्य-रचना में वह निष्णात है। इन रचनाओं में वह चातुर्यपूर्ण प्रवहमान् पंक्तियां और चित्र उपस्थित करता है, परन्तु प्राचीन सुखान्त नाटकों की इस विराट् अश्लीलता से वह बच नहीं सका है और उसका अतिशय शालीन कविताएं भी आसानी से घोर व्यंग्य-चित्रण और भड़ैती के नालों में बह जाती हैं। अपनी काव्यात्मक प्रतिभा से वह अपने युग के सभी नाटककारों का शिरोमणि बन गया, और बाद के युगों में भी उसकी रचनाएं एक निकष का काम करती रहीं। उन्मुक्त प्रवहमान् काव्य के आवरण में छिपे चातुर्यपूर्ण और तेज हास्य के लिए हम आज भी 'ऐरिस्टोफेनिक' शब्द का प्रयोग करते हैं।

यूनानी साहित्य में कोड़ियों नाटककारों ने हज़ारों हास्यमूलक रचनाएं तैयार कीं परन्तु आज यूनानी साहित्य में जो सम्पूर्ण सुखान्त नाटक हमको मिलते हैं वे हैं ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के कुल ग्यारह नाटक। कहा जाता है कि ऐरिस्टोफ़ेनीज़ ने कुल पचास नाटकों की रचना की। उसका जीवन-काल ४४८ से ३८५ ईसा पूर्व था।

प्राचीन सुखान्त नाटक के गढ़न के उदाहरण-स्वरूप हम '**दि वास्पस**' को ले सकते हैं। ऐरिस्टोफ़ेनीज़ ने ४२२ ई० पू० में इसे लीनिया में रंगमंच पर प्रस्तुत किया और सम्भवत: इसे प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इसका विषय है एथेन्स की पंच-व्यवस्था। परन्तु क्लीओन को ही असली निशाना बनाया गया है। क्लीओन वह बना

हुआ नेता है जिससे पंच लोग राजनीतिक रूप में सम्बद्ध हैं। फ़िलोक्लीओन पंचों की समिति का पुराना सदस्य है, परन्तु ब्डेलीक्लीओन फ़िलोक्लीओन की सनक खतम करने के लिए उसे अपने घर में बन्द कर देता है। दो गुलाम उसके दरवाज़े पर पहरा देते हैं। परन्तु कमरे के अन्दर बन्द क़ैदी खिड़की से बाहर रेंगकर या छत के सहारे चिमनी

रोमन विदूषक (फ़िकोरोनियस से)

पर चढ़ कर या खच्चर के पेट से लटक कर किसी बहाने निकल भागता है। समूह-गान के सदस्य उसी की तरह के सनकी लोग हैं जो भिड़ों या ततैयों की तरह से कपड़े पहने हुए हैं। अभिनय के बीच में ही नाट्य-प्रतियोगिता होती है जिसमें पंचायतों की शान और उनके महत्व के सम्बन्ध में बहस होती है। ब्डेलीक्लीओन के तर्कों से कोरस के सदस्य सहमत हो जाते हैं। परन्तु फ़िलोक्लीओन का हृदय यह सोच कर विदीर्ण होने लगता है अब कि उसे न्यायालय में बैठने का आनन्द न प्राप्त हो सकेगा। ब्डेलीक्लीओन ऐसी व्यवस्था करता है कि अब वह घर पर ही मुक़दमे का फ़ैसला करे। एक कुत्ते पर यह अभियोग लगाया गया है कि उसने पनीर की चोरी की है और एक तिकड़म से उसे मुक्त कर दिया जाता है। इससे फ़िलोक्लीओन को गहरा धक्का लगता है। इसके बाद श्रोताओं को सम्बोधित करके एक गीत गाया जाता है जिसमें ऐरि-स्टोफ़ेनीज़ प्रेक्षकों की अच्छी खबर लेता है, अपने नाटककार-जीवन का सिंहावलोकन करता है और प्रस्तुत नाटक की मुख्य बातों पर प्रकाश डालता है। जो प्रधान पात्र हैं वे

दावत खाने और शराब पीने चले जाते हैं। एक समूह-गान के विष्कम्भक के बाद शराब में मस्त फिलोक्लीओन मंच पर प्रवेश करता है। उसके पीछे-पीछे दूसरे मेहमान प्रवेश करते हैं जो उसके ऊपर गाली बकने का आरोप लगाते हैं। खास तौर से वे धमकी देते हैं कि दावत से बांसुरी बजाने वाली लड़की को भगा लेने के प्रयास में उसके विरुद्ध कार्रवाई की जायगी। परन्तु अब फिलोक्लीओन अदालतों और पंचायतों में विश्वास नहीं करता।

फिलोक्लीओन

याह ! हाह ! सम्मन और तलब करना !
कितनी सड़ीगली धारणा है ! क्या तुम्हें पता नहीं है
कि मैं तुम्हारे दावों और मुक़दमों के नाम से ही
आजिज़ आ गया हूं ?
फाग़ ! फाग़ ! फुह !
मैं तो अपने में मस्त हूं !
न्याय के कटघरे से मेरा क्या काम ?...
आओ प्यारी, चलो।
ज़रा देखो, मैं कितनी चालाकी से तुम्हें उड़ा लाया,
छिनाल हज़ारगश्ती, मेहमानों से चोंचले करने वाली !
बिटिया, तुम्हें इसके लिये मेरा कृतज्ञ होना चाहिए......
अब अच्छी लड़की की तरह रहना,
एहसान-फ़रामोशी मत करना,
जब मेरा बेटा मर जायेगा तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा,
मैं तुम्हें ईमानदार औरत बना दूंगा
देखो, सच यह है कि अभी मैं अपने आपका मालिक नहीं हूं।
अभी मैं बहुत छोटा हूं और कड़े नियंत्रण में रखा जाता हूं।
मेरा बेटा ही मेरा सरपरस्त है।
कितना फूहड़-बदमिज़ाज है वह,
कितना चालबाज, कितना तेज़ तर्रार......

ब्डेलीक्लीओन

अबे ओ ! ओ लुच्चे, बदमाश !
इश्क लड़ा रहा है ! अच्छा, इस पकी हुई लाश से।

क़स्म अपोलो की, इसके लिये तू रोयेगा !

फिलोक्लीओन

देखो प्यारे,

ब्डेलीक्लीओन

अब बात न बनाइये जनाब, आप हमारी पार्टी में से
बांसरी बजाने वाली लड़की को उड़ा ले जाने के बाद
मज़ाक मत कीजिये !

फिलोक्लीओन

वाह ! क्या ? बांसरी बजाने वाली लड़की ?
आपका दिमाग़ फिर गया है, या फिर आप मर के
उठे हैं, या कुछ और हो गया है आप को।

आदि आदि। उनमें से एक यह दावा करता है कि उनके बग़ल में बांसुरी बजाने वाली लड़की है। दूसरा यह दावा करता है कि वह लड़की नहीं एक मशाल है! फिर से निश्चय करने के लिए वे लड़की का परीक्षण करते हैं। परीक्षण करते समय वे नृत्य करते हैं और समूह-गान के साथ अभिनय उस समय समाप्त होता है जब कि फ़िलोक्लीओन के साथ दूसरे लोग भी आरकेस्ट्रा के बाहर चले जाते हैं।

आओ हम हट जायं उधर को
जगह छोड़ दें लम्बी चौड़ी जिसमें वे अभ्यास कर सकें,
जिसमें वे सब नृत्य कर सकें—
ऐसा नर्तन जिसका हो फिर-फिर आवर्तन,
आवर्तन का प्रत्यावर्तन—
चलता रहे चला ही जाए यह आवर्तन,
पेट एड़ियों से छू जाए,
पांव उछलकर नभ को छू लें जब तुम नृत्य करो आगे बढ़
मेरा दावा है कि आज तक
कभी किसी भी अभिनेता ने नाट्यसमापन पर

समूह के गान नृत्य की नायकता भी
कभी नहीं की !

ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के दूसरे नाटक भी हैं जिसमें उसकी कल्पनाशकित का अच्छा उदाहरण मिलता है--विशेषतः '**चिड़िया**' और '**मेढक**'। उसके सुखकर समूह-गीतों में से कुछ पंक्तियों का उदाहरण देना अनुचित न होगा। उसकी रचना 'शान्ति' में ग्रामीण जीवन की बड़ी अच्छी प्रशस्ति है।

जोती मिट्टी में जब दाना पड़ा जाता है
इससे बढ़ कर भली न कोई बात जगत में,
भेज रहा है इन्द्र धरा पर प्यारी वर्षा
और पड़ोसी एक वहां पर मंडराता है......

तब हम मिल-जुल साथ बैठ मधुपान करेंगे
प्रभु हमको ताज़गी और आशीषदान कर
हम सबके हाथों के श्रम को सफल करेगा।

आह ! भला कितना लगता है लेमनस का अंगूर
कि जिसका नीलारुण छिलका रस से फूला आता है,
कितनी कर्णमधुर लगती है चिड़ियों की
तब चूँ चूँ चीं चीं......

उसके ग्यारह नाटकों में से अनेक आनन्दप्रद स्थलों से उद्धरण दिये जा सकते हैं। कहीं गम्भीर वन्दना है, कहीं कारुणिक प्रेम-गीत, कहीं उछल-कूद वाले गाने। इससे हास्यमूलक समृद्धि का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि इन नाटकों में इस प्रकार के टुकड़े यत्र-तत्र पाये जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण नाटक पढ़ने पर ही उस विविधता और शोख़ी का पता चलता है जो कि उत्सव में उपस्थित प्रेक्षकों को ठहाका मारकर हंसने के लिए विवश कर देती थी। इन नाटकों में परिव्याप्त उन्मुक्तता के कारण जो एक जिन्दादिली रहती थी और कल्पना की जो भरपूर उड़ान रहती थी वह बाद के सुखान्त नाटकों में नहीं देखी गयी। आरम्भ में इन नाटकों में जो हल्के मज़ाक के तत्व रहा करते थे। उन्होंने बाद में भड़ैती का रूप ले लिया। उधर काव्यात्मक आह्लाद

और व्यंग्यात्मक तत्वों ने सुविचारित हास्य-नाटक के शालीन क्षेत्र में प्रवेश किया। यहां हम बताना चाहते हैं कि अंग्रेजी में ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के नाटकों के अतिशय ओजस्वी और समझदारी से भरे अनुवाद बेंजामिन बिक्ले रोजर्स ने किये हैं।

एरोस्टोफ़ेनीज़ के युग में अभिनय की क्या दशा थी, इसके सम्बन्ध में बहुत कम प्रामाणिक सामग्री प्राप्त है। दुःखान्त नाटकों की तरह इन नाटकों में भी केवल
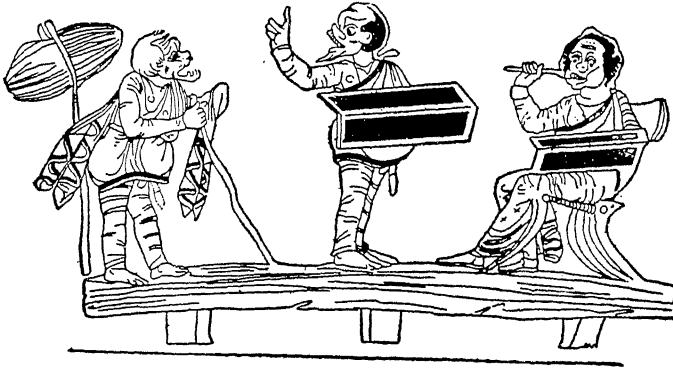
एक प्लेटफ़ार्म मंच पर एक प्रहसनात्मक दृश्य। (फूलदान पर बने एक चित्र के आधार पर)।

पुरुष ही अभिनेता के रूप में मंच पर आते थे। इनके वस्त्राभूषणों में वास्तविकता नहीं होती थी बल्कि कल्पनाशीलता और अनगढ़पन होता था। ऊपर जो हमने चित्र दिया है उसमें कोरस में भाग लेने वाले पशुओं के छद्म-वेश के उदाहरण हैं। अभिनेताओं के वस्त्र काफ़ी फूले-फूले रहते थे, विशेषतया उनके पेट तथा नीचे का हिस्सा काफ़ी फुलाया जाता था। सभी अभिनेता बनावटी लिंग धारण किये रहते थे। अभिनेता और समूह-गान में भाग लेने वाले लोग चेहरे लगाते थे। इन चेहरों में विद्रूपता अपनी सीमा पर पहुंच जाती थी। जब कोई अभिनेता किसी जाने पहिचाने व्यक्ति की नक़ल करता था--जैसे **'बादल'** में सुकरात या **'मेढक'** में यूरीपिडीज़--तो वह ऐसे चेहरों को प्रयुक्त करता था जो पहचान में आ जाते थे। अन्य चेहरे बिल्कुल मनमाने ढंग के बनते थे। चेहरों में अक्सर जो बहुत चौड़े मुंह लगा दिये जाते थे वे ऐसे ढंग से बनाये जाते थे जिससे अभिनेता चीख़ कर अपनी आवाज़ रंगशाला में उपस्थित जनता की सबसे ऊंची पंक्ति तक अच्छी तरह पहुंचा सके। इस युग की अथवा कुछ बाद की रंगशालाओं में

रंगमंच का चबूतरा ऊंचा हुआ करता था। (एथेन्स में शायद ऐसा नहीं होता था, शायद ऐसा शुरू में इटैलियन प्रान्तों में हुआ करता था; और सम्भवतः सामान्य रंगशालाओं में ऐसा नहीं होता था। बल्कि ऐसा तभी होता था जब कि मेलों में या सड़कों के किनारे आयोजित प्रदर्शनों में नाटक खेले जाते थे)।

हमारी यह जानकारी उन छोटी-मोटी मूर्तियों और पात्रों पर बने चित्रों के आधार पर है जो अब भी प्राप्त होते हैं। लेकिन कहीं भी सम्पूर्ण रंगशाला, मंच की साज-सज्जा अथवा समूह-नृत्य का वर्णन नहीं मिलता। संगीत के सम्बन्ध में भी—जो कि प्रारम्भिक सुखान्त नाटकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता थी—हमारी जानकारी बहुत कम है।

ऐरिस्टोफ़ेनीज़ के बाद जो नाटक लिखे गये उनकी सम्पूर्ण पाण्डुलिपियां प्राप्त नहीं हैं। अतः उनके सम्बन्ध में भी हमारी जानकारी बहुत कम है। लगभग

एक प्लेटफ़ार्म मंच पर प्रहसनात्मक दृश्य। (फूलदान पर बने एक चित्र के आधार पर)।

अर्द्ध-शताब्दी तक संक्रमणकालीन रचनाएं होती रहीं। इन्हें मध्ययुगीन सुखान्त नाटक कहा गया है। इन नाटकों में सम-सामयिक समस्याएं कम रहती थीं। इनमें उतना आडम्बर भी नहीं होता था और न उतनी अश्लीलता ही। इन नाटकों में जाने-

माने लोगों को आलोचना का शिकार बनाया जाता था और सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का भी मज़ाक उड़ाया जाता था। परन्तु हास्य-विनोद की सामग्री तो घरेलू अथवा बाज़ारू जीवन के चित्रण से ही मिलती थी। ऐसे विशिष्ट पात्रों को सामने लाया जाता था जिन्हें हम रेनेसां युग में देखेंगे, जैसे पराश्रयी और तुनुकमिज़ाज बाप, चालाक नौकर, कुटनी और देहाती गंवार। समूह-गान का महत्व कम हो गया। उसे केवल विष्कम्भक के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता था। वाद-विवाद और रचनाकारों की वक्तृताओं को भी नाटक के चौखटों से अलग कर दिया गया। इन परिवर्तनों के कारण असली ऐरिस्टोफ़ीनिक सुखान्त नाटकों का संगीतात्मक सौन्दर्य नष्ट हो गया। समूह-नृत्य और प्रहसन के तत्व भी ग़ायब हो गये। सुखान्त नाटकों में नाटकीय एकसूत्रता आगयी, घटना में वैविध्य आ गया और वे अधिक मानवीय हो गयीं। परन्तु पुराने विद्रूपात्मक चेहरों का प्रचलन बना ही रहा।

अभिनेय सुखान्त नाटककारों में सर्वप्रमुख मेनेण्डर का जीवन काल ३४२ से २९१ ई० पू० था। उसने नाट्य-रचना को एक नया मोड़ दिया। उसने मध्ययुगीन सुखान्त नाटकों के विकास के उस सोपान से अपना कार्य प्रारम्भ किया जहां पर उसे उन्तालीस कम-बेश अप्रसिद्ध नाटककारों ने छोड़ दिया था। उसने यूरीपिडियन दुःखान्त नाटक से भी लाभ उठाया। उत्तरकालीन यूनानी रंगमंच का वह एक महान् रचनाकार था।

आपको याद होगा कि यूरीपिडीज़ ने दुःखान्त नाटकों को देवताओं तथा पौराणिक नाटकों के क्षेत्र से उतार कर उनमें मानवीय संवेगों और भावनाओं को प्रविष्ट किया था, और यहां अब सुखान्त नाटक अपने प्राचीन, निरंकुश चमक-दमक और आडम्बर को छोड़कर सुसम्बद्ध मानवीय कथा के अंकुश में बंधने के लिए तैयार हो रहा था। मैनेण्डर ने ऐसे नाटकों की रचना की जिनका सम्बन्ध वास्तविक दैनन्दिन जीवन से था। निश्चय ही पात्र विशिष्ट प्रकार के थे। वे साधारण मनुष्य नहीं थे। परन्तु उनकी विशिष्टता भी कुछ ऐसी थी कि उसे कहीं भी पा सकते थे। घटना-विकास अब एक कला के रूप में बदल गया था। किसी अंश तक भावना और करुणा को भी उन नाटकों में प्रवेश मिलने लगा था। संक्षेप में, आधुनिक युग में जिसे हम पात्रमूलक सुखान्त नाटक कहते हैं उसकी ओर यह एक बड़ा क़दम था। रंगमंच की दृष्टि से भी नाटकों के इस मानवीकरण के कारण पहले से अधिक छोटे और आधुनिक रंगशाला के निर्माण की ओर क़दम उठने के लक्षण मिलने लगे क्योंकि जब नाटकों में लम्बे-चौड़े मंच की ज़रूरत नहीं थी। छोटे से ही स्थान में अभिनय हो सकता था। समूह-गान समाप्तप्राय था। अब तो उसका प्रयोग केवल अवकाश के क्षणों को गुज़ारने के लिए होता था।

यद्यपि इस नये सुखान्तमूलक नाटच-साहित्य के चौंसठ रचनाकारों के नाम मिलते हैं; लेकिन इन नाटकों में से किसी की भी पाण्डुलिपि नहीं मिलती। सभी लोग सहमत हैं कि मैनेण्डर इन सब में उत्कृष्ट था। प्लाट्स और हेरेंस जैसे रोमन नाटककारों की जो रचनाएं हमें मिलती हैं वे मैनेण्डर के सुखान्त नाटकों की अनुकृति अथवा रूपान्तर मात्र हैं। इन रूपान्तरित सुखान्त नाटकों के कारण भी मैनेण्डर को बहुत अधिक ख्याति मिली। इन्हीं से हमें उपर्युक्त 'नवीन सुखान्त नाटकों' की अधिकतर जानकारी मिली। विद्वान लोग अब भी यह आशा लगाये हुए हैं कि मेनेण्डर की रचनाओं की पाडुलिपियां अवश्य ही कभी न कभी मिस्र के रेगिस्तानों या यूनान के मक़बरों में प्राप्त होंगी। यदि ऐसा हुआ तो इस बात का भी पता चल जायगा कि यूनानी हास्यमूलक रंगमंच के सबसे महान् रचनाकारों में ऐरिस्टोफ़ेनीज़ ही सर्वोत्कृष्ट नहीं।

रोमन सुखान्त नाटक, जहां तक उसके स्थायी साहित्यिक रूप ग्रहण करने का प्रश्न है, यूनानी नाटच-रूपों की प्रतिछाया अथवा अवशेष ही था। इनमें स्थानीय तत्व बहुत कम थे और यह एक प्रश्न है कि क्या कभी 'गम्भीर' सुखान्त नाटकों ने रोम की जनता का गहरा स्नेह-प्राप्त किया? वहां तो सचमुच लोकप्रिय नाटच-रूप वही थे जिन्हें हम हल्के-फुल्के मज़ाक की कोटि में रख सकते हैं, जिनमें शृंखलाबद्धता नहीं होती थी, जिनमें उछल-कूद, मार-पीट, अश्लील संकेत आदि ही रहते थे। इसलिए वास्तविक रोमन सुखान्त नाटकों का अध्ययन करने के पहिले हमें लोकप्रिय हास्य-नाटचों के स्रोतों का अध्ययन करना आवश्यक लगता है।

जहाँ तक हम जानते हैं रोम में धर्म और नाटक में किसी भी युग में कोई सम्बन्ध नहीं था। रोम नगर में पहिली बार २६४ ई० पू० में उस समय रंगमंच पर अभिनेता उतरे जब कि देवताओं के क्रोध के कारण लोग महामारी के शिकार हो रहे थे और उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक था। पास ही के इट्रूरिया में नाटक का एक रूप विकसित हो गया था किसान जनता की उन पूजा-विधियों से, जिसमें फ़सल-काटने और फलों के पकने के समय देवताओं के सम्मान में उत्सव होते थे, या विवाह, जन्म आदि के अवसरों पर लोग धूम-धाम करते थे। एथेन्स में जब पूजा-उत्सव सम्बन्धी जुलूस निकलता था तो उसमें सभी लोग गाते-नाचते आगे बढ़ते थे। इट्रूरिया के लोगों ने इस परम्परा का अनुगमन किया। साथ ही उन्होंने कुछ अभिनय की भी व्यवस्था की। अन्त में अभिनेता उत्सव मनाने वाले जन-समाज से पृथक हो गये।

इट्रूरियन नाटच-रूपों में से प्रथम दो को '**फेसेनाइन वर्सेज़**' (अश्लील-व्यंग्य रचना) के नाम से अभिहित किया जाता है। आरम्भ में यह सस्वर पाठ के अतिरिक्त

और कुछ नहीं था। बाद में यह एक प्रकार के द्वन्द्व-नाटच के रूप में विकसित हुआ। इस नाटक के बीच-बीच में कथोपकथन, स्वांग और हंसी-दिल्लगी, विद्रूप व्यंग्य आदि काफ़ी रहते थे। यह एक विद्रूपात्मक, अर्द्ध-नाटकीय हास्य-विनोद का रूप था जिसका विकास सामूहिक उत्सवों से हुआ था। कुछ लोगों के अनुसार '**फोसेनाइन**' शब्द का उद्भव '**फेसीनियम**' से हुआ। यह नाम इट्रुरिया क्षेत्र के एक गांव का था। इस गांव के लोगों ने ही शायद इस प्रकार के उत्सवों में काम किया। कुछ दूसरे लोगों के अनुसार इसका उद्भव '**फेसीनम**' शब्द से हुआ। इस प्रकार के दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाय तो इसकी समानता एथेन्स के नाटकों के आरम्भिक रूप से बहुत अच्छी तरह हो जाती है। कुछ विद्वानों के मत से ये 'अश्लील व्यंग्य-रचना' ही पूर्णतया विकसित अभिनेय नाटकों के मार्ग में एक सोपान के रूप में (**फेसेनाइल वर्सेज**) आ गयी। वे विशेष तौर से विवाह-संस्कार के अवसर पर होने वाले उत्सव के रूप में विकसित हुई। निश्चय ही युगों-युगों में विवाह-संस्कार ने सुखान्त नाटक के लिए अन्य किसी भी वस्तु से अधिक सामग्री प्रदान की है---मैं यह बात सुखान्त नाटकों के रंगमंच पर प्रस्तुत होने के संदर्भ में अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कह रहा हूं। हो सकता है कि इट्रुरिया में इन उत्सवों से आनन्द और आह्लाद का वातावरण बना और बाद में उसका एक संगठित रूप तैयार हो गया। बाद में उस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को छन्दोबद्ध किया गया है; और आमने-सामने खड़े होकर लोगों ने इनके विभिन्न अंशों का पाठ किया है और इस प्रकार वास्तविक नाटकीय विकास की धारा में सहायता पहुंचाई। कुछ समय बाद इस नाटच-रूप का प्रवेश रोम में हुआ और अन्त में यह इतना अश्लील और गन्दा हो गया कि इसका दमन करने के लिए नियम बनाने पड़े।

मगर इसी बीच इट्रुरिया उत्सव, जिन्हें '**सैटुरे**' कहते थे, रोम की जनता में लोकप्रिय हुए। वास्तविक रोमन नाटकों का आरम्भ यहीं से होता है। 'सैटुरे' का आधार मुख्यतया '**फेसेनाइन वर्सेज**' (अश्लील व्यंग्य-रचना) ही थे। इसका कुछ सम्बन्ध उस हास्य-विनोदात्मक कथा से भी था जिसका सस्वर पाठ किया जाता था? 'सैटुरे' ही वह प्राचीनतम नाटच-रूप है जो कि इटली की धरती पर विकसित हुआ। स्पष्ट ही उनमें कथानक प्रायः नहीं होता था। प्रहसन दृश्यों का कविता-पाठ के साथ अभिनय होता था; साथ ही नृत्य और संगीत का भी प्रदर्शन होता रहता था। इसका रूप अब भी लगभग वैसा ही था जैसा कि सुरा उत्सव का था। '**सैटुरे**' शब्द का सम्बन्ध 'सम्पूर्ण' से है। अभिनेताओं को '**इस्त्री**' कहते थे। लैटिन में '**इस्त्रियोन्स**' शब्द है। इसी से आजकल का अंग्रेजी का लोकप्रिय शब्द '**हिस्ट्रियानिक**' बना है।

जब ३६४ ई०पू० में रोमवासियों ने इट्रुरिया से अभिनेताओं की एक टोली बुलायी

और उनके लिए **'सरकस मैक्सिमस'** नामक प्रथम रंगमंच निर्मित किया तब वह शायद केवल संगीत और नृत्यमूलक मनोरंजन के लिए अथवा **'सैटुरे'** को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त होता था। रोम में **'लूडी रोमानी'** नाम का जो नागरिकों का खेल और उत्सव होता था उसी के साथ **'सैटुरे'** को भी जोड़ लिया गया और तब वास्तव में लोकप्रिय रोमन सुखान्त नाटक का जन्म हुआ। इट्रूरिया के लोगों के मूल-वंश के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। इन लोगों ने तत्कालीन असंस्कृत रोमवासियों को प्रथम नाट्य-विद्या प्रदान की। इसके पहिले रोम की सभ्यता के इतिहास में नवयुग आरम्भ करने वाली मेहराब बनाने की कला शुरू हो गयी थी और यूनान तथा प्राच्य के देशों से सम्बन्ध भी स्थापित हो गया था। रिपब्लिकन युग के पहिले बहुत दिनों से रोमवासी यह जानते थे कि इट्रूरिया के लोगों से किन-किन बातों को ग्रहण करना लाभप्रद है। एक शताब्दी तक इट्रूरिया के लोग भी रोम के बादशाह होते थे। जब रोम इतना सशक्त हो गया कि वह अपने शत्रुओं का मुकाबला कर सके तब इन बादशाहों की परम्परा समाप्त हुई। इस युग में यद्यपि रोमवासियों के मन में इन कलाओं के प्रति अभिरुचि नहीं उत्पन्न हुई थी फिर भी उनके सम्बन्ध में उन्हें जानकारी तो हो ही गयी थी। परन्तु अब भी वे इट्रूरिया की समृद्धि और संस्कृति के सम्बन्ध में संशयालु रहते थे।

स्वयं रोम में जिन मनोरंजनों को स्पष्टतः सार्वजनिक सुखान्तक कहा जा सकता था और जिन्हें रिपब्लिकन और साम्राज्यशाही दोनों युगों में यथावत बना रहना था और अन्ततोगत्वा जिन्हें पतनोन्मुख रोम को आच्छादित करने वाले अंधकार में खो भी जाना था, वे **मिमी** और **पेन्टोमिमी** थे। **मिमस** जिसके लिए अंग्रेज़ी में **माइम** शब्द का प्रयोग होता है और शायद यह शब्द पूरे अर्थ का द्योतक नहीं है—एक ऐसा संयोजित प्रदर्शन था जिसमें कथोपकथन में विदूषकत्व का पुट रहता था और इस कथोपकथन के साथ नृत्य और गीत तो होते ही थे, बीच-बीच में नटों की कलाबाज़ी और दूसरे सजाव-शृंगार परक अभिनय भी होते रहते थे। निम्न स्तर से ही इस प्रदर्शन के लिए विषय वस्तु का चुनाव होता था (सभी अधिकारी विद्वान् इसी शब्द का प्रयोग करते हैं), एक सुनिश्चित कथानक होता था, और अवसर पा कर मुफ्तखोर और मूर्ख का अभिनय करने वाले स्थायी पात्र सामने आते रहते थे। **मिमस** को अधिकांशतः एक रोमन रचना ही माना जा सकता था। यद्यपि इसमें केवल **सैटुरे** के ही तत्व सम्मिलित नहीं थे, वरन् एक अन्य विदेशी नाट्य रूप **अटीलाने** के भी कुछ तत्व इसमें थे। साथ-साथ यदा-कदा सिसिली और इटली के सुदूर दक्षिण प्रदेश के यूनानी उपनिवेशों के अभिनयों के कुछ अंश—ये स्थान निकट भविष्य में ही रोम साम्राज्य के अंग बनाने वाले थे—भी इसमें आ गये थे।
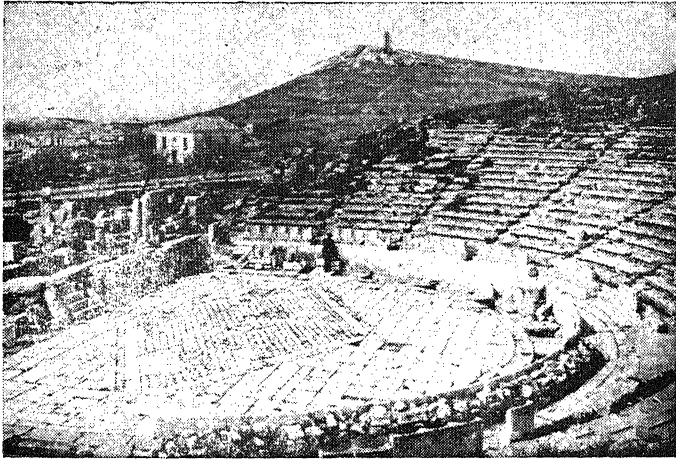
दो यूनानी रंगशालाएँ अपनी वर्तमान् स्थिति में। एथेन्स में स्थित डायोनिशस की रंगशाला। संपूर्ण इतिहास में यही रंगशाला सर्वाधिक प्रसिद्ध है।
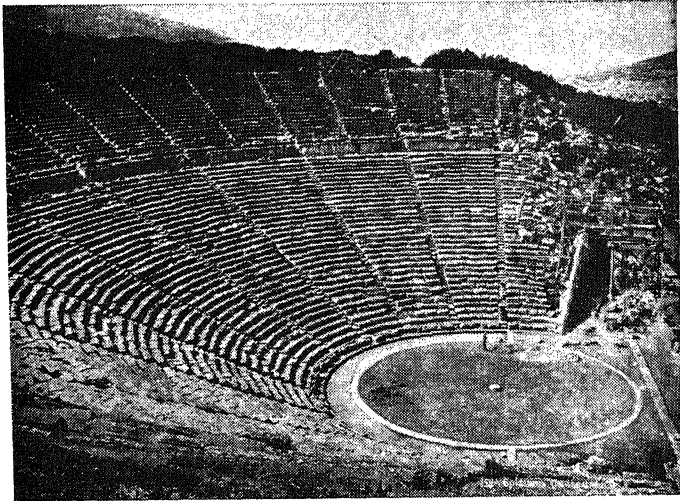
एपिदोरस स्थित रंगशाला। थियेटर आव डायोनिशस का निर्माण रोमन युग में हुआ था। इसलिए इसमें ऊपर उठा हुआ मंच और एक अर्द्ध गोलाकार वृन्द-वादन स्थान भी है। मगर एपिदोरस की इमारत में एक पूर्ण वृत्ताकार नृत्य स्थल है जो कि पाँचवीं शताब्दी ई० पू० की एक विशेषता थी।

(अलीनारी चित्रों से)

प्लेट ५

रोमन दुःखान्त नाटक का एक अभिनेता। अभी अभी जो चेहरा उसने उतार दिया है, उसे लक्ष्य करें। (नेशनल म्युजियम, नेपुल्स, में स्थित एक रोमन भित्ति-चित्र की एक अलीनारी छवि।)

दो रोमन रंगशालीय दृश्यों का समसामयिक अंकन। ऊपर, रोमन मंच पर चेहरा धारण किए अभिनेताओं का मिश्रित स्वरूप। नीचे, एक नवीन प्रहसन में दो महिला और एक गुलाम। (नेशनल म्युजियम, नेपुल्स, में स्थित एक अलीनारी छवि से; और 'दि देन्कमेलर जुम थियेटर वेसेन इम आल्तर्तुम' में दिए गए भित्ति-चित्र की छवि, जिसका पुनरांकन मर्गरेट ब्रीबर ने किया।)

प्लेट ७
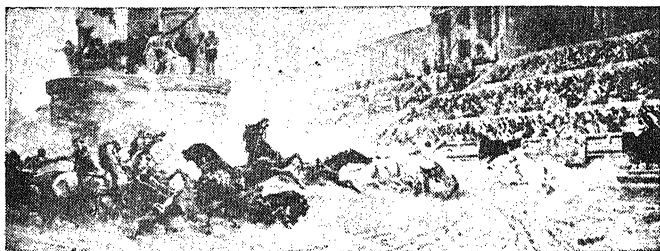
रोमन काल में नाटकीय रंगशाला के स्थान पर निर्मित तो अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण क्रीड़ा स्थल। सर्कस मैक्सिमस में घुड़दौड़ का सी० आदेमोलो द्वारा दृश्यांकन।

एक ऐम्फ़ीथियेटर में मानव और पशु के दृश्य का अंकन।
(अलीनारी छवियों से)

देहाती **अटेलन** प्रहसन--इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि यह कम्पानिया के अटेला से ही रोम में लाया गया था, लोकप्रिय प्रहसनों की भ्रामक शृंखला में, अकेले सर्वाधिक सुस्पष्ट प्रहसन हैं, जो इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि इनमें पुनरुत्थानकालीन नाट्यरूप की एक पूर्वछाया मिल जाती है। इनमें ग्राम जीवन के सीमित दायरे की ही

प्रहसनात्मक चेहरे (फिकोरोनियस से)।

बातें रहती थीं। और, यद्यपि इनके कथानक प्रायः एक ही निश्चित प्रकार के होते थे, परन्तु इनके अभिनेता अपने मन से बहुत कुछ अंश घटा-बढ़ा लिया करते थे। नाटकों में स्थायी सुनिश्चित पात्र ही रहा करते थे; जैसे, मूर्ख बाप या पति, अत्यधिक भोजन करने वाला पेटू व्यक्ति या दुरात्मा प्राणी। यहां फिर स्पष्टतः ऐसे पात्रों के पूर्व रूप हमें मिलते हैं जो पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के **कामेदिया देल आर्ते** में मिलते हैं। और कामेडिया के पात्रों की ही भांति अटेलन विदूषक भी चेहरा पहिनते थे। रोम में तीसरी शताब्दी से ही यह नाट्यरूप लोकप्रिय हो गया, और कभी अपने ही रंगमंच पर, कभी बाद में यूनानी शैली के नाटकों में परिशिष्ट रूप से जोड़े गये टुकड़ों के रूप में यह चलता ही रहा। यह उस समय तक चलता रहा जब तक इसी से अनुप्राणित, इसी प्रकार के **मिमस** ने इसका स्थान लेकर, इसे अपदस्थ नहीं कर दिया। मगर, **मिमी** और **पेन्टोमिमी** के सम्बन्ध में अन्तिम शब्द कहने के पहिले, मुझे और भी पीछे जाकर, एक इससे अधिक साहित्यिक प्रहसन की बात करनी है जो यूनानी प्रति रूपों के आधार पर निर्मित तथा और जो लोकप्रिय प्रहसनों और **मिमस, पेन्टोमिमस** और चमत्कार नाटकों के मध्यवर्ती युग में प्रचलित था। बहरहाल, पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोम में सदैव सर्वत्र असंस्कृत प्रहसन ही अधिक स्वाभाविक और लोकप्रिय रहा। यह नाट्यरूप यद्यपि अपना कोई भी नाट्य-साहित्यपरक अवशेष नहीं छोड़

सका, फिर भी, अपने ही गुणों के बल पर यह प्लाट्स और टेरेन्स के अवशिष्ट साहित्यिक नाटकों से अधिक सशक्त और अधिक विशिष्ट रूप ग्रहण कर सका।

जब रोमनों ने २७२ ई० पू० में ग्रीक टेरेन्टम पर विजय प्राप्त कर लिया, तो उन्होंने अपनी राजधानी में सत्यमेव यूनानी नाटक के प्रवेश का द्वार खोल दिया। अब तक रोम में नाट्यशालाएं नहीं बनी थीं। लोकप्रिय प्रहसन अस्थायी रूप से बने रंगमंचों पर प्रस्तुत किए जाते थे। (एक शताब्दी के बाद ही रोम में सम्पूर्ण नाट्यशाला बन सकी, जिसमें मंच और प्रेक्षागृह अस्थायी प्रयोग के लिए लकड़ी के बनाए जाते थे)। तब 'सुसंस्कृत' प्रेक्षक नहीं होते थे। तत्कालीन रोमवासी बड़े बद-दिमाग होते थे; भौतिकवादी, अकल्पनाशील योद्धा होते थे। उनमें बहादुरी, हिम्मत, सच्चाई और न्याय जैसी विशेषताएं तो होती थीं, मगर ये विशेषताएं तभी तक थी जब तक ये देश-भक्ति और विजय के आड़े न आवें)। परन्तु उनमें व्यावहारिक शिक्षा के लिए ज़रा भी रुचि नहीं थी, कला के लिए कोई रुचि नहीं थी, निजी संस्कारों के लिए भी कोई रुचि नहीं थी। मगर यूनानी प्रभावों की बाढ़ बहुत ही तेजी से आने लगी और २४० ई० पू० में ही **लूडी रोमानी** के उत्सव में यूनानी शैली का एक सुखान्तक और एक दु:खान्तक जोड़ दिया गया। लिवियस एन्ड्रोनिकस ने, जो कि अपने देश टेरेन्टम रोम से आया था, लैटिन में दो नाटक प्रस्तुत किए। ये नाट्य रूपान्तर यूनानी नाटकों से ही थे। टेरेन्टम में डायोनीशियम उत्सवों को एथेन्स शैली में ढाल लिया गया था और अभिनेता—लेखक सही एथीनियन प्रणाली को समाविष्ट करने में सफल हो गया था। इस समय के बाद, आगे नाट्याभिनय छुट्टियों के मनोरंजन के अंग बन गये और रोमन साहित्यिक नाटक ने यूनानी विद्या को अंगीकार कर लिया।

जब बड़े से बड़े यूनानी नाटक, और अब तो वे सदियों पुराने हो चुके थे, अनुदित अथवा रूपान्तरित होकर भी रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाते थे, तब भी उनमें इतना ओज और इतनी दीप्ति रहती थी कि प्रारम्भिक रोमन नाटककारों की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी कि वे इतना ही प्रभावशाली नवीन नाट्यरूप आविष्कृत कर सकते, यद्यपि उनको विषय-वस्तु के चुनाव के सम्बन्ध में और प्रस्तुतिकरण की परिस्थितियों के सम्बन्ध में युनानियों की तुलना में अधिक आज़ादी थी। जो भी हो, उन्होंने यूनानी प्रणाली का अनुगमन करना ही स्वीकार किया। हम यह तो पहिले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार रोम के दु:खान्तकों के रचयिताओं ने नाटक को शक्तिहीन बना दिया था। उन्होंने रचाव-शृंगार को, अलंकरण को ही भावप्रवणता का पर्याय समझ लिया था और इस प्रकार उन्होंने यूरीपिडियन परिपाटी के नाटकों को निम्नस्तरीय बना दिया था। सुखान्त नाटककारों ने यूनान के नवीन सुखान्तक को अपना प्रतिमान बनाकर कुछ

सफलता अवश्य प्राप्त की; मगर उन्होंने जो कुछ किया वह बहुत सतेज, आश्चर्यजनक रूप से मौलिक अथवा आवश्यक रूप से रोमन नहीं था। रोमन नाटककारों में, जो एक कोड़ी प्रसिद्ध नाटककार हैं, सेनेका ही अकेला ऐसा नाटककार है जिसे लोग दुःखान्त नाटक के सम्बन्ध में याद करते हैं। और प्लास्टियस तथा टेरेन्स सुखान्त नाटककारों के रूप में लोग याद करते हैं। उत्तर-टेरेन्स काल में एक साहित्यिक सुखान्तक **फेबुले तो गाते** के नाम से प्रसिद्ध हुआ, मगर मामूली ढ़ंग से थोड़े दिनों तक जीवित रह कर यह समाप्त हो गया।

टेरेन्स और प्लाट्स के लैटिन नाटकों में पात्र इतने स्पष्ट रूप से यूनान-परक थे कि वे लगातार यूनानी ही माने जाते थे। वे यूनानी वस्त्र धारण करते थे और दृश्य भी साधारणतया एथेन्स के ही होते थे। रंगशाला से धर्म को अलग कर देने और स्वतंत्र रूप से जीवन का अध्ययन करने के कारण प्लाट्स लाभान्वित हुआ वह अपने नाटकों के यूनान से उद्‌दृत कथोपकथनों में कुछ रोमन ओज और त्वरा को प्रविष्ट कराने में सफल हो सका। आशा यही की जाती थी कि प्लाटस और टेरेन्स अश्लील हास्य और प्रहसन से सम्बन्धित सार्वजनिक मांग के सामने सिर झुका देंगे। परन्तु रोमन समाज में, सांस्कृतिक दृष्टि से और राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक जीवन की दृष्टि से भी, ऊपर के कुछ लोगों और नीचे की सर्वसाधारण जानता के बीच एक सुस्पष्ट अन्तर आ गया था। 'साहित्यिक' नाटककार संपूर्ण रूप से अशिष्ट और असंस्कृत प्रकार के प्रहसनों की सार्वजनिक मांग के दबाव का प्रतिरोध करते हुए, यूनानी मौलिक नाटकों का अनुकरण करते रहे और आरम्भ में सस्ते सम-सामयिक, उत्तेजना-मूलक या भद्दे इशारे करने वाले प्रसंगों को उन्होंने अपनी रचना में स्थान नहीं दिया। मगर तत्कालीन जीवन से सम्बन्धित ऐसे असंयमित वाक्य और खुले वर्णन उनमें आ गये हैं कि वे उन्नीसवीं शताब्दी के सुसंकृत लोगों को अप्रीतिकर लगे। परन्तु **मिमी** और **पेन्टोमिमी** का जो वर्णन हमें मिलता है, उसकी तुलना में ये प्रहसन अत्यन्त प्रोज्ज्वल और परिष्कृत मालूम पड़ते हैं।

टिटस माकियस प्लाटस का जन्म २५८ ई० पू० में हुआ था। यह वही समय था जब कि प्रथम रोमन नाटककार मात्र अनुवाद और रूपान्तरण का कार्य छोड़कर लैटिन नाटकों की रचना प्रारम्भ कर रहे थे (मगर अब भी वे यूनानी प्रतिमान का ही अनुसरण कर रहे थे)। उसे प्रथम, साथ ही साथ, एकमात्र रोमन सुखान्त नाटक लेखक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। उसने कुल एक सौ तीस प्रहसन लिखे, जिनमें से कुल बीस प्रहसन अब प्राप्त हैं। इनमें से एक दो नाटकों से तो हर कालेज का वह छात्र परिचित है जिससे विश्वविद्यालय के द्वितीय वर्ष तक की शिक्षा प्राप्त कर ली है। और, **मेनेचमी**

को शेक्सपियर कृत **कामेडी आव एरर्स** का प्रतिमान होने के कारण और भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी।

प्लाटस (इस नाम का अर्थ है 'चिपटे पाँव वाला') मेनाण्डर और उसके साथी नाटककारों का ऋणी था। इस ऋण का लेखा-जोखा यूनानी मूल नाटकों के विना नहीं हो सकता। मगर यह निश्चित है कि इस रोमन नाटककार ने एथीनियन प्रतिमानों के पोशाकों और दृश्यों तक को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया, परन्तु इटालियन फ़ैशनों, तौर-तरीक़ों और घटनाओं को स्थानीय रंग देकर उसने उनमें काफ़ी जान डाल दी।

मेनेचमी का घटनास्थल एपिडेमनियम है। एक चुराया हुआ जोड़ुआ लड़का बचपन में ही यहां लाया जाता है, वह बड़ा होता है, वह शादी करता है और उत्तराधिकार में बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करता है। अनजाने ही उसका भाई वहां आ जाता है, उसका नाम बदल कर खोए हुए लड़के का नाम उसका रखा हुआ था। इस प्रकार स्थानीय मेनेचमस और उसका जोड़ुआ भाई, दोनों एक ही नगर में आवारागर्दी करते हैं। एक के पास पत्नी है जिससे उसने झगड़ा कर लिया है। और अब वह एक वारांगना के पास जा रहा है, जिसे देने के लिए वह अपनी स्त्री को एक पोशाक लिए हुए है। इसी बीच वहाँ उसका जोड़ुआ भाई आ जाता है। वेश्या उसका स्वागत सरगर्मी के साथ करती है; वह उस स्त्री की ही पोशाक धारण किए हुए है। स्थानीय जोड़ुए की स्थिति के कारण मज़ाक शुरू हो जाता है, क्योंकि दूसरा जोड़ुआ उसे, वारांगना और स्त्री को एक साथ चक्कर में डाल देता है। इसमें उसे एक तुतलाने वाले मुफ्तख़ोर डाक्टर की सहायता भी मिलती है जो कि सुबुद्धि प्रदान करने के लिए बुलाया जाता है, आदि। एक के बाद एक गुत्थी पैदा होती जाती है। अन्त में दोनों जोड़ुए भाई मिल जाते हैं और एक-दूसरे को पहिचान कर प्रसन्न होते हैं।

पढ़ने में तो यह पांच अंकों वाला सुखान्त नाटक बिल्कुल सपाट और रहस्यहीन मालूम पड़ता है। मगर इसके वास्तविक मूल्यों को तभी आंका जा सकता है जब दिमाग़ में अत्यन्त कुशल, विदूषक अभिनेताओं के चित्र को रखा जाय जो पात्रों और परिस्थितियों को, वाह्य रेखा-चित्रों को ज़ोरदार क्रियाशीलता, जादूगरी और 'कार्य व्यापार' के रंगों से भर देते थे। निश्चय ही, इसी बात की आशा उस समय की जा सकती थी जब कि रंगशालीय प्रेक्षागृह नहीं होते थे और जब कि सड़कों के किनारे चबूतरे ही रंगमंच का काम करते थे और दर्शक सड़कों पर घूमने वाले आवारा लोग होते थे या धक्कम-धुक्का करने वाली भीड़ होती थी जो कि मेला—'तमाशा' देखने आती थी। मगर हमें फिर भी प्लास्टियस को उसका उचित श्रेय देना चाहिए। उसने ऐसे

अभिनेताओं के लिए नाटक की रूप-रेखा खोज कर तैयार कर दी, साहित्यिक तरह के ऐसे कथोपकथन तैयार कर दिये जिनसे गतिशीलता में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचती थी। यह उसकी एक स्पष्ट सफलता थी। उसको अधिक श्रेय इसलिए भी है कि वह ऐसे समय में रहता था जब कि लैटिन भाषा का निर्माण ही हो रहा था। अपने नाटकों के द्वारा उसने उस भाषा का परिमार्जन किया और उसे लालित्य प्रदान किया। परन्तु शायद हम लोगों के लिए यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि वह एक महान् अभिनेता भी था। और, शायद अपने नाटकों को जनता के समक्ष प्रस्तुत भी स्वयं करता था। इसीसे हम यह जान सकते हैं कि क्यों बाद के रंगमंचों पर उसी की रचनाएं अधिक प्रस्तुत की गयीं, उससे भी अधिक सुसंस्कृत नाटककार टेरेन्स के नाटक उससे कम प्रस्तुत किये गये---यद्यपि स्कूलों के पाठ्य-क्रम में प्लाट्स नाटकों को कम ही स्थान मिला।

लगभग २०० वर्ष ई० पू० में एक ग़ुलाम पकड़ कर रोम में लाया गया। उसका नाम स्टेटियस केशीलियस था। अक्सर उसे दूसरा महत्वपूर्ण नाटककार समझा जाता है। परन्तु उसके नाटकों का कोई भी अवशेष नहीं मिलता। प्लाटस की मृत्यु (१८४ ई०पू०) के कुछ ही पूर्व पुवलियस टेरेन्टियस आफ़ेर नाम का एक व्यक्ति कार्थेज में पैदा हुआ। जब कभी भी रोम के प्रहसन लेखन का चर्चा आता है, तो इसी व्यक्ति का नाम प्लाटस के साथ लिया जाता है। उसकी रचित छः नाट्य रचनाएं अब भी मिलती हैं, मगर उनमें से कोई भी पूर्णतया अथवा अधिकांशतः मौलिक नहीं है। उसने पीछे जाकर एटिक प्रहसनों का सहारा लिया और मुक्त होकर उसने वह सब ग्रहण किया जिसकी उसे ज़रूरत थी, विशेषतया मेनाण्डर से। परन्तु इस अर्थ में वह यूनानी और आधुनिक प्रहसन के बीच की शृंखला है कि उसने नाट्यरूप को अधिक सुगठित बनाया और शैली में एक सहजता ला दी। जहा तक शिल्प का प्रश्न है मेनाण्डर की तुलना में प्लाटस निम्न स्तर का माना जाता है। वह लापरवाह है, आवश्यकता से अधिक ज़ोरदार है, यद्यपि उसमें सजीवता काफ़ी है। परन्तु टेरेन्स अपनी कला का परिमार्जन करता गया और अपने पात्रों का अधिक से अधिक मानवीकरण करता गया।

टेरेन्स एक ग़ुलाम था, परन्तु शीघ्र ही वह मुक्त कर दिया गया। आरम्भ में ही, अपने प्रथम नाटक **आंद्रिया** का पाठ उसने रोम की साहित्य मण्डली के सामने किया और यकायक उसने सब का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। परन्तु बाद का उसका संक्षिप्त कार्यकाल अनेक उलझनों से भरा हुआ था। वह उस समय की कुत्सा और अश्लीलता के बीच यूनानी उत्कृष्टता और पूर्णता से प्रभावित हो रहा था। उसके ऊपर साहित्यिक चोरी का आरोप लगाया गया था जिससे वह चिढ़ गया था। उसने एथेन्स का आदर्श स्वरूप सामने रखा था और रोम को छोड़ कर उसे भागना

पड़ा था। और जब उसकी पाण्डुलिपियां खो गयीं तो उस दिल टूट गया और आर्केडिया में उसकी मृत्यु हो गयी।

एक अर्थ में वह अपने समय और स्थान से परे का लेखक था। उसके प्रहसनों में स्थानीय रंग बिलकुल नहीं है। जन्म से वह अफ्रीका निवासी था। परिस्थितियों वश वह रोमन हो गया था। उसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि यूनानी जो कुछ अतीव उत्कृष्ट है, उसे लैटिन भाषा में पुनःर्जीवित किया जाय। प्राञ्जलता, परिष्कार, शैली ——यही उसके उद्देश्य थे। वह प्लाटस ने यूनान के नये प्रहसनों को रोमन भीड़ की रुचि के अनुकूल प्रहसनों की रचना के लिए तैयार चौखटे के रूप में प्रयुक्त करता था। टेरेन्स ने ललित साहित्यिक लैटिन रूप में मेनाण्डर के सद्गुणों को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक क़ायम रखा। उसने छन्दबद्ध मूल को अच्छी तरह परिमार्जित किया——यह छन्दवद्धता ही सब से अधिक पुरानी लैटिन काव्यगत उपलब्धि थी——और उसे वास्तविक शैलीगत सौन्दर्य प्रदान किया। तकनीकी ऊपरी दृष्टि से वह एक साहित्यिक रचनाकार था, यद्यपि उसमें कोई आन्तरिक मौलिकता न थी। शायद उसकी सम्पूर्ण सफलता इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थी कि उसने परोक्ष रूप में मेनाण्डर को ज्यों का त्यों क़ायम रखा, उसे किसी प्रकार रूपान्तरित करके, मगर किसी विशिष्ट रोमन दृष्टि से नहीं। मगर फिर भी यह कौन कह सकता है कि स्पष्टतः प्रवहमान् हल्की लघुमात्राओं वाला उसका काव्य यूनान से ही ले लिया गया था, अथवा यह रोमन रूपान्तरकार की देन है? उसके छः नाटकों——'फ़ार्च्यून फ़ेवर्स दी ब्रेव', 'मेनी मेन, मेनी माइण्ड्स', 'व्हाइल देयर इस लाइफ़, देयर इज़ होप' आदि, आदि——में जो उक्तियां और मुहावरे हैं, वे या तो इनमें से हैं अथवा उनमें से। जो भी हो, अपने लिखित रूप में टेरेन्स के नाटक रोम की जनता की रुचि के अनुकूल नहीं हो पाये। उसकी जो दुराराध्य कला थी, वह उस युग के लिए आवश्यकता से अधिक कोमल थी।

आधुनिक मानवीय कथानक की ओर उस समय जो प्रगति हुई, उसके उदाहरण स्वरूप **दी युनख़** का नाम लिया जा सकता है, जो टेरेन्स के सभी नाटकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह प्रहसन भी (यथावत्) सड़क के एक चौराहे पर खेल गया था, जिस पर दोनों ओर एक-एक मकान थे। एक मकान थायस का था जो शिष्ट श्रेणी के लोगों की वारंगना थी। दूसरा मकान उसके प्रिय प्रेमी फेद्रिया के पिता का था। थायस, एक लड़की को, जिसे उसने पाला था, बचाने की कोशिश करती है। वह लड़की उससे छीन ली गयी थी और ग़ुलाम की तरह बेच दी गयी थी। मगर उसे थ्रेसो नामक एक व्यक्ति उपहार स्वरूप वापिस कर देता है। यह व्यक्ति एक बूढ़ा सिपाही है और अप्रिय प्रेमी भी है। उसी समय फेद्रिया उसे एक जनख़ा को उपहार-स्वरूप भेंट करता है।

मगर फेद्रिया का छोटा भाई उस लड़की से प्रेम करने लगता है और वह उस ज़नख़े का स्थान स्वयं ले लेता है, उसकी देख-भाल का भार अपने ऊपर ले लेता है और इस प्रकार उसे भगा लेने का अवसर ढूंढ़ लेता है। उस समय तक सारी योजनायें नष्ट हो गयी दीखती हैं, जब तक कि थायस यह नहीं साबित कर देती कि वह लड़की गुलाम नहीं है, वरन् एक स्वतंत्र संतान है। तभी उसको भगाने के लिए तैयार व्यक्ति उससे विवाह कर लेता है और उधर फेद्रिया थ्रेसो को धमका कर भगा देता है और थायस को अपने संरक्षण में ले लेता है। इस मनोरंजक वातावरण में बूढ़ा शेख़ीबाज़ सिपाही हर तरह से हंसी-मज़ाक की स्थिति उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता है।

स्पष्टतः यह एक कपोल-कल्पना पर आधारित कथा है जिसमें असाधारण रूप से अधिक मात्रा में मानवीय सम्बन्धों का तान-बाना बुना गया है। इसमें किसी सीमा तक चरित्र-चित्रण भी हो गया है, जो कि कौशल और कोमलता के साथ किया गया है। यहां तक कि उस दृश्य में जिसमें कि कुमारी कन्या का कौमार्य भंग किया जाता है, उसमें भी जिस सूक्ष्मता और चतुराई का प्रदर्शन किया गया यह इस बात का भी प्रमाण है कि प्रचलित असभ्यता और अश्लीलता से टेरेन्स कितना दूर था। मगर मुफ्तख़ोर, सिपाही और हर काम में दख़ल देने वाला बाप ये तीनों स्थायी पात्र बार-बार मंच पर उपस्थित होते हैं। प्लाटस की सक्रियता का शोरगुल और प्रचण्डता और अश्लील दृश्य टेरेन्स के यहां नहीं मिलते। यद्यपि कथानक में स्त्री-पुरुष पात्रों के मुक्त सम्बन्धों के संकेत मिलते हैं, फिर भी अब प्रहसन 'शालीनता' की ओर बढ़ रहा था।

जिस युग में लैटिन भाषा में प्रहसन-रचना का उत्कर्ष हो रहा था और वह समृद्धि को प्राप्त कर रहा था--शायद इस शब्द का अर्थ आवश्यकता से अधिक व्यापक रूप में लिया जा रहा है--वह मुश्किल से सौ वर्षों तक चला, लगभग २५० ई० पू० से १५० ई० पू० तक! प्लाटस और टेरेन्स के नाटक (टेरेन्स बहुत कम उम्र में ही, १५९ ई० पू० में मर गया) आगस्टस के युग तक अक्सर मंच पर प्रस्तुत किए जाते रहे; बाद के सम्राटों के युग में भी यदा-कदा इनका प्रदर्शन हो जाता था। परन्तु ऐसा प्रहसन जो कि विचारों और मूल्यों में गम्भीर था और लिखित रूप में क़ायम भी रहा, बाद में अपने जन्म अथवा प्रवेश के सौ वर्षों के बाद ही, सस्ते मनोरंजक अभिनयों और स्वांग-तमाशों द्वारा मंच से निष्कासित कर दिया गया।

अब रोमन-ग्रीक सुखान्त नाटकों से समवेत-गान की परिपाटी का अन्त हो गया था। इसलिए यह निश्चित था कि अब रंगशाला प्राचीन यूनानी उस रूप में निर्मित नहीं हो सकती थी जिसमें नृत्य-प्रकोष्ठ के लिए प्रयुक्त वृन्द-वादन स्थान का महत्व अनिवार्य और आवश्यकता रूप में था। बाद की रोमन रंगशालाओं के ठीक-ठीक

स्वरूप की जो कुछ भी जानकारी हमें प्राप्त होती है, वह उन अर्ध विनष्ट अवशेषों से प्राप्त होती है जो आज भी क़ायम हैं। मगर टेरेन्स और प्लाटस के जमाने में रोम में स्थायी रंगशालाएं नहीं थीं। टेरेन्स की मृत्यु के पांच वर्ष बाद ही प्रथम प्रस्तर निर्मित रंगशाला का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। जब यह आधा बन कर तैयार हो गया तो सेनेट के आदेश से इसे गिरा दिया गया, क्योंकि इसे उस सख्त आत्मानुशासन और कठोर चरित्र निर्माण के विरुद्ध एक विभीषिका के रूप में देखा गया जिसे सरकार रोम के नागरिकों के लिए चाहती थी। विधि द्वारा इसके पहिले ही यह आदेश जारी कर दिया गया था कि रोम में दर्शकों के स्थायी बैठने के स्थानों का निर्माण नहीं हो सकेगा, क्योंकि ऐसी सीटों के कारण प्रेक्षक आवश्यकता से अधिक आराम के साथ अभिनय देख सकेंगे। इस तरह की अनेक बातों के बावजूद, हर यूनानी वस्तु के विरुद्ध, केटो के कठोर संघर्ष के बावजूद, आत्म-निरति की गंध देने वाली किसी भी बात, किसी भी प्रकार की नवीनता अथवा कल्पनाशीलता के विरुद्ध संघर्ष के बावजूद रोम के नागरिक वासना के अश्लीलतम रूप की ओर, प्रदर्शन की रुचि के विकास की ओर, कोमल प्रदर्शनकारी कला की ओर खिसकते-बढ़ते चले जा रहे थे।

चाहे जो भी हो, उस युग की रोमन रंगशाला अनिवार्य रूप से एक मंच और प्रेक्षागृह मात्र ही थी, जब कि यूनानी रंगशाला नृत्य के लिए निश्चित स्थान के चारों ओर बनती थी। इट्रूरीय नर्तकों और अभिनेताओं के पास मंच होते थे और अटेला के प्रहसन ऊँचे उठे चबूतरों पर प्रदर्शित किए जाते थे। हो सकता है कि इटालियन प्रभाव के अन्तर्गत ही, बाद के यूनानी नाटकों के प्रदर्शन के लिए रंगशालाओं में ऊंचे उठे रंगमंच तैयार किये गये। निश्चित रूप से चबूतरानुमा रंगमंच के लिए ही टेरेन्स और प्लाटस अपने नाटकों की रचना की।

मगर प्लाटस के युग के रंगमंच, प्रस्तुतिकरण और जनता के सम्बन्ध में अपूर्ण साक्ष्य के आधार पर विवरणों को एकत्र करने के बजाय हम साम्राज्यवादी युग की रंगशालाओं की ओर अब ध्यान दें। प्रत्येक अर्थ में यह रंगशाला रोमन विशेषताओं से मण्डित है। यूरीपिडीज़ और मेनाण्डर के अवशेष अब भी इस युग के नाटकों में दिखायी देते थे, मगर अब ऐसे नाटककार पैदा होने लगे थे जो रोम की स्वांग-तमाशा में रुचि लेने वाली जनता को ध्यान में रखकर ही नाटकों की रचना करते थे। एक महान् समृद्धिशाली विश्व की राजधानी के अनुरूप ही मन्दिरों और महलों वाली रंगशालाओं का निर्माण हुआ। और जहां तक प्रेक्षकों का प्रश्न है—आइए हम संपूर्ण विवरणपूर्ण चित्र को यहां विस्तार से देखें :

अब रोम की जनता पहिले जैसी सख्त-मिज़ाज, संयमी, नागरिक-सैनिकों की

व्यवहार कुशल जाति मात्र न थी, जिसे सबसे पहिले हिम्मत, व्यक्तिगत ईमानदारी, राज्य प्रेम की शिक्षा दी गयी थी और जिन्होंने टाइबर नदी के किनारे के एक नगर को विश्व-विजय की ओर परिचालित किया था। अब प्राचीन अधिकार-सत्ता समाप्त हो चुकी थी, चरित्र कमज़ोर हो चुका था, आराम और विलास के विरुद्ध जो बांध बांधी गयी थी, उसमें पहिले सुरंग लगा दिया गया और फिर वह बहा दी गयी। विजयों के लिए जिस कठोरता की आवश्यकता थी वह अब अत्याचार का रूप ले चुकी थी--यह बात सरकार में, मनोरंजनों में, प्रत्येक व्यक्ति के आपसी द्वन्द्व संघर्ष में प्रतिलक्षित होने लगी थी। शासकों में व्याप्त भ्रष्टाचार और लोभ की तुलना सर्व-सामान्य जनता में व्याप्त बेईमानी, और चाटुकारिता से ही हो सकती थी।

पुराने ज़मींदार घरानों का जो एक छोटा-सा दल रह गया था, वह सदियों के सतत भयानक युद्धों के फलस्वरूप प्रायः नष्ट हो गया था। इन सब युद्धों में सर्वाधिक विनष्टकारी वे गृहयुद्ध थे जो रोम ही में लड़े गये थे। निम्न वर्गों से उठा कर नये जमींदार बना दिए गये थे। कुछ समय पहिले जो गुलाम थे वे भी मुक्त करके उच्च श्रेणी में सम्मिलित कर लिए गये। रोम के अन्तर्गत जो अनेक नगर थे वहां से साहसी घुमक्कड़ भी बड़ी संख्या में रोम में आ गये थे। वह पुराना वर्ग जिसके पास कभी सारे विशेषाधिकार केन्द्रीभूत थे, सभी धन्य-धान्य एकत्र थे और जो पुराने गुणों, अनुशासन को भी बनाए हुए था, अब समाप्त हो गया था। अधिकतर ऐसे लोग ऊपर आ गये थे जो भ्रष्टाचारी थे, जो सस्ते दिमाग़ के थे, जो सनसनी को पसन्द करते थे। सभी वर्गों में पुराने दुर्गण मौजूद थे और सर्वत्र नवीन दुर्गुणों का स्वागत हो रहा था। धर्म मिथ्या-विश्वासों का ढोंग मात्र रह गया था, छुट्टी मनाने के बहाने के रूप में ही लोग उसे याद रखते थे, या उसकी याद तब आती थी जब कोई दुस्स्वप्न दिखायी दे जाय अथवा कहीं बिजली-बादल कड़क उठें। जब कि पहिले दिनों में, विवाह सम्बन्धी किसी सुनिश्चित नियम के न रहते हुए भी रोमवासियों ने पूर्णतया सुनियोजित जीवन के अंग के रूप में एकपत्नी व्रत धारण किया था और इन्द्रिय संयम से काम लिया था, और इसे वे सच्चे आनन्द का राजमार्ग समझते थे, वहीं अब व्यभिचार को शायद ही कोई बुरी निगाह से देखता हो। इस अतिशयता की स्थिति में रंगशाला में पति-पत्नी में अविश्वास ही कथानकों का प्रिय तत्व रहा करता था और ये रंगशालाएं खुलकर निर्लज्जतापूर्वक इन्द्रिय लोलुपता का प्रदर्शन करने में सहायता पहुंचाती थीं।

कुछ समय के लिए सीज़र आगस्टस ने अराजकता, लूट-मार और निर्बाध भ्रष्टाचार का ख़ातमा कर दिया था। उसने व्यवस्था, विधि और एक तरह से न्याय की फिर से स्थापना की। उसने अपने को ही राज्य घोषित करके गणतंत्रवाद को समाप्त

कर दिया। उसने रोम में ऐसी शानदार इमारतें बनवायीं जो एक विश्व-साम्राज्य की राजधानी की शान के अनुकूल थीं। उसने अगणित मन्दिरों, विशाल राजमहलों और नाना प्रकार की सार्वजनिक इमारतों का या तो निर्माण करवाया या उनकी मरम्मत करवायी। इसके पहिले इतनी बड़ी और विशाल इमारतें नहीं बनी थीं। ये इमारतें रोम की इन्जीनियरिंग सम्बन्धी प्रतिभा का प्रमाण बनकर आसमान से बातें करती थीं। परन्तु उनका शृंगार तो यूनान से ही लिया गया था। और उसे अधिक तड़क-भड़क वाला, अधिक विराट् और अधिक परिष्कृत बना दिया गया था। सभी देशों से रंगीन संगमरमर मंगाये गये थे। हल्के पीतवर्ण के स्फटिक और रंगीन संगमरमर का चूना मंगाया गया था। कांसे की मूर्तियां, चटख़ पच्चीकारी, मुलम्मेदार नक्क़ाशी सभी कुछ था। आगस्टस की यह गर्वोक्ति थी कि उसने भव्य पाम्पेयी थियेटर को फिर से निर्मित कराया और अपने पालित पुत्र मार्सेलस[1] के सम्मान में एक पत्थर की रंगशाला बनवायी। उसने बालबस को एक रंगशाला बनवाने के लिए प्रोत्साहित किया और

---

१. सौभाग्य से यह मार्सेलस, जिसके नाम से रोम की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रंगशाला प्रसिद्ध है, इसी नाम का वह योद्धा नहीं है जिसने सिरेकूज़ का घेरा डाला और उसकी रंगशालाओं को नष्ट कर दिया। नाटकीय व्यंग्य शायद इतना आगे नहीं बढ़ जाता। मगर मैं अपनी सिसिली-प्रदर्शिका पुस्तक की एक अवसरानुकूल टिप्पणी का उल्लेख यहां अवश्य करना चाहता हूं। "रोमवासियों ने नगर के चारों ओर घेरा डाल दिया। वह नगर आर्कीमेडीज़ द्वारा अत्यन्त सशक्त बना दिया गया था। और अन्त में, दो वर्ष तक लगातार घनघोर विपत्तियों का सामना करने के बाद २१२ ई० में यह नगर मार्सेलस के हाथों में चला गया। रोम के सिपाहियों ने नगर को लूटा और नागरिकों को क़त्ल किया। आर्कीमेडीज़, जो कि गणित के अध्ययन में चुपचाप लगा हुआ था, मार डाला गया। मन्दिरों और रंगशालाओं को नष्ट कर दिया गया। और अत्यन्त मूल्यवान् कलापूर्ण सामग्री लूट के माल के रूप में रोम पहुंचा दी गयी। वहां के अधिकतर निवासी मार डाले गए, जो बचे वे समुद्र पार भाग गये। नगर के मुख्य भाग (जहां रंगशालाएं और वृत्ताकार क्रीड़ागार बने हुए थे) उजड़ गये। और तुरन्त वह वैभवशाली सिरेकूज़ जो अब तक यूनानी साम्राज्य पर शासन कर रहा था, एक विराट् वीरानी में परिणत हो गया।" मैंने यह उद्धरण यहां इसलिए जोड़ दिया कि इसमें मार्सेलस का ज़िक्र आया है। इससे उस पृष्ठ भूमि पर प्रकाश पड़ता है जिस पर रोमन रंगशाला का विकास हुआ : हिंसा और जीवन की अरक्षा, रंगशाला की इमारतों का बार-बार ध्वस्त किया जाना और वह तरीक़ा जिससे रोम ने कला को 'अर्जित' किया। सिरेकूज़ में यह युग आर्कीमेडीज़ और थियोक्रीटस

इनके साथ ही रथ दौड़ाने के मार्ग, गोलार्ध नृत्यशाला, कौतुकागार और **समुद्री युद्ध के थल** भी बनाये।
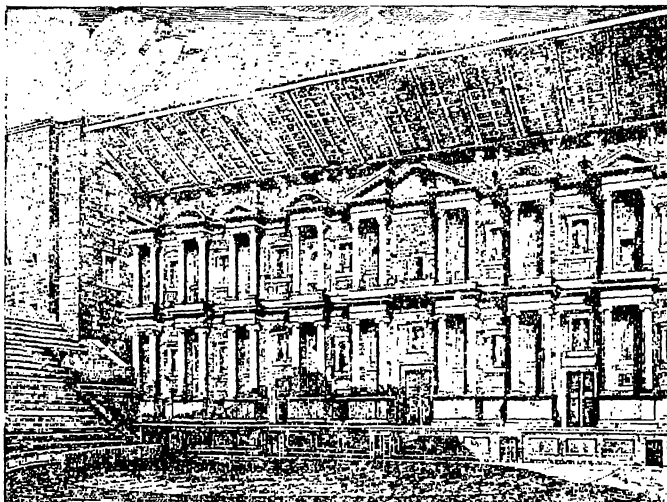
एसपेन्डस स्थित रोमन थियेटर की अलंकृत मंच-दीवार। (लैन्कोरोन्स्की कृत 'स्ताते पम्फोलियेन्स अण्ड पिसिदियेन्स' में नीमान द्वारा अंकित रेखाचित्र।)

आगस्टस ने प्रयास किया कि रोमन लोगों का पुराना चरित्र और पुराने गुण फिर वापिस आ जायं। उसके कवि होरेस ने इस बात पर दुःख प्रगट किया कि सीधे-सादे

का युग था। इसके कुल दो सौ वर्ष पहिले अत्यन्त ऐश्वर्यशाली सम्राट् डायोनीशियस प्रथम ने शासन किया था। वह स्वयं दुःखान्त नाटकों का लेखक था। वह कवि भी था। उसने महान् भवनों का निर्माण कराया था। उसने सभी कलाओं को प्रोत्साहन दिया था। जिस रंगशाला को मार्सेलस ने नष्ट किया था शायद वह यूनानी शैली का था। मगर इस युग के बाद एक गौरवशाली रोमन रंगशाला का निर्माण इसी स्थान पर हुआ। हम जितनी भी रंगशालाओं से परिचित हैं शायद उनमें सब से बड़ी यही थी। वहाँ आज भी प्रेक्षागृह का एक बड़ा हिस्सा देखा जा सकता है। साथ ही मंच के कुछ अंश, मंच के नीचे के रास्ते और दूसरे भाग भी देखे जा सकते हैं।

देहाती मनोरंजनों और आनन्दोत्सवों का अन्त हो गया। आगस्टस ने जब देखा कि उसकी बेटी जुलिया का इतना पतन हो गया है कि वह लगभग सड़क पर आवारा फिरने वाली औरत जैसा आचरण करने लगी है तो उसने उसे स्थायी रूप से देश निकाला दे दिया। मगर वह दूसरी वेश्याओं——वारांगनाओं, अपव्यय करने वाले लोगों और अनाचारी पतितों पर क्रुद्ध होने के अतिरिक्त और कुछ न कर सका। स्वयं उसकी ही कामवासनाओं के सम्बन्ध में भी अक्सर सन्देह किया जाता था। यकायक प्राप्त संपत्ति, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र की सर्वाधिक कठिन परीक्षा हो जाती है, बाढ़ की तरह आयी और उसने रोम में स्थित अनेक उच्च पदस्थ लोगों के प्रतिरोधी बांधों को तोड़ दिया। संपत्ति और उसके द्वारा क्रीत मधुर आनन्द के साधन और उनके साथ ही कोमल पापाचार का भी प्रवेश——इनसे संयम का बांध तो टूटेगा ही। और निम्न स्तर पर, निराशा-अवसाद से ग्रस्त पीड़ित जनसमाज, जो धर्म की ओर से विमुख हो चुका था, जो किन्हीं दबावों के अन्दर ही धार्मिक कृत्य करता था, जो उद्योग करने के बजाय अपने समय का दुरुपयोग कर्महीनता और आलस्य में ही करता था। जो बेचारे सत्यमेव ग़ुलाम थे उन्हें कठोर परिश्रम करना पड़ता था। वे धन वैभव के सुख से बहुत दूर थे। वे केवल इस बात की आशा लगाए रहते थे कि जो लोग संपन्न हैं वे रंगशाला, अखाड़ा अथवा कौतुक स्थलों में मनोरंजक कार्य क्रमों की व्यवस्था करेंगे जिनमें वे दर्शक के रूप में उपस्थित हो सकेंगे। सरकार की ओर से ग़ल्ला बंटता था——अब यही साधन था जिसके सहारे सरकार क़ायम रह सकती थी। सरकार ही खेल-कूद और नाट्याभिनयों की व्यवस्था करती थी। वह सार्वजनिक निधि से ही ठीकेदारों को खर्च देती थी और वे ठीकेदार जनता के लिए प्रदर्शनों का प्रबन्ध करते थे। (हमें पता है कि यहां से दूर एथेन्स में नाटक एक धार्मिक कृत्य था और जो लोग उसमें भाग लेते वे सम्मानित और श्रेष्ठ वर्ग के माने जाते थे!)।

या, फिर नगर के कुछ लोग प्रदर्शन का पूरा ख़र्च खुद उठा लेते थे और जनता मुफ़्त ही उन्हें देख लेती थी। इस प्रकार वे अपनी संपन्नता और वैभव का प्रदर्शन करते थे। वे किसी विजय का उत्सव मनाने के लिए अथवा किसी जनाज़े के उठने के सम्बन्ध में भी ऐसे उत्सव रचाया करते थे। अक्सर उम्मीदवार लोग भी अपने ख़र्चे पर एक दिन का उत्सव करा दिया करते थे। इतना निश्चय है कि ऐसे ही अभिनयों को प्रस्तुत किया जाता था 'जिन्हें जनता चाहती थी।'——यह एक ऐसा वाक्य था जिसका अर्थ सम्भावित प्रेक्षकों के निकृष्टतम तत्वों को ध्यान में ही रख कर 'व्यवस्थापक' लोग लगाया करते थे। जब गणतंत्र समाप्त हो गया और उसका स्थान साम्राज्य ने ले लिया, उस समय साल में छिहत्तर छुट्टियां हुआ करती थीं। इनमें से पचपन छुट्टियां केवल

नाट्य-प्रदर्शनों को ही देखने में व्यतीत की जाती थीं। बाद में इन छुट्टियों की संख्या बढ़ गयी और वर्ष में प्रायः छः महीने तक अवकाश ही रहा करता था। इनमें से एक सौ एक दिन नाटकों में, दस दिन असि-क्रीड़ाओं में, और चौंसठ दिन रथ दौड़ाने की प्रतियोगिता में व्यतीत किए जाते थे।

इन छुट्टियों में से एक दिन जब कि नाट्याभिनय की घोषणा हो चुकी है--मान लीजिए कि यह वह दृश्य है जब कि नज़ारथ के जीसस सुदूर फ़िलस्तीन में उपदेश दे रहे हैं, यह एक ऐसा देश है जो रोमन शासन के अन्तर्गत है--और हम हज़ारों अन्य रोम-वासियों के साथ पाम्पेयी थियेटर में स्थान प्राप्त कर लेते हैं। हमने किसी विशिष्ट व्यक्ति के माध्यम से 'टिकट' प्राप्त कर लिए हैं--छोटे-छोटे हड्डी के टुकड़ों के टिकट जिन पर सीट और संभाग की संख्या पड़ी हुई है। विशाल फ़ोरम से होकर हम नीचे की ओर जा रहे हैं, छज्जेदार मन्दिरों, विशाल अट्टालिकाओं, फ़ौव्वारों, मेहराबों के संगमरमर, कांसा और पच्चीकारी पर सूरज चमक रहा है--और हमें गर्व हो रहा है कि हम विराट वैभव और प्रदर्शन के एक अंग हैं, हमें इस बात का गर्व है कि हमारा रोम अब अत्यन्त स्पष्ट रूप से संसार का सबसे अधिक कलापूर्ण नगर है। हमारी भेंट जलूसों से होती है, कलाकार--अभिनेता रंगशाला की ओर जल्दी ही चले जा रहे हैं, उनके साथ उनके रथ हैं और घोड़े हैं और साज-सज्जा के 'सामान' हैं। उनके साथ बहुत से सहायक हैं। पुरोहितों का एक दल ही चला जा रहा है। ये लोग देव मन्दिरों में धार्मिक कृत्य करने और बलि चढ़ाने के लिए चले जा रहे हैं। उनके पवित्र औज़ारों को उनके सहायक लिए जा रहे हैं; एक समवेतगान पार्टी, जिसमें ऊंचे ख़ानदान की लड़कियाँ-लड़के हैं, वे अपने काम की सफलता से सम्बन्धित भक्ति परक गीत गाते चले जा रहे हैं। घोड़ों, रथों और रथवाहों का जलूस चला जा रहा है। सरकस मैक्सिमस की ओर, कल यहीं तो उनकी दौड़ होगी। हर जगह लोग बहुत तेज़ी से चल रहे हैं। छुट्टियों की पोशाक में सजे-बजे, बिना उर्दी पहिने सैनिकों से, हज़ारों पुलिस वालों से, रोबीले 'औपनिवेशिक' अफ़सरों से हिले-मिले वे आगे बढ़े चले जा रहे हैं। ये सम्भ्रान्त कुल के ज़मींदार हैं जिन्हें ग़ुलाम लोग पालकियों में ढो रहे हैं। लोगों के निजी रथ निहायत तेज़ी और लापरवाही के साथ दौड़ रहे हैं जिनसे जान बचाने के लिए अक्सर कूद कर अलग खड़ा हो जाना पड़ेगा।

शायद आज एक साथ तीन रंगशालाओं में अभिनय हो रहा है, अक्सर ऐसा ही होता था, लेकिन हम तो पाम्पेयी थियेटर में जा रहे हैं। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि केवल एक या दो पीढ़ी पहिले पाम्पेयी को ऐसा चातुर्यपूर्ण बहाना ढूंढ़ना पड़ा था,

जिसके फलस्वरूप यह रंगशाला किसी प्रकार बन सकी। इसका निर्माण नियम विरोधी कार्य था। मगर उसके प्रेक्षागृह के सिरे पर रति देवी का छोटा-सा मन्दिर बना दिया गया और दर्शकों की घुमावदार पंक्तियों वाली सीटें मन्दिर तक पहुँचने की सीढ़ियां बन गयीं और संपूर्ण इमारत को मन्दिर के लिए प्रदत्त मान लिया गया। मगर वहां नाटकों के देखने वालों के लिए सीटें हैं, यह बात पाम्पेयी के निमंत्रण पत्रों में जोड़ दी गयी।...

कितनी शानदार रंगशाला है! अपनी सीट पर बैठ कर हम देख रहे हैं कि जो सामने मन्दिर बना हुआ है वह गोलार्ध में बने कटोरानुमा स्थान के चारों ओर निर्मित शाही स्तम्भ समूह के बीच एक छोटे से गवाक्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसके नीचे लगातार चौड़े होते हुए गोलार्ध में सीढ़ियों की पंक्तियों पर पंक्तियां बनी हुई हैं, इतनी पंक्तियां हैं कि हम पन्द्रह हज़ार दर्शक आज यहाँ बैठकर प्रदर्शन देख सकेंगे। नीचे केन्द्र में, समतल प्राचीन यूनानी 'आरकेस्ट्रा' के अर्धांग की तरह एक स्थान है। वह सम्मानित व्यक्तियों के लिए कुर्सियां रखी हुई हैं। अब इन कुर्सियों पर पुरोहित नहीं सेनेटर विराजमान होंगे। निश्चय ही इससे प्रदर्शन की शोभा बढ़ेगी; आप जानते हैं ये सेनेटर क्या हैं—अपनी शक्ति और संपत्ति के मद में फूले अपने गुलामों और अपनी आवश्यकता से अधिक से सजी-बजी पत्नियों के साथ वे आएंगे और सारे समाज पर उनका दरबार क़ायम हो जाएगा।

'सर्कस मैक्सिमस' कभी जो रंगमंच छोटा-सा लकड़ियों का ठाठ मात्र था वही बढ़ कर अब तीन सौ फ़ीट लम्बा पत्थर का चबूतरा बन गया है। इसके पीछे और दोनों बग़लों में दीवारें उतनी ही ऊंची हैं जितने ऊंचे प्रेक्षागृह के पंक्तिबद्ध स्तम्भ हैं। यह दीवार उतनी सजी-बजी और अलंकृत है जितनी मन्दिर अथवा राजमहल की दीवार होती है। मंजिल-दर-मंजिल पंक्तिबद्ध स्तम्भ, सामने के सहन और गवाक्ष, रंगीन संगमरमर, मूर्तियां, कामदार किनारे; और इस सब के ऊपर अच्छी तरह अलंकृत मंच की छत। प्रेक्षागृह अब भी खुला है, उसके ऊपर छत नहीं है; मगर अब यूनानी परिपाटी का 'सीन' और 'काविया' का अन्तर समाप्त हो चुका है। अब रंगशाला अधिक ठोस, अधिक विराट और अधिक सुगठित हो गयी है। मगर सबसे बड़ी बात यह है कि अब यह अधिक अलंकृत, अधिक प्रदर्शनात्मक हो गयी है; उसमें अब एक ऐसी तड़क-भड़क आ गयी है जो अब नाटक में एक अधिक समुचित योग के रूप में मानी जाती है। निस्सन्देह हमें इस बात की भी याद दिला दी जाती है कि यह पत्थर की रंगशाला ही सबसे अधिक सजी-बजी और भड़कीली रंगशाला नहीं है। यह कि उसके बहुत दिन बाद नहीं, वरन् उस समय जब कि लकड़ी की अस्थायी रंगशालाएं ही अभिनय के प्रत्येक

अवसर पर निर्मित की जाती थीं, एम० एमिलियस स्कारस ने एक ऐसी रंगशाला बनवायी जिसमें रंगमंच के पीछे कम से कम तीन सौ साठ स्तम्भ पंक्तिबद्ध प्रदर्शित किये गए थे और शीशे के ऊर्ध्वांकित फलकों वाली तीन हज़ार मूर्तियां भी सजायी गयी थीं और केवल भगवान् ही जान सकता है कि पूरबी देशों की लूट से प्राप्त और कौन-कौन-सी चीज़ें वहां की सजावट में इस्तेमाल होती थीं।[1] शायद प्लिनी ने ही तो यह बात कही थी कि रोम में जितने नागरिक हैं, उतनी ही मूर्तियां भी हैं। मगर जो भी हो, पाम्पेयी का यह कटोरानुमा स्थान, इतना सजा-बजा, इतना रंगीन, जो कि अभी-अभी उत्तेजित और भली-भांति सजे-बजे लोगों से भर गया है, ही रोमन सम्राट्शाही नाटक के सम्बन्ध में हमारी अभिरुचि के सर्वथा अनुकूल सेटिंग है।

एक सन्नाटा छा जाता है, घोषणाएँ पढ़ी जा रही हैं जिनमें यह बताया जा रहा है कौन-सा नाटक अभिनीत अथवा प्रस्तुत किया जायगा; थोड़ा बहुत उस व्यक्ति का प्रचार भी किया जा रहा है जिसने अपनी विपुल संपत्ति को सम्मानित जनता के अवकाश के क्षणों में मनोरंजन प्रदान करने के लिए ख़र्च किया था। उद्घोषक जनता से यह भी मांग करता है कि वह शांत होकर आदरपूर्वक अभिनय की ओर ध्यान दे। प्रेक्षक एक दूसरे को उत्कण्ठित होकर देखते हैं—हाय भगवान्! इतनी भीड़! ये लोग अखाड़े में द्वन्द्व और भिड़न्त देखने क्यों नहीं चले गये?

किन खेलों का एलान हुआ है? हमें यहां थोड़ी-सी कल्पना से काम लेना पड़ेगा, क्योंकि बाद के इतिहासकारों को इन कार्यक्रमों का पता नहीं चल सका। सुविधा के लिए हम यह स्वीकार कर लें प्रातः कालीन कार्यक्रम में प्राचीन यूनानी परिपाटी के एक या दो नाटक खेले जायेंगे। मगर उन्हें विकृत बना कर ही प्रस्तुत किया जाएगा जिससे

---

१. अनेक आकड़ों और वर्णनों के लिए मैं टुर्नी अलेन कृत 'स्टेज एन्टिक्वीटीज़ आव दी ग्रीक्स ऐण्ड देयर इन्फ्लुयेन्स' (न्यूयार्क, १९२७) का और रोमन जीवन की पृष्ठभूमि के लिए ग्रान्ट शावरमैन कृत 'इटर्नल रोम' (न्यू हेवेन, १९२४) का कृतज्ञ हूं। सर्वाधिक मानक और नवीनतम तथ्यों से पूर्ण ग्रंथ है डब्ल्यू बेयर कृत दी रोमन स्टेज: ए शार्ट हिस्टरी आव लैटिन ड्रामा इन दी टाइम आव दी रिपब्लिक' (केम्ब्रिज, मास, १९५१)। यूनानी रंगशाला पर लिखित अनेक ग्रंथों में रोमन रंगशालाओं से सम्बन्धित अध्याय भी हैं, विशेषतः देखिए मार्गरेट बीबर कृत 'दी हिस्टरी आव दी ग्रीक ऐण्ड रोम थियेटर' (प्रिन्सटन, १९३९)।

दर्शक उन्हें देखने के लिए रुके रहें और अपरान्ह में दूसरे लोकनाट्य; **मिमी** और **पेन्टोमिमी** प्रस्तुत किए जाएंगे।

यह सामने प्रारम्भिक जलूस कैसा है? रंगमंच के आर-पार यह कैसा प्रदर्शन है जिसमें शानदार तमाशा और लीला है, चहल-पहल है, रंगीनी है, भीड़-भाड़ है? क्या यही नाटक है? नहीं, अभी नहीं। और अभिनेता? हां---उनके चेहरों से और उनकी फूली-भड़कीली पोशाकों से हम उनमें से प्रमुख अभिनेताओं को पहिचान सकते हैं, (यह प्रेक्षागृह इतना विशाल है कि कोई एक आदमी उस पर हावी नहीं हो सकता)। मगर ये दूसरे लोग तो अभिनय बिल्कुल नहीं कर रहे हैं—ये तो किसी तरह पीछे-पीछे घिसटते जा रहे हैं। ऐसा ही है, निस्सन्देह! ये अमुक व्यक्ति के पूरब की विजय के समय बन्दी बनाए गए लोग हैं; सैकड़ों की संख्या में। ये लो, अब घोड़े भी आ गये। शायद ऊंट भी आयेंगे और हाथी भी। हो सकता है ज़ंजीरों में जकड़ा कोई राजा भी सामने लाया जाय। कई बार ऐसा हो चुका है। कितना नाटकीय है यह सब? ऐसी टिप्पणी किसी न किसी को करनी ही चाहिये!

इस प्रकार के तमाशे नाटक के बीच-बीच दिखाए ही जाते हैं। कभी-कभी तो इनका कोई भी सम्बन्ध नाटक से नहीं होता। यह तड़क-भड़कदार और सनसनीपूर्ण होता है। कभी-कभी ऐसा प्रदर्शन होता भी है जो कि नाटककार की इच्छा के अनुकूल होता है। क्या रोम की प्रेक्षक भीड़ के लिए कुछ चुने हुए कलाकारों की छोटी-सी भीड़ मंच पर काफ़ी दिखती है? नहीं, उनकी संख्या सैकड़ों और हज़ारों की हो तभी काम चलेगा। यदि नायक किसी सेना के आगे-आगे चल रहा हो तो क्या कुलबी घोड़ों से काम चल जाएगा? अगर इस समय पांच सौ घोड़े भी मंच पर दिखा दिए जायं तो लोगों को संतोष हो जाय। और लीजिए, यहाँ पर ऐसा ही हो रहा है। नाटक के बीच ही घोड़ों का यह प्रदर्शन हो रहा है और लोग तालियां पीट कर अपना उल्लास प्रकट कर रहे हैं। यह नाटक अस्पष्ट रूप से किसी महान् यूनानी नाटक के आधार पर रचा हुआ मालूम पड़ता है। वास्तविकतापरक युद्धों, बाढ़ों, बाहर से लाए पशुओं के जलूसों से नाटक के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है।

कभी-कभी यह विस्मय होने लगता है कि क्या सचमुच रोमन नाटककार ने गम्भीरतापूर्वक दुःखान्त होने के लिए इस नाटक की रचना की? क्या वह प्रहसनमूलक भावना के अनुकूल कोई महान् कथानक नहीं चुन सकता था? फिर भी ज़ोरदार भाव-भंगिमा और ओजस्वी वक्तृताओं के ज़रिए यहां महान् भाषण दिए जा रहे हैं। यहां पूर्ण आवेगपूर्ण याचना की जा रही है, हिंसामूलक हत्या की जा रही है, और अलंकृत ढंग से प्रतिहिंसा की बात की जा रही है। ये अभिनेता गुलाम, स्वतंत्र किए हुए लोग,

विदेशी लोग--जो कि अपने वास्तविक जीवन में शायद समाज से बहिष्कृत और चोर ही रहे हों--यह भली-भांति जानते हैं कि प्रेक्षकों की भावना को कैसे उभाड़ा जाय। उनमें से जो प्रमुख व्यक्ति है, जिसकी आवाज़ गम्भीर और सशक्त है, नाटक के अत्यन्त सर-गर्म मौक़े पर आपेरा एकान्तिक अभिनेता बन जाता है और उसके साथ-साथ संगीत भी चलता रहता है। ऐसे अवसर पर पुराने समवेत गायन याद आ जाते हैं। इसके कारण मध्यान्तर बिना कष्ट के बीत जाता है।

बाद के सुखान्त नाटकों में यूनानी अवशेष उसी मात्रा में है जिस मात्रा में वह दुःखान्त नाटकों में है। अब परिवर्तन स्वांग-तमाशा की दिशा में आगे नहीं बढ़ता। बल्कि वह सस्ते घुड़सवारी के खेलों और खुले फूहड़ मज़ाकों की ओर बढ़ता है। बाद के इन प्रकरणों से पता चलता है कि इनमें स्थानीय भड़ैती करने वालों से अधिक उधार लिया गया है। इनके चेहरे भी अब अधिक अवास्तविक, अनगढ़ और स्पष्ट होने लगे। पुराने लोकप्रिय पात्र ही स्थायी पात्र बन गये हैं, जो हर नाटक में बार-बार आते रहते हैं। हम भी अपने प्रिय परिचित पात्रों को ढूँढ़ते हैं--अनिवार्य रूप से धोखा खाया हुआ पिता, वारांगना, मुफ्तख़ोर, वेश्याओं का दलाल, उत्तराधिकारिणी राजकुमारी। यहां वे एक के बाद एक गुत्थियों में फंसे बिखरे पड़े हैं। हम हंसते हैं। यह वह 'सुविचारित हंसी' नहीं है जो वास्तविक सुखान्त नाटक से उत्पन्न होती है। यह शायद स्वस्थ पाशविक हंसी भी नहीं है। इस हंसी में कुछ असम्मानजनक, कुछ अश्लील भी है। ये प्रहसनकार हर सीमा का अतिक्रमण कर गये।

फिर भोजन करके लौटने के बाद जब हम रंगशाला में **मिनी** और **पेन्टोमिमी** के अभिनय देखने जाते हैं तो हमें लगने लगता है कि सबेरे हमने जिन प्रहसनकारों और अभिनेताओं से परिचय प्राप्त किया था उन्होंने सीमा का अतिक्रमण बिल्कुल नहीं किया था। यदि हम **मिमस** के निकृष्ट जीवन पर कथानक को स्वीकार कर लें, मनगढ़न्त कविता गढ़ने की छूट को भी मंजूर कर लें और इस स्थान पर एकत्र जनता की कुरुचि में भी स्वीकार कर लें तब तो सब ठीक ही है। इन दर्शकों के लिए कोई भी मज़ाक गन्दा नहीं है, कोई भी स्थिति मर्यादाहीन नहीं है, कोई भी संकेत घृणित नहीं है। अभिनेता चेहरे नहीं लगाते। शायद इसके कारण इनकी अश्लीलता और भी नंगी हो जाती है। समवेत गायन होता है, जिसमें समुचित गीत गाये जाते हैं, और नृत्य होते हैं जिनमें समुचित इंगित और संकेत होते हैं। यह सम्पूर्ण मनोरंजन, कथोपकथन, रेखा-चित्र, नृत्य, गीत, प्रहसन का मिश्रण होता है। प्रथम बार स्त्रियां अभिनेत्रियों और नर्तकियें के रूप में रंगमंच पर आयी हैं। और उनका प्रदर्शन लज्जास्पद अभिनय और कामोत्तेजक निमंत्रण से कम नहीं है। इन तमाम चीजें के साथ जिन्हें हम सामूहिक मनोरंजन

में आज पतनमूलक मानते हैं, ऐसा बहुत कुछ और भी है जो मात्र विनोदपूर्ण और हास्यमूलक भी है, ऐसे पात्र और नक़लची हैं जो सद्यः हास्य उत्पन्न कर देते हैं, जादूगरी के ऐसे पुराने खेल हैं जिनके कारण लोग अपनी सीटें छोड़ कर उठ-उठ जाते हैं। हम फिर हंसते हैं। मगर हम यह भली-भांति जानते हैं कि जैसे-जैसे रोमन जीवन व्यभिचारी और पतनशील होता गया है, वैसे ही वैसे प्रहसन का भी पतन होता गया है।

अब एक '**पेन्टोमाइम**' का प्रदर्शन हो रहा है—यह उन चमत्कारों में से एक है जो रंगमंच पर इतना अधिक प्रदर्शित होता है। दर्शकों के सामने एक अकेला अभिनेता चेहरा बदल कर आता है। उसके पीछे समवेत गायन और 'वृन्द वादन' का कार्यक्रम चल रहा है। अभिनेता अकेले ही एक छोटे पौराणिक नाटक का अभिनय अपनी भंगिमाओं, संकेतों और नृत्यों द्वारा करता है। नाटक का मूलपाठ समवेत-गायक पार्श्व से करते जाते हैं। वह पांव में बँधे घुंघरू के सहारे छन्द के आरोह-अवरोह के साथ संगीत की लय का सामञ्जस्य बैठाने में सहायता करता है। वह एक आश्चर्य-जनक नाटकीय गहनता उत्पन्न करता है। वह एक ऐसे मनोभाव की सृष्टि करता है जो इस संपूर्ण असंस्कृत समाज को जादू के असर में डाल देता है, मुग्ध कर देता है। शायद उसने विभिन्न पात्रों की भूमिका अदा करते समय अपने चेहरों और पोशाकों को भी बदल दिया है। जो भी हो, कुछ क्षणों के लिए वास्तविक नाटक का प्रभाव, एक ही अभिनेता के प्रदर्शन के माध्यम से, फिर क़ायम हो गया। केवल थोड़ी-सी कला दक्षता के फलस्वरूप एक संपूर्ण प्रेक्षक समाज दत्तचित्त और ध्यानावस्थित हो गया, मनोवेगों से आलोड़ित हो गया, गम्भीरतापूर्वक संतुष्ट हो गया।

निस्सन्देह यह एक संपूर्ण दुःखान्त नाटक है, जो कि सिमट कर, गहन होकर अनेक अभिनेताओं के स्थान पर एक ही अभिनेता के अभिनय में समाहित हो गया है। कहते हैं कि बहुत पहिले लिवियस आन्द्रोनिकस ने, यह सोचकर कि अनेक अभिनयों में भाग लेने के कारण उसका गला ख़राब हो गया है, गीत गाने का काम एक लड़के को दे दिया; और तब उसने मूक-अभिनय के सहारे ही अत्यधिक भावपूर्ण और प्रभावपूर्ण प्रदर्शन किया। इस लड़के की भूमिका ने ही आगे चल कर समवेत गान का स्वरूप ग्रहण कर लिया और अभिनेता का अंग-संचालन और उसकी भाव-भंगिमा ही अधिक परि-मार्जित होकर आगे पूर्णतया नाटकीय वस्तु बन गयी। रोमन पेन्टोमाइम ने स्वरूप ग्रहण कर लिया।

परन्तु यदि इस दो सौ वर्ष प्राचीन नाटक ने पाम्पेयी थियेटर में इस विशिष्ट दिन एकत्र जनसमाज को प्रभावित किया, तो इसमें भी सन्देह नहीं कि इसी अभिनेता

के दूसरे अभिनय ने, जिसमें **पेन्टोमिमस** भावनात्मक दृष्टि से **मिमस** के अधिक निकट आ गया था, दर्शकों को और भी अधिक प्रभावित किया। इस एक विजय के बाद वह रुक क्यों नहीं गया ? इससे अधिक गम्भीर पेन्टोमाइम में दृश्यालेखन ने पौराणिक कथा के कुछ प्रमुख प्रभावशाली अंशों को ही अपनाया था, ऐसे अंशों को जो अधिक प्रचण्ड और श्रृंगारिक थे। मगर अब, इस दूसरे नाटक में, जब कि उसकी सजीवता **मिमस** के अधिक भद्दे और अश्लील ढंगों की ओर अभिमुख हो गयी थी, और एकान्तिक अभिनेता होने के कारण आंगिक प्रदर्शनों के लिए उसे और भी अधिक अवसर मिल गया था, एक नये प्रकार के, अधिक उत्तेजनापूर्ण प्रदर्शन का प्रारम्भ हो गया—हां, इतना अश्लील प्रदर्शन कि जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।. . .

यदि हम सत्यमेव अपने रोम को प्यार करते हैं तो हम फ़ोरम से वापिस लौटते समय अपने हृदय में कुछ उदासी और नैराश्य को ही लेकर वापिस आते हैं। आराम में हमने रंगशाला में कुछ प्राचीन चाकचिक्य का अनुभव किया था, वाक्-विमूढ़ उत्कण्ठित प्रेक्षागृह का अनुभव किया था। परन्तु अपरान्ह होते-होते यह भावना बदल गयी और हमारे मन में एक छिन्न-भिन्न, नीरसतापूर्ण, अप्रीतिकर भावना उत्पन्न हो गयी। क्या हमारी कल्पनाशीलता ही हमें इन मन्दिरों, मूर्तियों और फ़ोरम के विराट मेहराबों के बीच ले आयी है—पच्चीकारी वाली सजावट, मुलम्मों, मूर्तियों और रंग-बिरंगी संगमरमरी दीवारों, स्तम्भों को देखने और इस महान् भव्यता के भीतर छिपी असत्यशीलता, ढोंग, कुरुचिपूर्ण और अश्लील प्रदर्शनात्मकता का स्पष्ट आभास पाने के लिए ? रोम पर विजय प्राप्त करने के लिए यह कितनी समुचित कला है। क्या यह सत्यमेव महान्, उत्कृष्ट, आत्मा को आन्दोलित करने वाली, भावनाओं को उत्तेजित आह्लादकारी कला है—वैसी ही जैसी कि प्राचीन यूनानी कला थी ? अथवा, क्या यह दिखावटी, उत्तेजनात्मक, उबा देने वाली कला है ?

इससे अच्छी रंगशाला, जिसमें कामुकता की इतनी अधिक मिलावट नहीं है, एक छोटे स्तर में साम्राज्यशाही रोम में चल रही है, यद्यपि दर्शकों की छोटी-सी संख्या का अर्थ ही है कार्यक्रम की लघुता। अब भी पुरानी शैली के नाटक लिखे जाते हैं। मगर उनमें मौलिकता बहुत कम है, स्थायी मूल्यों की न्यूनता भी है। कुछ पढ़े-लिखे रोमवासियों के लिए रोम के यूनानी निवासियों के लिए तथा वहां के कुछ विशिष्ट दलों के लिए मौलिक यूनानी नाटक, यूनानी भाषा में ही, प्रदर्शित किये जाते हैं।

जहां तक अभिनय की कला प्रश्न है, एकान्तिक व्यक्ति के अभिनय की दृष्टि

से, रोमवासियों ने अपने गुरुओं से भी अधिक प्रगति कर ली। महान् कलाकारों ने कला की सूक्ष्मता की शिक्षा भी छात्रों को दी। बाद में, रिपब्लिकन दिनों में, क्विन्टस रोशियस मंच पर उपस्थित हुआ, और उसने प्रभावशाली अभिनय की स्थायी परम्परा निर्मित कर दी। कहा जाता है कि एक वर्ष में उसने एक सौ पच्चीस बार अभिनय किया। वह सिसरो का मित्र हो गया। सुल्ला द्वारा वह सम्मानित किया गया और अभिनय के पेशे पर जो लांछन लग गया था, उसे भी उसने धो डाला। इतिहास के इस विशेष अवसर पर ही यह कला लांछित क्यों हो गयी, यह माइम और पेन्टोमाइम के हमारे अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है और हमारी इस जानकारी से भी स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर अभिनेता गुलाम थे। अभिनेता को नागरिकता के अधिकार नहीं प्राप्त थे। विधि की दृष्टि में वह **इनफ़ेमिस** था, समाज से वह बहिष्कृत था। इस बात पर विश्वास करने के कारण हैं कि कम से कम बाद के सम्राटों के पहिले वह वेश्याओं के दलालों और चोरों की ही श्रेणी में परिगणित होता था।

रोम में ही पहिली बार नैश प्रदर्शनों की परंपरा आरम्भ हुई। मशालों की रोशनी में नाटक अभिनीत किये जाते थे। हालांकि हम यह मान सकते हैं कि यह मात्र नवीनता के चमत्कार के लिए ही किया जाता था, वह आधुनिक मंचीय प्रकाश की कृत्रिम व्यवस्था की ओर बढ़ा हुआ क़दम कदापि न था। रोमवासियों ने ही क्रीत प्रशंसकों की परंपरा को स्थायी रूप दे दिया जो कि बाद के युगों में एक अभिशाप बन गयी। जब अभिनयों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी रंगशालीय 'ठीकेदारों' की भी ज़रूरत पड़ने लगी। वे हर अभिनय के लिए ठीका ले लिया करते थे और ठीका ले लेने पर वे जनता के सामने नाट्याभिनय प्रस्तुत किया करते थे। कभी-कभी तो ठीकेदार कोई साहसी तरुण कलाकार ही होता था, जो मुख्य भूमिका स्वयं करता था, और अप्रधान भूमिकाओं के लिए दूसरे लोगों को किराए पर लेता था या उन्हें खरीद लेता था। यदि उसका प्रदर्शन सफल और प्रशंसित होता था तो उसे धन की प्राप्ति होती थी। अक्सर तो उस सम्भावित सफलता के आधार पर ही धन मिल जाता था। इसलिए क्रीत प्रशंसकों की टोलियाँ संगठित की गयीं। जोश को उभारना ही इनका काम था, और यदि संभव हुआ तो जनता को उकसा कर प्रदर्शन भी करवा देना इनका पेशा था। विरोधी कार्यों की भी सूचनाएँ हमें मिलती है। इनके अनुसार विरोधी अभिनेता-- व्यवस्थापक अपने प्रतिद्वन्द्वी के अभिनयों की निन्दा भी करते थे। इस सम्बन्ध में दंगे भी हुए। इतना तो निश्चय ही है कि पतनशील, कृत्रिम कला के समर्थन में ही क्रीत प्रशंसकों की आवश्यकता पड़ सकती है। अध:पतित रोमन रंगशालाओं की कुछ

समानता आज की 'ग्रैण्ड' नाट्य-नृत्य शालाएं कर सकती हैं जहां के क्रीत प्रशंसक अधिकतर बिल्कुल निर्लज्ज होते हैं और वे हर कलापूर्ण वातावरण को नष्ट कर देते हैं।

पर नाट्य-प्रस्तुतिकरण के क्षेत्र में, बाद की रोमन रंगशालाओं में, जो परिवर्तन हुए, वे अधिक स्वांग-तमाशा के विकास के रूप में प्रकट हुए। अब मंचों को अधिक लम्बा चौड़ा बना दिया गया। प्रभावकारी तत्व ज्यों-के-त्यों बने रहे, मगर ज़ादूगरी, चमत्कार, विस्मय आदि तत्वों के प्रति विशेष मोह प्रदर्शित किया जाने लगा। सदियों से रोम में रस्सी पर चलने, जादू के खेल दिखाने, और इसी प्रकार का मनोरंजन करने वाले कलाकारों की प्रशंसा होती चली आयी थी। इसके अनेक प्रमाण भित्ति-चित्रों और मिश्रित पच्चीकारी के चित्रों में मिलते हैं। यूनानी रंगमंच में विशिष्ट प्रकार के स्थायी प्रभावों को उत्पन्न करने में, उदाहरणार्थ किसी देवता के आगमनसूचक बिजली के कड़कड़ाने का प्रभाव दिखाने में यंत्रों का उपयोग होता था। ऐसे ही नाटक को समाप्त करते समय भी किया जाता था। रोमन मंच पर इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया था। अब इसे और भी विकसित करके कक्ष निर्मित करने, जाली-दरवाज़ों, में गायब हो जाने, उड़ते हुए पात्रों को दिखाने, बिजली-बादल के कड़कने-गरजने आदि की भी व्यवस्था कर ली गयी थी। विट्रूवियस ने समकालीन रंगमंचीय व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रमाण छोड़े हैं, और द्वितीय शताब्दी में लिखते हुए पोलक्स ने भी चमत्कारपूर्ण दृश्य तैयार करने के लिए अनेक यांत्रिक सामग्रियों की चर्चा की है।

चित्रित रंगमंच के कोई भी पूर्ण उल्लेख नहीं प्राप्त होते, परन्तु कुछ ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं जिनसे पता चलता है कि इस दिशा में कुछ प्रयास अवश्य किये गये थे। सामान्यतया पाठक को यह बात अपने दिमाग से निकाल देनी चाहिए कि प्राचीन काल में मंचीय तत्व के रूप में कोई स्थानिक पृष्ठभूमि रहा ही करती थी। सही बात यह है कि अभी तक इसकी परिकल्पना ही नहीं हुई थी। मंच तो केवल मंच था, वह किसी स्थान विशेष का द्योतक अथवा प्रतीक न था। नाटककार कथोपकथन में ही बता देता था कि अभिनेता कहां पर स्थित हैं, अथवा सामने उपस्थित अभिनेताओं के आपसी सम्बन्धों से ही यह बात स्पष्ट हो जाती थी। और यह उस प्रेक्षक समाज के लिए पर्याप्त था, जो 'वास्तविक' पृष्ठभूमि के लिए प्रशिक्षित नहीं था। विट्रूवियस के समय के पहिले ही, दृश्य की चित्रात्मक ढंग से परिवर्तित करने का उपाय निकाल लिया गया था। डण्डे के ऊपर तीन तरफ़ वाले बोर्ड लगा दिए जाते थे। और तीनों तरफ़ दु:खान्तक, सुखान्तक इमारती दृश्य और ग्रामीण दृश्यों से सम्बन्धित चित्र बना दिये जाते थे।

बोर्ड घुमा कर दिखाये जा सकते थे। इस बात का प्रमाण बहुत कम मिलता है कि किस सीमा तक इस व्यवस्था को लोकप्रियता प्राप्त थी। मगर अपनी प्रसिद्ध **टेन बुक्स आन आर्कीटेक्चर** में विट्रूवियस ने उनके बारे में इस प्रकार लिखा है : "जब भी नाटक के दृश्य को बदलना हो अथवा बादल-बिजली की कड़क के साथ देवता का प्रवेश हो तो इस बोर्ड को घुमा देना चाहिए जिससे अन्य चित्रित दृश्य सामने आ जाय।" बाद में
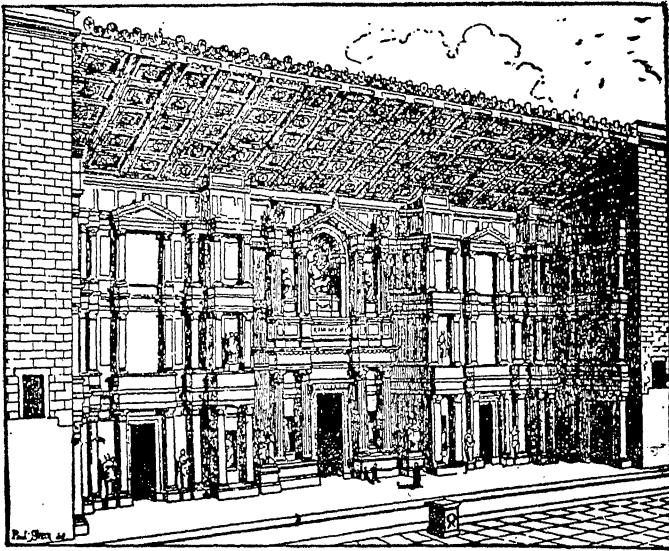
आरेन्ज स्थित रोमन थियेटर का मंच, जैसा कि उसकोमिले सेन्ट सायेन्स ने निर्मित किया। अभिनेताओं की तुलना में इमारत की विराटता और ऊँचाई तथा उसकी सजावट द्रष्टव्य है।

हम विट्रूवियस और दृश्यों से सम्बन्धित उसके वर्णनों को फिर सुनेंगे, उस समय जब कि पुनरुत्थानकालीन कलाकार उसके निर्देशों को लागू करके पूरे मंच से रिंग को तैयार करेंगे। परन्तु यह सारा विषय अत्यन्त उलझा हुआ है। आचार्यों में आपस में गहरा मतभेद है। जिसके फलस्वरूप रोमन युग में परिवर्तनशील चित्रित सेटिंग के बारे सही

कठोर आलोचना होरेस ने की थी क्योंकि वे काव्यात्मक अथवा साहित्यिक नाटकों के स्थान पर चमत्कारपूर्ण और उत्तेजनात्मक अभिव्यक्तियों को अधिक पसन्द करते थे। उसने एपिसिल्स में लिखा है, 'चार घण्टे या उससे भी अधिक समय तक पर्दा गिरा रहता है और घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकों की टुकड़ियां चलती दिखायी जाती हैं। कभी सामने किसी अभागे राजा को पीछे की ओर मुश्क बंधे घिसटते हुए दिखाया जाता और नाना प्रकार के साही रथ दौड़ते दिखाए जाते।'

'पर्दा गिरा रहने' का जो चर्चा यहां आया है, वह इस बात का प्रमाण है कि रोमन रंगमंचों पर सामने पर्दा हुआ करता था। यह पर्दा मंच के दोनों किनारों पर लगे खटके के सहारे ऊपर उठाया जाता था। अभिनय शुरु होने पर ये खटके नीचे गिरा दिये जाते थे और अभिनय समाप्त होने पर ऊपर उठा दिये जाते थे पाम्पेयी के विशाल थियेटर में और आरलेस के थियेटर में अब भी पर्दा लिपटने वाली गड़ारी में ये खटके दिखायी देते हैं। हर नाटक प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि जब कभी प्रभाव जमाने का प्रश्न आता है, यकायक बहुत से अभिनेताओं को मंच पर प्रस्तुत कर देने से विस्मय की सृष्टि हो जाती है; यह तेज़ी के साथ छिड़े युद्ध को दिखाना अधिक प्रभावोत्पादक होता है, बनिस्बत इसके कि अभिनेताओं को प्रवेश करते अथवा युद्ध को शुरु होते दिखाया जाय। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि पर्दा वाला रंगमंच उत्तेजनात्मक गम्भीर घटना के प्रति रोमन लोगों के मोह के फलस्वरूप ही विकसित हुआ।

जो भी हो, शोभा यात्रा प्रदर्शन, जिसमें बीच-बीच में उत्तेजनात्मक रोमांचकारी स्वांग-तमाशों का भी सन्निवेश रहता था, रोम में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। हम जानते हैं कि ऐसा प्रदर्शन, बाद के इतिहास में फिर केवल एक बार पेरिस में **बोलेवार्द डू क्राइम** के नाटकों में ही, लोकप्रियता प्राप्त कर सका था; साथ ही लन्दन के उन्नीसवीं शताब्दी के रंगमंचों पर इससे मिलते-जुलते स्वांग-तमाशों की धूम भी कुछ दिनों तक रही थी। रक्त पिपासु युग के प्रेक्षकों के लिए रोमवासियों को एक सुविधा भी थी। वे अपने रंगमंचों पर ऐसी लड़ाइयों, हत्याओं, अपहरणों को भी प्रदर्शित कर सकते थे जो वास्तविकतापरक थे परन्तु जिन्हें बाद की सभ्यता ने निषिद्ध कर दिया। विजेता जब स्वदेश वापिस लौटता था तब वह जनता के लिए मनोरंजक-प्रदर्शन आयोजित करने का आदेश देता था। उस समय वह सत्यमेव हज़ारों वास्तविक सैनिकों, घोड़ों, रथों, विचित्र वेशभूषा वाले हज़ारों गुलामों को विजय कलशों और पदकों, सच्चा सोना, मूर्तियों और अत्यन्त मूल्यवान् पदार्थों को लिए, मंच पर प्रदर्शित करने के लिए दे सकता था। इस पृष्ठभूमि में यदि मंच व्यवस्थापक वास्तविकतापरक युद्ध को प्रदर्शन करते और उनमें

कुछ लोग मर भी जाते तो किसी को कोई एतराज़ नहीं हो सकता था। या यदि वे ग़ुलाम लड़कियों को अपने शरीर के अंगों का विभिन्न रूपों में अश्लीलता प्रदर्शन करने के लिए नियोजित करते तो यह भी कोई एतराज़ की बात न थी। (इन प्रदर्शनों में क्या-क्या नहीं दिखाया जाता था, क्या-क्या नहीं प्रदर्शित किया जाता था।)

अब स्वांग-तमाशों और चमत्कारी प्रदर्शनों को रंगशालीय कला के लिए एक समीचीन विधा के रूप में स्वीकार किया जा सकता था। हमें यह जानना चाहिए कि रंगशाला—रंगमंच की अनेक विधाएं होती हैं और यह कि उनमें से प्रत्येक अपने-अपने स्थान पर उचित और समीचीन है। मगर हमें लगता है कि रोमन दिल व दिमाग़ आवश्यकता से अधिक यथार्थवादी और आवश्यकता से अधिक रोमांच-उत्तेजनापरक था, और रंगशालाएं भी आवश्यकता से अधिक विराट और विशाल थीं, इतनी विराट और विशाल कि उसमें सूक्ष्म चमत्कारपरक स्वांग-तमाशों के लिए भी गुंजायश न थी। उस हिंसा, विजय, और पतनशील जीवन के लिए, उत्तेजनापूर्ण घटना, कठोर व्यक्तिगत युद्ध आश्चर्यजनक, विस्मयकारी वैभव और ऐश्वर्य-प्रदर्शन ही उचित था। रंगशाला ने अपने को भी उसी हिंसा, दुराचारिता और वासना के अनुरूप ढाल लिया जो कि रोम का वास्तविक था! आराम में नाट्य प्रस्तुतकर्ताओं ने यथाविध नाटकों को स्वीकार किया और अनावश्यक स्वांग-तमाशापरक घटनाओं को भी उनमें यहां-वहां शामिल कर लिया। उसके बाद उन्होंने इन नाटकों में वास्तविक युद्धों, यथार्थपाक संकटों को भी सन्निविष्ट कर लिया। अन्तिम रूप से 'नाटक' के ख़तरे इतने अधिक वास्तविक हो गए कि रोमनों ने यूनानी रंगशालाओं का निर्माण करते समय वृन्द-वादन क्षेत्र और प्रेक्षागृह के बीच दीवार खड़ी कर दी जिससे कि किसी ग़लती के फलस्वरूप प्रेक्षक घायल न हो जांय, मर न जायं।

जो रंगशालाएं आरम्भ में नाट्याभिनय के लिए निर्मित हुई थीं, बाद में उनका प्रयोग मल्ल युद्ध, असि युद्धों आदि के लिये होने लगा। इस बात के प्रमाण बाद के रोमन लेखकों के साहित्य में मिलते हैं। इसके चिन्ह अब भी अवशिष्ट रंगमंचों में देखे जा सकते हैं। जो रक्तरंजित अभिनय उस समय होते थे, उनके लिए ये अखाड़े काफ़ी न थे, इसलिए इन रंगशालाओं का उपयोग अनिवार्य हो गया था। यह विश्वास कर लेने का भी कारण है कि एथेन्स में स्थित थियेटर आव डायोनिसस का (जो किसी प्राचीन रंगशालाओं में सर्वाधिक गौरवशाली रंगशाला थी) निचला हिस्सा एक रोमन सम्राट के आधिपत्य में इस तरह फिर से निर्मित किया गया था कि वह जला प्रवेश हो गया था। ऐसा इसलिए किया गया था कि वहां कृत्रिम जलयुद्ध प्रदर्शित किया जा सके। रोम में

ऐसी अर्धवृत्ताकार मंचीय रंगशालाएं पहिले ही से बनी हुई थीं जिनमें इस प्रकार के सामुद्रिक जलयुद्ध हुआ करते थे।

इन **नौमाचियों** में---ये वास्तविक रूप से कटोरेनुमा प्रेक्षागृह थे जिनके बीच में तालाब बने होते थे, समान 'वजन' के दो तीन डाडोंवाले युद्धपोत एक दूसरे सामने युद्ध के लिए खड़े कर दिए जाते थे। युद्ध आरम्भ होने के पहले युद्धपोतों का एक मैत्रीपूर्ण प्रदर्शन हुआ करता था जिसमें इन पोतों को सत्यमेव अच्छी तरह सुसज्जित किया जाता
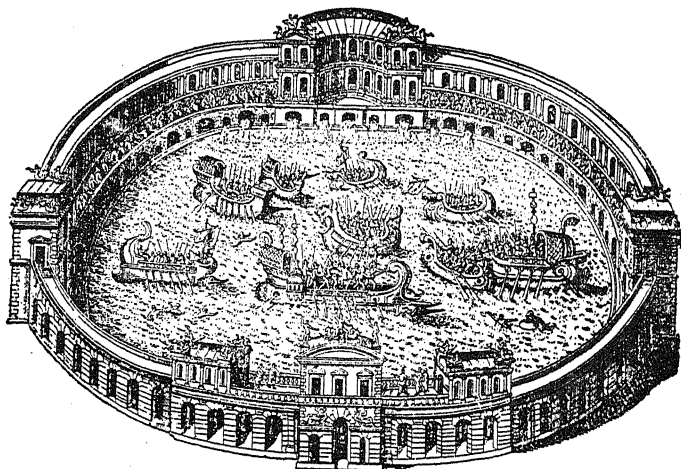
नक़ली समुद्री युद्ध के लिये निर्मित एक नौमाचिया अथवा रंगशाला।
(ई० एम० लामान कृत ला मेशिनरी आउ थियेटर।)

था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि युद्ध में भाग लेने वालों को यह हिदायत दे दी जाती थी कि वे विजय प्राप्त करने के लिए युद्ध करते समय इस बात का ध्यान रखें कि युद्धपोतों और सैनिकों को कम से कम हानि पहुँचे। मगर ऐसे एक देश में जहां ग़ुलाम और युद्धबन्दी लगातार तब तक लड़ते रहने के लिए विवश किए जाते थे जब तक कि वे एक दूसरे की हत्या न कर दें, या वे जंगली जानवरों के सामने छोड़ दिए जाते थे कि जिससे वृत्ताकार रंगशाला में उपस्थित दर्शकों को उनके युद्ध का आनन्द प्राप्त हो सके, यह समुद्री युद्ध भी निश्चित रूप से पर्याप्त मात्रा में रक्तरंजित ही होता। एक आलोचक ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए यह भी कहा है कि जब युद्ध के बाद तालाब ख़ाली

किया जाता था, उसका पानी निकाला जाता था तो पोत युद्ध में भाग लेने वाले अभिनेताओं की लाशें भी, बिना किसी समारोह अथवा कृत्य के, खींच कर जानवरों की मांदों में डाल दी जाती थीं। मनोरंजन का जो यह स्वरूप है उसे गम्भीरतापूर्वक नाटक की एक विद्या या रूप नहीं मान लेना चाहिए। परन्तु इन कृत्रिम युद्धों के लिए जो इमारतें निर्मित की गयीं उनकी वास्तविक प्रशंसा के लिए हमें यहां क्षण भर रुक कर सोचना चाहिए। जुलियस सीज़र ने इस प्रकार की जो **नौमाचिया** बनवायी वह दो हज़ार लम्बी और दो सौ फ़ीट चौड़ी थी। उसके बीच में एक ऐसा तालाब भी था जिसमें तीन डांडों वाले पचास युद्धपोत युद्ध का प्रदर्शन कर सकते थे। दूसरे पृष्ठ पर **नौमाचिया** का जो चित्र दिया गया है, वह ऐसे काट कर निकाला गया है कि जिससे सारे विवरण स्पष्ट होकर उभर आवें। वैसे, अनेक रूपों में वह शायद कल्पना-मूलक अधिक है। मगर इस विशिष्ट कार्य के लिए यह कितनी मनोमोहक और तर्क संगत रंगशाला थी! रोम के कलोसियम में ऐसी बांधों पर बनी पुलियां जिन्हें—पुरातत्व वेत्ताओं के अनुसार —समुद्री युद्धों के लिए तालाब को जल से भरने के काम में प्रयुक्त किया जाता था। और पोज्जुओली के वृत्ताकार प्रेक्षागृह में आज भी ऐसे अवशेष मिलते हैं जिनसे ठीक पता चलता है कि किस प्रकार तालाब में पानी भरा जाता था, वह कितना बड़ा था, और युद्ध के बाद उसे कैसे खाली किया जाता।

कलोसियम और सर्कस मैक्सिम के जो चित्र पृष्ठ के सामने दिये गये हैं उनमें मनुष्य और पशु के बीच होने वाले युद्ध और रथ दौड़ाने की प्रतियोगिता वाले दृश्य से सम्बन्धित हैं। यहीं हम सुविधापूर्वक रोमन चमत्कारी नाट्य परंपरा का चर्चा बन्द कर सकते हैं। मंचीय दुःखान्त नाटक की परिणति यहां साफ़-साफ़ नर हत्या में हुई—सही यह है कि 'रोमवासियों के अवकाश के दिन को मनोरंजक बनाने के लिए स्वयं उसकी हत्या कर दी गयी।'

जैसा कि हमने देखा, यहाँ सुखान्त नाटक इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। अक्सर वह अश्लील परिहास और कुघड़ नृत्य में परिवर्तित हो गया। जहाँ तक सत्यमेव वैभवशाली रोमन रंगशालाओं का सम्बन्ध है, बाद के सम्राटों के राजत्व काल में उनके मंचों का उपयोग केवल स्वांग-तमाशों, भद्दे उछल-कूद और चुहलों, गन्दे इशारों के लिए ही होता था। जिन-जिन देशों को रोम के सम्राटों ने अपने अधीन किया, वहां-वहां वैभवशाली रंगशालाएं बनायी गयीं। इस प्रकार रोम ने इटली, सिसली, यूनान, एशिया माइनर और सिरिया, उत्तरी अफ्रीका, फ्रांस और स्पेन में रंगशालाएं निर्मित करायीं। आज ओरेन्ज में जाकर वहाँ की अर्धध्वस्त रंगशाला को देखकर सम्पूर्ण रंगशाला का मानस चित्र खींचा जा सकता है, और यह अनुमान लगाया जा सकता

है कि कितने प्रेक्षक आकर वहाँ बैठते थे और मंच पर प्रस्तुत नाटकों का रंग-रूप कैसा रहा होगा। रोम में जो सर्वाधिक सजी-बजी, वैभव-गरिमा, शोभा-शृंगार-संपन्न रंगशालाएं थीं उन्हीं की अनुकृति करके यहाँ के प्रेक्षागृह और दृश्यावलियों की रचना हुई थी। परन्तु इसके उद्‌घाटन की तिथि द्वितीय शताव्दी ईसवी में पड़ती है। तब तक रोमन रुचि का पतन हो चुका था और चमत्कार नाटक, स्वांग-तमाशा और भद्दे प्रहसनों का ही प्रचार रोम में रह गया था। तो क्या इन राजसी औपनिवेशिक नाट्य-गृहों को कुछ और देखने का अवसर नहीं मिला? आशा है, किसी न किसी दिन ऐसे प्रमाण मिल जाएंगे जिनके आधार पर यह कहा जा सकेगा कि ऐसा नहीं था। उन्हें कुछ और भी देखने का मौक़ा मिला था। ऐसे नगरों को, जो पहिले यूनानी और बाद में रोमन हो गये थे, जैसे सिसली में ताओरमिना और सिरेकुज़, यूनानी नाटक के उत्कर्ष का संपूर्ण सजीव चित्र, परिवर्तनशील यूनानी रोमन नाटक, और अन्त में पतित रोमन नाट्या-अभिनय—स्वभावतः इन सब को देखने का अवसर मिला होगा।

रोमन नाटक के अन्तिम दिनों में, उसकी परि-समाप्ति पर फिर एक बार इस परंपरा के पोषण का प्रमाण मिलता है। इस बात का उल्लेख मिलता है कि **माइम** और **पेन्टोमाइम** में निरन्तर बढ़ती अश्लीलता पर सरकारी तौर पर, अक्सर निषेधाज्ञा लागू की गयी। मगर निषेधाज्ञाअधिकारियों में न तो नैतिकता थी; न आस्था और विश्वास की शक्ति थी। इसके बाद क्रिश्चियन चर्च का आविर्भाव हुआ। इसमें आस्था थी, नैतिक साहस था, पाप और व्यक्तिगत दुराचार के विरुद्ध जुझारु विरोध की प्रवृत्ति थी। जब रोम के ऊपर पतन की अंधेरी छाया फैली तो चर्च-पिताओं के सात्विक क्रोध के सामने नाटक भागता हुआ नज़र आया। अभिनेता लाख़ैरे आवारों की तरह मारे-मारे फिरने लगे। यह सही है कि उनका समुदाय और उनकी कला, हमेशा के लिए बिलकुल समाप्त नहीं हो गयी। यूनानी और रोमन रंगशालाओं का पतन हो जाता है। उनको तोड़-फोड़ कर किलों का रूप दे दिया जाता है, उनमें झोपड़ियाँ बन जाती हैं, उनके पत्थरों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है, और इनमें कीमती सामग्री निकाल कर दूसरी भव्य इमारतें तैयार कर दी जाती हैं। फिर उन्नीसवीं, बीसवीं शताब्दियों में आकर उनमें से कुछ की सफ़ाई की जाती है, उनको फिर से प्रयुक्त किया जाता है, उन्हें यूनानी दुःखान्त और सुखान्त नाटक के नाम अथवा आधुनिक नाटक और नृत्य-नाट्य के फिर से उत्सर्ग किया जाता है। यूनानियों के नाटकों के पाठ, प्लाटस और टेरेन्स के नाटकों के पाठ, भुला दिये जाते हैं; उनको केवल साधु-व्याकरण शास्त्रियों ने अपने अध्ययन में प्रयुक्त किया। इसके बाद वह अवसर पाया जब कि दसवीं शताब्दी में सेक्सनी की एक साधुनी

ने उन्हीं की शैली में धार्मिक नाटकों की रचना की। निश्चय ही, चर्च ने ही नाटक को वाह्य अंधकार में ढकेल दिया, उसकी अच्छी तरह भर्त्सना की, उसका तिरस्कार किया। रोम की कहानी ख़त्म होने के पहिले यह सब हो गया और चर्च ने ही सदियों तक प्रायश्चित कर लेने के बाद नाटक को पुण्य के प्रचारक और पूजा-वेदी के सहायक के रूप में फिर से प्रयुक्त किया, उसका आवाहन किया।
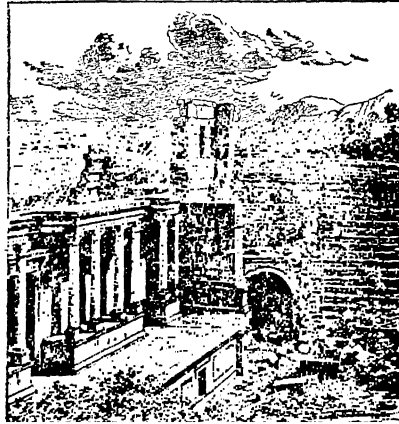
अध्याय ५

ऐन्द्रिक और बौद्धिक नाट्यशाला : प्राच्य

जीवन में ऐसे आनन्द होते हैं जिन्हें हम विषयपरक और ऐन्द्रिक कहते हैं। इन्द्रियानन्द पाशविक संतुष्टि से पूर्णतया भिन्न प्रायः सौन्दर्यपरक और आनन्दजनक है। आनन्द के इस क्षेत्र को हम आनन्द के उन गहन रूपों से सरलता पूर्वक अलग नहीं कर सकते, जिन्हें हम आध्यात्मिक और बौद्धिक कहते हैं। विशुद्धिवादियों ने उचित मनोरंजन की सीमा बाँध दी थी--जिसके अनुसार ऐन्द्रिक आनन्द एवं पाशविक इन्द्रियानन्द अपराध माने जाते थे। गाढ़ा रंग, नृत्य, कल्पना से चित्त विचलित कर देने वाली उत्तेजना, सुन्दर आलेखन-कला और आह्लाद-जनक संगीत आदि आनन्द के इस वर्ग में है। पिछली निकट शताब्दियों में, विशेषतया हमारी कठोर एंग्लो-सेक्सन-प्रोटेस्टेण्ट सभ्यता ने ऐन्द्रिक क्रिया-कलापों को निषिद्ध करने का प्रयत्न किया है। फलतः वह बेरंग और नीरस युग आ गया जिसकी परिणति १९वीं शताब्दी के पतनोन्मुख जीवन में हुई।

यह स्पष्ट है कि यह सभ्यता निकृष्ट इन्द्रियानन्द का वास्तविक शमन और निषेध नहीं कर सकी। जर्मन, अंग्रेज़ी और अमरीकी जीवन की अशालीनता तथा, यथार्थ और भौतिकवाद में इसके पर्याप्त चिह्न मिलते हैं, इसने बहुत बड़ी सीमा तक कला और जीवन के प्रशंसनीय ऐन्द्रिक आनन्द की हत्या कर दी है। जब से 'प्रोटेस्टेण्टिज़्म' की अतिशय कठोरता, नैतिक ढोंग की बुराइयों, नीतिवादी कृत्रिमता, छिछली भावुकता एवं अतिशय उपदेशपरक कला की क़लई उतरी है, तब से हम लोगों ने रंग, चमक, स्पृश्य मूल्यों, लयशील गति, कल्पना-शक्ति एवं संगीत को पुनः अपनाने का प्रयत्न किया है। यूरोप और अमेरिका वालों ने उन तत्वों के गम्भीर अध्ययन का प्रयत्न किया है जिन तत्वों ने प्राच्य कला को ऐन्द्रिक ओज और पूर्णता दी है। यह अध्ययन उन्होंने तब किया है जब वे उस वस्तु से बचने का प्रयत्न कर रहे थे--जो उन्हें प्राच्य जीवन की इन्द्रियानन्दमूलक सुरुचि की भांति लगती थी। हम लोग स्पष्टतया अपने सहज पथ से

उस तमसाच्छन्न पथ की ओर चले गये थे जिसने इन्द्रियों की पूर्णरूपेण अवमानना की थी। इसीलिये हमारी कला इतनी कठोर यथार्थवादिनी और म्लान हो गयी थी।

मैं व्यक्तिगत रूप से मानता हूँ कि रंग, प्रकाश, स्वप्निल संगीत, कल्पना और रूपाह्लाद की ओर प्रवृत्तियों के उन्मुख होने से हमारा जीवन समृद्ध हो सकता है। हमारी नाट्यशाला उन अवमानित ऐन्द्रिक तत्वों के फिर से स्वीकार कर लेने से बहुत कुछ लाभान्वित हो सकती है। और मेरा तो विश्वास है कि वह लाभान्वित हो रही है।

वास्तव में पाश्चात्य कला और भी अन्धकारपूर्ण तथा क्षीण होती यदि उस पर प्राच्य-कला का रंगीन प्रभाव न पड़ा होता। इतिहास के एक लम्बे समय तक इन विनाशकारी 'आक्रमणों' का एक तांता बंधा हुआ था। उसी के साथ यह प्रभाव भी आया था। मैं अनुभव करता हूं कि यातायात की सुगमता के कारण आज हमें मात्र सौन्दर्य-बोध को पुनर्जागृत करने, कल्पना और रंग भरने तथा समृद्ध नाट्याभिनयों द्वारा आत्माभिव्यक्ति करने के कार्य में सहायता मिल सकती है। परन्तु अपनी कला में पूर्व की कला के तत्वों को शामिल करके नहीं (भगवान् न करे, हम ऐसा करें !) नाटकों की अपनी इस पाश्चात्य विचारधारा में ऐसे परिवर्तन में मैं कोई असंगति नहीं देखता। वह कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसका सम्बन्ध हमारे आध्यात्मिक संकट से हो अथवा भावावेगों के रेचन से हो। सुन्दरतम युरोपीय नाटकों की सम्पूर्ण गहराई, मनोवेग, उत्कृष्ट सौन्दय एवं काव्य—सब कुछ अपने स्थान पर बने रहें फिर भी यह हो सकता है कि क्रियात्मक ताने-बाने में सरल और सहज तत्व भी बुन दिये जायं। मैं सचमुच कल्पना करता हूं कि एस्किलस और यूरीपिडीज के नाटकों का एथेन्स में डायोनेशियन परम्परा के अनुसार जिस प्रकार अभिनय होता था—उसकी विशेषता थी समृद्धशाली जीवन और रंगीनी। किन्तु इसकी संगति १९वीं शताब्दी की उस बेरंग किन्तु उत्कृष्ट साहित्य सम्बन्धी धारणा से नहीं बैठती जिसमें सूक्ष्म संगीत, नपी-तुली गति, लय और सचेष्ट रूप से ध्वनियों के आरोह-अवरोह का ही प्राधान्य था। एलिजाबेथकालीन रंगमंचों पर प्रस्तुत नाटक अधिक सुसम्पन्न, संपूर्ण और ओजपूर्ण थे—यह बात १९वीं शताब्दी के विद्वान् नाटककारों की समझ के परे थी।

निश्चय ही प्राच्य नाट्यशाला और नाटक में ऐसे तत्व हैं जिन्हें पाश्चात्य दर्शक कभी पूर्णतया नहीं समझ पायेंगे। चीन के बारह घंटे के नाटक अथवा जापान के छोटे 'नो' के दर्शकों की प्रतिक्रिया को समझ पाना कठिन है। यह जानना आसान नहीं है कि उनके मनोरंजन के छोटे-बड़े कारण क्या हैं ? हमारे सबसे अधिक कुशल नाटककार अपने सुगठित, चढ़ाव-उतार की क्रिया-योजना से सम्पन्न नाटकों में करुण एवं दुःखपूर्ण

भावनाओं का जैसा विस्तार करते हैं, प्राच्य नाटककार उससे अपने को बिलकुल अछूता रखते हैं। वे अपने नाटकों में केन्द्रीभूत प्रभावशीलता का ऐसा स्थल ढूँढ़ लेते हैं जिसे हम नहीं जानते। एक ओर इन्द्रियहर्षक साज-सज्जा-सम्पन्न रूपानुकरण का प्राधान्य है तो दूसरी ओर बंधी-सधी बौद्धिक कला है जिसमें परम्परागत नाप-तोल के कारण ही प्रभावशीलता है, जिसमें बहु-प्रचलित प्रतीकों का प्रयोग है, जिसमें अत्यधिक दुराराध्यता है। यह कौशलपूर्वक सुविचारित और अलंकृत कला का क्षेत्र है, जिसमें सहज भावाभिव्यक्ति नहीं होती। हमारे सामने ये दोनों रूप मौजूद हैं। दोनों में उत्कृष्ट कौन है, इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

प्राच्य नाटकों और रंगमंच का अध्ययन हम इस समझ के साथ आरम्भ कर सकते हैं कि उसमें कुछ ऐसी गहराइयां हैं, जहाँ तक हमारे मस्तिष्क की पैठ नहीं हो सकती। हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि हम उसकी विशेषता की परख अपनी अनिवार्य रूप से बिल्कुल भावनापूर्ण नाट्यशाला के मापदण्ड से करें तो हम इधर-उधर भटकर रह जायंगे। हमें यह भी समझना चाहिये कि प्राच्य नाटकों में कुछ ऐसी ऐन्द्रिक विशेषताएं हैं जिनसे परिचय प्राप्त करके हमारी अपनी सभ्यता लाभान्वित हो सकती है। युरोपीय नाट्यशाला आज जिस भी रूप में है ठीक उसके रुढ़िगत दृष्टिकोण से और बिना किसी प्रकार की सहानुभूति के अर्द्धप्राच्य हिन्दू-रंगमंच और नाट्य साहित्य का अध्ययन किया गया है, लिखा पढ़ा गया है। पर अब यह आवश्यक हो गया है कि हम सजग हों और अपने मस्तिष्क के द्वार उन्मुक्त रखें।

भारत में नाट्यशाला के उद्गम का इतिहास पौराणिकता के धुन्ध और अनुमान तथा कल्पना में खोया हुआ है। यदि हम नाटक के जन्म-सम्बन्धी अलौकिक कथाओं को छोड़ दें, यदि हम इस आग्रह को भी छोड़ दें कि नृत्य-संगीत से नाट्यकला का प्रादुर्भाव हुआ, तो हमें पता चलेगा कि हम सुनिश्चित रूप से इस सम्बन्ध में द्वितीय अथवा प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से पीछे नहीं जा सकते। भास और कालिदास के नाटकों से ही इस क्रम का आरम्भ होता है, और तभी से हमें नाट्य सम्बन्धी क्रिया-कलापों का कुछ विवरण प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में हम—नाट्यकला की उत्पत्ति और उसके विकास के सम्बन्ध में विवरण-सहित जानकारी नहीं प्राप्त कर पाते। इस अन्तराल से परिचय प्राप्त किये बिना ही हम संस्कृत-नाट्य-रचना के स्वर्णकाल में पहुँच जाते हैं। निश्चयपूर्वक यह घोषित करना सम्भव नहीं है कि कालिदास का प्रादुर्भाव किस शताब्दी के आस-पास हुआ और कब उन्होंने साहित्य-सृजन किया। हिन्दू लोग ऐसे विवरणों का उल्लेख करने में सतर्क नहीं रहे हैं। पूर्व की यह विशेषता रही है कि वह उन तथ्यों को, जिन्हें पाश्चात्य मस्तिष्क इतना महत्व देता है, कोई महत्व नहीं देता। इसके स्थान पर

वहाँ के लोग रचना की आत्मा को, उसके आनन्द को, अधिक महत्व देते हैं। फिर भी मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि भारतीय नाटकों का विकास चतुर्थ शताब्दी ईसवी (सम्भवत: कालिदास का यही युग था) से दसवीं शताब्दी ईसवी तक होता रहा। ईसा के जन्म के पूर्व कई शताब्दियों से और उनके जन्म के कई शताब्दियों के बाद तक यूनान, फ़ारस तथा अन्य देशों के साथ भारतवर्ष का व्यापार-वाणिज्य का सम्बन्ध रहा, और इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि भारतवर्ष की अनेक कलाओं में से कुछ पर यूनानी प्रभाव है। परन्तु भारतीय नाटकों पर किसी भी अन्य देश का प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनका महान् काव्यात्मक, प्रकृतिपरक सौन्दर्य। उनमें प्रधानतया पुरुषों और स्त्रियों के प्रेम-सम्बन्ध का वर्णन रहता है, अथवा उसनमें वीरतापूर्ण कृत्यों की चर्चा रहती है। वे सुखान्त होते हैं। उन नाटकों में अश्लील अथवा हिंसात्मक मनोवेगों या घटनाओं का वर्णन नहीं होता। साथ ही उनमें समय और स्थान से सामञ्जस्य का भी अभाव होता है। यूनानी नाटकों में घटनाक्रम की जो अनिवार्यता और नाटकीय प्रवाह होता है वह इन नाटकों में नहीं होता।

अब हम नाटकों के अपौरुषेय और चमत्कारपूर्ण उद्भव की कथा पर विचार कर लें। वैसे तो दुःख प्रत्येक नाटकीय कथानक का अविभाज्य अंग होता है, परन्तु, स्वर्ण युग में न दुःख था, न पीड़ा थी। इसलिए उस युग में नाटक की आवश्यकता हो ही नहीं सकती थी। पर बाद में रजत युग में देवताओं ने ब्रह्मा से ऐसी कला की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निवेदन किया जिससे नेत्र और कर्ण दोनों को समान रूप से आनन्द प्राप्त हो सके। तब ब्रह्मा ने चार वेदों से पाठ, गान, अभिनय और रस लेकर पंचम वेद अर्थात् नाटक का निर्माण किया।[1]

दूसरे देवताओं ने भी नाट्य-कला के विकास में योग दिया। शिव ने, जिन्हें कभी-कभी भारतीय डायोनिशस के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है, नृत्य दिया और ब्रह्मा ने विश्वकर्मा द्वारा उस नाट्यशाला का निर्माण करवाया जिसमें भरतमुनि ने अपने नवीन नाटक का अभिनय किया। बाद में 'भरत' का अर्थ ही 'अभिनयकर्ता' हो गया।

यदि हम इस वर्णन को वेदवाक्य न भी समझें—वेद वाक्य अपने अर्थों में—

---

१. **जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।**
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥
—(भरत नाट्यशास्त्र)

तो भी हम इसे हिन्दू-नाट्य-कला के धार्मिक उद्भव का एक चिह्न तो मान ही सकते हैं। वेदों में नाटकीय तत्व वर्तमान हैं और हम यह अनुमान कर सकते हैं कि नृत्य (देवताओं की कल्पना भी तो नृत्य की मुद्रा में की गयी है!) तथा संवाद सूक्त का सम्बन्ध नाट्यकला के उद्भव से अवश्य है। परन्तु, यूनान की भाँति शायद भारत में भी महाकाव्यों के गायक कुशीलवों के संस्वर पाठ से ही नवीन कला का विकास हुआ। मुख्य नाटक के आरम्भ के पहले मंगलाचरण या स्वस्ति पाठ की एक विशिष्ट धार्मिक परम्परा रही है और अलौकिक नाटकों का कोई न कोई रूप सदियों तक चलता रहा और हमारे युग में भी चलता आ रहा है। जो भी हो, नाटकों का उद्भव नृत्य, गीत, यज्ञ-याग, काव्य गायन और महाकाव्यों के पाठ से ही हुआ है। और, यदि इसे आप भारतीय नाट्यशाला के जन्म की सच्ची कहानी के रूप में स्वीकार कर लें तो, आप यह देख लेंगे कि किस प्रकार भारतीयों की वह प्रवृत्ति जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु की रचना किसी अपौरुषेय स्रष्टा द्वारा होती है, अभिनेता के लिए प्रयुक्त शब्द को भी एक दन्तकथा के प्रारम्भ के रूप में स्वीकार करती है। तदनुरूप भरत नाम के एक मुनि की भी कल्पना की गयी जिन्होंने नाट्यशाला को स्वर्ग-लोक से प्राप्त किया। यही भरत मुनि हिन्दू नाट्य-कला के अधिष्ठाता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। सच यह है कि भरत के नाम से सम्बद्ध जो नाट्यशास्त्र है, वह बाद में आने वाले सभी संस्कृत नाटककारों के लिए 'वेद' बन गया। इस शास्त्र के सिद्धान्तों का अनुसरण भारतीय नाटककारों ने जिस कट्टरता के साथ किया—उस कट्टरता के साथ किसी नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया गया। आरम्भिक काल में जिन नाटकों की रचना हुई थी सम्भवतः उनकी भाषा प्राकृत थी। यह भाषा संस्कृत से अधिक लोक-प्रचलित थी। इस समय संस्कृत का प्रयोग लोग अपने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों के लिए ही करते थे। यह स्पष्ट नहीं है कि संस्कृत कब साहित्य की भाषा बनी; यद्यपि हम यह जानते हैं कि संस्कृत भाषा का प्रयोग नाटकों के लिए होने के बाद ही उनके भाषानुवाद भी होने लगे। बहुत दिनों तक एक ही नाटक में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाएँ मिले-जुले रूप में प्रयुक्त होती थीं—उच्च वर्ग के पात्र जैसे देवता, राजा–सामन्त, ब्राह्मण संस्कृत बोलते थे, और निम्नवर्गीय पात्र जैसे, स्त्रियां, चोर, पुलिस, कर्मचारी आदि प्राकृत बोलते थे। बाद में भी यह परम्परा चलती रही और नाटकों में पात्र अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार भाषाओं का प्रयोग करते रहे। इसके बाद उन नाटकों का युग आया, जिन्हें हम पूर्णतः साहित्यिक नाटक कह सकते हैं। इनमें संस्कृत का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। इन नाटकों में साधारणतया गद्य-शैली का प्रयोग हुआ, परन्तु बीच-बीच में एक बड़ी संख्या में पद्यात्मक टुकड़े भी जोड़ दिये गये। एक ही नाटक

में भिन्न-भिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ।

संस्कृत नाटककारों में सर्वप्रथम और सबसे बड़ा नाम भास का आता है। कुछ ही समय पहिले तेरह नाटक प्राप्त हुए हैं जो भास के कहे जाते हैं। अभी तक यह विवाद चल ही रहा है इसलिए हम उनके सम्बन्ध में कुछ न कहेंगे। इसके बाद के दो नाटक भारतीय रंगमंच के सर्वोत्कृष्ट नाटक माने जाते हैं: कालिदास रचित 'शकुन्तला' और, शूद्रक रचित 'मृच्छकटिक'। हम इन दो नाटकों पर यहां विचार करेंगे। भारतीय विद्वानों के अनुसार कालिदास प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के सम्राट विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में सर्वश्रेष्ठ थे। परन्तु, अंग्रेज और जर्मन विद्वानों ने इस रोचक दन्तकथा का खण्डन कर दिया है। इन पण्डितों ने कालिदास का समय चौथी-पांचवीं या छठी शताब्दी माना है। जो सबसे नवीन प्रमाण मिले हैं, उनके अनुसार साधारण पाठक यह स्वीकार कर सकते हैं कि लगभग चौथी शताब्दी ई० में ही कालिदास हुए थे। कालिदास का प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्र' है। 'मालविकाग्निमित्र' को 'मालविका और अग्निमित्र' सन्धि-विच्छेद करके पढ़ा जाता है। इस नाटक में कालिदास के पूर्ववर्ती भास, सौमिल्ल एवं कविपुत्र जैसे महान् नाटककारों का वर्णन आया है।[1] इससे यह पता चलता है कि कालिदास के पहिले अनेक उच्च कोटि के नाटक थे जो बाद में लुप्त हो गये। इस नाटक की प्रस्तावना में निम्नांकित दो पंक्तियाँ हैं जो बहुत प्रचलित हैं और प्रायः उद्धृत की जाती हैं:

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

(पुराने होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते हैं, न नये होने से बुरे हो जाते हैं। समझदार-लोग तो दोनों को परखकर उनमें से जो अच्छा होता है उसे अपना लेते हैं और जिनमें अपनी समझ होती ही नहीं, उन्हें तो जैसा दूसरे समझा देते हैं उसे ही वे ठीक मान बैठते हैं।)

कालिदास का दूसरा नाटक 'विक्रमोर्वशीय' है। अंग्रेजी में इस नाटक को 'दी हीरो एण्ड दी निम्फ' और 'दी टेल आव उर्वशी वन बाई वेलर' के नाम से अनूदित किया गया है। जिन लोगों ने इस मूल नाटक को पढ़ा है उनका कथन है कि

---

१. "प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः"—पारिपार्श्वकः ।
(मालविकाग्निमित्र—प्रथम अंक)

इसके दृश्य में अद्वितीय प्रकृति-सौन्दर्य अंकित हुआ है। परन्तु, लगता है कि कालिदास ने एक महान् दुःखान्त पौराणिक कथा को एक सुखान्त शृंगारमूलक नाटक में परिणत कर दिया है।

कालिदास के समस्त नाटकों में ही नहीं वरन् उन समस्त प्राच्य नाटकों में भी, जिनका अनुवाद युरोपीय भाषाओं में हो चुका है, 'शकुन्तला' नाटक सर्वश्रेष्ठ है। इसमें हिन्दू नाटकों की विशेषताएँ उभर कर सामने आई हैं। उदाहरणार्थ—इसके सुन्दर कविताओं से युक्त लम्बे गद्य–खण्डों में, इसकी प्राकृतिक दृश्यों से भरी-पूरी पृष्ठभूमि में, इसकी आनन्दवर्द्धिनी चित्रात्मकता में, इसकी प्रेम, भ्रम और वियोग की करुण कथा में, इसके आदि से अन्त तक शान्तिमय वातावरण बनाये रखने की अनुपम कला में और इसके सुखपूर्ण अन्त में इतनी स्पष्टता के साथ नाट्य-कला निखरी है कि इसकी अन्तिम पंक्तियों के बाद प्रत्येक व्यक्ति आनन्द से पुलकित हो उठता है।

इसकी सूक्ष्म कथा एक तपोवन के दृश्य से प्रारम्भ होती है। राजा दुष्यन्त और उनका सारथी एक कृष्णसार मृग का पीछा करते हुए एक सुन्दर कुंज में आते हैं। ठीक, जैसे ही राजा दुष्यन्त अपने वाण से मृग को मारना चाहते हैं वैसे ही उस मृग की हत्या न करने के लिए नेपथ्य से एक आवाज़ आती है—'यह मृग आश्रम का है, इसे न मारिये।'[1] दुष्यन्त आश्रम में विश्राम करते हैं। वहीं परम सुन्दरी शकुन्तला से उनका प्रेम हो जाता है। शकुन्तला उस पवित्र आश्रम के महर्षि कण्व की पालिता पुत्री थी। दुष्यन्त शकुन्तला को अपना सही परिचय नहीं देते। वह शकुन्तला का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर ढूँढ़ लेते हैं और शकुन्तला की श्रेष्ठता का बखान करते हैं। उनके अन्दर यह भावना उत्पन्न होती है कि "यद्यपि वह मुझसे बातचीत नहीं करती फिर भी जब मैं बोलने लगता हूँ तब कान लगाकर मेरी बातें सुनने लगती है और यद्यपि मेरे सामने वह अपना मुँह करके नहीं बैठती फिर भी उसकी आंखें मुझ पर ही लगी रहती हैं।"[2]

द्वितीय अंक में दुष्यन्त के पास उसके दरबार से बुलाहट का संदेशा आता है। दुष्यन्त स्वयं वापस न जाकर अपने विदूषक को वापस भेज देता है, क्योंकि वह आश्रम

---

१. "भो भो राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।"
(नेपथ्य से)

२. वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसन्मुखीयं
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ (प्रथम अंक)

में ही, शकुन्तला के समीप ही, बने रहने का निश्चय कर लेता है। अंक के शेष अंश में शकुन्तला से भेंट और उसकी प्रशंसा का वर्णन है। तीसरे अंक में दुष्यन्त तपोवन में जाता है और वह शकुन्तला तथा उसकी सहेली के बीच हुई गुप-चुप बातों को सुनता है। इसके बाद वह अपने प्रेम को प्रकट कर देता है, और अन्त में यह दृश्य मधुर काव्यमय और शृंगारपूर्ण वातावरण में समाप्त होता है। बाद वाले अंक में पता चलता है कि शकुन्तला ने दुष्यन्त से गन्धर्व-विवाह कर लिया है और दुष्यन्त राजधानी को चला गया है। यहीं यह आशंका उत्पन्न होती है कि क्या दुष्यन्त जन-समाज के सामने भी शकुन्तला को समुचित मान देने के अपने वचन को पूरा करेगा? अनेक रीतियों एवं लोकाचारों के बाद शकुन्तला अपनी सहेलियों के साथ दूरस्थ राजधानी की ओर प्रस्थान करती है, जहाँ वह पत्नी और रानी के अपने अधिकार की माँग करेगी।

परन्तु राजा की स्मरण शक्ति समाप्त हो गयी है। वह शकुन्तला का परित्याग करता है। अपनी पहिचान के लिए शकुन्तला भी कोई प्रमाण नहीं दे पाती, क्योंकि स्नान करते समय राजा दुष्यन्त द्वारा प्रदत्त अँगूठी वह एक पवित्र सरिता में ही खो आई थी। जैसे ही वह अतिशय परिताप के साथ दरबार छोड़कर चलती है, पता चलता है कि चमत्कारपूर्ण ढंग से कोई उसे स्वर्ग-लोक की ओर उड़ा ले गया। राजा की आत्मा उद्विग्न और अशान्त हो गयी।

अगले अंक में राज-प्रासाद में एक मछुआ आता है। उसे शकुन्तला की खोई हुई अंगूठी मिल गयी थी। अंगूठी के मिलते ही दुष्यन्त की स्मृति फिर ताज़ा हो गयी। अब दुष्यन्त का समय पाश्चात्ताप में, खोये हुए प्रेम की पीड़ा में तथा शकुन्तला के रूप और गुणों के बखान में व्यतीत होने लगा। राजा की यह दशा एक अप्सरा देखती है जो कि यह पता लगाने के लिए भेजी गयी थी कि दुष्यन्त ने सत्यमेव प्रायश्चित किया कि नहीं। दुष्यन्त का पश्चात्ताप वास्तव में हृदयद्रावक था। इसके बाद स्वर्ग-लोक से एक रथ उनको लेने के लिए आता है। अन्तिम अंक में दुष्यन्त देवराज इन्द्र की राजधानी में पहुँचता है और वहाँ पर देवताओं द्वारा उसका स्वागत होता है। तत्पश्चात् अत्यन्त हृदय द्रावक वातावरण में दुष्यन्त अपने उस बेटे से मिलता है जो कि अभी शिशु होते हुए भी परम ओजस्वी है।

इसके बाद दुष्यन्त अपनी क्षमाशीला पत्नी शकुन्तला से मिलता है। तभी यह पता चलता है कि अँगूठी का खोना, शकुन्तला का परित्याग तथा उसके साथ दुष्यन्त का क्रूर व्यवहार—यह सब दुर्वासा के अभिशाप के फलस्वरूप हुआ था। इस अभद्र व्यवहार में दुष्यन्त का कोई दोष नहीं था। अन्त में दुष्यन्त और शकुन्तला अपने पुत्र के साथ देवराज इन्द्र का आशीर्वाद प्राप्त करके अपने राज्य में वापस चले आते हैं।

यह एक ऐसी कहानी है जो कि बच्चों को परियों वाली कहानी की पुस्तक का एक अंश हो सकती है, परन्तु, भावों की जो सुकोमलता कथा के वर्णन में व्यक्त हुई है, जिस काव्यात्मक ढंग से इसका अलंकरण हुआ है और जिस खूबी के साथ इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है उसमें हिन्दू रंगमंच के अनेक विशिष्ट गुण एवं रंगमंचीय प्रयोग स्पष्ट रूप से सामने आये हैं।

आरम्भ में ही, मुख्य नाटक शुरू होने से पहिले, मंगलाचरण और शिव-स्तुति है। तत्काल ही दर्शक एक मनोरम क्षेत्र में पहुँच जाता है, (इसका वर्णन कवि के शब्दों द्वारा होता है, कोई चित्रकार उस दृश्य को अंकित नहीं करता) जो पात्र इन पवित्र कुंजों और वाटिकाओं में चलते फिरते हैं अथवा जिनका सम्बन्ध राज-दरबार से है, उनका सौन्दर्य अलौकिक है। राजा अतिशय सुन्दर व्यक्ति है, नेक और शालीन है। वह एक ऐश्वयशाली शासक है, किन्तु निरीह से निरीह प्रजा की वह रक्षा करता है। शकुन्तला मे सम्पूर्ण नारीसुलभ कमनीयता है। उसमें कुसुम-सदृश कुंआरी संकोचशीलता है, साथ ही नारी-सुलभ दृढ़ता और शालीनता भी है। नन्हें से नन्हें दृश्य में जो एक बच्चे का भी चित्र सामने आया है वह उत्कृष्ट है। साथ ही राजा का विश्वासपात्र चिर-परिचित विदूषक भी है जो कि उतना ढीठ-हंसोड़ तो नहीं है परन्तु वह असमंजस पैदा कर और फिर रास्ता निकालने का साधन अवश्य बनता है और, इस प्रकार वह नाटकीय घटना-क्रम को गति प्रदान करता है। यह राजा का मुँह लगा भृत्य एवं सहयोगी कहता है—"महाराज! जल्दी कीजिए, बैठ जाइए क्योंकि जब तक आप नहीं बैठते तब तक मैं भी नहीं बैठ सकता।"[1] यह विदूषक व्याज से राजा की महानता का और अपनी भावनाओं का वर्णन भी विनोदपूर्ण ढंग से करता है।

साधारणतया संस्कृत के अन्य नाटकों की भाँति उसमें भी "स्वगत' के लिए पर्याप्त अवसर है; एक ही रंगमंच पर दो अपरिचित पात्र अलग-अलग खड़े होकर अपनी-अपनी बात कहते हैं। प्रायः प्रारम्भ में ही दुष्यन्त वृक्षों की ओट में छिपकर शकुन्तला और उसकी सहेलियों के किशोरी-सुलभ हास-परिहास को देखता है। दुष्यन्त को इस प्रकार इस आश्रम-निवासिनी कन्या को देखने-जानने और उसकी कमनीयता एवं शालीनता के सम्बन्ध में जनता को परिचित कराने का अवसर मिलता है। फिर वाटिका वाले दृश्य में दुष्यन्त छिप जाता है, और दर्शकों को अपने भय और संशय के सम्बन्ध में बताता है। वह यह भी बताता है कि वहाँ पर बैठी हुई लड़कियां क्या कर रही हैं। अन्त में वह उस समय अपने आनन्द को भी प्रकट करता है

---

१. आसणे णिसीदटु भवं जाव अहं वि सुहासीणो होमि... (द्वितीय अंक)

जब कि शकुन्तला अपनी सखियों से यह स्वीकार करती है कि वह दुष्यन्त से प्रेम करने लगी है। मूल नाटक का यह अंश, यह काव्यात्मक पुनर्कथन, नाटकों की सक्रियता को संगीतात्मक सौन्दर्य से सजाने का अत्यन्त विशिष्ट और अनूठा ढंग है। पहिले अंक में भी व्यक्तिगत अभिनय के लिए अनेक छोटे-मोटे मनमोहक अवसर प्रदान किये गये हैं। जिस समय शकुन्तला को भौंरा बार-बार तंग करता है और उसे अत्यन्त सौष्ठवपूर्ण अभिनय और पद-संचालन का अवसर मिलता है उस समय दुष्यन्त भी गीतात्मक शब्दों में उस पर टिप्पणी करता चलता है। उसी प्रकार एक अत्यन्त विनोदपूर्ण दृश्य उस समय आता है जब कि राजा का श्याल और दो नगर-रक्षक एक मछुये को मारते-पीटते ले आते हैं। इन लोगों में उस समय मित्रता भी हो जाती है जब कि खोई हुई अँगूठी के मिलने पर दण्ड के स्थान पर राजा उसे पारितोषिक देता है।

इस नाटक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है--इसकी काव्यगत उत्कृष्टता, जिसका संक्षिप्त परिचय देना बहुत कठिन है, कारण आद्योपान्त परिव्याप्त भावनाएं ही इस नाटक को चमत्कार और मोहकता प्रदान करती हैं। और, कवि ने अनवरत रूप से प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करके, उसे चित्रात्मकता प्रदान करके और साहित्यिक तथा संगीतात्मक उत्कृष्टता से सजाकर नाटक में एक नयी शक्ति भर दी है। शकुन्तला राजा के प्रेम के स्थायित्व की परीक्षा करने के लिए वहाँ से चले जाने का बहाना करती है--वह एक लता-कुंज के पीछे छिप जाती है, और, वहीं से राजा के क्रिया-कलाप देखती है। जिस मृणाल-वलय को शकुन्तला ने जान-बूझ कर गिरा दिया था, उसे दुष्यन्त स्नेह और श्रद्धा के साथ उठा लेता है :

राजा--मणि बन्धाद्गलितमिदं संक्रांतोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगड़मिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः॥

राजा--उशीर परिमल से सुवासित उसके मणि-बन्ध से गिरा यह सामने पड़ा मृणाल-वलय मेरे हृदय के बन्धन की भांति है।

शकुन्तला--(हस्तं विलोक्य) अस्मो दौर्बल्यशिथिलतया परिभ्रष्टमेतन्मृणाल-वलयं न मया परिज्ञातम्।

शकुन्तला--(हाथ देखकर) अरे, यह मृणाल-वलय गिर पड़ा, दुर्बलता और शिथिलतावश मैं जान भी न पायी।

राजा--(मृणालवलयमुरसि निक्षिप्य) अहो स्पर्शः!

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एव दुःखभागचेतनेनापि सता न तु त्वया ॥

राजा—(मृणाल वलय को हृदय पर रखकर) तुम्हारी सुन्दर भुजा को छोड़कर यहाँ पड़े हुए इस चंचल आभूषण ने अचेतन होने हुए भी इस दुखी को धैर्य दिया ही, किन्तु तुमने नहीं।

शकुन्तला—अतःपरं न समर्थास्मि विलम्बितुम। भवतु एतेनैवापदेशेनात्मनं दर्शयिष्यामि (इत्युपसर्पति)।

शकुन्तला—अब देर नहीं कर सकती। अच्छा इसी बहाने अपने को दिखाऊँगी।
[इस प्रकार वह लौट पड़ती है]।

और इस तरह वह उसके पास लौटती है लेकिन, वह वलय लौटाने के पहले शर्तें रखता है :

शकुन्तला—(स्पर्शं रूपायित्वा) त्वरतां त्वरतामार्यपुत्रः!

शकुन्तला—(स्पर्श का अभिनय करके) शीघ्रता करिये, आर्यपुत्र! शीघ्रता करिये।

राजा—(सहर्षमात्मगतम्) इदानीमस्मि विश्वसितः। भर्तुराभाषणपदमेतत्। (प्रकाशम्) सुन्दरिः, नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। यदि तेऽभिमतं तदन्यथा घटयिष्यामि।

राजा—(हर्ष के साथ अपने से ही) अब मुझे संतोष हो गया। वह वैसे ही बोल रही है जैसे एक पत्नी अपने पति से बोलती है। (जोर से) सुन्दरी, इस मृणाल वलय की गाँठ मज़बूती से नहीं बंधी है। कहो तो मैं इसे दूसरी तरह बांध दूँ?

शकुन्तला—(स्मित कृत्वा) यथाते रोत्तते।

शकुन्तला—(मुस्कराते हुए) जैसी आपकी इच्छा!

राजा—(सव्याजं विलम्ब्य प्रतिमोच्य) सुन्दरि दृश्यताम्।
अयं स ते श्यामलतामनोहरं विशेष शोभार्थमिवोज्झिताम्बरः।
मृणालरुपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिमाश्रितः ॥

राजा—(बहाने से देर लगाकर) सुन्दरि, देखो!

विशेष शोभा के लिए ही आकाश को छोड़कर यह मृणाल के रूप में दूज का चाँद तुम्हारी श्याम लता जैसी मनोहर बाहु से लगाकर अपनी दोनों शिराओं से मिल गया है।

अकबर का मनोरंजन करती हुई मालवा की नर्तकियां, १५६० ई० में : कलाकार किसू और धरमदास द्वारा अंकित चित्र । हिन्दू और फ़ारसी रंगशालाओं के अधिकतर चित्र शाही प्रेक्षक के सिंहासन पर ही केन्द्रित होते थे, रंगमंच अथवा प्रेक्षागृह पर नहीं; इससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि औसत रंगशाला—रंगमंच, राज्य सिंहासन, और सम्राट से कम महत्वपूर्ण प्रेक्षकों के बैठने के लिए स्थान की अनौपचारिक व्यवस्था ही होती थी जिसकी रचना शाही दरबार या विशाल भवन में होती थी——पाश्चात्य देशों की रंगशालाओं की तरह सुनिश्चित मंच के सामने बने कासा-नुमा प्रेक्षागृह की तरह नहीं । (विक्टोरिया और अलबर्ट म्युज़ियम, लन्दन, के ए चित्र से; निदेशकों के सौजन्य से प्राप्त ।)

साज-सज्जा के साथ जापानी अभिनेता। नीचे बाएँ हाथ के चित्र में मंच नहीं, सज्जा-कक्ष का एक दृश्य है। सारे अभिनेता पुरुष हैं।
(हेवीलैण्ड कलेक्शन केटालाग से।)

प्लेट १०
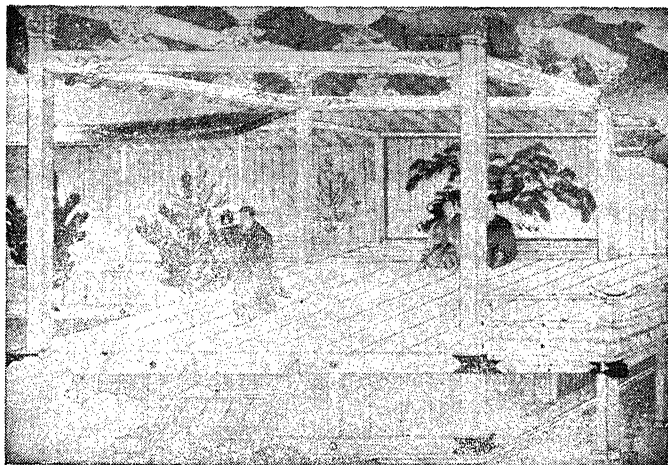
दो 'नो' रंगमंच। (ऊपर का चित्र मारी सी० स्टोप्स कृत 'प्लेज़ आव ओल्ड जापान : दी नो' से लिया गया है। नीचे वाला चित्र दो हिस्सों में बंटे एक पर्दे से लिया गया है। यह चित्र चार्ल्स हेवीलैण्ड कलेक्शन केटालाग में है)।

प्लेट १२
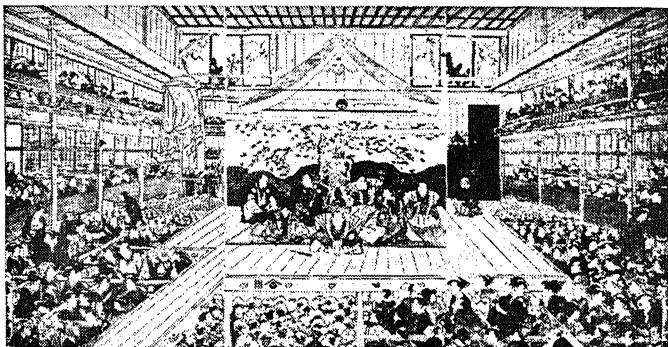
काबुकी रंगशालाएं । ऊपर सातवीं शताब्दी की एक रंगशाला जिसमें मन्दिरों की तरह मंच पर छत बनी हुई है। इसमें जो साज-सामान हैं वे सभी यथार्थपरक हैं । नीचे १७९८ ई० की एक रंगशाला है। अब छत एक प्रतीक मात्र रह गयी थी। इसमें प्रेक्षकों के प्रकोष्ठ स्पष्ट दिखायी देते हैं। (यह नीचे वाला चित्र उतागावा तोयोकुनीकृत है और जो किनकेड कृत 'काबुकी : दी पपुलर स्टेज आव जापान' में दिया गया है ।)

शकुन्तला—न तावदेनं प्रेक्षे, पवनकम्पितकर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।

शकुन्तला—उन्हें देख नहीं पा रही हूँ, वायु से कम्पित कर्णोत्पल की धूलि से मेरी दृष्टि धूमिल हो उठती है।

राजा—यद्यनुमन्यसे तदहमेनां वदनमारुतेन विशदां करवाणि।

राजा—यदि अनुमति हो, तो मैं इसे फूँककर साफ़ कर दूँ।

(शकुन्तला किंचिद्दृष्ट्वा व्रीडावनतमुखी तिष्ठति।)

(शकुन्तला एक दृष्टि डालकर लज्जा से मुख झुका लेती है।)

राजा—(**अंगुलिभ्यां मुखमुन्नमय्य आत्मगतम्**)—
चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः।
पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव प्रियाधरः॥

राजा—(अँगुलियों से मुख ऊपर कर—स्वगत) यह अछूता, कोमल प्रिया का अधर चारु कम्पन के द्वारा मुझ प्यासे को उसका पान करने की अनुमति दे रहा है।)[1]

इस प्रकार यह संगीतात्मक तरलता संपूर्ण नाटक पर एक गुलाबी आभा बिखेर देती है। यद्यपि साधारणतया शकुन्तला गद्य का ही प्रयोग करती है, परन्तु कहीं कहीं उसके गद्य पर काव्यात्मक रूप एवं अर्थ का प्रभाव आ गया है। जिस समय इन प्रेमियों के प्रणय व्यापार में बाधा उपस्थित हो जाती है और शकुन्तला की अभिभाविका गौतमी उसे ले जाने लगती है, उस समय शकुन्तला उस कुंज की ओर देखकर, जिसमें दुष्यंत छिपा हुआ है, कहती जाती है—"लतावलय, सन्तापहारक, आमंत्रये त्वां भूयोऽपि

---

१. विद्वान् लेखक ने यहां 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के जिस अंश का उल्लेख किया है वह बंगाल संस्करण में ही प्राप्त होता है। इस अंश को प्रायः सारे भारत के विद्वानों ने प्रक्षिप्त ही माना है। अनेक बंगाली विद्वान् भी इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। शेल्डान चेनी ने राइडर के अंग्रेजी अनुवाद को ही अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है। हमने मूल पाठ को यहाँ देकर उसका हिन्दी अनुवाद पाठकों की सुविधा के लिए दे दिया है।—अनुवादक

परिभोगाय।"[१] (हे संतापहारी लताकुंज, मैं विहार के लिए तुम्हें फिर निमंत्रण दिये जाती हूं।)

कालिदास-कालीन उन नाट्यशालाओं के सम्बन्ध में, जिनमें इस प्रकार के नाटक खेले जाते थे, केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है; वह भी पूरा नहीं। जहां तक हमें ज्ञात है १९वीं शताब्दी ईसवी के पूर्व भारतवर्ष में नाट्यशालाएँ नहीं थीं। परन्तु अनेक ऐसे राज प्रासाद थे जिनमें चुने हुए दर्शकों के सामने अभिनीत होने वाले नाटकों के लिए पूरी सुविधा थी। भारतवर्ष में अभिजात वर्ग के लिए, शिक्षित समुदाय के लिए ही नाटकों का विकास हुआ था। साधारणतया इसके लिए एक विशाल कमरा अथवा केन्द्रीय सहन को चुन लिया जाता था। राजा अथवा युवराज, उसके दरबारी और अतिथि एक ओर बैठते थे। सम्भवतः यहाँ राजा के लिए एक सिंहासन होता था जिसके चारों ओर ये लोग विराजमान होते थे। इसी तरह अभिनेताओं, नर्तकों और संगीतज्ञों के बैठने के लिए भी सुनिश्चित स्थान होता था।[२]

कोई विशिष्ट पार्श्वभूमि नहीं निर्मित होती थी, केवल एक पर्दा होता था जिसके पीछे 'नेपथ्य' होता था जहाँ से कोलाहल, स्वर आदि आते थे। इसके अतिरिक्त कोई अन्य व्यवस्था नहीं होती थी। हाँ, इमारत मनोरम, आनन्ददायक होती थी, और उसकी सजावट भी राज-प्रसादों जैसी होती थी। वह ऐन्द्रिक–भावनामूलक गीतात्मक नाटकों के योग्य और अनुरूप होती थी। निश्चय ही विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न स्थानों पर, व्यवस्था में नाना प्रकार के परिवर्तन हो जाते थे, परन्तु लगता है कि रंगमंच सदैव सादा और खुला होता था। शायद वह फ़र्श से ऊँचा भी नहीं होता था। नाट्यशास्त्र में मुख्य अभिनेता अथवा निदेशक के लिए जो शब्द प्रयुक्त हुए उनका अर्थ निर्माता अथवा बढ़ई होता था, जिससे अनुमान होता है कि रंगमंच निर्मित होते थे परन्तु ऐसे अस्थायी रंगमंच स्वभावतः सादा होते थे।

यही नहीं कि लोगों को चमत्कृत कर देने वाले दृश्यों के आलेखन की ओर प्रयास नहीं किया गया, प्रत्युत यह भी कि नाटकों का पाठ ऐसा होता था कि जिन स्थानों पर रंगमंचीय सज्जा साधारणतया की ही जाती है वहाँ भी 'सेटिंग' के लिए कोई स्थान न था। 'शकुन्तला' नाटक राजा और उसके सारथी के जंगल में प्रवेश के दृश्य से प्रारम्भ

---

१. लदावलअ, सन्दावहारअ, आमन्तेमि तुमं भुओवि परिभोअस्स।

२. विद्वान् लेखक ने यहां जो बातें कही हैं वे सर्वथा उचित नहीं मालूम पड़तीं। भरत नाट्य शास्त्र में रंगशालाओं के सम्बन्ध में जो वर्णन आया है उससे अनेक तथ्यों पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

होता है, न वे ही स्थिर रहते हैं, न उनका परिवेश ही।

राजा एक हिरन का पीछा कर रहा है। वह अपने सारथी से कहता है—
"तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्न प्रेक्षणीयः संवृत्तः।"

अरे, हम ठीक इसके पीछे-पीछे ही चले जा रहे हैं, फिर हरिण आंख से ओझल क्यों हो गया?

सारथी उत्तर देता है—

"आयुष्मान्, उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः।
...संप्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति।"

आयुष्मान्, ऊँची-नीची भूमि होने के कारण मैंने रास खींचकर रथ का वेग कम कर दिया था।...आगे की भूमि समतल है, अब उसे हाथ में आया ही समझिये।

कुछ क्षण बाद ही वह फिर कहता है—

"मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलंघनीया धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।"

(रास छोड़ते ही अपने आगे का शरीर फैला कर और माथे की चौंरी सीधी खड़ी करके ये घोड़े इतने वेग से दौड़ रहे हैं कि इनकी टापों से उठी हुई धूल भी उन्हें नहीं छू पा रही है, मानो ये हिरण से होड़ ले रहे हैं!)

स्पष्ट ही वे मृग के पास पहुँच जाते हैं। उसी समय एक आवाज़ आती है—
"राजन्! यह आश्रम का मृग है। इसे न मारिये, इसे न मारिये।"[1] रथ रुक जाता है। राजा और एक वैखानस से बातचीत होती है। रथ फिर आगे बढ़ता है और तब तक बढ़ता जाता है जब तक कि उसे वह पवित्र आश्रम नहीं मिल जाता, जहाँ से कि नाटक के मुख्य अंश का प्रारम्भ होता है।

मेरा यह निर्णय है कि यहाँ पूरे 'सेटिंग' के साथ रथ भी मात्र काल्पनिक है। मैं यह भी समझता हूँ कि यहाँ यात्रा का आभास देने के लिए बहुत थोड़ी-सी सक्रियता अथवा अंग संचालन की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु इस सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाये गये हैं।[2] यदि अभिनय पर ही सारे वर्णन और चित्रण का भार हो तो अंग-संचालन और

---

१. (नेपथ्य)—भो भो राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः!
२. ई० पी० हारविट्ज (लन्दन, १९१२) की पुस्तक 'दी इन्डियन थियेटर' में

शब्दाभिव्यक्ति भी अत्यन्त कौशलपूर्ण होनी चाहिए। और हम यह जानते हैं कि कला की इन शाखाओं का अध्ययन उस समय परिश्रम के साथ किया जाता था। कलाओं और दर्शन-सम्बन्धी अन्य विषयों की भांति अभिनय--कला का भी विश्लेषण किया जाता था, इसकी विशेषताओं और बुराइयों की विवेचना अच्छी तरह की जाती थी और इस कला का अभ्यास करने वालों के पथ-प्रदर्शन के लिए नियम भी बनाये जाते थे। अभिनेता चेहरे नहीं लगाते थे। और स्त्रियां, नारी-पात्र की भूमिकाओं में उतरती थीं। एक ऐसा भी समय था जब कि यूनान की ही भांति यहां भी साहित्यिक रंगमंच के अभिनेता समाज में सम्मानित समुदाय के रूप में प्रतिष्ठित थे। कालान्तर में साधारण गलियों में भी ऐसी नाट्यशालाएँ बनीं जिनमें अभिनय करने वाले कलाकारों और जादूगरी करने वाले लोगों का एक ऐसा दल तैयार हो गया जो कि आवारों और चोरों से किसी प्रकार अच्छे न थे।

शूद्रक केवल एक पौराणिक राजा था अथवा वास्तविक, उसने 'मृच्छकटिक' की रचना स्वयं की अथवा किसी दरबारी कवि से उसे लिखवाया, अथवा यह पूर्ववर्ती नाटककार भास के किसी नाटक का बदला हुआ संस्करण है, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं कि

शकुन्तला के प्रथम अभिनय का वर्णन आया है। इसमें यह नाटक नृत्य-नाट्य की सेटिंग में खेला गया था। परन्तु सम्पूर्ण ग्रंथ ही मुझे अर्धकल्पनामूलक लगता है। ए० बेरेडील कीथ की पुस्तक 'दी संस्कृत ड्रामा इन इट्स ओरोजिन, डेवलेपमेन्ट, थ्योरी ऐण्ड प्रेक्टिस' (आक्सफ़ोर्ड १९२४) मुझे अधिक विश्वसनीय मालूम पड़ती है। अत्यन्त कठिन क्षेत्र में किया गया यह अध्ययन-अनुशीलन मुझे सत्य के अधिक निकट तथा तर्कपूर्ण लगता है। परन्तु यह पुस्तक अधिक सुपाठ्य नहीं है। इसमें विवादास्पद अंश बहुत हैं और इसमें विवरणों की इतनी भरमार है कि उनका मूल्य संस्कृत के विद्वान् ही आँक सकते हैं। इधर दो भारतीय विद्वानों के ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जो रोचक हैं और इस अध्ययन पर प्रकाश डालते हैं। एक है 'दी इन्डियन थियेटर' (लन्दन, १९३३)। इसके लेखक श्री आर० के० याज्ञिक हैं। दूसरा है, 'दी इण्डियन थियेटर' (न्यूयार्क, १९५१)। इसके लेखक डाक्टर मुल्कराज आनन्द हैं। दूसरी पुस्तक छोटी है, परन्तु इसमें ज्ञातव्य बातें काफ़ी हैं। आर्थर डब्ल्यू राइडर कृत 'कालिदास---ट्रान्सलेशन आव शकुन्तला एण्ड अदर वर्क्स' (लन्दन और न्यूयार्क, एवरीमेन्स लाइब्रेरी) सबसे अधिक सुपाठ्य ग्रन्थ है। शकुन्तला का शायद यही सबसे अच्छा अनुवाद भी है। आप 'दी लिटिल क्लेकार्ट ---ए हिन्दू ड्रामा एट्रिब्यूटेड टु शूद्रक' अवश्य पढ़िये। राइडर ने ही यह अनुवाद किया है। मैंने सारे उद्धरण राइडर के अनुवाद से ही लिये हैं।

इन पर विचार करना और निर्णय करना संस्कृत पण्डितों का ही काम है। हमें तो इस नाटक का आनन्द उसकी विशेषताओं के फलस्वरूप ही लेना है। यह नाटक 'अभिज्ञान शकुन्तला' से कुछ कम लाक्षणिक है। इस नाटक में राजाओं और उच्चवंशीय महिलाओं से अधिक महत्व उनसे कम कुलीन, विपन्न सामन्त अथवा व्यापारी को दिया गया है। इसके दरबारी प्राय: वैसे ही हैं। किसी अन्य अति प्रतिष्ठित नाटक से भिन्न इस नाटक में प्राय: हिंसा की स्थिति आ जाती हैं। (किन्तु हत्या असफल होती है)। उसमें प्रेममूलक कथानक और राजनीतिक परिवर्तन में सामञ्जस्य है। यह नाटक प्राकृतिक दृश्यों से उतना सम्पन्न नहीं है, बल्कि इसमें घरेलू वातावरण का पुट है। इसमें शाब्दिक सजावट और चित्रात्मकता का प्रयोग कम हुआ है। परन्तु इन्हीं बातों के कारण इस नाटक में और शिथिलता नहीं आ पायी है। पाश्चात्य पाठक या दर्शक इसी शिथिलता के कारण प्राय: उदास हो जाते हैं। यह नाटक अधिक प्राणवन्त है, अधिक वैविध्यपूर्ण और शक्तिशाली है। इसके पात्र भी अधिक मानवीय हैं; वे असाधारण रूप से अधिक विनोदी भी हैं।

राजनर्तकी वसन्तसेना वंचक और कपटी राजा पालक के साले संस्थानक की कुदृष्टि से बचने के लिए एक शीलवान् ब्राह्मण व्यापारी चारुदत्त के यहाँ आश्रय के लिए जाने को विवश होती है ? रात के समय वसन्तसेना अपने सारे आभूषणों को चारुदत्त की ही सुरक्षा में छोड़ देती है। उसके सभी आभूषण चोरी चले जाते हैं। चारुदत्त उन आभूषणों के स्थान पर अपनी धर्मपत्नी का हार सम्मान के साथ वसन्तसेना को दे देता है। परन्तु वसन्तसेना को अपने चोरी गये हुए आभूषण अपनी दासी द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। उस दासी ने आभूषणों को अपने चोर प्रेमी से प्राप्त किया था। उधर एक निर्दोष वसन्त-नवयुवक चरवाहा, जिसे दुष्ट राजा ने बन्दी बना लिया था, बन्दीगृह से निकल भागता है। सेना चारुदत्त के घर जाती है। वह चारुदत्त के लड़के को कुछ मणियां सोने की नयी गाड़ी खरीदने के लिए द देती है, क्योंकि, उस बच्चे को अपनी मिट्टी की गाड़ी पसन्द नहीं है। घर से निकलकर वसन्तसेना भ्रमवश दुष्ट संस्थानक की गाड़ी को चारुदत्त की गाड़ी समझकर उसमें बैठ जाती है। उधर भगोड़ा चरवाहा चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। संस्थानक वसन्तसेना से अशिष्ट ढंग से प्रेम-निवेदन करता है। वसन्तसेना शालीनता-पूर्वक संस्थानक के प्रेम को ठुकरा देती है। संस्थानक वसन्तसेना की हत्या कर देता है। चारुदत्त को वसन्त सेना की हत्या के लिए दोषी ठहराता है। बाद में, राजा चारुदत्त को प्राण दण्ड देता है। दण्डपाशिक अभागे चारुदत्त की हत्या करने ही जा रहे थे कि पुनर्जीवित वसन्तसेना सामने आ जाती है। इस प्रकार चारुदत्त निरपराध सिद्ध हो जाता है। उसी समय समाचार मिलता है कि चरवाहे ने राजा की हत्या कर दी है

१०

और अपने को राज्याधिकारी सिद्ध कर दिया है। उस चरवाहा राजा ने चारुदत्त को एक प्रदेश भी प्रदान किया। इस प्रकार नियमतः वसन्तसेना नर्तकी के पद से ऊपर उठ जाती है और वह चारुदत्त से विवाह करने के लिए स्वतंत्र हो जाती है।

दस अंकों के नाटक के कथानक का यह एक साधारण ढांचा है। इसमें क्या नहीं है—छोटे-छोटे से षडयंत्र, हास्य के दृश्य और सुविस्तृत सामाजिक घटनाएं, सभी तो हैं इस नाटक में। इस नाटक में एक अत्यन्त रोचक दृश्य वह है जिसमें—यद्यपि इससे मुख्य कथानक में थोड़ा सा व्याघात पहुँचता है—एक चोर सेंध लगाते हुए, चोरी के सिद्धान्तों को ललित-कला के रूप में प्रतिष्ठित करता है और चोरी के औचित्य के सम्बन्ध में धर्म-ग्रन्थों से विवरण-सहित उद्धरण भी देता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि हम लोग, जो संस्कृत भाषा के मूल रूप को नहीं जानते, भाषा के अगणित समृद्ध भेदों व भेदों के अनुवाद की कठिनाइयों को नहीं समझ सकते, इसलिए हम मूल नाटक के गीतात्मक सौन्दर्य का अनुमान नहीं लगा सकते, फिर भी हम समझते हैं कि 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के ही समान इस नाटक से भी प्रायः उतने ही मीठे गीतों को उद्धृत करना सम्भव है।

किन्तु, स्पष्ट है कि इस नाटक के अनुवाद में भी, जिसमें इस प्रकार का वैविध्यपूर्ण और परिचित कथानक है, कालिदास की कल्पनाशील कोमलता और व्यापक आनन्दानुभूति नहीं मिल सकती। 'मृच्छकटिक' वास्तव में एक पृथक प्रकार की प्रकिया है। वह एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की नाट्य-रचना है जो अपने सम-सामयिक परिवेश, स्थान और समय से मेल नहीं खाती।

भारतीय सिद्धान्तशास्त्रियों ने अपनी उत्कृष्ट बौद्धिक परम्परा को क़ायम रखते हुए नाटक के सम्पूर्ण क्षेत्र को विभिन्न वर्गों में विभक्त किया है। इस विभाजन का आधार है रचना के विभिन्न संगत तत्वों का प्रयोग, चरित्र -नायकों की कुलीनता, अलौकिक तत्व, पौराणिक तथा यथार्थ जीवन की घटनाएं, शृंगारमूलक भावनाओं की गहराई आदि आदि। आरम्भ में रूपक के दस भेद तथा उपरूपक के अठारह भेद थे, किन्तु नाटक के विभिन्न वर्गों के नाम तक उलझे हुए हैं। हमारे लिए उनका इतना महत्व है कि हम उनके द्वारा नाट्य रूपों के स्थिरीकरण का कुछ प्रमाण पा सकते हैं। हमें एक कसौटी मिल सकती है जिससे हम विभिन्न वर्गों के नाटकों की परख कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यद्यपि इन नाटकों में गीतात्मक सौन्दर्य है फिर भी इन्हीं सैद्धान्तिक नियमों के कारण हिन्दू नाटकों का क्षेत्र सीमित हो गया।

परवर्ती नाटककारों में हम भवभूति के अतिरिक्त किसी अन्य नाटककार पर विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते। आठवीं शताब्दी के इस नाटककार ने तीन नाटकों की रचना की है जो हमें प्राप्त है। पूर्ववर्ती नाटकों में जो मधुर तारतम्य और

प्रांजल सक्रियता रहती थी वह भवभूति के इन नाटकों की विशेषता नहीं है। इन नाटकों में सक्रियता को अपने में समाविष्ट कर लेने वाला काव्य उद्दीपक क्षणों में और भी अधिक निखर उठता है। इनके मनोवेगात्मक दृश्यों में अधिक सप्राणता है। इनमें प्रकृति वर्णन अधिक समृद्ध है। कालिदास की अपेक्षा भवभूति जीवन की वास्तविकताओं के अधिक निकट हैं। उनकी अन्तर्दृष्टि अधिक गहरी है और कल्पना अधिक शक्तिशालिनी है। भवभूति ने हिंसा के सम्बन्ध में परम्परागत निषेधों से भी अपने को बचाया है। परन्तु इनमें न पहले वाली सुन्दर कल्पना शक्ति है, न सूक्ष्म शिल्पकारिता है, न गीति-माधुर्य ही है। भाषा की वह सरलता भी समाप्त हो गयी है। अब तो वर्णनात्मक वाक्यों का इतना विशद और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रयोग होने लगा—कि उनसे हिन्दू-नाटक के उस पतन का पूर्वाभास मिलने लगा जिसका चिह्न आडम्बरपूर्ण और कृत्रिम शैली थी। भारतीय टीकाकारों ने कालिदास को 'काव्य-गौरव, काव्य विलास' और भवभूति को '**उदारता च वचसाम्**' कहा है।

नवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक का समय वास्तव में पतन का समय रहा है और चौदहवीं शताब्दी के बाद भारत ने विश्व नाटच-साहित्य और रंगमंच के इतिहास को कोई भी अब दान नही किया। नाटच कला का संश्लिष्ट अभिप्राय सामाजिक होता है; उसका प्रभाव सीधा पड़ता है। वह भावना-परक अधिक और बुद्धि-परक कम होता है। भाषा-परिवर्तन की उलझन, सामाजिक जीवन में वर्ण-प्रथा की कठोरता, कलाकार के लिए अभ्यास सम्बन्धी नियमों का निर्माण—ये परिस्थितियां नाटचकला के विकास के विरुद्ध पड़ती हैं। इसलिए इस युग में भारतीय नाटच साहित्य, परिमार्जन और शब्दालंकारों में लुप्त हो गया। यह चमत्कारपूर्ण अलंकारशास्त्र और साहित्यिक बाजीगरी के एक अपरिचित प्रदेश में भटक गया।

भारतीय नाटचशाला एक वर्ग संस्था है; यही इसकी सबसे बड़ी अच्छाई और सबसे बड़ी बुराई रही है। नाटक का सूत्रधार प्रश्न करता है—"वे कौन सी विशेषताएं हैं जिनकी आशा गुणज्ञ, बुद्धिमान, पूज्य, पण्डित और ब्राह्मण नाटक में करते हैं?" उत्तर मिलता है—"रसों का सम्पूर्ण उद्रेक, पारस्परिक प्रेम का आनन्ददायक विनिमय, चरित्र की महानता, भावनाओं की कोमल अभिव्यक्ति, चमत्कार-पूर्ण कथानक और ललित भाषा।"

इस वर्णन से संस्कृत नाटकों के छिछलेपन के साथ ही उन महान् नाटककारों की कोमलता, लालित्य और लययुक्त तारतम्य का भी पता चलता है। ज्योंही नाटककार इस निर्देश को स्वीकार कर लेता है कि उसे ऐसे नाटक की रचना करनी है जिसका आनन्द केवल महान् विद्वान् और छिद्रान्वेषी दृष्टि वाले पण्डित ही ले सकें, वह अपने को उन विशेषताओं से मुक्त और असंपृक्त कर लेता है जो हमारे मन की गहरा-

इयो नक को आन्दोलित कर देती है, हमारी आत्मा को आन्दोलित कर देती हे ओर, हमारी अन्तरात्मा को पवित्र कर देती है। यही वे विशेषताये ह जिन्हे पाश्चात्य ससार के हम लोग मूलत नाटकीय गुण मानते है। ये विशेषताये हमे प्रसादपूर्ण, स्वप्निल भावनामूलक और ऐन्द्रिक आनन्द प्रदान करती हे। गीति-काव्य ओर अलकृत चित्र-कला के बीच जो अन्तर हे वही अन्तर नाटक के क्षेत्र मे इन महान् कलाकारो मे है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमे भारतीय और फारस की चित्रकला मे मिल सकता हे —वही बाल-सुलभ कल्पनाशीलता, वही पारदर्शी रगीनी, वही आनन्दप्रद ताजगी, वही नीहार-रजित माधुरी! परन्तु इस सूक्ष्म और अत्यन्त प्रभावशाली गीतात्मक सौन्दय का अनुभव कर लने के बाद हमे कभी कभी अपने माइकेल एजिलो ओर एलग्रेसो, अपने एस्किलस, ओर यूरीपिडीज और शेक्सपियर की ओर भी जाने की इच्छा हो सकती हे, क्योकि भारतीय नाटय कामल और मोहक हे, शानदार कभी नही।

जो लोग हिन्दू नाटको के निर्बन्ध प्रशसक है, उनका कथन हे कि इन नाटको से हमे प्राच्य सुलभ शान्ति प्राप्त होती ह पश्चिम की अशान्ति और द्वद्व नही। हम लोग जो इस बात मे सहमत नही ह, इस शान्ति मे आनन्द तो प्राप्त कर सकते है, परन्तु उसकी गहराई मे हमे सन्देह ह। हम अपने नाटको एव रगमचो को तभी उत्कृष्ट मानते है जब उनमे कठिन सघर्ष के बाद हो शान्ति की प्रभाव-रेखा दिखायी देती है। तूफान के बाद की ज्योतिष्मती निर्मल शान्ति ही हमे अधिक श्लाघ्य मालूम पडती है। स्यात् जातिगत अन्तर ही हमे इस सम्बन्ध मे हिन्दुओ से सहमत होने मे सदैव बाधा पहुचाता रहेगा।

चीनी रगमच तो पाश्चात्य विद्वानो के लिये और भी अधिक कठिनाइया उपस्थित करता है। चीनी नाटको का कोई भी साहित्यिक मल्य हमारे लिये नही हे। रगमच पर नाटको को उपस्थित करने की चीनी परम्परा हमारी परम्परा से इतनी भिन्न है कि उसे समझने मे दुर्लघ्य बाधाए खडी हो जाती हे। पश्चिम मे जिन चीनी नाटको को सफलता मिली है उनका वर्तमान् चीनी नाटको से बहुत धुँधला सा सम्बन्ध है। उनमे कुछ रोचक अश और कुछ विरोध-पूर्ण स्थल है जिनका कुछ सम्बन्ध चीनी नाटको से स्थापित किया जा सकता है पाश्चात्य विद्वान् चीनी रगमच का अध्ययन करने मे 'दी एलो जैकेट' की स्मृतियो से लाभ उठा सकते है। निश्चय ही न तो कथानक, न नाटकीय गहराई, न गेय काव्य, ही पाश्चात्य लोगो के लिए उतने रुचिकर होते है, जितने कि बचकाने परियो के किस्सो की ताजगी, ऊपरी चमक-दमक, नाटकीय काव्य के टुकडे और विनोद तथा हास्य के क्षण।

जब हम ससार के महत्वपूण रगमचो का सक्षिप्त पर्यवेक्षण करना चाहते है तो

नाटको से अधिक रगमचीय परम्पराओ के अध्ययन के लिए ही हम क्षण भर रुक सकते है। किसी चीनी नाटयशाला मे छ सात घटे लगातार बैठकर नाटक देखते समय आश्चय और आनन्द की घडियो के बीच कभी-कभी हमारा मन बहुत बुरी तरह ऊब भी सकता है। परन्तु, अन्त मे हमेशा हमको यह बात याद रहेगी कि किस प्रकार काव्यात्मक अश हमारे सामने उपस्थित किया गया था। साथ ही हम रगमच की चमक-दमक और शोभा को भी नहीं भूल सकते। चीनी नाटयशाला स्वय एक विशेष प्रकार के अभिनय के लिए रगमच है और दर्शको के बैठने के लिए एक मुख्य स्थान है। चीनी रगमच खुला हुआ होता है, उस पर पर्दा नही होता। प्रदर्शन के पूरे समय रगमच प्रकाशित रहता है, उसमे किसी प्रकार का बिम्ब, दृश्य और यत्र नही होता। अभिनय के लिए खुला स्थान होता है। इसकी बनावट बडी सुन्दर होती है। पीछे की दीवार मे दो द्वार होते है। एक द्वार से अभिनेता रगमच पर आते है, दूसरे से वे सज्जाकक्ष मे (अभिनेताओ का सामान्य कमरा) वापस जाते है। बडे नगरो मे और बडी नाटय-शालाए है, किन्तु, अस्थायी और चल नाटयशालाओ की सख्या अधिक है। ये चल नाटयशालाये सडक अथवा मैदान मे बनायी जा सकती है, तो भी, पीछे की दीवार मे दो दरवाजो वाला, कुछ आगे बढा हुआ, सीधा सादा रगमच ही टकसाली माना जाता है। चाहे उसमे दर्शको के बैठने का स्थान बना हो अथवा दर्शक गली मे ही खडे होकर नाटक देखे, अन्दर आने और बाहर जाने के द्वारो के अतिरिक्त इस रगमच के ऊपर एक छत भी होती है, जो साधारण मन्दिर की छत की भाँति ही अलकृत होती है।

वास्तव मे प्राच्यनाटय-शालाओ का उद्भव मन्दिरो से ही होना है, । चीनी जनता हमेशा से लोकाचार और उत्सव की प्रेमी रही है। धार्मिक उत्सवो मे नृत्य और गीत का प्रयोग ऐतिहासिक काल के पूर्व पौराणिक कथाओ मे भी मिलता है। यूरोप के थेस्पिस और एस्किलस के समय से बहुत पहले यहा मन्दिरो और राजप्रासादो मे नाटय-नृत्यो का पयोग होता था। यह याद रखने की बात है कि तेईस और चौबीस शताब्दी ईसा पूर्व ही चीन का स्वर्ण युग माना जाता है। आठवी शताब्दी के सम्राट मिग हुआग ने एक ऐसे देश की यात्रा की जहाँ उन्होने कुशल अभिनेताओ को देखा। अपने देश मे लौटकर उन्होने एक नाटक मडली की स्थापना की और अपनी नासपाती की बगिया मे एक रगमच निर्मित कराया। तब से अनेक अभिनेता अपने को नासपाती की बगिया के शिक्षण केन्द्र का सदस्य अथवा 'नासपाती-बगिया के युवक' कहते है। यह बात ऐतिहासिक सत्य के अधिक समीप जान पडती है।

ऐसा लगता है कि ऐसे नाटक जिन्हे हम सत्यमेव साहित्यिक कह सकते है, मध्य युग के अन्तिम चरण मे लिखे गये थे। १२८० ई० से १३६८ ई० तक 'युआन'

के राजत्वकाल में एक बड़ी संख्या में जो नाटक लिखे गये उनमें उनके पहले जैसे नाटकों की कमजोरियां और कमियां नहीं थीं और न उनके रूप के सम्बन्ध में पहले जैसा अस्थायित्व ही था, बल्कि अब उनका रूप निखर आया था, और स्थायी हो गया था। उस समय जो नाटक लिखे गये थे, आज भी चीन के रंगमंच पर वैसे ही नाटकों की प्रभुता है। यह ठीक उस समय हुआ था जब कि एक विजेता शासक ने सभी पुराने दरबारी साहित्यिकों और अभिनेताओं को निकाल बाहर किया। अब वह रंगमंच, जिसे काव्य और अन्य बौद्धिक कलाओं से निम्न स्तर का माना जाता था, एकाएक समुन्नत होने लगा था। यह कहना अधिक अच्छा होगा कि रंगमंच ने ऊपर उठकर साहित्य की ऊंचाई तक पहुंचने की कोशिश की और उच्च साहित्य (जिसकी रचना उस समय शास्त्रीय भाषा में होती थी) भी थोड़ा नीचे झुक कर साधारण रंगमंच की आवश्य-कताओं को पूरा करने की ओर अभिमुख हुआ।

सच यह है कि पश्चिम में 'सोफ़ोक्लीज़' अथवा शेक्सपियर ने जो महत्व नाटच-साहित्य को प्रदान किया वह महत्व चीन में उसको कभी नहीं मिला। स्वयं चीनी लोग भी इसका दावा नहीं करते। अनुवाद में जो भाषागत सौन्दर्य और मूल्य नष्ट हो जाते हैं उनको छोड़कर यदि पूछा जाय तो पाश्चात्य पाठक भी वह स्वीकार कर लेंगे कि चीनी नाटक अतिशय सनसनीपूर्ण, छिछले और जल्दी में लिखे गये नाटकों अथवा विशाल गीति-नाटकों की पाण्डुलिपियों से कुछ ही अधिक महत्व के होते हैं। नाटकों में जो स्थितियां आती हैं वे प्रायः बंधी-सधी होती हैं; जो पात्र आते हैं वे भी परिचित और जैसे-तैसे होते हैं, 'प्रभाव' न तो गम्भीर रूप से नाटकीय होता है, न कुल मिलाकर भावना-मूलक ही। दुःखान्त नाटकों में युरोपीय प्रेक्षक कसा हुआ नाटकीय ठाठ, असमंजस एवं अनिश्चयता, मनोवैज्ञानिक सत्य आदि देखना चाहते हैं। परन्तु चीनी नाटकों में या तो इनकी ओर से उदासीनता बरती जाती है, या इन्हें जैसे-तैसे टाल दिया जाता है। चीनी नाटचशाला में लगातार कोलाहल मचा रहता है, दर्शक लगातार बाहर जाते रहते हैं——चाय की चुस्कियाँ चलती रहती हैं, बातचीत होती रहती है, खाने-पीने का दौर चलता रहता है, यहाँ तक कि जिस समय कलाकार नाटक के किसी महत्वहीन अंश का अभिनय करते रहते हैं उस समय भी खेल होते रहते हैं। इन सब का कारण यह है कि नाटक का कथानक गम्भीर नहीं होता, सुविचारित नहीं होता, मनोभावों में तारतम्य नहीं होता, न तनाव ही उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। अभिनय शाम को आरम्भ होता है और आधी रात से भी आगे तक चलता रहता है। परन्तु, कार्यक्रम में अनेक नाटक सम्मिलित होते हैं। जब एक नाटक के कलाकार द्वार से बाहर निकलते हैं तो दूसरे नाटक के कलाकार दूसरे द्वार से अन्दर आते हैं। इस प्रकार नाटक की सक्रियता में

कोई व्याघात नहीं पहुँचता, । इसी प्रकार वहाँ जो संगीत होता है वह पश्चिम के दर्शकों के कानों को कर्कश मालूम पड़ता है, मधुर नहीं। (वहाँ के जो अतिशय लम्बे नाटक होते हैं, उनमें से किसी-किसी में ३२ से ४८ तक अंक होते हैं। हमें बताया गया है कि ऐसे नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किये जाते, वे तो पढ़ने के लिए ही होते हैं)। कभी-कभी चीनी नाट्यशाला में उपस्थित दर्शकों को देखने से ऐसा लगता है कि प्रायः चीनी दर्शक, नाट्य के उन मूल्यों का आनन्द लेते हैं जिनका विदेशी दर्शक बिल्कुल आँनन्द नहीं ले पाते। ये मूल्य दो प्रकार के होते हैं---एक है अभिनय। चीनी नाट्यशाला का रंगमंच खुला हुआ होता है और उसके ऊपर अभिनय होता है। अभिनय को एक कला के रूप में बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। दूसरे--वहाँ सत्यमेव नाटकीय गुणों के साथ संगीतात्मक प्रभाव और प्रभावशाली उच्चारण को समन्वित कर दिया जाता है। इसके साथ ही कमनीय वस्त्राभूषण और साज-सज्जा के सामान तथा काल्पनिक परिवेश भी है, जिनका अपना महत्व पूर्ण स्थान है। जो लोग युरोपियन वाद्यों से सुपरिचित नहीं हैं, उन्हें चीनी वाद्य-मंत्रों की ध्वनि अच्छी लगेगी, परन्तु जो लोग युरोपीय वाद्ययंत्र के पर्दों, ताल-लय आदि का आनन्द लेने के अभ्यस्त हैं उन्हें यह नीरस, कर्णकटु और कर्कश लगेगा। संगीतज्ञ मंच पर पीछे की ओर रहते हैं। दर्शक उन्हें हमेशा देख सकते हैं। वार्तालाप सीधे-सादे ढंग से बहुत कम होता है। प्रायः सस्वर पाठ ही होता है। उच्चारण बनावटी होता है। अंग-संचालन, संकेत, मुद्रा तथा भावाभिव्यक्ति के कृत्रिम रूपों के पीछे रूढ़ियों की एक परम्परा होती है।

जहाँ तक इन नाटकों की विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, युरोप की तरह इनका क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। दुःखान्त और सुखान्त नाटकों के बीच कोई बनावटी सीमा-रेखा नहीं है। यद्यपि इन नाटकों में करुण स्थितियां और सिसकने के दृश्य होते हैं, फिर भी हम जिसे गम्भीर दुःखान्त नाटक कहते हैं उसकी यहां कमी है। परन्तु गम्भीर नाटकों में वीरतापूर्ण कार्य, जिनका सम्बन्ध सुकोमल स्नेहजनित भावनाओं अथवा ऐतिहासिक सैनिक कार्यों से होता है, ही साधारणरूप से पाये जाते हैं। इसी प्रकार हर तरह के हास्य विनोद के स्थल भी होते हैं जिनमें कोमल भावों से थप्पड़ मार देने तक का प्रयोग होता है। खुले हुए मजाक (भद्दे मज़ाक) तो चलते ही रहते हैं। पर यह सभी जानते हैं कि ऐसे नाटककार जो अपने दर्शक को खुश रहने के लिए अश्लीलता का सहारा लेते हैं, अपने नाटकों के अन्त तक कदर्य भावनाओं से संत्रस्त रहते हैं।

प्रायः चीनी नाटकों को 'ऐतिहासिक' तथा 'सामाजिक' दो वर्गों में विभाजित किया जाता है, । इसके अतिरिक्त हास्य नाटक होते हैं, परन्तु उनका उतना महत्व नहीं है। सैनिक और देशभक्तिपूर्ण नाटक तथा साहसिक कार्यों से भरे पौराणिक नाटक

ऐतिहासिक वर्ग में आते हैं। सामाजिक नाटकों में अधिकतर पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित कथा होती है जिसमें सद्‌गुणों की विजय होती है। अपराध विषयक नाटकों की भी संख्या बहुत बड़ी है। प्रायः ऐसे भी नाटक देखने को मिलते हैं जो व्यंग्य-मूलक होते हैं। इन नाटकों में धर्माचार्यों और रूढ़िगत विश्वासों पर ही आक्रमण किया जाता है। चीनी नाटकों के साहित्यिक पक्ष पर यह सब कुछ कह लेने के बाद, इतना कहना तो रह ही जाता है कि वहाँ महान् काव्य के साथ महान् क्रियात्मकता से समन्वय स्थापित करने वाली भावनाओं को सार्थक शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए गम्भीर प्रयास नहीं होता। अभिनेता ही स्वेच्छा-पूर्वक नाटकों के मूल-पाठ में संशोधन और काट-छांट कर देता है।

पात्र तो प्रायः परिचित और टकसाली होते हैं। सम्राट और सेनापति और नायक ही प्रायः ऐतिहासिक नाटकों में दृष्टिगत होते हैं। साथ ही इनमें राक्षसों और भूत-प्रेतों की भी चर्चा रहती है। सामाजिक नाटकों में सती, चरित्रशीला स्त्री, ईर्षालु पति, उच्छृंखल नारी और खलनायक होते हैं। एक दीन विद्यार्थी, जो अपनी समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर अन्ततोगत्वा एक बड़ा पद प्राप्त कर लेता है, सामाजिक नाटकों में प्रिय नायक बनता है। ऐतिहासिक नाटकों में साहसपूर्ण कार्य करनेवाला सैनिक नायक होता है, । नाट्य साहित्य में जो पात्र आते हैं उनके लिए प्रसाधन और साज-सज्जा चिरपरिचित होती हैं। यह सब इटली के 'कमेदिया—दिला आर्ते' की ही भांति होता है, किन्तु उतना हास्यात्मक नहीं। इसी प्रकार चेहरे को रँगने में भी परम्परा का ही पालन किया जाता है। मुँह की सजावट और रंगाई इस प्रकार की जाती है कि वह लगाये हुए चेहरे की तरह मालूम पड़ने लगता है,। सफ़ेद पुता हुआ चेहरा बदमाश व्यक्ति का चिह्न है, लाल चेहरा ईमानदार आदमी का, सुनहरा चेहरा दैवी पुरुष का और विभिन्न रंगों की रेखाओं से रंजित चेहरा चोर का माना जाता है।[1]

---

१. यहाँ मैंने ए० ई० जुकर कृत 'दी चायनीज़ थियेटर' (बोस्टन, १९२५) के वर्णन को ही स्वीकार किया है। दूसरे विद्वान् दूसरे प्रकार के नियमों का वर्णन करते हैं। केट बस कृत 'स्टडीज़ इन दी चाइनीज़ ड्रामा' (बोस्टन, १९२२) सीसिलिया एस० एल० जुँग कृत 'सीक्रेट्स आव दी चाइनीज़ ड्रामा' (शांघाई, १९३७) और हरबर्ट ए० गाइल्स कृत 'ए हिस्ट्री आव चाइनीज़ लिट्रेचर' (लन्दन, १९०१) में नाटक से सम्बन्धित अध्याय देखिये। जापानी नाटकों के लिए फ्रैंक अलन्सन लाम्बर्ड कृत 'एन आउट लाइन हिस्ट्री आव दी जापानीज़ ड्रामा' (लन्दन १९२८) और आसा-तारो मियामोरी कृत 'दी मास्टर पीसेज़ आव चिकामत्सू' (लन्दन और न्यूयार्क,

विवाहिता वधू लाल बुर्का ओढ़ती है। मरे हुए पुरखे काला नक़ाब पहनते हैं। या अपने दाहिने कान पर कागज के टुकड़े लटका लेते हैं। बीमार आदमी अपारदर्शी पीला नक़ाब पहनते हैं। भ्रष्टाचारी अधिकारी गोले हैट लगाते हैं।

पात्रों को पहचानने के लिए ये कुछ मौलिक चिह्न हैं, परन्तु युरोप से अधिक यहां के दर्शकों को पात्रों से परिचित होने के लिए अपनी कल्पना से काम लेना पड़ता है। युरोपीय रंगमंच पर जब से यथार्थ का प्रवेश हुआ तब से दृश्यों के विवरण की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है और जीवन की सच्चाइयों को ही चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इसके पहले युरोप के दर्शकों को अपनी कल्पना से ही अधिक काम लेना पड़ता था। परन्तु, चीनी पात्रों के सम्बन्ध में इससे भी अधिक कल्पना से काम लेना पड़ता है। चीनी रंगमंच पर कुछ पर्दे टंगे होते हैं, नीचे मोटी दरी बिछी होती है, आधा दर्जन साज-सज्जा के समान होते हैं, । परन्तु इतनी वस्तुओं की सहायता से ही चीनी अभिनेता और सज्जाकार मंच के ऊपर एकाएक एक बिछी हुई खिली बाटिका या एक मनोरम झील, जिसमें नावें पड़ी होती हैं या स्वर्ग का दृश्य ऐन्द्रजालिक ढग से उपस्थित कर देता है और इन दृश्यों को आप प्रायः सत्य मानने लगे हैं। कुशल से कुशल चित्रकार द्वारा रंगे हुए 'सेटिंग्स', जिनमें आपकी कल्पना के रूप और रंग वाले स्थल चित्रित रहते हैं, उतने सत्यपरक नहीं होते जितने कि ये दृश्य। सज्जाकार जब कुछ कागज के टुकड़ों को मंच के ऊपर फेंक देता है और वे टुकड़े धीरे-धीरे उड़ते हुए मंच पर गिरते हैं तो तुषारपात का दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार जब एक बार आपको मालूम हो जाता है कि सेनापति के पीछे चलने वाला झंडा उसके पीछे चलने वाली सेना के हज़ारों सैनिकों का प्रतीक है, तो अवचेतन मन में ही झंडों की गणना करके आप यह मान लेते हैं कि युद्ध में कितने हज़ार सैनिक उस सेनापति के पीछे-पीछे चल रहे हैं। जब कोई नाविक पात्र हवा में ही नाव की डांड़ चलाने का अभिनय करने लगता है तो हमारी आँखों के सामने प्रशान्त जल और उसमें नाव चलाने का सजीव दृश्य खिंच जाता है। कभी-कभी रंगमंच पर दृश्य उपस्थित करने के साधन अत्यन्त स्थूल होते हैं। सज्जाधीक्षक दो खम्भे इधर-उधर गाड़ देता है दोनों खम्भों के बीच एक

१८२६) पढ़िये। जो किनकेड कृत 'काबुकी-दी पापुलर स्टेज आव जापान' (लन्दन, १९२५) में जापान के लोकप्रिय रंगमंच का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मेरी सी० स्टोप्स कृत 'प्लेज़ आव ओल्ड जापान—दी नो' (लन्दन, १९२७) में भी 'नो' का वर्णन मिलता है। आर्थर वेलीकृत 'दी नो प्लेज़ आव जापान' (लन्दन और न्यूयार्क १९२२) तथा एर्नेस्ट फेनोलोसा एवं एज़रा पाउण्ड कृत 'नोह', आर एकाम्प्लिशमेन्ट (न्यूयार्क, १९१६) भी पठनीय है।

छड़ लगाकर एक रेशमी पर्दा लटका देता है, और यह लो ! मंच राज-सिंहासन का एक कमरा बन गया ! अथवा वह मच के पीछे एक छोटी सी दीवार का दृश्य दिखा देता है, और सेनानायक ऐसा अभिनय करता है मानो वह किसी नगर पर सचमुच अधिकार कर रहा है ।

यह सज्जाधीक्षक वास्तव में चीनी रंगमंच की सुरुचिपूर्ण कृत्रिमता का प्रतीक होता है । वह काली अथवा नीली वेशभूषा में होता है । इसलिए यह मान लिया जाता है कि दर्शक उसे नहीं देख रहे हैं । वह हमेशा रंगमंच पर ही रहता है, प्रायः उसके सहयोगी भी उसके साथ रहते हैं, परन्तु दर्शक उसे नाटक का ही एक पात्र कभी नहीं मानते । वह एक ऐसा जादूगर है जो लाल कपड़े का गेंद लुढ़काकर यह बता देता है कि पात्र का सिर काट लिया गया । जब किसी सेनापति को कोई ऐसा काम करना पड़ता है जिससे उसके शरीर में मिट्टी लग जाने का भय होता है तो वह उस सेनापति का बहुमूल्य कोट उतार लेने में सहायता देता है । यह बताने के लिए कि परलोक से कोई प्रेतात्मा आ रही है वह मंच पर फुलझड़ियाँ छोड़ता है । मंच पर वह एक कुर्सी रख देता है जिस पर पात्र इतनी मेहनत से चढ़ता है मानो किसी पर्वत पर चढ़ रहा है । परन्तु यह सब करते हुए भी वह मंच पर निर्मित दृश्यों में किसी प्रकार से बाधक नहीं सिद्ध होता ।

जहां एक ओर संकेत और कुछ परम्परागत नियमों के पालन से ही अंकित दृश्यों से कहीं अधिक चमत्कार नाटकीय रंगमंच पर उपस्थित हो जाता है, वहीं दूसरी ओर अभिनेता भी समुचित वातावरण उपस्थित करने और नाटक को सत्य के अनुरूप बना देने में पूर्ण सफलता प्राप्त करता है । मंच पर जब मारपीट का दृश्य उपस्थित किया जाता है तो उसमें केवल एक डंडा मार देने का दृश्य नहीं दिखाया जाता, वरन् मार-पीट के सारे क्रिया-कलापों का तथा उससे सम्बन्धित उत्तेजना का सम्पूर्ण विवरण दिखाया जाता है, और जब हारा हुआ व्यक्ति भाग जाता है और जीता हुआ व्यक्ति उसके पीछे दौड़ता है तो यह संदेह नहीं रह जाता कि विजयी कौन है । अभिनेता केवल फ़र्श पर अपने पांव उठाकर इस प्रकार चलता है मानो वह सीढ़ियों के ऊपर चढ़ रहा हो या वह सपाट फ़र्श पर इधर से उधर चक्कर लगा कर यह बता देगा कि वह पेकिंग से चलकर तिब्बत तक पहुँच गया है । कभी-कभी तो वह बीच-बीच में उन स्थानों का नाम घोषित कर देता है जहाँ वह अपनी इस यात्रा में पहुँच जाता है; कभी वह एक ऊंचे मंच से इस प्रकार नीचे कूद जाता है मानो कुएं में कूदकर आत्महत्या कर रहा हो । कभी वह घोड़े पर चढ़ने और उतरने का दृश्य उपस्थित कर देता है; कभी वह घोड़े की पीठ पर ही कूदने लगता है; कभी वह काल्पनिक जलाशय में हाथ धोता है; कभी किसी बाँस के सहारे खड़ा हो जाता है, और अपना सिर पीछे इस प्रकार लटका लेता है मानो

उसे फाँसी दे दी गयी हो। मगर, रात्रि की सूचना नगाड़ा बजाने वाला ही देता है। जिस समय सभी वाद्य-यंत्र मौन रहते हैं, उस समय वह नगाड़े से घंटे बजाता है। चीनी नाटकों में पात्र जो वस्त्राभूषण पहनते हैं वे अत्यन्त मूल्यवान् और उत्कृष्ट होते हैं।

एक विशिष्ट तड़क-भड़क वाले पहिनावे में एक चीनी अभिनेता
(सेन्चुरी मैगेज़ीन में केन्यान कोक्स कृत रेखा चित्र।)

पाश्चात्य देशों में जिस प्रकार की साज-सज्जा और वस्त्राभूषण का प्रयोग होता है उससे अधिक क़ीमती चीन के अभिनेताओं के वस्त्राभूषण और साज-सज्जा के सामान

होते हैं। साधारण से साधारण पात्र भी बहुत अच्छी पोशाक पहिनते हैं, यहाँ तक कि भिखमंगे भी रेशमी वस्त्र पहनते हैं; मुख्य पात्र तो बहुमूल्य चमकीले-भड़कीले वस्त्र धारण करते ही हैं। इस प्रकार कम से कम एक अंश में तो प्राच्य रंगमंच के कल्पनाशील वैभव और ज्ञान का आधार भौतिक है ही! परन्तु यह सत्य है कि प्राच्य नाटकों की समृद्धि और उनकी अत्यधिक काव्यात्मक सफलता दर्शकों की कल्पना पर ही निर्भर होती है। ऐसी नाटक-शाला में कलाकारों को एक लम्बी अवधि तक पूरी सजगता के साथ प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। नये अभिनेता वर्षों तक अपना समय विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में लगाते हैं। यह स्पष्ट है कि युरोप में कलाकारों का शिक्षण जिस प्रकार होता है उससे कुछ अधिक ही चीन के कलाकारों को सीखना पड़ता है क्योंकि चीनी अभिनेता को मंच के ऊपर ज्ञान के साथ मरने का ही दृश्य उपस्थित नहीं करना पड़ता, प्रत्युत उसे उठकर मंच के बाहर ठीक उसी प्रकार चलना पड़ता है जैसे उसके शव को चार आदमी लिये जा रहे हैं। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि अनेक तरूण कलाकारों को नारी-सुलभ आकर्षण प्राप्त करने की कला भी सीखनी पड़ती है। कसे हुए जूतों को पहिनकर एक विशेष आकर्षक ढंग से चलना भी सीखना पड़ता है क्योंकि अभी कुछ दिनों पहले तक नारी पात्रों का अभिनय पुरुषों को ही करना पड़ता था। अठारहवीं शताब्दी में एक सम्राट ने एक अभिनेत्री से विवाह कर लिया था। तब से यह राजकीय आज्ञा हो गयी थी कि स्त्रियां रंगमंच पर नहीं आ सकतीं (अभी तक यह बात स्पष्ट नहीं हुई कि इस प्रकार की आज्ञा क्यों दी गयी —इसलिए कि अभिनेत्रियों को इतना उच्च स्थान प्राप्त था कि रंगमंच उनके योग्य नहीं था, या इसलिए कि उपर्युक्त घटना की भांति अन्य कोई और घटना न घट जाय!) आज चीन मे सबसे प्रसिद्ध अभिनेता मी लान-फांग हैं। उनकी प्रसिद्धि नारी पात्र का अभिनय करने के लिए ही है। सम्भवतः वे ही ससार के सबसे बड़े जीवित नाटच-अभिनेता हैं।[1]

सत्य यह है कि चीनी नाटक स्यात् इतने अधिक अयथार्थवादी और कल्पना-मूलक नहीं हैं जितना मैंने यहां कह दिया है। युरोपीय रंगमंचों से जब हम

---

१. इन पंक्तियों के लिखने के बाद मी लान-फांग की मृत्यु हो गयी। रूस, जर्मनी और अमेरिका के कलाकारों और आलोचकों ने उनकी उत्कृष्टतम अभिनयकला और हृदय के गहनतम भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह ध्यान देने की बात है कि १९५०–५१ में चीनी मजदूरों की नाटचशालाएँ सामने आयीं। ये नाटचशालाएँ रूस के प्रचारवादी रंगमंचों के ही अनुरूप थीं। जिनमें एजिटप्रोप ब्रिगेडों, ब्लू हाउसेज इत्यादि के लिए स्थान रहता था।

व्यक्ति के सम्पूर्ण सन्दर्भ को ध्यान में रखने पर पता चलता है कि 'नो' नाटक में जिस प्रकार सम्पूर्ण रूप से यथार्थवाद का बहिष्कार किया गया है, वैसा अन्यत्र नहीं हुआ है। ज्योंही इसने परम्परागत नृत्य से विकसित होकर संगीत, नृत्य, घटना और शब्दो से समन्वित नवीन रूप धारण किया,--'नो' ने कठोर रूढ़िवादी परम्पराओं को स्वीकार कर लिया।

'नो' नाटक छोटा होता है। वह साधारण युरोपीय एकांकी नाटकों से भी छोटा होता है। पढ़ने में वह इतना हल्का-फुलका होता है कि मानो कोई छोटा-सा संस्मरण हो। उसमें गीतात्मक मनोमोहकता तो बहुत होती है, परन्तु वह अनाटकीय, यहां तक कि एकरस भी होता है। इसका रहस्य यह है कि मूल नाटक एक चौखटा सरीखा होता है जिसमें काव्यात्मक संकेत और मीठे शब्द जड़े होते हैं। जिसे हम नाटकीय तत्व कहते हैं—तनाव और संघर्ष—वह या तो इन 'नो' नाटकों में होता ही नहीं (इस बात के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं) या वह किसी परिस्थिति अथवा कार्य विशेष से उत्पन्न परम्परागत जातीय प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होता है। 'नो' नाटक में शिक्षित जापानी जिन मूल्यों की अपेक्षा रखता है वे उन मूल्यों से सर्वथा भिन्न होते हैं, जिनको हम अपनी नाट्यशालाओं में उच्चतम स्थान देते हैं। 'नो' नाटकों के मूल्य और मान, दर्शकों के तत्सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान पर और आचारिक खूबियों को पसन्द करने पर ही निर्भर करते हैं।

एक ही कार्यक्रम में अनेक नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाते हैं। विशेष बात यह है कि नाटकों के क्रम को अधिक महत्व दिया जाता है, उनकी विषयवस्तु को नहीं। कार्यक्रम धार्मिक कृत्य की ही भांति सुनियोजित और संतुलित होता है। वह सत्यमेव एक धर्माचार की भांति रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। नाटक में, विभिन्न अंशों को इस प्रकार चुना और सजाया जाता है कि उनमें सम्पूर्ण तारतम्य स्थापित हो सके, कुल मिलाकर उनका एक सुन्दर रूप बन सके और भावनाओं का भी पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित हो सके। जिस प्रकार मिले-जुले संगीत के कार्यक्रम में अंग-चालन की प्रक्रिया को समुचित ढंग से स्थान दिया जाता है उसी प्रकार इन उपर्युक्त तत्वों को भी। जिस प्रकार युरोपीय नाटकों में भी भूमिका, उत्कर्ष, चरम विन्दु और फिर अवरोह या उतार की व्यवस्था होती है, प्राय: ऐसी ही व्यवस्था 'नो' नाटकों में होती है। परन्तु, भावना-मूलक स्थितियों पर यहां उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है जितना ध्यान काव्यात्मक, कल्पना-मूलक, सज्जापरक विवरणों के सामञ्जस्य को दिया जाता है।

इन बातों पर वहाँ कितना ध्यान दिया जाता है और उनके मनोरंजन की वृत्ति

कितनी कोमल है, इसका संकेत इस बात से मिल जाता है कि जापान में पुष्प-प्रसाधन एक बहुत ही विकसित कला है; और यह भी कि वहाँ के सामन्त 'सुगन्धित श्रवण' नाम की एक उत्सव क्रीड़ा करते थे जिसमें मिली-जुली गन्ध को अलग-अलग पहचानना पड़ता था, और प्रत्येक गन्ध से उत्पन्न काव्यात्मक विचार को शीर्षक प्रदान करना पड़ता था।

'नो' नाटक के मूलपाठ 'उताई' की विशेषता की व्याख्या करते समय यह कहा जा सकता है कि इसका प्रयोजन रंगमंच पर छाया उपस्थित करना होता है, क्रिया अथवा गति नहीं। जो लोग आधुनिक विम्बवादी (इमेजिस्ट) कवियों के मूल प्रयोजन को समझ गये हैं वे 'नो' नाटककार के रचना-मूलक अभिप्राय को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। ये नाटक ऐसे अल्पसंख्यक लोगों, विवेकशील कला-प्रेमियों और विशिष्ट दर्शकों के लिए लिखे जाते थे जो परम्परागत रूप से उसकी सूक्ष्म विशेषताओं और रीतियों को अच्छी तरह समझ सकते थे।

यह कथा है कि जिस नृत्य से 'नो' नाटक का उद्भव हुआ था, उसका आविष्कार देवताओं ने किया था। एक बार स्वर्ग की देवियों में सबसे महत्वपूर्ण सूर्य देवी स्वर्ग की एक पहाड़ी गुफ़ा में वहुत दिनों तक छिपी रहीं। फलतः चारों ओर अँधेरा छा गया। उस समय अन्य देवताओं ने एक नृत्य का आविष्कार किया और उनमें से एक ने एक उलटे नाँद पर नृत्य किया था। सूर्य देवी ने बाहर आकर यह देखना चाहा कि नर्तकी के पाँवों से कैसी गूँजती हुई ध्वनि आ रही है। (आज भी काठ के फ़र्श पर नर्तकी के पावों की धमक 'नो' नाटकों की बड़ी विशेषता है)। बाद में उस नृत्य में अनेक दूसरे तत्व भी जोड़ दिये गये, और, यह सम्भव है कि बौद्ध पुजारी ही सवसे पहले नाटककार हों। चौदहवीं शताब्दी में 'क्वान-आमी कियोत्सुगु' ने 'नो' नाटक का रूप स्थिर किया, और, इसी नाटककार के कारण राज्य का संरक्षण से प्राप्त हुआ। इसके बाद विशिष्ट सम्मानित कवियों और कलाकारों की टोलियों ने 'नो' नाटकों और तज्जनित नियमों का एक बड़ा भारी कोश तैयार कर दिया। तब से लगभग पांच सौ वर्षों तक सम्भ्रान्त कलाकारों के लिए ये 'नो' नाटक एक वहुत बड़े खजाने के रूप में रहे। सदैव ही ये नाटक सम्भ्रान्त वर्ग की कुलीनता और देवताओं, पुरोहितों, सम्राटों और सामन्तों की सीमा में ही बंधे रहे हैं।

कहा जाता है कि 'नो' नाटक के प्रत्येक शब्द का जो अर्थ होता है उससे अधिक उसका भावार्थ होता है। सदियों से कवियों ने इन शब्दों का प्रयोग जिस रूप में एक बार किया है, उससे उनके परम्परागत संस्कार बन गये हैं। कभी जो कहा जाता है अर्थ उससे अधिक व्यापक होता है; कभी एक के स्थान पर दो अर्थ हो जाते हैं; कभी

उनसे स्पष्ट संकेत भी मिलते हैं। गीतात्मक ढंग से जब उन शब्दों अथवा वाक्यों का पाठ किया जाता है तो उनका मूल्य और भी अधिक बढ़ जाता है। परन्तु कलाकारों और नर्तकियों का अंगचालन प्रतीक में, गूढ़ार्थ–प्रकाशन में, संकेत में कम रोचक और समृद्ध नहीं होता। संगीत (संगीतकार यहाँ भी मंच पर ही बैठते हैं) सारे अभिनय को एक सूत्र में बांध देता है। साधारणतया एक बांसुरी और तीन प्रकार के ढोलों का प्रयोग होता है।

न तो रंगमंच में ही कोई अन्तर होता है, न शब्दों अथवा वाक्यों के बोलने में। रंगमंच आयताकार होता है और छत मन्दिरों की छत की भांति होती है। पीछे देवदारु वृक्ष का एक परम्परागत प्रतीक बना रहता है। एक पुलिया बग़ल से होकर सज्जागृह की ओर निकल जाती है। बाहर निकले हुए मंच के तीन ओर दर्शकों के बैठने का स्थान होता है। काठ का रंगमंच विशेष रूप से ऐसा बना होता है जिससे नर्तकियों के पाँव की गूँज उठ सके। सम्पूर्ण मंच सजा हुआ रहता है, परन्तु उस पर कोई ऐसी व्यवस्था अथवा साधन नहीं होता जिससे कोई दृश्य उपस्थित किया जा सके। साज-सज्जा के बहुत कम सामानों का प्रयोग होता है। पंखी एक सर्वस्वीकृत प्रतीक मान लिया गया है। यह अनेक बातों का संकेत दे सकता है। दर्शक नर्तकी की अभिनय-गति के सहारे ही पंखी के विभिन्न संकेतों को समझ लेता है। ठीक इसी प्रकार वह कवि के शब्दों के सहारे अपनी भाव-भूमि को तैयार कर लेता है।

छः अथवा उससे अधिक व्यक्ति जो 'नो' नाटक के प्रदर्शन के पूरे समय मंच पर ही बैठे रहते हैं बीच-बीच में गीत गाकर कलाकारों की सहायता करते हैं। 'नो' नाटक की रूपरेखा में समवेत गीत का वही स्थान है जो यूनानी नाटकों में था। यूनानी नाटकों में इसका प्रयोग किसी बात पर फिर से बल देने, टिप्पणी करने अथवा दर्शकों को सूचना देने के लिए होता था। मुख्य पात्र, जो कि सभी पुरुष होते हैं, संख्या में दो-तीन या चार होते हैं, औपचारिक ढंग से धीरे-धीरे वे मंच पर आते हैं। प्रत्येक भाव अथवा विचार के लिए भंगिमा या संकेत सुनिश्चित होता है। युवक पात्रों को छोड़ कर अन्य सभी लोग चेहरे लगाते हैं। इस प्रकार मुख पर चेहरे धारण कर लेने के कारण अभिनय में व्यक्तिगत छाप नहीं रह जाती। ये चेहरे सुन्दर, रंगे और नक्काशीदार होते हैं। ये पूरी तौर से परम्परानुरुप होते हैं। अयथार्थवादी होते हुए भी ये बड़े भावपूर्ण होते हैं। पात्रों की भंगिमा, संकेत, आदि, अयथार्थवादी, प्रतीकात्मक और पहिले से जाने-समझे हुए नियमों के अनुसार ही होते हैं। अंग-संचालन में जो नृत्य का अंश होता है वह युरोप के पूर्णतया मुक्त नृत्य से (चाहे आप इसे यूनानी कह लें) बिलकुल भिन्न होता है। फिर भी यह युरोपियन बैले के एक गोलाई में घूमनें वाले

वनावटी नृत्य से भी बिलकुल भिन्न होता है। फिर, यह बात ध्यान में रखने की है कि इसमें रूढ़िवादी समारोहात्मक तत्वों का ही प्रभाव अधिक होता है। पात्रों के वस्त्र अत्यन्त भड़कीले और मूल्यवान् होते हैं। साधारण रंगमंच, जो कि बड़े सोफ़ियाना ढंग से सजाये जाते हैं और जिनकी पृष्ठभूमि भी उत्कृष्ट होती है, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये पात्रों की चमक-दमक के कारण और भी अधिक शोभावान् हो जाते हैं। यहां यह बता देना ठीक होगा कि प्राचीन काल में इन नाटकों को देखने वाले दर्शक भी खूब सज-बज कर आते थे। उस समय ऐसा लगता था मानो 'नो' नाटक अब भी मन्दिर का नृत्य ही हैं और वे उसे ही देखने किसी पवित्र अवसर पर आये हैं।

ऐसे नृत्य-समन्वित कला, अभिनय, को नाटक मान लेना युरोपीय लोगों के लिए कठिन है। हम लोग, जो कि पश्चिम के हैं, चाहते हैं कि अभिनीत नाटकों में भावनाओं को पूरी तरह खुल खेलने का अवसर मिले। तभी हमें वह नाटक अच्छा लगेगा। परन्तु पूर्व में बुद्धि को भावना से अधिक महत्व दिया गया है। बुद्धि भावनाओं पर अंकुश लगाये रहती है। परन्तु अन्ततोगत्वा नाटक का मात्र अर्थ है 'कुछ किया गया'। सक्रियता नाटक का अनिवार्य अंग है। निश्चय ही कोई यह नहीं कहता कि रुढ़िवादी, सधी-वंधी क्रियाशीलता अनुकरणात्मक, भावनात्मक क्रियाशीलता से कम महान् है। श्रेयस्कर यह होगा कि हम यह स्वीकार कर लें कि पूर्व में हमारी नाट्य-कला से भिन्न एक नाट्य-कला प्रतिष्ठित है। उसकी सज-धज प्रत्येक व्यक्ति की आंखों को भाती है। जो दर्शक इसके अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें भी एक भिन्न प्रकार के सौन्दर्य की बुद्धिपरक, कल्पनाशील, सूक्ष्म काव्यात्मक सौन्दर्य की झांकियां इन नाटकों में मिल जाती हैं। एक ओर रंग, संगीत, अंग-चालन का ऐन्द्रिक सामंजस्य दर्शक को मोहग्रस्त कर देता है, दूसरी ओर उत्कृष्ट भावार्थ, रोचक वर्णन, उत्प्रेक्षाओं एवं दार्शनिक विचारों की अनवरत क्रीड़ा सी चलती रहती है। हम इसे लम्बे अभ्यास के बाद अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह तव और भी स्पष्ट हो जाता है जव यह साधारण मानवीय भावनाओं से ऊपर उठ कर निर्वैयक्तिक क्षेत्र में पहुंच जाता है।

'नो' नाटक पिछले छः सौ या इससे अधिक वर्षों से संभ्रान्त वर्ग की विशिष्ट, उत्कृष्ट कला के रूप में चलता चला आया है। कियोत्सुगू कलाकारों के वंशज ही आज इस नाटक को रंगमंच पर उपस्थित करते हैं। परन्तु पिछले पचास सालों में जापान के सामाजिक जीवन में जो अव्यवस्थित स्थिति रही है, उसके कारण बीच की सीमा रेखाएं प्रायः मिट गयी हैं और कोई कह नहीं सकता कि भविष्य में इस विशिष्ट प्रकार की कला का क्या होगा। शायद भावनाओं की, बुद्धि की, एक कुलीनता बाक़ी रह

जायेगी जो इस कला को जीवित रखेगी। इस बीच युरोप के कुल कलाकारों ने इसके कुछ तत्वों का, इसकी परम सूक्ष्मता का, इसकी शृंगारपूर्ण परन्तु सुनियंत्रित समृद्धि का, इसके शैलीकरण का, इसकी काव्यात्मक गहराई का अच्छी तरह अनुशीलन कर लिया है। इन कलाकारों का कथन है कि यथार्थ की विजय ही रंगमंच के सम्पूर्ण संघर्ष की अन्तिम परिणति नहीं है।

एक अर्थ में 'नो' नाटक अतीत के संग्रहालय की एक वस्तु जैसा लगता है। सोलहवीं शताब्दी के बाद इसके वंशगत संरक्षकों ने इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होने दिया। पुराने तरीक़े, पुराने विषय, पुराने वस्त्राभूषण और चेहरे, अब भी क़ायम हैं। इसलिए जब कोई दर्शक 'नो' नाटक देखता है तो उसे लगता है कि वह किसी मध्यकालीन कला का अवशेष ही देख रहा है। लेकिन हम युरोप वाले यह तो नहीं कह सकते कि 'चारट्रेस कैथेड्रल' या 'सैंते चेपले' सुन्दर नहीं है क्योंकि उनका आधुनिकीकरण नहीं हुआ।

जो भी हो, जापान में एक लोकप्रिय रंगमंच अवश्य है जो समय के साथ बदलता रहा है। पिछली शताब्दियों में उच्च वर्ग के लोग तथा बुद्धिजीवी 'काबुकी' को नीची निगाह से देखते रहे हैं। यह अधिक असभ्य रंगमंच, जिस पर बौद्धिकता का प्रभाव कम था, जो उच्चवर्गीय नियमों और परम्परागत व्यवस्थाओं से कम बंधा हुआ था, लोकाभिरुचि से, सनसनीवाद से, यथार्थ से समझौता करने में सफल हुआ। फिर भी इसे रंगमंच पर प्रस्तुत करते समय जो औपचारिकता बरती जाती है उसके कारण इसमें और युरोपीय नाटकों में ज़मीन–आसमान का फ़र्क आ गया है। परन्तु इन नाटकों में कोई विशेष विभिन्नता नहीं होती, इसीलिए युरोपीय दर्शकों को वे उतने रुचिकर नहीं लगते।

यह माना जाता है कि 'काबुकी' रंगमंच का जन्म १६०० ई० के आसपास नर्तकी ओ–कुनी के नृत्य से हुआ। सम्भवतः आरम्भ में उसका नृत्य धार्मिक हुआ करता था। फिर उसके नृत्य में 'नो' नाटकों के अनेक तत्व जोड़ दिये गये। कुछ तत्व उन कलाकारों की कला से भी ले लिये गये जो साधारण ढंग से जनता का मनोरंजन किया करते थे। कहा जाता है कि "ओ–कुनी सुन्दरी थी, वह सुलेख लिखती थी, उसका स्वभाव अत्यन्त संवेदनशील था, वह फूलों को प्यार करती थी, उसे चन्द्रमा से स्नेह था और बर्फानी संध्या तथा शरद् ऋतु के झुरमुटों के दृश्य उसे कविता लिखने के लिए प्रेरित करते थे।" इस वर्णन से यह भान होता है कि अपने विकास के साथ-साथ पश्चिम के यथार्थवाद की ओर 'काबुकी' रंगमंच से बहुत-कुछ ज्यों का त्यों ले लिया गया। नाट्यगृह में परिवर्तन बहुत कम हुआ। अभिनय की परिपाटी में कुछ ढिलाई कर दी

गयी। एक ओर समारोहात्मक सौन्दर्य पर विशेष बल दिया गया, तो दूसरी ओर संगीत 'काबुकी' नाटक को संगीत–नाट्य का रूप देता रहा। उधर कथानकों का सम्बन्ध साधारण जन-जीवन से स्थापित होने लगा। साथ ही पौराणिक गाथाओं को भी इसमें स्थान मिलने लगा। ओ-कुनी के समय के ठीक बाद, नारी पात्रों की प्रभुता रही। परन्तु उनकी चिन्ताजनक लोकप्रियता तथा उनमें से कुछ की चारित्रिक दुर्बलता के कारण सरकार को आदेश जारी करना पड़ा कि रंगमंच पर केवल पुरुष ही उतर सकेंगे। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक पुरुषों की टोलियां अच्छी तरह जम गयीं। और, तब से 'कावुकी' जन साधारण के सर्व-स्वीकृत मनोरंजन का साधन बन गया।

'नो' रंगमंच के आधार पर काबुकी रंगमंच में जो थोड़े से परिवर्तन हुए, उनसे अभिनय के सम्बन्ध में परिवर्तन की दिशा का पता चलता है। चीनी रंगमंच का भी पर्याप्त प्रभाव इस रंगमंच पर पड़ा था। रंगमंच अब भी एक आयताकार चबूतरा था जिसके तीन ओर दर्शक बैठते थे। बहुत दिनों तक तो मात्र शोभा के लिए निर्मित छत सचमुच स्थायी रूप से बनी रही। बाद में प्रतीकात्मक रूप से इस छत को अंकित करके मंच पर सजाया जाने लगा। पहिले सज्जाकक्ष से आने वाली जो पुलिया बनायी जाती थी उसके अतिरिक्त अब मंच से आगे बढ़ा कर दर्शकों के बीच से होकर एक दो और पुलियाएँ बनने लगीं जिनसे पात्र प्रवेश कर सकें। इसके साथ पुष्प-सज्जा की परिपाटी को भी अपनाया गया। इधर जब से युरोपीय तथा अमेरिकी रंगमंचों ने पुष्प-प्रसाधन की इस परिपाटी को अपनाया है, इस सम्बन्ध में व्यापक स्तर पर वाद-विवाद हुआ है। इस प्रकार शोभा, सज्जा तथा प्रभावोत्पादक चमत्कारों के लिए भी सुविधा हो गयी। खुद से खुलने बंद होने वाले दरवाजे मंच की फ़र्श में लगा दिये गये जिससे बाज़ीगरी और विस्मय-जनक करतब दिखाने के भी अवसर मिल गये। प्राचीन काल में शाही ढंग से जो अभिनय किये जाते थे और रंगमंच पर नपे-तुले क़दमों को रखकर अभिनय की सधी-बधी प्रणाली अपनायी जाती थी, उसमें कुछ बाह्य-तत्व भी जोड़ दिये गये जिनसे पाश्चात्य देशों के 'मेलो-ड्रामा' और गीतिनाट्य के दर्शक परिचित हैं। दर्शक के बैठने का स्थान कैसा होता था, इसे चित्रों (प्लेट ११) में पूरी तरह दिखा दिया गया है। इसमें इतना जोड़ देना बाक़ी है कि जो बहुत से कक्ष बने हुए हैं उनमें दर्शक जमीन पर बैठते हैं। बैठने के लिए कुर्सियों आदि की कोई व्यवस्था नहीं। बिछी हुई दरी पर मसनद लगाकर बैठने से आराम मिलता है। कुछ अधिक सौभाग्यशाली दर्शक कभी-कभी छोटे स्टोव भी पास में रखते हैं। अभिनय प्रातःकाल आरम्भ होता है (पहले उषाकाल से आरम्भ होता था) और संध्या को काफ़ी देर में

समाप्त होता है। फलतः अनिवार्य रूप से दर्शक अन्दर-बाहर आते-जाते रहते हैं। खाने-पीने का व्यापार तो चलता ही रहता है।

ऐसे मंच के लिए स्वभावतः साज-सज्जा का सामान बहुत अधिक बढ़ गया। 'सेटिंग' अब केवल सांकेतिक ही नहीं रह गया, बल्कि उससे यथार्थ का पर्याप्त आभास मिलने लगा। सत्य का भ्रम उत्पन्न करने वाले सेटिंग की ओर लोगों का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा। और जापानियों ने पृष्ठ-भूमि को तत्काल परिवर्तन करने के लिए घूमने वाले रंगमंच का आविष्कार कर लिया। पहिले इस प्रकार के मंच गुड़ियों के खेल के लिए बनते थे। युरोपीय नाट्यशालाओं के घूमने वाले रंगमंच के निर्माण का विचार बहुत बाद में आया। यद्यपि नाटकों के निर्देशक चीनी परम्परा के 'अदृश्य सज्जाधीक्षक' को अब भी मंच पर रखते थे, परन्तु काबुकीय रंगमंच पर नवीनता लाने और स्वाभाविक प्रभाव उत्पन्न करने के प्रयास चलते रहे। सज्जाधीक्षक तो आज भी मंच पर प्रवेश करता है और चला जाता है। युरोपीय नाट्यशालाओं के लिए सज्जाधीक्षक की यह क्रिया प्रायः अनावश्यक है। 'काबुकी' के अभिनेता के सामने एक ओर तो 'नो' नाटक के अभिनेताओं की कठोर रूढ़िवादिता का उदाहरण था, दूसरी ओर उनकी अपनी नाट्यशालाएं थीं जिनमें मौलिकता और नवीनता तथा सनसनी के लिए पर्याप्त स्थान थे। इस प्रकार 'काबुकी' नाटक का अभिनेता अपने को एक द्विधा में पाता था। एक ओर अभिनय में असह्य रूढ़िवादिता थी, दूसरी ओर स्वाभाविकता। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दो प्रकार की विचार-धारा के वर्ग विकसित होने लगे। एक वर्ग एक आदर्श को स्वीकार करता था, दूसरा वर्ग दूसरे आदर्श को। फिर भी सम्पूर्ण जापानी अभिनय-कला को (बीसवीं शताब्दी में युरोपीय अभिनय कला के अनुकरण का प्रयोग करने तक) अयथार्थवादी, कभी-कभी रूढ़िवादी भी, मानना पड़ेगा। एक अभिनेता मृत्यु के अभिनय को इतनी देर तक खींच सकता है कि जो लोग ऐसा दृश्य देखने को आदी नहीं हैं वे ऐसे दृश्य से संत्रस्त हो उठेंगे। हो सकता है कि इधर-उधर फैले हुए या जमे हुए खून के बीच वह मृत्यु का अभिनय करता रहे परन्तु, इस अभिनय की स्वाभाविकता उस प्रकार की नहीं है जैसा कि आज के पाश्चात्य अभिनेता प्रदर्शित करते हैं। 'नो' रंगमंच पर होने वाले अभिनय के शैलीकरण से दूर 'काबुकी' रंगमंच ने जो प्रगति की है उसका प्रभाव यह है कि अभिनेताओं ने चेहरों का प्रयोग करना बन्द कर दिया है और अब वे रीत्यानुसार अपने मुख को रंग लेते हैं। परम्परागत पात्रों के मुख को पुरानी परिपाटी के अनुसार ही रंगा या चित्रित किया जाता है।' 'नो' कलाकार की भांति काबुकी कलाकार का भी नृत्य कला में दक्ष होना आवश्यक है।

हालांकि उसकी मुद्राओं पर शास्त्रीय नियमों का उतना कठोर अनुशासन नहीं है, जितना कि 'नो' कलाकारों पर है।

'नो' नाटक काव्य की दृष्टि से महान् नहीं हैं। वे तो सिर्फ़ एक साधन मात्र समझ जाते हैं। फिर भी जापान में विशेष रूप से एक लोकप्रिय नाटककार अवश्य हुआ है जिसके नाटक 'काबुकी' रंगमंच पर बहुत अधिक खेले जाते हैं। इस नाटककार का नाम है चिकामत्सु (१६६० ई०-१७२४ ई० तक)। इधर के विवेचकों ने चिकामत्सु को जापान का शेक्सपियर कहा है। इस उपाधि का समर्थन करने के पहिले हमें उन नाटकों के जो अनुवाद आज प्राप्त हैं उनसे अधिक अच्छे अनुवादों की आवश्यकता पड़ेगी। इन नाटकों का क्षेत्र वीरता-पूर्ण दुःखान्त नाटकों से लेकर मेलो-ड्रामा तक और व्यंग्य से लेकर हास्य तक है। जापान में 'नो' नाटकों के कार्यक्रम में गम्भीर से गम्भीर स्थितियों के बीच हास्य के प्रसंग आ जाते हैं। काबुकी नाटकों में सब से प्रसिद्ध नाटक वह है जिसमें सैंतालिस रोनिन की कथा कही गयी है।

सम्भवतः एक विवरण की बात यहां दे देने से हमारे दिमाग़ में यह बात अच्छी बैठ सकती है कि किस तरह 'काबुकी' नाटक में रुढ़िवादी काल्पनिकता का स्थान यथार्थवाद ले रहा है। 'काबुकी' रंगमंचों पर सधारणतया मखमली घोड़ा प्रदर्शित होता है। आपको याद होगा कि किस प्रकार चीनी अभिनेता काल्पनिक घोड़े की सवारी करता है और उछलता-कूदता रंगमंच के बाहर चला जाता है। परन्तु, जापानी दर्शकों के लिए इतना काफ़ी नहीं था; इसलिए काबुकी मंचों के लिए घोड़ा तैयार किया गया जो दो साधारण कलाकारों के चार पांव के सहारे खड़ा होकर मंच पर चलता फिरता है। इन कलाकारों के शरीर और सिर एकदम सत्य और सजीव मालूम पड़ने वाले जानवर के शरीर में छिपा लिये जाते हैं। यह जानवर दुलत्ती मारने, कूदने और दुलकी चलने की समस्त कला को जानता है। ऐसे कलाकार हैं जो घोड़े की टाँग बनने में दक्षता प्राप्त कर चुके हैं। मखमल से ढँका यह जानवर समस्त काबुकी रंगमंचों पर पाया जाता है। यह इन रंगमंचों की यथार्थवादिता का प्रभाव है। जापान के 'काबुकी' रंगमंच का स्थान काल्पनिक रंगमंच और पश्चिम के चित्रमूलक रंगमंच के ठीक बीचो-बीच है।

जापान में एक तीसरी महत्वपूर्ण नाट्य-शाला भी है। परन्तु यह इतनी—'विशिष्ट' है कि इसके सम्बन्ध में यहां मैं एक वाक्य से अधिक नहीं कहना चाहता। 'गुड़िया घर' अथवा कठपुतली नाट्यशाला इस देश में सदियों से प्रचलित रही है। चिकामत्सु तथा अन्य महत्वपूर्ण नाटककारों ने इन गुड़ियों के लिए जितने नाटक लिखे उतने 'काबुकी'

कम्पनियों के लिए नहीं; यद्यपि बाद में इनके कठपुतली नाटक काबुकी नाट्यमंडलियों द्वारा अपना लिये गये। कठपुतली रंगमंच और काबुकी कलाकारों में इस प्रकार का आदान-प्रदान सदैव होता रहा। कहा जाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से कठपुतलियों का नाच पहिले प्रारम्भ हुआ और 'काबुकी' नाटक बाद में। परन्तु संगीत, कठपुतलियां और गीत-कथा एक साथ ही मनोरंजन के कार्य-क्रम में रख लिये गये। यह बात सोलहवीं शताब्दी में हुई और तब से कठपुतलियां लोकप्रिय हो गयीं। जापान में कठपुतलियों के अभिनय को मनोमोहक और सुन्दर बनाने के लिए तथा तत्सम्बन्धी कविताओं को मनोहारी बनाने के लिए जितना प्रयास किया गया उतना युरोप में कभी नहीं किया गया। हमें जापान की कठपुतलियों के अभिनय की तुलना पंच 'जुडी' के अभिनयों से या पुराने इटैलियन कठपुतलियों की (जो मूल रूप में यूनानी और रोमन थीं) हीन अनुवर्ती कठपुतलियों से नहीं करनी चाहिये। फिर भी निश्चित रूप से हम यह कह सकते हैं कि जापान में कठपुतलियों की रंगशाला जितनी विषद और पूर्ण बनी और उसने दर्शकों के सौन्दर्यमूलक विचारों के साथ जितनी अच्छी तरह सामञ्जस्य स्थापित किया, वैसा युरोप में कभी नहीं हुआ। परम्परागत उत्कृष्ट कौशल, सजावट सम्बन्धी सामञ्जस्य की पूर्णता, अमूर्त कला के प्रति स्नेह, छोटी से छोटी वस्तु को भी सुन्दर बना देने की कला से प्राप्त आनन्द—इन सब तत्वों ने मिलकर जापान की कठपुतली नाट्यशाला को संसार में सबसे अधिक निपुण और सर्व-समादृत बना दिया है। परन्तु आज भावनाओं की गहनता से भरे जिस नाटक और मानव कलाकार के बीच घनिष्टता का सम्बन्ध स्थापित हो चुका है, उससे इस विशिष्ट रंग-मंच का बहुत दूर का सम्बन्ध है।

जावा में नाट्य-आन्दोलन अब भी है। परन्तु वह प्रायः पूरी तरह कठपुतलियों के आविष्कार से ही प्रभावित है। इसके साथ ही छाया-चित्रों का भी एक रंगमंच जावा में है। यह रंगमंच अति प्राचीन, प्रायः प्रागैतिहासिक, है। इसमें कठपुतियां ही अभिनय करती हैं, परन्तु मंच पर उनका छाया-चित्र अभिनय करता प्रतीत होता है। यहाँ नृत्य–कलाकारों का भी एक रंगमंच है। इनका अंग-संचालन कठपुतलियों के अंग-संचालन जैसा ही है—बिलकुल वैसा ही सधा-बंधा, यांत्रिक। इस प्रकार कम से कम एक देश ऐसा मिलता है जिसने अपनी अनुकरणात्मक अभिनय कला का, प्रकृति की अनुकृति करने वाले मानवों अथवा आत्म-प्रेरणा से उत्पन्न नृत्य से नहीं सीखी, वरन् उसने उस पुतली से इस कला को सीखा जिसका निर्माण आरम्भ में मनुष्य की प्रतिकृति से हुआ था। प्राच्य रंगमंच के सम्बन्ध में हमारे विचार की अन्तिम श्रृंखला यहीं समाप्त होती है। यह एक ऐसा रंगमंच है जिसका विकास

एक विचित्र प्रकार से हुआ है। यह विकास-क्रम सीधा नहीं, घुमावदार है, रीत्यानुसारी है। इसका अध्ययन अत्यधिक स्मरणीय है। प्राच्य रंगमंच प्रयोजन-पूर्ण अयथार्थ तथा रीत्यानुसारी नाटकीय सौन्दर्य का अद्भुत् प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर छोड़ता है।

जावा की कठपुतलियां (ओटो होवर कृत जावानिशे स्खातेनस्पीले।)

अध्याय ६

चर्च और रंगशाला

"प्रधानतः रंगमंच रतिदेवी का पवित्र मन्दिर होता है। वास्तव में इस प्रकार के नाटकों का इसी रूप में संसार में अभ्युदय हुआ। बहुत प्रारम्भ में मानव नैतिकता को दृष्टिगत रखते हुए जो प्रतिवन्ध या निषेध लगाये गये उन्होंने अन्य वस्तुओं की अपेक्षा रंगशाला के विनाश में अधिक कार्य किया क्योंकि पथभ्रष्टता के क़ारण उनके सम्मुख वे पहिले से ही बहुत बड़े ख़तरे थे। प्रत्येक बुराई के गढ़ का निर्माण करके पाम्पे महान् ने, जो अपने रंगमंच से ही केवल कम था, इस डर के कारण कि गुण-दोष निरीक्षक एक दिन उसके विचारों पर दृष्टिपात करेंगे, रंगमंच के ऊपर रतिदेवी का मन्दिर बना दिया और कहा, 'उसके नीचे हम लोगों ने प्रदर्शन के लिए कुर्सियों की पंक्तियां बना दी हैं।' इस तरह उसने मंदिर के नाम पर इस घृणित कार्य को ढक दिया और अंधविश्वास-द्वारा नियम से बच निकला। दुराचार और अंग-थिरकन से सम्बन्धित जो भी चीज रंगमंच के लिए विशिष्ट और आवश्यक थी उसको वे पवित्र करने के लिए रतिदेवी और बाकुस के कोमल स्वभाव को अर्पित कर देते हैं। इनमें से रतिदेवी अपनी वासना के कारण दुराचारिणी और दूसरा अपनी लम्पटता के कारण दुराचारी है। जिस समय ये चीज़ें वंशी, संगीत और तंतुनिर्मित वाद्यों से की जाती हैं उस समय सूर्य, विद्या देवी, सरस्वती तथा बुद्ध इनके संरक्षक होते हैं। ईसाइयो! तुम्हें उन चीज़ों से अवश्य घृणा करनी चाहिए जिनके आविष्कारकों को घृणा के अतिरिक्त तुम कुछ भी नहीं कर सकते...

"इसी तरह हम लोगों को चरित्रहीनता को भी प्यार न करने का आदेश है। इस ढंग से हम लोग उस रंगमंच से वंचित कर दिये गये हैं जो चरित्रहीनता का घर होता है और जहां उस चीज़ के अतिरिक्त जो कहीं भी स्वीकृत नहीं होती, कुछ भी स्वीकृत नहीं किया जाता...। मनुष्यों की वासना की शिकार वेश्याएं रंगमंच पर लायी जाती हैं। उन

नारियों के बीच, जिनसे अलग रहने की वे अभ्यस्त होती हैं उन्हें बहुत दीन-हीन होना पड़ता था। सीनेट तथा सभी लोगों के लिए यह लज्जित होने की बात है। इस तरह की औरतों को, जो अपनी चारित्रिक मर्यादा को नष्ट करती हैं, अपने कार्यों के कारण जनता के सामने लज्जा से कांप जाना चाहिये। कम से कम वर्ष में एक बार तो उन्हें इस प्रकार लज्जित होना ही चाहिये...

"न केवल यही, अपितु प्रत्येक प्रदर्शन में पुरुषों और नारियों-द्वारा बहुत अधिक सज-बज कर, वस्त्राभूषण धारण करके, उपस्थित होने से बढ़ कर कोई भी दूसरा अपराध नहीं है। भावनाओं की एकरूपता तथा आपसी सहमति एवं असहमति, विचार-विनिमय, के कारण उनमें जो समागम और मेल-मिलाप होता है उससे उनकी काम-वासना प्रज्ज्वलित हो जाती है। अन्तिम रूप में प्रत्येक व्यक्ति, जब वह प्रेक्षागृह में प्रविष्ट होता है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सोचता कि वह लोगों को देखे और लोग उसको देखें। यह कैसी बात है कि लोग प्रभु के गिरजाघर को छोड़ कर शैतान के घर चले जायं, स्वर्ग से (जैसा कि बड़े बुजर्गों ने कहा) सुअर-बाड़ा में चले जायं?

"इस तरह के व्यक्ति, जो इसमें जाते हैं, क्यों इस बात से भयभीत नहीं होते कि कहीं उनमें शैतान का प्रवेश न हो जाय? क्योंकि इस तरह की घटना घट चुकी है। प्रभु इस बात का साक्षी है कि एक महिला रंगशाला में गयी और उसे शैतान का शिकार होना पड़ा। जब उस अपवित्र आत्मा को अपसरण-विधि के अन्तर्गत इसलिए बहुत दबाया गया कि उसने ईसाई धर्म में विश्वास करने वाली महिला पर आक्रमण करने का साहस किया था, तो उसने साहसपूर्वक कहा—'मुझे यह कार्य करने का अधिकार था क्योंकि मैंने उसको अपने स्थान में पाया।' यह भी पूरी तरह विदित है कि एक दूसरी औरत ने भी उस रात को जब उसने एक दुःखान्त नाटक के नायक को देखा था, सोते समय स्वप्न देखा कि कोई कपड़ा हिलाकर उसे उस नायक के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने के कारण फटकार रहा है। और यह कि वह औरत पांच दिन बाद इस संसार में न रही...

"इस अपवित्रता के गढ़ में फंस जाने पर तुम क्या करोगे? सोचो, तुम्हारे साथ स्वर्ग में क्या बर्ताव होगा? तुम यह विश्वास नहीं करते कि इस संकट की घड़ी में, जब शैतान चर्च के विरुद्ध तूफ़ान उठा रहा है, सभी फ़रिश्ते स्वर्ग से नीचे देख रहे हैं। वे इस बात पर नज़र रखते हैं कि किसने पापयुक्त बातें कही हैं, किसने सुनी हैं और किसने अपनी ज़बान और कानों से ईश्वर के विरुद्ध शैतान की सहायता की है? क्या तुम ईसा के इन शत्रुओं की क्रीड़ास्थली से नहीं भाग खड़े होगे, महामारी की जगह से.......?"

यह उद्धरण टरटूलियन कृत 'डी स्पेक्टाकुलिस' से लिया गया है। इसके अनुवादक रेवेण्ड सी० डाजसन ने इसे 'पब्लिक शो' कहा है। यह पवित्र चीज़ लेखक के ईसाई धर्म में परिवर्तित होने के ठीक बाद १९८ ई० के करीब लिखी गयी थी। उस समय वास्तव में रोमन रंगशालाओं में बहुत ही बुराइयां थीं, जिन पर क्रोध उत्पन्न हो सकता था। इस ग्रंथ के वर्णनात्मक अंश तत्कालीन क्लासिक रंगमंच के पतन की तरज़ सरलता से हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। साथ ही उनका इस बात के लिए भी महत्व है कि वे ईसाई पादरियों की मानसिक स्थिति और रंगशाला के संदर्भ में शैतान के डर तथा भगवान् के भेजे फ़रिश्ता-गुप्तचरों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। यह सही है कि यह उद्धरण इस तरह की छोटी पुस्तक के लिए बहुत बड़ा मालूम होता है। पर हमें यह समझ लेना चाहिए कि इन थोड़े से अंशों में युरोपीय रंगमंच का शताब्दियों का इतिहास, एक हज़ार वर्ष का इतिहास, निहित है।

वास्तव में 'टरटुलियन' ने रोमन रंगमंच की बुराइयों को ही नहीं वर्णित किया है अपितु उन सभी साधनों पर भी प्रकाश डाला है जिनके द्वारा चर्च रंगमंचीय कला का गला घोंटता रहा तथा आने वाले ८०० वर्षों तक उसको फिर से पनपने नहीं दिया। मनुष्य की आत्मा के प्रति प्यार एवं सहनशीलता से उत्पन्न औचित्यपूर्ण उत्साह तथा ईसाइयों की शैतान के कार्यों के प्रति घृणा की बात ध्यान देने योग्य चीजें हैं। जीवन के आनन्द को शंका की दृष्टि से देखने की बात और ऊपर से भोले दिखलायी पड़ने वाले तथा सामाजिक रूप से एकत्र होने वाले व्यक्ति भी ध्यान देने योग्य हैं। परन्तु प्रधानतः ध्यान देने योग्य वह तरीक़ा है जिसके द्वारा पाठक को रंगशाला में शैतान देखने के कारण मरने वाली या शैतान द्वारा पकड़ ली जाने वाली औरत के बारे में चेतावनी दी जाती है। बाद के युग में भय चर्च का सबसे बड़ा हथियार रहा है। वह एक ऐसा हथियार रहा है जिसके द्वारा नाटक की हत्या की गयी है। इसके अनुसार जो पुजारियों की अवहेलना करता है उसके लिए मृत्यु के पश्चात् शैतान और नरक का डर बना रहता है। यही वह चीज़ है जो नाटक और कला के प्रति प्यार को समाप्त कर देती है।

किसी नवीन रंगशाला के अभ्युदय के पहिले प्राचीन रंगशाला की चिरकालीन अनुपस्थिति के वास्तव में दूसरे कारण भी हैं। ये कारण सामाजिक परिस्थिति तथा अत्याचारी उत्तरी जातियों के बारम्बार आक्रमण-जन्य रोमन साम्राज्य के पतन में निहित हैं (वे इतने अत्याचारी नहीं थे जितने रोम निवासी, बहुत सी चीजों में थे। परन्तु वे लोग कला और नाटक के क्षेत्र में अप्रशिक्षित थे।) इस सबके बावजूद यह ईसाई धर्म ही था जो इस कला का सबसे अधिक विरोधी था तथा जो इससे सतत संघर्ष

करता था। इसी ने कला को, जो 'डायनिशस' के पुजारियों के लिए पवित्र वस्तु थी, उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया।

यदि आप टरटुलियन की पुस्तक अन्त तक पढ़ें तो पुस्तक की समाप्ति पर आप ईसाई जगत् को तमाशे के रूप में पा सकते हैं, या उसमें एक भविष्यवाणी देखने को मिलेगी कि मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर रंगशालाओं का क्या रूप होगा ?

"क्या आप मुझे इनके लक्ष्य और रंगशालाओं के लिए एक आह भर लेने देंगे ? . . .देखिए, उस अपवित्रता को देखिए जो चारित्रिक पवित्रता-द्वारा उठा कर फेंक दी गयी है। उस अविश्वास को देखिए जो विश्वास द्वारा मार डाला गया है, उस निर्दयता को देखिए जो दया द्वारा कुचल दी गयी है तथा उस लम्पटता को देखिए जो विनम्रता द्वारा दबा दी गयी हैं. . .परन्तु वह कौन-सा नाटक है जो होने वाला है ? वह है, प्रभु का आगमन, जो आत्मस्वीकृत है, गौरवशाली तथा विजयी है। देवताओं की वह प्रसन्नता क्या है ? उदीयमान साधुओं का प्रताप क्या है ? अभी दूसरे नाटक भी हैं : वह न्याय का अंतिम, शाश्वत दिन,. . .प्रभु के नाम का भी विरोध करने वालों का उस भयानक, अतिशय अपमानजनक अग्नि में जलना...यह उस अग्नि से अधिक तेज है जिसे उन्होंने ईसाइयों के विरुद्ध जलाया था. . .वे प्रबुद्ध दार्शनिक अपने ही शिष्यों के सामने लाल हो रहे हैं, उन्हीं के साथ जल रहे हैं. . ."

यह एक सच्ची भविष्यवाणी है। संसार के दूसरे बड़े नाटक का एक प्रिय दृश्य, जो कि यथार्थतापरक होगा; जिसमें अपराधी व्यक्ति नरक में ढकेल दिया जा सकेगा। इसी के साथ प्रभु के आगमन तथा ऋषियों के तेज प्रताप का गौरवगान होगा और इसके बाद नैतिकतापूर्ण नाटक होगा जिसमें पापी का बध, 'आस्था तथा विश्वास द्वारा पाप का अन्त' करना ही नाटक की परिणति और अभिप्राय होगा। टरटुलियन ने मुहाविरे के रूप में इस ईसाई चमत्कार को प्रस्तुत किया है, परन्तु एक हजार वर्ष बाद चर्च के पुजारी उसी चीज़ को, जिसका उसने अपने शब्दों में वर्णन किया है, रंगमंच पर प्रस्तुत करने लगेगें।

रोमन रंगमंच की अन्तिम यादगार के रूप में यह बात ध्यान देने योग्य है कि चौथी शताब्दी के एक प्रसिद्ध पादरी ने जिसका नाम 'आरियस' था मूर्तिपूजकों के दल के कामुक लोगों से लड़ने के लिए ईसाई रंगशाला की एक योजना बनायी। परन्तु इसका कोई भी स्पष्ट फल नहीं हुआ—शायद इसलिए कि 'आरियस' अपने धर्म-

विरोधी सैद्धातिक विचारो के कारण धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया। रोडमन रगशाला (जो उस समय न केवल प्राचीन राजधानियो और उपनिवेशो के लिए अपितु कस्तुननिया और पूर्वी साम्राज्य के लिये भी आनन्द की वस्तु थी) ईसा के जन्म के पश्चात् पाचवी और छठी शताब्दी तक जीवित रही, और उसके बाद बढते हुए शक्तिशाली चर्च के
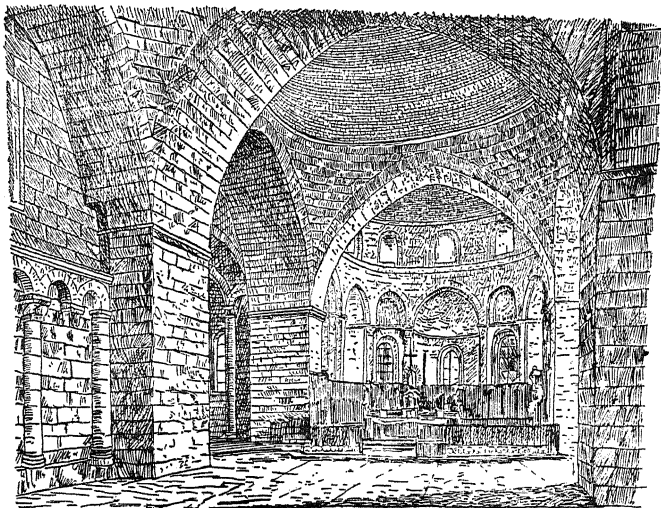
एक आदर्श रंगमच के रूप मे मध्ययुगीन चर्च को पूजा वेदी। सोलिगनक, लिमोसिन, मे लगभग ११०० ई० मे निर्मित रोमनेस्क चर्च।

साथ सघर्ष होने के कारण समाप्त हो गयी। बाद के कुछ पादरियो ने तो इन पतित रगशालाओ के प्रभाव को ही रोम निवासियो ने पतन का कारण बताया। रोमन रगमच से सम्बन्धित एक सकेत समकालीन एक पत्र मे मिलता है, जो ५३३ का है।

इसके बाद हमारे सामने वे भ्रमणकारी अभिनेता आते है जो राजदरबारो, व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद की जगहो और कभी-कभी चौराहो तथा सडको आदि पर अपने पुराने अनगढ नाटको को प्रस्तुत करते थे और फिर आगे बढ जाते थे, परन्तु वे बहुत लम्बे सुखान्त नाटक लिखने वाले नही थे। वे पूरे नाटक को उन रूपो मे प्रस्तुत करते थे जिनमे बाजीगरी, चाकू फेकना, रस्से पर चलना आदि होता था—, वे सिखाये

हुए भालू को आकृति-प्रदर्शन के लिए लाते थे। कोई भी यह ठीक तरह नहीं कह सकता कि अभिनय किस सीमा तक पतनोन्मुख हुआ तथा किस तरह संकुचित रूप वाला नाटक अपनी अन्तिम गति तक पहुँचा। इसके पहिले कि प्राचीन रीति-रिवाज पूर्णरूपेण समाप्त हो जाते, आमोद-प्रमोद के क्षेत्र में एक नये तत्व का अभ्युदय हुआ; यह तत्व था कवितामयी कहानियों का सुनाना। यह न केवल दक्षिण अपितु उत्तर और टयुटोनिक जातियों में भी प्रचलित था। सही अर्थ में बिना नाटकीय हुए ही—प्रदर्शित कहानी का रूप धारण किये बिना ही तथा अभिनेताओं के शरीरधारी न होते हुए भी इसने नाटकीय घटनाओं का व्यक्तिगत रूप में वर्णन करने की प्रक्रिया को जीवित रखा। अपनी अच्छी स्थिति में यह एक स्वीकृत कला बन गयी। यह गंधर्व प्रवृत्ति थी। इसने प्रतिफल स्वरूप ऐसे साहित्य को जन्म दिया जो प्रारम्भिक मध्यकालीन युग का एक प्रसिद्ध अवशेष था। इसके अन्दर 'चैनसन डी गेस्टे', 'दी रोमंस' तथा 'कांटेस' आदि का जन्म हुआ; अपने बुरे समय में इसने दयनीय बाजीगरों तथा बहुरूपियों को एक पतनशील तत्व के रूप में जन्म दिया, जिन्होंने आदि समय तक अनुकृति और साहित्य के अस्पष्ट सम्बन्ध को बनाये रखा।

छठीं से बारहवीं शताव्दी के अन्दर तक सच्चे रूप में भ्रमण करने वाले अभिनेताओं का इतिहास समाप्त हो गया। परन्तु इसके पहिले कि चर्च रंगमंच और अभिनेताओं के सहित रंगशाला को कुचलने में सफल होता संगीत तथा गाना सुनाने वालों का इतिहास प्रारंभ हो जाता है। इसी के साथ जर्मन 'स्काप' का भी उल्लेख मिलता है। उस अभिनेता ने अपने को सामुदायिक लोकगीतों से अलग करके प्रतिष्ठित दरबारी गायक के रूप में बदल लिया। फ्रांस, इंगलैण्ड और जर्मनी में प्रसिद्ध गायक और और गाना सुनाने वालों के कार्य-कलाप देखने को मिलते हैं—ऐसे कार्यकलाप जो चर्च द्वारा, अब भी अच्छे और बुरे विदूषक में भेद न करने के कारण निषिद्ध-घोषित राज-दरबारों तथा सामन्ती महलों के इतिहासों में मिलते हैं।

नाटक, दरबारी गायकों और गंधर्वों के महत्व को 'ट्राबोडयोरस' और 'जोक्यूलेटरेस' के गानों में सरलता से देखा जा सकता है। हाँ, उन्हें आवश्यकता से अधिक नाटकीय महत्व देना अनुचित है। परन्तु ये विदूषक एक कड़ी स्वरूप तथा इससे भी आगे की कुछ चीज़ हैं। यह सुनिश्चित है कि घटना के समय एक शांत गायक सच्चे नाटकीय ढंग से एक चरित्र की भूमिका प्रस्तुत करता था। उन कल्पित कथाओं में ऐसे भी गद्यांश हैं जिनका रूप ठीक संवादों जैसा है। परन्तु ये नियम के अपवाद-स्वरूप हैं। इस अंधकार युग में हम राजदरबार के गायकों—चारणों को ही रंगशाला का मोहक प्रतिरूप समझ सकते हैं। ये उन चीज़ों को गाते या अलापते थे जो किसी दूसरे काल में

नाटक की सामग्री रहे। ये चीज़ें वीरता के कार्यों, पौराणिक वीरता तथा मनुष्यों और नारियों के प्यार से सम्बन्ध रखने वाली थीं। 'करसर मुंडी' चौदहवीं शताब्दी की एक कविता है। इस कविता में उनकी ये बातें पुंजीभूत हैं :

> **लोग हंसी मज़ाक की बात सुनना पसन्द करते हैं**
> **और विभिन्न शैलियों में रोमांस की गाथाएं पढ़ते हैं...**
> **कि कैसे सम्राट शार्लमेन और रोलैण्ड ने**
> **सारसियनों से युद्ध किया और अपनी रक्षा की,**
> **वे त्रिस्त्रेम और प्रिय एज़ीउल्ट की कथा पढ़ते हैं**
> **कि कैसे उनका प्रथम प्रेम मिलना हुआ।**
> **सम्राट जान और इसोम्ब्रास के सम्बन्ध में**
> **नाना प्रकार की कथाएँ कहते हैं,**
> **नाना रागों के गीत गाते हैं—**
> **अंग्रेजी, फ्रेंच और लैटिन में।**

जब नाचघर रूपी रंगमंच नहीं बन पाये थे तब हम लोग यह देखते हैं कि बाजीगर और उसका वीनवादक बिना किसी सूचना के महल के सामने गाते तथा तमाशा दिखलाते हुए आते; इसके बाद अन्दर बुलाये जाते। खाने के बाद हाल के एक कोने में, जब राजा और राजकुमार (जो पढ़ नहीं सकते या यदि पढ़ सकते थे तो कठिनाई से) तथा उनकी स्त्रियां और अतिथि गाने या कल्पित कथा को, 'रोमेन' डी ला रोज' को सुनने के लिए बैठ जाते। तब वह अपना कार्य प्रारंभ करता था। उस समय का यह विशिष्ट प्रदर्शन होता था तथा श्रोतागण भी विशिष्ट ही होते थे।

ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में चारणों की गायन-कला का चरम उत्कर्ष हुआ। इस समय तक वास्तविक रंगमंच चर्च की सेवा से अपने को अलग न कर सका था।

यूरोपीय रंगशालाओं के अंधकार युग की एक बात ध्यान देने योग्य है—यह इसलिए कि हम लोग कालक्रम का निर्दयतापूर्वक हनन न कर सकें। यह एक ऐसा काल था जिसमें ईसाई लोक-प्रथाओं और लोक-नाटकों के रंगमंचीय स्वरूप का किसी न किसी रूप में अभ्युदय हो गया था। जब क्रिश्चियनों ने अक्रिश्चियन राष्ट्रों पर विजय प्राप्त कर ली तब भी चर्च उन मनुष्यों की, विनोदशील मनोरंजनपरक भावना को नहीं मार सका जिसको उसने धर्म-परिवर्तन तथा विजय द्वारा वशीभूत कर लिया था।

बुद्धिमानी-वश चर्च ने समझौता करके अपने अन्दर न्यूनतम नास्तिक विचारों तथा रीति-रिवाजों का समावेश कर लिया। परन्तु प्राचीन जातियों के नृत्यों, आनन्ददायक प्रदर्शनों तथा मूर्तिपूजकों के अंध विश्वासों के विरुद्ध उसने असफल संघर्ष किया, इसलिए कि नयी मदिरा में उफ़ान लाया जा सके या नये खेत को उपजाऊ बनाया जा सके। ईसाई धर्म की स्थापना से लेकर, जो सभ्य युरोप का स्वीकृत धर्म था, पुनरुत्थान काल दसवीं शताब्दी तक लोक नाटकों को उखाड़ फेंकने की भावना के उल्लेख अब भी मौजूद हैं।

सातवीं, नवीं अथवा ग्यारहवीं शताब्दी के नाटकीय तत्वों के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए इनका वर्णन पर्याप्त नहीं है। परन्तु ये उदाहरण अकेले नहीं हैं। इस बात के कम प्रमाण हैं कि बहुत सी जगहों पर प्राय: मनुष्य लगातार उन नृत्यों तथा शास्त्र-विधियों की तरफ़ आकर्षित हो रहे थे जिनको चर्च ने जंगली कह कर प्रतिबंधित कर दिया था। प्रचलित मेलों में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि वे ऋतु परिवर्तन के समय तथा फ़सलों के पकने के महीनों में स्वाभाविक रूप से सक्रिय होते थे जैसा कि प्राचीन समय में होता था। नृत्य इस समय भी लोक-प्रदर्शन की आत्मा-स्वरूप रहा है। नयी मदिरा आस्वादन के लिए कोई रात या दिन निर्धारित करना आवश्यक था। दो तरह के नृत्यों का प्रचलन अत्यधिक था। उनमें से एक था अग्नि के आसपास का समूह-नृत्य या 'मेपोल' जो डायोनिशस की वेदी के पास खड़े होकर प्रस्तुत किया जाता था तथा दूसरा था सुसज्जित होकर गांव की सड़क या खेतों में प्रस्तुत किया हुआ लोक-नृत्य। इसमें नृत्य करने वाले अभ्यस्त होते तथा चेहरा लगा कर विनोद पैदा करते थे, कुछ स्थितियों में गायन भी करते थे। उस समय नेता और मंडली वालों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर देने की व्यवस्था रहती थी। वास्तव में यह उस समय के अनुरूप जब पेपसिस ने शरीर-रहित अभिनेता को प्रस्तुत किया और जिसके शीघ्र बाद ही एशीलस और सोफ़ीक्लीज ने भी यही किया। हम लोग १२वीं और १३वीं शताब्दी के लोक विचारों से यह अनुमान कर सकते हैं कि यदि उस समय नाटकों ने जन्म न लिया होता तो शीघ्र ही एक पूर्णरूपेण धर्मनिरपेक्ष नाटक का स्वतंत्र रूप से जन्म हुआ होता। आधुनिक सुखान्त नाटकों की शृंगारप्रिय ध्वनि का नाटकीय नृत्यों में समावेश हो रहा था—ऐसे नाटक जहां लोकोत्सव तथा गंधर्वकृति एक साथ होते थे। यह भी कहा जा सकता है कि बड़े दिन के नाटकों में, जिनका जन्म चर्च में हुआ, वे गुण भी हैं जिन पर समकालीन घटनाओं का प्रभाव है। वे ऐसे गुण हैं जिनमें मूर्तिपूजा-संबंधी रीति-रिवाजों का पूर्ण रूपेण अभाव नहीं है। परन्तु हम लोगों को धार्मिक नाटकों के प्रारम्भ पर भी विचार कर लेना चाहिए। दसवीं या नवीं शताब्दी में कैथोलिक पादरियों

ने जनता के बीच ऐसे गानों को लाने पर विचार किया जो दो या उससे भी अधिक गायकों द्वारा गाये जाते थे। अनपढ़ लोगों के धार्मिक विश्वास को सुदृढ़ बनाया जाय, इस दृढ़ धार्मिक लक्ष्य को लेकर उन्होंने किसी स्थिर गायक द्वारा घटना लैटिन में कहे जाने की जगह, जिसको कि हज़ारों में एक भी नहीं समझ सकता, जीवित अभिनेताओं के माध्यम से एक चित्र प्रस्तुत करने की योजना बनायी।

रीति-रिवाज प्रचलित रहे। युगों तक समझ और सुबुद्धि की दिशा में चर्च द्वारा कोई भी सहायता नहीं पहुंचायी गयी। विस्तृत अर्थ में स्वयं 'अंतिम भोज' ही नाटकीय रूप सामने आया। पढ़ने, गाने तथा अभिनय करने वालों के तीन वर्गों में सम्पूर्ण पूजार्चन विभक्त कर दिया गया। विशेष अवसर पर पूर्ण अभिनीत उपकथा भी प्रस्तुत की जाती थी।

प्रारम्भ में दृश्य बहुत साधारण होता था। अधिकार-प्राप्त एक पादरी समाधि के पास बैठता और तीन दूसरे इस तरह आगे बढ़ते थे जैसे किसी वस्तु की उन्हें तलाश हो।

"इस समाधि में किसे ढूंढ़ते ओ ईसा के भक्त ?" एक कहता।

"जो सूली पर चढ़ा, नज़ारथ के ईसा को।" तीनों कहते।

"वह तो यहां नहीं है, अपनी भविष्यवाणी के अनुसार, चला गया वह स्वर्ग लोक को।

जाओ, जाकर घोषित कर दो, मृतकों के बीच से उठकर चला गया वह।"

प्रार्थी 'ओ हो हो, प्रभु तो उठ गये' कहते हुए गाने वालों की मंडली की तरह बढ़ते; समाधि का संरक्षक कहता—'आओ और उस स्थान को देखो' और पर्दा उठा कर दिखलाता कि गुम्बद खाली है। वहां गीत गाया जाता—'प्रभु समाधि से उठ कर चले गये' और फिर मंत्र पाठ होता था—'प्रभु हम तेरा यश गाते हैं।' और इस अवसर पर सभी घंटे एक साथ बज उठते थे।

इस तरह धार्मिक परिषद् ईसा की समाधि पर तीन परियों और फ़रिश्तों की घटना को देख पाती थी। इस विशिष्ट रूपक के कई विभिन्न स्वरूप हैं जो दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होते हैं। जैसा कि दर्शाया जा चुका है विनसे पेस्टर गिरजाघरों के रूपक अलंकारों में से एक का पूर्ण "रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण" प्राप्त हो चुका है।

सही अर्थ में देखें तो अनन्त काल से चली आने वाली चर्च की सेवाओं के अन्तर्गत बहुत से ऐसे तत्व हैं जिन्होंने आचारयुक्त नाटकों को जन्म दिया है। ये नाटक उत्सव की वस्तु, रंगों से युक्त, संगीतमय और संवादमय होते तथा इनमें बारी-बारी गाये हुए

गाने तथा दो गायकों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप गाये हुए गाने भी होते थे। परन्तु पादरियों द्वारा अभिनीत किये गये चरित्रों के बीच संवादों का यह प्रारम्भ सही अर्थ में चर्च के अन्दर रंगशाला के जन्म पर प्रकाश डालता है। विद्वान लोग जनता के बीच प्रस्तुत घटनाओं को कर्मकाण्डी नाटक कहते हैं। ये धार्मिक विधि या क्रिया के अंग हैं; ये रहस्यमय नाटकों या धार्मिक विषय-संबंधी नाटकों की दिशा में प्रथम चरण हैं।

मास का एक उडकट, जिसमें नाटकीय दृश्य उत्कीर्ण हैं। १४९९ ईसवी की एक पुस्तक में यह रेखा चित्र है।

दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक की बहुत ऐसी पुस्तकें हैं जो अभिनय-सम्बन्धी शब्दों और निर्देशों से भरी हुई हैं। भाषा लैटिन से बदल कर लैटिन और देशी भाषा की खिचड़ी हो गयी तथा अंत में उसने फ्रेंच, जर्मन या दूसरी प्रचलित भाषाओं का स्थान भी ग्रहण कर लिया। गाने या अलापने की जगह भाषण होता था। एक ही घटना, कई घटनाओं में विभक्त हो जाती थी। 'अव ईस्टर ग्रूप' इन अभिनेत्रिओं में रागात्मकता के लिए पूरी सामग्री एकत्र करता था, 'क्रिसमस ग्रूप' द्वारा ईसा मसीह के अवतार तथा उस वातावरण की तथा 'एसेंसन ग्रूप' द्वारा उनके पुनर्जीवित होने की घटनाएं प्रस्तुत की जाती रहीं। ये कहानियाँ जहां तक सम्भव हो सकता था सीधे 'बाइबिल' से ली गयी हैं—ये कुछ समय तक बाद की भ्रष्ट कहानियों के प्रचलित होने के पूर्व भी रहीं। प्रथम अभिनीत घटना की सफलता के बाद स्वाभाविक प्रगति का क्रम यह रहा कि खाली गुम्बद से सम्बद्ध चित्रण के बाद उस दृश्य को प्रस्तुत किया जाता था जिसमें तीन मेरियां ईसा के पुनर्जीवन को प्रदर्शित करने के लिए शव के कपड़े को फेंक देती थीं। यह तब तक चलता रहता था जब तक कि पूरी कहानी प्रदर्शित नहीं कर दी जाती थी। इतिहास में ईसा के जीवन से अधिक महत्व की करुणाजनक नाटकीय पौराणिक कथा दूसरी नहीं है।

कोई भी इस बात को कहने का साहस नहीं कर सकता कि कब और कैसे व्यवस्थित धार्मिक नाटक स्वतंत्र धार्मिक नाटक हो गये। जो भी हो, प्रथम श्रृंगार-मूलक तथा रहस्यात्मक नाटक के अभिनय के पहिले पादरियों द्वारा साहित्यिक नाटक लिखने का प्रयास होता रहा। दसवीं शताब्दी में 'वासिविथ' नामक एक ईसाई तपस्विनी ने, जो कि सैन्सोनी के गैंडरसीम मठ की थी, 'टेरेन्स' के आधार पर छ: सुखान्त नाटक लिखे। ये नाटक धार्मिक विषयों पर आधारित और चारित्रिक पवित्रता से पूर्ण थे तथा ईसाई शौर्य की छाप को पाठकों के हृदय पर छोड़ने की आशा से लिखे गये थे।

टेरेन्स, उसका मूल्यांकन करने में थोड़ी सी कठिनाई अवश्य होती है, ईसाई विद्वानों तथा लेखकों की प्रिय लेखिका रही है। हो सकता है कि उस तपस्विनी ने चाहा हो कि मौलिक रूप से भ्रष्ट नाटकों को नैतिक प्रवृत्ति वाले नाटकों द्वारा पछाड़ दिया जाय। परन्तु उसकी रचना-शैली सपाट थी, उसका नाटक सम्वन्धी अनुभव त्रुटिपूर्ण था। यह प्रश्न भी किया जाता है कि क्या उसके सुखान्त नाटक उसके क्षेत्र के गैर-पेशेवर अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत भी किये गये? उसी के वराबर कम प्रभावशाली 'पैशन आफ़ क्राइस्ट' नाटक भी था जो उसी समय लिखा गया था। उसका महत्व मुख्य रूप से इसलिए है कि उसके अन्दर 'यूरीपिड्स' के नाटकों की सैकड़ों पंक्तियों का समावेश है, पंक्तियां जो कहीं और नहीं प्राप्त होतीं। ये बिखरी हुई जीवित पंक्तियां मठनिवासियों की उस सक्रियता का पता देती हैं जो कि शास्त्रीय नाटकों की अनुकृति करने में दिखायी पड़ती थीं। परन्तु यह करीब-करीब एक साहित्यिक क्रिया थी और उन नाटकों से पूर्णरूपेण भिन्न थी जो रूपक अलंकारों से निकले हैं। वास्तव में रंगशाला के इतिहास में मध्यकालीन नाटकों की शास्त्रीय नाटकों के प्रभाव से पूर्ण मुक्ति के अतिरिक्त कुछ थोड़े से ही ऐसे तत्व हैं जो आकर्षक हैं। यह प्रक्रिया उस समय हुई जब कि बहुत बड़ी नाटकीय परम्परा चल रही थी। तथा जब कि अर्द्ध-विनष्ट शास्त्रीय रंगशालाएं युरोपीय संसार में जहां-तहां मौजूद थीं।

वास्तव में रहस्य नाटकों को गिरिजाघरों में उचित तथा यथार्थ में सौंदर्यमय स्वरूप प्रदान किया जाता था। वहां पर 'हिरोड' के लिए सिंहासन तथा मिस्र तक की सड़क का रूप प्रस्तुत किया जाता था। इन साधारण व्यवस्थाओं के अन्दर वेदी होती थी तथा पूरी घटनाओं से सम्बन्धित गाने के लिए स्थान होता था। ईसा का जन्म, गड़ेरिए की भक्ति, तीन बुद्धिमान मनुष्य, हेरोड तथा नादान लोगों की हत्याएं एवं मिस्र में लड़ाई का स्वरूप भी प्रदर्शित किया जाता था। तेरहवीं शताब्दी की ओरिलियन पाण्डुलिपि में छः रहस्य नाटक साधारण रूप में मिलते हैं। ये उन चार के

अतिरिक्त हैं जो ठीक ही चमत्कारिक कहे जाते हैं। बाइबिल की कहानियों की नाटकीय उपकथाओं के स्थान पर ये ऋषियों से सम्बन्धित रचनायें हैं। बहुत ही संक्षिप्त रूप में कविता और गद्य में ये रचनाएं लिखी गयी हैं। इनमें स्पष्ट विचार यह है कि मध्यान्तर में मंत्र गाये जायं। पादरी इसके अभिनेता होते थे। उदाहरणतः 'नादान लोगों की हत्या' जैसे रूपकों में यथा अवसर समवेतगान वाले लोग भी सम्मिलित हो जाते थे।

वह जानने का प्रयत्न करना व्यर्थ है कि किस अंश तक अभिनय वास्तविक या धार्मिक था। धार्मिक नाटकों का प्रथम ध्येय था कि उन्हें अशिक्षित व्यक्तियों के लिए प्रदर्शित किया जाय। हम यहां अनुमान लगा सकते हैं कि यथार्थता की दिशा में पदार्पण बहुत पहिले ही हो गया था। शीघ्र ही नाटक, धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं के हाथ में आ गये। उस समय हम सरलता और यथार्थ के प्रभाव का विचित्र सम्मिश्रण उनमें देखते हैं। इस समय, जैसा कि शायद अनिवार्य था, यथार्थ के प्रस्तुतीकरण की भावना का आभास इस रूप में पा सकते हैं कि धर्म की वेदी पर एक मनःकल्पित तथा नियमानुसारी रंगमंच भी होता था जिसको सजाने की कोई आवश्यकता नहीं अनुभव की जाती थी। परन्तु यह मंच सिहासन रखने, नांद बढ़ाने अथवा बड़ी समाधि के लिए उपयुक्त होता था तथा थोड़ा-बहुत परिवर्तन के बाद इसे महल और स्वर्ग भी बनाया जा सकता था। यह 'सामूहिक रहस्य' का रंगमंच था, जो गिरिजाघरों में होता था। (हम यहां भौतिक रंगमंचों तथा चर्च के रंगमंचों में सादृश्य दिखलाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं कर रहे हैं परन्तु यह जान लेना चाहिए कि अवसर पर क्रियास्थान गिरिजाघरों के मध्य में बनाये जाते थे। और वहीं अभिनय भी होते थे।)

दूसरा कदम था चर्च के बाहर साधारण रंगमंचों का बनाना या चर्च के बरामदे में अभिनयस्थल का निर्माण करना। यह नाटक के लिए आदर्श अभिनय-भूमि थी जिसमें चर्च-संगीत के लिए व्यवस्था थी तथा प्रवेश करने और निकलने के छोटे-छोटे दरवाजों की भी व्यवस्था थी। पादरी ही यहां पर भी अभिनेता होते थे।

संक्रमण काल के नाटकों के उदाहरण-स्वरूप, जब कि नाटक न तो पूर्णतया धार्मिक ही होते तथा न सामाजिक, वल्कि दोनों के बीच के होते थे, फ्रांसीसी भाषा के सबसे पुराने नाटक 'आदम' का अध्ययन किया जा सकता है। विद्वान मानते हैं कि यह इंगलैंड में लिखा गया था जहां फ्रेंच भी लैटिन और अंग्रेजी के साथ ही बोली जाती थी। (प्रसंगतः यह बता दें कि अंग्रेजी का पहिला नाटक वेकफील्ड ग्रन्थावली का 'जैकोब ऐण्ड इसाड' माना जाता है। जहां प्रारंभिक धार्मिक नाटक बाइबिल के गद्यांशों से अधिक नहीं थे (जो कि लैटिन में थे।) 'आदम' में एक अपूर्ण विस्तृत कहानी पायी जाती है। इसमें पात्र भी बड़ी संख्या में होते थे। ये नाटक किसी सीमां

तक रंगमंचीय कल्पना से युक्त होते थे। यद्यपि उनमें महान् साहित्यिक गुण नहीं पाये जाते थे। इसमें एक स्थान पर निर्देश है कि ईश्वर चर्च के बाहर-भीतर आते-जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह चर्च में प्रदर्शित करने के लिए लिखा गया है और किसी विस्तृत दृश्यावली की अनुपस्थिति में प्रस्तुतीकरण के लिए अच्छी चीज़ है।

एक चर्च के उस क्षेत्र का दृश्य जहां सामूहिक गायन-वादन होता था। (हैन्स होलबीन द्वारा उत्कीर्ण चित्र का एक अंश।)

'आदम' के रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित निवेदन से यह बात स्पष्ट है कि किस सीमा तक नाटक चित्रित घटनाओं से आगे बढ़ चुका और व्यावसायिक पूर्णता तथा दक्षता तक पहुंच चुका है। आज भी कैथोलिक चर्च के उत्सव के समय जो सुन्दर रंगी हुई लकड़ियों अथवा मोम की बनी चौकियों होती हैं उनका प्रतिरूप इसी निर्देश में मिलता है।

मैं ई० के० चैंबर्स के अनुवाद से निम्नलिखित अंश प्रस्तुत करता हूं जो एक दूसरे से संबंधित हैं :

स्वर्ग उठी हुई जगह के चारों तरफ़ रेशमी कपड़ों एवं परदों से घेर कर बनाया जाता है और इस ऊंचाई तक होता है कि स्वर्ग का आदमी भुजाओं से ऊपर तक देखा जा सकता है। सुगंधित फूल और पत्तियां चारों तरफ़ लगायी जाती हैं। और गढ़े हुए पेड़ लटकते हुए फलों के साथ वहां रख दिये जाते हैं ताकि स्थान को सुकोमल बनाया जा

प्लेट १२
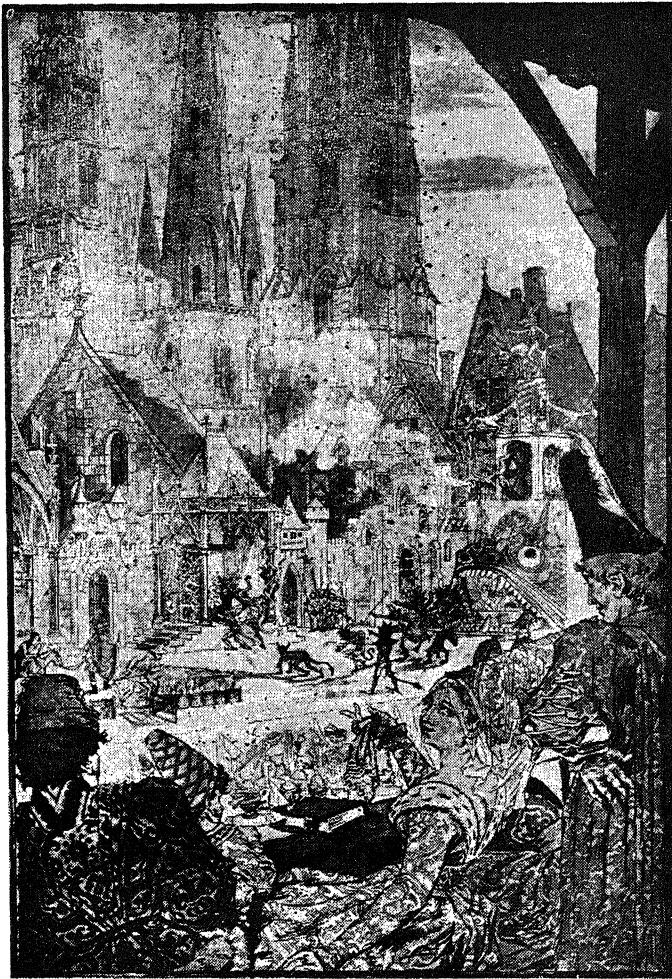
वेलेन्शीन्स पैशन प्ले, १५४७ ई० का अभिनय। कैलियो ने जो समसामयिक रेखाचित्र तैयार किया था और जिसमें एक साथ कई दृश्य मंच पर प्रदर्शित थे, उसका पुनर्रेखांकन कुछ समय पहिले ई० ग्रासेट ने किया। ऊपर वही पुनर्रेखांकित चित्र दिया गया है।
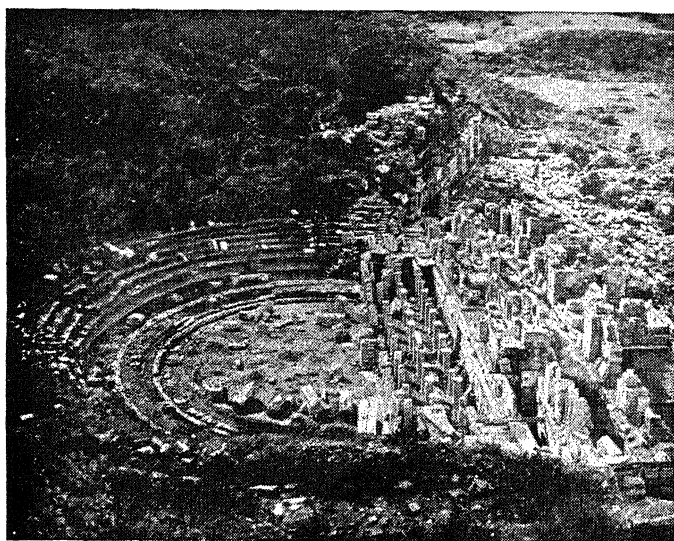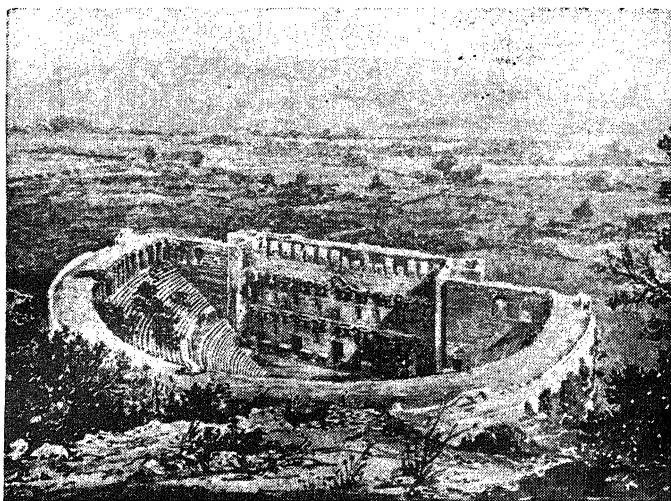
"अंधे" युगों में प्राचीन रंगशालाओं की यही स्थिति थी : दो रोमन रंगशालाएं अपनी वर्तमान् अवस्था में। ऊपर, आस्पेन्डस की रंगशाला का चित्रांकन—यही अब तक बची हुई रंगशालाओं का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। (लेंकोरोन्स्कीकृत स्ताते पैम्फीलियेन्स अण्ड पिसीदियेन्स के एक रेखांकन से)। नीचे, ऐफ़ेसस स्थित एक रोमन रंगशाला।
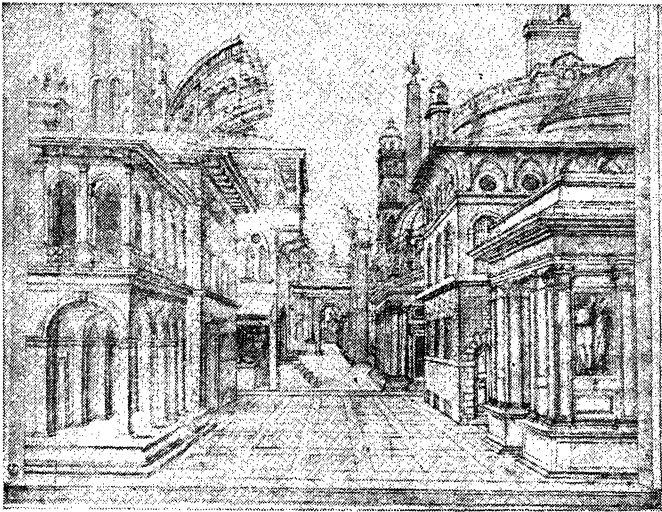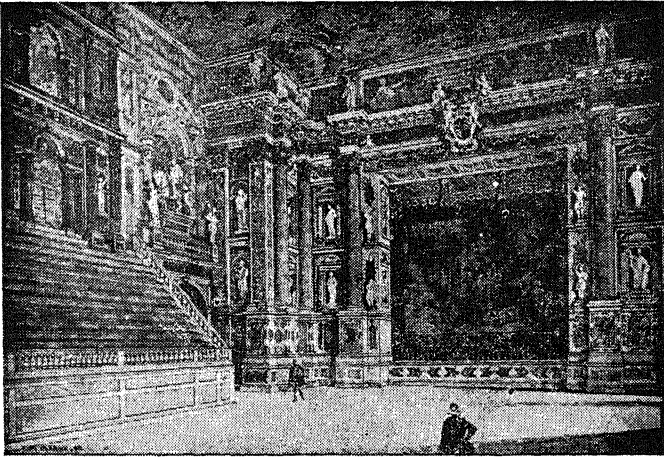
ऊपर, पार्मा स्थित फ़ारनीज थियेटर का रंगमंच और सामने का पर्दा, जैसा कि वह सामने के "प्रांगण" की फ़र्श से दिखायी देते हैं। १६१८–१६१९ में निर्मित इस रंगशाला को प्रथम आधुनिक रंगशाला माना जाता है। कारण यह है कि इसमें चौखट में लगा पर्दा है और मंच के पीछे भी पर्दा लगा है—यद्यपि प्रेक्षागृह अब भी नृत्यशाला की ही भांति है। (स्ट्रीटकृत दास थियेटर में जे० एम० ओलब्रिख के एक चित्र से।) नीचे, रेनासां इमारती दृश्य, जैसा कि उसे बाल्दासारे पेरुज़ी ने निर्मित

प्लेट १५
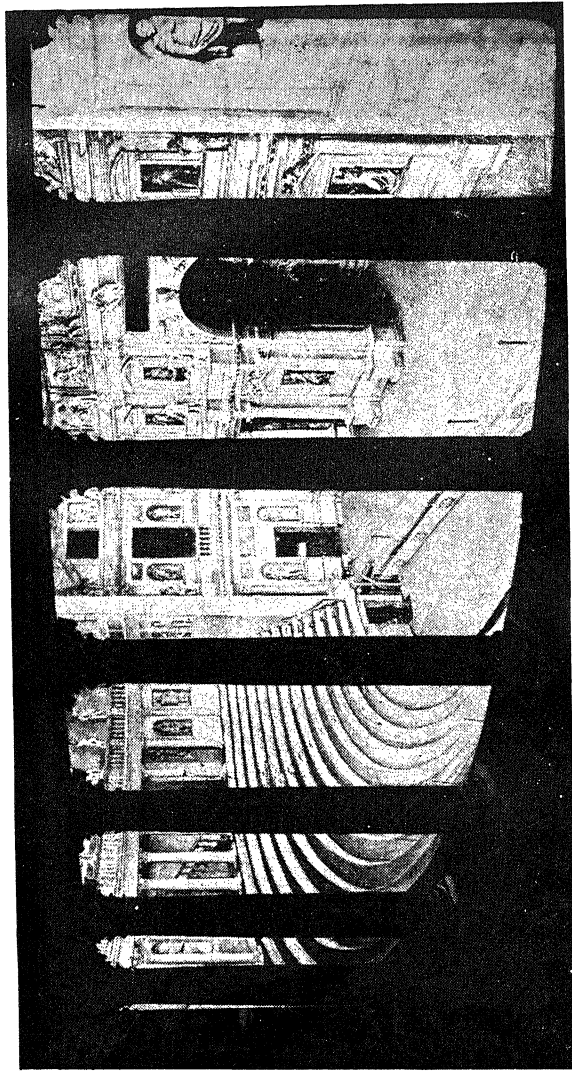
विशेन्ज़ा में लिम्पियन अकेदमी की रंगशाला। ओरेन्ज और आसपेन्डस की रंगशालाओं की पुर्निर्मित छवियों से तुलना करें तो प्राचीन रंगशालाओं से इसका जो सम्बन्ध था उस पर प्रकाश पड़ेगा। वस्तुतः यह एक छोटी रंगशाला है जिसके ऊपर छत भी पड़ी है । रंगशालाओं के निर्माण के कुछ वर्षों बाद, १५८५ ई० में, द्वार के आगे के खुले खण्ड इसमें जोड़ दिए गए थे।

सके। इसके बाद चितकबरे रंग में रक्षक का प्रवेश होता है। आदम और हौवा उसके सामने लाये जाते हैं। आदम लाल कपड़ों और हौवा श्वेत वस्त्रों में होती है। वे दोनों मूर्ति के सामने खड़े होते हैं। आदम मूर्ति के निकट शांत गम्भीर खड़ा रहता है; हौवा उससे अधिक लज्जावती शीलवती दिखलायी पड़ती है। कब उत्तर दें और कब नहीं, इसके लिए आदम प्रशिक्षित होता है। न वह बहुत जल्दी-जल्दी बोल सकता है, न बहुत धीरे-धीरे। न केवल वही अपितु सभी व्यक्ति व्यवस्थित रूप में बोलने के लिए प्रशिक्षित रहते हैं। उनको अपनी वाणी और भावभंगी में सामंजस्य रखना होता है। न तो उन्हें एक सांस में बोलना होता है, न बात को छांटकर ही कहना होता है, बल्कि जो कुछ उनके लिए होता है उसे दृढ़ता से बोलना पड़ता है। उसकी पुनरावृत्ति भी ठीक तरह कसी होती है। जो स्वर्ग का नाम लेता है उसको उधर देखकर इंगित भी करना पड़ता है।

संगीत-मंडली के गाने के बाद संवाद प्रारम्भ होता है। मूर्ति आदम और हौवा को कर्त्तव्य करने के लिए आदेश देती है तथा उनका स्वर्ग से परिचय कराती है।

मूर्ति हट कर चर्च में चली जाती है और आदम तथा हौवा प्रसन्नता के साथ स्वर्ग के चारों तरफ़ घूमते हैं। इसी बीच रंगमंच के चारों तरफ राक्षस यथोचित हावभाव के साथ स्वर्ग के निषिद्ध फल की तरफ़ हौवा का ध्यान आर्कषित करते हुए दौड़ते हैं, मानो वे उसको खाने के लिए फुसला रहे हों। फिर शैतान उपस्थित होता है तथा आदम से कुछ कहता है।

तब झुके हुए चेहरे के साथ नरक को लौट जाता है तथा अन्य राक्षसों से बातचीत करता है। उसके बाद वह लोगों के बीच विप्लव खड़ा करता है और हौवा की तरफ़ स्वर्ग में प्रसन्न मुख और उकसाने वाली मुद्रा के साथ बढ़ता है।

तब आख़िरी दृश्य आता है। शैतान आता है तथा उसके साथ तीन या चार राक्षस लोहे की बेड़ी लेकर आते हैं और आदम तथा हौवा के गले में पहना देते हैं। कुछ ढकेलते हैं, कुछ नरक की तरफ़ खींचते हैं और कठिनाई से वे नरक तक पहुंचे कि दूसरे शैतान उनसे मिलने को तैयार रहते हैं। बहुत तेजी से उनके गिरने पर ये शैतान पूरी ताकत के साथ उनको फंसाते हैं; कुछ दूसरे राक्षस, जब वे आते हैं, उनको बाहर का रास्ता दिखलाते हैं, और नोच-खसोचकर नरक में ले जाते हैं। वहां वे बहुत तेज धुआं पैदा करते हैं तथा एक दूसरे को तेजी के साथ नरक बुलाते हैं और अपने बरतनों को आपस में लड़ाते हैं। यह कुछ देर बाद शैतान बाहर निकल आते हैं तथा रंगमंच के चारों तरफ़ दौड़ते हैं।

इस तरह हम लोग उस समय नरक-सम्बन्धित नाटकीय प्रस्तुतीकरण देखते हैं। इसी को एक हज़ार साल पहिले 'टरट्यूलियन' ने एक नाटक के रूप में अपने शाब्दिक चित्रण के साथ ईसाई संसार के सामने किया था। यह उसने उस समय किया जब कि रंगमंचीय नाटकों को शैतान का कार्य कह कर फेंक दिया गया था। यह है चर्च द्वारा नाटकों का उपयुक्त प्रयोग, जिसको वह सेवा की कड़ी के रूप में नहीं बल्कि एक अलग तथा पूर्ण चीज़ के रूप में करता है। ये नाटक पूर्वलिखित होते थे तथा प्रशिक्षित पादरियों द्वारा अभिनीत किये जाते थे। वे पादरी न तो तेजी से बोलते, न तो कुछ छोड़कर। वे अधिक दृढ़तापूर्वक बोलने के लिए प्रशिक्षित होते थे। उनमें कुछ रंगमंच के वाहर से वरतन लड़ाकर शोर मचाने में प्रशिक्षित किये जाते थे।

चिरविरोधी चर्च में इस एकाकी रंगमंचीय स्वरूप पर विचार करते समय हमे यह बात नहीं भुला देनी चाहिए कि चर्च ने नाटक को अपने ही तरह के नाटकीय गुणों से विभूषित किया है। उन्होंने एक ऐसा नाटकीय स्वरूप दिया, जो बाद के इतिहास में अनुकृत हो सके। इसमें कैथोलिक सेवाओं का आडम्बर, उत्तेजनात्मक पवित्र संगीत, प्रभावकारी भावनाओं की रूपरेखा तथा प्रस्तुत करने में सचाई तथा विश्वास होता था।

'रेम' गिरिजाघर के बरामदे का 'आदम' जैसे नाटक के लिए उपयोग किये जाने की कल्पना करिये। स्वर्ग सरल मंडप के रूप में सीढ़ी पर बना होता था जो मध्यवर्ती गुप्त रास्ते में स्थित होता था। यह पूरी तरह से आकर्षक पर्दे से ढका होता था तथा मूर्तियों और स्मारक चिन्हों के बाहरी स्वरूप के बजाय एक रंगीन चीज़ होता था। दूसरी साधारण जगहें समीप-समीप होती थीं। सबसे नीचे नरक का खुला हुआ मुख होता था। वस्त्रों ने जुलूस वालों को गति और रंग की एक रमणीय क्रीड़ा-सा बना दिया था । महत् 'पाटल गवाक्ष' (रोजविण्डो) पर ध्यान दिया जाता है गिरजाघर से प्रसारित संगीत द्विगुणित रूप में प्रभावकारी प्रतीत होता है तब इस तरह का स्वर्गीय गायन और कहां रखा जा सकता था? कहां से इस प्रकार, विश्वासयुक्त तथा सुन्दर रूप में ज़ोर से प्रतिध्वनित होने वाली प्रभु की आवाज़ निकल सकती थी। अभिनेता भी केवल आवाज़ करने वाले ही नहीं थे जो कि कंवास के मकान के पीछे की ओर चले जाते थे; वे प्रभु के सेवक थे जो उसके मकान के पीछे से आते और चले जाते थे; क्या उनकी आवाज़ प्रभु की आवाज़ नहीं होती थी? किस तरह इस बात में संदेह किया जाता है कि संसार में जितने रंगमंच हैं उनमें यह सबसे अच्छा है।

पर गिरिजाघरों के रंगमंचों पर भी हम अपवित्रता पा सकते हैं। इस समय यह चर्च है जो भ्रष्ट हो गया है तथा जहां अशिष्ट मद्यपान तथा अपवित्र मज़ाकों के साथ

नाटक प्रस्तुत किये जाते हैं। जब साधारण लोग निषेधों और सामयिक दवावों के वावजूद 'नववर्ष, 'मई दिवस' और 'क्रिसमस' पर भ्रष्ट उत्सव मनाते थे, निम्न-स्तर के पादरियों ने भी इसके करने को उचित बताया। एक बहुत बड़े गिरिजाघर से सम्बंधित छोटे-छोटे पादरियों की बहुसंख्या, अपने श्रेष्ठजनों को इस आदर से नहीं देखती थी कि वे सच्चे तथा अकाम रूप से प्रभु के प्रतिनिधि है। वास्तव में और बड़े पादरियों से असंतोष, डाह, यहां तक घृणा भी थी। ऊंचे पादरियों एवं विशपों के वुरे तथा अपवित्र स्वरूप-चित्रण और चर्च की सेवाओं के परिहासयुक्त स्वरूप के साथ नववर्ष का उत्सव और छोटे पादरियों का नाटकीय कार्य हो गया। चर्च में 'नव वर्ष' का उत्सव मूर्खों का उत्सव, गदहों का उत्सव, आदि के भिन्न नामों से जाना जाता था। ये अश्रद्धा के बहुत बड़े सबूत हैं। बारहवीं शताब्दी के अंतिमांश से उसके आगे तक यह उत्सव फ्रांस से लेकर बहुत कैथोलिक देशों में फैला और इसका प्रतिरूप बाद के लड़कों के उत्सव में भी मिलता है। 'बालक पादरियों' के लिए एक छोटा सा नियम बन गया। यह एक ऐसा रिवाज था जो विशेष रूप से इंगलैण्ड में फैला। प्रारम्भ में इसमें भाग लेने वाले 'उप-पादरी' होते थे। परन्तु इन्हें चर्च के दूसरे साधारण कार्यकर्त्ताओं का भी सहयोग प्राप्त होता था। चर्च में जब ख़तने का उत्सव होता था तब इसी प्रकार का प्रदर्शन होता था। एक समय पादरियों के समूह द्वारा सभापति का चुनाव इस अवसर का अंग था तथा दूसरी भी गंभीर चीज़ें होती थीं। परन्तु मूर्खों का उत्सव छोटे पादरियों का वार्षिक उत्सव था। जिसमें उनकी मानवीय भावनाएं तथा कुप्रवृत्तियां खुलकर सामने आ जाती थीं। चेम्बर्स ने इसे स्वाभाविक कुत्सित प्रवृत्तियों का विस्फोट कहा है।

अंत में इनमें एक व्यक्ति विशेष आर्क विशप की भूमिका करता था, और उनकी पूजा-विधि का उपहास करता था।

इसमें खाना-पीना (शराब निषिद्ध नहीं थी।), वेदी पर जुआ खेलना, चर्च की ध्वनि में अपवित्र गानों का गाना, इत्यादि चलता रहता था तथा धार्मिक प्रवचन का मज़ाक उड़ाया जाता था। अगर के स्थान पर रबर जलाया जाता था और रेंक रेंक कर पाठ होता था। ऐसा मालूम होता है कि वेदी के घेरे में गधे को वास्तविक रूप में लाकर 'मिस्र में पलायन' के प्रतिरूप नाटक को प्रदर्शित किया जाता था। पुजारी रेंकने के स्वर में प्रत्येक मंत्र का पाठ करते थे और भीड़ में उपस्थित लोग ही-ही के साथ स्वागत करते थे। हां, आप इस बात से आश्वस्त हो सकते हैं कि नगर के लोग बड़ी प्रसन्नता के साथ ऐसे दूषित कार्य में भाग लेते थे। बाद के कुछ लेखक 'मूर्खों' के उत्सव की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उस घटना से सम्बद्ध करते हैं जब कि एक गधा चर्च में गया था। यह

घटना बाइबिल सम्बन्धी पवित्र नाटकों के स्वाभाविक विषय के रूप में रही है। फ़िलहाल गधा इस कार्य का प्रतीक बन गया और बनावटी ऊंचे पादरियों द्वारा पहने जाने वाले टोप में गधे का कान होना एक विशिष्ट चिन्ह हो गया। कुछ लेखक ऐसे हैं जो इस उत्सव का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी से मानते हैं, जब कि एक मूर्ख कुस्तुनतुनिया के शराबी माइचिकेला के दरवार में चर्च को अपवित्र करता था। वह पेट्रिआर्क का लवादा पहनकर मज़ाक उड़ाने के लिए स्वतंत्र था। इसके बाद वह गधे पर चढ़कर वास्तविक पैट्रियार्क से मिलने के लिए चल पड़ता था। उसके आगे-आगे वह व्यक्ति होता था जो जुलूस को पूरी तरह विक्षुब्ध कर देता था। यह उत्सव में गधे के होने तथा चर्च के प्रधान स्थान पर मुख्य अभिनेता के प्रतिनिधित्व का वर्णन है।

इस किंबदन्ती में चर्च के लोगों पर से दोष हटाकर एक लौकिक व्यक्ति पर थोप देने का लाभ हुआ।

तेरहवीं शताब्दी की फेस्टा ऐसिनारिया की एक पांडुलिपि बीवाइस गिरजाघर में है। इसके अनुसार जब गिरिजाघर में गधे का स्वागत होता तथा उसको शराब और टोस्ट दिया जाता था, हुडदंगी नौ चरणों के पद्य को गाते थे, जो गैले के अनुवाद के अनुसार निम्नलिखित हैं :—

परमपूज्य ओ गधे कहो अमीन, (वे घुटनों के बल झुकते हैं)
पेट तुम्हारा अभी घास से भरा हुआ है :
रेंको तुम आमीन, पुनः तुम रेंको,
तुम प्राचीन रूढ़ियों को अब त्यागो, फेंको।
हेज़ वा, हेज़ वा! हेज़ वा! हेज़!
अपने सुन्दर मुख को खोलो रेंको
घास बहुत है, चाहे कोई दाम चुकाये।
और जई का भूंसा भी है इतना काफ़ी
जिससे पेट तुम्हारा ऊपर तक भर जाये।

इस क्रिया के साथ 'फ़ीस्ट आफ़ फूल्स' की क्रियाओं को भी लिया जाता था। जैसा कि सोनस् गिरिजाघर के रिकार्ड से विदित है। यह नववर्ष के अवसर पर घंटों की घनघनाहट के साथ प्रारंभ होता था। इस क्रिया में एक स्थल पर जब ये शब्द कहे जाते थे—'उसने बलवानों को उनकी गद्दियों से नीचे उतार दिया है और विनम्र सामान्य लोगों को ऊपर उठा दिया है।' तब छोटे पादरी प्रसन्नता की मुद्रा में अपने श्रेष्ठ जनों को

बाहर निकाल देते थे और प्रहसन के रूप में आराधना करने लगते थे। पर्दा हटा दिया जाता था। बोतलें खुलतीं और उत्सव जारी होता था। इसके बाद सामान्य धार्मिक प्रक्रिया की नक़ल करते हुए नगर से जुलूस आगे बढ़ता जिसमें नाच-गाने तथा प्रसिद्ध जगहों पर जाना होता था। प्रमुख घरों पर रीति के अनुसार मुलाकात तथा चन्दे के लेने का भी कार्य होता था। 'डोमिनस फेस्टी' विभिन्न रूपों से मूर्खों का पोप, मूर्खों का
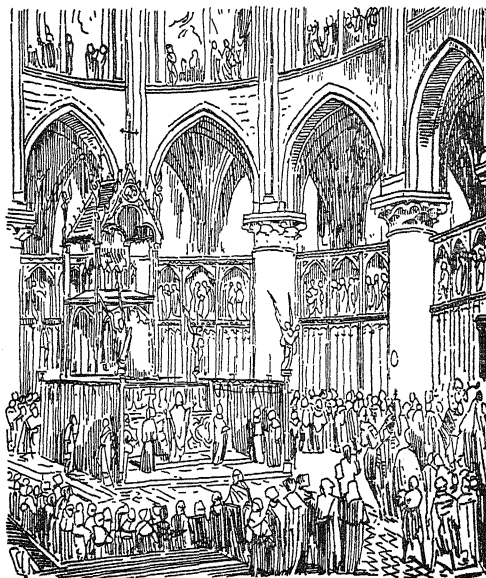
कैथिड्रल आव नात्रेदाम, पेरिस, में अठारहवीं शताब्दी में एक नाट्योत्सव के दृश्य का वायलेट-ले-डक द्वारा रेखांकन।

प्रधान धर्माध्यक्ष, इत्यादि नामों से पुकारा जाता था, यहां तक कि कार्डिनल और पोप को भी इस पदवी में शामिल कर लिया जाता था।

यह तो स्पष्ट है कि जब गिरजाघर में शराबखोरी और अश्लीलता के दृश्य उपस्थित किए जाते थे तो और धार्मिक कर्मचारियों का मजाक उड़ाया जाता था। परिहासयुक्त रहस्यों तथा परम्परागत उत्सवों का भ्रष्ट प्रस्तुतीकरण होता था——जैसे

गाते हुए लोगों का जुलूस भ्रष्ट रूप में निकाला जाता था तो चर्च के उपद्रवी लोग और नगरवासी इन सब बातों की चुहल करते थे। वास्तव में कोई भी ऐसा संभव असंभव आवरण नहीं था जिसे मूर्खों ने बाद की चार शताब्दियों के भीतर प्रदर्शित न किया हो। पादर (चर्च का फादर) निषेध, अभियोग और निन्दा की अग्नि प्रज्ज्वलित रखते थे। तेरहवीं शताब्दी में बिशप ऑव लिंकन ने 'फेस्टम स्टोलटारमा' को एक घृणित परम्परा बताते हुए कहा कि है कि जो कुछ चर्चों में अप्रतिबंधित थी तथा ख़तने के उत्सव को अपवित्र करती थी।' 'भगवान उससे घृणा करते थे तथा राक्षस प्यार करते थे।' उन्होंने इसका निषेध कर दिया। १४४५ में सेन्स के पोप ने लिखा कि "सभी दर्शकों को देवत्व का अपहरण करने वाले घोर पापों के कारण कांप जाना तथा लज्जित हो जाना चाहिए। इसके द्वारा हम लोगों के प्रभु के नाम पर होने वाले शिष्ट और आनन्ददायक उत्सवों को अश्लील रूप में परिणित कर दिया गया है।"

उसी वर्ष पेरिस विश्वविद्यालय के अध्यात्म-विभाग ने पोपों को (जो सही अर्थ में पोप थे) एक पत्र[1] भेजा जिसमें इन बुराइयों का उल्लेख है :—

"पादरी और कर्मचारी आफ़िस के समय विलक्षण चेहरे लगाये हुए देखे जा सकते हैं। वे स्त्रियों के कपड़े पहिन कर समूह-गान में भड़ुए और भाट की तरह नाचते हैं। वे ओछे गाने गाते हैं। वे वेदी के प्याले में पकाया हलुआ उस समय खाते हैं जब कि पूजा का कृत्य होता रहता है। वे पासा खेलते हैं। वे पुराने जूतों के तल्लों के दुर्गन्धयुक्त धुएं को धूप के रूप में लगाते हैं। वे दौड़ते हैं और चर्च में कूदते-फांदते हैं। इसकेलिए उनको जरा भी लज्जा नहीं होती। अंत में नगर और रंगमंच के चारों तरफ़ चीथड़े लपेटे गाड़ी में घूमते हैं, और बदनाम प्रदर्शनों में, भद्दी भाव-भंगिमाओं तथा अश्लील और अपवित्रत कविताओं से अपने साथियों तथा सड़कों पर खड़े रहने वाले लोगों को हंसाते हैं।"

जिस तरह ईर्ष्यालु पादरी एक बार रोम के रंगमंचों के अभिनेताओं को सजा देने के लिए तीन शताब्दियों तक प्रयत्न करते रहे उसी तरह उन्होंने अब अर्द्ध-रंगमंचीय अपवित्रता से अपने घरों को मुक्त कराने का प्रयत्न किया। बहुधा वे अपने घरों में धोखा खाते रहे। बुराइयों को वे निषिद्ध करते परन्तु अपने ही बीच वे सहमत नहीं थे।

---

१. चैम्बर्स द्वारा अनूदित। इस अध्याय तथा अगले अध्याय के लिए ये अंश तीन अत्यन्त उत्कृष्ट पुस्तकों से संग्रहीत किये गये हैं। उनमें से प्रथम है, ई० के०

कुछ थोड़े, जो अपने साथियों से बुद्धिमान थे, सुखान्त और मूर्खों की दावत के परिहास-युक्त नाटकों को लौकिक, रहस्यमय तथा चमत्कारिक नाटकों में परिवर्तित कर देने का प्रयास करते रहे।

गंभीर परिहासों और वेदी तथा गिरिजाघर के बरामदों में किये गये नाटकों से निकले गंभीर धार्मिक नाटकों में वास्तविक घटनाओं और प्रहसनात्मक कथाओं एवं प्रहसनों द्वारा बहुत लोक-प्रचलित तत्वों का समावेश हो गया।

पहिले से ही इसके प्रचलन से शंकित और इसकी विविधता तथा हास्य से भयभीत पादरी द्वारा यह चर्च परिष्कृत होता रहा और कदाचित् फिर से बहिष्कृत होता रहा और कदाचित् फिर वह रंगमंच के बाहर की वस्तु होने लगा। (यद्यपि कभी-कभी विशेष उत्सवों पर अब भी नाटक होते थे अथवा मनोरंजक जुलूस निकलते थे।)

१४२५ में पेरुगिया में महान् धर्मोपदेशक सीना के सैंट बर्नार्ड ने सुधारों के लिए एक आदेश जारी किया जिसके कारण युरोप की एक परम असंयमी, भ्रष्ट-चरित्र जाति का उद्धार हो गया। इस आदेश में उन्होंने कहा कि कुछ उत्सवों पर चर्चों में जो अश्लील भद्दे अभिनय होते हैं उन्हें एकदम रोक दिया जाय? बाद के युग में भी इस प्रकार के अभिनयों के निषेध के उल्लेख प्राप्त होते हैं। मगर साधारण तथा' गधे और मूर्ख' अब धक्के मार कर चर्च के बाहर निकाले जा चुके थे। बाद में फिर ये ईश्वर, साधुओं और शैतान ही के साथ मंच पर आये। मगर ये आये संघों और संस्थाओं द्वारा खुले रंगमंचों पर खेले गये नाटकों में। चर्च में रंगशाला के सम्बन्ध में इतना कुछ कह लेने के बाद, हमारे मस्तिष्क में यह बात बनी रहनी चाहिए कि नाटक के इतिहास में वास्तविकता के रहस्य नाटक सर्वाधिक आदरणीय, भावोत्तेजक और चित्ताकर्षक नाट्य रूपों में से एक रहे हैं।

चैम्बर्स कृत' दी मीडिवल स्टेज' (आक्सफोर्ड १९०३)। यह पुस्तक विद्वत्तापूर्ण, उद्धरणों से भरी हुई तथा महान् है। इससे संक्षिप्त परन्तु सरलतापूर्वक पठनीय ग्रंथ है चार्ल्स गेली कृत 'प्लेज आव अवर फोरफादर्स' (न्यूयार्क १९०७)। आल्फ्रेड डब्लू० पोलर्स कृत 'इंगलिश मिराकिल प्लेज, मोरालिटीज ऐण्ड इण्टरलूड्स' (आक्सफोर्ड, आठवां संस्करण १९२७) में बहुत अच्छा प्रारम्भिक वर्णन मिलता है; साथ ही इसमें नाटकों के अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।

अध्याय ७

मध्यकालीन भावना और रंगमंच

दूसरे पृष्ठ पर दी हुई छोटी-सी चित्र-रेखा लोकप्रिय रंगमंच के कुछ विचित्र असंगतिपूर्ण पक्षों के संदर्भ में मध्यकालीन भावना के अनुशीलन की एक पाठ्य-पुस्तक है। यह एक नाटक की हस्तलिपि में प्राप्त लघुचित्र के आधार पर अंकित की गयी है। यह रेखाचित्र 'वेलेंशीन्स पैशन प्ले' के लिए बनाये गये रंगमंच को प्रदर्शित करती है।

यह प्रकाशित चित्रों से युक्त रंगमंच का सबसे पुराना लेख–प्रमाण है। इससे बाद के धार्मिक रंगमंच के दर्शकों पर प्रकाश पड़ता है। यह दिखलाता है कि सादे मस्तिष्क के व्यक्ति थे तथा नाटकों की पृष्ठभूमि के चित्रण की मांग करते थे। सबसे अलग वे उन दो चीजों के चित्रण की मांग करते थे जो कि उनके मस्तिष्क में थीं : स्वर्ग और नरक का चित्रण। वास्तव में इससे पहले (वेलेंशीन्स के नाटक १५४७ में प्रस्तुत किये गये थे) 'नरक-मुख' (हेलमाउथ) उन रंगमंचों का प्रभुत्वशाली स्थल हो गया था, जो रहस्यमय और अद्‌भुत् नाटकों के नायकों के लिए बनाये जाते थे और मध्यकालीन दर्शक, विशेष रूप से इस बात की मांग करते थे कि पापियों को धधकती क्रोधाग्नि में फेंककर सज़ा देने का कार्य बहुत अधिक सक्रिय होना चाहिए, राक्षस को दुःख में दिखलाया जाना चाहिए (जैसा कि यहां है) तथा यह कि सभी अच्छे प्रकार के हास्य अभिनेताओं को शैतान के क्रिया-कलापों का अभिनय करना चाहिए। मध्यकालीन रंगमंच पर सभी धार्मिक नाटकों के चरित्रों में शैतान का रूप बहुत प्रिय था।

हम लोग उस काल तक की विवेचना कर चुके हैं जहां पर एक प्राचीन मानव सभ्यता समाप्त होने लगती है। राजनीतिक रूप से सामन्तशाही काल समाप्त हो जाता है;—जिस काल में 'लार्ड' देश के प्रत्येक हिस्से का शासक होता था और वहां के रहने वाले लोग आर्थिक और कानूनी दृष्टि से उस सर्व-सत्ताधारी पर आश्रित रहते थे तथा

उनकी हालत गुलामों से थोड़ी ही अच्छी होती थी, वह एक ऐसे समाज को जन्म दे रहा था जिसमें तृतीय राज्य (थर्ड इस्टेट) शक्तिशाली हो जाता है। शिल्पकर्म का एक नया महत्व हो जाता है। व्यापार बढ़ने लगता है और धन राजकीय ख़जाने से हटकर बैंक वालों के हाथ में चला जाता है। (यह कुछ इस तरह हुआ जैसे उन्होंने दूसरों के उद्धार के लिए स्वयं को विपत्ति में डाल कर विनाश को प्राप्त किया हो)। एक नये मध्यमवर्ग का जन्म होता है।

चूंकि हाल ही की बीती हुई शताब्दी के १०० में ९९ आदमी राजनीतिक रूप से सामन्तों की प्रजा थे, अतः वे मानसिक और आध्यात्मिक रूप से चर्च के गुलाम थे। वे उन विचारों को सोच भी नहीं पाते थे जो पादरियों द्वारा स्वीकृत नहीं थे। उनको पढ़ाया जाता था कि संपूर्ण प्रज्ञा का आरम्भ तथा अन्त विशेषतः उन्हीं चीज़ों के साथ होता है जो मनुष्य की आत्मा को समझने के लिए प्रभु-द्वारा स्वीकृत हैं। इनको इस बात में विश्वास करने के लिए उत्साहित किया जाता था कि जीवन केवल क्षणिक रास्ता है जो आंसुओं की घाटी से होकर चलता है तथा जिसके अन्दर से होकर चलते समय सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है मृत्यु के बाद के जीवन के लिए तैयार रहना। कोई भी मनुष्य इस सांसारिक जीवन को केवल इसी दांव पर आनन्दमय बनाने का प्रयत्न कर सकता है कि वह जीवन के शेष भाग को मधुर वीणा तथा स्वर्णयुक्त रास्ते वाले स्वर्ग में बिताने के बदले नरक में उबलकर बितायेगा। इसके बाद भी पादरियों ने इंगित किया कि नरक में शैतान से तथा स्वर्ग में प्रभु से भेंट मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करती है; शैतान लोग विनाश के रास्ते की तरफ अग्रसर करते हैं, तथा देवदूत औचित्य पर चलने के लिए सहायता करते हैं। शैतान बहुत सक्रिय होते हैं और वे सब जगह उपस्थित रहते हैं, यहां तक कि अपने लोगों के बीच भी रहते हैं। ये ही मनुष्य को लालच एवं क्रोध ग्रहण करने तथा अपवित्र होने के लिए विवश करते हैं। केवल चर्च के समीप रहकर, उसकी आज्ञा को प्रत्यक्ष रूप से मानकर तथा दूसरे विचारों को न सोचकर ही एक मनुष्य मुक्ति का अधिकारी हो सकता है।

वास्तव में शैतान उसको एक क्षण के लिए प्रभावित करता है परन्तु चर्च के पास भी जादू का अवशेष है जो शैतान को भगा देता है। उसमें रक्षा की शक्ति से युक्त साधु भी होते हैं। ईसा इतने बड़े व्यक्तित्व हैं जो मूर्तरूप में पूजा की वस्तु हो गये हैं। ये साधु अनुताप तथा प्रार्थना करने वाले मनुष्यों के समीप हैं। वहीं पर कुंआरी मेरी भी होती है जो बहुत दिनों से उन सब लोगों की श्रेणी में आगे हो गयी हैं जो प्रभु से दीन और मृतप्राय पापियों के लिए प्रार्थना करते हैं। वह बहुत दिनों से उन करोड़ों पुरुषों और नारियों की प्रिय मूर्ति हो गयी हैं, जो आज्ञाकारी रूप से अपने पुराने देवताओं को छोड़

चुके हैं, परन्तु इतने पर भी दृष्टिगोचर होने वाले देवता की पूजा करने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

इसलिए ईसाई धर्म के इतिहास के इस समय में, तथा बाद के इन मध्यकालीन युगों में भी, अंधविश्वास-स्वरूप राक्षसों का रूप, मूर्ति तथा जादू देखने को मिलता है। ये बातें शायद ही उस चीज़ से कम जड़वादिनी थीं जो असभ्य लोगों को धार्मिक नाच करने के लिए विवश करती थीं, तथा जो पीछे के कुछ पन्नों में उल्लिखित हैं। हमलोग धार्मिक नाटकों को एक ऐसे विकास के रूप में ले सकते हैं जिसके द्वारा चर्च ने अपने बहुत अधिक रक्षकों की वास्तविकता को मनुष्यों तक खींच लाने की आशा की। परन्तु ईसाई धर्म का जो हृदय था वह इससे प्रायः प्रच्छन्न रहा। टर्टीलियन ने जब दूसरी शताब्दी में यह विचार व्यक्त किया था कि रंगमंच और मूर्तिपूजा पापपूर्ण हो गये हैं। तो उसने एक नवीन सत्य को जान लिया था। चरित्र विस्तृत रूप से मूर्तियों के प्रतीक थे—जैसा कि नाटकों में होता है। ये बिलेंशीन्स रंगमंचों तथा उनके दर्शकों पर भी प्रकाश डालते हैं। दर्शकगण
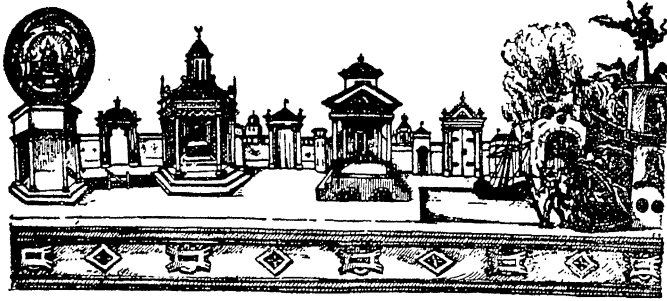
१५४७ ई० के वेलेंशीन्स पैशन प्ले का रंगमंच। यह उस मध्ययुगीन मंच का सम-सामयिक आलेखन है जिस पर एक साथ ही बाइबिल द्वारा वर्णित स्थलों—स्वर्ग से लेकर धरती और नरक तक—के दृश्य फैले रहते थे। (ह्य ुबर्ट कैल्यु कृत मौलिक लघु चित्र का प्रस्तुत लेखक द्वारा पुनर्रेखांकन)

अविवेक और भययुक्त मूर्तिपूजकों की अवस्था से दूर होने लगे थे। जब कभी कुंवारी मेरी रंगमंच पर आती थीं वे श्रद्धायुक्त, भक्तिपूर्ण, तथा रोमांचित हो जाते थे। वे बाइबिल की प्रिय घटना को फिर से कहने के लिए जड़वादी रंगमंच के

अंत में हम लोगों को यह भी जानना चाहिए कि रंगशाला की स्थिति परिवर्तन की दशा में है और यह भी जानाना चाहिए कि 'पैशन' (धर्मोन्मादी नाटक) का रूप इटली, पेरिस, बेसेल, आग्सवर्ग, या केण्ट में भिन्न-भिन्न रहा और यह कि यह भिन्नता प्रस्तुतीकरण में तथा चर्च से स्वाधीन उसके धर्म-निरपेक्ष स्वरूप में भी थी। फिर भी फ्लोरेंस से आवरदीन तथा सेविल से रीज तक यूरोपीय संसार नाटकीय प्रयासों से भरा है जो कि एक ही आधार से निकले हैं। यह भी कहना उचित नहीं है कि धार्मिक नाटकों ने रहस्यात्मक नाटकों तथा प्रहसन को जन्म दिया। वे उन अनगिनत विभिन्न रूपों में, जो धार्मिक जुलूसों, तमाशों आदि में अन्तर्निहित थे, ये एक ही साथ प्रस्तुत किये जाते थे। धार्मिक पदाधिकारी भी नाटकों को चर्च से पूर्ण रूपेण बहिष्कृत करने के प्रश्न पर एकमत नहीं थे। मोटे तौर पर यह बात देखने को मिलती है कि चौदहवीं शताब्दी में नाटक गिरजाघर से हटकर बाजारों में पहुंच गये तथा पुजारियों की प्रभुता से अलग उनके धर्मनिरपेक्ष रूप के महत्व का उदय हुआ।

विस्मय–नाटकों के कुछ समकालीन चित्रों को जीन फावट ने बनाया, जो १४१५ से १४८३ तक जीवित रहा। यहां पर दिये गये चित्र से पाठकगण इस बात को जान सकते हैं कि पन्द्रहवीं शताब्दी का रंगमंच उससे कम विस्तृत रहता था जो प्रथम शताब्दी के बाद वलेंशीन्स के पैशन–नाटकों के लिए बनाये जाते थे। उस समय नरकमुख ही केवल चित्रित रहता था, शेष के लिए उठे हुए 'बूथ' की पंक्तियों से काम लिया जाता था। एक खुला हुआ रंगमंच भी होता था जिस पर घटना प्रस्तुत की जाती थी। यह कहानी कैथोलिक साधुनी अपोलिना की कहती थी। दृश्य में अत्याचार का सजीव दिग्दर्शन होता था। वह प्रारम्भ की शहीद देवियों में से एक थी जिसने अलेक्जेंद्रिया में ईसाई मुक्ति का सदुपदेश दिया था, और जिसके लिए उसे अत्याचारी गवर्नर द्वारा जलाये जाने के कारण भयंकर मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा। कुछ तथ्यों से पता चलता है कि यह अत्याचारी उसका पिता ही था। उन सैकड़ों कथाओं में, जिन पर विस्मय नाटक आधारित थे, यह भी एक विचित्र कथा है :—

"ज्यों ही लड़की बड़ी होकर फूल की तरह सुन्दर हुई उसकी मां ने उससे उसके जन्म की विचित्र अवस्था का वर्णन करना प्रारम्भ किया और इस तरह वह सच्चे हृदय से ईसाई हो गयी। उसने उसका नाम-संस्कार किया। सफेद कपड़े में एक देवदूत अवतरित हुआ और कपड़े को लड़की पर फेंक कर बोला—'यह अपोलिना है, ईसा की दासी। अलेक्जेंद्रिया जाओ और ईसा के मत का प्रचार करो।' दैवीवाणी सुनकर उसने आज्ञा का पालन किया और विचित्र प्रभावशाली ढंग से मनुष्यों को सदुपदेश दिया।

बहुतों ने धर्म-परिवर्तन कर लिया, कुछ दूसरे शिकायत करने के लिए दौड़ पड़े। तुरन्त ही गवर्नर ने उसे झुकने और शहर की मूर्तियों की पूजा करने का आदेश दिया। संत अपोलिना जब मूर्ति के सामने लायी गयी तो उसने क्रास का चिह्न बनाया और उन शैतानों को, जो उसके अन्दर थे निकल जाने का आदेश दिया और शैतान बहुत ज़ोर का शोर मचाते हुए मूर्ति को तोड़कर यह कहते हुए भाग गये—'पवित्र कुंवारी अपोलिना मेरा पथ-प्रदर्शन करो।' इसको देखकर अत्याचारी ने उसको बांधने का आदेश दिया और उसके सभी सुन्दर दांत एक एक करके निकाल लिये गये। उसके बाद आग जलायी गयी और जब उसने अपनी आस्था को क़ायम तब भी रखा तो वह अग्नि में फेंक दी गयी। देवदूतों द्वारा जब वह स्वर्ग ले जायी गयी तब उसने अपनी आत्मा को प्रभु के समर्पित कर दिया।"

इस तरह की कथाओं में प्रभावकारी नाटकीय चित्रण के लिए बहुत अधिक अवसर रहता है। उस समय कहानियां सब को मालूम रहती थीं, दर्शक किसी परिचित चीज़ के पूर्व विचार के साथ प्रत्येक घटना को देखते थे। (चमत्कार नाटक का कोई मूल्यवान् तत्व नहीं)। उसमें चरित्र बहुत होते थे। इसमें सुन्दर कुमारी, अत्याचारी और सबसे अलग आभायुक्त देवदूत, शैतान और प्रभु होते थे, जो शहीदों को ले जाने के लिए स्वयं अवतरित होते थे, जैसा कि हम 'फ़ाक्टे' के चित्रण में देखते हैं। वर्तमान नाटकों के प्रस्तुतीकरणण में कष्टदायक दृश्यों को निकाल दिया गया है। इन नाटकों में कष्टदाता और दो चिमटे होते थे। यहां पर प्राचीन काल की लड़कियों के, जो कि बुरी भावनाओं की शिकार होती थीं, अग्नि में जलायी जाने वाली नाटकीय घटनाएं प्रस्तुत की जाती थीं। दर्शकगण के लिए बुराई वास्तविकता और भद्दे रूप में प्रस्तुत की जाती थी, परन्तु दर्शक उन देवदूतों से प्रभावित हो जाते थे जो कि पर्दे के द्वारा निर्मित स्वर्ग से उतरकर बदला लेने और शहीद लड़की को ले जाने के लिए नीचे आते थे। वे शैतानों से उस समय प्रभावित होते जब वे वास्तविक संघर्ष के पश्चात उत्पीड़कों को नरक में ले जाते थे। गंभीरतापूर्वक देखने से उत्पीड़क के पीछे बाल-राक्षसों में से एक अपोलिना के शिर पर मिलता है। वे लगातार मनुष्यों को नुकीले वस्त्र चुभाते हुए अपने भाड़ों के साथ घूमा करते थे, यहाँ तक कि रंगमंच तथा उपस्थित जनता में भी हुड़दंग मचाते रहते थे।

किसने इन नाटकों की पाठ्य सामग्री लिखी? उत्तर के लिए यह एक प्रश्न है। ये बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि लिखे गये संवादों का नाटकों के बुरे प्रभाव से हटकर कठिनाई से ही कोई बहुत साहित्यिक तथा रंगमंचीय महत्व है। मूल रूप में पाठ्य सामग्री एक पुजारी या साधु द्वारा लिखी गयी थी। इसके भिन्न-भिन्न प्रति रूप

एक मध्ययुगीन रहस्य-नाटक का सम-सामयिक चित्र—नाटिकायें सेन्ट अपोलो-
निया के बलिदान का यह दृश्य वर्णित है। पार्श्व भूमि के 'बूथ स्टेज' पर
ध्यान दीजिए—अब तक इसमें चित्रित स्थान का स्थिरीकरण नहीं हुआ था।
(पाल अलबर्ट कृत ला लितरेतूर फ्रांके में जीन फ़ोके कृत एक लघु चित्र का
एफ़० कूरबोइँ द्वारा रेखांकन।)

विभिन्न शहरों में प्रयोग में लाये गये। जब नाटक चर्च से आगे बढ़े और नयी धर्मनिरपेक्षा तथा अभिनेताओं ने उसको प्रसिद्ध करने का प्रयत्न किया तो प्रत्येक में बहुतेरी चीज़ों का समावेश हो गया। ट्रायल और बेवेरियन आल्पस के पैशन-नाटकों में इसकी समानता देखने को मिलती है। स्थानीय पुजारियों द्वारा लिखे गये नाटकों को लोग प्रस्तुत करते हैं। कुछ लोगों के पास अविस्मरणीय काल से चली आती हुई पुस्तकें होती हैं जो कि हर १० वर्ष के बाद प्रस्तुतकर्त्ताओं द्वारा संशोधित रूप में प्रयुक्त की जाती हैं। लेकिन स्वीजरलैण्ड के सेलजैक में 'ओबर अमरगाउ' अभिनेताओं से लिये गये पाठ का प्रयोग किया जाता है। मध्यकालीन धार्मिक नाटक, जिसके आधुनिक पैशन नाटक अवशेष या पुनरुत्थित रूप हैं, की सफाई के लिए इस प्रकार की कोई न कोई व्याख्या दी ही जाती है। यह निश्चित बात है कि कुछ आंग्ल विस्मय-नाटक फ्रेंच पाठ्य से मिलते हैं।

तिस पर भी समें कुछ लेखकों के नाम मालूम हैं, जैसे कि फ्रान्स के ज्यां बोडेल का, जिसने एक रहस्यात्मक कहानी को विस्तृत रूप में लिखा था। इस कहानी का मुख्य अंग सेंट निकालसका हैं। इसमें धर्म-युद्धकर्त्ता, अदालत का दृश्य, शराबख़ाने का रूप, डकैती, साधारण तौर के वार्तालाप, रहस्य और तेजस्विता होती थी। उसके बाद स्टाफ का नाम मालूम है। जिसने उस पुजारी की कहानी को नाटक का स्वरूप दिया, जो अपनी आत्मा को शैतान के हाथ बेचकर पछताया और बाद में कुंवारी मेरी द्वारा बचाया गया। हिलेरियस का नाम भी मालूम है जो कि फ्रांसीसी होने के बजाय अंग्रेज था तथा जिसने तीन नाटक लिखे थे। 'ए मिराकिल आव सेन्ट निकोलस,' दी रेंज़िग आव लोज़ारस,' और 'डेनियल' फ्रांसीसी भाषा से युक्त लैटिन भी है।

फ्रांसीसी इंजीली नाटकों के तीन वर्ग हैं जो आश्चर्यजनक नाटकों के बजाय रहस्यात्मक नाटकों की श्रेणी में आते हैं। इनके अतिरिक्त उन पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है जो प्राचीन 'टेस्टामेण्ट' के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। ये १५०० में ४४, ३२५ पद्यांशों में लिखे और एकत्र किये गये। इनके बारे में यह कहा जाता है कि ये बहुत से लेखकों की चीजों से लिये गये हैं। 'नव टेस्टामेण्ट' के रहस्यों में बहुत सी चीज़ें आरन्योल ग्रीवेन की ली गयी हैं। ये ३४,५७४ पद्यों में हैं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में लिखे गये थे। तीसरा वर्ग 'एकतेस देस एपोत्रे' के नाम से विख्यात है और यह ६१,९६८ पंक्तियों वाली अद्भुत् चीजों से युक्त एक हस्तलिपि है। कहा जाता है कि १५१४ में यह पेरिस में सात महीने तक पूरे रविवार के दिन खेला जाता रहा।

वेलेन्शीन्स पैशन-नाटकों पर दृष्टिपात करने के बाद, जिससे कि हमने अपनी विवेचना प्रारम्भ की है, हम लोग नाटकों के काल-चक्र के बारे में अधिक छान-बीन

कर सकते हैं। यहां रंगमच पर जो एक ही समय मन्दिर, महल, घर, नगर का दरवाज़ा, कालकोठरी, वेदी, गुम्बद, घेरे हुए मैदान, जलयानयुक्त समुद्र, स्वर्ग तथा नरक होते थे। स्पष्ट है कि छंदरूप में तथा इस तरह के दृश्यों के साथ नाटक को किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है।

थोड़ी-सी कल्पना के द्वारा मुख्य तटस्थ नाटकीय क्षेत्र तथा निचले रंगमंच के केन्द्र एक दूसरे के अनुरूप बना दिये जाते थे, जैसे वहीं प्रवेश स्थल हो तथा अभिनेताओं को उसी जगह पर इस तरह भेजा जाता था जैसे वह केन्द्रविंदु हो। जिस चित्र को ह्यूबर्ट कैलिल्यो ने एक हस्तलिपि के रूप में बनाया था, उसमें अभिनेताओं द्वारा दो ही जगहों का प्रयोग होता था—एक था नरक जो शैतान और अपराधियों से युक्त होता था और दूसरा था स्वर्ग जिसमें चार गुणों से युक्त प्रभु और पादरी होते थे।

सब जगहों को एक ही दिन में प्रयुक्त नहीं किया जाता था। यहां पैशन नाटक पचीस क़िस्तों में प्रस्तुत किया जाता था। साधारण नाटकों में दो या तीन घटनाएँ या क्रियाएँ ही होती थीं और कभी-कभी एक या चार भी हो जाती थीं; चौथे दिन ईसा का जन्मदिन, गड़ेरिया की भक्ति तथा तीन बुद्धिमानों का आगमन होता था। दसवें दिन मेरी मैगडेलेन का धर्म-परिवर्तन तथा पहाड़ पर का उपदेश; अठारहवें दिन अंतिम भोज' ('लास्ट सपर') तथा अंगूर के बाग वाली घटना तथा इसी तरह की बहुत सी चीजें प्रस्तुत की जाती थीं।

जिसको भी रंगशाला के महत्व का ज्ञान है, उसको यह बात मालूम है कि इन घटनाओं के विभाजन में गेस्पेल लेखकों द्वारा दी गयी चीजों का अनुसरण करने का बहुत कम प्रयत्न किया गया है। इन चीज़ों को मानवीय और कौतुकी गुणों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत किया गया है। मैगडालोन की कहानी को उदारतापूर्वक विस्तृत किया गया है। दूसरी तरफ रंगमंच पर 'नरकमुख' का महत्व झूठी प्रवृत्ति का एक इंगित है। मुख्य पैशन-नाटक में शैतान के कृत्यों पर इतना बल कहां दिया गया है? यह चमत्कारिक नाटकों से लिया गया है, जिसमें, संतों के शत्रु प्रत्यक्षरूप से नरक में जाते थे।

वेलेन्शीन्स नाटकों का पाठ प्रत्यक्ष रूप में दूसरों की तरह नहीं है। फिर भी पहले की पुस्तकें, विशेषतः ग्रेवेन स्वतंत्ररूप में ली गयी हैं। एक विशेष तरह की नाटकीय प्रस्तावना और उपसंहार पचीस भागों में से प्रत्येक के प्रारम्भ और अन्त में जोड़ दिया गया है। प्रारम्भ की पंक्तियां (कार्य के दिन के पद्य के उदाहरण-स्वरूप) ये हैं :

श्रीमानो, यदि आप कृपा करके शान्त रहेंगे तो हम आपको आज के दिन मेरी की कोख से उस परम प्रभु के जन्म का दृश्य दिखायेंगे जिसका हम सब इतना आदर करते हैं......

समकालीन विवरण, अनुबंध तथा नाटक का आर्थिक लेखा-जोखा नाटक-कर्त्ताओं और रंगमंच के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। प्रारम्भ में तेरह सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा कंडक्टर कार्य-भार संभालने के लिए नियुक्त किये जाते थे। तीन आदमी पाठ को व्यवस्थित करने तथा अभिनय बांटने का कार्य-भार लेते थे। एक रंगमंच बनाने का, दूसरा दृश्यों की व्यवस्था का, एक और गानों को देखने का तथा चौथा मशीन बैठाने और उसका कार्य देखने का काम करता था। इन सुपरिण्टेण्डेण्टों के अतिरिक्त ३८ महत्वपूर्ण अभिनेता होते थे जो २५ अभिनयों में से कई में अभिनय के लिए उपस्थित होते थे। इनके अतिरिक्त बहुत से छोटे-छोटे अभिनेता होते थे, जिनमें बच्चे भी होते थे। अभिनेताओं के अनुवन्ध पूर्णरूप से अनुशासन को प्रदर्शित करते हैं। रिहर्सल में देरी के कारण 'दण्डशुल्क' देना पड़ता था। शराब पीना वर्जित था, और इसी तरह निर्देशकों की अवहेलना करना भी वर्जित था। आर्थिक दृष्टि से अभिनेता संगठनकर्त्ताओं से मोल-तोल करके अपनी मनवा सकते थे, या उनकी मानने पर विवश हो सकते थे। या फिर वह और सब लोगों के कोरे धन्यवाद से संतुष्ट होने का निर्णय करता था (वास्तव में १२३० लाइवर का लाभ होता था) अभिनेता बहुत अधिक परिश्रम करते थे और खतरों का सामना भी करते थे। इसका लिखित विवरण प्राप्त है कि १४३७ में मेंज़ में सूलीपर चढ़ाये ईसा और फांसी पर लटकाये हुए जूड़ा को मृत्यु से बचाने के लिए काटकर नीचे गिरा दिया गया।

वेलेंशींन्स में कुर्सियां कुछ ही दर्शकों को दी जाती थीं; वे अस्थायी मंडप में होती थीं। परन्तु यह शंका करने की बात है कि क्या इस समय एक साधारण दर्शक ऐसे स्थान पर खड़े रहने से भी बढ़कर किसी अवसर की मांग करता था, जहां से वह रंगमंच को देख सके? ई० ग्रेंसेट ने रंगशाला और प्रदर्शन का अनुमान पर आधारित एक ऐसा ढांचा बनाया है जो सामाजिक स्तर के प्रसिद्ध व्यक्तियों के लिए निर्मित मंडप से देखा जा सकता था। आप देखेंगे कि कैलियो ने जो मंच बनाया था उसको उन्होंने कुछ और विस्तार के साथ चित्रित कर दिया है। (देखिए प्लेट १२)।

उस समय जिन चीज़ों ने वेलेंशींन्स की साधारण जनता को प्रभावित किया वे थीं प्रस्तुत की गयीं आश्चर्यजनक चीज़ें। हम लोग अगले अपने अध्याय में यह देखेंगे कि सोलहवीं शताब्दी में किस तरह नाटकीय छलनाओं या हस्तलाघव का पहले से ही

इटली के राजदरबारों में प्रशंसापूर्ण स्थान बन गया था। परन्तु यहां पहली बार यान्त्रिक चमत्कार–संबंधी प्रभावों के समकालीन विवरण प्राप्त होते हैं। हेनरी डी० आउटरमैन के एक लेख में (जो कि पेतित डी० जुलेविले के महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'फ्रांस में रंगशाला का इतिहास : रहस्य' से उद्धृत है) प्रत्येक दिन देखी गयी "आश्चर्य-जनक और अद्‌भुत्‌ वस्तुओं' का वर्णन है। "स्वर्ग-नरक के रहस्य इतने आश्चर्यकारी थे कि लोग उन्हें चमत्कार ही समझ बैठते थे।" मनुष्य उपस्थित होते तथा जादू की तरह गायब हो जाते थे; नरक से लूसीफ़र एक उड्डीयमान व्याल पर कैसे उठता था, यह कोई जान न पाता था, पानी को मदिरा में इस प्रकार परिवर्तित कर दिया जाता था कि कोई विश्वास न कर पाता था––'यहां तक कि सौ से अधिक दर्शकगण इस मदिरा का स्वाद लेना चाहते थे। रोटी के पांच टुकड़ों और दो मछलियों को इस प्रकार बहुसंख्यक कर दिया जाता था कि हजारों आदमी उन्हें खा सकें। शैतान अपना स्वरूप बदल देता था, बिजली की गड़गड़ाहट तथा पहाड़ों का टूट कर गिरना एक नये चमत्कार के रूप में दिखायी पड़ता था। नरक और पाप-मोचान स्थान के लिए लपटें, उबलते हुए तेल की कड़ाही, तोप तथा पापियों को कुचल देने के लिए घूमते हुए पहियों का प्रबन्ध रहता था। (सब कुछ आप रेखा-चित्र में देख सकते हैं) बहुत-सी जगहों पर नरकमुख कुछ इस तरह बना होता था कि उसके भयानक जबड़े वास्तव में खुलते और बन्द होते रहते थे।

ह्यूबर्ट कैलियो ने हस्तलिपि में नाटक के २६ अन्य दृश्यों के रेखा-चित्रों को भी जोड़ा है। परन्तु उसने अपनी कल्पना पर अनुशासन रखा। निश्चय ही इन चित्रों की पार्श्वभूमि तथा वर्गीकरण कम से कम नाटक-निर्माताओं की अभिलाषाओं को प्रकट करते हैं किन्तु दूर के प्राकृतिक दृश्य तथा अन्य उपकरण ऐसे हैं जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करना असंभव है। चित्रकार की ये धारणाएं हम लोगों को इस बात की याद दिलाती हैं कि मध्यकालीन रेखांकन कला उन स्थानों और घटनाओं से पूर्ण हैं जो पैशन-रंगमंच के लिए सामान्य थीं। यहां तक कि एक मनष्य सोचने को विवश हो जाता है कि वह तस्वीर सीधे किसी नाटकीय प्रस्तुतीकरण से ली गयी है। वास्तव में मध्यकालीन रंगमंच पर लिखी पुस्तकें इस तरह के उदाहरण–चित्रों से परिपूर्ण हैं। चित्रकारों और कलाकारों का यह भी एक बहुत प्रिय तरीक़ा था कि वे दर्जनों दृश्यों को एक साथ एक ही फ्रेम में प्रस्तुत कर देते थे। यह सब स्थिर रंगमंचों के समानान्तर होता था। परन्तु बुद्धिमानी यह निष्कर्ष निकालने में ही होगी कि प्रभाव कुछ दूसरे ही ढंग पर घटित हुआ अर्थात्‌ रंगमंच का दृश्यांकन करने वाले चित्रकारों की अपेक्षा मंच से संबंध रखने वाले लोगों ने ही उन चित्रकारों से अधिक सीखा। प्रसंगवश आपको नरक-मुख शैतान के राज्य के प्रवेश-द्वार के रूप में समकालीन चित्रकला, मूर्तिकला, काष्ठचित्र (उडकट),

भित्तिचित्र तथा क़सीदाकारी इत्यादि के दृश्य सर्वत्र देखने को मिलेंगे।

अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बाद के पैशन-अभिनयों के धार्मिक नाटकों की पुरानी शालीनता का कुछ न कुछ लोप तो हो ही गया और कुछ सस्ती बातों का समावेश हो गया। आश्चर्यजनक 'प्रभावों' का आत्म-शुद्धि की भावना से प्रेरित रंगमंचों के साथ बहुत कम सरोकार रह गया। वे बुरी तरह दबे हुए हैं और यह विवाद-रहित है कि उन्होंने बहुत से उन अच्छे तत्वों को छिपा दिया जो साधारण चमत्कार के दिनों से चले आ रहे थे। नाटक फिर एक बार संक्रमण काल में आ गया। एक शताब्दी के भीतर ही कार्नेल के दुःखान्त नाटक पेरिस के राज्याश्रित नये रंगमंचों पर प्रस्तुत किये जायेंगे। राजधानी में पहले से ही पैशन अभिनयों के लिए पैशन-संघ (कान्फ्रेराई द ला पैशंस) नाम की व्यापारी अभिनेताओं की ऐसी संस्था को लैसेंस मिल गये जिसे व्यापारी कम्पनियों का अग्रदूत कहा जा सकता है।

बिखरे हुए नगरों में भी बहुत बड़ी संख्या में लौकिक संस्थाएं हैं जो विशेषतः कुंवारी मेरी का यशोगान करने वाले नाटकों को प्रस्तुत करते हैं। चर्च से सम्बन्धित न होते हुए भी शौक़िया अभिनेताओं की ये मंडलियां––जिन्हें 'साहित्यिक बिरादरी' शब्द से अधिक अच्छी तरह अभिहित किया जा सकता है––उसी मेरी-पूजा का प्रचार करती हैं जिसे कैथलिक ईसाई मत ने बहुत दिनों पूर्व, कभी-कभी तो अभिनयात्मक ढंग पर, पल्लवित कर रखा था। किन्तु मेरी उपाख्यानों के कैथलिक संस्करण विशुद्ध रूपाकर्षण पर आधारित थे। कुमारी (मेरी) अनभिगम्य मसीह-जननी से कुछ अधिक बन कर पूजित होने लगीं; वह मर्त्य प्राणियों में सबसे प्रेमयोग्य, सौन्दर्य की रानी तथा संगीत की देवी के रूप में ज़्यादा पूजित हुईं। अपने समय के रंगमंच पर प्रायः उनका अवतरण होने लगा और चाहे कोई घृणित प्राणी या विश्वासी भक्त या जो कोई भी उन्हें भक्तिमयी विनय-पदावली में स्मरण करता उसे ही वह अग्नि से बाहर निकाल लेती थीं। इस लौकिक नाटकीय स्तवन में विकृति की छाया आ गयी थी। मध्ययुगीन नाटक-साहित्य में 'नोत्रैदेम-चमत्कार' (मिराकिल्स द नोत्रेदेम) वाला वर्ग उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पूर्व-कथित तीन रहस्य-चक्र रहे हैं।

पेरिस तथा अन्य बड़े नगरों में ऐसी संस्थाएँ भी थीं जो प्रहसन को उस स्थान से आगे ले जा रही थीं जहां उन्हें 'फ़ीस्ट्स आव फूल्स' ने पहुंचा कर छोड़ दिया था। (व्यंग्य और हास्य मूलक नाटकों का निश्चय ही उन्होंने परित्याग नहीं किया था)। कान्फ्रेन्स, अदालत के क्लर्कों और दूसरे धर्मनिरपेक्ष दलालों ने–जिन्हें अक्सर 'सोसायते ज्वायेसस' भी कहा जाता है––वैसे प्रहसनों को तैयार किया जिनका मन्तव्य मनोरंजन और व्यंग्य करने के अतिरिक्त और कुछ न था। कभी-कभी व्यंग्य कठोर रूप

से चर्च पर ही किया जाता था, मगर इसका आघात उन लोगों को भी सहना पड़ता था जो जीवन के किसी भी क्षेत्र में ढोंग करते थे अथवा मूर्खता प्रदर्शित करते थे। बाद में फ्रांस में जिस व्यंग्य-पूर्ण प्रहसन की प्रतिष्ठा हुई उसका आरम्भिक असंस्कृत रूप यही था—वही रूप जो बाद में इतना उत्कृष्ट रूप धारण करने वाला था। उस समय के फ्रांसीसी व्यंग्यपूर्ण हास्य-नाटक और 'कामेदिया देल' आर्ते ने संयुक्त रूप से मोलियर की प्रतिमा को उर्वर बनाया।

सच यह है कि जो कला केवल मूर्खों और गधों की कला थी, केवल मूर्खतापूर्ण अभिनय करने की कला—सोत्ती का नाम अब भी चल रहा था—वह पन्द्रहवीं शताब्दी में साहित्यिक प्रभाव के अन्तर्गत एक रूप धारण कर सत्यमेव सुखान्त नाटक के निकट पहुंचने लगी। १४७० ई० में ही मध्ययुगीन प्रहसनमूलक नाटक की सर्वोत्तम कृति 'मेस्त्रे-पियरे पेथेलिन' सामने आती है। एक चतुर वकील के भी मूर्ख बनाने अथवा ठग के स्वयं ठगे जाने की परिचित कथावस्तु के आधार पर निर्मित यह प्रहसन बहुत ही दिलचस्प है। पेथेलिन अपने बजाज़ को मूर्ख बनाने के लिए उस गड़ेरिया का मुकदमा लड़ने के लिए तैयार हो गया जिस पर बजाज़ के भेड़ चुराने का अभियोग लगाया था। वह चोर को सिखा देता है कि जब भी अदालत में कोई सवाल पूछा जाय तो उसके उत्तर में वह 'वाह' कह दे! फलत: बजाज़ इतना घबड़ा जाता है कि वह अपना मुकदमा बिगाड़ लेता है। उस पर डांट पड़ती है और वह अदालत से भगा दिया जाता है। गड़ेरिया भी बुद्धिमान क़रार देकर रिहा कर दिया जाता है, मगर जब पेथेलिन उससे अपनी निश्चित उजरत मांगता है तो उसके उत्तर में भी गड़ेरिया 'वाह' कह देता है और कहता रहता है। यहां जो अदालत का दृश्य है और बजाज़ की घबड़ाहट का जो प्रदर्शन हुआ है—उसी से यह प्रतारण प्रचलित हुई है—'अपने मतलब की बात दोहराते रहो।'

फ्रांसीसी सुखान्त नाटक के विकास की एक निश्चित धारा तेरहवीं शताब्दी के प्रथम परिचित लेखक एडम दे ला हाले से मिलती है जो आरम्भिक सोत्तियों से होकर, पियरे पेथेलिन के अनजाने लेखक से होकर, सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ के राजनीतिक प्रहसनों और व्यंग्यों के प्रसिद्ध लेखक ग्रिगोरे तक चली आती है। ग्रिगोरे ने एक नाटक लिखा जिसका नाम दी 'प्रिंस आफ़ फूल्स'' (मूर्खधिराज) था। इसमें चर्च ('मेरे सोत्ते' के रूप में), पोप, सम्राट और आम जनता सभी को चित्रित किया गया; वस्तुत: यह पोप के ऊपर आक्रमण था। लेकिन इन नाटकों पर विस्तृत विचार किसी दूसरे अध्याय का विषय है। उस युग की चर्चा से पूर्व अध्याय, जिसमें साहित्यिक नाटक और स्थायी रंगशाला की अच्छी तरह प्रतिष्ठा हो गयी थी, यहाँ यह समझ लेना अधिक समीचीन होगा कि प्रहसन (सामान्यत: ये कुघड़ और अश्लील होते थे) अक्सर रहस्य

नाटकों के साथ जोड़ दिये जाते थे और पवित्र और पापमय दोनों का प्रदर्शन एक ही मंच पर होता था।

ब्रिटिश द्वीप में धार्मिक नाटक का आरम्भिक इतिहास ठीक वैसा ही था जैसा कि वह फ्रांस में था—कर्मकाण्डमूलक आरम्भ से रहस्य-नाटक और चमत्कारपूर्ण नाटक का विकास क्रम! मगर बाद के व्यावसायिक संघों ने जिन नाट्य-चक्रों का अभिनय प्रस्तुत किया उनका 'प्रस्तुतीकरण' जिस ढंग से हुआ वह अत्यन्त रोचक था। चर्च की आराधना में लैटिन की जगह अब स्थानीय भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे होने लगा था। पुरोहितों का आधिपत्य नाटकों पर कम होने लगा और उनके स्थान पर अब संघों के नेतृत्व में स्वतंत्र प्रस्तुतीकरण होने लगा। चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक नाटक व्यापक रूप से फैले हुए थे। सौ से अधिक नगरों में उनके उल्लेख मिलते हैं। बाद के युग में अभिनय चर्च के अन्तरगत तो होते ही नहीं थे, चर्च के निकट भी नहीं होते थे। सुयोग्य 'रंगमंच' की तलाश करते-करते प्रस्तुतीकरण की एक विशेष प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। यह विशिष्ट मध्ययुगीन इंगलिश प्रणाली थी। इसमें चलती-फिरती गाड़ियों पर प्रदर्शन किया जाता था। यह एक ऐसी प्रणाली थी जिसमें चित्रांकन की परम्परा का अच्छी तरह निर्वाह किया गया था और साथ ही अत्यधिक लम्बे मंच पर मिलते-जुलते सेटिंग के बनाने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी। बड़ी से बड़ी भीड़ अभिनयों को देख सकती थी। हर गाड़ी पर एक दृश्य होता था, जिसे दर्शकों की विभिन्न टुकड़ियां देखती थीं। ये प्रदर्शन उन लोगों के घरों के सामने अधिक होते थे जो इस समारोह के लिए अधिक उदारतापूर्वक चन्दा देते थे। आर्च विशप रोजर्स 'चेस्टर प्लेज़' को स्वयं देखते थे। उन्होंने १५९४ ई० या १५९५ ई० में इस प्रणाली का वर्णन करते हुए लिखा है :

"हर दल के पास एक प्रदर्शन-मंच होता था। हर चार पहियों वाली गाड़ी पर बल्लियां बांध कर दो कमरे बनाये जाते थे। नीचे के कमरे में अभिनेता कपड़े पहन कर साज-सज्जा करते थे। ऊपरी कमरे की बिलकुल खुली छत पर वे अभिनय करते थे—यहां अभिनय करने पर हर आदमी उनकी बातों को सुन सकता था, उन्हें देख सकता था। नगर की हर सड़क पर वे अभिनय करते थे। वे धार्मिक मठों के द्वार से अपना अभिनय प्रारम्भ करते थे। जब पहिली गाड़ी का अभिनय समाप्त हो जाता तो उसे खींच कर नगर-प्रमुख के उच्चासन के सम्मुख लाया जाता। वहां से वह प्रत्येक सड़क पर ले जायी जाती। इस प्रकार जब तक सभी चौकियों के प्रदर्शन समाप्त न हो जायं एक ही समय पर कोई न कोई प्रदर्शन गाड़ी अवश्य रहती। और जब एक चौकी का प्रदर्शन

समाप्त होने लगता तो एक सडक से दूसरी सडक तक सन्देश पहुच जाता जिससे कि सुव्यवस्थित ढग से दूसरी अपने पूर्व-निश्चित स्थान पर पहुच जाती और एक ही समय मे सभी सडको पर एक ही तरह प्रदर्शन होता रहता। इन प्रदर्शनो को देखने मे बडा आनन्द आता था। वे ठाट और चौकियाँ भी बडी भली लगती थी जो सडको पर अभिनय के लिए निश्चित स्थानो पर सजी रहती थी।"

कुछ अभिनयो मे दो चाकियो को एक साथ प्रदशन के लिए आना पडता था। कभी-कभी तो अभिनेता अपनी चाकियो से उतर कर नीचे चले आते थे—"हेरड
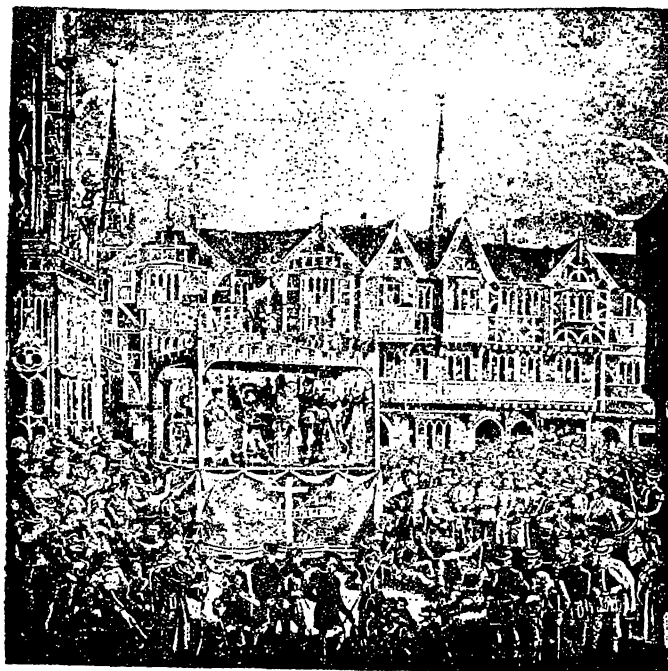
चलती गाडी पर अग्रेजी चमत्कार नाटक का एक मचीय दृश्य। (थामस शार्पकृत 'ए डिसर्टेशन आन दि पेजेन्ट्स आर ड्रामेटिक मिस्टरीज एन्शियेन्टली परफार्म्ड ऐट कावेन्ट्री' मे डेविड जी द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल मे उत्कीर्ण।)

मंच पर और सड़क पर भी गरजेंगे !" घुड़सवार मंच पर चढ़कर नहीं, नीचे ही अपना अभिनय करते थे। इससे अधिक अब पाठक इस अभिनय के अपने मानसिक चित्र की डेविड जी कृत पिछले पृष्ठ पर दिये गये चित्र से (यद्यपि यह चित्र कई शताब्दी बाद तैयार किया गया था) तुलना कर लेंगे और अपने चित्र को सुधार लेंगे।

हर ऐसे व्यावसायिक संघ के पास चौकियों की अपनी गाड़ी होती थी जिस पर वह किसी दृश्य अथवा घटना को अभिनीत करता था। हमें इन परिस्थितियों में ही साज-सज्जा की चमक-दमक और मंचीय वस्तु-समन्वय की सुसम्पन्नता की विकृति प्राप्त हो सकती है। हर संघ दूसरे संघ से इस बात में प्रतिस्पर्धा करता था कि उसकी चौकी का प्रदर्शन सबसे प्रभावशाली और शानदार हो। कभी-कभी वस्त्र-सज्जा शाही वस्त्र-सज्जा के समान शानदार हो जाती थी। अनेक विशिष्ट परम्पराएं भी इस सम्बन्ध में बन गयी थीं—जैसे हेरड की सारसेनिक पोशाक, पशु-शिर वाले दानव, देवताओं का केश-प्रसाधन और उनकी दाढ़ी, पंखदार देवदूत, आदि। ये गाड़ियां और वस्त्राभूषण साल-साल भर रखे रहते थे और एक अभिनय के बाद दूसरे अभिनय के पहिले उसमें सुधार भी होता जाता था। संघ के सदस्यों द्वारा आपस में मिलकर दिये गये 'प्रदर्शन-रजत' और नागरिकों के चन्दे से ही इस उत्सव का खर्च चलता था। कभी-कभी तो सवेरे पांच बजे से ही प्रदर्शन कार्य आरम्भ हो जाता था, जिससे कि अभिनय के लिए पर्याप्त समय मिल सके। इससे उन यूनानी प्रदर्शनों का स्मरण हो जाता है जो कि उषाःकाल में ही आरम्भ हो जाते थे।

इन संघीय नाटकों की जो पाण्डुलिपियां बची मिलती हैं—जिनमें से चेस्टर, यार्क, वेकफील्ड (टाउनले) और कवेंट्री नाट्य चक्र की चार पाण्डु लिपियां प्रायः पूर्ण और अक्षत हैं—वे बताती हैं कि एक नगर से दूसरे नगर के नाटकों में उद्धृत सामग्री काफ़ी है; साथ ही फ्रेंच मूल से भी कम भावानुवाद नहीं किया गया है। यह भी प्रसिद्ध है कि हर नगर के प्रदर्शन में पाण्डुलिपियों में परिवर्तन कर दिया जाता था। कभी-कभी दो घटनाएं एक साथ जोड़ ली जाती थीं, कभी-कभी एक अंक को कई भागों में विभक्त कर दिया जाता था जिससे नये-नये नाट्य संघ उनमें शामिल हो सकें। अंग्रेजी नाट्यचक्र फ्रांसीसी नाट्यचक्रों से अधिक व्यापक होते थे और साधारणतः उनमें मानव शृष्टि के आरम्भ से लेकर फ़ैसले के दिन तक की चर्चा रहती थी। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि नाट्यसंघों में अंकों का वितरण समुचित ढंग से हो। नाव बनाने वाली घटना को नाव बनाने वालों को दिया जाता था; ईसा मसीह के बपतिस्मा वाली घटना को चित्रित करने का काम नाइयों को दिया जाता था; पानी के मदिरा में परिणत हो जाने वाली घटना की ज़िम्मेदारी मदिरा विक्रेताओं को दी जाती थी और

अन्तिम भोज का काम नानवाइयों के सुपुर्द किया जाता था, आदि-आदि। यह तो सम्भव ही था कि सभी घटनाओं का विवरण पूरी तरह समुचित ढंग से होता। यार्क में १४१५ में जो समारोह हुआ था, उसमें कुछ अड़तालीस दृश्यों को चुना गया था। इनमें उदाहरण-स्वरूप, चमड़ा कमाने वालों पर 'परम शक्तिमान पिता ईश्वर को, आकाश, देव-दूतों, सर्वप्रधान देवदूतों, लूसीफ़र और उसके साथ नरक में गिर जाने वाले देवदूतों' को प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी डाली गयी थी। मोज़े के व्यापारियों को 'निर्जन स्थान में सर्प को मूसा द्वारा उठाये जाने का दृश्य, सम्राट फारोआ, आठ यहूदियों के विस्मय करने और आशा करने का दृश्य' उपस्थित करने का काम दिया गया था। सीसकार और साचा ढालने वालों को 'ईसा मसीह, दो भक्तों, व्यभिचार के लिए लांछित स्त्री, उस पर अभियोग लगाने वाले चार यहूदी' का अभिनय प्रस्तुत करने का भार दिया गया था, और ज़ीनसाज़ों तथा कांच का काम करने वालों को एक साथ 'ईसा मसीह द्वारा नरक के नष्ट किये जाने, बारह आत्माओं---छः पुण्यात्माओं और छः पापात्माओं'---का अभिनय प्रस्तुत करने का भार सौंपा गया था।

नाट्य संघ के सदस्यों के अभिनय में हमें एक वास्तविक सहजता और प्रभावशाली निष्ठामूलक सरलता का परिचय मिलता है। शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मिडसमर नाइट्स ड्रीम' में असंस्कृत लोगों के ग़ैर-पेशेवर अभिनय का बहुत अधिक मज़ाक उड़ाया है। मगर मात्र कल्पना के आधार पर उन लोगों के अभिनय की अनुपयुक्तता और कुघड़ता पर विचार करने के बजाय हमें आजकल के कृषक-कलाकारों के 'सलीब पर प्रभु ईसा मसीह' के रहस्यात्मक नाटक प्रस्तुत करते समय तथा लोकनाट्यों में अभिनय को देखकर तब उस ज़माने के अभिनयों पर विचार करना चाहिए। ओबर-आमरगो के नाटक संसार-प्रसिद्ध हैं, मगर इनसे भी अच्छा उदाहरण हमें थेयरसे और अर्ल के सुदूर गांवों में होने वाले अभिनयों में मिलता है, जहां किसान, लकड़हारे, और छोटे-मोटे व्यापारी इस उपयुक्त नाटक को बिना किसी आत्म-श्लाघा के, परन्तु पूर्ण आत्मविश्वास और अक्सर चारुता के साथ, अभिनीत करते हैं। ग़ैर-पेशेवर अभिनयों में कलाकार की सादगी, निष्ठा और स्वाभाविकता, अभिनेता को जो आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी भूमिका में आता है, अक्सर उस स्तर पर पहुंचा देती है जहाँ पेशेवर कलाकार जीवनभर अभ्यास और अनुभव करने के बाद ही पहुच पाता है।

चमत्कार-नाटकों में सर्वत्र निष्ठा और श्रद्धा की ही भावना व्याप्त नहीं थी (इंगलैण्ड में 'चमत्कार'—नाटकों से अभिप्राय सन्तों से सम्बन्धित कथाओं और बाइबिल की कहानियों से सम्बन्धित 'रहस्यों' से है) कुघड़ प्रहसनात्मक दृश्यों और हास्यकारी स्थलों को इन नाटकों में लोगों का मनोरंजन करने के लिए ही जोड़ दिया

जाता था——यद्यपि कभी कभी वे हास्य के स्तर के सम्बन्ध में बहुत अधिक सजग नहीं रह पाते थे। चमत्कार नाटकों से हम यहां दो प्रतिनिधि उद्धरण लेकर प्रस्तुत कर रहे हैं, उनमें से एक में प्रहसन का आभास मिलता है। चेस्टर नाटकों में नूह की बाढ़ वाली घटना में, नूह नाव को तैयार करके उसमें बैठने के लिए अपनी स्त्री से कह रहा है :

प्रिये, इसी नौका में हम लोग रहेंगे,
मैं चाहता हूं कि मेरे बच्चे और तुम इस नौका में आ जाओ।

नूह की पत्नी

वास्तव में नूह, मैं चाहती हूँ कि तुम बस करो,
चाहे तुम जितना भी चीखो चिल्लाओ,
मैं तुम्हारी बात नहीं मानने की ।

नूह

मेरी अच्छी पत्नी, मैं जैसा कहता हूं करो ।

नूह की पत्नी

भगवान् क़सम, चाहे तुम दिन भर खड़े मुझे-ऐसे ही
घूरा करो, मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी ।

नूह

हाय भगवान्! ये औरतें भी कितनी उल्टी खोपड़ी की होती हैं!
मैं कहता हूं कि इनमें मृदुता होती ही नहीं;
ऐसी जिद्दी औरत को देख कर आज
मेरी यह समझ पक्की हो गयी ।
मेरी नेक पत्नी, तुम्हें यह साफ़ मालूम होना चाहिए

कि तुम्हें इस नौका पर चढ़ना ही है;
तुम चाहे जितना भी इन्कार करो--जैसा कि
तुम कर रही हो--संत जान की क़सम !

(कुछ समय तक वे नाव को पूरा करने में लगे रहते हैं, स्त्री को छोड़ कर बाकी सभी नाव में बैठ जाते हैं। वह तब तक नाव में जाने के लिए तैयार नहीं होती जब तक कि उसकी सहेलियां नाव में न बैठ जायं)

नूह की पत्नी

ईसा मसीह की क़सम, तुम मुझे बहुत प्यार करते हो,
मगर तुम इन्हें भी अपनी नौका में ले लो
नहीं तो, तुम्हें जहां मन हो अपनी नाव ले जाओ,
वहां तुम अपने लिए एक बीबी भी ढूंढ़ लेना ।

नूह

सेम, मेरे बच्चे, देखो तुम्हारी मां बहुत नाराज़ हो गयी है ।
क़सम है, मैंने ऐसी विकट औरत नहीं देखी ।

सेम

पिता, मैं उसे अन्दर ले आऊंगा,
मैं कोशिश करूंगा, मैं ज़रूर कामयाब होऊंगा......

जेफ़ाते

मां, हम सब मिलकर तुमसे बिनती करते हैं--
देखो, हम यहां हैं, हम तुम्हारे बच्चे,
मौसम ख़राब है, तुम इन नौका में चली आओ,
इनके प्यार के नाम पर ही तुम चली आओ।

नूह की पत्नी

चाहे तुम जितना भी चीखो, मैं न आऊंगी—
मेरी सब सखियाँ तो यहां हैं ।

सेम

मैं जानता हूं मां, तुम्हारी मर्जी हो या न हो,
तुम्हें अन्दर आना ही पड़ेगा ।

नूह

आओ प्रिये, इस नाव में आ जाओ ।

नूह की पत्नी

तो लो इसका इनाम ! (नाक पर एक घूँसा मारती है)

नूह

हा, हा, यह तो मजा आ गया !

वास्तविक 'पैशन' नाटक तो बाइबिल की मूल कथा का अनुसरण करते हैं किन्तु उनके बाहर नाटच-चक्रों के अधिक गंभीर स्थलों के उदाहरण के लिए हमें 'अब्राहम और आइज़क' नाटक को पढ़ना चाहिए। यह नाटक ब्रोम की पाण्डुलिपि में मिलता है या इसी से मिलते-जुलते चेस्टर वर्ग के 'सेक्रीफ़ाइस आव आइज़क' में भी प्राप्त होता है। बाद वाले नाटक ऐसे लगते हैं कि 'ऐसी मानवीय ट्रेजिडी' नाटच-लेखन में फिर से प्रविष्ट हो रही है, जिसमें मानवीय कोमल करुणा का समावेश है। अब्राहम को ईश्वर की ओर से आदेश मिला है कि वह पहाड़ पर जाकर आइज़क का बध कर दे।

आइज़क

पिता, बताओ नहीं तो मैं चला जाता हूं,
बोलो, मुझे किसी तरह का आघात तो न पहुंचाओगे !

अब्राहम

आह ! हाय भगवान् ! कितना कष्ट है मुझे !
मेरा हृदय फटा जाता है !

आइज़क

पिता ज़रा मुझे साफ़ बताओ तो,
तुमने अपनी तलवार क्यों निकाल ली है ?
तुम उसे इस स्थान पर नंगी क्यों लिये हुए हो ?
मुझे तो इस पर बड़ा आश्चर्य होता है !

अब्राहम

आइज़क, बेटे, शान्ति, मैं प्रार्थना करता हूं,
तुम तो मेरे दिल के तीन टुकड़े किये दे रहे हो।

आइज़क

पिता, मैं बिनती करता हूँ, मुझसे कुछ छिपाओ मत,
मुझे बताओ कि तुम्हारे मन में क्या है ?

अब्राहम

आह, आइज़क, आइज़क, मुझे तेरा बध करना है !

आइज़क

हाय पिता, क्या यही तुम्हारी इच्छा है ?
क्या तुम अपने ही बेटे को पहाड़ी के इस
छोर तक क़त्ल करने के लिए लाये हो ?
यदि मैंने कभी तुम्हारी अवज्ञा की हो
तो अपनी छड़ी लेकर मुझे पीट डालो,
अपनी तलवार उधर रखो, मुझे मत मारो,
मैं तो अभी छोटा सा बच्चा ही हूं ।

अब्राहम

ओह, मेरे प्यारे बेटे, मुझे दुख है कि तुम्हारे
ऊपर मुझे इतना बड़ा ज़ुल्म करना ही पड़ेगा
मुझे ईश्वर की आज्ञा का पालन करना ही है
उसके कारनामे तो इसी प्रकार के होते हैं !

आइज़क

या ईश्वर, काश मेरी मां उस समय यहां होती !
तो वह अपने घुटनों के बल बैठकर
तुमसे प्रार्थना करती पिता, कि तुम
मेरी जान बख्श दो ;!

अब्राहम

ओ सुन्दर बालक, परन्तु मैं तो तेरा बध करूंगा ही,
मैंने ईश्वर को बचन दिया है जिसे मैं पूरा करूंगा,
मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता ।

अब्राहम

प्रभु, मैं तुम्हारी इच्छा का पालन करूंगा
यह नन्हा निरीह बालक जो यहां शांत पड़ा है

धिक है मुझे जो वध करने को
उसका हूं किसी भी विधि से तैयार ।

आइज़क

आह पिता तुम रुके क्यों हो ?
मेरा सिर काट लो, यह किस्सा ख़त्म करो ।
तुम मेरा दुख दूर करो,
अब मुझे बिदा करो ।

अब्राहम

आह बेटे ! तू मुझसे ऐसी बातें कर रहा है
कि जिसे सुनकर मेरे दिल के तीन टुकड़े हो रहे हैं ।
भगवान्, मेरे ऊपर दया करो !
तुम्हीं इस समय मेरे हृदय में बसे हो प्रभु !

आइज़क

अब पिता, मुझे लग रहा है कि मेरा अन्त निकट आ गया है !
भगवान्, परम शक्तिवान् प्रभु !
मैं अपने प्राण तुम्हें अर्पित करता हूं,
प्रभु, दया करो !

(यहां अब्राहम बेटे आइज़क को पकड़ कर बलि की वेदी से बांध देता है। वह ऐसा संकेत करता है मनो वह अपनी तलवार से अपने बेटे की गर्दन काट लेगा। इसी समय देवदूत आ जाता है, तलवार पकड़ लेता है और उसके वार को रोक देता है ......)

जिस समय यह मानवीय स्वर चमत्कार नाटकों में आने लगा था—एलिज़ाबेथीय नाटककारों ने बाद में इस स्वर को अपनाना शुरू कर दिया था—'मोरालिटी'

नाटकों में एक बिल्कुल दूसरे प्रकार का विकास होने लगा था। इंगलैण्ड में ही इस नाट्य रूप को पूर्ण रूप से विकसित और प्रफुल्लित होने का अवसर मिला। सन् १४०५ ई० में अभिनीत 'कैस्टेल आव पर्सीवेरेंस' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। नाटक के क्षेत्र में 'मोरालिटी' का वही स्थान है जो काव्य में 'एलीगोरी' का है। इसमें पात्र मानव गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथानक अथवा संघर्ष का आधार मनुष्य के सद् और असद्गुणों के या मनुष्य के लिए पाप और पुण्य के बीच का द्वन्द्व होता है—यद्यपि ऐसे कथानक में नाटकीयता के गुण बहुत कम होते हैं। इसके तो उदाहरण अवशिष्ट हैं, वे एक को छोड़कर, हमें चमत्कार नाटकों से कम रुचिकर लगते हैं क्योंकि आदि से अन्त तक ये निरन्तर अनुत्तेजक होते हैं। यदि इनमें प्राचीन नाटकों के दो पात्रों, शैतान और पाप, का समावेश न होता तो हमें ये 'नैतिकतापरक' नाटक असह्य लगते।

मध्य युग के उत्तरार्ध का एक फ्रेंच प्रहसन। (पाल राबर्ट कृत 'ला लितरेतूर फ्रांके में उद्धृत एक प्राचीन चित्र से।)

आधुनिक सामाजिक घटनाओं पर आधारित विशृंखलित नाटकों के व्यंग्य-अभिनेताओं की भांति ही, पाप निरन्तर शैतान को छेड़ता रहता है। इस प्रकार वह

धीरे-धीरे बढ़ती क्रियाशीलता को गति देता है और नाटक के वायवी पात्रों की अस्पष्टता और धुंधलेपन के अभिशाप को मिटाता रहता है। निश्चय ही अपनी नैतिक प्रकृति के कारण हम उस समय ताली बजा कर हर्ष प्रकट करते हैं जब पुण्य की विजय होती है, जब सुबुद्धि, गम्भीरता, उदारता, विनयशीलता अपनी ओर मनुष्य को आकृष्ट करती है। हम उस समय भी हर्ष प्रकट करते हैं जब मूर्खता, पेटूपन दम्भ, कामुकता और ईर्ष्या का पतन होता है। सभी-पात्र बिलकुल वायवी हों, ऐसी बात नहीं हैं। बुरी आदतें, कल्पनाशीलता, मानव, नेक सलाह, दुर्भाग्य, बुरा नतीज़ा, उदर शूल, जलोदर, दवा की गोलियां, यहां तक कि प्रातः भोज, नैश भोजन और सहभोज जैसे पात्र भी इन अभिनयों में होते थे। निश्चय ही इन नाटकों में ऐसे पात्रों की भी रचना होती थी जो पात्र विचार-परक न होकर अधिकाधिक मात्रा में मानव चरित्रपरक होते थे। ये थे ढोंग, कपट, भद्रता और ग़प जैसे पात्र। व्यंग्य सुखान्त नाटकों और पात्र-प्रधान सुखान्त नाटकों का वास्तविक प्रारम्भ यहीं से होता है।

'एवरीमैन' उन नाटकों में एक ऐसा अपवाद है जिसे देखने के बाद सभी मोरालिटी नाटकों को 'विभिन्न वस्तुओं का कौतुकालय से अधिक नहीं' कह कर निन्दा करने के पहिले एक बार रुक जाना पड़ेगा। ऐसा इसलिए कि यहां नैतिक शिक्षा और उपदेश का सामंजस्य, भ्रातृत्व, सत्कार्य, मृत्यु तथा इसी प्रकार के अन्य पात्रों के साथ कर दिया गया है, और एवरीमैन की आत्मा में जो निरन्तर संघर्ष होता रहता है, उसमें हमें एक नाटकीय आकर्षण-विकर्शण दिखायी देता है। सोलहवीं शताब्दी में इस प्रकार के नाटकों के प्रति लोगों के मन में एक विशेष आकर्षण था उसके अनेक शुरू के छिपे संस्करण प्राप्त होते हैं। डच भाषा में उसका एक अनुवाद भी मिलता है (या, जैसा कि कुछ लोग विश्वास करते हैं, डच भाषा का यही मूल ग्रन्थ है, जिससे अंग्रजी संस्करण तैयार किये गये थे)। हमारे युग में इस नाटक को एक नवीन प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी हैं। अंग्रजी और जर्मन भाषाओं में इसका उत्तम कोटि का अवतरण हुआ। साल्जबुर्ग में गिरजाघर के सामने जो अभिनय हुआ, वह वार्षिक नाटचोत्सव का विशेष आकर्षण बन गया था। मैक्स रीन्हार्त ने जिस संस्करण का उपयोग किया वह कुछ अतिशय भड़कीला हो गया था, उसमें मध्ययुगीन सरलता और सादगी नहीं थी, यद्यपि गिरिजाघर की पृष्टभूमि, धार्मिक संगीत और सादा खुले मंच के कारण उसकी प्राचीन प्रभविष्णुता बनी रही।

फ्रांस की तरह इंगलैण्ड में भी, धर्मनिरपेक्ष नाटक के आरम्भ को उत्तरकाल के धार्मिक नाटक की अभिव्यक्तियों से अलग कर सकना कठिन है। फ्रांस के 'फ़ीस्ट आव फूल्स' के ही अनुरूप बाद में इंग्लैण्ड में गिरिजाघरों के सामने गायन-वादन

करने वाले लोगों की मण्डलियाँ संगठित हुई थीं जो आनन्दोत्सव मनाती थीं। इनमें दावतें होती थीं, चर्च की पूजा-विधियों का व्यंग्य-विद्रूप उपस्थित किया जाता था, जुलूस निकलते थे और एक डोमिनस फेस्टी भी होता था जो यहां 'व्वाय विशप' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इन धार्मिक नाटचोत्सवों और धर्मनिरपेक्ष नाटचसक्रियता के बीच एक सूत्र खोजा जा सकता है। दूसरे सूत्र शाही मनोरंजनों--जिनसे भाटों और मागधों को अलग नहीं किया जा सकता--और लोकाचारों से मिलते हैं, विशेषतया वे लोकाचार जिनकी परिणति खड्ग-नृत्यों और ममर्स नाटकों में हुई।

नववर्ष के आरम्भ के प्रतीकस्वरूप जब धरती पर नवजीवन से सम्बन्धित उत्सव का एक सुनिश्चित रूप स्थिर हो गया, उसमें कुछ नृत्यों को मान्यता प्राप्त हो गयी, पात्रों के नाम पड़ गये (अब प्राण वापिस दिलाने वाला डाक्टर एक स्थायी पात्र बन गया था), तब नाटक के क्षत्र में उसका समावेश हो गया, इसके लोक-अभिनेता इस नाटक को बहुत व्यापक क्षेत्रों में ले गये। इसका प्रवेश सामन्तों के प्रासादों और राज्य-दरबारों में भी हो गया। इस समय इसमें नाटक के आरम्भ में गन्धर्व-गायनों, छद्मवेशी अभिनयों और इटली से आयी चेहरे लगाकर अभिनय करने की नवीन पुनरुत्थानकालीन विधि का घोल-मेल हो गया। शाही सवारियों, शाही प्रवेशों, और नागरिक चौकियों के निकलने के अवसर पर भी चेहरों के प्रयोग के स्थानीय प्रमाण मिलते हैं।

'मोरालिटी' के बाद और सत्यमेव अंग्रजी-नाटकों के आरम्भ के बीच के समय को 'इण्टरल्यूड' (अन्तराल अथवा विष्कम्भक) नाम से अभिहित किया जाता है। परन्तु यह शब्द अत्यन्त भ्रामक है। उसके उद्‌भव और प्रयोग के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच जो वाद-विवाद हुआ उसमें यह शब्द खो-सा गया। इस शब्द का प्रयोग पहिले के दरबारी उत्सवों के वर्णन के लिए किया गया--एक नाटचात्मक और संगीतात्मक अवकाश के रूप में, अथवा संभवतः सहभोज के अवसर पर नृत्य नाटच के रूप में। इसका प्रयोग एक प्रकार के 'मोरालिटी' नाटकों के लिए और चमत्कार नाटकों के पूर्व के प्रहसनों के लिए भी किया गया। अन्ततः एक प्रमुख संक्रमण-सहायक के रूप में इसका उपयोग उस युग में किया गया जब, उदाहरण के लिए, वह घटना होती है जिसमें नूह अपनी नाव में अपनी पत्नी को बिठाना चाहता है, और उस युग में जब कि शेक्सपियर के पूर्वज नाटककारों ने प्रहसनों की रचना की। जान हेउड के प्रहसनों को 'इण्टरल्यूड' कहा जाता है। अंग्रजी में यह धर्म-निरपेक्ष नाटकों का पहिला समूह है; इसमें उपदेशात्मक प्रयोजनीयता बिल्कुल नहीं है। इनका कोई भी सम्बन्ध बाइबिल के इतिहास या सन्तों की पौराणिक गाथाओं से

नहीं है। न तो ये पात्रों की विशिष्टता, न नाटकीय सजीवता की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं। परन्तु जहां तक हेउड का सम्बन्ध है, नाटक मानवों से, उनके जीवन से सम्बद्ध हो गया था। वह स्पष्ट रूप से मनोरंजन के मूल्यों से सम्बद्ध हो गया था। अब पुनरुत्थान-कालीन भावना के अंग्रेजी रंगशाला में प्रविष्ट होने का मार्ग प्रशस्त हो गया था।

निश्चय ही, यह तो हो नहीं सकता था कि धार्मिक नाटक का एकाएक अन्त हो जाता। चमत्कार-नाटक चक्र तो एलिजाबेथ के राज्यकाल तक चलते रहे। लेकिन तब तक 'मोरालिटी' नाटकों में एतिहासिक पात्र आने लगे थे, आगामी 'क्रानिकल' नाटकों का पूर्वाभास मिलने लगा था। ऐसे स्कूलों के रंगमंच भी थे जिन पर प्राचीन नाटक अभिनीत किये जाने लगे थे। मगर अब जब कि हम मध्ययुगीन नाटकों से सम्बन्धित अध्याय को समाप्त कर रहे हैं, यह ज़्यादा लाभकारी होगा कि हम उन देशों पर भी नज़र डाल लें, जिनका अनुसंधान करने का अवसर अभी तक नहीं मिल सका। विशेष तौर से जर्मन भाषा बोलने वाले राष्ट्रों में, जहां के नाटक फ्रांस और इंगलैंड के रहस्य और चमत्कार नाटकों के समान ही सर्व-प्रचलित थे, प्रस्तुतीकरण के तरीक़ों में एक विशिष्ट प्रकार की भिन्नता अवश्य थी। इंगलैण्ड में नाटचसंघों द्वारा आयोजित चलती गाड़ी की चौकियों पर होने वाले प्रदर्शनों और वेलेंसींस तथा अन्य फ्रांसीसी नगरों में एक लम्बे रंगमंच पर एक ही समय प्रदर्शित होने वाले दृश्यों के अतिरिक्त जर्मनी में नगर के सम्पूर्ण चौक अथवा जनस्थान को रंगशाला में परिणत कर दिया जाता था जिसमें अभिनय करती टुकड़ियों का जुलूस एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलता रहता था।

इस तरह १५८३ ई० में लूसर्न में ईस्टर नाटक बाज़ार के चौक में खेला गया। एक सिरे पर स्वर्ग बनाया गया। (वह एक मोर्चेबन्द, बुर्जियों वाले किले की भांति था) टेम्पुल (देवघर), पूजा-गृह, जुडास को लटकाने के लिए वृक्ष और दूसरे स्थल दोनों बग़लों में बने हुए थे। दूर दूसरे किनारे पर अन्य 'स्थानों' के अतिरिक्त नरक-द्वार भी बना हुआ था। दोनों दिनों के अभिनय के लिए जो मंच बने थे उनके मानचित्रों से यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रत्येक स्थान पर अभिनेताओं के साथ-साथ दर्शक भी चलते रहते थे अथवा ऐसे छज्जे तक अन्य स्थान थे जहां बैठकर दर्शक सम्पूर्ण प्रदर्शन को देख सकते थे। बहुत दिनों तक लोग यह विश्वास करते रहे कि रहस्य नाटकों के लिए एक दूसरे प्रकार का स्थायी रंगमंच भी प्रयोग में लाया जाता था, जिस पर ये स्थल तिमंज़िले रूप में निर्मित किये जाते थे और इन तीनों मंज़िलों पर, पहिली, बीच की और ऊपर की मंज़िल पर, एक के बाद दूसरी घटना प्रदर्शित की जाती थी। कभी-कभी सब से नीचे की मंज़िल पर नरक अथवा तपोभूमि रहती थी, बीच वाली मंज़िल पर

संसार और सबसे ऊपर की मंज़िल पर स्वर्ग या देवलोक रहता था। कहीं-कहीं नौ मंज़िलों वाले रंगमंच का भी वर्णन मिलता है। समझने में गलती शायद इसलिए हुई कि आमतौर से अन्य स्थलों के मुक़ाबिले स्वर्ग लोक को ऊंची मंजिल में बनाया जाता था और कभी-

कोपेनहेगेन में १६३४ ई० में चौराहे पर अलग-अलग चबूतरेनुमा मंचों पर अभिनीत एक धार्मिक नाटक के दृश्य। यहां फिर मौत का मुंह एक विशेष के रूप में दिखायी दे रहा है। (एक प्राचीन चित्र के आधार पर वारेन डी० चेनी द्वारा रेखांकन)।

कभी उसके नीचे ही नरक भी बना दिया जाता था। जो भी हो, अब 'अधिकारी' विद्वान् इस प्रकार मंजिलों के चर्चा-मात्र से ही रुष्ट हो जाते हैं। इटली और स्पेन में ये प्रदर्शन-गाड़ियां बहुत लोकप्रिय हुईं। मगर आमतौर से इनमें एक गाड़ी पर एक ही रंगमंच

होता था जिस पर सम्पूर्ण नाटक अभिनीत होता था और अब भी उन देशों में ऐसे मेले होते हैं, जिनकी विशेषता गाड़ियों पर अभिनीत होने वाले नाटक हैं।

मध्ययुगीन रंगशाला का सबसे महत्वपूर्ण अवशेष है ववेरिया के आल्पस में स्थित ओबर-अमेरगू में प्रत्येक दस वर्ष पर होने वाला 'पैशन प्ले'। इस बीसवीं शताब्दी में भी, उस सुदूर क़स्बे में निर्मित साधारण काठ की बनी रंगशाला, संसार की अन्य सभी रंगशालाओं से अधिक प्रसिद्ध है। वहां यात्री सबसे अधिक जाते हैं और प्रत्येक वर्ग के प्रेक्षक वहां के अभिनयों की सर्वाधिक प्रशंसा करते हैं। मगर वहां का रंगमंच परम्परागत धार्मिक नाटक के इमारती दृश्य और आधुनिक चित्रित सेटिंग्ज के बदलने के लिए निर्मित वाक्समंच के बीच एक रोचक-शायद दुर्भाग्यपूर्ण-सामंजस्य है। इसमें मध्ययुगीन रंगमंच के स्थायी स्थल मेहराबदार यवनिका-संपन्न भीतरी मंच के दोनों ओर बने हैं---साथ ही इसमें उन्नीसवीं शताब्दी की दृश्य-परिवर्तन वाली व्यवस्था भी है। मगर अभिनेताओं के मन में पुरानी आस्था, निष्ठा और अभिनय के प्रति आदर-भाव अब भी बना हुआ है। १६३३ ई० के बाद के सालों में जबकि पहिला अभिनय प्रस्तुत किया गया था, मूल नाटक, संगीत, प्रस्तुतीकरण के तरीक़ों में अनेक बार संशोधन-परिवर्तन हुए। मगर मध्ययुगीन भावना अब भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। यही उसका अच्छा पक्ष है। उस समय की कुछ कुघड़ता और सादगी अब मिट चुकी है। वहां जिन कुघड़ चित्रित सेटिंग्ज़ का प्रवेश हो चुका है उस पर हम नाक-भौं चढ़ा सकते हैं। मगर अभिनय को देखकर अथवा ऐंटन लैंग और उनके साथी अभिनेताओं से बातचीत करने पर हम यह जाने बिना नहीं रह सकते कि उनमें अब भी एक सेवा भावना, एक आस्था, एक विश्वास बना हुआ है। यह एक अत्यन्त सुन्दर और मध्ययुगीन विशेषता है जो हमारे ज़माने की रंगशालाओं में सर्वथा दुष्प्राप्य है।

अध्याय ८

गौरवशाली पुनरुत्थान : कुछ अपवादों के साथ

इटली के इतिहास के मुख्य गौरवस्थल 'पुनरुत्थान' काल में रंगमंच का जो वृतान्त मिलता है उसमें किसी ऐसे नाटक के प्रादुर्भाव के चिह्न नहीं मिलते जिसकी तुलना तत्कालीन वौद्धिक अनुसंधान, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य के क्षेत्रों की उपलब्धियों से की जा सके। उन क्षेत्रों में पुनरुत्थान एक विस्तृत भावना का पुनर्जन्म और रचनात्मक क्रियाशीलता का प्रस्फुटन-पल्लवन था : प्रथम तो अध्ययन और ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया का पुनर्जीवन हुआ जिसके कारण इस युग का नाम भी इसी के आधार पर पड़ गया, फिर व्यक्तियों द्वारा वैदुष्य के विलक्षण चमत्कार दिखायी पड़े, विचार स्वातंत्र्य के क्षेत्र में अद्‌भुत विकास हुआ। जिओतो, ब्रोनेलेशी, माइकेल एंजेलो और लियनार्डो द विंसी और अन्य कलाकारों की गणना सभी युगों के महान् कलाकारों में होती है।

नाटक की वाह्य साज-सज्जा में चाहे जितना भी गौरवपूर्ण विकास हुआ हो, और तत्कालीन सामाजिक जीवन की समृद्धि से उसका चाहे जितना रंगीन सामंजस्य रहा हो, फिर भी इस युग का रंगमंच एक भी स्थायी अखिल विश्व के महत्व का नाटक निर्मित करने में असफल रहा। आज हम फ्लोरेंस जा कर जिओतो के चित्रों या उसके मनोरम कैम्पानाइल को देखते हैं, ब्रोनलेशी के कैथीड्रल के गुम्बद को देखते हैं, माइकेलेंजेलो की मूर्तियां को देखते हैं; और जब हम राज-प्रासादों, चौकों, उद्यानों में घूमते हैं तो अपने मस्तिष्क में प्रचुर राजसी कृतियों और रचनाओं का एक चित्र खींच सकते हैं; साथ ही एक ओजपूर्ण, सुघड़, लोकप्रिय सुखान्त नाटक का भी चित्र खींच सकते हैं; परन्तु चौदहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक की अर्द्ध-काल्पनिक इटली की कविताओं, कहानियों और इतिहासों की समानता करने वाले किसी नाटक को एक पाण्डुलिपि भी हमें किसी पुस्तकालय की अलमारी में न मिलेगी।

जो भी हो, इटालवी पुनरुत्थान में आधुनिक रंगमंच के जन्म के चिह्न मिलते हैं। नाटक में पुरर्चना की प्रक्रिया यहां अन्य कलाओं की अपेक्षा कम परिपूर्ण रही, फिर भी पुराने रूपों के पुनर्जीवन और उनकी अनुकृति ने एक नवयुग का आरम्भ अवश्य किया। मध्ययुगीन कला अधिकांशतः विदेशी, अशास्त्रीय स्रोतों से उद्भूत हुई थी, परन्तु मध्ययुगीन रंगमंच विशेषतः नये स्रोत, पूर्णतया ईसाई स्रोत से विकसित हुआ था; यह एक बिल्कुल अलग चीज़ थी और इसका कोई भी सम्बन्ध यूनान और रोम की परम्परा से नहीं थी।

इटलवी पुनरुत्थान ने धार्मिक नाटक और उसके अनुरूप निर्मित रंगमंच को बिल्कुल छोड़ दिया और इस प्रकार मध्ययुगीन रंगमंच को आधुनिक रंगमंच में परिणत किया। इस तरह उसने रंगमंचीय विकास की धारा को प्राचीन शास्त्रीय युग की ओर मोड़ दिया। नाट्य रूपों के जो नये प्रतिमान तैयार हुए उनसे यद्यपि इटली में तो कोई शेक्सपीयर नहीं पैदा हुआ परन्तु स्पेन, इंगलैण्ड, फ्रांस में उसके लिए मार्ग खुल गया और बाद में आने वाले आज के यथार्थवाद के लिए भी सम्भावनाएं पैदा हो गयीं। एक दूसरी दिशा में परिवर्तन और भी अधिक तात्कालिक हुआ; इटली में रंगशाला के निर्माण की एक नयी विधि का विकास हुआ और इस विकास के फलस्वरूप केवल अभिनय के लिए प्रयुक्त मंचों और प्रांगणों के स्थान पर चित्रित सेटिंग्स का प्रयोग होने लगा। सारांश यह कि इटालवी पुनरुत्थान ने संसार के लिए नाट्य-प्रस्तुतीकरण को एक नया महत्व प्रदान किया और नाटक को सजाने की एक नवीन व्यवस्था दी, और इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से इसने शेक्सपियर, जानसन, कारनेल, रेसीन तथा अन्य नाटककारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

अक्सर मानवतावाद को इस आकस्मिक पुनर्जन्म, इस पुनरुत्थान रूपी जाज्वल्यमान भाव-प्रवणता के रहस्यों का उद्घाटन करने वाली कुंजी के रूप में याद किया जाता है। सदियों से सारी विचार-प्रक्रिया, समस्त अणुसंधान, सम्पूर्ण 'संस्कृत' चर्च से प्रभावित रही है; क्रिश्चियन आचार-संहिता की धाराओं, धार्मिक नियमों और संघ से असंपृक्त व्यक्ति या मनुष्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी, उसके बारे में सोचा ही नहीं जा सकता था, उसके सम्बन्ध में व्यवस्था ही नहीं दी जा सकती थी। अब एकाएक इटली में वह युग आ गया जब कि मनुष्य तर्क की ज्योति-शिखा को स्वयं अपनी ओर अभिमुख कर सकता था, अपने को गौरवशाली बना सकता था, अपने को सृजनकर्ता बना सकता था (और इसके साथ ही उन अतिरेकों को भी कर सकता था जो कि अंकुश की अतिशयता के बाद एकाएक मुक्ति प्राप्त करने के समय हो जाया करते हैं; अब तक तो वह सुनिश्चित मार्ग को छोड़कर चल नहीं सकता था, सौन्दर्य के सम्बन्ध में संशयालु

अथवा विरक्त रहता था, अज्ञान को ईश्वर और चर्च को प्रसन्न रखने का अच्छा साधन समझता था, मृत्यु के उपरांत सर्वनियन्ता के निर्णय के लिए अपने को तैयार करता था, चाहे वह तैयारी अपूर्ण ही क्यों न हो, परन्तु अब मानव, व्यक्ति, एक ऐसे संसार में आ गया था जब कि वह तर्क के सहारे यह जान सकता था कि आनन्दपूर्वक रहना सम्भव है, बुद्धि का प्रयोग किया जा सकता है, सौन्दर्य की सृष्टि हो सकती है और वह स्वयं अपना भाग्य निर्माण कर सकता है। उद्दीप्त आत्मा, उत्साह, पाशविक ओज के साथ वह विजय के मार्ग पर चल निकला। यूनानी और रोमन पाण्डुलिपियां, मूर्तियां और भवन और प्रासाद जब अनावृत्त होकर उसके सामने आये तो उसके आगे जीवन की, कला की पर्याप्त आनन्द की, कल्पनाएं भी उभरीं। रचना की दिशा में नये प्रयास करने के लिए वह आगे कूद पड़ा। आरम्भ में वह अनुकरण मात्र करता रहा, बाद में पूर्ण स्वतंत्रता और मौलिकता के साथ कार्य करने लगा। प्राचीन सामग्री के प्रति वह अत्यन्त भावुक हो उठा; उसने पाण्डुलिपियों का संग्रह किया, उनकी प्रतिलिपियां कीं, प्राचीन प्रासादों का उद्घाटन किया; पुराने आचार्यों के सम्बन्ध में लम्बे-चौड़े लेख लिखे, काव्यात्मक रचना के लिए जो अनिवार्य प्रेरणाएं थीं उन्हें फिर से ग्रहण किया।

उसने चर्च की सत्ता के सम्बन्ध में तर्क किये——उनका प्रतिफलन प्रायः स्पष्ट ही बाद के 'सुधार' (रिफ़ार्मेशन) आन्दोलन के रूप में हुआ। उसने अपनी सत्ता पर जो बल दिया उसके फलस्वरूप अन्वेषण और अनुसंधान का एक नया युगारम्भ हुआ, मुद्रणालयों के युग का विकास हुआ, ऐसे यंत्रों का विकास हुआ जिनके कारण युद्ध, अन्वेषण और जीवन में क्रान्ति उपस्थित हो गयी। इन तमाम बातों का अनिवार्य फल यह हुआ कि स्वतंत्रता और मानव-आत्मा की शक्ति को फिर से उपलब्ध किया जा सका।

पुनरुत्थान युरोप-व्यापी था। मगर इटली ही सर्वप्रथम उस अरक्षा, मिथ्या विश्वास, और सर्वव्यापी अज्ञान से उबरा जो इतने युगों से युरोप को ढंके हुए था। राजनीतिक, वाणिज्य-सम्बन्धी और जातीय परिस्थितियों के इस सगुम्फन से, जिसका विशद् विश्लेषण करना यहां अभिप्रेत नहीं है इटालवी जनता ने सर्वप्रथम बौद्धिक जिज्ञासा के श्वास का अनुभव किया; मानव स्वतंत्रता के नवीन आदर्श से आन्दोलित हुआ। उस समय आज की भांति इटली में राष्ट्रीय एकता नहीं थी। वहां स्थानीय शासनों अथवा नगरों या छोटे राज्यों में अभी एक दूसरे से अविराम युद्ध चल रहे थे। पोप और सम्राट् के सैनिक एक दूसरे की गर्दन काटने में लगे हुए थे। इटली के एक बड़े हिस्से पर अब भी विदेशी शासकों का अधिकार था——इन पर स्पेन, फ्रांस और जर्मन शासकों की सत्ता थी। सामन्तों में आपसी गुटबन्दी के कारण नगर-राज्यों में भी गृह-

युद्धों और आराजकता का दौर-दौरा था। परन्तु इस हिंसा, आतंक, क्रूरता, और राजनीतिक प्रवंचना के बीच ही विद्या और कला के पुष्प किसी तरह खिल उठे सीधे और सुन्दर होकर प्रस्फुटित हुए और हमेशा के लिए संसार को समृद्ध बना दिया।

शायद तीव्र अनुभूति एवं कल्पना-सम्पन्न सामंतों के हाथ की तलवार ही वह शक्ति थी जो उस हिंसापूर्ण युग के हाथों में से वह समृद्धि, अवकाश के वे क्षण और वह भव्यता छीन सकती थी जिसके फलस्वरूप उनके आश्रित और उनका उदारतापूर्ण संरक्षण प्राप्त करने वाले कलाकारों की सर्जनात्मक सक्रियता सम्भव हो सकी। निश्चय ही, यह मनुष्यों के——हम उन्हें अत्याचारी भी कह सकते हैं——दरबार ही थे जिनमें विद्या की समुन्नति हुई, जहां विदेशों से आये विद्वानों का अभिनन्दन किया गया, जहां वाद-विवाद, विचार-विनिमय और ज्ञान के विस्तार के लिए 'केन्द्र' संगठित किये गये, जहां रंगमंच स्थापित हुए। यहीं वह पुल निर्मित हुआ जिससे यूनान और रोम की दुनिया से बाहर आकर भविष्य की दुनिया के लिए मार्ग खुला। यहीं चर्च और राज्य के असंपृक्त मानव की उपलब्धियों का मूल्यांकन हुआ। दरबारों से ही——और उस समय पोप भी बड़े शासक और धर्मगुरु थे——वह जोश फैला जिसने सामंतों और कलाकारों और विद्वानों को आलोड़ित किया और जिसकी लपेट में अवसरवादी, व्यापारी और आवारागर्द, सभी आ गये। आधुनिक बौद्धिक और कलात्मक सृजनशीलता के सुदृढ़ और व्यापक आधार भी बन गये।

यदि आपको आपत्ति न हो तो हम यह कह सकते हैं कि दान्ते मध्ययुगीन भावना का प्रतीक बन गया और उसने उसे अंतिम रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की। उसका रहस्यवाद, उसकी निष्ठा, उसकी आत्म-निषेध की भावना, उसके पैगम्बरी उद्बोधनात्मक ढंग हमारे उपयुक्त कथन को औचित्य प्रदान करते हैं——साथ ही उसने आगे आने वाली बौद्धिक स्वतंत्रता का पूर्वाभास भी दे दिया था। शायद पेट्रार्क ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने नयी भावना के द्वार को पूर्ण रूप से उन्मुक्त किया। वह उन लोगों में सबसे महान था जिन्होंने इटली को मानवतावाद और उदारतावाद प्रदान किया——जिनके कारण दूसरे व्यक्तियों की रचना हुई, उनको प्रेरणा मिली। बोकैशियो अधिक स्पष्ट रूप में साहित्यक कलाकार था। इस सम्बन्ध में माथापच्ची करना बेकार होगा कि इन लेखकों और आधा दर्जन इनसे कम प्रतिभा वाले कवियों और उपन्यासकारों ने रंगमंच के लिए कोई विशिष्ट रचना क्यों नहीं प्रस्तुत की। बाद के युग में इन्हीं रचनाकारों अनुवादों से सामग्री संग्रहीत कर के संसार की कुछ महान् नाटयराशि तैयार की गयी। परन्तु यह याद रखना समीचीन होगा कि इनके कारण नाटच रचना में अब तक निषिद्ध अनेक विषयों और भावनाओं का उपयोग करने का मार्ग खुल गया। चर्च ने प्राचीन

साहित्य-ग्रन्थों को अनेक कारणों से निषिद्ध कर रखा था। उसने साहित्य की भर्त्सना इसलिए की थी कि वे विदेशी देवी-देवताओं का सम्मान करते थे, वे असंयमपूर्ण जीवन के लिए उत्तेजना प्रदान करते थे, वे मृत्यु के उपरांत के जीवन के लिए लोगों को तैयार नहीं करते थे, वे धार्मिक सत्ता की स्वीकृति के बिना भी मानवीय विचारों को आकर्षक-मोहक रूप प्रदान करते थे। जो भी हो, यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि पुनरुत्थान काल के इटालवी नाटककार अपनी नाटच रचनाओं में पर्याप्त ओजस्विता और प्रभावशाली नाटकीयता नहीं ला सके तो भी, इतना तो है ही कि इन आरम्भिक युग के कलाकारों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु-स्वतंत्रता अर्जित कर ली थी। अब आगे मानव-जीवन-बाइबिल से सम्बन्धित पौराणिक गाथाएं नहीं--गम्भीर नाटच-रचना के लिए सामग्री बनने लगा।

यदि हम समझना चाहते हैं कि आदिकालीन पुनरुत्थान युग के नाटचकार, जो रंगमंच की ओर अभिमुख हुए, उन्होंने निम्नकोटि की अनुकरणमूलक नाटक की ही व्यर्थ रचना क्यों की? तो हमें तो हमें अपने मस्तिष्क में यह बात रखे रहना आवश्यक होगा कि उस समय के रचनाकारों के मन में फिर से खोजे गये प्राचीन साहित्य के प्रति अदम्य उत्साह था। लैटिन और यूनानी पाण्डुलिपियों और भवनों के हर विवरण के अध्ययन-अनुशीलन के लिए एकादमियों का गठन हुआ था। प्लाटस, टेरेंस और सिनेका को फिर से खोज निकला गया था, उन पर विद्वतापूर्ण टीकाएं की गयी थीं, उन्हें गम्भीरतापूर्वक, निष्ठापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया गया था। हां, उनमें मूल भावनाओं की उसी प्रकार कमी थी, जिस प्रकार की कमी आजकल के 'स्कूल' में फिर पुराने नाटकों को प्रस्तुत करने में होती है। नये युग के रंगमंच को प्राचीन रंग-मंच की पूर्णतम अनुकृति बनाने के उद्देश्य से कुछ एकादमियों ने, अपनी दृष्टि में, प्राचीन रंगशालाओं का निर्माण किया। (यह एक ऐसा काम था जिसने, जैसा कि हम देखेंगे, बाद के युगों में रंगशाला-निर्माण की परम्परा को पूरी तरह प्रभावित किया) एकादमी की रंगशालाओं में और अस्थायी रूप से निर्मित शाही नृत्यशालाओं के रंगमंचों पर, लैटिन नाटक तुरन्त व्यापक रूप से प्रदर्शित किये जाने लगे उसमें ऐसे प्रेक्षक आते थे, जो, पाण्डित्य की दृष्टि से, उन नाटकों में सच्चाई के साथ रुचि लेते थे। (मगर अपने इतिहास 'हिस्टरी आव फ्लोरेंस' में टेरेंस अत्यन्त चातुर्यपूर्ण ढंग से कहते हैं, 'इन नाटकों को देखने वालों को कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था, इसलिए उनमें त्रुटि देखने का अधिकार भी किसी को न था।")

साहित्यिक नाटकों के विकास-क्रम का अध्ययन करते समय थोड़ी देर के लिए यदि हम अधिक रंगीन यात्रा नाटकों, चमत्कारपूर्ण नाटचाभिनयों, भांड़ों के प्रदर्शनों

को छोड़ भी दें, तो भी हमें उन नाटककारों के साथ अधिक देर तक उलझे नहीं रहना है जो पुराने नाट्य रूपों की नक़ल नयी विषय-वस्तु का प्रयोग करते हुए भी करते थे। सत्यमेव पुनरुत्थान काल के प्रारम्भ होने से पहले ही ऐसे एकान्तिक उदाहरण मिल जाते हैं जब कि रोमन प्रणाली के अनुसार ही नाटक लिखे गये। ह्रोसविथा ने ऐसे सुखान्त नाटकों की रचना की थी जिन्हें अत्यधिक अंश में टेरेंशियन नहीं कहा जा सकता। धर्मवादियों के भी ऐसे प्रयत्न हुए थे जिनमें चर्च-विषयक और देवपूजा विषयक साहित्यिक आदर्शों में सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की गयी थी। प्लाटिनस और टेरेंस को पुनर्जीवित करने के लिए युरोप के विभिन्न भागों के विश्वविद्यालयों और स्कूलों में भी पर्याप्त मात्रा में सक्रियता दिखायी गयी थी, इस विषय पर अस्पष्टता का एक आवरण सा पड़ा रहता है। परन्तु ऐसे बहुसंख्यक जेसुइट नाट्याभिनयों के प्रमाण मिलते हैं और इस बात के भी चिह्न मिलते हैं कि ऐसे विशेष प्रकार के मंच बनने लगे थे जो मध्ययुगीन रंगमंचों से बिल्कुल भिन्न थे, यद्यपि सम्भवतः वे प्राचीन रंगमंचों से बिल्कुल असंबद्ध न थे।

परन्तु सामान्यतः यही माना जाता है कि प्राचीन नाटकों का पुनर्जन्म चौदहवीं शताब्दी में हुआ। इसके पूरे प्रभाव का अनुभव पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ जब कि पाम्पोनियस लीट्स के तत्वाधान में रोमन एकादमी रोमन नाटकों और उनकी अनुकृतियों को लैटिन भाषा में प्रस्तुत करती थी और उसी समय फेरार, फ्लोरेंस, सोना, वेनिस, नेपुल्स तथा अन्य स्थानों में या तो ऐसे ही नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने वाले थे। देशी भाषा में वस्तुतः प्रथम मौलिक कृतियों की रचना सोलहवीं शताब्दी में हुई।

यदि नाटक की परिभाषा को थोड़ा सा व्यापक बना दें तो हम पुनरुत्थानकालीन दुःखान्त नाटक की तिथि को खींचकर सन् १३१४ई० अथवा उसके आसपास तक ले जा सकते हैं, जबकि अलबर्टिनों मुस्सातों ने अपनी 'एसेरिनीस' नामक छोटी सी दुःखान्त नाटिका की रचना की जिसमें उसने इटालवी विषय-वस्तु को ग्रहण किया और 'एकिलीस' की रचना की जिसका कथानक प्राचीन कथावस्तु के आधार पर निर्मित हुआ था। ये दोनों नाटक लैटिन भाषा में सेनेका का अनुसरण करते हुए लिखे गये थे। इसी तरह साहित्यिक सुखान्त नाटक का स्रोत हम पेट्रार्क के एक उस लुप्त नाटक में पा सकते हैं जिसकी रचना टरेंशियन नाटकों को प्रतिमान मान कर हुई थी। यह भी चौदहवीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश की बात है। सन् १४५०ई० तक प्राचीन नाटककारों के अनुकरण की प्रक्रिया पूरे जोर-शोर से चलने लगी थी। लैटिन भाषा ही नाटकों की भाषा के रूप में पूरी तरह पसन्द की जाने लगी थी। स्थानीय अथवा आधुनिक कथानक के स्थान

पर प्राचीन कथानक को ही स्वीकार किया जाता था। चर्च की सत्ता की अतिशयता के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई थी उसी का यह फल था कि यूनानी और रोमन देवी-देवताओं, नायकों, आख्यानों का अधिक से अधिक मात्रा में प्रचलन हुआ। ऐसे युग में जब कि पाण्डित्य की इतनी प्रतिष्ठा थी और समाज के उच्चवर्गों में प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को इतनी अधिक महत्ता प्रदान की जाती थी, राजदरबारों और एकादमी दोनों में लैटिन भाषा के कथोपकथनों को समझने वाले लोगों की संख्या भी अधिक हो गयी थी। इतना होते हुए भी उस युग के नाटकों का स्तर प्राचीन नाट्य-प्रतिमानों की तुलना में अत्यधिक निम्न था। इस युग में एक भी नाटककार ऐसा नहीं हुआ जिसका नाम याद रखा जा सके। इस लातानीकृत शताब्दी में विद्वान्-लेखकों की रचनाओं पर दृष्टिपात करते समय एक विचित्र बात यह मिलती है कि दान्ते और पेट्रार्क जैसे लेखकों को भी 'असंस्कृत' भाषा के कारण उस समय उपेक्षा का पात्र बनना पड़ा।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल से ही लगन के साथ इटालियन भाषा में नाटकों की रचना होने लगी। गियाँ गिओर्गियो त्रिसिनो को ही अव्याहत रूप से लिखने वाले प्रथम इटालवी भाषा के दुःखान्त नाटककार के रूप में सामान्यतया स्वीकार किया जाता है। उसका सबसे प्रसिद्ध नाटक 'सोफ़ोनिस्बा' १५१५ ई० में लिखा गया था, बार-बार मुद्रित हुआ था और १६५२ ई० में अन्तिम रूप से रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया था। अपने जीवनवृत्त और अपनी रचना में ही यह लेखक, उस युग की जानकारी के लिए कुंजी प्रदान करता है। उसी से यह भी पता चलता है कि पुनरुत्थान काल में इटली किसी महान् नाटककार को उत्पन्न करने में क्यों असफल रहा। सिमन्ड्स के अनुसार[१] त्रिसिनो एक महान् वैदुष्यपूर्ण और अध्यवसायी व्यक्ति था, जिसने व्याकरण-सम्बन्धी समस्याओं और साहित्यिक विशुद्धता के लिए अपने को खपा दिया। उसने प्राचीन आलोचकों का अटूट परिश्रम के साथ अध्ययन-परिशीलन किया और शुद्ध इटालवी साहित्य-सर्जना के लिए नियमों-प्रणालियों की स्थापना की। उसने इटालवी भाषा की कमियों को दूर करने के काम में अपने को लगाया। इसके लिए उसने स्वयं प्राचीन वीर-

---

१०. 'ए शार्ट हिस्टरी आव द रेनासां इन इटली', लेफ्टिनेण्ट कर्नल आलफ्रेण्ड पियर्सन द्वारा जान एडिंग्टन सिमन्ड्स कृत पुस्तक से गृहीत (लन्दन १८९३)। सिमन्ड्स की महत्वपूर्ण पुस्तक 'रेनासां इन इटली' का यह संक्षिप्त संस्करण है और मैं समझता हूं कि इस विषय पर यह सबसे अधिक सुपाठ्य पुस्तक है। रंगमंच पर सत्यमेव एक प्रामाणिक और विशाल ग्रन्थ जोसेफ़ स्पेंसर केनार्ड कृत 'द इटालियन थियेटर' (न्यूयार्क, २ भाग, १९३२)।
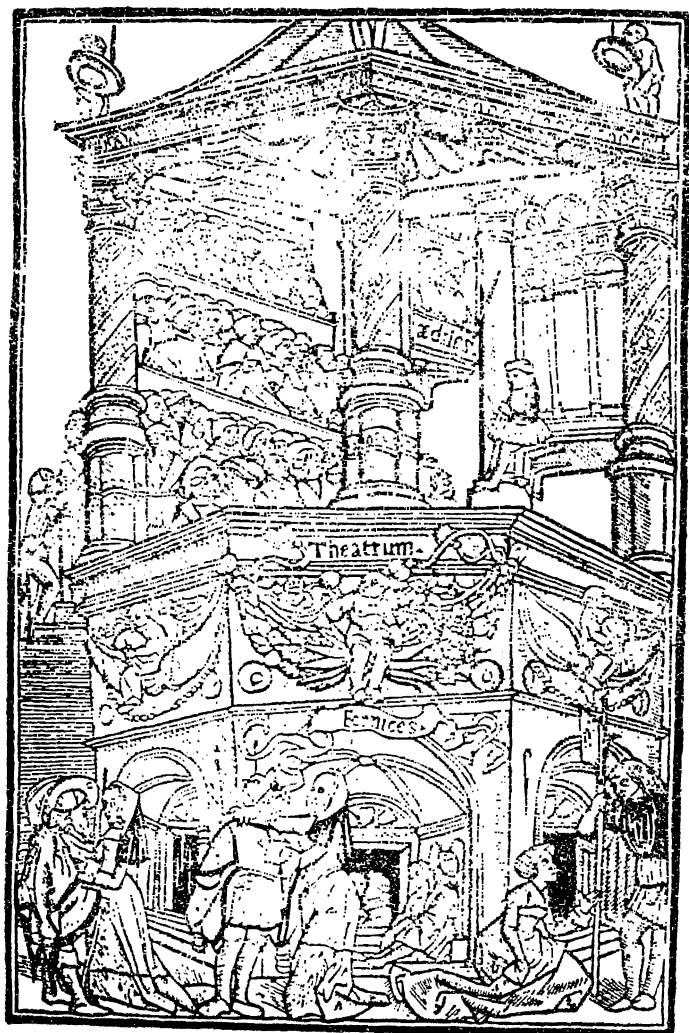
पन्द्रहवीं शताब्दी में प्राचीन क्लासिक नाटकों के पुनर्जीवन के लिए बनी एक रंगशाला का एक दृश्य। आप लक्ष्य करें कि इस रंगशाला का मंच वैसा ही है जैसा कि अगले चित्र में प्रदर्शित किया गया है। (टेरेन्स के ट्रेशेल संस्करण, १४९३, से)

काव्य के अनुरूप एक महाकाव्य की रचना की। उसने एक दुःखान्त प्रति भी तैयार की जिसकी तुलना एथेंस की रचनाओं से की जा सकती थी। इटालियन लिबराटा और सोफोनिस्बा अत्यन्त योग्यतापूर्ण परन्तु निर्जीव रचनाएं हैं, जिनमें काव्यात्मक प्रतिभा के अतिरिक्त अन्य किसी भी बात की कमी नहीं है। ये रचनाएं इन्हीं सिद्धान्तों का फल है।

संक्षेप में, त्रिसिनो ने एक शुद्ध, अनुकरणात्मक, नाट्य की दृष्टि से निर्जीव दुःखान्त नाटक लिखा। प्राचीनों का अनुकरण करते समय उसने यूनानी प्रतिमान का आधार लेने की वजाय सेनेका को आधार मानने की बड़ी भूल की। उस युग के इटालवी नाटकों में सेनेकी नाटकों की मारधाड़ और भय, उत्पीड़ तो है ही और वही अलंकारों की भरमार भी है, मगर उनमें यूनानी काव्य की स्पष्टता, अनिवार्यता और काव्यात्मकता नहीं है।

त्रिसिनो के बाद हम, इस प्रकार अभ्यास करने वाले और अपने समय में महत्वपूर्ण रुशेलाइ और अरेतिनो जैसे रचनाकारों का भी नाम ले सकते हैं, जिनक बारे में सुखान्त नाटकों की चर्चा करते समय हम फिर सुनेंगे, हम सिन्थियो का नाम ले सकते हैं जिसने पहली बार स्वयं अपने कथानकों का निर्माण किया (जिसका 'लेआखेशे' सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक रक्त-रंजित माना जाता है); डोलचे और तास्सो का नाम ले सकते हैं जिनकी चर्चा ग्रामीण नाटकों का अनुशीलन करते समय फिर आयेगी। इस पूरे युग में १५०२ से अठारहवीं शताब्दी तक, जबकि विकास-चक्र इटली से पेरिस और पेरिस से फिर इटली तक फ्रांस के प्राचीन दुःखान्त नाटक के प्रभाव में पूरा हो चुका था, वर्णनात्मक रचना से वढ़कर अभिनय नाटक तक की उपलब्धि हो चुकी थी, विषयवस्तु की चुनाव-सम्बन्धी स्वतंत्रता तथा छंदों के सैविध्य का लाभ भी हो चुका था। परन्तु अलफीरी के पहिले, इटली में शायद ही अखिल विश्व के महत्व का कोई दुःखान्त नाटक लिखा गया हो।

लैटिन के नाटकों से आगे बढ़कर इटालियन भाषा में नाट्य-रचना के बीच का संक्रमण सुखान्त नाटकों में पहिले और दुःखान्त नाटकों में कुछ बाद में आया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में देशी भाषा में सुखान्त नाटक रचे जाने लगे थे—इटालियन नाटककारों द्वारा विरचित ये नाटक अनुदित भी थे और अनुकृतिमूलक भी थे। लगभग ठीक इसके बाद पुनरुत्थान काल के सबसे महत्वपूर्ण नाटककार का उदय हुआ—वह था लोडोवियो अरिओस्तो जिसका ओरलेण्डी फ्यूरियोसो उसके अन्य नाटकों से अधिक सूक्ष्म और उत्कृष्ट है, यद्यपि उसके बाद के लिखे अनेक नाटक अब भी मिलते हैं और आज भी इटली में उनका अत्यधिक सम्मान किया जाता है। अरिओस्त्रो (१४७४ ई० से

१५३३ई० तक), पुनरुत्थान काल के हृदय में ही रहा और उसने जो सामग्री दी उसमें उसके युग की विराटता, उद्दण्डता और नैतिक उच्छृंखलता के चिह्न मिलते हैं। उसके नाटक 'लेना' का मूल्य सुखान्त नाटक की हैसियत से जो कुछ है, वह तो है ही; उसमें फ़रारा के समाज का चित्र विशेष-रूप से मिलता है। प्राचीन और आधुनिक नाटक के बीच वह उसमें फ़ेरारा के एक विशेष कड़ी के रूप में है।

ऐसे लोगों में, जिनका नाम देशी सुखान्त नाटकों का अनुसंधान करने वालों में अरिओस्तो के पहिले आता है, एक बोइआर्दो है जिसने १४९४ ई० अथवा उससे पहिले अपने नाटक की रचना की। लगता है कि वह नाटक मौलिक कम, भावानुवाद अधिक है। फ़िर दोविज़ियो है, जिसका बाद में कार्डिनल वीवेना नाम पड़ा। इसके हास्यरस-पूर्ण सुखान्त नाटक का नाम 'कलान्दरा' था। यह नाटक अश्लील परन्तु मनोरंजनपूर्ण था। यह प्लाटियस कृत मीनाश्मी के आधार पर निर्मित था और 'नैतिकता का बलिदान करके इसमें हास्यरसात्मक प्रभाव उत्पन्न किया गया था।' सन् १५०९ ई० में उरबिनो में यह रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया था। इटली के सभी दरबारों में यह सफलतापूर्वक अभिनीत हुआ था और बाद में पोप लियो दशम् को इस नाटक ने ऐसा मोह लिया कि उन्होंने बार-बार इसका प्रदर्शन अपने परिचारकों एवं मेहमानों के सामने करवाया। इसके बाद रिची का नाम आता है। उसकी रचना ही सर्वप्रथम इटालियन पद्य-बद्ध सुखान्त नाटक है। परन्तु अधिकतर आलोचक इसे महत्वहीन समझते हैं क्योंकि यह 'मोरालिटी नाटक' का भावानुवाद है, प्राचीन परम्परा का नाटक नहीं है।

अरिओस्तो की बग़ल में तोनिकोलो मैकियावली और पियत्रो अरेतिनो ही शोभा पाते हैं; ऐसे महान् स्वेच्छाचारी नाटककारों के त्रिगुट ने शायद ही कभी रंगमंच को गौरव प्रदान किया हो। एक ऐसे युग में, जब कि लोग अनियंत्रित रूप से, तीव्रता के साथ, निर्ममतापूर्वक, लम्पटतामय जीवन व्यतीत करते थे और प्यार-मुहब्बत करते थे, जब कि कोई भी चतुर सैनिक अपने व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सम्मान की चिन्ता किये बिना ही शासक बन सकता था और सम्पत्ति बटोर सकता था, जब कि हिंसा, विश्वास-घात, अविनय, शारीरिक हिम्मत की ही भांति कारगर अस्त्र थे, इन दोनों रचनाकारों ने अन्तिम रूप से नाटकों की प्राचीनता की सीमाओं से बाहर निकल लिया और उसका प्रयोग अपने आसपास के समाज का मनोविनोद करने और उसका चित्रण करने के लिए किया। उन्होंने कोरे सिद्धान्तवादियों को अखाड़े से बाहर धकेल दिया। ये वह लोग थे कि जो मौलिक कार्य नहीं करते थे, जो दूसरों की राय पर निर्भर थे, जो प्राचीन परम्पराओं के सामने सिर झुका देते थे। इन लोगों ने सबसे पहिले प्लाटस और टेरेंस को भुला दिया।

अरेतिनों ने ज़ोरदार शब्दों में ललकारा था, "मैं मनुष्यों को उसी रूप में पेश करता हूं जैसे कि वे हैं, उस रूप में नहीं जैसा कि उनको होना चाहिए।" शायद वह मैकियावेली की ओर से भी यही उद्घोष कर रहा था। इन दोनों में एक सीधी

एक चबूतरेनुमा मंच पर टेरेन्स के नाटकों के दृश्य (ट्रेशेल संस्करण से)।

सम्प्रेषणीयता थी, दीक्षणता थी, सहजता थी जो कि उपर्युक्त वक्तव्य में प्रत्यक्षतः सन्निहित है। निश्चय ही उनके नाटक शक्तिशाली थे, ओजस्वी थे, चटख, प्राणपूर्ण दृश्यों और घटनाओं से परिपूर्ण थे, उत्तेजनापूर्ण जीवन का मोहक दृश्य उपस्थित करते थे, परिहास, चातुर्यपूर्ण कथोपकथन से प्रायः सम्पन्न थे। फिर भी उनमें उस अन्तिम, सामंजस्यकारी, एकतामूलक नाटकीय गुण का अभाव था, जो कि उनकी रचनाओं को बाद के युग में आने वाले मोलियर के चित्रों अथवा शेरीडन के चुभते व्यंग्यात्मक नाटकों के समकक्ष कर देता।

यह कहा जा चुका है कि अरेतिनो इटालियन रिनासां की प्रतिभा के स्खलन का प्रमाण और इटली में राष्ट्रीय नाटक के विकास की असफलता के मूल में जो त्रुटि थी उसका प्रतीक था। उसके नाटकों में जो शाश्वत परिमार्जन की कमी थी उसका कारण उसका आन्तरिक अपरिष्कार ही था, यह कि इटालियन संस्कृति में जो अधः पतन आ गया था वह उनकी मानसिक हीनता एवं वाह्यहीनता और अश्लीलता में प्रगट हुआ था, वैसे ही वह मनुष्य की प्रतिभा के खोखलेपन में, उसके अस्थायित्व में अभिव्यक्त होता है। अरेतिनो ने एक शानदार ढंग से, नाटक के ऊपर वैदुष्य की शृंखला को तोड़ फेंका, मगर उसकी आत्मश्लाघा, उसकी इर्ष्या और उसकी वासनामयता ने कलाकार की हैसियत से उसे धोखा दे दिया। ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि

आधुनिक प्रेस में जो कुछ होता है---प्रचार, धमकी, रिपोर्टिंग, यथार्थवाद, उत्तेजनापूर्ण समाचार अर्थात् समाचारपत्रों में जो नाटक होता है। उन तरीकों को और उस युग को नाटक के क्षेत्र में आरम्भ करने वालों में वह विशिष्ट व्यक्ति था।

मेकियावेली-कृत मान्द्रागोला के कथानक की रूपरेखा से अथवा उसके कुछ वाक्यों---वाक्यावलियों को उद्धृत करके उस युग के सुखान्त नाटकों की स्थिति को जाना जा सकता है; हमने इसी प्रकार दूसरे युगों के नाटकों के उदाहरण दिये हैं। मगर रुचि और प्रथा इतनी बदल गयी है कि लगता है कि उस नाटक का कोई भी सम्बंध रंगमंच से नहीं था अथवा आज के प्रेक्षकों से उसका लगाव असम्भव है। व्यापक दृष्टि से (अथवा संकुचित दृष्टि से ?) यह बात महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती। इतना ही कहना अलम होगा कि इस प्रकार का कथानक---एक विवाहित स्त्री एक पुरुष को प्यार करने लगती है और इस बार स्थिति और भी अधिक रोचक हो जाती है क्योंकि पति अपने ही विश्वासघात की ओर उदासीन हो जाता है---और अपूर्व दार्शनिक उदासीनता के साथ किया गया यह संपूर्ण चित्रण, लैटिन जाति के लोगों को अत्यधिक प्रिय था।

अरिओस्तो के तुरन्त बाद ऐसे दो घोर पातकी लोगों का सामने आ जाना इस बात का प्रमाण और उदाहरण है कि उस युग के 'वैदुष्यपूर्ण' रंगमंचीय जीवन का क्या हाल था। अधिकतर तो साहित्यिक नाटक निर्जीव अनुकृतियां करके अपने को समाप्त कर चुका था। जिन पहले नाटककारों ने उसे ओजस्विता और मौलिकता प्रदान की वे यही पूर्णतः अविश्वसनीय और स्वेच्छाचारी थे : वे अरेतिनो 'जिसका नाम तारांकित होना चाहिए' और मेकियावेली जो हमारी भाषा में स्थायी रूप से दो समानरूप से सार्थक वाक्यों द्वारा याद किया जाता है' 'मैकियावेलियन और (जैसा कि कुछ लोग कहते हैं)' 'बूढ़ा निका !' कोड़ियों दूसरे नाटककार और हजारों की संख्या में परिचित सुखान्त नाटक यह साबित करते हैं कि अरेतिनो और मेकियावेली का जीवनकाल तथा उसके बाद का युग कितना उर्वर था। परन्तु इटली में साहित्यिक सुखान्त नाटक उन्हीं की मृत्यु के साथ स्वयं मर गया।

इटालियन पुनरुत्थानकालीन रंगमंच की कहानी का एक उज्ज्वल पक्ष भी है। ज्योंही हम स्थायी नाट्य-पाण्डुलिपियों से मुंह मोड़ देते हैं, हमें असाधारण रंगमंचीय सक्रियता के प्रमाण मिलते हैं। सड़कों पर प्रदर्शित होने वाले सुखान्त नाटक कामेदिया देले आर्ते के विकासशील, मनगढ़न्त और प्रायः पूर्णरूप से ही अलिखित कथोप-कथन से भरे नाटक ओजस्वी, एकदम नाटकीय थे, जिनकी मौलिकता प्रशंसनीय थी। उस युग की परिष्कारहीनता और अश्लीलता इन नाटकों में अवश्य थी। पुनरुत्थान

काल की आरम्भिक अवस्था में इसमें परिष्कारहीनता तो थी परन्तु उसमें निन्दा-शीलता न थी; उसमें अभिव्यंजन की शक्ति थी और वे शाश्वत रूप से मनोरंजन-कारी थे। दरबारी रंगशालाओं में नाटच-प्रस्तुतीकरण की कला एक नवीन विशदता, नवीन विराटता के साथ विकास कर रही थी, जिसका सामंजस्य समृद्धिशाली जीवन और प्रतिस्पर्द्धी सामन्ती परिवारों के वैभव-प्रदर्शन के साथ पूर्ण रूप से होता था। मानवीय स्वतंत्रता के बेपरवाह और रंगीन विकास में रंगमंच अपनी ओजस्वी भूमिका अदा कर रहा था।

फ्लोरेंस पुनरुत्थान का गहवारा था। कला के क्षेत्र में अत्यन्त समृद्धिशाली उपलब्धियों का केन्द्र भी वही था। फ़्लोरेंटाइन राज दरबारों की तुलना माण्टुआ के गानज़ागों और इस्टेन के आधिपत्य में फ़ेरारा के दरबार तथा इसी प्रकार के अन्य दरबारों से की जा सकती है। परन्तु फ़्लोरेंटाइन राजदरबारों ने और भी अधिक महान् नवयुगारम्भकारी के रूप में महत्ता प्राप्त की। मेडिसी शासक पुन-रुत्थान काल के सैनिक--राजनीतिज्ञ, व्यापारी राजा और शासक-संरक्षक के रूप में उस युग का प्रतिनिधित्व करने लगे। मेडिसी के पोप यद्यपि उतने अधिक अधार्मिक नहीं थे, फिर भी उन्होंने रोम के पोप के दरबार को उसी प्रकार अलंकृत किया और उसी प्रकार सजे-बजे धर्म-निरपेक्ष दरबारों की प्रकृति बनायी जिस प्रकार उनके पुरखों ने आरनो तट के नगर में बनायी थी।

ये सामन्त और उनके दरबारी, उनके वे प्रतिद्वन्द्वी जिन्होंने उनके सामने सिर झुकाया था या जो उनकी गद्दी हड़पने और उनका बध कर देने के लिए मौक़ा ढूढ़ते रहते थे, यह सब करने के साथ-साथ सामाजिक नाटकों के अभिनय और कला-प्रयासों, अपनी प्रेमिकाओं और अपने आश्रित कवियों की सहायता भी किया करते थे। इन सब बातों ने मिलकर शाही दरबारों के वैभवशाली ऐश्वर्य को ऐसी रंगीनी प्रदान की जिसकी तुलना अन्य किसी भी युग से नहीं की जा सकती। एक ज़माने में फ्लोरेंस की दीवारों के पीछे तीस राजमहल थे। उसके जरा नीचे ही एक सुसंस्कृत आबादी रहती थी जो अत्यन्त सजीव, मानसिक दृष्टि से स्वतंत्र और कला-प्रेमी थी। यदि इस वर्ग के नीचे के लोग बिलकुल ग़रीब थे, ज़लील जीवन व्यतीत करते थे, अविश्वसनीय जुर्म किया करते थे--हमें बताया जाता है कि मानव जीवन का ऐसा अधःपतन अन्यत्र कभी नहीं हुआ था--तो हम अपना कंधा सिकोड़-कर ही चुप रह जा सकते हैं क्योंकि राजदरबारों में जो शाही अभिनय होते थे, उनसे इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं था।

कोसिमो दे मेडिसी, क्रूर, दम्भी, सनकी, सिद्धान्तहीन सैनिक होते हुए भी कलाओं का संरक्षक था। उसने दूर-दूर से विद्वानों को अपने दरबार में बुलाया;

शिल्पियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों को फ्लोरेंस को अलंकृत करने के लिए अत्यधिक उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी; कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन जानकार आलोचक की तरह किया; कला की सामग्री और पाण्डुलिपियों को संगृहीत किया; प्रतिलिपिकों को खूब कार्यव्यस्त रखा; अपने राजप्रासाद को साहित्यिक, दार्शनिक और कलासंस्थाओं तथा संघों का केन्द्र बनाया; प्लेटोनिक एकेदमी की स्थापना की; संक्षेप में, राजनीतिक दृष्टि से तो उसे 'पेटर पेट्री' की उपाधि दी गयी, मगर उसने अपनी उदारता से सदियों तक के लिए कलाप्रेमियों को ऋणी बना लिया।

इसके बाद लोरेंजो महान की बारी आती है। उसका यही नाम मेकियावेली ने अपने एक ग्रन्थ के उत्सर्ग में रखा था और इसी नाम को बाद के इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया और क़ायम रखा। उसकी रंगशाला का चित्र सामने आते ही हमारी कल्पनाशीलता को उत्तेजना मिलती है। लोरेंजो तो पुनरुत्थान कला की स्वतंत्रता की भावना का अवतार ही था। वह स्वयं योग्य कवि और विद्वान् था, गीतकार था और कार्निवल के लिए गीत लिखा करता था; वह एक ऐसा संरक्षक था जो कि प्राचीन पुनर्जागरण और इटालवी प्रयासों के बीच सामंजस्य स्थापित करता था; बौद्धिक प्रयासों में तथा कला के संरक्षण में अतिशय उत्साहपूर्वक और ओज के साथ भाग लेता था; उतने उत्साह के साथ वह प्रणयलीला, भालेबाजी, अथवा राजनीतिक षडयंत्रों में भाग नहीं लेता था। यही वह राजा था जिस हम एक रात यह आदेश देते हुए पाते हैं कि टेरेंस का एक नाटक अवश्य रंगमंच पर प्रस्तुत किया जायगा और वह नृत्यशाला के मंच पर अभिनीत होगा, बिल्कुल वैसे ही जैसे वह प्राचीन काल में होता था; दूसरी रात हम यह आदेश देते हुए पाते हैं कि उसके सबसे हाल के संरक्षण-प्राप्त कवि का सबसे नवीन (सेनेका के बाद) दुःखान्त नाटक अभिनीत किया जायगा, या किसी अन्य संध्या को चेहरे लगाकर पौराणिक नाटक खेला जायेगा; उसमें अमुक अमुक दल के नर्तक भाग लेंगे, उसमें वैविध्यपूर्ण सेटिंग्जों का प्रयोग होगा जिन्हें थोड़ा-थोड़ा करके कलाकार और यात्रा-नाटकों से दरबारी रंगशाला में ले आये हैं।

किस नाटक को इन ज़ालिम शासकों की रंगशालाओं में अभिनीत किया गया उन्हें, जैसा कि हम देखते हैं, विश्वव्यापी महत्व नहीं मिल सका। फिर वह कौन सी वस्तु है जिसने पुनरुत्थान काल के रंगमंच को इतना देदीप्यमान् बनाया ? मुख्यतया ऐसा बाहरी अलंकरण के कारण हुआ। साथ ही ऐसा इसलिए भी हुआ कि तत्कालीन रंगशालीय सक्रियता उस युग के जीवन के बिलकुल अनुकूल थी। नाट्य-कला के प्राचीन तत्वों का पुनरान्वेषण-रंगशालाओं के रूपों, सेटिंग, यंत्रों—दृश्यामूलक प्रदर्शन को नवीन प्रचुरता—यही वे उपलब्धियां हैं जो उस युग की भावना के अनुकूल थी। शानदार

राजसी ढंग से सजी-बजी जो शाही नृत्यशाला ही रंगशाला बन गयी थी, उसके रंगमंच को सजाने के लिए, उसको अलंकृत करने के लिए उदारता-पूर्वक धन व्यय किया जाता था।

यदि हम तत्कालीन समालोचकों की दृष्टि से देखें तो उस अवसर की भावना को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। (थोड़ी देर के लिए हम भूल जांय कि यह वर्णन मेडिसी के दरबार का नहीं किसी अन्य दरबार का है और इसकी तिथि लोरेंजो महान् की मृत्यु के एक वर्ष बाद की है। वेनीशियन दरबार समान रूप से युग का प्रतीक है। बीट्रिस द' इस्ते मई १४९३ ई० में अपने पति रीजेंन्ट आव मिलान को वेनिस से लिखते हुए इस तरह कहती हैं :

"भोजनोपरान्त थोड़ा सा आराम करने के बाद कुलीन लोगों का एक बड़ा-सा दल हम लोगों को राजदरबार के समारोह में ले जाने के लिए आया। हमने बजरे में यात्रा की और जब हम राजमहल में पहुंचे तो विशाल हाल में ले जाये गये। वहां हाल के एक किनारे पर लम्बा-चौड़ा चबूतरा बनवाया गया था। वह दो हिस्सों में दीवार के सहारे इस पार से उस पार तक बना था और हाल के बीच में एक चौकोर रंगमंच बना था। यह मंच नृत्य और अभिनय के लिए था। हम चबूतरे के ऊपर चढ़े तो वहां हमें वेनिस की सम्भ्रान्त महिलाएं मिलीं, उनकी संख्या एक सौ बत्तीस थी। वे बहुमूल्य रत्नजटित आभूषण धारण किये हुए थीं..... नृत्य के बीच ही में हाल छोड़कर बगल के कमरे में घण्टे भर के लिए आराम करने चली आयी। जब मैं वापिस आयी तो अंधेरा हो चला था। उस समय छत से लगी मशालें जल रही थीं। मंच पर एक अभिनय हो रहा था जिसमें बड़ी बड़ी सींगवाले दो जानवर सामने आए। उनपर दो व्यक्ति सवार थे। वे सोने की गेंद और प्याला लिये हुए थे जो सब्जे से ढंके हुए थे। इन दोनों के पीछे विजय-रथ आया जिसमें न्याय राज्य-सिंहासन पर विराजमान था। वह अपने हाथ में नंगी तलवार लिये हुए था। उस तलवार पर आदर्श वाक्य कान्कार्डिया लिखा हुआ था। वह खजूर और लौंग के पत्तों से अलंकृत था। उसी रथ में एक बैल था, जिसके पांव सेंट मार्क की मूर्ति पर टिके हुए थे। श्रीमान्, आप तुरन्त समझ जायंगे कि यह लीग के प्रतीक के रूप में था। अपनी सारी बातचीत के दौरान राजकुमार और हम राज समाज के लोगों ने आपको इटली की इस शांति का निर्माता बताया। इसलिए इस प्रदर्शन में उन्होंने आपके सिर को विजय-यात्रा में दूसरों के ऊपर रखा। रथ के पीछे दो सांप थे जिनके ऊपर दो नौजवान बैठे हुए थे। ये दोनों भी पहिले सवारों की भांति वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थे। ये सभी हाल के बीच में

स्थित मंच के ऊपर आये। इन्होंने न्याय के चारों ओर नृत्य किया। थोड़ी देर तक नृत्य करने के बाद, इनके हाथ के गेंद फट गये। उनमें से लपटें उठने लगीं और उन लपटों में एकाएक एक-एक शेर, और एक गेहुआँ सांप नृत्य करने लगे। इसके बाद शाही भोज आरम्भ हुआ। नाना प्रकार के पकवान तूर्यध्वनि के साथ-साथ परसे जाते थे। उनके साथ-साथ अगणित ज्योति-दीप भी आते थे। जब भोज समाप्त हो गया तो फिर एक प्रदर्शन हुआ। इस प्रदर्शन में दो जवान साँपों पर सवारी करके मुख्य भूमिका कर रहे थे। एक सन्देशवाहक, नाव में बने विजय-रथ पर चढ़कर आया। . . .थोड़ी देर बाद ही लीग का विजय-रथ आया; उसके साथ-साथ चार देव भी आये। उनमें से पहिला पर्ण-पात्र और फल लिये हुए था। दूसरे दो हाथ में दण्ड लिये हुए थे जिनमें सोने-चांदी के गोले गुलेल की भांति लगे हुए थे; आखिरी देव के हाथ में भी पहिले की तरह शोभापात्र था। इसके बाद शेर के मुँह बकरे की धड़ और सांप की पूँछ वाले चार पशु आये जिनकी पीठ पर चार नंगे मूर सवार थे। ये लोग झांझ और मजीरा बजा रहे थे या हाथ से ताली ही बजा रहे थे। इनके पीछे चार विजय-रथ थे जिन पर डायना, मृत्यु, मेलीगार की माता आदि की मूर्तियां प्रतिष्ठित थीं। उनके साथ-साथ हथियारबन्द सिपाही भी थे। हर रथ में ऐसे चार-पांच आदमी थे। यह संपूर्ण प्रदर्शन मेलीगार की पूरी कहानी को, उसके जन्म से मृत्यु तक, चित्रित करता था। बीच-बीच में नृत्य भी होते रहते थे। . . .उस शाम पूरे समय कोमो के बिशप मेरे साथ बैठे रहे। अभिनयों की दीर्घसूत्रता और उस भीड़-भाड़ वाले हाल की गर्मी के कारण उनको असीम थकावट महसूस हो रही थी। उस समय मुझे बड़ी हंसी आयी। ऐसी हंसी मुझे कभी नहीं आयी थी। उनको चिढ़ाने के लिए तथा और भी अधिक मजा लेने के लिए, मैं उनसे कहती रही कि अभी और भी प्रदर्शन होने वाला है और अभिनय कल सबेरे तक चलता रहेगा. . . .अन्त में हम लोग घर वापिस पहुंचे। मैंने थोड़ा सा कुछ खाया और फिर सो गयी। अब तक तीन बज चुके थे। भोज के उपरांत मैंने जो पोशाक पहिन रखी थी, वह लाल और सुनहरे रेशम की थी। मेरे सिर पर मेरी रत्नजटित टोपी थी। मोतियों की माला में मेरोन लटक रहा था? श्रीमान्, मेरा अभिवादन स्वीकार करें। श्रीमान् की अत्यन्त प्रिय पत्नी,

बीट्रिस स्फोर्जा वायकामटिस

यहां निस्सन्देह हमें ऐसे नाटक का प्रमाण मिलता है जिस पर यात्रा-नाटकों और साज-सज्जा युक्त नृत्य-नाट्य का प्रभाव है। अन्तरगठित नाट्याभिनय के स्थान पर हम इन प्रदर्शनों में दानवों, विकटकार दैत्यों, सर्पों, संकर पशुओं, रथों, प्रतीकात्मक

पात्रों और पौराणिक कथानकों तथा उनके बीच-बीच नृत्यों को देखते हैं। और इस संपूर्ण कार्यक्रम के बीच दावतें चलती रहती हैं जिसमें अच्छी तरह सजी-बजी, रत्नजटित आभूषणों से अलंकृत, सम्भ्रान्त महिलाएं, विशप, सामंत आदि सम्मिलित होते हैं; राजनीतिक प्रयोजनीयता भी अवश्य ही इन कार्यक्रमों की पृष्ठभूमि में रहती है।

अब भी लैटिन सुखान्त नाटक प्रस्तुत किये जाते थे। इटालवी नाटक भी मंच पर प्रस्तुत किये जाते थे। कुछ वर्षों के उपरान्त बीट्रिस की आयसा वेला दाईस्ने फेरारा के दरबार के प्रदर्शनों को देखकर लिखा था—'इन नाटकों में अवश्य ही दर्प भरे शब्दों की भरमार रहती थी। इनमें ऐसे संदिग्ध वाक्य होते थे जिन पर किन्हीं लोगों द्वारा आपत्ति की जा सकती थी। इतना होने पर भी, वे मनोरंजनकारी होते हैं, उन्हें देखकर बहुत हंसी आती है। खासतौर से उस समय बहुत अच्छा लगता है जब पात्र जल्दी-जल्दी अपनी आवाज़ बदलते हैं और अत्यन्त उत्कृष्ट अभिनय करते हैं' और उसी वर्ष आयसा-बेला ने मान्तुआ में अभिनय देखे जिसका वर्णन सिजिसमान्दो कान्तेल्मों ने किया है। उसमें नाट्य प्रस्तुतीकरण की शान-शौकत और विराटता पर अत्यधिक बल दिया गया है। वर्णन यों है :

"शुक्रवार को 'फिलोनिको' प्रस्तुत किया गया; शनिवार को प्लाटस कृत 'इल पेनुलो' प्रस्तुत किया गया; रविवार को सेनेका कृत 'इम्पोलिटा' और सोमवार को टेरेंस कृत 'अडेल्फो' प्रस्तुत किया गया। ये सारे के सारे नाटक चतुर अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर कौशल के साथ प्रस्तुत किये गये और दर्शकों-द्वारा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। मैं अपना कर्तव्य पूरा न करूंगा यदि मैं यह स्वीकार कर लूं कि जिस भव्यता, दिव्यता और उन्कृष्टता के सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन मैं यहां करूंगा उसके लिए सत्यमेव मुझसे अधिक योग्य लेखक की आवश्यकता है......"

इसके बाद वर्णनकर्ता रंगमंच और रंगशाला की अत्यन्त सुन्दर अलंकृति का वर्णन करता है। रंगशाला में मान्तेगना के चित्र लटकाये गये थे। एक सुसज्जित कक्ष बनाया गया था जिसे तोरणों-वन्दनों और झण्डी-पताकाओं से सजाया गया था, "ऊपर आकाश का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने वाला चँदोवा था जिसमें हमारे गोलार्द्ध के नक्षत्र जड़े हुए थे।" निश्चय ही प्लाट्स और टेरेंस और सेनेका की कृतियों को एक नवीन और भव्य सेटिंग में प्रस्तुत होने का अवसर मिला था।

स्वयं आयसाबेला ने एक दूसरी रिपोर्ट में पांच हास्यमूलक सुखान्त नाटकों में उपयुक्त अलंकृत साज-सज्जा का वर्णन किया है। इन उपकरणों की संख्या इतनी बड़ी

थी कि एक बार जिनका प्रयोग एक नाटक में हो जाता था उनका प्रयोग दूसरी बार नाटक में फिर नहीं होता था, यद्यपि अभिनय में भाग लेने वालों की संख्या एक सौ दस अभिनेताओं, स्त्री-पुरुष पात्रों की थी। बर्नाडिनो प्रासपेरी ने १५०८ में फेरार के दरबार[1] से एक पत्र लिखा था जिसमें यह बताया था कि किस प्रकार नाट्याभिनय मात्र नाटक और अभिनय से हटकर गौरवशाली दृश्य-दृश्यावलियों, नृत्यों और शाही प्रदर्शनों की ओर अभिमुख हो गया था।

"सोमवार की रात को कार्डिनल ने एक सुखान्त नाटक का अभिनय कराया जिसकी रचना उसके एक परिचित मित्र मेसर लोदोविको अरिओस्तो ने की थी। यह नाटक भाण के प्रकार का था जिसमें हास्यरस का ही परिपाक हुआ था। आदि से अन्त तक यह प्रदर्शन अत्यन्त ओजस्वी और हास्य-लास्य से परिपूर्ण था, वैसा ही जैसा कि इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण अभिनयों में देखने को मिला था। हर तरफ़ इस अभिनय की प्रशंसा हुई। नाटक का विषय भी अत्यन्त सुन्दर था। दो नवयुवक टोरंटो में एक दलाल द्वारा लायी गयी दो वारांगनाओं के प्रेम में फंस जाते हैं। इस कथानक में इतने षडयंत्रों और अद्भुत घटनाओं का समावेश और इतनी सूक्ष्म नैतिक वृत्तियों तथा अन्य वस्तुओं का सम्मिश्रण है कि टेरेंस की कृतियों में उनका अर्द्धांश भी नहीं मिलता। अभिनय करने वाले जितने भी कलाकार थे वे अत्यन्त सम्मानित और उत्कृष्ट थे। वे सभी के सभी बाहर से आये थे। उनकी साज-सज्जा अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर थी। बीच-बीच में मनोहर गीत नीत भी रख दिये गये थे। मदिरामत्त भोजन बनाने वालों का एक मधुर नृत्य भी इस अभिनय में था। ये नर्तक अपने सामने मिट्टी के बर्तन लटकाये

---

१. यह उद्धरण और इस अध्याय के अन्त का उद्धरण एडमण्ड जी० गार्डनर (लन्दन १९०६) कृत 'दी किंग आव कोर्ट पोयट्स, ए स्टडी आव दी वर्क, लाइफ़ ऐण्ड दी टाइम्स आव लोदोविको अरिओस्तो' से लिये गये हैं। यह पुस्तक और इसी लेखक की 'ड्यूक्स ऐण्ड पोयट्स इन फ़ेरारा' (लन्दन, १९०४) उन राजनीतिक और सामाजिक षडयंत्रों की पृष्ठ भूमि पर अच्छी तरह प्रकाश डालते हैं जिनके विरुद्ध पुनरुत्थान काल के कवियों और कलाकारों ने इतना काम किया। 'बीट्रिस द' एस्ते, डचेज आव मिलान- तथा 'आयसावेला द' एस्ते यार्कियोनेस आव मान्तुआ' ये दोनों पुस्तकें जूलिया कार्ट-राइट (मिसेज एड्री) कृत हैं और १९०३ में लन्दन से प्रकाशित हुई हैं। इन दोनों पुस्तकों में उस युग के राज दरबारों का बड़ा रोचक वर्णन है। हमने ऊपर बीट्रिस और आयसाबेला के पत्रों के जो अंश दिये हैं वे इन्हीं पुस्तकों से लिये गये हैं।

हुए थे जिन्हें वे कार्डिनल के संगीत के सुर-ताल के साथ लकड़ी की छड़ियों से सजाते जाते थे। लेकिन इन उत्सवों और नाट्याभिनयों में जो सर्वश्रेष्ठ बात थी वह थी ऐसी दृश्यावलियां जिनके परिवेश में अभिनय प्रस्तुत किये गये थे। इन दृश्यावलियों को सम्राट् के चित्रकार मेस्त्रो पेरेग्रिनो ने तैयार किया था। इसमें एक नगर का दृश्य दिया गया था जिसमें मकान, गिरजाघर, घंटाघर, उद्यान आदि इतने उत्कृष्ट ढंग से अंकित किये गये थे कि उनको देखने से आंखें थकती न थीं। उनमें विभिन्न वस्तुएं इतनी चतुराई और बारीकी के साथ अंकित की गयी थीं कि उन्हें देखते ही बनता था।"

पुनरुत्थान काल की यह "दृश्यावली' कौनसी है जिस पर उस युग के इतिहासकार इतना आश्चर्य प्रकट करते हैं और जिन पर इतना अधिक मुग्ध हैं? हम पूछ सकते हैं कि रंगमंचीय कला में उनका स्थान क्या है? वह आयी कहां से? यह प्रायः निश्चित है
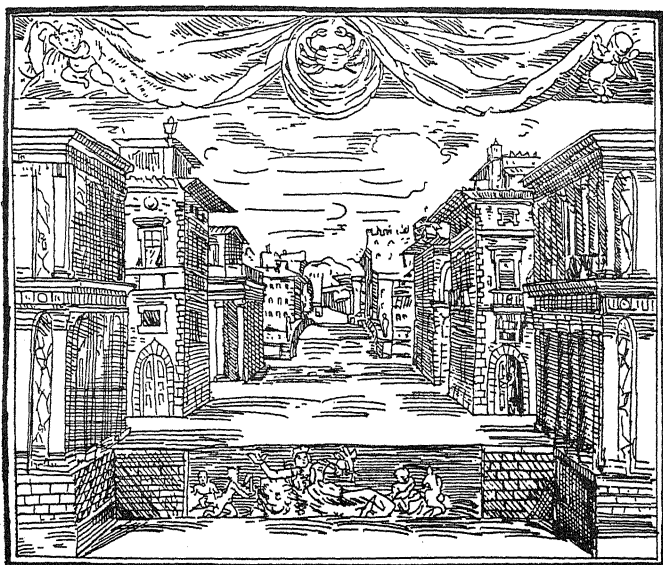
रंगमंच का एक विशिष्ट इमारती दृश्य। इल ग्रांचियो, १५६६, के लिए सेटिंग। (लाइली बी० कैम्पबेल कृत 'सीन्स एण्ड मेशीन्स आन दी इंगलिश स्टेज ड्युरिंग दी रेनासां' से।)

कि यूनानी काल में, इस बात का प्रयत्न नहीं किया जाता था कि नाटक को एक रहस्यात्मक परिवेश में प्रस्तुत किया जाय। रोमनकाल में इमारती मंच की दीवार को ही अच्छी तरह अलंकृत करके पार्श्वभूमि में परिणत किया जाता था। मगर रंगी हुई चित्रित सेटिंग के बारे में या तो लोग जानते ही न थे, या उनका प्रयोग इतना कम होता था कि रंगमंच के इतिहासकारों का ध्यान ही उधर नहीं गया। ठीक इसी समय
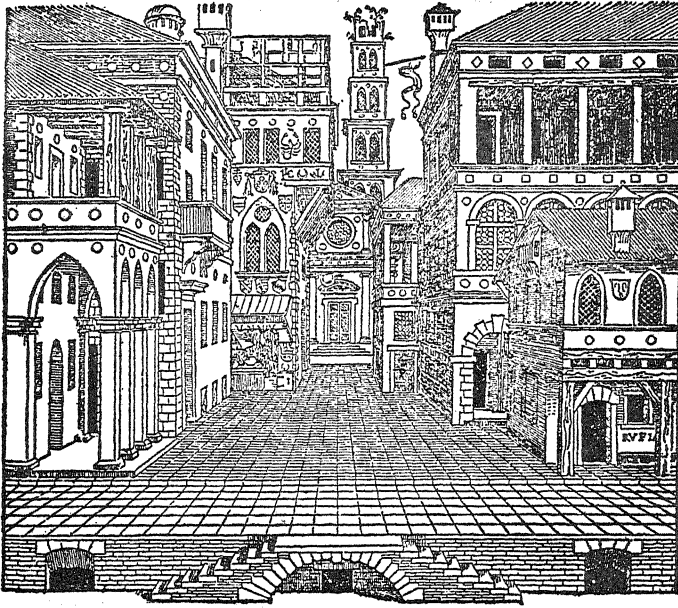
१५४५ में, सेरलियो ने एक सुखान्त नाटक के लिए जैसा अचल इमारती दृश्य निश्चित किया था उसी का चित्र। ('थियेटर आर्ट्स मन्थली' में सेरलियो कृत 'आर्कीटेटुरा' के मूल चित्र के आधार पर रेखांकन।)

चमत्कारिक नाटकों और रहस्यात्मक नाटकों के निर्माता मिलती-जुलती ऐसी दृश्यावली का विकास करने लगे थे जिसमें खण्ड-चित्रों का प्रयोग होता था। परन्तु यह ऐसा काम नहीं था जो पुनरुत्थान काल के निर्माताओं और नाट्य-प्रस्तुतकर्ताओं को अधिकांश में प्रभावित कर सकता।

भ्रान्तिकर सेटिंग और चित्रात्मक 'प्रभावों' का उत्कर्ष इन दोनों मामलों में

एक ही स्रोत से हुआ; पुरोहित रहस्यात्मक घटनाओं को चित्रित करने लगे क्योंकि वे बालबुद्धि वाले भोले-भाले दर्शकों के सामने प्रदर्शन करते थे, और धीरे-धीरे चित्रण की यह प्रणाली विकसित होकर पृष्ठभूमि तक पहुंच गयी और पुनरुत्थानकालीन इटली में नाट्य निर्माताओं ने ऐसे सुखान्त नाटकों को प्रस्तुत करना शुरू किया जिसमें दृश्य चित्रावली रहती थी, ऐसी चित्रावली, 'जिसे देखकर लोग थकते न थे,' क्योंकि उनमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का चित्रण रहता था। इसी कारण से वे स्थान का भी कौशल-

दुःखान्त नाटक के लिए अचल इमारती दृश्य। इसकी स्थापत्यपरक तीक्ष्णता की तुलना पिछले पृष्ठ के सुखान्त नाटक के लिए बने इमारती दृश्य से करें।
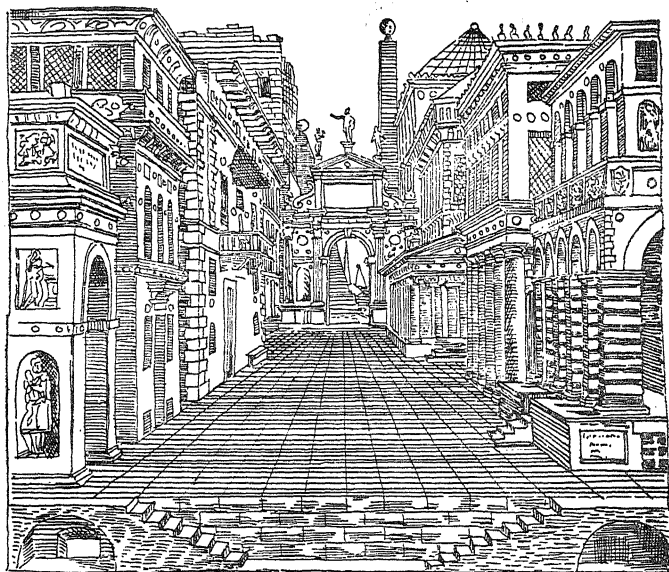
पूर्ण चित्रण करते थे और चमत्कारपूर्ण अलंकृति का प्रयोग करते थे। मुझे तो ऐसा लगता है कि मंच-सज्जा के नाम पर जो यह बहुत सी विभिन्न बातें हुईं, उस समय भी और बाद की शताब्दियों में भी, इसकी व्याख्या केवल यह है कि निर्माताओं ने बच्चों को प्रसन्न करने के लिए ही मंच-सज्जा में बहुत सी चीजें भर देने का सिद्धान्त अपनाया। सचमुच एक प्रश्न उठता है कि दृश्यात्मक चित्रमय सेटिंग का यह आविर्भाव प्रौढ़ नाटक के लिए वरदानस्वरूप न होकर अभिशाप क्यों नहीं बन गया ? (यद्यपि मैं यह विश्वास करता हूं

कि साधारणतया नाटकों के प्रस्तुतीकरण में रंग, प्रकाश और दृश्यमूलक तत्व सहायक होते हैं)। यही वह समय था जब कि 'दृश्यावली' का संपूर्ण विकास हुआ और बीसवीं शताब्दी तक युरोप के सभी रंगमंचों पर चित्रित दृश्य-मूलक सेटिंग का महत्व बराबर बना रहा।

सेरलियो द्वारा निर्मित अजा--नाटकों का एक दृश्य

यह बिलकुल स्पष्ट नहीं है कि चित्रात्मक दृश्य का उद्भव क्या है। फ़ेरारा के हमारे लेखक प्रासपेरी ने १५०९ में ही 'ऐसे दृश्य की प्रशंसा की है जिसमें एक नगर दिखाया गया था और उसमें मकान, गिरजाघर, घंटे और उद्यान" चित्रित किये गये थे। इसके चित्रकर्ता मेस्त्रो पेरेग्रिनो ने शायद (कामेडिया देल' आर्ते के) रंगमंच की

परम्परा का वहन किया हो। इसमें एक सड़क बनायी जाती थी, जिसके दोनों तरफ़ मकानों की क़तारें होती थीं। इस परम्परा को हम रोमन युग से सम्बद्ध पाते हैं। जो भी हो यह तो निश्चय ही है पेरेग्रिनो को भी अपनी "दृश्यमूलक चित्रावली" के लिए प्राचीन परम्परा का आधार प्राप्त था। आपको याद होगा कि विट्रूवियस ने पीरीयाक्ट के सम्बन्ध में लिखते हुए बताया था कि रोमन काल में इसी के सहारे दृश्य-परिवर्तन की सूचना दी जाती थी। (वास्तव में दृश्य-परिवर्तन होता नहीं था)। उसमें तीन दृश्यों को उसी प्रकार बताया है जैसे वे एक त्रिपार्श्व कांच के तीन दृश्य दिखायी देते हैं। दो तरफ़ तो दुःखान्त और सुखान्त नाटकों के लिए इमारती दृश्य और तीसरी ओर व्यंग्य नाटकों के लिए ग्रामीण दृश्य। लगता है कि पुनरुत्थान काल के विद्वानों और कलाकारों ने इस व्याख्या को ठीक से समझा नहीं और केवल सांकेतिक ढंगों को अपनाने के बजाय उन्होंने सम्पूर्ण रंगमंच को चित्रित करने का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। १४८६ ई० में ही विट्रूवियस कृत 'दी आर्कीटेकचुरा' की पुर्नप्राप्त पाण्डुलिपि प्रकाशित कर दी गयी थी।

सेरलिओ की एक प्रसिद्ध रचना आर्कीटेकचुरा है जो पहलीबार १५४५ में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद युरोप के प्रमुख देशों में यह रचना पुनर्मुद्रित और अनूदित हुई। इस पुस्तक में कुछ ऐसे प्लेट हैं जो भली-भांति यह बताते हैं कि कलाकारों ने विट्रूवियन दृश्यों की क्या गत बना दी। यहाँ मैं सेरलियो के तीन दृश्यों को उद्धृत कर रहा हूँ क्योंकि वास्तविक कल्पना-मूलक सेटिंग के अन्य कोई ऐसे चित्र नहीं हैं जिन्होंने इतने असामान्य ढंग से रंगमंच को प्रभावित किया हो। एक तरह इन दृश्यावलियों के—इमारती और प्राकृतिक—दृश्यमूलक सेटिंग को यूरोप की रंगशालाओं में मान्यता दिलाने में सहायक सिद्ध हुई। निश्चय ही सेरलिओ को इटली की नृत्यशालाओं के मंचों पर चित्रित अनेक दृश्य-मूलक चित्रों को देखने का अवसर मिला होगा। शायद फ़ेरारा में १६०८ ई० में उसने इस चित्र को भी देखा हो।

जो भी हो 'सड़क का दृश्य' नाटकों की पृष्ठभूमि के लिए सामान्य बन गया (छद्मवेशी नाटकों, हास्यमूलक खण्ड अभिनयों आदि में अधिक तड़क-भड़क वाली सचल दृश्यावली का एक नये प्रकार का प्रयोग होता था। जिसका शीघ्र ही हम अनुशीलन करेंगे)। मैं यहां जो कह रहा हूँ उस पर प्रकाश डालने के लिए उदाहरण स्वरूप दो और चित्र यहां दिये गये हैं। संक्षेप में इमारती दृश्यावली का प्रयोग तब तक होता रहा जब तक कि अगली शताब्दी में नृत्य नाटकों और नाटकों का प्रदर्शन उस सजे-बजे इमारती पृष्ठभूमि में होता था जिनका सम्बन्ध बीबीएनस के गौरवशाली नाम से है। बीबीएनस चार पीढ़ियों तक मेहराबों, खम्भों, बेलिपटों और पुष्पमाल्यों की भव्य विराटता के

बीच अभिनेताओं को बौना बनाता रहा। अगले अध्याय में आप इनके चित्रों को देखेंगे क्योंकि यह मुख्यतः सगीतनाटच से सम्बद्ध है।

रोमन दृश्यावली के सम्बन्ध में भ्रान्तिपूर्ण धारणा रखते हुए भी पुनरुत्थान काल के शिल्पियों ने विट्रूवियस से प्राचीन रंगशाला के इमारती रूप का ज्ञान प्राप्त किया। जब भी कोई एकादमी किसी प्राचीनतामूलक रंगशाला के निर्माण की योजना बनाती थी तब मानचित्र बनाने वाले विट्रूवियस का अध्ययन करके किसी पुराने खण्डहर का पता लगा लेते थे और रोमन प्रेक्षागृह तथा रंगमंच से काफ़ी मिलती हुई इमारत खड़ी कर लेते थे। उनमें से एक रंगशाला आज भी ज्यों की त्यों मौजूद है। यह ठीक उसी रूप में अब भी है जैसी १५८० ई० में थी, बनने के समय और जैसा कि वह कुछ वर्षों बाद तक थी। इसका नाम है 'थियेटर आफ़ दी ओलम्पिक एकादमी।' विशेंज़ा में बनी इस रंगशाला को इसके निर्माता के नाम पर पैलेडियन थियेटर भी कहा जाता है। इस चित्र से पता चलता है कि यह रंगशाला रोम की छत से ढंकी छोटी रंगशाला से कितनी अधिक मिलती-जुलती है। पैलेडियो की मृत्यु के बाद शिल्पी स्कामोज़ी ने इसमें कुछ और भी अंश जोड़े जो कि मंच की दीवार के द्वार से दिखायी देते हैं। नृत्यशाला के स्वतंत्र रूप से खड़े रंगमंचों की इसी विशेषता को स्कमोजी ने उद्धृत कर लिया था।

इसके बाद ही मंच के अग्रभाग के मेहराब के निर्माण की कहानी आरम्भ होती है। अगली तीन शताब्दियों तक रंगशालाओं की यही प्रमुख इमारती विशेषता रही है। अक्सर यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता रहा है कि आधुनिक रंगशाला के मंचाग्र की मेहराब विसेज़ा रंगमंच के केन्द्रीय द्वार की परम्परा में ही है। यह ऐसे हुआ : स्कमोज़ी ने द्वार के पीछे पांच दृश्याधार खण्ड निर्मित किये। यह सामने के पृष्ठ पर दिये हुए मंच के (अ) मानचित्र के अनुरूप ही था। स्कमोज़ी के साथ ही दूसरे भवन निर्माता उपयोगी मंचीय दीवार को यथावत् रहने देना चाहते थे, साथ ही वे यह भी चाहते थे कि अभिनय के लिए और भी खुला स्थान मंच के ऊपर मिल सके। इसलिए स्कमोजी ने मानचित्र (ब) के अनुसार सेबियोनेत्ता की रंगशाला के लिए रंगमंच की योजना विकसित की। इसी समय बाहर से आये इनीगो जोन्स ने (स) मानचित्र के अनुसार उसमें और भी अधिक सुधार किया। इसके बाद सम्पूर्ण अभिनय स्थल को मुख्य प्रवेश-द्वार से सुलभ बनाना बस एक क़दम था जिसके बाद यवनिका के प्रयोग का क्रम आ गया था। (मानचित्र द) इसमें अब भी रोमन मंचीय दीवार ज्यों की त्यों क़ायम थी, परन्तु अब उसका उपयोग केवल मंच के चौखटे की शोभा के लिए था।

मानचित्र अ रोमन परंपरा का विशेन्ज़ा मंच है। मगर द्वार के सामने इसमें खण्ड जोड़ दिये गये हैं। मानचित्र ब में यह प्रदर्शित है कि किस प्रकार स्कामोज़ी ने सेबियोनेत्ता में रंगशाला का मान चित्र बनाया। इसमें पूरा मंच एक समतल टुकड़ा है। मानचित्र स में इनिगो जोन्स ने रोम के दीवार से घिरे रंगमंच से इस समतल टुकड़े को जोड़ दिया और संपूर्ण मंच तैयार हो गया। द में वह पहिली रंगशाला प्रदर्शित है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि संपूर्ण मंच द्वार के भीतर कर दिया गया और उस पर पर्दा डाल दिया गया। यह मंच पारमा में निर्मित (१६१८–१९) हुआ। बाएं ओर वह रेखा-चित्र है जिसे इनिगो जोन्स ने अपने मंच के लिए तैयार किया था। इस सम्बन्ध में जो परिवर्तनशील विचार चल रहे थे उनका यह श्रेष्ठ उदाहरण है। (इन रेखा-चित्रों का माप मूल के अनुसार नहीं है)। पारमा और विशेन्ज़ा की रंग-शालाएं अब भी क़ायम हैं। प्लेट १४ और १५ में उनके चित्र छपे हैं।
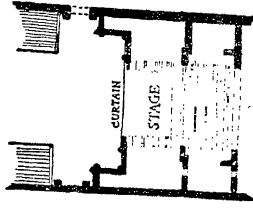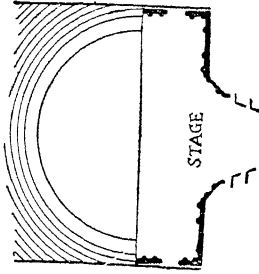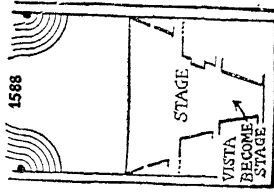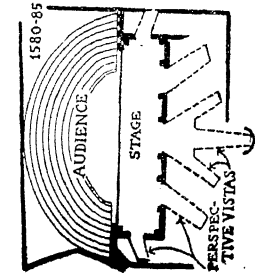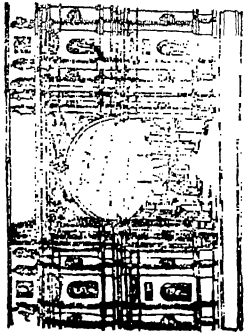
अ ब स द

चित्र-दृश्य का विकास : इसमें यह प्रदर्शित है कि किस प्रकार क्लासिक रंगशाला की मंच-दीवाल आगे बढ़कर, आधुनिक रंगशाला के मंच का सबसे आगे वाले पर्दे का चौखट बन गया। और जिस वीथिका को मंच के केन्द्रीय द्वार से देखा जा सकता था वह संपूर्ण मंच का दृश्य बन गया जिसके ऊपर पर्दा पड़ा रहता था और जो विभिन्न नाटकों अथवा अंकों के बीच परिवर्तित किया जा सकता था।

अब हम पारमा की उस रंगशाला तक पहुंचते हैं जिसे 'प्रथम आधुनिक रंगशाला' के नाम से प्रसिद्ध मिली है—क्योंकि इस रंगशाला में पहली बार ऐसे रंग-पीठ का निर्माण हुआ था जिस पर अभिनय हो सकता था। इस अभिनय स्थल में नयी संभावनाएँ थीं, साथ ही इसकी नयी सीमाएं भी थीं। अब अभिनय के लिए दीवारों अथवा दृश्यावलियों से घिरा स्थान ही रह गया था पहिले की तरह अब रंगमंच बिलकुल खुला नहीं रह गया था। चित्रित सेटिंग के दो सौ वर्षों के आवरण के बाद अब यह बिल्कुल भिन्न वस्तु बन गयी थी। अव केवल पर्दा हटाकर उन दृश्यों को अभिनय के बीच दिखाया और बदला भी जा सकता था। अतः रंगशाला में दृश्यों का चित्रण करने वाले चित्रकार की महत्ता भी बहुत अधिक हो गयी।

दृश्यकर्त्ता के सम्बन्ध में और कुछ कहने के पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि प्रेक्षागृह के प्राचीन रूप ने ही नृत्यशालीय मंच तक की रंगशालाओं को प्रभावित किया था। पारमा के फार्नीस थियेटर में यवनिका-सज्जित मंच है जिसमें नृत्य के लिए फ़र्श और शाही रंगशालाओं की तरह बादकों के बैठने की अर्द्धगोलाकार जगह भी है। यह व्यवस्था तब तक के लिए ज़रूरी थी जब तक नाटक के साथ यात्रा-दृश्यों और सामाजिक नृत्यों को भी मिला दिया जाता था। (पिछले पृष्ठ पर फ्लोरेण्टाइन उत्सव का चित्र है) इसके बाद अर्द्धगोलाकार चित्रित मंच की बारी आती है। इसमें ज्यादा प्रेक्षक चौखटे के पीछे दृश्यों को देख सकते थे। इसमें प्राचीन रोमन अर्द्धगोलाकार प्रेक्षागृह के अन्तिम सिरों को काट कर निकाल दिया गया था। देखिए पृष्ठ २४५।

अब हमें पीछे जाकर यह पता लगाना आवश्यक है कि यह दृश्य चित्रकर्ता कहां से आया (हमने यवनिका सज्जित रंगमंच के, जिसके आगे पीछे के पर्दे को यही दृश्य-चित्रकर्त्ता तैयार करेगा, स्रोतों का तो पता लगा ही लिया है, हमने भवन निर्माण-कर्त्ता द्वारा निर्मित दृश्यों का भी अनुशीलन कर लिया है। परन्तु यह तृतीय तत्व एक स्वतन्त्र विकास है।) एक संकेत यह दिया गया है कि इस पर उन चमत्कारिक और रहस्यमूलक अभिनयों का सम्भवतः कुछ प्रभाव है जो कि कभी-कभी इटली की नृत्य-शाला के मंचों पर प्रस्तुत किये जाते थे। परन्तु यह स्वीकार कर लेना अधिक निरापद होगा कि रंगीन, यद्यपि पूर्णतया चित्रित नहीं, सेटिंग्स का विकास उन यात्रा-रथों और सचल रंगमंचों से हुआ जो कि बहुत दिन तक शाही प्रवेश, बाहरी उत्सव, और कैरोसल (हां, फ्रान्स में भी ऐसा होता था) की विशेषता थी। खुले मैदान में जो उत्सव होते थे उनमें अधिकाधिक मात्रा में सचल और स्थायी रंगमंचों की आवश्यकता होती थी। ये रंगमंच सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये सामन्तों की टुकड़ियों के लिए या ग़ैर-पेशेवर

अभिनेताओं के मंचों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रयुक्त होते थे। जेक्सकैलो द्वारा अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में अंकित रथ-यात्रा को भी इसी पृष्ठ पर दिया जा रहा है। यह चित्र उदाहरण स्वरूप है। इसी प्रकार २४८ पृष्ठ पर सड़क की 'सजावट' का एक चित्र है।

इसके बाद का क़दम है, इन विशेषताओं को, नृत्यशाला में छद्म-प्रदर्शनों और ऐसे नाट्य-नृत्य मनोरंजनों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रयुक्त करना जिनका उल्लेख बीट्रिस द' ऐस्ते ने इतने साफ़ शब्दों में किया है। फ्रांस में भी हमें ऐसे चित्र का पता चलता है
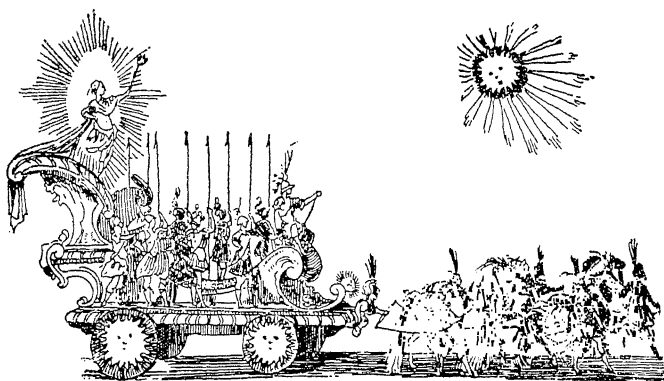
जेक्स कैलट द्वारा खचित जात्रा–गाड़ी।

जिसमें नृत्यशाला की फर्श पर (बैले दी ला रोयन, जिसका चित्र निकट के ही एक पृष्ठ पर है) इस बीच के काल में निर्मित खण्ड चित्रात्मक 'दृश्य' है जो हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। इससे यह स्पष्ट है कि पूर्ण मंच सेटिंग के ठीक पहले ही की यह स्थिति है। इसके बाद ही नृत्य-रंगशाला के किनारे पर, चबूतरे के ऊपर संपूर्ण मंचपीठ पर, सेटिंग का प्रयोग होने लगा था। इस अध्याय में पहिले ही फ़्लोरेण्टाइन छद्म-नाट्य के सम्बन्ध में कैलो कृत एक चित्र दे दिया गया है। यहां जो दृश्य-चित्र है वह विशेष रूप से चित्रात्मक है। अर्थात् यह चूना-बालू के प्लास्टर से निर्मित नहीं किया जा सकता था। यह चित्र इमारती भी नहीं है।
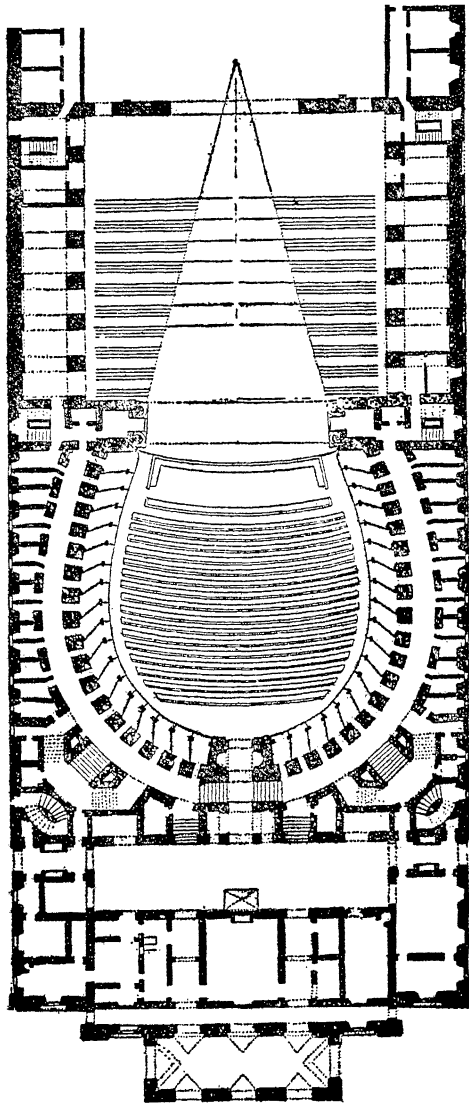
किस प्रकार वीथिका-मंच और अर्धवृत्त प्रेक्षागृह ने रंगशाला का वह स्वरूप ग्रहण किया जो कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में टकसाली माना जाता था। मंच पर बनी सेटिंग्ज़ की समानान्तर रेखाएं दृष्टव्य हैं जो कि विंग-सेटिंग के लिए बनायी जाती थी। मिलान स्थित ला स्काला ओपेरा हाउस।

सेरलियो ने आदेश दिया था कि उसके विट्रूवियन दुःखान्त और सुखान्त नाटकों में जो इमारतें चित्रित की जायं उनमें उभरे हुए दृश्य अंकित किये जायं। उन्हें केवल पर्दों पर रंग न दिया जाय (और विशेंज़ा में जो दृश्य-चित्र हैं वे इसी प्रकार निर्मित हैं) परन्तु उसने इस बात की अनुमति दे दी थी कि दृश्यों के छोरों पर जो दृश्य हैं वे इस प्रकार चित्रित किये जायं कि आगे बढ़ती हुई, 'सड़क' के किनारे के मकानों की क़तारें छोटी होती चली जायं। हम कल्पना की आंखों से दृश्य-चित्रकर्ता को पीछे के पर्दे को वर्ष प्रति वर्ष बड़ा करते हुए देख सकते हैं। इस तरह वह निरन्तर भवन निर्माणकर्त्ता के क्षेत्र का अपहरण करता जाता था (जिसका निर्माण इतना व्ययसाध्य था), अन्ततोगत्वा चित्रकार ने भवन-निर्माण-कर्त्ता और बढ़ई के मुक़ाबिले, इतनी सस्ती दृश्यरचना की और रंगशाला में दृश्यखण्डों का इतना प्रभावोत्पादक चित्रण किया कि उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को रंगमंच के दरवाज़े के बाहर निकाल दिया। इस तरह इटली में, सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में चित्रित दृश्य सेटिंग की जो शुरूआत हुई तो वह सत्रहवीं शताब्दी में उत्तर की ओर भी फैल गयी। बीसवीं शताब्दी तक यह प्रथा सारे युरोप के रंगमंच पर छायी रही। बाद में आधुनिकतावादियों ने एकाएक यह अनुभव किया कि अधिक चित्रमयता के कारण नाटक दब जाता है और उसकी दृश्यमूलक-नाट्य-प्रभावोत्पादकता में कमी आ जाती है।

संगीत-नाट्य और चमत्कारिक नाट्य में, जैसा कि हम देखेंगे, अतिरंजित पृष्ठभूमि की अपनी विशिष्ट महत्ता थी। लेकिन यह जान लेने से लाभ होगा कि इसका प्रवेश रंगशाला में तब हुआ जब नाटक अपने में एक कमज़ोर तत्व था। जहां तक रंगशाला निर्माण की कला का प्रश्न है, हम कह सकते हैं कि पुनरुत्थान काल में यह कला अलंकारिक अधिक थी, संरचनात्मक कम; साज-सज्जा की ओर विशेष ध्यान था, विभिन्न अंगों को विकसित करने की ओर कम। अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि इस युग में इटली ने पूर्व की रंगमंचीय समृद्धि को एक हद तक प्राप्त कर लिया था।

अब प्रस्तुत अध्याय को समा त करने का समय आ गया है। इस अध्याय में हमने उस युग पर विचार किया जब कि मध्ययुगीन शताब्दियों के बाद चर्च ने रंगशाला की हत्या कर दी थी, फिर उसने एक अलग 'धार्मिक नाटक' का पालन पोषण किया और उससे अपने को अलग भी कर लिया। हम पुनरुत्थानकालीन नाट्य मनोरंजन पर दृष्टिपात करते समय यह देख सकते हैं कि कैसे वह अन्तिम रूप में होली रोम में पहुंचा। जिस समय अधिक कट्टरपंथी उप फादर अनुदार अर्ध-धर्मनिरपेक्ष, चमत्कारिक और रहस्यात्मक नाटकों की ओर से विमुख होकर अपना दामन झाड़ रहे थे, स्वयं

बैले कामिके दे ला रोयेन के लिए निर्मित नृत्य-नाट्यशाला। यह प्रहसन १५८१ ई० में फ्रांस के हेनरी तृतीय तथा उसके दरबारियों के सामने खेला गया था। नृत्य-भूमि पर टुकड़े-टुकड़े करके लगाये गये सेटिंग्ज को देखिये और अविकसित रंगमंच पर संपूर्ण चित्रमय सेटिंग को भी देखिये। (प्यूगिन कृत 'डिक्शनेयर' में अभिनय के शीघ्र बाद ही जो चित्र छपा था उसी को यह फिर से खचित किया गया है)।
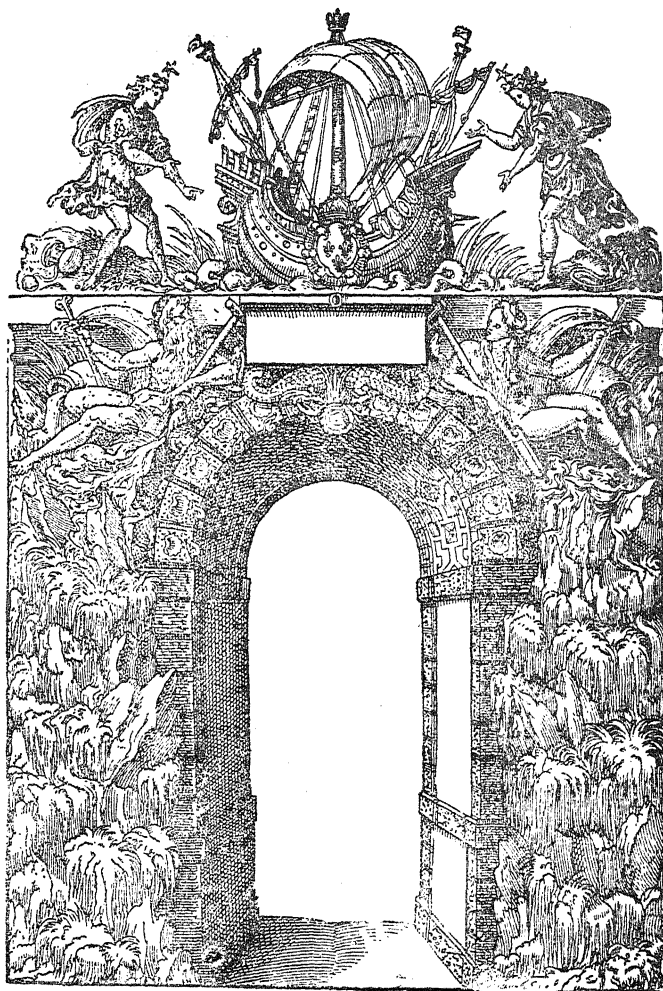
१५७२ ई० में, पेरिस में चार्ल्स नवम के प्रवेश के लिए निर्मित द्वार, जिसकी डिज़ाइन बर्नार्ड दे पालिसी ने बनायी थी। चित्रित सेटिंग के प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में हम इस चित्र को स्वीकार कर सकते हैं। (एडुअर्ड ड्रुमोन्त कृत 'लेस फ़ेट्स नेशनेलेस आ पेरिस' से उद्धृत।)

अपने लिये पोप लियो दशम् वैटिकन में निजी नृत्य-रंगशाला बनवा रहे थे। वहां पर प्रस्तुत नाटक के दो वर्णन मुझे मिले हैं, जिन्हें यदि मिला दिया जाय तो, पुनरुत्थानकालीन रंगशाला-अर्द्धमौलिक नाटकों, अर्द्ध-प्राचीन नाटकों, विकासशील चित्रित दृश्यों और पुष्कल साज-सज्जा, पृष्ठभूमि में बेपरवाह-अंधाधुंध सामाजिक जीवन की कहानी के बिखरे धागे एक सूत्र हो जायं। जान एडिंगटन सिमण्ड्स लिखता है :

"दृश्यमूलक नाट्याभिनयों के लिए लियो के मन में ऐसी भूख थी, जो कभी मिटती ही न थी। नवीन लातीनी शैली के हास्य-मूलक सुखान्त नाटक उसके प्रिय मनोरंजन थे। परन्तु उसने रोज़ी की सीनोज़-कम्पनी को भी प्रतिवर्ष रोम में निमंत्रित किया जो केवल हास्य-विनोदात्मक अभिनय किया करती थी। उसके सबन्ध में जो कहानियां प्रसिद्ध हैं, उनसे यह भी पता चलता है कि उसे कम कलापूर्ण भड़ैती से भी विराग नहीं था। १५१३ ई० में लियो ने राजधानी में एक रंगशाला खोली और उसमें, १५१९ में उसने दो हज़ार दर्शकों के साथ अरिओस्तो कृत 'सोपोजित्ती' का प्रदर्शन देखा।"

अब आप एडमण्ड जी० गार्डनर का वर्णन सुनिये :

"अपने मेहमानों के आगमन की व्यवस्था करने के लिए पवित्र पोप स्वयं द्वार पर खड़े रहे और अपने आशीर्वाद के साथ उन लोगों को भीतर प्रविष्ट किया जिन्हें वह उचित समझते थे। कुल मिलाकर लगभग दो हज़ार आदमी थे। पर्दे पर पोप का डोमीनिकन विदूषक फ्रामारियानो शैतानों के साथ खिलवाड़ करता हुआ चित्रित था और नीचे लिखा हुआ था—'ये फ्रामारियानो के मनोविनोद हैं।' इसके बाद शहनाई-वादकों के संगीत के साथ पर्दा उठा। एक नगर का एक सुन्दर दृश्य खुला, उस नाटक के फेरारा का प्रदर्शन किया गया था। जिसे स्वयं रैफैल ने चित्रित किया था। इसे पोप अपने चश्मे के पीछे से झांक-झांक कर देख रहा था और उस पर मुग्ध हो रहा था। मंच उन दीपाधारों से प्रकाशित था जिन पर अक्षरों का रूप धारण करने वाली ज्योति-शिखाएं जल रही थीं। हर अक्षर पांच दीपों से बना हुआ था और उनको मिला कर पढ़ा जा सकता था 'लिओ देसिमस पोन्टीफेक्स मैक्सिमस।' नाटक के आरम्भ की अश्लील कूटोक्तियों पर पोप जी खोल कर हंसते थे, यद्यपि उनमें विदेशियों की निन्दा की गयी थी। वह हास्य-विनोद-मूलक अभिनय युग की पारस्परिक शैली में ही प्रस्तुत किया गया था। अंकों के बीच-बीच गायन और संगीत चलता रहता था, और अन्त में गोरगन के उपाख्यान पर आधारित एक मोरेस्का प्रस्तुत किया गया था..."

और फिर सिमण्ड्स विषय का समापन करते और विचार क्रम को आगे बढ़ाते हुए कहता है :

"जब लियो को पोप पद मिला तो उसने नीमूर्स के ड्यूक गुइलिआनो से कहा, 'हमें इस पोप पद का आनन्द-लाभ करना चाहिए क्योंकि भगवान् की ओर से ही हमें यह पद प्राप्त हुआ है।' इस भावना के अनुसार उन्होंने 'होली-सी' का शासन भी चलाया, जो उनका हाल था, ठीक वही संपूर्ण रोम समाज का भी हाल था। छद्मवेशी प्रदर्शन, नृत्य, हास्य-विनोद-मूलक अभिनय, मेला-तमाशा वाले जलूस—इनसे इटर्नल सिटी की सड़कें और महल भरे रहते थे। ये पुराने यूनानी देवोपासक उत्सवों की अनुकृति मालूम पड़ते थे। और उधर कला ऐश्वर्य—वैभव के साथ-साथ विकसित हो रही थी. . .इधर, शिकारी वेश में कार्डिनलों, अर्द्धनग्न लड़कियों के नृत्यों, चेहरे लगाए कार्निवल में शामिल मदिरामस्त लफंगों की भीड़ को देखकर उत्तर के यात्री आंखें फाड़े, विस्मित और दुःखी होकर उत्तेजित हो उठते थे—-ये लूथर के अनुगामियों और शिष्यों में थे, जिनकी आत्मा में—-म्यान में छिपी तलवार की भांति, आवेश की तलवार निकल पड़ने और वार कर देने के लिए तैयार थी।"

मानव समाज में रंगशाला की इससे अधिक संकटापन्न स्थिति नैसर्गिक कला के उच्चासन से गिर कर बेपरवाह और विषाक्त तत्वों के हाथ का खिलौना बनने की थी। जब हमारी भेंट लूथर के बदनाम किये गये शिष्यों से फिर होगी तो वे एक अन्य प्रकार की अश्लील 'रंगशाला' का दमन करते हुए मिलेंगे—-जिसने तत्काल ही शेक्सपियर के सुखान्त और दुःखान्त नाटकों को जन्म दिया था। गौरवशाली पुनरुत्थान काल के मंच के पतन का यही स्थल है जब कि उसने अपने को उन मठाधीशों और पुरोहितों के मनोरंजन का साधन बनाया, जो अनेक लोगों के विश्वास के अनुसार, ईश्वर के द्वारा अपने पदों पर लोगों के आचरण की रक्षा करने और मानवों की आत्मा का परिशोधन करने के लिए नियुक्त थे। जैसा कि कैथलिक इतिहासकार सबसे आगे बढ़कर स्वीकार करते हैं, चर्च विशृंखलता की इस विषम स्थिति से, पादरियों के अधिकतर वर्गों में व्याप्त लज्जाजनक दुराचार, जिनके कारण पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में पोपतंत्र में फूट पड़ गयी, ऊपर उठ जाने में असमर्थ रहा।

सुधार और प्रति-सुधार के द्वारा जब स्थिति अच्छी हुई, तो रंगशाला को दोनों के हाथों से हानि ही उठानी पड़ी। एक दल के शुद्धतावादी इसे अनीश्वरवादी, अमर्यादित, और पोपवादी (यद्यपि यह आख़िरी आरोप अनुचित था) कह कर इसका विरोध और निषेध करते थे और बहुत से कैथोलिक इहलौकिक और अपवित्र कह कर

इसकी भर्त्सना करते थे। मगर इटालवी पुनरुत्थान से जो विचार-स्वातंत्र्य और साहस की भावना उत्पन्न हुई थी, उसका विकास उत्तर की दिशा में होने को था; वहां ऐसी महान् रंगशालाओं का विकास होने को था जिसकी रचना अथवा कल्पना भी इटली वालों ने नहीं की थी।

अध्याय ९
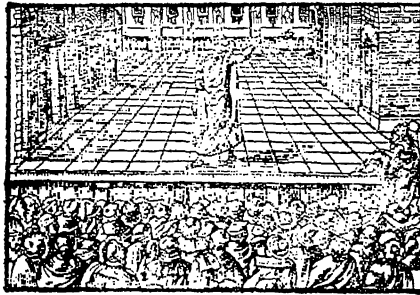
एक मनोरम अन्तराल—ग्रामीण एवं संगीत-नाट्य परक

नाटक के एक छोटे से भाग में इटली के पुनरुत्थानकालीन कवियों ने एक नवीन नाट्य-रूप का विकास किया और स्थायी मूल्य की नाट्य-पाण्डुलिपियों को त्याग दिया। लेकिन इनके युग के पहिले ग्रामीण काव्य की रचना तो होती थी, मगर ग्रामीण नाटकों की रचना नहीं होती थी। उस समय के संघर्ष-द्वन्द्वमय तथा आडम्बरपूर्ण जीवन की उपसृष्टि के रूप में अथवा उससे बच निकलने के प्रयास के रूप में, एक बड़ी संख्या में वर्णनात्मक पेस्टोगीतों और ग्रामीण-नाटकों का प्रादुर्भाव हो गया। कोई भी दरबारी नाटककार अपने सम्राट् की इससे अच्छी सेवा और नहीं कर सकता था कि वह स्वप्न युग तक अपनी कल्पना का विकास करे और ऐसे नायकों-नायिकाओं की रचना करे जो आर्केडियाई आनन्दोत्सवों के बीच विचरण किया करते थे; वह असभ्य लोगों की सरलता और ग्रामीण सौन्दर्य के मोहक चित्र अ–सरल, अघाये हुए नृत्यशाला के प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करें। शायद इस नाटककार की पाण्डुलिपि चित्रों, नृत्यों और ग्राम-गीतों के खाका मात्र से थोड़ा सा ही अधिक थी। या, शायद वह उतनी ही काम-चलाऊ छद्मवेशी नाटकों का पाठभाग होता था। परन्तु अन्ततोगत्वा, साहित्यिक नाटक का एक विकसित उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण वह कुछ न कुछ महत्वपूर्ण तो बन ही गयी थी।

उस समय जब कि पहिली बार मंच कुंजों, ग्राम वाटिकाओं और लता-गुल्मों से सुसज्जित होने लगा था, यह बिल्कुल ठीक ही था कि ग्रामीण-नाटकों का प्रादुर्भाव होता। रंगमंच का जो यह नया स्वरूप बन रहा था, उसमें इन प्राकृतिक तत्वों के चित्रों की आवश्यकता अनिवार्य हो गयी थी—या तो मंच को इन चित्रों से सजाया जाता या फिर वाटिकाओं और लता-कुंजों में ही मंचों को निर्मित करना पड़ता। इटली

की कुंजोंवाली रंगशाला वासनामूलक ग्राम्य-अभिनयों की ही द्वितीय उप-सृष्टि थी; यह रंगशालीय 'इमारतों' में उतनी ही मनोरम नवीनता थी जितनी कि लिखित नाटकों में ये ग्राम्य-नाटक थे।

प्रगीतात्मक काव्य ने रोमनों को उस समय भी मोह लिया था जब वे विजय-अभियानों और रक्तपात जैसे संगीतहीन कार्यों में संपूर्ण रूप से लगे हुए थे। मगर आज तक सिसीलियावासी यूनानी थियोक्रिटस उस नाट्य-विधा का आचार्य बना हुआ है। उसने संसार को सिसली की हरी-भरी पहाड़ियों और उपत्यकाओं से सम्बन्धित ऐसे प्यारे गीत और कथोपथकन दिये कि बाद का कोई भी कवि हमारे हृदय और मर्म को उस जादुई स्पर्श से विगलित नहीं कर सका। प्राचीन रोम के ही समान पुनरुत्थान काल में भी हमें एक विदेशी भावना, एक निष्ठाहीनता, एक कमजोर रोमांटिसिज़्म का रुख़ इन ग्रामीण वस्तुओं के प्रति दिखायी देता है। इस स्थल पर, और बाद में लुई सोलवें के वार्साई दरबार में भी, हमें एक व्यापक आडम्बर दृष्टिगोचर होता है। मगर इतना तो सुनिश्चित ही है कि उन हिंसापूर्ण षड्यंत्रों और बनावटी सामाजिक उत्सवों के बीच भी ग्रामीण जीवन के प्रति एक वास्तविक कोमल भावना, अधिक मधुर और सरल जीवन के लिए एक सच्ची लालसा मौजूद थी। इटली के ग्राम कुटीर और अंगूरों के निकुंज इसके प्रमाण हैं। बोकेशियो इन्हीं की सासों जीता था (उसकी श्रृंगारपरक कहानियां जो कि स्मृति में सदैव ताज़ा बनी रहती हैं, अपने उपवनों वाटिकाओं के सन्दर्भ में सदैव गमकती रहती हैं) यहाँ तक महान् लोरेंज़ो (कवि की हैसियत से) अपने ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित गीतों और पौराणिक कथाचित्रों के कारण ही सबसे अधिक याद किया जाता है। कुछ तो वर्जिल तथा अन्य प्राचीन आचार्यों की अनुकृति के रूप में और कुछ इटालियन ग्राम जीवन की अनुगूंज के रूप में, **ग्राम्य** साहित्य तथा **ग्राम्य** जीवन का गुणगान करने वाली रचनाओं का यहां स्वागत हुआ और लगभग दो शताब्दियों तक इटली, फ्रांस और इंगलैंड के दरबारों में शाश्वत रूप से इनका स्थान बना रहा। यदि सन्नाज़ारो ने आर्केडिया की रचना न की होती तो इसमें सन्देह है कि सर फिलिप सिडनी अपनी रचना भी कर सके होते अथवा नहीं। हमें यह अच्छी तरह पता है कि किस प्रकार शेक्सपियर ने अपने समय में इटली से आयी हुई कहानियों को पढ़ा और राज-महल-उपवनपरक 'ट्वेल्थ नाइट' नामक अपने नाटक में उनका यथेष्ट उपयोग किया, या 'दी विंटर्स टेल' नाम की दरबारी-ग्रामीण रचना लिखी।

सोलहवीं शताब्दी में, जब कि अभी इटालियन नाटक का उद्घाटन प्राचीन क्लासिकी रूपों से (यद्यपि पुराने पात्रों से नहीं) हुआ था, यह अनिवार्य

था कि उसमें ग्रामीण भावना का समावेश होता। उस समय से लेकर तास्सो तक के सभी नाटकों को यदि हम शीर्षक दें तो हम लिख सकते हैं : समय, स्वर्ण-युग; स्थान, सदाबहार मेंहदी की वाटिका और ग्रामीण क्षेत्र, पौराणिक देशों की पहाड़ियां और जंगल पात्र, पान और उसके देवता तथा अप्सराएं, पोलिफीमस, इको, साइप्रियन, और टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी लिये गड़ेरिये तथा गड़ेरिनें—ये पात्र उस सरल आदर्श के प्रतीक थे जिसकी ओर प्रेक्षकों का हृदय सहज ही आकृष्ट होता था।

कहानियां प्रेम की हैं—प्राचीन स्थानों और युगों के ग्राम जीवन से सम्बन्धित प्रेम कथाएं उस समय की हैं जब जीवन इतने झंझटों से पूर्ण न था, इतना नीरस तथा इतना आवेशपूर्ण न था। आह, इन कथाओं में एक मोहक उल्लास है ! तब भगवान् ने इस संसार को रचना केवल प्रेमियों के लिए की थी ! दिन का समय शाश्वत झुटपुटे वाला अथवा उषा के तत्काल बाद की स्वच्छ ताज़गी से पूर्ण है ! न कहीं कमरे हैं, न सड़कें हैं, केवल सरिता तट हैं, नहाने के ताल-तलैया हैं, शीतल गुफाएं हैं। आर्केडिया मंच पर प्रस्तुत है।

'अमीनता' में तोरक्वातो तास्सो ने इस नाट्य रूप को पूर्णता तक पहुँचा दिया। उसने उत्कृष्ट काव्य से, वास्तविक भावना से, यत्किंचित आवेशपूर्ण (यद्यपि कृत्रिम ढंग से आयोजित) नाटक से, वर्णनात्मक ग्रामगीत को अलंकृत कर दिया, समृद्ध बना दिया। बातिस्ता गुइरानी ने अपने 'पास्टर फ़िदो' में नाट्यकला को शक्ति प्रदान की, उसे अधिक पार्थिव बना दिया। इन दोनों रचनाओं में उन पौराणिक क्षेत्रों के और उस स्वर्णयुग के श्वास-प्रश्वास हैं जिनको चित्रित करने के लिए सभी ग्राम्य-गीतों के कवि इतनी कोमलता के साथ आहें भरते रहे हैं।

'अमीनता' नाटक पहिली बार फ़ेरारा में १५७३ ई० में अभिनीत हुआ। यह नाटक हमें सुन्दरी सिलविया के प्रति गड़ेरिया अमीनता के प्यार की रसभरी कहानी अंशतः दिखाता और अंशतः सुनाता है। कुंवारी सुन्दरी सिलविया जो कि कभी उसके साथ खेली थी और अब शिकार की देवी डायना की अनुगामिनी बन गयी थी, उसके प्यार का प्रत्युत्तर नहीं देती। नाटक का शुरू होता है उस भूमिका से जिसमें प्रेम गड़ेरिया का वेश धारण करके बोलता है। दो दृश्यों में पूरी परिस्थिति पर प्रकाश पड़ जाता है। डाफ़ने व्यर्थ ही सिलविया की भर्त्सना करती है कि वह प्रेम के आनन्द की ओर से विरक्त रहती है। प्रसंगतः वह अपने आनन्द की अत्यन्त आकर्षक तस्वीर खींच देती है। और, अमीनता अपने मित्र थिरसिस से विरक्त सिलविया के प्रति अपने प्रेम की कथा कहता है।

अमीनता

अभी मैं बच्चा ही था, अभी मैं इतना भी बड़ा नहीं हुआ था
कि नीचे से नीचे लटकते फल को तोड़ सकूं
कि मेरी घनिष्टता सर्वसुन्दरी और सबसे प्यारी लड़की से हो गयी
शायद कभी भी इससे अधिक सुन्दर लड़की की
सुनहरी अलकें वायु में न लहराई होंगी......
पता नहीं किस भूल से,
पर जैसे अपने आप ही अपने बीज से उग आती है,
कोई अजानी सी चीज़ पैदा हो गयी...
ऐसी चीज़ जो निरन्तर मुझे उसके निकट रहने के लिए
उत्सुक बनाती रही,
और तब, मैं उसकी आंखों में एक मधुर रस का
पान करता रहा---ऐसी मधुरिमा जो पता नहीं कैसे
एक कड़ुवाहट सी पैदा कर देती।
अक्सर मैं आह करता, मगर इसका कारण
समझ में न आता;
और इस प्रकार, इसके पहिले कि मैं जान पाऊं
कि प्यार क्या होता है
मैं प्रेमी बन गया......

इन व्याख्यापूर्ण और वर्णनात्मक दृश्यों के बाद प्राचीन नाटकों के विशेष-स्वरूप समूह गान होता है---स्वर्ण युग का गीत। और इस बार यह समूहगान निश्चय ही गड़ेरियों का था।

दूसरे अंक में एक असंस्कृत बन-मानुस प्रेम के बारे में एक स्वगत–कथन प्रस्तुत करता है, और वह सिलविया का पता लगाने के लिए उसके स्नान करने के जलाशय के पास जाता है। डाफने और थिरसिस अमीनता और सिलविया को मिलाने के लिए षड्यंत्र करते हैं। थिरसिस प्रेम के मारे गड़ेरिया को यह विश्वास दिला देता है कि सिलविया स्नान करने के स्थान पर उसकी राह देख रही है। दूसरे अंक में थिरसिस बताता है कि स्नान करने के स्थान पर क्या हुआ : उसने और अमीनता ने देखा कि बनमानुस ने सिलविया को एक पेड़ से बांध दिया है। जब ये लोग वहां पहुंचे तो वह

दानव निकला, मगर सिलविया, अपने इन रक्षकों को पुरस्कृत करने की बजाय स्वयं डरी हुई बनदेवी की भांति भाग गयी।

अमीनता सामने आता है। अभी-अभी उसने आत्महत्या करने की कोशिश की थी, मगर डाफने के कारण वह असफल रहा; और अब एक अप्सरा आती है—विशिष्ट 'संवाददाता' के रूप में—और बताती है कि भेड़िया के शिकार में सिलविया मारी गयी। अमीनता फ़ौरन पहाड़ी की चोटी से कूद कर जान देने के लिए भागता है। सिलविया फिर से वापिस आती है और बताती है कि कैसे वह भेड़िया से बाल-बाल बची। डाफने से जब वह अमीनता के दुःख की कहानी सुनती है तो वह पीड़ा से पिघल जाती है और जब एक सन्देशवाहक यह सूचना लाता है कि वह पहाड़ी की चौड़ी चोटी से कूद पड़ा तो वह शपथ लेती है कि मृत्यु में वह उसका साथ देगी। वह इस धरती पर केवल तभी तक रहना चाहती है जब तक अमीनता की ठंढी क्षत-विक्षत लाश को दफ़ना न दिया जाय। अंतिम अंक एक एकान्त स्वगत-भाषण से खुलता है जिसमें नियति की विचित्र विधियों की चर्चा होती है—और सचमुच यह एक चमत्कार ही था कि गिरने के बाद भी अमीनता को कोई चोट न आयी। और यह भी एक प्रकार का चमत्कार ही था कि सिलविया और डाफने ने लाश को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसे पा लिया :

एलपिनो

..............लेकिन जब सिलविया ने पहिचान लिया
अमीनता को, और देखी उसके सुन्दर गालों की इतनी कमनीय
विवर्णता—ऐसी रक्तनीलाभ विवर्णता जो अब तक न देखी गयी,
तो उसके हृदय को ऐसा आघात लगा कि
जैसे उसके प्राण पखेरू ही उड़ जाएंगे।
और फिर एक उन्मत्त मद्यप की तरह
चीख़ती चिल्लाती और पीटती निज कोमल वक्ष
उस चित्त पड़ी धराशायी देह पर गिर पड़ी—
मुंह पर मुंह और ओंठ पर ओंठ!

समूह गान

जो अब तक थी परम कठोरा,
प्रणय-निवेदन अब तक जिसने अस्वीकारा,
उसकी लज्जा छूट गयी तब?

एलपिनो

जो लज्जा का संयम माने प्रेम, अबल है,
पर सशक्त यह निर्बल वल्गा तोड़ फेंकता।
उसकी आंखें मीठे जल की निर्झरणी थीं
जिससे नहा उठे उसके शीतल कपोल, रोते ही रोते,
वह जल इतना मीठा था कि वह पुनः जी उठा,
उसने अपनी धुंधली आंखों को फिर खोला,
निकल पड़ी चीत्कार आर्त उसके अन्तर से !

और एलपिनो सिलविया के पिता को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़ता है। वह बताता है कि सिलविया के पिता की यह बड़ी इच्छा थी कि वह अपने नातियों का मुंह देखे ।

निस्सन्देह यह नाटक भावनात्मकता के अतिशय निकट पहुंच जाता है और तास्सो की कल्पनाशीलता एवं काव्य की समृद्धि और सूक्ष्मता की इस कथा को (यहां यह उद्धरण लेह हण्ट कृत अनुवाद से लिया गया है) उबाऊ होने से बचा लेती है। यहां जो कुछ है एक मधुर कल्पना के स्तर पर है; इन आत्म-हत्याओं और खतरों कोई वास्तविकता नहीं है : सत्यमेव कहीं कोई संशय नहीं है, इस बात का कोई भय नहीं है कि अमीनता सिलविया के हृदय पर जमी बर्फ़ को अपने प्यार की उष्णता से पिघला न सकेगा। परन्तु किसी प्रकार अपनी कोमल मानसिक स्थिति में हमें ये घटनाएं छू लेती हैं और हम एक प्रकार के इस वासना-मूलक नाटक के वाह्यरूप की समृद्धि से प्राप्त आनन्द के प्रवाह में बहते जाते हैं। यहां थियोक्रिटस के चमत्कार का पता नहीं है। डाफने के अनुसार ऐसा इसलिए कि :

यह संसार, मेरे लेखे, बूढ़ा होता जाता है,
और ज्यों-ज्यों वह बूढ़ा होता जाता है, उदास होता जाता है।

पुनरुत्थान की भावना ने ग्रामगीतों और ग्रामकाव्य को एक कृत्रिम स्वर दे दिया है। कवि एक सरल-सहज युग में आनन्द लेने की बजाय आहें भर रहे हैं। मगर यह एक ग्राम्य प्रेमगीत है, जिसमें प्रचुर गीतात्मकता है, यह एक सादी-सी

गांव की कथा है जिसे अत्यन्त कोमलता के साथ सजाया गया है, जिससे अत्यन्त प्रभावोत्पादक और रुचिकर बना दिया गया है। लगता है स्वर्णयुग की दीप्ति कल्पनालोक पर बिखरी हुई है।

जो लोग मूल दर्शक थे अब उनको इन नाटकों में प्रतीकवाद तथा स्थानीय उत्प्रेक्षाओं के कारण अतिरिक्त आनन्द प्राप्त होने लगता होगा। अपने संरक्षक की प्रशस्ति में तास्सो ने एक आदर्श दरबार का लम्बा वर्णन अपने नाटक में जोड़ दिया। उस के प्रत्येक पात्र को फेरारा समाज के किसी न किसी सम्भ्रान्त पुरुष अथवा स्त्री के रूप में पहिचाना जा सकता था।

बाद के वर्षों में इटली के बाहर भी अमीनता का बहुत गहरा प्रभाव था। निरन्तर लोग उसकी अनुकृति करते रहे। परन्तु वे उसके समान स्तर की कोई कृति नहीं तैयार कर सके। फलतः वह ग्रामीण काव्य, विशिष्ट प्रकार के ग्राम्य नाटकों के द्वितीय उदाहरण के रूप में प्रतिष्ठित रहा। इसके दो सौ से अधिक संस्करण इटालवी भाषा में प्रकाशित हुए; बीस संस्करण फरासीसी और नौ संस्करण अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुए। इसके कोड़ियों संस्करण सभी युरोपीय भाषाओं और छोटी-छोटी बोलियों में भी प्रकाशित हुए।

मात्र 'दी पास्तर फ़िदो' अथवा 'फेथफुल शेफ़र्ड' को यह ख्याति और प्राप्त हो सकी। यह और भी बड़ी रचना है। नन्हे से नाटक 'अमीनता' से यह तीन गुना अधिक बड़ा है। सिलविया के सीधे से कथानक के स्थान पर इसमें एक बड़ा और अधिक उलझा हुआ कथानक है। इसकी वक्तृताएं भी उसी तरह लम्बी हैं, अधिकतर क्रियाएं रंगमंच के बाहर ही होती हैं, जिनका वर्णन प्रेमी लोग, सन्देशवाहक और समूहगान के लोग, रंगमंच के ऊपर करते हैं। इन भाषणों में ग्राम्य जीवन के प्रति वही निष्ठापूर्ण प्यार आदि से अन्त तक उमड़ता रहता है :

अमरिलिस

प्रिय आनन्दमय उपवनो !
और ओ तुम पूर्ण प्रशांत, एकांत उदासी,
शांति और विश्राम के वास्तविक निकेतन !
कितनी स्वेच्छापूर्वक, कितने मन से मेरे पग
तुम्हारी ओर बढ़ते जाते हैं !
काश कि मेरे भाग्य-नक्षत्रों ने मुझे

प्लेट १६
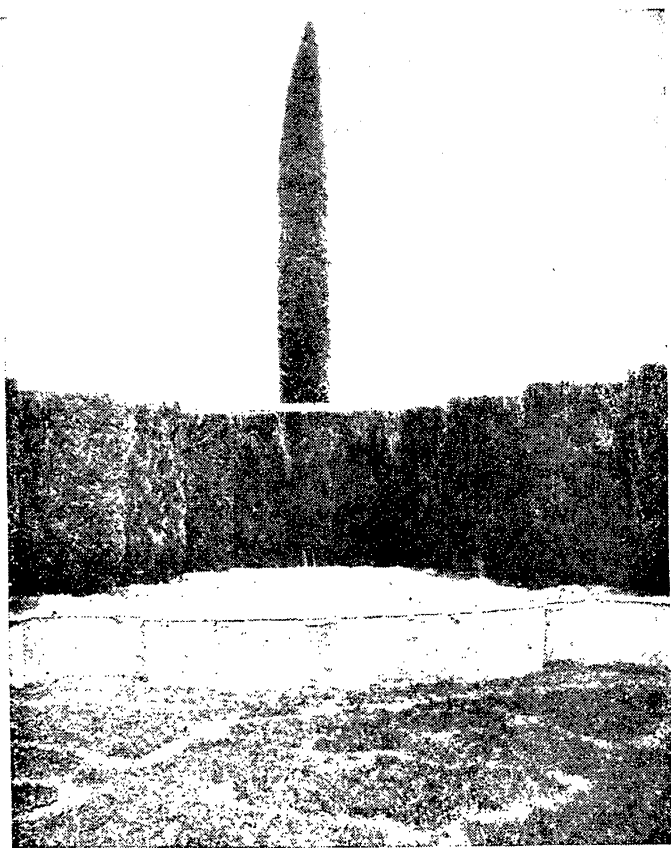
विला गोरी में उद्यान रंगशाला।
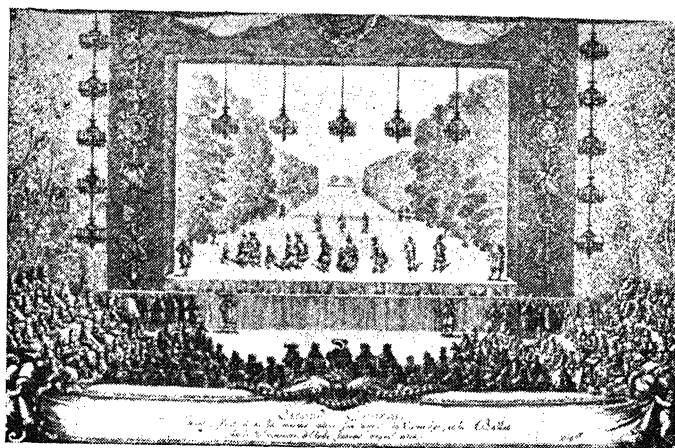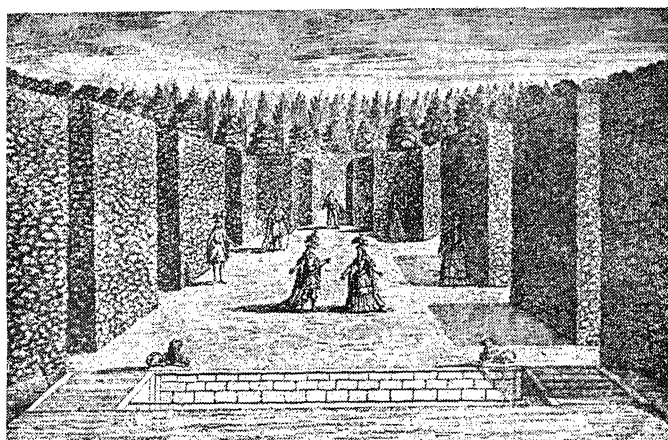
ऊपर, मिराबेल कैसिल, साल्ज़बर्ग, में उद्यान रंगशाला। नीचे, सत्रहवीं शताब्दी में वार्साई के राजमहल की ज़मीन पर निर्मित एक नवीन रंगशाला। आगे के पर्दे के ऊपर की गोलाई और मंच के खुले 'अल्ली'; ढंका हुआ प्रेक्षागृह और मोमबत्तियों को देखिए। ज्यां लेपात्रे के एक चित्र के आधार पर।
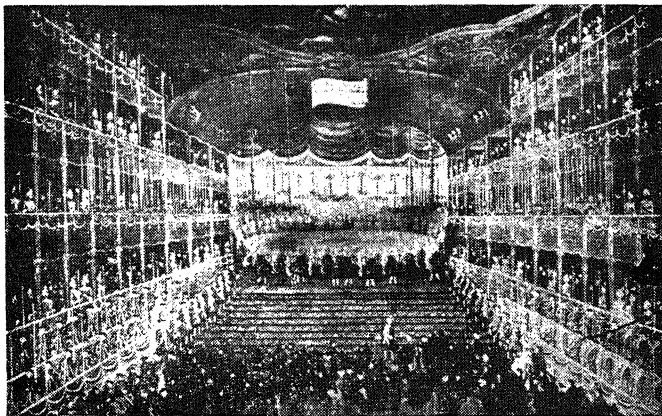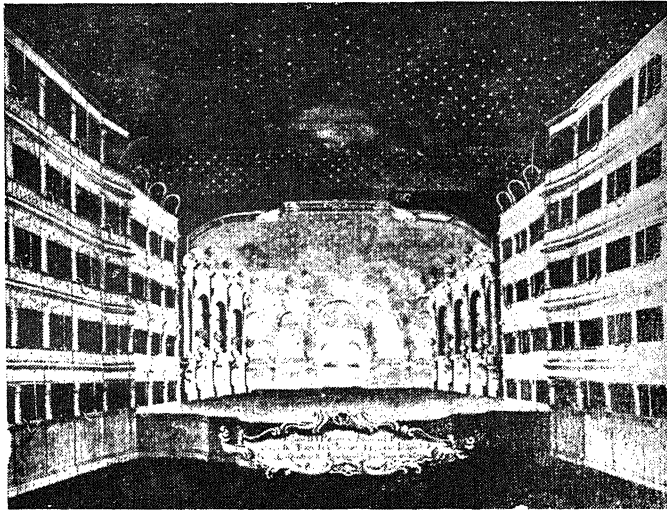
अठारहवीं शताब्दी की विशिष्ट वेनीशियन रंगशालाओं के दो अंकित चित्र। ऊपर वाले चित्र में मंच सेटिंग दृष्टव्य है। नीचे, एक रंगशाला जो किसी उत्सव के लिए सजायी गयी है।
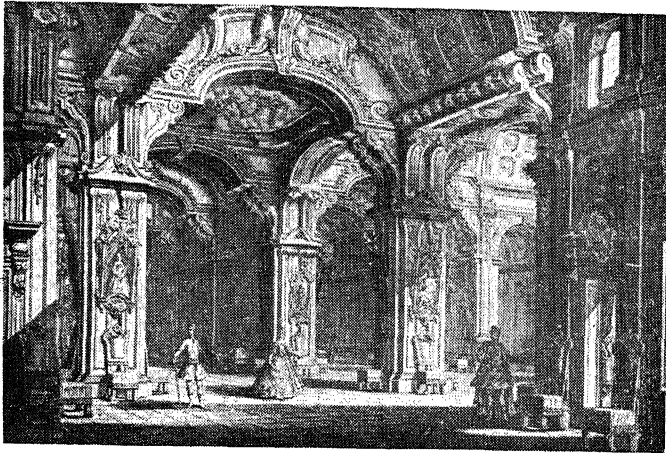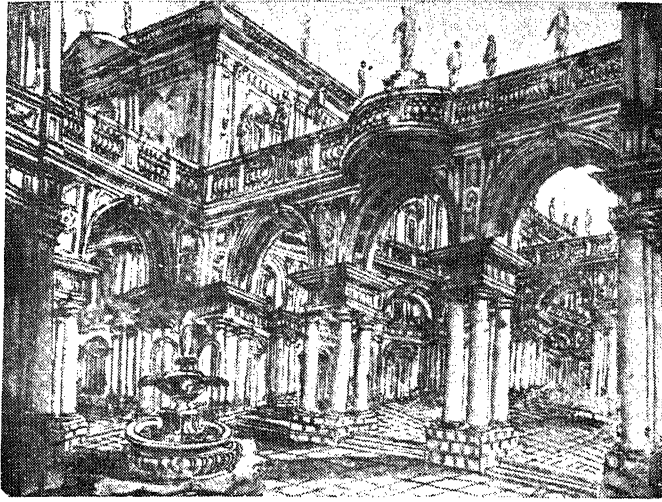
बीबीनास द्वारा निर्मित विराट इमारती सेटिंग। ऊपर गियोवान्नी मारिया गल्ली-बिबियेना द्वारा बाह्य सेटिंग का चित्रांकन। नीचे, जियुसेपे गल्ली-बिबियेना द्वारा भीतरी सेटिंग का चित्रांकन, जैसा कि वह बवेरिया-दरबार के एक नाट्योत्सव के समय था। (उफ़ीज़ी गैलरी, फ्लोरेंस, में स्थित मूल चित्र के ब्रोगो फ़ोटो का चित्रांकन; दूसरा चित्र मूल प्रति से लिया गया है।)

एकांत जीवन का ही वरदान दिया होता ।......
नहीं, इलीशिया के उद्यानों,
अर्द्ध-देवों की उन मनोरम वाटिकाओं के बदले भी
मैं तुम्हारी मोहक छायाओं को न दूंगी !
वह ग्राम-बधू भी कितनी भाग्यशालिनी है
जिसके पास पहिनने के लिए इतना कम है,
जो अपने सादे घरेलू पोशाक ही पहिनती है,
जिस पर कलंक का धब्बा नहीं है,
नितान्त अपने में ही संतुष्ट-संपन्न ।......

ग्रामीण-नाटक के अंतिम वाक्य के रूप में, हम अमरिलिस की उन समापन पंक्तियों के देख सकते हैं जिनमें वह इन रचनाओं की शोभा बढ़ाने वाली संयुक्त शाश्वत मोहकता और क्षण-भंगुर सौन्दर्य के कारणों पर प्रकाश डालती है। आख़िर-कार उनकी रचना उन कुलीन महिलाओं और मनचले सामन्तों के लिए की गयी थी जो जीवन की वास्तविकता से हट कर एक शाम के लिए, मनोरंजन मात्र के लिए, होती थी ।

........और यदि मेरे इस नैसर्गिक सुख में
साझीदार होना चाहते हैं, तो खुलकर आइए
और हमारे इस मनोरम उत्सव में भाग लीजिए !

हाँ, यह उत्सवमूलक नैसर्गिक आनन्द ही था जिसने ग्राम्य-नाटक की रूपरेखा बनायी। यह जीवन से अवकाश का नाटक है, जीवन का नाटक नहीं । इस सम्बन्ध में यह जोड़ देना और भी अधिक सार्थक होगा कि ये दोनों कवि जिन्होंने, 'सामने सुदूर के स्वर्णिम कुहासे' की कथा का नाट्य रूपान्तर किया था, ऐसे दरबारी थे जिनका भरम टूट चुका था और जो अत्यन्त कटु हो चुके थे। तास्सो इतना अधिक आदर्शवादी था कि वह पागलपन की सीमा के भीतर पहुँच गया, पागलखाने में बन्द कर दिया गया; ग्वारिनी एकदम विरक्त होकर एकान्त जीवन व्यतीत करने लगा। लोकतांत्रिक भावना के उदय के समय तक जितने प्रकार के नाटक मिलते हैं वे सभी इनके नाटकों की प्रतिध्वनियों से समानता रखते हैं। परन्तु न तो स्पेन में, न फ्रांस ही में हमें वह शृंगारिक समृद्धि मिलेगी, जो यहाँ मिलती रही है। इंगलैण्ड में यह भावना गीतात्मक-काव्य में प्रविष्ट हुई। यह भावना स्पेंसर में आयी

जिसने प्रचुरता और कोमलता के साथ इसका गायन किया; यह भावना उस मारलो के भीतर प्रविष्ट हुई जिसने अपने उद्वेग को इस प्रकार अभिव्यक्त किया——

आओ, रहो पास में मेरे, आओ मुझसे प्यार करो तुम,
हम दोनों उपभोग करेंगे, उस वैभव का,
जो कि पर्वतों, उपत्यकाओं में, टीलों पर, मैदानों में
वन-कानन में और पहाड़ी ढलवानों पर पैदा होता !

और यह भावना उस शेक्शपियर की आत्मा में प्रवेश कर गयी जिसने इसके मनोरम प्रकाश को ऐसी कृतियों पर बिखेरा जो इटली में कभी भी लिखी गयी रचनाओं से अधिक शक्तिशाली, ताज़ा, और अधिक मोहक थीं——यद्यपि वे इतनी सरल न थीं।

इटली की उद्यान-रंगशालाओं का एक चित्र और उसकी योजनाओं की चर्चा, जो ग्रामीण नाटकों के प्रदर्शन के लिए बिल्कुल उपयुक्त थे, यहाँ करते समय, मुझे बतला देना चाहिए कि इनका युग बहुत बाद का है (जहाँ तक हमारी जानकारी है), और यह कि इस बाद के युग के नवीन और बहु-प्रशंसित चल-चौकियों की सेटिंग, पर इन नाटकों को अभिनीत किया जाता है। यह वर्णन मिलता है कि तास्सो ने, अपने पागलपन में ही, फ्लोरेंस तक जा कर 'अमीनता' को सुनियोजित ढंग से मंच पर प्रदर्शित करने के लिए बूतालेंती महान् को धन्यवाद दिया था और महान् ड्यूक के प्रति सम्मान प्रदर्शित न करके उसने अपने इस धन्यवाद को और भी अधिक महत्ता दे दी थी। मगर इस समय मंच पर शिल्पियों और चित्रकारों की महत्ता बढ़ती जा रही थी; कुछ समय बाद, खुली रंगशालाओं का भी प्रचलन हो गया, और इटालियन शैली में निर्मित विंग और झंझरीदार हरियाली और झाड़ियों से सुसज्जित पार्श्व-पटों वाली ग्राम भवन-रंगशालाओं की नक़ल उत्तरी प्रदेश के राजभवन——उद्यानों में होने लगी थी। साल्ज़बर्ग के श्लास मिराबेल उद्यानों में एक ऐसी ही रंगशाला है, जिसका चित्र यहाँ दिया गया है। अगर आप चाहेंगे तो आज भी आप इस रंगशाला-को देख सकते हैं। यह प्रथा बिल्कुल समाप्त नहीं हो गयी। इस बीसवीं शताब्दी में भी इस प्रकार की जितनी रंगशालाएं कुल इटली में प्रयुक्त होती हैं, उतनी, अकेले केलिफोर्निया में प्रयुक्त होती हैं——बल्कि मैं कह सकता हूँ कि उससे भी अधिक !

गियोवान्नी-बार्दी, कांती दी वर्नियो, फ्लोरेंस के भवन अथवा राजमहल में सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में नौ-सिखिए कवियों और कलाकारों का एक दल अक्सर आपस में मिल कर कला के सम्बन्ध में चर्चा करता था और एक दूसरे की
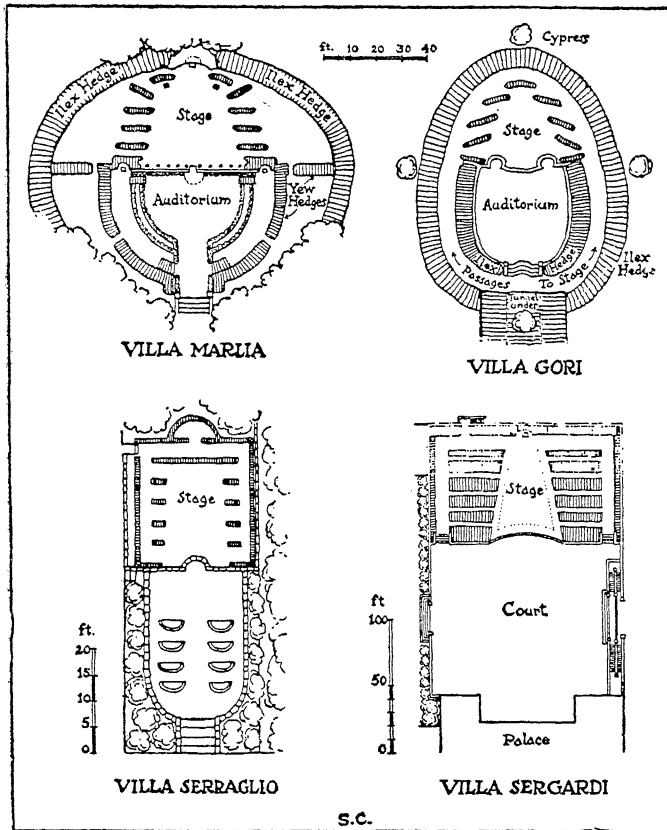
चार इटालियन उद्यान-रंगशालाओं के मानचित्र, जिनमें उनके विभिन्न रूप दिखाये गये हैं। इनमें खिलौने की तरह छोटे उदाहरण भी हैं। इनमें विंग्ज़ नरकुल अथवा ओक की झाड़ियों से बनते थे और मंच की छतें उसके गुच्छों से बनती थीं। (चेनी कृत 'ओपेन-एयर थियेटर' से)

रचनाओं का पाठ करता और उसे अभिनीत करता था। इन ग़ैर-पेशेवर कलाकारों को कला और विधा के प्रति उसी आस्था ने उद्वेलित किया था जिसने उनसे अधिक प्रौढ़ पेशेवर कलाकारों को अकादमी बनाकर पूर्वपुरुषों की सफलताओं का अनुशीलन करने और नाट्य-रचना-संगीत तथा काव्य कौशल के अभ्यास में यह जानने के लिए कि किन गुणों के कारण कोई रचना 'क्लासिक' मानी जाती है, अनुप्रेरित किया था। प्रसन्नता की बात है कि काउण्ट-वार्डी चक्र के सदस्य अति-सिद्धान्तवादी अकादमी-सभ्य के नियमों से इतने अधिक बँधे नहीं थे। या वे अपने विषय की इतनी ठीक-ठीक जानकारी भी नहीं रखते थे कि वे असम्भवप्राय और अ-रीत्यानुसारी प्रयोग न करते। ऐसे लोगों में प्रसिद्ध गेलेलियो के पिता विंसेंजो गेलिली, और उनसे कम उम्र के संगीतज्ञ जकोपोपेरी और गुइलियो काशिनी थे।

एक दिन यूनानी रंगशालाओं में अलंकृत काव्य-पाठ की प्रणाली की चर्चा छिड़ गयी। यह मालूम था कि पंक्तियों का पाठ अलंकृत-उच्चारण-प्रधान था, गेयता-प्रधान नहीं। और, यह कि समवेत गानों में संगीत से संगत की जाती थी। क्यों न इस प्रणाली को फ्लोरेंस की नृत्य-रंगशालाओं में भी चालू किया जाय? परन्तु यूनानियों का संगीत तो सर्वथा लुप्त हो गया था। इसके सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने वाली कोई पुस्तक नहीं रह गयी थी। इसलिए इन ग़ैर-पेशेवर कलाकारों ने यूनानी संगीत समन्वित नाटकों की पुनर्रचना आरम्भ की। उनके सामने एक निश्चित उद्देश्य था। उनके सामने ऐसे तथ्य थे ही नहीं जिनके कारण बाधा पहुँचती।

अन्त में, वे जहाँ पहुँचे उसकी कल्पना उनमें से किसी ने न की थी। (पेशेवर संगीतज्ञ कहते थे कि वे आँखें बन्द करके, बिना किसी जानकारी के आगे बढ़ते जा रहे हैं।) वे एक नवीन, यद्यपि मिश्रित कलारूप तक, आपेरा तक पहुँचे। वे सम्भाषण की यूनानी विधि को फिर से चालू करने अथवा उस पर थोड़ा सा भी प्रकाश डालने में असफल रहे। परन्तु उन्होंने एक प्रकार के ऐसे संगीत-नाट्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की जो बहुत दिनों तक प्रचलित और प्रसिद्ध रहा। लगभग तीन सौ साल तक निश्चित ही यह संसार की सबसे बड़ी और सबसे अधिक प्रदर्शनकारी रंग-शालाओं को हथियाये रहा। यह तो कोई स्वीकार नहीं करता आपेरा कभी भी 'शुद्ध' कला-विधा का रूप ले सकता है। और यद्यपि हममें से किसी ने भी कभी आपेरा को न देखा है, न सुना है, फिर भी आपेरा-मूलक रंगमंच का महत्वपूर्ण स्थान अपनी आलो-चना, निन्दा और महत्वहीनता के बार-बार मिलने वाले प्रमाणों के माध्यम से सभी संभ्रान्त जातियों में स्वीकृत रहा है। लगे हाथों यह भी कह दूँ कि 'आपेरा' शब्द का कोई अर्थ नहीं है। इसका अर्थ केवल 'कार्य' होता है जो संगीत-सम्बन्धी कार्य से ही

रचनाकारों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। अब आपेरा एक स्वीकृत और स्थायी विधा बन चुका था।

१६०७ में, मान्तुआ के दरबारों में, ड्यूक के मेस्त्रो दी कम्पेल्ला कलाडियो मांतीवर्दी ने रिनूसिनी के दो ग्रामीण-प्रेम काव्य कथाओं—एक डाफने और एक आरियन्ना, के लिए संगीत रचना की। गोंजागा राजकुमार और मारघेरिटा, इनफैंटा आव सेवाय, के विवाहोत्सव के सम्मान में ये दोनों अभिनीत हुए। (मैं दरबारी उत्सवों की पृष्ठभूमि को बार-बार दोहरा रहा हूँ, ऐसा इसलिए कि पाठक इन दरबारी अभिनयों के प्रतिष्ठापन की शान-शौकत को ध्यान में रख सकें। हम यह देखेंगे कि किस प्रकार आपेरा ने नृत्यलीला के सजीव श्रृंगार को ही नहीं, सम्पूर्ण विष्कम्भकों को भी हड़प लिया)। मांतीवर्दी ने कथा-प्रसंगों के सहायक के रूप में संगीत की सीमाओं को अधिक व्यापक बनाया। उसने आरकेस्ट्रा में भी कुछ जोड़ा, और उसने इतनी मौलिकता और कल्पनाशीलता के साथ लिखा था कि उसे आपेरा के वास्तविक आचार्यों में सर्वप्रथम स्वीकार किया जाने लगा। 'आरियन्ना' में उसे इतनी सफलता मिली कि उसे दूसरी रचना तैयार करने के लिए तत्काल आदेश मिल गया। दूसरे वर्ष 'ओरफियो' अभिनीत हुआ। इसमें रचनाकार ने चालीस अंगों वाले वृन्द-वादन का प्रयोग करने का साहस किया इसमें उसने मूर्छना के कुछ टुकड़े भी लगाये।

आपेरा के सम्बन्ध में यह कल्पना की जाती है कि अपने मूल में वह यूनानी नाटक की अनुकृति है। अब तक आपेरा ने अपना वही मौलिक रूप क़ायम रखा और उसमें इस प्रकार की लयकारी शामिल न हो सकी जो आजकल के आपेरा-परक प्रदर्शनों में होती है: नाटक और संगीत के अति कठिन सामंजस्य की कुंजी सस्वर पाठ को ही माना जाता था। लेकिन एक बार जब संगीतमय स्वर-माधुर्य को कुछ प्रधानता मिलने लगी तो आपेरा संगीत-समन्विति के साथ प्रस्तुत नाटकों से दूर और दूर होने लगा। वह उस संगीत के अभ्यास के निकटतर होता गया जिसमें नाट्य-कथा एक अंक के रूप में ही रहती थी। निस्सन्देह तबसे अगली कई शताब्दियों के नाट्यशाला के संपूर्ण -तिहास में, इस सूक्ष्म अन्तर के सबन्ध में अनेक बार विवाद छिड़े और घनघोर संघर्ष भी हुए। ऐसा उस स्थान पर होना स्वाभाविक भी था जहाँ दो विशिष्ट कला-विधाओं के बीच इस प्रकार का विकल्प हो। और, इधर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, अत्यधिक चटख़ और अलंकृत साज-सज्जा के विपरीत 'संगीत-नाट्य' की ओर वापिस जाने की युगान्तरकारी प्रवृत्ति दिखायी पड़ी थी। परन्तु यदि मांतीवर्दी से आरम्भ करके कवाली, केस्टी और स्कारलटी तक और उनके वाद के इटालवी और फ्रांसीसी रचनाकारों की कृतियों का इतिहास देखें तो हमें मिलेगा कि

स्वर-माधुर्य और लयान्विति का प्रभाव बढ़ता ही गया; नाटकों में गीतियों का मिश्रण होता गया और नाटचात्मक ऋजुता निरन्तर कम होती गयी। यह एक मजेदार बात है कि आपेरा के फ्लोरेंसी अन्वेषक, जिन्होंने पेशेवर संगीतज्ञों की अवहेलना करके संगीत-नाटचात्मक विधा का प्रयोग किया था, अब कवेली के लयात्मक गीतियों के कारण निन्दा के पात्र बन रहे थे। अब वे कट्टरपंथी समझे जाते थे और उनको इस बात की चिन्ता हो गयी थी कि उनका बच्चा, जो यद्यपि अनिश्चित भावावेश के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था, अब ऐसे क्षेत्रों में प्रविष्ट हो रहा था जो भयानक रूप से अपरिचित थे।

लेकिन जिस समय कावेली अपना कार्य कर रहा था, उस समय यह निश्चित था कि आपेरा अब पुराने अव्यावहृत सस्वर पाठ की एकरसता की ओर वापिस न जायगा। जो भी हो, इटालियन, आपेरा के विकास के मार्ग को जिसे स्कारलेती ने प्रशस्त किया था, आज भी उसमें फरासीसी अथवा जर्मन से अधिक संगीतमय स्वरमाधुर्य पर बल दिया जाता है। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस युग के ठीक बाद, इटली में संगीत अत्यन्त अलंकृत हो गया और उन संगीत-कलाकारों की अत्यधिक चापलूसी होने लगी जो नाटकों में भावाभिव्यक्ति को विकसित करने के स्थान पर प्रदर्शनकारी टुकड़ों को पेश कर देने में अधिक रुचि रखते थे। चालीस वर्षों के भीतर ही नाटक के क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाला नवागंतुक साधारण-सा प्रयोगात्मक अभिनय प्रस्तुत करते-करते महान आपेरा प्रस्तुत करने लगा।

१६३७ ई० में, वेनिस में, प्रथम आपेरा-रंगशाला का उद्‌घाटन हुआ--तियोत्रोदी सान कासियानो। इसमें इतनी अधिक सफलता मिली कि प्रायः तत्काल ही अनेक प्रतिस्पर्द्धी रंगशालाएँ खुल गयीं। और, शताब्दी के समाप्त होते-होते अकेले वेनिस में ही ग्यारह रंगशालाएं बन गयीं। किसी भी अन्य इटालियन नगर में इतनी रंगशालाएं नहीं थीं। यद्यपि यही वह समय भी था जब कि गंभीर नाटक और आपेरा भी पेशेवरों के हाथ में चले गये और वे किसी कदर दरबारों के सामाजिक जीवन से अलग हो गये। कुछ ही समय में वेनिस, नेपुल्स और वोलोग्ना आपेरा अभिनय के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये। फ्रांस और इंगलैण्ड पर इटालवी आपेरा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। उसका प्रभाव केवल संगीत-नाटचमूलक रचनाओं की ओर प्रवृत्त करने में ही नहीं पड़ा वरन् नाट्य प्रस्तुतीकरण और रंगशाला की रचना पर भी पड़ा। 'इटालवी शैली' के आधार पर निर्मित जो रंगशाला उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक सम्पूर्ण युरोप पर छा गयी थी, वह वस्तुतः आपेरा-रंगशाला ही थी, वह 'वैधानिक' नाटचाभिनय के लिए निर्मित रंगशाला नहीं थीं।

डाफने, युरीडिस, आरियन्ता, ओरफ़ियो नामक जिन शीर्षकों की हमने अब तक

चर्चा की है उससे यह स्पष्ट है कि नवीन कला ग्रामीण नाट्यपरम्परा का संवहन अब तक करती जा रही थी। 'तियेत्रो दी सान कासियानो' का उद्‌घाटन फेरारी मानेली कृत आन्द्रोमेदा से हुआ। और, इस बात में कि क्लासिक-कथा की सीमाओं और बन्धनों से आपेरा-प्रणेता मुक्त हो जायं, काफ़ी समय लग गया। मगर स्कारलेती (१६५९–१७२५) ने, सामान्य नाट्य-रचना से अलग, आपेरा का एक रूप निश्चित कर दिया। उसने एक डिज़ाइन बनायी। यह विशिष्ट रूप-रेखा इतनी विस्तृत और व्यापक थी कि इसमें सोलहवीं शताब्दी में मौजूद चेहरे लगाकर किये जाने वाले अभिनयों और विष्कम्भकों का अधिकांश समाहित हो गया। सेटिंग, नृत्यलीलाएं, चमत्कृत करने वाले यांत्रिक प्रभाव, आपेरा-गीतकारों की मधुर लयकारियों के बीच अपने लिए भी स्थान का दावा करने लगे। शायद पौराणिक कथागीत दोहरे तौर से लाभकारी सिद्ध हुए, क्योंकि उनके कारण सजे-बजे दृश्य-खण्डों, राजमहलों के दृश्यों, चमत्कारपूर्ण-पट परिवर्तनों आदि के लिए अनन्त सम्भावनाएं पैदा हो गयीं।

जो भी हो, आपेरा, के उद्‌भव के साथ-साथ , वह प्रयास भी निरन्तर चलता रहा जिसके फलस्वरूप उन निरन्तर विकासशील दृश्यावलियों की रचना हुई, जिनकी चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। यवनिकामय मंचों पर सेटिंग को अभिनय के बीच अब अनेक बार बदला जा सकता था। मूल दृश्यात्मक सेटिंग जिस पर पहिले सेरलियो की नन्हीं सी सड़क के दोनों ओर लगातार बने मकानों की पंक्ति रहा करती थी, अब स्थानीय 'चौकों' अथवा अनेक मेहारबदार आदर्श भीतरी खण्डों के वैभवशाली महान् चित्र के रूप में बदल गयी। अब बीबीनास ने उन्हें संशोधित करके विशाल सभाकक्षों और विराट मार्ग के दृश्यों में परिणत कर दिया था, जिसे आप पृष्ठ २६१ पर देख सकते हैं। विराट ! हाँ ! मगर जो कोई भी नाटक अथवा अभिनय में रुचि रखता है, पूछ सकता है—'अब कलाकार-अभिनेता की क्या स्थिति हो गयी है ? देखिए तो, इन सजीले , तड़क-भड़क वाले राजप्रासाद के दृश्यों में कहीं उसका भी पता है ?'

मंच की व्यवस्था कुछ इस प्रकार उन्नत हो गयी थी कि बादलों पर उड़ने का दृश्य, स्वर्गीय देवदूतों की छाया, चमत्कारपूर्ण-उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, चलायमान सूर्य और चन्द्रमा—कुछ भी प्रदर्शित करना कठिन नहीं रह गया। १४८६ ई० में ही मान्तुआ निवासियों ने प्लाट्स कृत 'मेनेचमी' का शाही नाट्याभिनय खुले रंगमंच पर देखा था, जिसमें पालों, डांडों और दस सवारियों के साथ एक नाव ने पूरे मंच को पार किया था। इसके बाद नृत्यरंगशालाओं के मंच पर नाट्याभिनय , चेहरे लगाकर किये गये प्रदर्शनों और नृत्यों में यंत्र-निर्मित अनेक चित्रों के मेल दिखायी पड़े। मगर आपेरा के रचनाकारों ने इन वस्तुओं को अपने अभिनय का अनिवार्य अंग बना लिया, और

निर्भीकता तथा विवरण-चित्रण में ये लोग अपने पूर्वजों से बहुत आगे बढ़ गये। आपेरा रंगशाला के मंच की लम्बाई-चौड़ाई तो बढ़ ही गयी, उसकी जटिलता भी बढ़ गयी। ऐसा इसलिए नहीं हुआ कि संगीत अथवा नाटक या दोनों के मिश्रित रूप को इतने अधिक स्थान की आवश्यकता थी, बल्कि इसलिए कि दर्शक जनता नये चमत्कारों, अगणित दृश्यों और जादुई ढंग से तैयार की गयी चित्रावलियों को अच्छी तरह निरखना चाहती थी।

इन परम आकर्षक चित्रावलियों और दृश्यों तथा संगीतमय नाट्याभिनय की नवीनता के कारण ही सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस के सम्राट् और कार्डिनल
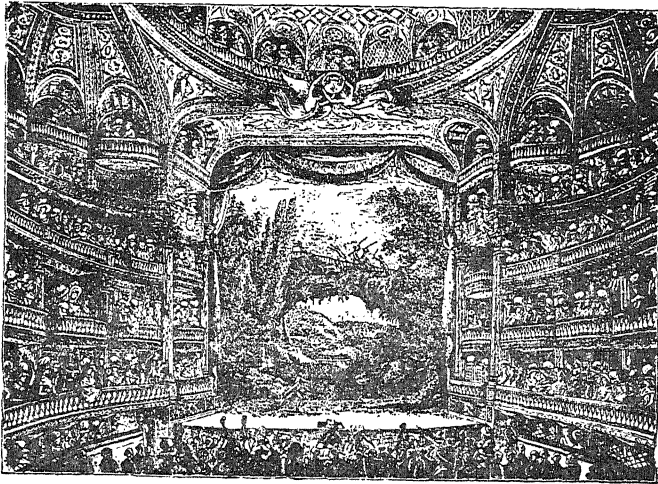
फ्रांस में आपेरा-मूलक दृश्य की क्या स्थिति हुई : कामेदी फ्रांके, पेरिस, एक 'चित्र'-सेटिंग के साथ, १७८९ ई०।

लोग आपेरा के लिए इतना अधिक उत्साह दिखा रहे थे। हम यह देखेंगे कि कैसे, कुछ थोड़े से विदेशी लोगों के आगमन के बाद, फ्रांस के दरबार ने एक महत्वाकांक्षी इटली निवासी बालक लुल्ली को, एक सरकारी आपेरा हाउस का निर्देशन करने के लिए निमंत्रित किया। अधिकार प्राप्त करने के बाद, अपनी काँख में इटालवी आपेरा को

दबाए, जब यह नौजवान सामने आया तो मानो ग़ैर-इटालवी युरोप में मंचीकरण और रंगशाला -निर्माण में एक नया युग आरम्भ हुआ। स्पेन, इंगलैण्ड और फ्रांस में कुछ काल तक उच्चकोटि की रचना होने के बाद, इसके प्रभाव का अनुभव अत्यधिक मात्रा में करने के पूर्व ही, एक ऐसा लम्बा काल आया जब कि रंगशाला पर आपेरा-सम्बन्धी दुःस्वप्न-सा छा गया।

अध्याय १०

असंस्कृत लोकप्रिय सुखान्त नाटक

आज के बहुत से नाटक देखने वालों के सामने एक चित्र है जो रंगमंच के अधिक कोमल और अधिक रोमांचक (रोमान्टिक) स्वरूप का प्रतीक है। विभिन्न छद्म रूपों में रहने वाला परन्तु सदैव सुकोमल और प्रसन्नचित्त और मोहक रूप से उदास रहने वाला पियरो', उस अनगढ़ , धमाचौकड़ी करने वाले तथा सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति को जिसे आप वास्तविकतावादी रंगमंच का प्रतीक मान सकते हैं, बिल्कुल विपरीत है। पागल पियरो, सुन्दर पियरो, सदैव ग़लतफ़हमी का शिकार पियरो, तथा हाथ में गुलाब का फूल लिये और गले में रोयेंदार गुलूबन्द बाँधे पियरो---उसका यही रूप रंगशाला के दूसरे अर्धांश का प्रतिनिधित्व करता है। यही रूप भिन्न-भिन्न तरह से कवितामय अथवा भावपूर्ण, आकर्षक अथवा सुन्दर अर्धांश कहा गया है।

अवास्तविक 'आदर्श' रंगशाला को इस तरह के किसी संदिग्ध प्रतीक से सम्बद्ध करना मेरे लिए अत्यन्त उलझन का कार्य है। मेरे पाठक इस बात को पहले से जानते हैं कि यथार्थवादी रंगशालाओं से मेरा सम्बन्ध इस तरह की रंगशालाओं की तुलना में कहीं अधिक घनिष्ट है। तो पियरो को आप इसी बचे हुए अर्धांश का ही प्रतिनिधित्व करने दें। इस उन्नीसवीं शताब्दी की विशिष्ट नाट्य-विधा में कला के मौलिक गुणों का अभाव है—विशिष्ट इसलिए कि यह रंगशाला को दो भागों में बाँट देता है, आधे में जीवन की 'सच्चाई' तथा आधे में उससे पलायन है। चेहरे पर पाउडर पोते इस पियरो के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ अस्वस्थ बात ज़रूर है। प्रभूत ओजस्विता से पूर्ण इस संसार में वह आवश्यकता से अधिक कोमल है, आवश्यकता से अधिक भावुक है, शाश्वत रूप से आवश्यकता से अधिक उदास है, दूसरों की सहानुभूति पर आवश्यकता से अधिक निर्भर रहने का आदी है। यह अत्यधिक अचम्भे की बात है कि पियरो के पूर्वज, रंगमंच के सम्पूर्ण इत्तिवृत्त में सब से अधिक उत्साही, विलक्षण साहस के धनी

तथा नाटयात्मक गुणों से पूर्णतया तथा सम्पन्न थे। साथ ही कभी-कभी स्पष्ट रूप से दुष्ट भी थे! शैतान पिता और सुन्दर, मनचली माता के संसर्ग से भीरु तथा भावुक बच्चे के जन्म लेने के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर ही आधुनिक पियरो के वंश-वृक्ष पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। जिनकी परम्परा में उसका जन्म आ, वे 'कामेदिया देल आर्ते' के 'प्रतिभाशाली' अभिनेता थे। वे ऐसे ओजस्वी, निर्भीक, तथा प्रसन्न परिहासों को प्रस्तुत करते थे जो सिनकेसेंतों और सिमेसेंतों की बेपरवाह लैटिन जनता का आमोद-प्रमोद करते थे।

यदि १५५० ई० में 'फ़ेस्टा' दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित मेले में आपको वेनिस में घूमने का अवसर प्राप्त हुआ होता तो आज भी आप को 'वेनेज़िया' शब्द से उस छुट्टी के वातावरण, इन्द्रियोत्प्रेरक रंगों तथा उस जगह के उत्साह का अनुभव होने लगता है जो आपको 'कामेदिया देल आर्ते' के अभिनेताओं द्वारा सेंट मार्क्स के चौक के रंगमंच पर होते अभिनय को देख कर हुआ था। जैसा कि आप जानते हैं, उस समय भीड़ चित्रोपम होती थी, समाज के बड़े लोग अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण कर भीड़ में इधर-उधर घूमते रहते थे, चतुर व्यवसायी और दूकानदार, तथा देहात के लोग——सभी उत्सव के अनुकूल वस्त्रादि पहिने रहते थे, शायद उस स्थान के लोगों के वस्त्र उसी प्रकार के होते थे। गंदोला खेनेवाले माझी, तमाशबीन, भिखमंगे, लंगड़े-लूले लोग, जो कि अविश्वनीय ग़रीबी में पले थे और वेनिस की 'गन्दी गलियों' से घिसट कर यहाँ आ गये थे——ये सभी लोग चौक की भीड़ में एक दूसरे से कन्धे रगड़ते थे। चारों तरफ खोंचे लगाने वाले, नक़ली सामान बेचने वाले, मिठाई बेचने वाले अपने-अपने माल और दूकान का नाम लेकर चिल्लाते रहते थे। दवा बेचने वाले और उनके दलाल और, निस्सन्देह, जादूगर-मदारी, भाँड़, नट, गायक, रस्सी पर चलने वाले तथा नर्तक भी इस मेले में अवश्य ही रहते थे। उधर इन सब के ऊपर गिरजाघर के घण्टे बजते रहते थे तथा संत मार्क का निशान लहराता रहता था। यहाँ पर लगभग दर्जन भर रंगशालाएं थीं और अनेक प्रदर्शन होते रहते थे। परन्तु इन सब में एक सर्वप्रिय थी, वही था उस उत्सव की भावना का प्रतीक, वही था इस हंसी-खुशी और शोरगुल के बीच आनन्द का केन्द्र-विन्दु! ऐसा इसलिए कि 'कामेदिया देल आर्ते' के अभिनेता अपनी प्राचीन जादूगरी में प्रवीण थे, वे ओज, कला, और अश्लीलता का मिश्रण करके प्रहसन प्रस्तुत करते थे। यदि आप वहाँ उपस्थित जनता को देखते तो उनमें से प्रत्येक चेहरे पर इन्हीं तत्वों की प्रतिक्रिया, गाढ़े अथवा हल्के रूप में, आपको देखने को मिलती। मेले के मंच पर ये अभिनेता पूर्ण रूप से, निस्संकोच, होकर अभिनय करते।

इन प्रहसनकारी अभिनेताओं और ऐन्द्रजालिकों, विदूषकों तथा अनाड़ी

'आओ हम भी अभिनय करें' कहने वाले पास में मौजूद लोगों के बीच विशेष अन्तर नहीं था। इस मध्य सोलहवीं शताब्दी में भी, उनकी कला को कोई स्थायी रूप नहीं मिल सका था। वे अब भी 'कामेदिया देल आर्ते' का रूप स्थिर कर रहे थे। ऐसा वे उस सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर कर रहे थे कि छुट्टी के अवसर पर मेलों में उपस्थित दर्शक उनकी नवीन दिलग्गी को देखकर चीख़ते-चिल्लाते हैं अथवा केवल पुराने घृणास्पद कथानक पर मुँह दबा कर धीरे से हंस देते हैं। प्रवंचकों, नक्कालों की जादूगरी, तथा कभी टेरेंस के षडयंत्र से कुछ अंश लेकर, कभी प्लाटस के विनोदपूर्ण वाक्यों को उड़ा कर, वे 'पेशेवर सुखान्त नाटक' की रचना कर रहे थे। अभी तक वे केवल पात्रों को रच रहे थे; प्रसिद्ध व्यक्तियों को भूमिका करनेवाले ऐसे ज़ोरदार पात्रों को तैयार कर रहे थे जिनकी प्रशंसा एक शताब्दी बाद भी राजदरबारों और बाज़ारों में समान रूप से होती। पेंटालोन, जो कि इसी वेनिस का निवासी था; बोलोग्ना का डाक्टर; गप्पी, झूठ बोलने वाला, और दिल का कमज़ोर स्पेनिश कप्तान, जो कभी इटली का प्राचीन रोम का था, मगर बाद में स्पेनिश हो गया, था, क्योंकि स्पेनवासी युरोप के अकड़बाज़ लोग थे, नेपुल्स के घृणास्पद, दम्भी सामंत जीवटवाला आर लेक्चिनो और बुद्धू ब्रिघेल्ला; नौकरानियाँ और तमाम दूसरे लोग।

'कामेदिया देल आर्ते' एक ऐसी चीज़ है जिसे या तो रंगशाला के रूप में स्वीकार कर लिया जाय या उसे कुछ भी न समझा जाय। एक लिखित नाटक अथवा दृश्य-रूपक के रूप में उसका वजूद नहीं है, कभी भी नहीं रहा। यह मात्र एक मंच है, अभिनेता हैं, नाटकीय सक्रियता है। कभी भी इसके कथानक को लिखित नाट्य-साहित्य के इतिहास में सम्मिलित नहीं किया गया।[1] इधर बहुत दिनों तक अंग्रेज़ी भाषा में भी

---

१. सबसे अच्छे और संक्षिप्त वक्तव्य है जान एडिंग्टन सिमण्ड्स कृत 'दी मेम्वायर्स आव काउण्ट कार्लोग़ोज़ी' (लन्दन, १८९०) के अनुवाद की भूमिका-सम्बन्धी अध्याय, तथा जनवरी और अप्रैल, १९११ ई० के 'दी मास्क' के (जिसका सम्पादन गोर्डन क्रेग ने किया था) अंकों में प्रकाशित लेख। जहाँ तक हर्लेक्वीन पात्र का सम्बन्ध है, सिटिल डब्ल्यू० बूमां (लन्दन, १९२६) कृत 'दी हिस्टरी आव हर्लेक्वीन' में इस विषय का संपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। विद्यार्थियों को विनीफ्रेड स्मिथ-कृत 'दी कामेदिया देल आर्ते' (न्यूयार्क, १९१२) अधिक लाभकारी लगेगा। यद्यपि और सब स्थानों पर मैंने सहायक ग्रंथों की सूची देते समय यह ध्यान रखा है कि अंग्रेजी में प्रकाशित ग्रंथों का नाम दूँ, परन्तु इस स्थान पर मैं इस अध्याय पर प्रकाश डालने वाली फ्रांसीसी भाषा की कान्सटेन्ट मिक कृत एक श्रेष्ठ सचित्र पुस्तक 'ला कामेदिया

इसका कोई सम्यक् सम्पूर्ण वर्णन नहीं था। ऐसा इसलिए कि स्पष्टतः वह अपने को नाट्य साहित्य के रूप में स्वीकृत करा ही नहीं सका। विद्वान् लोग पूछते हैं कि इसके बारे में ऐसा क्या है जो कि स्थायी रूप से महत्वपूर्ण हो सके। कम से कम एक बात तो ऐसी है ही, यह है उसकी गौरवशाली भावना; और दूसरी है मात्र रचनाकार के रूप में कलाकार की विजय।

आमतौर से इसका अनुवाद--'प्रोफ़ेशनल कामेडी' अथवा 'कामेडी आव इम्प्रोवाइज़ेशन' किया गया है जिससे उसकी मौलिक नाट्यात्मक विशेषता का पता चलता है। यह पेशेवर अभिनेताओं की रंगशाला है; यह एक शिल्प के कार्यकर्ताओं की कृति है; इसके अभिनेताओं के लिए आज के अर्थ में पेशेवर होना आवश्यक नहीं था, मगर, यह आवश्यक था कि वे अभिनेता-निर्माता के रूप में इतना अधिक अनुभवी हों कि दृश्य की रूप-रेखा मात्र ही अपने मस्तिष्क में रखकर अपना पूरा अभिनय कर जाय। प्रोफेशनल कामेडी के अभिनेताओं के पास नाटक की कोई पाण्डुलिपि होती ही नहीं। बस एक दृश्य-सूची हुआ करती थी जो मंच के सब से पीछे टँगी रहती थी। बाक़ी सब कुछ अभिनेता अपनी बुद्धि से कर लेता था, वाक्चातुर्य और जादू का पिटारा--वह सब कुछ प्रदर्शित कर लेता था।

आज अभिनेता के मुंह में बोलने के लिए शब्द रख दिये जाते हैं। वह उस भूमिका को लोगों के सामने रख देने में ही अपनी सारी प्रतिभा ख़र्च कर देता है। वह आधा पाठ करने वाला और आधा रचनात्मक कलाकार है। सोलहवीं शताब्दी की इटली का विदूषक अभिनय करते-करते अपना कथ्य भी सोचता जाता था। दृश्य में प्रवेश करते समय वह नाटक का केवल अन्त और अभिनय का उद्देश्य भर जानता था। मगर वह यह बिल्कुल नहीं जानता था कि उसका सह-अभिनेता क्या कहेगा, वह और उसके साथी उसे गढ़ लेते थे--ऐसा वे कुछ तो परम्परागत प्राचीन कथोपकथनों से लेकर करते थे, कुछ अपनी ही वक्तृताओं को उद्धृत करके जो पुराने अभ्यास् के कारण प्रभावशाली हो गयी थीं; कुछ हास्य-क्षेपकों और टकसाली भड़ैतियों से, जिनमें घिसी-पिटी बातें ही रहती थीं; मगर कभी भी किन्हीं दो अभिनयों में एक ही बात बिलकुल

देल आर्ते' (पेरिस, १९२७) का नाम लिए बग़ैर नहीं रह सकता। अंग्रेजी में एक फ्रेंच पुस्तक का बहुत उत्कृष्ट अनुवाद मौजूद है--यह है पियरे लुई दुकार्ते कृत अत्यधिक अच्छी परन्तु प्रायः अलभ्य पुस्तक 'दी इटालियन कामेडी' (लन्दन और न्यूयार्क, १९२९)। मैं नेइन तमाम पुस्तकों से सहायता ली है, मगर मैं 'दी मास्क' में प्रकाशित ओजस्वी परन्तु अपर्याप्त विवेचन का सबसे अधिक ऋणी हूँ।

वैसे ही दोहरायी नहीं जाती थी। इसलिए निरन्तर परिवर्तन-परिवर्द्धन का क्रम बना रहता था; जहाँ वाक्चातुर्य की टक्कर होती थी वहाँ तड़ से संभाषण का आरम्भ हो जाता और असंवद्ध विषयों तथा सामयिक विचारों का इस्तेमाल कर लिया जाता। चेहरे की भावाभिव्यक्ति का कोई प्रयोजन ही नहीं था, क्योंकि सभी अभिनेता चेहरे लगाये रहते थे। चेहरे और वस्त्र के कारण दर्शकों के सामने एक परम्परागत परिचित पात्र उपस्थित हो जाता। अभिनेता को पात्र के चरित्र के माध्यम से ही परिहास उत्पन्न करना पड़ता। फिर उसकी रचना वह करता; उसका स्वरूप सामने प्रस्तुत करता; अपनी प्रत्युत्पन्नमति से उसे अधिक विनोदमूलक बनाता; इधर-उधर भागकर, बार-बार गिरकर, ग़लतियाँ करके, अंधेपन का प्रमाण देकर, ग़लतफ़हमियों का शिकार बनकर, उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार करके वह हास्य उत्पन्न करता।

तो फिर क्या यह कोई आश्चर्य की बात है कि एक ऐसी नाट्य-रचना जिसके लिए इतने अनुशीलन, नाटकीय कौशल, और जोश की ज़रूरत थी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के कुछ क्रान्तिकारियों को नाट्यकला का सारांश और सर्वांश मालूम पड़ी ? तत्कालीन यथार्थवादी अभिनय पर चिन्तन करते हुए, विशेषतः 'व्यक्तिगत' अभिनय की ओर बढ़ते रुझान को ध्यान में रख कर—अभिनेता हमेशा अपने को प्रत्येक नवीन अभिनय में कुछ न कुछ बदलता रहता था। ये उठते-उभरते नेता 'कामेदिया देल आर्ते' से सम्बन्धित विस्मृत बातों को प्रसन्नतापूर्वक कुरेद-कुरेद कर याद करते, और उसे कला की फिर से ढूंढ़ कर निकाली हुई कसौटी के रूप में सामने रखते। साहित्यिक यथार्थवादी नाटक की राख से कुछ न कुछ ऐसी बात अवश्य निकलनी चाहिए थी क्योंकि इसी हालत में अभिनेता गुलामी से बाहर निकाल कर नाटककार के पास तक पहुँचाया जा सकता था। बहरहाल, हम इतना तो कह सकते हैं कि इस बात की कोई सम्भावना नहीं है कि 'प्रोफ़ेशनल कामेडी' की तरह की कोई चीज़ आधुनिक रंगशाला से या उसकी राख से उत्पन्न होगी। अपने पूर्ण विकास के पहिले, शताब्दियों तक विकास करती 'कामेदिया देल आर्ते' समय की एक पुकार का जवाब थी। यदि हम तत्कालीन समृद्धिशाली, संघर्षमय जीवन के परिवेश में उसका अनुशीलन करें तो वह अत्यन्त रुचि कर लगेगा।

यदि पियरो के पूर्वज 'कामेदिया देल आर्ते' के पात्रों में रहे होते तो वे अपनी वंशपरम्परा को रोमन, यहाँ तक कि यूनानी पूर्वजों तक ढूंढ़ निकालते। कुछ तत्व सर्वत्र स्थानीय थे। जनमत की अनुकूलता और प्रतिकूलता को ध्यान में रखकर पात्र निरन्तर परिवर्तित होते रहते थे। ऐसे ही प्रभाव में रचनात्मक अभिनेता छाया-चित्रों से लेकर अत्यन्त स्पष्ट स्वरूपों तक का निर्माण करते रहे। परन्तु उनमें अनेक रोमन अनुकृतियों

को पहिचान लेना सम्भव है। और, कोई भी यूनानी वन्य देवता सम्बन्धी नाटक अथवा यूनानी औपनिवेशिक नाट्य प्रक्रिया के अवशेष से रोमन असंस्कृत मनोरंजन के तत्वों को बिल्कुल अलग नहीं कर सका है।

केपिटानो का स्पष्ट साम्य रोमन साहित्य के माइल्स ग्लोरियोसस से था। मगर 'कामेदिया देल आर्ते' का सूत्र सरलतापूर्वक लोकप्रिय 'आतीलानी' के साथ संबद्ध किया जा सकता है, अथवा उससे समानता खोजी जा सकती है। इन छोटे स्थानीय कथानकों पर आधारित नाटकों में पात्र सदैव प्रसिद्ध व्यक्ति ही हुआ करते थे और वे मुंह पर चेहरे लगाकर अभिनय किया करते थे। 'माइम' (स्वांग) ऐसे मनोरंजन थे जिनमें प्रहसनमूलक दृश्य और अनेक चमत्कृत कर देने वाले तत्वों के साथ ही संगीत और नृत्य भी शामिल रहते थे। इनमें अच्छी तरह से जाने-पहिचाने नौकर, शेख़ीबाज़ तथा ऐसे अन्य पुराने प्रिय-पात्र ही रहा करते थे जो अब फिर मंच पर आने लगे हैं।

पर्देदार रंगमंच पर 'कामेदिया देल आर्ते' के अभिनेता। यह रेखांकन जेक्स केलट कृत है। (पियरे लुई दुकार्त्रे कृत ला कामेदी इतालियेन से)

यह किसी को नहीं पता है कि किस हद तक अन्य स्थानों से आये घुमन्तू अभिनेता इस अन्ध युग में भी बने रहे अथवा ग़ायब हो गये। हमें यह नहीं मालूम कि उनकी कम्पनियाँ टूट गयीं या नहीं—कम से कम उनमें विदूषक, नर्तक, जादूगर, स्वांग भरने वाले ऐसे लोग तो थे ही जो महान् रिक्तता की पूर्ति कर देते थे। शायद वे स्वांग भरने वाले जो रोम से पूर्वी साम्राज्य की राजधानी बाइज़ेण्टियम चले गये थे और तुर्की के

रंगमंचीय मनोरंजनों में ज्यों का त्यों बने हुए थे, अब फिर अपनी मातृभूमि इटली वापिस आ रहे थे। जो भी हो, जब हम पुनरुत्थान के प्रारम्भिक वर्षों में इस कथा-सूत्र को फिर अपने हाथ में लेते हैं। हम देखते हैं कि ये कम्पनियां फिर चौराहों पर, चौकों में, मेलों में अपना अभिनय प्रस्तुत कर रही हैं। वे इधर-उधर घूम रही हैं और सड़कों के किनारे ऐसे स्थानों पर अपना मंच बना रही हैं जहाँ अधिक से अधिक संख्या में दर्शकों के एकत्र होने की सम्भावना हो। जनता ही उनका ईश्वर है, वही उनका सहायक सलाहकार है, वही उनका अन्नदाता है।

निस्सन्देह चर्च उनका विरोधी है। जब धार्मिक नाटक, जिनका लालन-पालन गिरजाघरों और उपासना कक्षों में हुआ था, अत्यधिक धर्म-निरपेक्ष हो गये, मनोरंजन में अत्यधिक संलग्न हो गये, धर्म के प्रचार में उनकी रुचि अत्यधिक घट गयी, तो उन्हें सर्वथा निष्कासित कर दिया गया और धर्मपिताओं ने उन्हें आशीर्वाद देना और उन्हें मान्यता देना बिल्कुल बन्द कर दिया। जिस समय 'कामेदिया देल आर्ते' का स्वरूप बन रहा था, हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय गाँव का पुरोहित और जनपद का बिशप खुलकर उसका विरोध कर रहा था। (बाद में, निश्चय ही, 'आइ गेलोसी' के अभिनयों का आनन्द कार्डिनल लोग लेने लगे थे, यद्यपि उनकी धार्मिक पंजियों में अब भी इन अभिनेताओं का दमन करने के लिए आवेदन पत्र, अभिनेताओं के ईसाई कर्म-काण्ड के अनुसार क़ब्र में गाड़े जाने पर प्रतिबन्ध तथा उन पर खुलकर अत्याचार करने का ही वर्णन रहता था।)

शुरू में दरबारों और अकादमियों ने भी सहानुभूति नहीं प्रदर्शित की। बड़े-बड़े सम्राट् और सामन्त अब भी साहित्यिक नाटक के ही संरक्षक थे और वे उन विद्वानों का ही उत्साहवर्द्धन कर रहे थे और उन्हें ही साधन संपन्न भी बना रहे थे जो व्यर्थ ही प्राचीन नाटककारों का अनुकरण करने का प्रयास कर रहे थे। इन निर्जीव नव-क्लासिक नाटकों की सहायता करने के साथ-साथ वे 'मास्क' को भी संरक्षण प्रदान कर रहे थे। —'मास्क' नाटक की एक सुन्दर, शानदार विद्यार्थी जिसने सम्पूर्ण पाश्चात्य संसार में "मंच प्रस्तुतीकरण" की कला में क्रान्ति उपस्थित कर दी थी। शान-शौकत, परलोक-परक कला और कुलीनता की दृष्टि से यह 'कामेदिया देल आर्ते' के ठीक उलटा है। सड़क के किनारे अभिनीत होने वाले इन प्रहसनों का मंच नंगा रहता था। चबूतरा पर्दों से ढँका होता था, उस पर अभिनय के लिए छोटा-सा स्थान रहता था; या कभी-कभी सड़क की पटरी पर ही अभिनय कर लिया जाता था। इसकी सारी शान-शौकत इसके अभिनय में ही निहित रहती थी। यह इसी संसार का, धरती का अभिनय था। लोग इसको प्यार करते थे। इसमें कुलीनता की चर्चा उसके दंभ और शालीनतापूर्ण, दुष्टता

का प्रदर्शन करके जनता का मनोरंजन करने के लिए ही होती थी। इसमें वे गुण थे जो तत्कालीन सुसंस्कृत साहित्यिक रंगशाला में नहीं थे--ओजस्विता, वास्तविकता, नाटकीय संजीवन, मौलिकता!

आरम्भिक निर्माणकाल में इसके पहिले जब कि दरबार साहित्यिक नाटककारों से ऊब चुके थे और इसके भी पहिले जब कि उन्होंने 'कामेदिया देल आर्ते' की कम्पनियों को सड़क की पटरी छोड़ कर दरबारों की रंगशालाओं में निमंत्रित किया, कुछ परम्पराएँ बन चुकी थीं। रोमन-सुखान्त नाटकों के लिए सेटिंग 'इनके अथवा उनके घर के सामने' ही अधिकतर तैयार किया जाता था, प्रहसनों के लिए इसी परम्परा में निर्मित सेटिंग ने अब 'सड़क के दृश्य' का रूप ले लिया। यदि चबूतरा अथवा उठे हुए रंगमंच के पीछे पर्दे रहते थे तो इन पर (इसके कई उदाहरण हम जानते हैं) घरों और उनके बीच
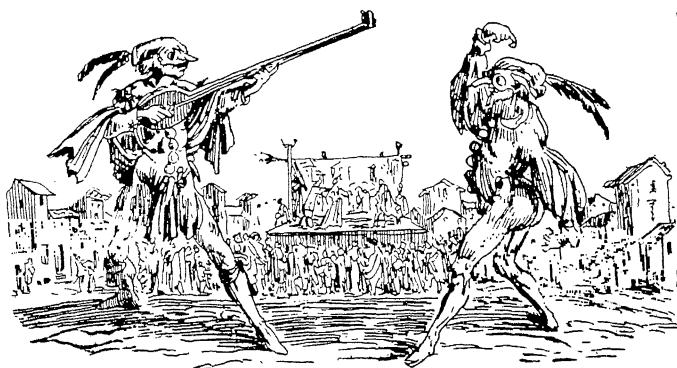
दो विदूषक पात्र, पीछे कामेदिया रंगशाला है। इसका रेखांकन जेक्स केलट ने किया है। (मान्तजियुस कृत 'ए हिस्टरी आव थियेट्रिकल आर्ट' से।)

के खाली स्थान का अनगढ़ चित्रण भी रहता था। गारज़ोनी ने 'कोयले से खींचे गये दृश्यों' की चर्चा की है। बाद में जब विंग-सेटिंग का रिवाज चल निकला, तब दरवाजे के भीतर के रंगमंचों पर घरों का प्रतिनिधित्व सामने के फ्लैट किया करते थे। वे कुछ आगे-पीछे करके इस प्रकार बने रहते थे कि अभिनेताओं को किसी प्रकार की अड़चन नहीं होती थी। वे बीच की खुली जगह और नीचे सामने अभिनय कर सकते थे। छिपने-भागने के लिए वे दरवाज़ों का उपयोग कर सकते थे, वेदना-विरह गीत गाने के लिए वातायनों का प्रयोग कर सकते थे। मगर रंगशाला के बाहर बने रंगमंच की यह सजावट और गुलकारी जिसमें सारे दृश्य या तो चित्रांकित रहते थे अथवा अभिनय-

स्थल के पीछे के पर्दे पर बने रहते थे, सड़क पर बने रंगमंच की ही याद दिलाते थे। बाद के ज़माने में ऐसी व्यवस्था हो गयी कि प्रत्येक पात्र के प्रवेश के लिए स्थान सुनिश्चित हो गये और मंच पर आगे आने, दर्शकों का अभिवादन करने, अभिनेताओं के एक साथ मिल कर खड़े होने अथवा उनके निरीक्षण के लिए कड़े नियम बन गये।

'इम्प्रोवाइज़्ड कामेडी' ने जब एक संस्था का रूप ले लिया और उन तैयारी के वर्षों में यदि सेटिंग का रूप 'सुनिश्चित' हो गया तो पात्रों का भी रूप सुनिश्चित रूप से और रुचिकर ढंग से निखरता आ रहा था। इस प्रकार मंच को कृत्रिम रूप से बना लेने के अतिरिक्त 'कामेदिया देल आर्ते के बारे में जो दूसरी स्पष्ट विशेषता है, वह है लगभग एक दर्जन प्रकार के नाट्य-अभिनेताओं तक ही उनकी सीमा। उनमें से हर पात्र दूसरे से भिन्न प्रकार का चेहरा लगाता था और कपड़े पहिनता था। उनमें से हर एक की बँधी-सधी विशेषताएँ सीमाएँ और मर्यादाएँ भी थीं। पात्रों की चाल-ढाल' भाव-भंगिमा और मुख-विकृतियाँ सभी जानी-पहिचानी सी हो गयी थीं। उनकी बोलियाँ भी सुपरिचित थीं, ऐसा इसलिए कि दोतोरे बोलोग्ना से आया था, पेंटालोन वेनिस से आया था, आदि, आदि।

जब एक अभिनेता किसी एक पात्र की भूमिका को स्वीकार कर लेता तो वह उसी में अपना सारा जीवन लगा देता और साधारणत: किसी अन्य पात्र की भूमिका वह अपने कार्यकाल भर में नहीं करता था। एक प्रसिद्ध अभिनेता के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उसने सत्तर वर्ष की उम्र में भी प्रेमी की भूमिका की। एक ही भूमिका जीवन भर करने के कारण इस प्रकार के अभिनयों में अभिनेता को पूर्ण कौशल प्राप्त हो गया।

अपनी भूमिका के साथ पात्रों का ऐसा तादात्म्य हो गया कि अक्सर उनका व्यक्तिगत स्वरूप नाटकीय स्वरूप में ही खो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि एक शक्तिशाली अभिनेता किसी को अप्रिय सीमित देवालय-सम्बन्धी अभिनय में किसी अन्य पात्र की आवतारणा कर लेता, इस अभिनय में वह नवीन कार्य-विधि का सहारा लेता, पूर्वस्वीकृत विशेषताओं में परिवर्तन-संशोधन कर लेता, पहिले से ही चले आये एक पात्र के स्थान पर दो-दो पात्रों को सामने ला देता, या कभी-कभी बिल्कुल अपनी प्रतिभा के सहारे नये गवाक्ष अथवा नाम की रचना कर लेता। स्कारातमूशिया ने बिल्कुल ऐसा ही किया था। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि किसी अभिनेता ने किसी प्राचीन भूमिका में अपना नाम जोड़ दिया; उदाहरण के लिए, फ़लामिनियो स्काला का नाम बदलकर प्रेमी की भूमिका के लिए 'फ़लावियो' पड़ गया। अपने जीवन भर आयज़ाबेला आंद्रेयिनी ने 'आयज़ाबेला' की भूमिका की। उसकी मृत्यु के बाद यह पात्र ही ग़ायब हो गया। मगर अधिकतर तो यही हुआ कि प्रयोग, अनुभव और सामञ्जस्य की एक लम्बी

प्रक्रिया के बाद ही, जनमत के प्रभाव के अन्तर्गत किसी पात्र का रूप स्थिर हुआ। और, इन पात्रों के जो विशेष स्वरूप बने वे कात्ज़ेनजामर किड्स अथवा ब्लांडी के रूप में सामान्य हो गये, उनका पहिचानना सुगम हो गया।

यह कहना कठिन है कि किस युग में ये मुख्य पात्र पहिचाने से हो गये अथवा पात्र

आरलेचिनो--सोलहवीं शताब्दी में अभिनेता मार्तीनेली ने इसका अभिनय इसी प्रकार किया था। (ला कामेदी इतालियेन से।)

के स्वरूप में अपने को समाहित कर के स्वयं वही बन गये। इस तर्क में काफ़ी बल है कि इन अभिनयों में जो दो ज़न्नी हैं, वे रोमन सन्नियों की पुनर्रचना मात्र हैं--निश्चय ही नौकरों के रूप में उनका जो स्थान है और जिस प्रकार वे चतुराई और मूर्खता के ढंग

अख़्तियार करते हैं उससे यह नतीजा निकालना उचित लगता है। दूसरे पात्रों की वंशपरंपरा का पता लगाना अथवा अनुमान करना आसान नहीं है। परन्तु हम यहाँ जिस युग की बात कर रहे हैं उसमें और दरबारों द्वारा इन लोकप्रिय प्रहसनों के स्वीकृत होने के पहिले, काफ़ी संख्या में इनके रूप स्थिर हो चके थे। और चार मुख्य पात्रः दोतोरे, अथवा बोलोग्ना का डाक्टर; पन्तोले, वेनिस का खटखट करने वाला बनिया––ये दो बूढ़े पात्र; और दो नौकर, या ज़न्नी (हमारेज़ेनी) अर्लेशिनो और ब्रिघेल्ला दूसरे मिज़ाज़ के बुद्धू, और केपितानो। ये चेहरे बाद में भिन्न-भिन्न रूपों में और भिन्न-भिन्न नामों से सामने आये।

पेंटालोन धोखा खाया हुआ पिता अथवा पति है। इस बूढ़े को बार-बार आसानी के साथ धोखा दिया जाता है। यह रोमन लोकप्रिय प्रहसनों का पात्र है। उत्तराधिकार में अथवा यों ही किसी के अनुग्रह से, उसका वार्द्धक्य और तृष्णातिरेक की अमर हास्यात्मक सम्भावनाएँ प्राप्त हो गयीं। अधिकतर वह कुलटा स्त्री का पति है, स्वैरिणी तरुणी स्त्री का बूढ़ा पति है; वह सदैव छला जाता है, वह सदैव धोखा खाता है; इसीलिए वह इटालवी प्रहसनों का अत्यन्त लोकप्रिय विदूषक बन सका। पुनरुत्थान-कालीन इटली में वही वेनिस का व्यवसायी है––अत्यन्त लोभी, वृत्तेबाज़, साथ ही विश्वास-प्रवण और बातूनी भी! वह प्रभावहीन ढंग से रसिक भी है, अपने प्रणय व्यापार में वह अपने बेटे अथवा नौकरों अथवा अन्य लोगों से हार जाता है। वह विशिष्ट प्रकार का बूढ़ा मूर्ख है। निस्सन्देह वह लम्बे पाँवों वाला पैन्ट पहिनता है जिसके कारण आज भी वह इसी नाम से जाना जाता है।

दोतोरे, दूसरा बूढ़ा आदमी, पेंटालोन का सुहृद मित्र है। वह बोलोग्ना नामक विश्वविद्यालय वाले नगर का विद्वान् पण्डित है। उसके अनेक मज़ाकों का आधार उस का लैटिन भाषा का उच्चारण और तथ्यों को बिलकुल ग़लत ढंग से रखने का कौशल है। वह पण्डित वर्ग का कोई भी पात्र वैद्य, वकील, ज्योतिषी, प्रोफ़ेसर-बन सकता है। मगर जिस प्रकार पेंटालोन अपने प्रणय व्यापार में और एक स्वर्ण मुद्रा बचाने के लिए चालाकियाँ करते समय दूसरों की चतुराई का शिकार बनता है, उसी प्रकार यह व्यक्ति भी! अगर वह किसी सुन्दरी प्रेमी का पिता है तो वह और आसानी से बेवकूफ़ बनता है।

आमतौर से नौकर अथवा ज़न्नी आर्लेशिनो और ब्रिघेल्ला के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रायः तीन शताब्दियों के दौर में हर्लेक्वीन का स्वभाव बहुत कुछ बदल गया। मगर 'इम्प्रोवाइज़्ड कामेडी' के महान् युग में वह षड़यंत्रकारी, चांई नौकर था, एक बूढ़े आदमी का अत्यन्त चतुर परन्तु काहिल नौकर, जो कि जवान प्रेमियों की योजनाओं

में सदा सहायता प्रदान करता था, परन्तु पेंटालोन और दोतोरे को हमेशा झांसा दिया करता है। (उदाहरण के लिए, वह पेंटालोन को बताता है कि एक कुलीन महिला उससे प्रेम करती है, यहकि उनकी एकान्त भेंट की व्यवस्था हो सकती है, परन्तु यह भी कि उस महिला के सम्मान की रक्षा के लिए उसे एक स्त्री के वस्त्र धारण कर ही वहाँ जाना चाहिए। वह दोतोरे के पास जाता है और उसे भी इसी प्रकार पट्टी पढ़ाता है। इस प्रकार वह दो वेश बदले हुए व्यक्तियों को एकत्र कर देता है। उनमें से एक दूसरे को कामाचारिणी परन्तु संकोचशीला महिला समझता है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें स्पष्ट ही लोगों को ठहाका मार कर हँसने का अवसर मिलेगा, भले ही वह परिहास सूक्ष्म अथवा कोमल न हो। आर्लेशिनो दूसरे अवसरों पर निश्चय ही भीषण भूल करने वाला, बेवकूफ़ नौकर है। ऐसा लगता है मानो वह नटों की तरह सक्रिय रहता है, कभी उछलकर वह मंच पर आ जाता है, कभी कूद कर ग़ायब हो जाता है। जब उसकी कोई आशा नहीं रहती तभी वह सामने आ जाता है और प्रायः असम्भव रास्ते से वह निकल भी जाता है। उसके रंग-विरंगे पोशाक को काफ़ी बाद में, शायद उसकी अन्य कम मसख़रेपन की विशेषताओं के साथ स्वीकारा गया। सत्रहवीं शताब्दी में डोमिनिके ने पेरिस को इटलवी रंगशाला में इस पात्र को वाक्चातुर्यपूर्ण और सुबुद्धव्याख्याकार के स्तर तक उठा दिया।

ब्रिघेल्ला दूसरा नौकर है। निश्चित रूप से यह एक व्यंग्य रूपानुकृति है, एक कठोर व्यंग्य रूपानुकृति है—एक बेईमान नौकर की जो अविचारी और इन्द्रियासक्त है। कभी-कभी वह लम्पट और चोर के स्तर पर भी उतर आता था। स्केपिनो या तो उसी का बदला हुआ रूप है अथवा उसी का चचेरा भाई है। हम यह कह सकते हैं कि ये सभी नौकर बदमाशों के परिवार के सदस्य थे। और तब इनकी सूची में एक और नाम जोड़ सकते हैं, पुलचिनेला का नाम। कटपुतलियों के तमाशों में प्रसिद्ध पंच का नाम आता है। यह पुलचिनेला इसी पंच का पूर्वज है। उस ज़माने में भी उसकी नाक तोते की तरह थी, वह बूढ़ा और चुस्त चालाक था। उसके स्वभाव में कलहप्रियता बाद में जोड़ी गयी। वह नेपुल्स का निवासी था।

केपिटानो एक डींग मारने वाला शेखीबाज़ अधिकारी है, जो ऊपर से तो बहुत रोब गाँठता है, मगर भीतर भय से काँपता रहता है। वह अपनी बहादुरी की लम्बी-लम्बी बातें करता रहता है, मगर एक छींक की आवाज़ से ही भाग निकलता है। वह गर्वोक्तियाँ करता है, डराता-धमकाता है, अकड़ कर परेड करने लगता है, परन्तु यदि कोई नौकर काठ की तलवार पर भी हाथ धर देता है तो भाग जाता है। उसकी मूँछें बड़ी-बड़ी होती हैं। उसके पास एक ज़ालिम तलवार रहती है। क्षण भर के लिए

वह भय भी उत्पन्न कर सकता है। मगर अन्त में हमेशा वह भाग निकलता है, उसकी कायरता का पर्दाफ़ाश हो जाता है; उसकी रंगबाज़ी की पोल खुल जाती है। या फिर हार्लेक्वीन उसे ठोक-पीट कर दुरुस्त कर देता है। पहिले वह इटालियन अफ़सर के रूप में सामने आया। बाद में उसका रूप बदल गया और वह स्पेनी सामन्त का प्रतिनिधित्व करने लगा। कामेदिया के अन्य पात्रों की तरह ही, कैप्टन भी एक दर्जन विभिन्न रूपों में सामने आया।

दूसरे पात्र, जिनका व्यंग्य-चित्रण उतना अधिक नहीं होता, उतने आकर्षक नहीं हैं कि उनको याद रखा जा सके। यह याद रखना आवश्यक है कि सामान्य कथानक के लिए सुरुचिपूर्ण युवक प्रेमी-प्रेमिकाओं का होना अनिवार्य था। नौकरों का मुक़ाबिला चतुर जालसाज़ नौकरानियाँ करती थीं (कोलम्बिना इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई और उसने दूसरे वेश भी बदले) और नृत्य 'बलेरिना' (नृत्य सुन्दरी) द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।

कम्पनी का प्रधान ही दृश्यालेखन करता था——शायद वही नाटक का 'लेखक' भी होता था——अभिनेता के मार्ग-दर्शन के लिए अभिनय की जो रूप-रेखा बनायी जाती थी उसमें कथोपकथन की एक पंक्ति भी नहीं रहती थी; केवल मंच पर कार्य व्यापार के लिए निर्देश और 'स्थितियों' की सूची रहती थी। ज्यों-ज्यों दृश्य योजना का विकास होता जाता था, कुछ 'अनिवार्य स्थितियाँ' बार-बार स्वयं उत्पन्न होती जाती थीं। स्वभावत: षड्यंत्र ही स्थायी आधार होता था; और प्रत्येक घटना के साथ कुछ हँसी-मज़ाक, कुछ भड़ैंती और कुछ हास्यमूलक क्षेपक अवश्य लगे रहते थे। एक वर्णन से पता चलता है कि अभिनेता भी दृश्य-योजना के खाली स्थानों को अपने 'लाज़ी' से भर देते थे। यहाँ लाज़ी का अर्थ केवल हँसी-मज़ाक नहीं है, बल्कि ऐसी तिकड़में, चतुराइयाँ और दूसरे तरीक़े भी जिनके बारे में अभिनेताओं को इत्मीनान था कि अवश्य ही वे दर्शकों को हँसाकर लोट-पोट कर देंगे। अभिनेता अपने ही ख़ज़ाने से ऐसे हास-परिहास के अवसर ढूँढ़ निकालता था जिनके सहारे कथानक के एक नाट्य-चरम से दूसरे तक पहुँचा जा सकता था। उसकी अपनी अहम्मन्यताएँ और अभ्यस्त वक्तृताएँ थीं जो उस 'पात्र' में अभिव्यक्त होती थीं। दृश्यालेखक उसके 'प्रेमी के भावावेग' या उसके 'अलंकारपूर्ण स्वगत कथन' अथवा लैटिन भाषा में गालियों की बौछार के लिए संकेत भर दे देता था।

फ्रांस में, 'इम्प्रोवाइज़्ड कामेडी' के बाद के दर्शकों में, साहित्यिक अंश किसी न किसी मात्रा में आने लगा था और नाटकों की रूप रेखाओं की कुछ लिखित पंक्तियाँ जुड़ने लगीं। बहरहाल, अनलंकृत दृश्यालेखों के कुछ छिटपुट संग्रह मिलते हैं। ऐसा

एक संग्रह है जिसका नाम 'थियेटर फार फ़िफ्टी डेज़' है। इसमें फ़्लामिनियो स्काला (फ़्लावियो) की पचास रचनाएँ हैं। यह प्रसिद्ध कम्पनी आई गिलोसी के आलेख-कोष का एक अंश है। दूसरा, रोम में 'कोर्सिनी लाइब्रेरी मैनुस्क्रिप्ट' है जिसमें मंच सज्जा सम्बन्धी रोचक रेखा-चित्र हैं।

अब्राहम बोसे द्वारा वर्णित केपीटानो का एक रूप।

इन लोकप्रिय हास्य-अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत नाटकों का क्षेत्र—यद्यपि अधिकतर आलोचकों ने इन्हें केवल हँसी ठट्ठा और भड़ैती ही कहा है—अभिनेताओं द्वारा उनके प्रार्थना-पत्रों आदि में दिये गये वर्णन के अनुसार अत्यन्त व्यापक है।

उदाहरण के लिए, आई गेलोसी के एक अभिनेता ने सोलहवीं शताब्दी के अन्त में अपनी कम्पनी के सम्बन्ध में बताते हुए कहा कि उसने "आगे आने वाले अभिनेताओं के लिए इस बात का उदाहरण रख दिया कि हास्य नाटकों दुःखान्त-सुखान्त नाटकों, दुःखान्तकों, ग्रामीण नाटकों कथा-क्षेपकों . . .की रचना कैसे की जाय, और उन्हें मंच पर, अभिव्यक्त कैसे किया जाय।" कथानक की रूपरेखा, प्राचीन नाटकों, उपन्यासों अथवा अन्य स्रोतों से खुलकर उड़ा ली जाती थीं; अथवा स्मृति में मौजूद घटनाओं, कथाओं अथवा बिल्कुल ताज़ा अपवाद-मूलक समाचारों के आधार पर गढ़ ली जाती थी। यदि पता चल जाय कि अमुक व्यक्ति दर्शकों की भीड़ में मौजूद है तो उसको ध्यान में रखकर दृश्य के दृश्य बदल दिये जाते थे और तब गूढ़ सांकेतिक प्रदर्शनों और स्वांग-भड़ैती के लिए अवकाश मिल जाता था। ऐसे अवसरों पर किसी अभिनेता के अपच और बदमिज़ाजी का लाभ उठाकर उसका मज़ाक बना दिया जाता—ऐसा यदि वह स्वयं न करता तो उसके सहयोगी ही कर देते। उन दिनों जब कि पेशाब का बर्तन ही रंगमंच पर प्रहसन के लिए सामान्य 'आधार' बनता था, बीमारी अवश्य ही विषय-वस्तु के रूप में, हमारे तुनुकमिज़ाज ज़माने से कहीं अधिक, प्रहसनमूलक सिद्ध होती रही होगी।

मंच पर जो यह छूट दिखायी देती थी, वह सामान्य जीवन में उपस्थित छूट की ही प्रतिच्छाया थी; और अभिनेताओं में जो सजीवता दिखायी देती थी, वह इटालवी जनता की सजीवता का ही प्रमाण थी। हमने यह देखा है कि इन कलाओं के संरक्षक शासकों का जीवन कैसा था, कैसे कार्डिनल और विशप लोगों ने भी जीवन को उसी रूप में पूर्णतया स्वीकार कर लिया था जैसा कि वह था और तत्कालीन नैतिक उच्छृं-खलता में स्वयं फँस गये थे : कैसे दरबारी कवि नास्तिकता को लेकर घनघोर परिहास करते थे जिसमें वे निकम्मे सामन्त के साथ ही कामाचारी धर्म-पुरोहित को, बेईमान कपटी नौकरानी के साथ आरामतलब स्त्री को—अथवा हर वस्तु को तब तक इस्तेमाल करते थे जब तक घटनाओं की तीव्र गति बनी रहे और रोचकता में किसी प्रकार की कमी न आने पावे। सड़क के किनारे प्रदर्शित होने वाले प्रहसनों में भी इसी प्रकार के हास्य-विनोद का प्रयोग होता था। और दर्शक भी अपने-अपने स्तर पर उतने ही उत्साह के साथ इन प्रदर्शनों में तथा इसी प्रकार के सैकड़ों ऐसे कार्यों में जिनका पता भी इनके पूर्वजों का न था अथवा जिनमें शामिल होना वर्जित था—रुचि लेते थे जितने उत्साह के साथ संभ्रान्त लोग। "उनको एक रंगशाला का द्वार उतनी ही ज़ोर से अपनी ओर खींचता था जितनी ज़ोर से एक कैफ़े का द्वार,' ऐसा एक लेखक ने हमें बताया है—और जब तक आप किसी लातीनी (लैटिन) देश में रहे न हों, आप यह अनुमान

नहीं लगा सकते, कि यह रंगशाला पूरी की पूरी आबादी को किस प्रकार अपनी ओर खींच लेता था।

'कामेदिया देल आर्ते' के नाट्य प्रस्तुतीकरण में जो भावना काम करती थी, जिस सामग्री का उपयोग होता था और जिस तीव्रता से सारा काम होता था, उसके बारे में फिलिपे मोनियर ने ख़ूब लिखा है। उसके एक पैरा में ही रंगमंच के अभिनय[1] की सारी तीव्रता, ओजस्विता और सप्राणता उतर आयी है। वह अभिनेताओं के बारे में बता रहा है :

"वे सब के सब ईर्ष्या-द्वेष से उसी प्रकार आकण्ठ भरे हुए थे जिस प्रकार मसख़रे-पन और वाक्चातुर्य से। स्वांगी, नट, नर्तक, संगीतकार, विदूषक यह सब कुछ तो वे थे ही; वे कवि भी थे और अपने-अपने लिए स्वयं कविताएँ भी रच लेते थे। इन रचनाओं में वे अपनी कल्पनाओं पर पूरा ज़ोर देते थे और उनको ठीक मौक़ों पर अपनी बारी आने पर और प्रेरणा मिलने पर चस्पां कर देते थे। भोले-भाले स्कूली लड़कों की तरह वे केवल अपने मास्टरों द्वारा रटाये गये गीतों को ही नहीं दोहराते थे; वे केवल किसी की ऐसी अनुगूँज बनकर नहीं रह सकते थे कि जब तक कोई दूसरा बोल न ले, वे चुप मौन खड़े रहें। वे पाद-प्रकाश के सामने पाँच-छः की टुकड़ी में पंक्तिबद्ध होकर किसी गमले या थाल में सजायी मूर्तियों की तरह जादूगरी दिखाने के लिए अपनी बाट जोहते खड़े नहीं रहते थे। वरन् उनमें बेसब्री, कल्पनाशीलता, दुर्दान्त पैशाचिकता उबलती रहती थी। वे हास्यरस के महान् कलाकार थे; वे उल्लास के सुनहरे दाने बोते थे; वे परोक्ष के, अलक्ष्य के चाकर थे; वे प्रेरणा के सम्राट् थे। बस, उन्हें एक दृश्यालेख मिलने की देरी थी, जिसकी रचना किसी ने घुटनों के बल बैठकर ही कर दी हो; कथानक की रूप-रेखा मंच व्यवस्थापक से प्रातःकाल पूछकर ठीक कर लेनी थी और विंग के निकट ही उस काग़ज़ को टाँग देना था; इसके बाद तो सब कुछ वे स्वयं कर लेते थे। अपने पेशे तथा अपनी कला से घनिष्ट परिचय के कारण वे सारे हस्तलाघव और चातुर्य और सारे विद्रूप और व्यंग्योक्तियों से पूरी तरह परिचित हो गये थे। उनके दिमाग़ में अगणित मुहावरों और लोकोक्तियों, फ़बतियों, पहेलियों, बुझौवलों, सस्वर पाठों, बे-सिर-पैर की बातों, और गीतों का ख़ज़ाना भरा रहता था। उन्हें हर प्रकार के अलंकारों, उपमाओं, पुनरावृत्तियों, उलटवासियों, कटूक्तियों, अतिशयोक्तियों, व्यंग्यात्मक प्रयोगों और विनोदी बातों का पूरा ज्ञान रहता था। इसके अतिरिक्त वे प्रभूतमात्रा में वाग्बाणों को कण्ठ किये रहते थे; स्वागत कथाओं, निराशा के चीत्कारों,

---

१. जनवरी १९११ के 'दी मास्क' से साधिकार उद्धृत।

फ़बतियों, प्यार की मधुर कल्पनाओं, अथवा ईर्ष्या अथवा प्रार्थना या घृणा या मित्रता या प्रशंसामूलक श्रद्धा-शब्दों को वे अपने जिह्वाग्र पर रखते थे और जब और कुछ कहने को न रहता तो इनका तत्काल प्रयोग करते थे। वे अपने ठाठ को खूब ऊँचा बाँध देते थे। और तब वे अपनी उर्वर प्रतिभा और अपनी विलक्षण कल्पना-प्रवणता, मन-मौजीपन की बाग ढीली कर देते। वे अपने हास्य के संपूर्ण असंयम और अमिताचार के ताबे हो जाते। तुर्की-ब-तुर्की जवाब, फबतियों, कल्पना की उड़ानों, आत्म-विरोधी बातों, चातुर्यपूर्ण वाग्विलास, मानसिक कलाबाज़ियों के अतिरिक्त वे और कुछ न थे। वे हर अवसर को पकड़ लेते थे और उससे फ़ायदा उठा लेते थे। वे समय, स्थान, आसमान, दिन की चर्चा विशेष––सबसे फ़ायदा उठा लेते थे। वे अपने और अपनी जनता के बीच ऐसी लहर दौड़ा लेते थे कि जिससे उन्मत्ततापूर्ण हास्य उत्पन्न हो जाता ––यह हास्य उन दोनों के सम्मिलित उद्योग का फल होता। इनका हर नया प्रदर्शन दूसरे से भिन्न होता। हर शाम को उसका नया ही रूप दिखायी देता, जिसमें तात्कालिक रचना की पूरी ओजस्विता, गर्मी और चेतना रहती। यह एक उत्कृष्ट क्षणभंगुर रचना होती, उसी क्षण विरचित, उसी क्षण के लिए विरचित।

बिजली की तेज़ी के साथ, भीड़ के धक्कम-धुक्का, शोरगुल के बीच अभिनय होता। जैसे आँधी में हरहराने की आवाज़ होती है, उसी तरह की हँसी की चीख-पुकार से रंगशाला गूँजती रहती। प्रेमियों का षड्यंत्र, वेश बदलने के कारण जो और भी पेचीदा हो जाता, अपहरण और फिर रंगमंच पर अप्रत्याशित उपस्थिति, छद्म-रूपता, नक़ली शिशु––यह सब था। हाज़िर जवाबी, ग़लतफ़हमियों, व्यक्तियों की अनुकृतियों, मखौल, विद्रूप, वार, ठोकर––इन सब का प्रयोग होता था। अँधेरे में वे टटोलते, एक दूसरे से भिड़ जाते और गिर पड़ते। वे शब्दों को तोड़-मरोड़ डालते थे। वे जीभ बाहर निकालते, आँखें नचाते चेहरे को विकृत बनाते। अपने पाँवों से अपने कान उमेठते-थप्पड़ लगाते। वे गीत गाते, काव्य पाठ करते, और मुहावरे तथा कहावतें सुनाते, उद्धरण देते, पुरानी कहानियाँ सुनाते। उछल-कूद और शोर-गुल के दृश्य होते, ऐसा गड़बड़-झाला मचता कि कुछ भी समझ में न आता। इसी गड़बड़ी में वे गिर पड़ते, फिर उठकर खड़े हो जाते, जैसे भी होता अपने को सहारा देते, एक दूसरे को उठाते, एक दूसरे के रास्ते में आ जाते और शोर-गुल के बीच ही भाग जाते।

वे, उदाहरण के लिए, यह समाचार इस ढंग से फैला देते कि पेंटालून को यह विश्वास हो जाता कि उसकी साँस से बदबू आती है। पेंटालून खिड़की से अपना सिंहा बजा कर यह घोषित कर देता कि पीछा करने का कार्य आरम्भ होगा। ग्रेशियानो एक मुर्ग़ा पकड़े सामने आता है। बुरात्तिनो जंजीर में एक बन्दर बाँधे आता है। भालू की

पीठ पर बैठा एक बच्चा शेर के आगे-आगे चल रहा है। एक लोहार के औजारों से लैस हार्लेक्वीन पेंटालून के चार सबसे मजबूत दाँत तोड़ देता है। मेज़ पर वह डान-जुआन की राह देखता है। अपनी ब्रिचिस के पिछले हिस्से से वह प्लेटों को पोंछ कर साफ़ करता है, तब उन्हें देता है, या मकोय से भरी अपनी टोपी वहीं से आगे कर देता है और अपने दाँतों से पत्थर के टुकड़े तोड़ने की कोशिश करता है और वहीं ज़मीन पर उन्हें थूकने का अभिनय करता है। वह किसी न किसी राग में अपने होंठ के द्वारा सिसकारियाँ भरता रहता है, या हवा में उड़ती किसी मक्खी का पीछा करता है और उसे पकड़ता है। वह यह कहता हुआ अपने कोट के बटन गिनता रहता है, 'वह मुझे प्यार करती है, वह मुझे प्यार नहीं करती है, वह मुझे प्यार करती है!' इन तीनों के बीच सेंवई की एक ही प्लेट है। वे लगातार आँसू बरसाते और खाते जाते हैं।... ग़लत तथ्यों के आधार पर उन्होंने अपने सपने गढ़े थे। ये तथ्य बिलकुल असम्भव और मूर्खतापूर्ण थे। एक के बाद एक, एक पाँव पर खड़े होकर नाचना, प्रत्युत्पन्न प्रश्नोत्तरों, संगीत, नृत्यों, स्वांगों, नट-करतबों, मुख-विकारों, मूक-अभिनयों, नाट्य-नृत्यों और नाटक, हँसी की और बिजली की साथ-साथ निकली कड़कती आवाजों का आवर्तन-प्रत्यावर्तन द्रुतगति से होता रहता था। वे दौड़ते थे, कूदते थे, कलैया मार जाते थे, पाँव ऊपर करके सिर के बल खड़े हो जाते थे। यह सब बिजली की रफ्तार से होता था; कड़कती आवाज होती थी; चिनगारियाँ छूटती थीं, लवें निकलती थीं; तेज़ आँच होती थी--फिर सब कुछ ठंढा हो जाता था, ग़ायब हो जाता था। उनका सारा शरीर एक साथ चलने लगता था। उनके हाथ और उँगलियाँ, उनकी भाव-भंगिमा--लगता था, सभी बोल देंगी। उनकी अपरिमित कल्पनाशीलता दर्शकों के सामने फट पड़ती थी, आग की तरह फैल जाती थी, आसमान तक पहुँच जाती थी; सामञ्जस्य का कैसा चमत्कार था! इसके बाद हंसी के विस्फोट, अनियंत्रित गड़बड़झाला, और विद्रूपों, सपनों, भड़ैतियों, अश्लील गालियों, काव्यपाठ और प्रणय लीलाओं का सम्मिश्रण!

यह अनिवार्य था कि यह कला-विधा जो इतनी ओजस्वी, इतनी यथार्थमूलक थी--चाहे वह अश्लील ही क्यों न हो--अन्ततोगत्वा कृत्रिम रूप से आयोजित यात्रा-नाटकों--समारोह-लीलाओं और पण्डिताऊ नव-क्लासिक नाटक के स्थान पर स्वयं अपने लिए राजाओं और उनके दरबारियों के हृदय में जगह बना लेती। तत्कालीन सम्भ्रान्त कुलीन महिलाओं की ऐसी डायरियाँ और ऐसे पत्र मिलते हैं जिनमें वे अपने ज़माने में प्रदर्शित प्राचीन एवं समकालीन नाटकों की अरोचकता का रोना रोती हैं। वे केवल विष्कम्भकीय ओजस्वी नृत्यों; 'नवीन मंचीकरण' के यंत्रचलित चमत्कारों का ही

आनन्द ले पाती हैं और अधिक प्रहसनमूलक अभिनयों के लिए आहें भरती हैं। ऐसे स्थानीय नाटककारों के शिकायती दावे भी मिलते हैं जो एकाएक अपने को ड्यूक के संरक्षण की सुरक्षा से बहिष्कृत पाते हैं और 'लोकप्रिय' पर्यटक कम्पनियों द्वारा राज-दरबार के पंच से अपने को सहसा निष्कासित अनुभव करते हैं।

१५७५ ई० तक आते आते, ये राजदरबार, निश्चित रूप से, प्राचीन नाटकों की अनुकृतियों और मास्क-लेखक कवियों की नाटकीय दृष्टि से, क्षीण भावोद्रेक से ऊब चुके थे। इस समय से आगे लगभग डेढ़ शताब्दी तक पेशेवर कलावन्तों की इटालवी कम्पनियाँ ही राजदरबारों में प्रश्रय पाती रहीं। जितनी सरगर्मी के साथ इन अभिनेताओं का स्वागत इस युग में हुआ उतना किसी भी युग में किसी का नहीं हुआ था। युद्धों के कारण उन्हें थोड़े समय के लिए एक जगह को छोड़ कर दूसरी जगह चला जाना पड़ता था। चर्च के दबाव के कारण इस या उस राज्य में दस-पाँच वर्ष के लिए उनके प्रवेश पर रोक लग जाती थी। प्लेग अथवा आपदाओं के कारण उनके दल के सदस्यों की संख्या घट जाती थी, मगर अगले दो सौ वर्षों तक उन्हीं की कहानी पश्चिमी युरोप के आधे दर्जन राज्यों में, दरबार के भीतर और बाहर, सामाजिक इतिहास में काती-बुनी जाती रही, दोहरायी जाती रही।

निस्सन्देह, इटालवी राजाओं के शानदार दरबारों में ही सर्वप्रथम इनका स्वागत हुआ था। मान्तुआ और फ़ेरारा के ड्यूक रंगमंच के अत्यन्त महान् संरक्षक और अधिष्ठाता थे। उनके दरबारों में प्रस्तुत नाटकों की शान-शौकत और तड़क-भड़क बाद के युगों में एक परम्परा के रूप में ग्रहण की गयी थी। हमें यह तो ठीक पता नहीं है कि इन दरबारों में 'कामेदिया देल आर्ते' के अभिनेताओं को सर्वप्रथम कब मान्यता मिली, मगर इस प्रकार अनेक उल्लासपूर्ण वर्णन प्राप्त होते हैं कि वे बार-बार शाही मंच पर अभिनय के लिए प्रस्तुत हुए। गोंज़ागा में मान्तुआ के प्रिंस विंशेंज़ो ने १५८६ ई० में गेलोसी कम्पनी की प्रसिद्ध अभिनेत्री आइज़ाबेला के पुत्र के नामकरण संस्कार के अवसर पर उसका धर्मपिता बना कर उसे सम्मानित किया था। मगर वेनिस और फ्लोरेंस, मिलान, वेरोना और नेपुल्स के राजदरबारों में इन विदूषक-अभिनेताओं; जो सफलता प्राप्त की उसका इतिहास और भी गौरवशाली है।

पर्यटक राजदरबारियों, धर्माध्यक्षों और विद्वानों ने इन अभिनयों को देखा, और फ्रांस, स्पेन, आस्ट्रिया, बवेरिया के अपर्यटनशील लोगों तक इनके सम्बन्ध में ज़ोर-दार विवरण पहुँचाया। एक, अंग्रेज राजदूत ने तो महारानी एलिज़ाबेथ के पास इसके बारे में एक सरकारी सूचना भी भेजी। इन इटालवी हास्य-अभिनेताओं ने फ्रांस में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण अभिनय किया। वह १५४८ ई० में लियोंस में हुआ था, यद्यपि यह

स्पष्ट नहीं है कि यह अभिनय सत्यमेव 'कामेदिया देल आर्ते' कम्पनी ने ही प्रस्तुत किया था। हम देखते हैं कि १५७१ ई० में अभिनेताओं का एक दल चार्ल्स नवम् के विवाह के अवसर पर विशेष रूप से पेरिस निमन्त्रित किया गया था। इसके कारण फ्रांस की राजधानी में एक हलचल मच गयी थी। हमें बताया जाता है कि सभी लोग, चर्च के अधिकारियों को छोड़ कर, इन नाटकों के शानदार परिहासों, अभिनय की अद्वितीय-ओजस्विता और अभिनेताओं की मनोमोहकता से अभिभूत हो गये थे। चर्च के अधिकारियों ने आवेदन पत्र दिया अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य प्रयास किया कि इन अभिनेताओं पर जुर्माना लगाया जाय अथवा उन्हें देश निकाला दे दिया जाय। मगर सम्राट् की गुणग्राहकता और संरक्षण के कारण यह तूफ़ान शांत हो गया। अनेक उत्थान-पतन के बावजूद, लगभग दो सौ साल बाद तक इटालवी हास्य-अभिनेताओं की कम्पनियों पर फ्रांस के सम्राटों की कृपा बनी रही और वे 'राज्य-प्रवेशों,' विवाहोत्सवों, विजयोत्सवों पर बुलाये जाते रहे; विशेष प्रकार के प्रदर्शनों के लिए उन्हें अधिकार पत्र दिये जाते रहे, केवल कलाकारों के रूप में ही नहीं, व्यक्तियों के रूप में भी वे समादृत होते रहे। उनसे फ्रांस के अभिनेताओं ने शिक्षा ग्रहण की; और यह असाहित्यिक इटलवी 'कामेदिया देल आर्ते' के कारण ही था कि मोलियर की प्रतिभा पल्लवित-पुष्पित हुई। एक विदेशी लोकप्रिय मनोरंजन से ही एक अभिनेता-नाटककार ने उन तत्वों को लेकर ऐसे नाट्य-साहित्य की रचना की जिसे फ्रांस में सर्वकालीन रूप से नाटक की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति माना जाता है।

इस बीच 'कामेदिया देल आर्ते' की पहुँच स्पेन तक भी हो चुकी थी, जहाँ दम्भी स्पेनिश कैप्टेन ने लोगों का मनोरंजन अधिक किया, उनको नाराज़ कम किया। फ़िलिप द्वितीय की प्रसन्नता के प्रभाव हमें मिलते हैं, साथ स्थानीय नाट्य-रचना एवं अभिनय कला पर उसके स्थायी प्रभाव के प्रमाण भी हमें मिलते हैं। इसके पहिले १५६८ ई० में ही एक कम्पनी आस्ट्रिया गयी थी और उसने वियना के राजदरबार को मोहित कर लिया था। उसी दरबार में तावारिनो 'सम्राट का विदूषक' भी नियुक्त कर दिया गया। बवेरिया में तो इटालवी प्रहसनों की ख्याति पहिले ही से थी; और मान्तुआ की एक कम्पनी ने दूरवर्ती और इस अभिनय को ज़रा कम पसन्द करने वाले इंगलैंड पर भी धावा बोल दिया। जहाँ भी ये कलाकार अभिनय करते थे, इनके कथोपकथन तो इटालियन भाषा में ही होते थे, परन्तु इसके कारण अभिनय का आनन्द लेने में कोई दिक्क़त नहीं होती थी, इसलिए कि इसमें सक्रियता, हास-परिहास, षड्यंत्र और विद्रूप पात्रों की अत्यधिक भरमार रहती थी। यह भी निश्चय ही है कि ये हास्य-अभिनेता अपरिचित भाषा बोलने वाले अपने दर्शकों को अपनी बात समझाने के प्रयत्न में, अनजाने शब्दों

प्लेट २०

जेब्रील बेलाकृत वेनिस की फ़ेस्टास के दो अंकित चित्र। ऊपर एक खुला हुआ प्लेटफ़ार्म मंच। नीचे, डोजेस पैलेस के सामने एक अस्थायी रंगशाला।
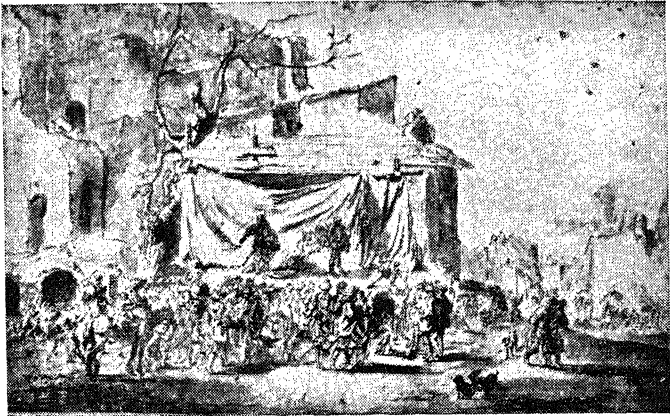
भ्रमणशील कामेदिया अभिनेता-दलों के लिए निर्मित दो मार्गों के किनारे बने रंगमंच। ऊपर, हेन्ड्रिक वर्शुरिंग (१६२७–१६९०)कृत चित्रांकन। नीचे, निकोलस–अन्तोइने ताओने कृत एक छवि।

प्लेट २२
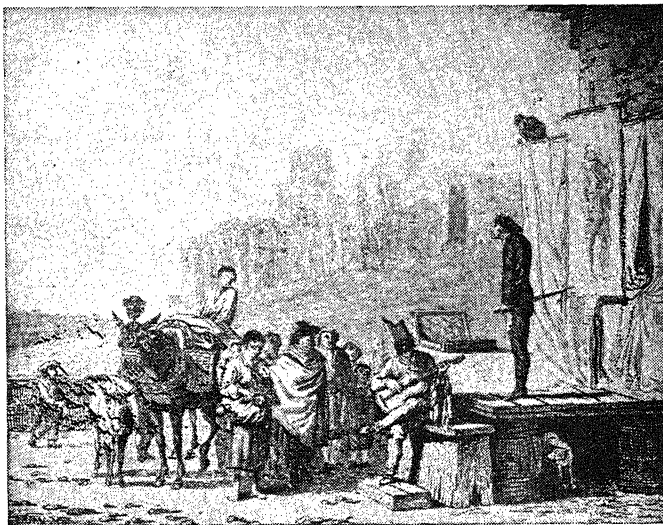
कामेदिया कलाकारों के लिए निर्मित दो पतनकालीन रंगमंच। ऊपर, कार्ल डु जार्डिन कृत 'दी चार्लटन्स' की उत्कीर्ण-छवि। नीचे, मार्टिन ड्रालिंग कृत पियरो और स्केपिन के साथ एक छवि।

प्लेट २३

थियेत्रे इतालीन, पेरिस, में हर्लेक्वीन चेहरे के साथ तोमासिनो (थोमासिन), लातूर के पेस्टल अंकन के आधार पर टी० बरट्रेण्ड कृत उत्कीर्ण-छवि।

और वाक्यों का अटपटा प्रयोग करके, और भी अधिक हास्य पैदा कर देते थे। ग़लत उच्चारणों और शब्दों के ग़लत प्रयोगों के कारण हास्य-विनोद का जो अवसर मिल गया था, उसमें वे चूक थोड़े ही सकते थे।

जैसा कि उल्लेख मिलता है, जहाँ एक ओर 'इम्प्रोवाइज़्ड कामेडी' प्रदर्शनों में इतना शोर-गुल, गति और उछल-कूद रहती थी, वहीं उसके प्रस्तुतीकरण और अभिनेताओं में एक लालित्य का पक्ष भी था। निस्सन्देह 'कामेदिया देल आर्ते' के सर्वश्रेष्ठ युग में अभिनेताओं के दल में रंगमंच के कुछ उत्कृष्टतम कलाकार भी थे। वे सच्चे कलाकार थे और उनमें व्यापक मानवीय एवं सामाजिक अभिरुचियाँ भी थीं। निस्सन्देह ऐसी भी कम्पनियाँ थीं जो उन आवारा पर्यटक अभिनेताओं से शायद ही कुछ भिन्न रही हों जिन्होंने इतिहास के तीन-चार युगों में अभिनेताओं को बदमाशों, चोरों, और अन्य समाज-विरोधी अपराधियों के समकक्ष बना दिया था। ये पर्यटक दल दक्षिणी युरोप में यहाँ से वहाँ घूमा करते थे, रास्ते के नगरों में अपने ठाठ खड़े कर लेते और अभिनय आरम्भ कर देते थे। कभी यहाँ किसी मेले के अवसर पर पहुँच जाते, कभी वहाँ किसी दावत-भोजन पर पहुँच जाते। अधिक वे जनता के ऊपर ही अधिकतर अपना भाग्य छोड़ देते। जनता उनके प्रदर्शनों को देखने के लिए उत्सुक तो बहुत रहती थी, मगर वह अधिक उदार शायद ही कभी हो पाती रही हो। तमाम दिक्कतों और परेशानियों के झेलते; वे ख़तरनाक पहाड़ी और धूप से जलती मैदानी सड़कों पर, तूफ़ानी अथवा शांत मौसमों का सामना करते; कैनवेस से ढँकी अपनी बैलगाड़ियों पर वे चलते चले जाते। जहाँ जैसी स्थिति होती उसी में वे रह लेते, चाहे वह सस्ती सराय हो, खुला खेत हो अथवा बदबूदार घुड़साल ही क्यों न हो; यदि किसी समय भाग्य उनका साथ न देता तो वे लुच्चापन और आवारगी से भी बाज़ न आते—और हाँ, वे अपनी कम्पनियों में छोटे-मोटे चोर और वेश्याएँ भी रखते थे।

मगर इनके साथ ही ऐसे मान्यता प्राप्त दल भी होते थे जिनका शानदार नेतृत्व होता था और जिनमें ऐसे अभिनेता होते थे जिन्हें सम्मानित करने में रानियाँ और राजे आनन्द अनुभव करते थे। इस बात का उल्लेख मिलता है कि एक अभिनय से प्रसन्न होकर एक सम्राट् ने स्कारामूशिया को बुलाया और उसे अपनी तथा अन्य छः गाड़ियाँ दे दीं। सम्राट्, ड्यूक, और कार्डिनल आगत अभिनेताओं को दावतें देते थे। एक उल्लेख के अनुसार, तास्सो ने अभिनेत्री विन्तोरिया के सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक और रसपूर्ण ढंग से लिखा है। उसके सम्मान में एक कार्डिनल आल्दोब्रादिनी ने प्रीतिभोज दिया था और 'उसमें शामिल होने के लिए छः अन्य कार्डिनलों को भी निमंत्रित किया था'—परन्तु इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि वे सब के सब

कार्डिनल उस दावत में आये अथवा नहीं। इस दावत में तोस्सो को विन्तोरिया की बग़ल में बैठने का अवसर मिला था। कुछ अभिनेताओं को सामन्त पद से भी सुशोभित किया गया था। दूसरों को राजदरबार में सम्मानपूर्ण स्थान मिला था। उनमें से एक तो सम्राट् के निजी कोष का अधीक्षक भी बन गया था। मगर किस सिद्धान्त के आधार पर उसे यह पद दिया गया––यह बात आज तक समझ में नहीं आयी। उनके सम्मान में खेल-कूद प्रतियोगिताएँ आयोजित की जातीं, उनके प्रविष्ट होने पर नगर के घण्टे टनटना उठते; निश्चय ही शाही सम्मान का वह वज़नी प्रतीक, 'नगर की कुञ्जियाँ,' वे प्राप्त करते थे। मगर ये समादृत कंपनियाँ भी मार्ग के ख़तरों से सर्वथा मुक्त न थीं। १५७७ ई० में ह्यूजोनोज़ ने 'आई गिलोसी' को गिरफ़्तार कर लिया और सम्राट् निस्तार धन देकर ब्लोई के शाही प्रांगण में अभिनय करने के निश्चित समय के कुछ ही पहिले उन्हें छुड़ा पाये।

'आई गिलोसी' नाम की कम्पनी सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। उसका अभिनय भी १५७० ई० के बाद के वर्षों में सर्वोत्कृष्ट होता था। एक दर्जन राजदरबारों के वे अत्यन्त प्रिय अभिनेता बन गये; उनके अभिनय की तिथियों और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में राजे और ड्यूक आपस में झगड़ा करते थे। अन्य और भी ऐसे दल थे जो इससे कम सम्मानित न थे। कहा जाता है कि 'गिलोसी दल' के सभी अभिनेता संपूर्ण रूप से कुशल कलाकार थे। वे अन्य बहुत-सी मामूली कम्पनीयों में 'प्रमुख अभिनेता' बन सकते थे। इसका नेता फ्रांसिस्को आँद्रेयिनी था। जीवन-स्तर, संस्कार और कलाओं की दृष्टि से उसे वैभवशाली उत्तराधिकार प्राप्त हुआ था जिसपर उसका अभिनय आधारित था। शुरू में वह सैनिक था और तुर्कों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। तुर्कों से मुक्त होने में उसे आठ वर्ष लगे। वह संगीतज्ञ था, अनेक बाजे बजा लेता था, पाँच भाषाएँ जानता था, गद्य और पद्य में सरलता के साथ रचनाएँ कर लेता था। अभिनेता की हैसियत से वह अपने को कला-कुशल बनाकर संतोष नहीं कर सकता था––उसने नये पात्रों की रचना की, स्पेनी कप्तान का अभिनय लगभग एक दर्जन रूपों में किया; साथ ही उसने प्रेमी की भी भूमिका की।

मगर जहाँ एक आइज़ाबेला और आंद्रेयिनी का इतना सम्मान होता था, वहीं उसकी स्त्री आइजा बेला के गीत भी उस समय के चारण, आलोचक और मनचले लोग गाया करते थे। इसका वर्णन मिलता है कि वह तीन भाषाएँ जानती थी, वाद्यों के साथ बहुत मीठे स्वर में गाने गाती थी, दर्शन की भी अच्छी जानकारी रखती थी और इस सब के साथ वह 'सुन्दर नाम वाली, सुन्दर शरीर वाली, और अत्यन्त सुन्दर भावना वाली... सुन्दर और निष्कलंक चरित्र वाली स्त्रियों की रानी थी।' तोम्मासो गारज़ोनी ने उसके

सम्बन्ध में लिखते हुए कहा कि "वह दृश्य की शोभा और शृंगार थी, रंगशाला क आभूषण थी; वह पवित्रता तथा सुन्दरता की प्रतिमूर्ति थी...जब तक यह संसार रहेगा, जब तक ये शताब्दियाँ बनी रहेंगी, जब तक कालों और ऋतुओं का क्रम बना रहेगा, हर आवाज़, हर ज़बान, हर पुकार आइज़ाबेला के सम्मानित नाम को ही दोहराती रहेगी।'

१६०४ ई० में, जिस समय कि कम्पनी पेरिस से इटली की ओर यात्रा कर रही थी, लियों में महारानी मेरी द्वारा सद्यः सम्मानित होने के बाद आइज़ाबेला बीमार पड़ी और मर गयी। उसकी मृत्यु में एक ऐसी असंगति का दर्शन हुआ जिसने रंगमंच को इतिहास पर एक विन्दु लगा दिया। चर्च के अध्यादेश से उस 'परम संयमी सती और नैतिक दृष्टि से सर्वथा निष्कलंक' स्त्री को पवित्र क़ब्रिस्तान में दफ़नाये जाने की अनुज्ञा नहीं मिली। परन्तु उस स्थान के पादरी ने इतना लिखने की शालीनता तो दिखायी ही कि "वह अखिल विश्व में यह सम्मान प्राप्त करके परलोकवासी हुई कि विद्या के क्षेत्र में वह दुर्लभ महिलाओं में थी और अनेक भाषाओं की जानकार के रूप में वह सर्वत्र प्रख्यात थी।" चर्च की इस अशिष्टता का परिहार लियों के अधिकारियों ने उसे समस्त सम्मान प्रदान करके किया--उसके शव के साथ मशालें थीं, दण्डधारी थे, और झण्डे भी थे जो क़ब्र तक गये। उस दिन से, उसके पति आदरणीय आंद्रेयिनी ने फिर अभिनय नहीं किया।

'कामेदिया देल आर्ते' की पात्रावली अत्यन्त उत्तम है। मगर वह कम सुन्दर, कम उदात्त, कम समझदारी से भरी नहीं है। वहाँ वह वित्तोरिया, 'देवी वित्तोरिया,' तो थी ही जो 'सन्तुलित भावभंगी, सामञ्जस्यपूर्ण और शालीनतापूर्ण अंग-संचालन, शानदार और कमनीय सक्रियता, मीठे, कोमल शब्दों के उच्चारण, कोमल, सूक्ष्म, प्रसन्न एवं मोहक हँसी, उदात्त एवं मर्यादाशील व्यवहार के कारण इतना यश अर्जित कर सकी थी; और उसके संपूर्ण व्यक्तित्व में एक ऐसी शालीनता थी जो एक पूर्ण अभिनेत्री में पायी जाती है और जो इसके योग्य भी है।...प्रेम की उस सुन्दर जादूगरनी ने अपने शब्दों से हज़ारों प्रेमियों का हृदय जीत लिया।' वहीं पर वह फ़्लोरिडा भी थी जो चेचक निकल आने के कारण एक अभिनेत्री–गायिका की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर, मान्तुआ के दरबार में एक फ़र्मायशी अभिनय में सामने आयी। उसने भूमिका-स्वीकार कर ली और उसे इतनी कुशलतापूर्वक अदा किया कि लोग विगलित हो गये --"सहस्त्रों हृदयों से सहस्त्रों आहें निकल पड़ीं"--और उस दिन से लोकप्रिय और सम्मानित अभिनेत्री बन गयी।

पुरुष अभिनेताओं में भी ग्यूलियो पस्काती था, जिसे हेनरी आव पोलैण्ड ने

एक राज्यादेश में 'मैगनीफिके' (महान्) की उपाधि दी थी। यह व्यक्ति बाद में अपने रंगमंचीय नाम ग्राज़ियानो से ही प्रसिद्ध हुआ। उसे 'मैगनीफ़िको पेंटालोन'

फ्रांस में, बाद के अधिक कोमल कामेदिया पात्र । ऊपर, पियरो, मेज़ेतिन, कप्तान, और हार्लेक्वीन; नीचे, पेंटालोन, पोलिशिनेले, स्कैपिन और नार्सी-सिन। (रिक्कोबोनी की एक रचना में एक उत्कीर्ण चित्र; ल' एन्शीयेने फ्रांस : ले थियेत्रे एट ला म्युज़िके।)

कहा जाता था। वहाँ अभिनेता, निर्देशक, और पचास दृश्यालेखों का लेखक फ़्लामिनियो स्काला भी था। और वहाँ, प्रसिद्ध आंद्रेयिनी तथा आइज़ाबेला का बेटा

लेलियो भी था, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि उसने सचमुच सैकड़ों नाटक लिखे, कविताएँ लिखीं, 'दृश्य चित्र' लिखे, कथोपकथन लिखे, आदि-आदि। ये और इनके जैसे बीसियों ओजस्वी व्यक्ति अब केवल गर्द भरे वृहत्-पुस्तक खण्डों और इटली की लाइब्रेरियों की पाण्डुलिपियों में दबे पड़े हैं; अंग्रेजी पाठकों को उनके सम्बन्ध में सबसे कम मालूम है।

इस युग के आधे दर्जन पात्र तो पौराणिक पात्र की तरह प्रसिद्ध हो गये हैं। सत्रहवीं शताब्दी का स्कारामूशिया अपने अन्य साथियों से अधिक स्थायी नाम कमाने में सफल हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से इस नाम से जो व्यक्ति सम्बद्ध है वह है तिबेरियो फ़ियोरिलो। उसने स्कारामूशे नाम की खोज भी न की। दूसरे व्यक्ति ने इस नाम को पहले अधिक खुल कर इस्तेमाल किया था। उसने इस पात्र की रचना भी नहीं की। यह स्पेनी कप्तान के ही एक भिन्न रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मगर उसका अभिनय इतना प्राणपूर्ण था, उसकी सिर से पाँव तक की काली पोशाक उसकी एक ऐसी विशेषता बन गयी, और उसका प्रभाव (विशेषतौर से अभिनय कला और मोलियरे पर इतना अधिक था कि उसका नाम अमर कलाकारों की पंक्ति में आ गया। अभिनेता के व्यक्तित्व से अलग इस पात्र, को निश्चय ही बाद के 'इम्प्रोवाइज़्ड कामेडी' और फ्रांसीसी नृत्य-नाट्य के क्षेत्र तक खींच कर पहुँचाया गया। यह वर्णन मिलता है कि बिना हिले-डुले और बिना एक शब्द बोले ही स्कारामूशिया अपनी कुर्सी के पीछे मौजूद अदृश्य पास्कारील के कारण मन में उत्पन्न भय की मुद्राओं और भाव-भंगियों का अभिनय करके पन्द्रह मिनट तक दर्शकों को ठठा मारकर हँसने के लिए विवश कर सकता था।

इटालवी हास्य अभिनेताओं में पापात्मा और पुण्यात्मा दोनों के अच्छे दिनों में खूब चमके भी थे और दोनों में ओज भी था। मगर अठारहवीं शताब्दी के अन्त में दोनों अलग-अलग मार्गों से अपने दुर्भाग्य की भिन्न-भिन्न गतियों को प्राप्त हुए। अच्छी कम्पनियों में से कुछ ने 'सुधार' की प्रेरणा से अभिभूत होकर साहित्यिक तत्वों को अपने नाटकों में शामिल किया और सुरुचि के साथ समझौता किया। उन्होंने चर्च और उनकी निषेधाज्ञाओं के साथ समझौता किया। जब रिक्कोबोनी की कम्पनी पेरिस में लाइसेंस-शुदा इटालवी अभिनेता दल के रूप में स्वीकृत हुई, उस समय अभिनेताओं ने फ्रांस के राजदरबार में जो आवेदन पत्र दिया था उसमें इन समझौतों की झलक मिलती है। इस आवेदन के बाद, कि तमाम अन्य इटालवी कम्पनियों और उनके प्रसिद्ध अभिनेताओं के सभी प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जायँ और कास्तेन्तिनी कम्पनी का कोई भी सदस्य अब दल में शामिल न किया जाय, ''जिनके ज़रिये, सभी लोग जानते हैं, इनके पहिले आये इटालवी अभिनेताओं ने अपनी प्रतिष्ठा खोदी और वे राजदरबार

की निगाह में गिर गये।" उन्होंने अन्त में निवेदन किया--"श्रीमान् महाराजाधिराज से ये अभिनेता निवेदन करते हैं कि दरबार में वह कह दें कि इटली की ही भाँति उनको यहाँ भी 'होली सेक्रामेंट' का खुला प्रयोग करने की अनुमति मिल जाय; ऐसा इसलिए और भी अधिक होना चाहिए क्योंकि वे अब कभी भी किसी अश्लील अथवा निन्दनीय काव्य का पाठ नहीं करेंगे; और रिक्कोबोनी इस बात की जिम्मेदारी लेता है कि मिनिस्टर और धर्म पुरोहित द्वारा निरीक्षण के लिए वह नाटकों का दृश्यालेख पहिले से ही दे देगा और उनकी अनुमति प्राप्त कर लेगा।" इस प्रकार फ्रांस में 'कामेदिया देल आर्ते' का लगभग अन्त हो गया। इसके फलस्वरूप नयी-नयी शानदार सफलताओं का श्रीगणेश तो हुआ, मगर उनमें वह उदीयमानता नहीं थी।

इटली में उसकी समाप्ति और भी अधिक दुःखद और दयनीय हुई। अठारहवीं शताब्दी में उसमें नवीन उन्मेषों का प्रवेश समाप्त हो गया, उसकी ओजस्विता घटने लगी, 'प्रोफ़ेशनल कामेडी' ने फिर उसी असंस्कृत, मारधाड़ वाले, और कभी-कभी अश्लील रूपों को अपना लिया, जिनसे निकल कर उसने इतनी उन्नति की थी। व्यभिचार और दुराचार के कारण ही अन्तिम रूप से उसका नाश हुआ। स्वभावत: जब अंग्रेज यात्री इटली से अपने देश इंगलैण्ड वापिस आये तो उन्होंने इन नाटकों की अविश्वसनीय कामाचारिता और लज्जाजनक व्यभिचारों की कहानियाँ सुनायीं। यद्यपि इंगलैण्ड में भी यह वही युग था जब कि 'रेस्टोरेशन' कालीन अश्लील नाटककारों ने लन्दन के रंगमंच पर ऐसे नाटक प्रस्तुत किये कि जो सदैव के लिए बन्द कर दिये गये। मगर थके हुए हास्य-अभिनेता अपने बासी षड़यंत्रमूलक कथानकों और पिटी-पिटायी भड़ैतियों में नमक मिर्च लगाकर हैरतअंगेज़ घटनाओं और सांकेतिक भाव-भंगियों से उन्हें सजा रहे थे। यहाँ तक कि प्रसव करती स्त्रियों और बनावटी ख़तने के दृश्यों को भी हास्योत्पादक सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा था। पेशाब करने का बर्तन हास्य का एक प्रमुख 'साधन' बन गया था। इस प्रकार वह विधा, जो कभी अपने अच्छे दिनों में अद्वितीय ओजस्वी अभिव्यक्ति का साधन थी और सजीवता का प्रमाण थी, अब अश्लीलता, फ़ुघड़ता, भद्दे संकेतों और सरकारी दमन और जनता की विरक्ति के धुंधलके में खो गयी।

जब भी अभिनेता ने अपनी स्वाधीनता का सम्मान किया--जब भी उसने नाटककार के बन्धनों से मिली अपनी इस स्वतंत्रता का उपयोग रचनात्मक कार्यों में किया, अपने युग की और रंगशाला की सामग्री का सही उपयोग किया--चाहे उसमें संस्कार की कमी रही हो, मगर अश्लीलता कदापि न थी--उसने अपने को रंगशाला का सत्यमेव स्वामी बना लिया, उस हद तक जिस हद तक न इसके पहिले कभी हुआ था,

न इसके बाद ही हो पाया। रंगमंच के इतिहास में उसने सजीव आध्याय जोड़ा था। मगर उसके कम प्रतिभासम्पन्न, कम शुद्ध और थके हुये अनुगामियों ने एक निराशा-मूलक पतन और लगभग एक बदबूदार सड़ांध के साथ उसे समाप्त कर दिया।

अध्याय ७

स्पेन की प्रणय-शौर्यपरक रंगशाला

इटालवी 'कामेदिया देल आर्ते' के रंगमंच पर इस ओर से उस ओर तक अकड़ कर चलने वाला, गर्वोक्तियाँ करने वाला, शान के साथ फ़ौजी ढंग से परेड करने वाला, सैनिकों और सुन्दर स्त्रियों के बीच अपनी विजयों की बखान करने वाला, मगर किसी के ज़रा-सा तेज बोल देने पर चौंक जाने वाला और काँप उठने वाला, और एक तलवार के निकल आने पर या एक बन्दूक से गोली के छूटने की आवाज़ पर एकाएक भाग निकलने वाला स्पेनी कप्तान——यह केपितानो——हमें अच्छी तरह इटली से स्पेन की रंगशाला की ओर ले चल सकता है। यह सही है कि इस पात्र में हास्यमूलक अनुकृति के तत्व थे। यह भी सही है कि विजयी स्पेनवालों के प्रति इटालवी लोगों में एक कड़ुवाहट थी। और यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि लातीनी लोगों में अपने से मज़बूत आदमी पर, उसके पीठ फेर लेने के बाद ही थूक देने की आदत थी। फिर भी, यह सब कुछ होते हुए भी, इस रंगमंचीय पात्र के प्रतिबिम्ब में हम ऐसी सभी बातें पा सकते हैं जो स्पेन के नाटक और रंगमंच की विशेषता है। निश्चय ही, एक अत्यन्त अहंकारी व्यक्ति ही, एक प्रेमी और सैनिक ही, एक गपोड़िया और रंगबाज़ आदमी ही सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के स्पेनी रंगमंच का प्रतीक बन सकता था। उस युग का नाटक आश्चर्यजनक रूप से वैविध्यपूर्ण है। मगर अपनी अत्यन्त विशिष्ट अभिव्यक्ति में, यह शौर्यपूर्ण, समृद्धिशाली और किसी हद तक व्यर्थ ही रोमांटिक (रोमांचक) भी है। इसमें शारीरिक सक्रियता की बहुलता होती है। मगर लोगों को सन्देह यह होता है कि यदि आलोचना की तलवार को ज़रा-सा भी खड़खड़ा दिया जाय तो उसका यह शौर्य, इसकी सारी विचक्षणता और इसकी भावना-प्रवणता उसी तरह खोखली साबित होगी जिस तरह क़प्तान की बहादुरी।

किया जा सके। मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस व्यंग्य-चित्र के पीछे वह असली स्पेनियार्ड था जो कि डान क्विक्ज़ोट और डान जुआन में देखा जा सकता है। अपने उदात्त रूप में यह स्पेनियार्ड हज़ार बार स्पेनी नाटक का समर्थक दिखायी देता है। उसकी आचार-संहिता उसकी प्रणय लीला, उसके युद्ध—ये सब स्पेनी नाटक की जान हैं। उसकी तबीयतदारी से नाटककारों को केवल सामग्री ही नहीं मिलती थी, वरन् उससे नाटकों की रूप-रेखा भी बनती थी। युद्ध में शूरता, निजी सम्मान के सम्बन्ध में अतिशय औपचारिकता, सम्राट् और चर्च की आज्ञाओं का विना किसी प्रकार का सवाल उठाये पालन, रोमांचक प्रेम—यही लोगों के आदर्श थे जिनकी अभिव्यक्ति हर उस नाटक में होनी अनिवार्य थी, जिसे सफल होना था।

जब उनकी राष्ट्रीय रंगशाला निर्मित हुई, उस समय स्पेनवासी अपनी ज़ातीयता के प्रति जितने सजग थे, उतने युरोप के किसी भी देश के लोग नहीं थे। वे शताब्दियों से मूरों से लगातार लड़ते रहे और ईसाई धर्म के लिए युरोप को बचाये रहे। अपने युग के वे महान् साम्राज्यवादी थे, और समुद्र पार का अमरीकी संसार उनके मातहत था। वे ही ईश्वर के सब से अधिक प्रियपात्र थे, कैथोलिकवाद के समर्थक थे। उनमें देश-भक्ति की ज्वाला तेज़ी के साथ जलती थी। इस ज्वाला को प्रकाशयुक्त और निर्धूम रखना रंगशाला का काम था।

ऐसे भी लोग हैं जो अनुभव करते हैं कि उस ज़माने के शानदार दिनों की तुलना में अब स्पेनवासियों का धीरे-धीरे पतन हो गया है, और आज के पतित स्पेनवासियों की चर्चा सुनायी पड़ती है। निश्चय ही, स्पेनी रंगशाला के जीवन के प्रथम सौ वर्षों में, स्पेन का राष्ट्र युरोप के राजनीतिक और सामरिक नेतृत्व पद से गिरकर एक दूसरी श्रेणी की शक्ति बन गया था। इन नाटकों में जो वीरता और गौरव प्रदर्शित किया गया था, वह सम्मानित अतीत का प्रतिबिम्ब था, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के वर्तमान का दर्पण नहीं था। मगर यह हो सकता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी की अभूतपूर्व राष्ट्रीय सफलता में निर्णायक तत्व उतने प्रशंसनीय न रहे हों जितने अब से कम अहंकारपूर्ण स्पेन में थे। और यह कि इन तत्वों में ही हम राजनीति शक्ति के पतन के कारणों को भी ढूँढ़ सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि क्यों जिस स्पेन में एक ज़माने में नाटक का इतना शानदार प्रस्तुतीकरण होता था और उसकी विषय-वस्तु भी इतनी महान् होती थी, (लोपे दे वेगा ने अकेले १८०० नाट्य-रचनाओं को तैयार किया था।) उसी स्पेन में अब क्यों नाटक केवल द्वितीय श्रेणी का हो कर रह गया !

पहिली बात तो यह कि यद्यपि पश्चिमी युरोप में सर्वत्र पुनरुत्थान ने अपना

प्रभाव डाला, वह स्पेन वालों को इसलिए अनुप्रेरित न कर सका कि वे मध्ययुगीनता छोड़कर, इटली और फ्रांस की भांति, प्राचीन क्लासिक साहित्य का अनुशीलन करें। 'इन्क्वीज़ीशन' काल के स्पेनवासी भयानक रूप से कैथोलिक थे और वे पुनरुत्थान से प्राप्त मानव जाति की सबसे मूल्यवान् उपलब्धि नवीन विचार-स्वातंत्र्य का स्वागत नहीं कर सकते थे। यह देश रहस्यवाद को अधिक पसन्द करता था, वह इस संसार के जीवन को जन्म और मृत्यु के उपरान्त वाले जीवन के बीच का एक विष्कम्भक मानता था। इटली की तरह यहाँ आस्था और विश्वास में सन्देह नहीं किया जा सकता था। यहाँ कोई नवीन बौद्धिक जिज्ञासा नहीं प्रकट की जा सकती थी, मानवीय मनोरंजन के लिए देवी-देवताओं की पूजा का सहारा नहीं लिया जा सकता था। एक विचित्र बात यह भी है कि जिन मूरों को स्पेनवासियों ने अन्तिम रूप से पराजित किया था, उनसे इन्होंने बहुत सी रंगीनी और समृद्धि भी प्राप्त की थी, और कुछ ऐसे व्यक्ति हो सकते थे जो इस रंगीनी और समृद्धि को एक पोशाक की भांति अपने ऊपर धारण कर लेते। मगर चर्च द्वारा अटूट आस्था की माँग और सम्राटों के नैसर्गिक अधिकार की सुरक्षा के साथ ही जन्म लेने वाली जाति-प्रथा के कारण राष्ट्रीय आदर्श अत्यन्त कठोर हो गया था। मनुष्यों के प्रत्येक कार्य के मुख्य स्त्रोत ही थे। धर्म संगठित था और मनुष्य की हर क्रिया पर एक कृत्रिम आचार-संहिता हावी थी। फलतः नाटक और साहित्य मानवतावाद के उस उष्ण प्रकाश को ग्रहण नहीं कर सका जो कि अन्यत्र इतना महत्वपूर्ण था। निरन्तर अन्तर्द्वन्द्वों, षड्यंत्रों, जटिलतापूर्ण स्थितियों, संविभाजनों, प्रतिशोधों, देशभक्तिपूर्ण चाटुकारिता, डींगों, हास्यमूलक अन्तरकथाओं और विदूषकीय विष्कम्भकों के लिए मंच प्रस्तुत हो गया। मोलियरे के विचारपूर्ण हास्य के लिए यहाँ कोई गुंजाइश न थी, शेक्सपियर की मानवतावादी भावना के लिए तो यहाँ बिल्कुल ही कोई स्थान न था। यहाँ दिखावा और द्वन्द्वों की इतनी भरमार थी कि नाटक के प्रशांत तत्वों का यहाँ प्रवेश नहीं हो सकता था।

स्पेन के नाटककार निस्सन्देह क्लासिक–प्रतिमानों का अत्यधिक घनिष्ट अनुकरण करने से बच गये––इसी अनुकरण ने इटली के पुनरुत्थानकालीन नाटककारों के सारे प्रयत्नों को विफल कर दिया था। मगर स्पेन वाले उस सुगठनशीलता को, उस नाटकीय ऋजुता को भी नहीं प्राप्त कर सके जो उन्हें यूनानी नाटकों के अनुशीलन से मिलती। अधिकतर स्पेनिश नाटकों में एक मध्ययुगीन विश्रृंखलता दिखायी देती है और उनमें आस्थावान्, अविचारशील जन-समाज के लिए रचित धार्मिक नाटकों की एकरसतापूर्ण पुनरावृत्ति और उपाख्यानमूलक ढंग कम मात्रा में नहीं रहता था। उनकी अभिनय-क्रिया में ओज अवश्य रहता था। उसमें रोमांटिक रंगीनी रहती थी

और एक ऐसा वाग्विलास और शब्दाडम्बर रहता था जैसा अन्यत्र दुर्लभ था। लेकिन उसमें संगठित, जड़ाऊ कारीगरी अथवा भावना की कोमलता नहीं होती थी। अपनी ओजस्विता के कारण वे अपने को एलिज़ाबेथयुगीन रंगमंच से सम्बद्ध कर लेते थे; परन्तु उनमें उतनी मानवीयतापूर्ण गहराई नहीं थी; वे उतने कल्पनाशील न थे।

जिस तरह स्पेनी कप्तान ने एक ओर तो रंगबाज़ी करने वाले और सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में नेपुल्स के मार्गों पर अपनी शक्ति-संपन्नता का प्रदर्शन करने वाले सामन्त का प्रतिनिधित्व किया, और दूसरी ओर रोमन प्रहसन 'माइल्स ग्लेरियोसस' से प्रेरणा भी ग्रहण की, ठीक उसी तरह स्पेन के नाटक ने भी—यद्यपि वह युरोप के किसी भी अन्य देश के नाटक की तुलना में सर्वाधिक राष्ट्रीय था—अपने ठीक पहिले के सारे पश्चिमी युरोप में फैले लोकप्रिय 'मिराकिल' रंगशालाओं से अनेक तत्व ग्रहण किये, और रोमी नाट्यविद्याओं के अवशेषों से भी बहुत कुछ लिया। १५०० ई० के ठीक बाद जब स्पेनी रंगमंच एक संस्था के रूप में उभरने लगा, उस समय का अतिशय सूक्ष्म नाटक एक संगीतरूपक के अत्यन्त निकट था; और पर्यटनशील गायक और चारण लोकप्रिय होने लगे थे। इस नये पौधे की दूसरी और शायद अधिक जड़ चर्च और धार्मिक रेखा-चित्रों में थी। चमत्कार नाटक, रहस्य नाटक, नीति परक नाटक यहाँ चर्च के भीतर और उतनी ही आज़ादी के साथ बाहर अभिनीत होते रहते थे जितनी आज़ादी के साथ फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड में। हाँ, यहाँ धर्म-पुरोहितों की देख-रेख ज़रा सख़्त थी। अभी बहुत दिनों तक नाटक पर चर्च का आधिपत्य बना रहने वाला था।

जिससे हम स्पेनी नाटक के पिता के न ाम से जानते हैं वह था जुआन देल एंज़िना। उसका जन्म १४६८ ई० अथवा १४६९ ई० में हुआ था। मगर मंच के लिए उसने जो नाटक तैयार किया था वह ग्रामीण और धार्मिक तरह के कथोपकथन के टुकड़ों के अतिरिक्त और कुछ न था। उसे हम मूलतः महत्वपूर्ण स्वीकार करके आगे बढ़ सकते हैं। मगर उसने स्पेन की रंगशाला का मार्ग निश्चित नहीं किया। इसी प्रकार इटली में एक स्पेननिवासी प्रहसन लेखक बारतोलोप-दी नोरे नाहारो था जिसने कई प्रहसन लिखे, मगर उन प्रहसनों में इतनी भद्दगी और श्रद्धा रहती थी कि चर्च-पिताओं ने उनके अभिनय पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इसी शताब्दी के मध्य में लोपे दे रुयेदा नाम का एक नाटककार हुआ था। उसी के समय से स्पेनी नाटक का संक्षिप्त अध्ययन आरम्भ होना चाहिए। उस ज़माने में घूम-घूम कर नाटक अभिनीत करने वाले कोड़ियों कलाकार-निर्देशकों में एक वह भी

एक 'आटो सेक्रामेन्टल' का अभिनय (जे० कोम्बा के एक चित्र के आधार पर वारेन डी० चेनी कृत रेखांकन।)

था। मगर वह सचमुच प्रतिनिधित्व था और उसके सम्बन्ध में हमारे पास प्रामाणिक तथ्य हैं। महान् सेरवान्ते ने लिखा था :

इस सर्व-सम्मानित स्पेनवासी के युग में एक नाटक कम्पनी के व्यवस्थापक के सारे सामान एक बोरे में बन्द किये जा सकते थे। उनमें चार सफ़ेद अश्वारोही-सैनिकों के जैकेट होते थे। जिनमें चमड़े के गोटे लगे होते थे, चार दाढ़ियाँ और बाल होते थे, चार डण्डे होते थे। ये नाटक दो या तीन गड़ेरियों अथवा गड़ेरिनों के बीच कथोपकथन मात्र होते थे। इन नाटकों में दो तीन उप-पात्र भी आ जाते थे चाहे वे 'हब्शिन' हों, 'बदमाश' हों, 'मूर्ख' हों या 'फिर' विस्कायन हों। इन चारों पात्रों की अथवा इनकी तरह के अन्य कई पात्रों की भूमिका उपर्युक्त लोपे कल्पनातीत कौशल और योग्यता के साथ कर लेता था। उस जमाने में त्रामोया (मंच के लिए यंत्र) नहीं हुआ करते थे, मूरों अथवा ईसाई पैदल या घुड़सवारों के युद्धों के प्रदर्शन भी रंगमंच पर नहीं हुआ करते थे। ऐसे कोई भी पात्र नहीं होते थे जो ज़मीन से उठकर मंच पर बने छेद में से ऊपर उठते हुए दिखलाये जाते। उस समय चार बेंचों को एकत्र करके चौक मंच बना लिया जाता था। उन पर चार पाँच तख्त रख दिये जाते। वे ज़मीन से चार स्पान ऊँचे रहते थे। आसमान से बादल अपने साथ देवदूतों अथवा आत्माओं को लेकर नीचे नहीं

उतरा करते थे। मंच पर एक ऊनी कम्बल, दोनों किनारों पर रस्सी से बाँध कर टँगा रहता था। इसी से सज्जाकक्ष बन जाता था। इनके पीछे संगीतकार होते थे जो बिना गिटार के संकेत के ही किसी प्राचीन लोकाख्यान सम्बन्धी गीत गाते रहते।"

सेरवान्ते आगे बाताता है कि कैसे पेत्रो नवर्रो ने इस दशा में सुधार किया :

"उसने कामेदिया की सेटिंग में कुछ सुधार किया। पोशाकों के लिए एक बोरे का प्रयोग करने के बजाय उसने सन्दूकों और ट्रंकों का इस्तेमाल किया। पर्दे के पीछे से संगीतज्ञों को निकाल कर उसने उन्हें बाहर बैठाया। अभिनेताओं की दाढ़ियाँ हटा दीं, उस वक्त तक कोई भी अभिनेता बिना नक़ली दाढ़ी लगाये रंगमंच पर आ नहीं सकता था। हाँ, ऐसे अभिनेता अपवाद स्वरूप थे जो वृद्ध लोगों अथवा अन्य ऐसे पात्रों की भूमिका करते थे जिनका वेश बदलना ज़रूरी था। उसने रंगमंच यंत्र का आविष्कार किया, बादल और बिजली, चुनौतियों और युद्धों को प्रदर्शित करने की व्यवस्था की। मगर उनके प्रदर्शन में आज जैसा नैपुण्य नहीं था. . .।" [१]

इस वर्णन से हमारी निग़ाह के सामने सड़क के किनारे अथवा बाज़ार में निर्मित एक ऐसे रंगमंच का चित्र आ जाता है जैसा हमने इटालवी 'कामेदिया देल आर्ते' कम्पनी के सम्बन्ध में चर्चा करते समय देखा था और जैसा कि हम फ्रांसीसी रंगमंच की प्रारम्भिक अवस्था का वर्णन करते हुए देखेंगे। यहाँ उठा हुआ चबूतरा कुछ नंगा-सा है; अभिनेता की कम्पनी छोटी है और नाटक भी बिल्कुल प्रारम्भिक है। लोपे दे रुयेदा की रचनाओं की कुछ लिखित सामग्री—वह नाटककार भी था और निर्देशक तथा प्रमुख अभिनेता भी—अब भी प्राप्त है। इनमें से एक का नाम है 'दी ओलिव्ज़।' एक किसान और उसकी पत्नी आज ही लगाये गये ज़ैतून के पेड़ के सम्बन्ध में वातचीत करते हैं। स्त्री की कल्पना के पंख लग जाते हैं और वह देखने लगती है कि इस पेड़ से बढ़कर अनेक वृक्षों का सुन्दर उपवन तैयार हो जाता है। वह सोचती है कि एक दिन उसकी बेटी मनमाने दाम पर,

---

१. ह्यूगो एल्बर्ट रेनर्ट कृत 'दि स्पेनिश स्टेज इन दि टाइम आफ़ लोपे दे वेगा' (न्यू यार्क, १९०९ ई०) से उद्धृत। यद्यपि इस ग्रन्थ का सम्बन्ध एक काल-विशेष से है फिर भी वह स्पेनी रंगशाला पर प्राप्त चंद ग्रन्थों में सब से अधिक दिलचस्प है। शेष जानकारी के लिए स्पेनी साहित्य पर लिखी पुस्तकों को देखना चाहिए। स्पेनी साहित्य सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रंथ हैं—जेम्स फ़िजमारिस-केली कृत 'ए न्यू हिस्ट्री आफ़ स्पेनिश-लिटरेचर, (लन्दन, १९२६) तथा एर्नेस्ट मेरिमी कृत 'ए हिस्ट्री आफ़ स्पेनिश लिटरेचर' (लन्दन न्यूयार्क, । पुनर्वर्द्धित संस्करण, १९३१)

दो 'रियस' प्रति 'पेक' के हिसाब से, ज़ैतून के ढेर के ढेर बेचेगी। किसान सोचता है कि यह भाव तो बहुत महँगा है। माँ बेटी की ओर मुड़ती है और कहती है कि वह दो 'रियल' से कम में ज़ैतून न बेचे। पिता इसका विरोधी हुक्म देता है। उनमें से हर एक उस लड़की से कहता है कि यदि वह दूसरे का हुक्म मानेगी तो ठीक नहीं होगा। इसके बाद वे उस लड़की को सचमुच यह कह कर कि वह उनकी बात मानेगी या नहीं, मारने-पीटने लगते हैं। वह लड़की चीख़ने-चिल्लाने लगती है। शोर-गुल सुनकर एक पड़ोसी आ जाता है। वह पूछता है कि आख़िर बात क्या है? तब उस लड़की के माता-पिता यह स्वीकार कर लेते हैं कि यह सारा झगड़ा उन ज़ैतूनों के लिए था जो अभी रोपे ही नहीं गये।

इतनी साधारण और सादी कहानी, तख़्तों से बने उस मंच के लिए ठीक कही थी जिसमें न तो कोई सेटिंग थी, न विशेष पोशाकें ही थीं। इन नाटकों में 'दृश्यावली' नहीं होती थी, और हर नये नाटक में पोशाक बदलने की भी जरूरत नहीं थी। इनमें सदैव आख्यान-गीतों की भरमार रहती थी। इस प्रकार के 'नाटकों' और गाथा काव्यों में, जहाँ तक उनकी ऋजुता,घरेलूपन और सरल चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है, समता ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नगर-नगर में घूमने वाले गाथा-काव्यों के पर्यटनशील गायकों को मंच-सामग्री की आवश्यकता बहुत कम रहती थी, उसी प्रकार इन नाटकों में भी।

इस कम्पनी में लोपे दे रुयेदा, जो कि पहिले सेवाइल में मशीनों का काम करता था, उसका पुस्तक-विक्रेता मित्र तिमोनेदा, जो नाटक लिखता था और अभिनय भी करता था, और दो अन्य लोग भी थे जो सम्भवतः 'लेखक' थे। इनके नाटक स्पेन की धरती के उतने निकट न थे जितना 'दी ओलिव्स' था। उनमें से कुछ में क्लासिकी चिन्ह मिलते हैं। दूसरे निश्चित रूप से इटालवी प्रभाव वाले हैं। उनमें से कम से कम एक तो अवश्य ही प्लाटस से लिया गया था। मगर निश्चय ही प्रथम और स्वस्थ स्पेनी लोकप्रिय रंगमंच था जिसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से ठोस प्रमाण मिलते हैं।

इस समय दरबार इटालियन ग्रामीणता-परक नाट्य विधाओं का रूपान्तर करके और उनमें कुछ जोड़ घटाकर खेल कर रहे थे। उनमें सर्वत्र कृत्रिमता ही थी और वे महत्वहीन थे। सोलहवीं शताब्दी की अन्तिम चतुर्थी में स्थानीय ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित क्लासिकी-ढंग के दुःखान्त नाटकों की रचना को प्रयास हो रहे थे। १५७४ ई० में भी, अलबर्टो गनासा के नेतृत्व में 'कामेदिया देल आर्ते' की एक श्रेष्ठ कम्पनी स्पेन आयी और उसने राजदरबार में अपने प्रसहन अभिनीत किये। बाद में उसने 'कोरल' अथवा बड़े प्रांगण में बहुसंख्यक दर्शकों के लिए अभिनय प्रस्तुत किया। इस अभिनय

की अत्यधिक प्रशंसा हुई और उसने स्थानीय नाट्य प्रयत्नों को अच्छी तरह प्रभावित भी किया। लोपे दे वेगा को, जो उस समय लड़का ही था, ये ओजस्वी दृश्य और पात्र उस समय भी याद थे जब कि वह स्पेन का सबसे महान् नाटककार बन गया। उस समय क्लासिक–पुनरुत्थान के कारण साहित्यिक नाट्य-विधा में ऐसी कठोरता आ गयी थी जो कि स्पेनिश प्रतिभा के लिए स्वीकार्य न थी, और साथ ही ऐसे मानवतावाद का भी उदय हुआ जो स्वतंत्रता-विरोधी प्रभुता-सम्पन्न चर्च के लिए आवश्यकता से अधिक उच्छृंखलतामूलक थी। इटालवी लोकप्रिय प्रहसन ऐसे तत्व अपने साथ लाये जिन्हें लोपे द रुयेदा तथा उसके जैसी अन्य रचनाओं में आसानी के साथ जोड़-मिला लिया जा सकता था।

इसके अतिरिक्त जो दूसरा महान् व्यक्ति है वह, बहरहाल अपने रुख़ और उपलब्धियों में साहित्यिक अधिक और रंगमंचीय कम है। सेरवान्ते अपनी रचना डान क्विक्ज़ोट के कारण अमर है। निस्सन्देह वह स्पेन का सबसे महान् लेखक है। मगर वह रंगमंच के लिए कोई उत्तम रचना तैयार न कर सका, न वह उसके विकास की धारा को ही मोड़ सका, यद्यपि उसने बड़ी संख्या में नाटकों की रचना की थी। यद्यपि, जैसा कि हमने देखा है, उसने लोपे दे रुयेदा की ईमानदार रंगशाला की प्रशंसा की है, सेरवान्ते ऋजुता, सरलता, नाटकीयता के उन गुणों को पहिचान न सका जिनकी प्रशंसा उसने अपने पूर्वज की कृतियों में की थी। ये वे गुण थे जिनके आधार पर उसे अपनी रचनाओं का निर्माण करना था। सेरवान्ते के शुरु के नाटक, लोपे दे रुयेदा कृत अनगढ़ परन्तु खेले जाने लायक नाटकों के प्रकाश में देखने पर, कमज़ोर, गतिहीन और रंगमंच के अनुपयुक्त मालूम पड़ते हैं। यह हमेशा अनुभव होता रहता है कि वह निरन्तर एक साहित्यिक रचनाकार ही बना रहा। रंगशाला की चमक-दमक से वह आकृष्ट तो हुआ परन्तु उसने इसका उपयोग साहित्य को अधिक व्यापक और स्वीकार्य बनाने के लिए किया। उसने इस कला को, जिसमें शब्द की कम और सक्रियता की अधिक आवश्यकता थी, केवल कला के रूप में ही स्वीकार नहीं किया। उसके अतिरिक्त, वह अपरिवर्तनशील सेनेकावादी प्रभाव में भी था।

एक लम्बे अर्से तक उसने रंगमंच के लिए लिखना बन्द कर दिया। इस बीच लोपे दे वेगा स्पेनिश नाटक का दिशा-निर्धारण करता रहा। मगर सेरवान्ते, जो कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में फिर नवीन नाट्य विधाओं का प्रयोग करने लगा था, अब भी निर्जीव, अलंकारपूर्ण, नाटकों की रचना कर रहा था। उसके उपन्यास, बाद के नाटककारों के लिए चुनने और चुराने के उर्वर क्षेत्र साबित हुये। मगर उसकी नाट्य-

रचनाएँ तो उसकी अन्य महान् कृतियों के साथ गिनने लायक नहीं हैं, वल्कि वे उससे कम प्रतिभा संपन्न अनुगामियों के नाटकों से भी बुरी हैं।

शायद सेरवान्ते को इस बात की जानकारी आवश्यकता से अधिक थी कि इटली और अन्य देशों में साहित्यिक रंगशालाओं का क्या हाल हो रहा है, और वह अपने इस ज्ञान का सामञ्जस्य स्पेन के रंगमंच से नहीं बिठा सका। यद्यपि उसी के समय में मेड्रिड की प्रथम स्थायी रंगशालाओं का निर्माण हुआ, परन्तु उसकी जवानी के दिनों के रंगमंच उसके स्वप्नशील, रोमांचक और अलंकृत नाटकों और परिष्कृत एवं साहित्यिक अभिनयों के लिए सर्वथा अनाकर्षक और उदासी से भरे थे। उस समय की रंगशाला क्या थी—बस कुछ तख़्तों को जोड़ कर बनाया हुआ रंगमंच, सामने ज़मीन पर बैठे हुए दर्शकों की भीड़, और अनगढ़-अपरिष्कृत कथानकों पर निर्मित नाटकों का दिन की रोशनी में अभिनय। 'कोरल' रंगशालाएँ इतनी अपरिष्कृत नहीं थीं, मगर उनके रंगमंच बिल्कुल सादा थे। शायद सेरवान्ते ने इटली की नवीन नृत्य-रंगशालाओं के उत्सवों का स्वाद चख लिया था। इन रंगशालाओं में यात्रा-नाटकों, तड़क-भड़क वाली पोशाकों और यंत्रीकृत चातुर्यपूर्ण कलाबाज़ियों का ख़ूब प्रभाव रहता था। जो भी हो, वह अपनी कला और अपने देश के तत्कालीन रंगमंच में सामञ्जस्य नहीं स्थापित कर सका।

सेरवान्ते के ही समय में एक दूसरा व्यक्ति भी था जिसके भाग्य में लोपे दे रुयेदा तथा उसके पर्यटक मित्रों का उत्तराधिकार प्राप्त करना बदा था। स्पेनी रंगशाला को अपनी प्रतिभा के अनुरूप ढाल लेना भी उसी के भाग्य में लिखा था। लोपे दे वेगा ने पुन-र्जीवित क्लासिकी साहित्यक विधाओं को न केवल झूठी श्रद्धा नहीं अर्पित की : उनके सामने न झुकने की लालसा में वह खुद पीछे की ओर झुक गया। उसने एक बार लिखा "जब मैं नाटक लिखना शुरु करता हूँ तो पहिले नाटक के सभी नियमों को दस ताले में बन्द कर देता हूँ और प्लाटस और टेरेंस को अपने अध्ययन कक्ष से बाहर निकाल देता हूँ। ऐसा इसलिए करता हूँ कि कहीं वे मेरे विरुद्ध चीखने न लगें। मौन पुस्तकों से भी सच्चाई चीख़ पड़ने की आदी है। मैं उन लोगों की शैली में लिखता हूँ जो जनता की वाहवाही लूटना चाहते हैं और जनता अपनी बेवकूफ़ियों का मखौल उड़ते देखना चाहती है; आख़िरकार हमारे प्रदर्शनों का ख़र्च तो वही सँभालती है!"

हर युग में ऐसे लोग होते हैं जो, आमतौर से ख़तरनाक रूप में, "जनता को प्रसन्न करने" के बुनियादी उद्देश्य को सामने रख कर लिखना आरम्भ करते हैं। लोपे दे वेगा ने अपने को उन्हीं के वर्ग में सम्मिलित कर दिया। उसे, इस वर्ग के लोगों से कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई; उसने लोकप्रिय रंगमंच से तत्काल सम्बन्ध ही नहीं

स्थापित किया, जीवन भर निरन्तर वह इसी के लिए लिखता रहा। उसने उस रंगमंच को शालीनतापूर्ण ऊँचाइयों और वैभवपूर्ण उपलब्धियों तक उठा दिया। निश्चय ही उसका उस जनता की अभिरुचियों का ख़्याल रखना जो सनसनी चाहती थी, जो लगातार जातिगत चाटुकारिता की माँग करती थी, कुछ अर्थ रखता था। मगर फिर भी वह एक भी ऐसा नाटक नहीं लिख सका जो इन वर्षों में यूनानी, आंग्ल, फ्रांसीसी, और जर्मन रंगशालाओं के लिए लिखे सर्वश्रेष्ठ नाटकों के साथ जीवित रह सकता। लगे हाथों, उसने सम्भाव्यता, भूगोल, पौराणिक विश्वासों, और इतिहास और कभी-कभी नैतिकता के भी बहुत से नियमों की हाड़ तोड़ दी। सिद्धान्तः और खुले रूप में भी वह क्लासिकी एकताओं का समर्थन करता था, मगर अपनी प्रथम चार सौ छियासी रचनाओं में से केवल छः रचनाओं में उसने इन नियमों का पालन किया।

जो भी हो, लोपे दे वेगा स्वयं एक संपूर्ण युग और देश की रंगशाला बन गया था---ऐसा जैसा कि कोई भी नाटककार कभी भी नहीं हुआ था। ऐसा नहीं कि उसके समकालीन अन्य प्रतिभाशाली और उर्वर मस्तिष्क के नाटककार नहीं थे, सत्रहवीं शताब्दी के स्पेन में नाटकीय जीवन अत्यन्त समृद्ध था। मगर अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण उसने हर प्रकार की नाट्य-रचना का अभ्यास किया और उसके समकालीन रचनाकारों ने जो कुछ लिखा उसकी मूल उद्भावना उसी ने की। उसने मंच को जिस रूप में प्राप्त किया उसी रूप में उसे ग्रहण कर लिया। उसे किसी भी साहित्यिक सिद्धान्त के कारण कोई भी कठिनाई नहीं हुई। मगर उसने स्पेनी नाटक को पहिले एक रूप दिया, फिर उसके ऊपर अपना आधिपत्य जमा लिया; क्योंकि उसने सहज प्रेरणा से ही साहित्यिक विधा और समृद्धि से उसे मण्डित कर दिया। आरम्भ में उसने जो भी रचना की वह लोपे द रुयेदा के उन कथोपकथनों से भिन्न न थी जिनमें नाटकीयतापूर्ण कथा-गीत, विष्कम्भक, काव्य-संवाद और धार्मिक रेखा-चित्र रहा करते थे। मगर उसने ग्राम्य नाटकों, अन्योक्ति रूपकों, पुनरावृत्ताख्यानक नाटकों, सुखान्त नाटकों, प्रहसनों, लबादा पहिन कर और तलवार ले कर खेले जाने वाले रहस्य नाटकों, और वीरतामूलक दुःखान्त नाटकों की रचना की। वह तो स्पेनी रंगमंच का दर्पण ही है। और यदि कोई अन्य नाटककार ऐसा प्रयास न करता तो उसके साहित्य को महान् नाट्य-साहित्य के रूप में याद किया जाता---क्योंकि उसने पन्द्रह सौ ऐसी रचनाएँ लिखीं जिन्हें नाटक कहा जाता है; साथ ही उसने तीन-सौ अन्य रचनाएँ भी तैयार कीं, जिन्हें नाट्य-रेखा चित्र, धार्मिक यात्रा-नाटक, आदि कहा जाता है।

वह स्पेनी रंगशाला का इतना पक्का समर्थक न स्वीकार किया जाता यदि वह, इसके साथ ही, स्पेनी, कुलीन, साहसी और दरबार के इर्द-गिर्द चक्कर काटने वाला

व्यक्ति न होता। अपनी आरम्भिक अवस्था में ही उसने प्रेम और युद्ध के मीठे खट्टे फल चख लिये थे; देश निकाला झेला; आरमेडा के साथ जहाजरानी की; निन्दनीय जीवन व्यतीत किया, घनघोर कैथोलिक बन गया; पोप द्वारा समादृत हुआ और चर्च का नामधारी अध्यक्ष भी बन गया। उसने सामन्तों के बीच अपने लिए स्थान बनाया, और तूफ़ानी सम्मान के बीच जीवन व्यतीत किया और तत्कालीन रंगशाला का नियामक बन गया। यदि उसने आरम्भ में लोगों का मनोरंजन करने वाले नाटक लिखे तो साथ ही उसे यह अवसर भी मिला कि वह अपने नाटकीय विषय-वस्तु में उन भावनाओं को भी पिरोदे और उन आवेगों को भी शामिल कर दे जो प्रतिमोपासक, गर्वीले लोगों को बहुत प्रिय थीं। इससे (सभी चार सौ पचास बची हुई रचनाओं को पढ़े बिना ही) हमें यह तो निश्चय हो ही सकता है कि उसके नाटक सक्रियता और चमत्कारों से भरे हुए हैं; उनके कथानक कल्पना-योजक हैं; गति में तीव्रता है, वर्णन प्रशंसामूलक और रोमांटिक हैं; सम्राट्पद और चर्च-धर्म को ऊँचा चढ़ाया गया है; बीच-बीच में प्रहसन मूलक विष्कम्भक और विनोदी पात्र हैं; आकर्षक नायक और मनमोहने वाली नायिकाएँ हैं। वे सभी पूरी तरह कौशलपूर्ण, चतुर, तीव्रगामी हैं; और उनके मंच की यांत्रिक व्यवस्था ऐसी थी जिसका पता भी तब तक के विश्व-रंगमंच को न था।

निश्चय ही उनकी ख़ामी यह थी कि उनमें वे सौम्य और गम्भीर विशेषताएँ न थीं जो ऐसी ओजस्वी सक्रियता और नाटकीय सहजता में कम ही मिलती हैं। इन नाटकों के अन्तिम अंक अक्सर कमज़ोर हैं। चरित्र-चित्रण में गहराई बहुत कम है, निरलंकृत स्थायी काव्यात्मक प्रभाव की बहुत कमी भी है। वह अनिवार्य क्षण, सजगता-पूर्वक आयोजित भावनात्मक आरोह के बाद अन्त में आत्मा को हिला देने वाला वह दृश्य शायद ही कभी आता हो।

कारणवश, हमें तत्कालीन जीवन के पास फिर वापिस जाना पड़ेगा। उस युग में मारधाड़ उसी तरह सामान्य बात थी जैसा कि पुनरुत्थान कालीन इटली में थी। स्पेन में किसी राजा या कुलीन व्यक्ति के भौतिक लाभ की जगह सम्राट् अथवा चर्च के नाम पर हत्या की जा सकती थी। मगर उस समय मानव जीवन बहुत सस्ता हो गया था। और मानव जीवन के मूल्यों की तरफ़ यह घोर उदासीनता उस कला की सहयोगिनी है जो गम्भीरता की ओर जाने में असफल रहती है। हिंसात्मक संघर्ष के बीच वही नाटक फलता-फूलता है जिसमें द्वन्द्व और शोरगुल अधिक होता है, मगर सौम्यता और आध्यात्मिक रंग का गाढ़ापन बहुत कम होता है। इतना और भी जोड़ा जा सकता है कि गम्भीर स्पेनिश रंगशाला को उस अश्लीलता से काफ़ी मुक्त रखा गया था जो अब भी इटालवी रंगमंच पर यहाँ तक कि शाही रंगशाला में भी बहुतायत से पायी जाती थी।
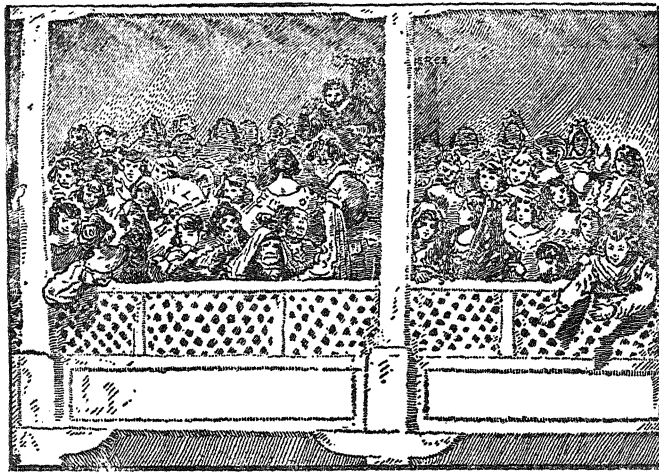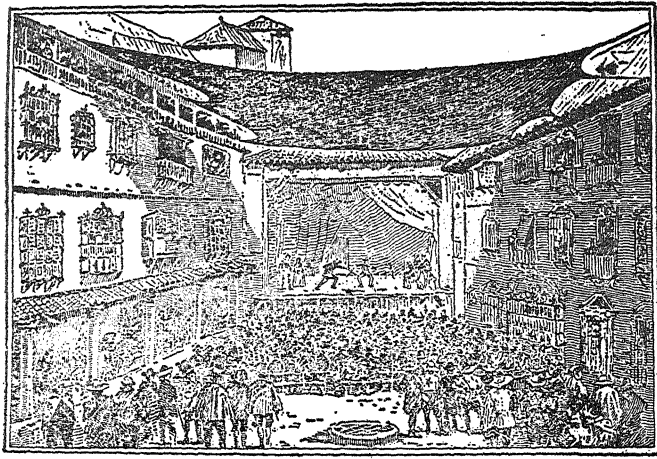
मेड्रिड में, १६६० ई०, में एक सामूहिक नृत्य-रंगशाला की कल्पनामूलक पुनर्रचना। एलिजाबेथ काल में सरायों के प्रांगण में जो रंगशालाएं निर्मित होती थीं उनसे यह रंगशाला काफ़ी मिलती जुलती है। इसमें विशिष्ट व्यक्तियों के बैठने के लिए छज्जे और खिड़कियाँ हैं, जन-साधारण के लिए जमीन पर बैठने की व्यवस्था है। रंगमंच आधा आगे बढ़ा हुआ है, आधे भाग तक पर्दा भी पड़ा हुआ है। ऊपर का शामियाना दृष्टव्य है। नीचे, महिलाओं के लिए बदनाम गैलरी है। इसे कभी-कभी "स्ट्यू" कहा जाता था। बहुत दिनों तक स्पेन की लोकप्रिय रंगशाला की यह एक विशेषता रही है। ('टेन स्पेनिश फ़ार्सेज' से जिसका संपादन जार्ज टाइलर नार्थप ने किया था।)

लगता है, एक स्वाभाविक मर्यादाशीलता ने नाटककार और अभिनेता दोनों को एक सच्ची समीचीनता प्रदान की। प्रेम के स्थूल आवेग से सम्बन्धित ऐसी बातें हैं और व्यक्ति की कुछ ऐसी रोचक समस्याएँ भी हैं जिनका भद्दा प्रदर्शन इटलीवासी कुछ अवसरों पर करता है और जिसकी ओर फ्रांसवासी केवल उड़ता-उड़ता आकर्षण प्रदर्शित करता है। मगर तत्कालीन "उच्चतर" स्पेनिश मंचों पर न तो पेशाब करने के बर्तन ही दिखाये जाते थे, न नवविवाहितों की सेज ही। सड़क के किनारे की रंगशालाओं की स्थिति कुछ दूसरी हो सकती थी––संगीत नाट्य रचनाकारों और और नर्तकियों की भी कहानी चाहे जैसी हो––और लोपे दे वेगा ने कभी-कभी इनके लिए भी लिखा।

लोपे के समकालीन कई एक लिक्खाड़ और योग्य नाटककार थे, मगर उनमें से कोई भी ऐसा न था जो उसकी सफलताओं के सामने पराजित न हो गया हो। रुइज़ दे अलारकन (जो कि सचमुच मेक्सिकोवासी था),गुइशलन दी कास्त्रो, जिसने ऐसे नाटक लिखे जिनके आधार पर कार्नेल ने अपना युगान्तरकारी 'किड' लिखा,पेरेज़ दे मोन्तालवां, और तिरसो दे मोलिना, जिसके बारे में आमतौर से यह समझा जाता है कि उसने, अब सारे संसार में विख्यात, डान जुआन नामक पात्र की रचना की, अनेक नाट्य-रचनाकारों में ये कुछ विशिष्ट लोग हैं। यदि ये लोग लोपे दे वेगा के समकालीन और काल-देरों के कुछ पहिले के न होते तो अधिक निकट से हमें इनकी रचनाओं का अनुशीलन करना पड़ता। उनके कुछ नाटकों के शीर्षक यह बताते हैं कि वे अपने महान् समकालीन नाटककार के प्रतिमानों का अनुसरण कितनी निकटता के साथ कर रहे थे। 'दी डिसीवर आव सेवाइल,' 'डानगिल इन दी ग्रीन ब्रीचेज़,' 'दी यूथफुल ऐडवेंचररर्स आव दी किड,' 'मिसमैचेज़ इन वेलेंशिया,' 'दी लवर्स आव तेरुअल,' 'मर्सी ऐण्ड जस्टिस,' 'ए वैशफुल मैन ऐट कोर्ट,' 'और डबल डेन्जेयेंस।'

इस युग की स्पेनिश रंगशाला की परिपाटी में सेटिंग के परिवर्तन की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता था। लोपे दे वेगा तीन 'दृश्यावलियों' आगमन से बहुत अधिक चिढ़ता था। कपोपकथन से ही दृश्य परिवर्तन की सूचना मिल जाती थी; या सिर्फ़ पात्रों को मंच पर देख कर और उनके कार्यकलापों से ही वह जान जाता था कि आगे कौन-सा दृश्य आने वाला है। लोकप्रिय अथवा जनता के लिए खुली रंगशालाओं में दृश्यावली का कहीं पता नहीं रहता था। नाटकों की भाषा से ही उसकी शोभा बढ़ जाती थी। बोली जाने वाली स्पेनी भाषा में एक असामान्य कर्णप्रियता रहती थी। हाँ, इतना ज़रूर है कि इन नाटकों में गीतात्मक कमनीयता के कारण शब्दालंकार की भरमार रहती थी। ढीले ढंग से गठित नाटकों के घोर गद्यात्मक अंशों के बीच-बीच में अक्सर बहुत अलंकृत और अत्यन्त लच्छेदार वाक्यावलियों का प्रयोग होता था। नाटक

क्या था—बस उसमें एक के बाद दूसरे दृश्य, एक प्रकार के बाद दूसरे प्रकार के दृश्य जोड़ दिये जाते थे ! जिस प्रकार यूनानियों ने नाटकों के विभिन्न दृश्यों को यत्नपूर्वक ग्रथित करके, एकता स्थापित करके उन्हें स्थायी बनाया था, वैसा यहाँ नहीं होता था। एलिज़ाबेथयुगीन अंग्रेज और फ्रांसीसी नाटककारों ने फिर से ऐसा किया। जिस समय लोपे दे वेगा की प्रौढ़ रचनाएँ लिखी जा रही थीं, उस समय साम्राज्ञी ऐलिजाबेथ का युग अच्छी तरह आरम्भ हो गया था। उस समय एक ही नाटक में जिस पद्य का प्रयोग होता था, उसमें अनेक छंदों का समावेश रहता था, यहाँ-वहाँ गद्यात्मक अंश तो रहते ही थे।

स्पेनिश रंगमंच पर जिस प्रकार अभिनय होता था वह तेज़ी से बढ़ती कथानक की घटनाओं, लच्छेदार वक्तृताओं से युक्त भाव-भंगिमा और उच्छृंखल चरित्र-चित्रण के सफल आच्छादन के सर्वथा अनुकूल था। युरोप के किसी भी अन्य देश में ऐसी ज़ानदार, ओजस्वी, प्रभावशाली अभिनय की परम्परा नहीं थी। यहां तक इटालवी लोग भी इस अभिनय को इसकी सजीवता और प्रेरकता के कारण अद्वितीय मानते थे।

शायद सबसे अधिक प्रिय और सबसे अधिक प्रतिनिधि नाट्यविधा 'क्लोड-एण्ड-सोर्ड' नाटक की थी। इसका ऐसा नाम मुख्य कथानक के लिए चुने गये पात्रों के ही कारण पड़ा था। कथानक चाहे जितना गम्भीर अथवा दुःखान्तकारी हो, उसमें अन्तर-घटना के रूप में कोई न कोई कथानक अवश्य रहता था जिसमें 'मनोरंजन' करने वाले पात्र रहते थे। विनोदी ग्रेशियोसो ही निश्चित रूप से स्पेन की रंगशाला के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण पात्र है। वह नौकर है, विदूषक है; उसके समूहगान से नाट्य-क्रिया में और भी अधिक हास्य उत्पन्न होता है; वह अपने मालिक की कथनी और करनी की असंगति को खोलकर सामने रख देता है, लगातार टिप्पणियाँ करता रहता है, कभी-कभी दार्शनिकता की बात भी कह डालता है; वह मुख्य पात्रों और नाटक के लिए ठीक वैसे ही है, जैसे डान क्विक्ज़ोट के लिए सांचोपांजा है। शायद छद्म-वेशी राजा ही वह 'साधन' है जिससे नाटकीय गाँठ खुलती है।

एक तरफ़ जहाँ लोपे दे वेगा और उसके साथियों ने अपनी विधा का उपयोग जनाभिरुचि की संतुष्टि के लिए किया तो दूसरी ओर उन्होंने मौक़े-मौक़े पर चर्च को भी सन्तुष्ट रखने की कोशिश की। लोपे की लगभग चार सौ नाट्य-रचनाएँ 'आटो साक्रा-मेन्टल' है। यह एक प्रकार चेहरे धारण कर खेलने वाले नाटक थे जिनमें मंगलाचरण होता था, प्रहसन होता था और धार्मिक रूपक होते थे। ये 'कारपस क्रिस्टी' के जुलूसों के समय चलती गाड़ियों पर अभिनीत होने के लिए रचे जाते थे। इनका सम्बन्ध

सम्भवतः युकेरिस्ट से ही रहता था। अपने समय में ये 'धार्मिक नाटक' काफ़ी बँधे-सधे नहीं रह गये थे; इनमें ऐसी बहुत सी मिलावट भी रहती थी जिससे दर्शकों की भीड़ का मनोरंजन होता था। मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि चर्च ने इसके लिए अनुमति दे दी थी। चर्च चाहता तो उसका दमन भी कर सकता था।

मुख्य 'आटो' के आगे एक सजा-बजा जुलूस चलता था जिसमें शायद दानव, देव आदि रहते थे। इसके पीछे गायकों, नर्तकों, एक मन्डप के नीचे 'होस्ट' के लिये पुरोहितों, राजा और दरबारियों का दल रहता था। सबसे पीछे अभिनेताओं की गाड़ियाँ रहती थीं। एक खुले मंच के सामने यह जुलूस रुक जाता था, भीड़ घुटनों के बल झुकती थी, धार्मिक कृत्य किये जाते थे और उसके उपरान्त अभिनय का कार्यक्रम शुरु होता था। सबसे पहिले नाटकों की भूमिका होती थी : शायद नाटक देखने के लिए गाँव से आया हुआ एक किसान मंच पर आता था। उसकी बीबी इसी भीड़ में कहीं खो गयी है। वह निश्चय करता है कि उसे अब ढूँढ़ना बेकार है। और वह दूसरी स्त्री को लेकर ही संतोष करने जा रहा है कि उसकी पत्नी मिल जाती है। तब वह उसे उस विस्मयकारी जुलूस का वर्णन सुनाती है जिसे उसने देखा था। निस्सन्देह वही जुलूस है जिसे दर्शकों ने अभी देखा है। इसके बाद एक प्रहसन प्रस्तुत किया जाता है। यह लोपे दे वेगा की कोई एक कहानी है, जो पियरे पाथेलिन से भिन्न नहीं है। इसमें एक किसान की कहानी है जो एक विचक्षण बुद्धि वाले वकील को बुद्धू बना देता है, और अन्धे आख्यान-गायक छद्मवेशी भिखमंगे की शक्ल बनाकर निकल भागता है। निस्सन्देह वह अपनी कला का एक उदाहरण जनता के सामने प्रस्तुत करके चला जाता है।

स्वयं 'आटो' नाम मात्र का धार्मिक रेखा-चित्र है। लोपे दे वेगा की ही रचनाओं से एक उदाहरण लें हम कल्पना कर लें कि अभिनेता 'दी ब्रिज आव दी वर्ल्ड' नाटक को प्रस्तुत कर रहे हैं। तमस का सम्राट् लेवायथन को ("हेल माउथ" बाइबिल के लेवा-यथन—या कम से कम उसके जबड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं है) संसार के पुल पर डाल देता है। बिना सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार किये कोई उधर से गुजर नहीं सकता। "फ्रांसीसी फ़ैशन के अनुसार बहुत अच्छे वस्त्र धारण किये" आदम और हौवा इस बात को स्वीकार कर लेते हैं और उस पुल पर से हो कर जाते हैं। बाइबिल के दूसरे परिचित पात्र मूसा, डेविड सालोमन—सभी चुपचाप इस स्थिति को स्वीकार कर लेते हैं। मगर इसके बाद 'नाइट आव दी क्रास' आता है। वह तमस के सम्राट् को मार भगाता है और 'मनुष्य की आत्मा' के लिए संसार का मार्ग खोल देता है। इसके बाद कोई नृत्य होता है या गाने गाये जाते हैं।

लोपे दे वेगा ने अगणित दूसरे धार्मिक रेखा चित्र और नाटक लिखे। इनमें वे

चमत्कार नाटक भी शामिल थे जो कि संतों के जीवन पर आधारित थे। उनमें से कुछ बाइबिलवादी नाटक भी थे। इनकी रचना उन्होंने उन दो वर्षों में की जब कि मरणासन्न फ़िलिपि द्वितीय ने १५९८ में धार्मिक नाटकों के अतिरिक्त अन्य सभी मनोरंजनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। मगर नाटक में सामग्री चाहे जैसी रही हो, उसका रूप भी चाहे जैसा रहा हो, वह सदैव जनता के निकट बना रहा, सदैव लोकप्रिया रहा, और किसी तरह सदैव स्पेनी रहा। प्रतिबन्ध के दिनों मैत्री, नाटक के तड़क-भड़क वाले और पाप-मूलक तत्वों का दमन करने की बजाय धार्मिक नाटकों को भी लोकप्रिय और लोक रंजनकारी बनाने की प्रकृति बनी रही। इन्क्वीज़िशन की जो भयानक छीछालेदर हुई वह और कहीं उतनी स्पष्ट नहीं थी जितनी इन रंगशालाओं और इस साहित्य में उसकी उपेक्षा द्वारा हुई।

जहाँ तक नाटक के किसी भी विभाग में आचार्यत्व का सम्बन्ध है, एक ही अन्य स्पनी नाम है जो लोपे दे वेगा से आगे बढ़ता है। कालदेरों अथवा अधिक लोकप्रिय 'पेद्रो कालदेरों दे ला बारका' आम तौर से उससे बड़े कवि के रूप में याद किया जाता है। उसमें स्वतः प्रेरणाओं और नवोन्मेषों की कमी है; उसने लोपे की तुलना में कम लिखा भी है (उसने केवल सौ रचनाएँ प्रस्तुत कीं)। मगर कालदेरों अधिक कल्पनाशील और अधिक समृद्धिशाली लेखक है। वह प्रत्येक अंश में स्पेनी है। वह भी सैनिक, सामन्त, और चर्च का उत्साही तथा कट्टर भक्त रहा है। उसके पूर्ववर्ती नाटककारों में और रंगशालाओं में जितनी भी विलक्षणता और रोमांटिक विशेषताएँ रही हैं उन सब को उसने ग्रहण किया था। मगर अपने दुःखान्त नाटकों में वह अधिक गहराई में उतरता है और नाटकीय अस्थि-पंजर को अधिक शृंगार-प्रसाधन सम्पन्न बनाता है, खूब अच्छी तरह सजाता है। स्पेनिश दुःखान्तक—काव्य अथवा दुःखान्त प्राय काव्य की ऊँची-से-ऊँची उड़ान का रस लेने के लिए हमें 'दी कांस्टेंट प्रिन्स' (डान फर्डिनेंड आव पोर्चुगल), 'लाइफ़ इज़ ए ड्रीम,' 'दी मेयर आव ज़लामिया,' 'लव सर्वाइब्ज़ लाइफ़' अथवा 'फिज़ी-शियन आव हिज़ ओन आनर' का अनुशीलन करना पड़ेगा।'

इस अन्तिम नाटक की कहानी उस 'प्रतिष्ठा की समस्या' का उदाहरण है —यह अतिशय और औपचारिकता-पसन्दी तो हत्या तक को क्षमा कर देती है—जो स्पेनी नाटक और प्रणयलीला का इतना प्रिय विषय है। डान गुतेरे दे सोलिस ने एक सभ्रान्त महिला से विवाह किया था। वह महिला वचन और कर्म दोनों से उसके प्रति सच्ची है। सम्राट् का भाई विवाह के पहिले से उसे प्यार करता था। एकाएक उसकी भेंट उससे हो जाती है और उसका पुराना प्यार फिर जाग्रत हो उठता है। ऐसा होता है कि उसके पति को सन्देह होने लगता है। जितना ही वह अपने पति के सन्देह और

ग़लतफ़हमी को दूर करना चाहती है उतना ही डान गुतेरे को उसकी चरित्रहीनता के सम्बन्ध में संदेह दृढ़ होता जाता है। उसे वह जीवित रहने के लिए केवल दो घण्टे का अवकाश देता है। इस अवकाश में वह पवित्र मृत्यु के लिए अपने ऊपर मोमबत्तियाँ लगा कर और क्रास रख कर लेट जाती है। डान गुतेरे एक सर्जन को ले आता है। वह सर्जन उसके शरीर से जीवन-रक्त निकाल लेता है। मगर यह सर्जन इस घर को पहिचानने के लिए उसके दरवाज़े पर अपने ख़ूनी हाथ का धब्बा लगा देता है, और सीधे सम्राट् के पास जा कर समाचार सुना देता है। सम्राट् उस घर पर आता है। डान गुतेरे स्वयं अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपनी स्त्री की मृत्यु का कारण एक घटना को बता देता है। सम्राट् आदेश देता है कि वह उस लियोनोरे से विवाह कर ले जिससे वह थोड़ा बहुत पहिले से ही सम्बद्ध है और जो वहीं मौजूद भी है। देर सिर्फ़ इस बात की है कि डान गुतेरे की यह इच्छा है कि इस बात में कोई संशय न रह जाय कि यदि फिर ऐसी कोई घटना घटी, जिसके बारे में पूरी बात सम्राट् को नहीं मालूम है, परन्तु जिसे ज्यों का त्यों मान लिया गया है, तो वह अपने सम्मान की रक्षा कर सकेगा। अन्तिम अंश का अनुवाद तिकनोर ने इस प्रकार किया है :—

सम्राट्

हर पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है।

डान गुतेरे

ऐसे पाप का भी प्रायश्चित्त ?

सम्राट्

हाँ, गुतेरे।

डान गुतेरे

मेरे प्रभु वह क्या है ?

सम्राट

यह तो आप ही बता सकते हैं, महाशय!

डान गुतेरे

मगर वह है क्या ?

सम्राट्

ख़ून !

डान गुतेरे

सम्राट के इस शब्द का अर्थ क्या है?

सम्राट्

सिर्फ़ यह, और कुछ नहीं, अपने दरवाज़े को धो डालो। उस पर एक ख़ूनी हाथ का धब्बा है।

डान गुतेरे

मेरे प्रभु, जब भी लोग ऐसा काम करते हैं तो
उनके हाथ के धब्बे उनके दरवाज़ों पर लग ही जाते हैं।
प्रभु ! मैंने जो कुछ किया, अपने सम्मान की रक्षा के लिए किया,
मेरे दरवाज़े पर लगे ख़ूनी हाथ के धब्बे प्रमाण हैं कि मेरी आबरू को जो बट्टा लगा था
उसका बदला चुक गया।

सम्राट्

तो तुम लियोनोरे को अपना हाथ दो
मैं जानता हूँ, अपने सतीत्व के कारण, बहुत पहिले से ही वह उसकी अधिकारिणी है!

डान गुतेरे

लीजिए प्रभु, मैं अपना हाथ देता हूँ।
लेकिन इतना याद रहे लियोनोरे
मेरा हाथ खून से नहाया हुआ है।

लियोनोरे

मुझे इसकी पर्वाह नहीं;
इस दृश्य को देखकर न तो मैं डरती हूँ, न विस्मय करती हूँ।

डान गुतेरे

और यह भी सोच लो कि यदि एक बार मैंने अपनी आबरू को बचाने के लिए खून चूसा है तो दुबारा भी मैं इस काम से बाज़ आने वाला नहीं ।

लियोनोरे

नहीं, नहीं; बल्कि यह कि अगर
मैं बदचलन साबित होऊँ
तो उसकी भी दवा इसी तरह करना।

डान गुतेरे

तो लो, मैं अपना हाथ देता हूँ
मगर अपना हाथ देता हूँ, केवल इसी शर्त पर!

विपुल मात्रा में गम्भीर स्पेनी नाटक में जो त्रुटि है, उसका शायद इससे अच्छा उदारहण नहीं मिल सकता था। यहे, एक ऐसी त्रुटि अथवा मिथ्याबादिता है जो अक्सर महान् कार्यों और शौर्यपूर्ण त्यागों वातावरण को विषैला बना देती है। एक आचार संहिता को उचित साबित करने के लिए मानवीय तत्व को इसी प्रकार अच्छादित कर देना पड़ता है।

इस बात पर एक अन्य उद्धरण से और भी अधिक प्रकाश पड़ सकता है। इसमें संक्षेप में, स्पेनी नाटक का सर्वश्रेष्ठ और गर्हित दोनों अंश मिल जायँगे यह, 'दी मेयर आव ज़ालामिया' के अन्तिम अंक में इज़ाबेल का एक एकान्तिक स्वगत कथन है : एडवर्ड फिट्ज़ेरल्ड ने, मूल पद्यात्मक अंग्रेजी अनुवाद से परितोष कर सकने के कारण इसका अनुवाद गद्य में इस प्रकार कर दिया है :

ओह, अब कभी इज़ाबेल, कभी दिन का उजाला न होगा और कभी उस उजाले में मुझे अपनी निर्लज्जता न देखनी पड़ेगी ! ओ विलुप्त होते प्रातःकालीन नक्षत्र, तुम कभी उस उषा के सामने पराभूत न होना जो तुम्हारे निरभ्र नीले छोरों पर अपना प्रभाव फैलाती चली आ रही है। और तुम, ओ महान् वृत्त, तुम समुद्र के शीतल गाझ के नीचे ठहरे रहो; एक बार तो निशान्धकार के काँपते साम्राज्य को तुम अपने ऊपर छा जाने दो; तुम एक बार तो अपनी स्वेच्छित शक्ति पर जोर देकर मानवीय पीड़ा और प्रार्थना को सुन लो, उस पर दया करो ! तुम उस पाप कर्म का उद्घोष करने के लिए दौड़ मत पड़ो जिसे प्रतिहिंसा की भावना के कारण नियमित ने मनुष्य के अपराधी इतिहास में दर्ज कर दिया है। अफ़सोस, इधर मैं यह सब कह रही हूँ और उधर तुम अपना तेजोद्दीप्त और क्रूर चेहरा पहाड़ियों के ऊपर उठा रहे हो। हाय, हन्त ! अब मैं क्या करूँ ? अपने काँपते-पाँवों को किधर मोड़ूँ ? क्या अपने घर वापिस चली जाऊँ। और अपने उस बूढ़े बाप के पास चली जाऊँ जिसके जीवन का एकमात्र आनन्द और सुख यह था कि वह अपनी निष्कलंक आबरू को मेरे अन्दर निष्कलंक रूप से प्रतिच्छादित देखना चाहता था; और जिसे मैंने---और यदि मैं वापिस न जाऊँ तो मैं उस निन्दा को छोड़ जाऊँगी जो मेरी अबोधता को ही मेरी अपनी लज्जाहीनता की सहभागिनी बना देगी ! हाय, मैं अपनी मरी हुई मर्यादा की लाश पर जुआन द्वारा अपनी ही हत्या कराने के लिए क्यों ठहरी रही। मगर मैं उसके हाथों मरने के लिए भी उसकी आँखों से आँखें नहीं मिला सकी। अफ़सोस !---सुनो ! यह शोर कैसा हो रहा है ?

क्रेस्पो (भीतर ही)

ओह, दया करके मेरा वध अभी कर दो !

इज़ाबेल

तो क्या मेरी ही तरह यहाँ भी मौत की पुकार हो रही है ?

क्रेस्पो

चाहे तुम कोई भी हो—

इजाबेल

वह आवाज़ !

(प्रस्थान)

जब हम कालदेरों को कवि की हैसियत से लोपे दे वेगा से ऊँचा रखते हैं तब हमें यह याद रखना चाहिए कि उसकी यह उत्कृष्टता विशेषतया साहित्यिक दृष्टि से ही है। लोपे, रंगमंच के शिल्प में इतना अधिक कुशल है, नाटकीय विधाओं का इतना बड़ा रचनाशील-अनुसंधानकर्ता है कि यह प्रश्न ही नहीं उठता कि रंगमंच के इतिहास में कौन व्यक्ति बड़ा है; कौन व्यक्ति संसार की दृष्टि में स्पेनी रंगशाला का विशिष्ट प्रतिनिधि है !

कालदेरों के समकालीनों में आगस्तिन मोरेतो भी था जिसने (किसी अंश तक लोपे दे वेगा की रचनाओं से चोरी करके) 'डिस्डेन अगेंस्ट डिस्डेन' नामक नाटक लिखा। इस नाटक को अकसर अनूदित किया गया है। इंगलैण्ड में उस युग में जैसा मानवीय नाटक रचा जा रहा था अथवा स्पेन में जब कभी भी ऐसी रचना के लिए प्रयास किया गया था, प्रस्तुत प्रयास प्रायः वैसा ही था। अनेक लोगों ने लोकप्रिय रोमांटिक परम्परा को जारी रखा; दूसरे लोगों ने अन्य देशों से आयी शैलियों में रचनाएँ की यद्यपि इन रचनाओं में खोखलापन अधिक था। और एक आपेरा (गीति–नाट्य का भी आयात किया गया——यहाँ तक कि कालदेरों ने भी संगीत को ही अपने मस्तिष्क में रख कर कुछ रचनाएँ तैयार कीं। इटालवी दृश्यावलियों और नृत्य रंगशालाओं का भी प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु कालदेरों के उपरांत केवल नाटक के अत्यन्त लोकप्रिय रूपों का और उनके सस्ते पक्षों का ही गम्भीरतापूर्वक प्रचलन रहा। ऐसा इसलिए कि उस राष्ट्र का राजनीतिक पतन बहुत तेज़ी के साथ हो रहा था और जीवन और साहित्य से प्राचीन प्रोज्ज्वलता लुप्त हो गयी। जनता का रंगमंच इतना सशक्त था कि उसका लोप हो ही नहीं सकता था। १६७५ तक मेड्रिड में चालीस रंगशालाएँ निर्मित हो चुकी थीं। और देश में नाट्यपरक प्रयासों के लिए पर्याप्त उत्साह था। मगर उसे फिर ऊपर उठाने के लिए किसी नवीन लोपे का उदय नहीं हुआ; वरन् स्वयं नाटककार उसी के स्तर तक झुक गये। अठारहवीं शताब्दी में, सिद्धान्तवादियों ने प्रयत्न किया कि क्लासिकी

रचना को फिर से फ्रांसीसी विधा के अनुसार आरम्भ किया जाय। कुछ लोगों ने तथा-कथित 'यूनानी' नाट्यशाला का सामञ्जस्य स्पेन की राष्ट्रीय विधा के साथ उसी रूप में करना चाहा जिसका उदाहरण सत्रहवीं शताब्दी के आचार्यों में मिलता है। मगर ऐसा हो न सका। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल के बीच (१६८१ में कालदेरों का देहान्त हो चुका था) स्पेन की रंगशालाओं में ऐसा कुछ नहीं हुआ था जिसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हो सके।

स्पेन का रंगमंच, दो सौ वर्षों तक, उतना ही सजीव और सक्रिय रहा जितना कि युरोप के किसी भी देश में रहा। उस युग में उसने ऐसे राष्ट्रीय नाट्य साहित्य का विकास किया जो अत्यन्त उत्कृष्ट एवं विशिष्ट है। परन्तु यदि पठन-अनुशीलन की दृष्टि से देखा जाय और अनूदित करने एवं पुनरुज्जीवित करने की दृष्टि से इसका मूल्यांकन किया जाय तो इस विपुल सामग्री में से बहुत कम ही हाथ लग पायेगा। स्पेन संसार को ऐसी कृतियाँ प्रदान नहीं कर सका। जो अखिल संसार की जनता को अपनी सार्व-भौमिकता, मानवता और अनिवार्यता के कारण आन्दोलित-विकलित कर सकता। स्पेनी नाट्य रचनाओं की विशेषता यह है कि वे अपने दर्शकों में अपने लिए दिलचस्पी पैदा कर सकती थीं, उनका मनोरंजन कर सकती थी, उन्हें अचम्भे में डाल सकती थीं, उनकी चाटुकारिता कर सकती थीं; और यह कि वे एकाएक समृद्धिशाली हास्य-विनोद, कारुणिक भावना और गीतात्मक उन्मेष का सृजन कर सकती थीं। मगर उनमें सौम्यता, और भावनाओं की स्थायी गहराई नहीं थी।

कालदेरों ने अपने एक नाटक के एक पाद-बन्ध में चार पंक्तियाँ लिखी थीं जिनका अनुवाद तिकनोर ने इस तरह किया था :

यह पेड्रो कालदेरों का नाटक है
जिसके दृश्यपट पर आपको सदैव
एक सुन्दर रमणी या गुप्त प्रेमी मिलेंगे
अत्यन्त चतुराई से छद्म वेश धारण किये।

और, निश्चय ही संपूर्ण स्पेनी दृश्य की यही टकसाली सामग्री है : लुका-छिपी, कमनीय रमणियाँ, प्रणयीजन, छद्मवेश, और चातुर्यपूर्ण रचना !

अध्याय १२

शेक्सपियर

१५५८ ई० में जब एलिज़ाबेथ राजसिंहासन पर बैठीं तो पुनरुत्थानकाल की प्राणद वायु का प्रभाव इंगलैण्ड के ऊपर साधारण ही था। इटालवी अभिरुचि.का एक सम्राट वहाँ पहिले ही हो चुका था जिसका नाम था हेनरी अष्टम। मगर उसने संगीत और चेहरा-लगा कर अभिनय करने की अतिशय मूल्यवान कला को चाहे जितना भी प्रोत्साहित किया हो, नाटचाभिनयों को लोकप्रिय बनाने और उनके स्तर को ऊंचा उठाने के लिए और अधिक गम्भीर बौद्धिक अनुसंधान के लिए कुछ भी नहीं किया। शायद वह राजनीति में अत्यधिक व्यस्त था—आंग्ल चर्च को रोम के आधिपत्य से मुक्त करना धार्मिक से अधिक राजनीतिक कार्य था—वह इतना अधिक व्यस्त था कि उसे इसके लिए अवकाश ही न मिला कि अपनी जनता को उन इटालवी उपलब्धियों को ग्रहण करने के लिए उत्तेजित करता जिन्हें वह इतना पसन्द करता था। जब एलिज़ाबेथ साम्राज्ञी बनीं तो उस समय लन्दन में एक भी रंगशाला नहीं थी, ग़ैर-पेशेवर नाटचाभिनय पेशेवर नाटचाभिनयों से अब भी अधिक महत्वपूर्ण थे और चमत्कार-नाटकों तथा 'मोरालिटीज़' (नीति प्रधानता) का युग अभी समाप्त नहीं हुआ था। फिर भी इसके पचास वर्ष के ही भीतर ही हम ऐसी रंगशाला का उद्भव देखेंगे जिससे आगे जहाँ तक भावना और उपलब्धियों का प्रश्न है—संसार की कोई भी रंगशाला नहीं बढ़ सकी। इस युग में जो नाटच-रचनाएं निर्मित हुईं, आने वाली पीढ़ियों के लिए, उनकी महत्ता शाश्वत बन गयी। निश्चय ही, हम अब एक ऐसे स्थल पर पहुँच गये जब कि संसार की सब से अधिक ओजस्विनी (और यूनानियों के सहित) महती रंगशाला का निर्माण हुआ।

एलिज़ाबेथ के राज्य में जो प्रोत्साहन इस काल को मिला वह अधिक व्यापक राष्ट्रीय और आर्थिक विकास का आन्तरिक अंग था। पुनरुत्थान ने मनुष्य के मस्तिष्क

को सत्ता से जो मुक्ति दी वह परोक्ष रूप में मुद्रणकला के अन्वेषण में प्रतिफलित हुई, और फलतः ज्ञान का व्यापक विस्तार हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्वेषणों और अनुसंधानों का एक ऐसा युग आरम्भ हुआ जिसने संसार का नक्शा ही बदल दिया, भूमध्य सागर में व्यापार-वाणिज्य एवं सांस्कृतिक यातायात का जो केन्द्र था वह सदा के लिए छिन्न-भिन्न हो गया, और वह सागर अब नवीन युरोपीय अमेरिकी संसार का केन्द्र नहीं, किनारा भर रह गया। अभिव्यक्ति और विस्तार के इस उत्तर-पुनरुत्थान कालीन युग में विकास की ज्योतिशिखा इटली से स्पेन और स्पेन से इंगलैण्ड पहुँची। एलिज़ाबेथ के राज्यकाल में जो अपेक्षा-कृत शान्ति रही उसमें अन्य लोगों से कहीं अधिक अंग्रेजों ने इस ज्योतिशिखा को अधिक प्रोज्ज्वल बना कर जलाये रखा। रंगशाला में तो यह ज्योतिशिखा सब से अधिक ज्योतित और दीप्तिमान् रही।

लन्दन में यदि १५५८ ई० में अथवा उसके अठारह वर्ष बाद तक कोई रंगशाला नहीं थी तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उस समय नाटक सम्बन्धी कोई सक्रियता भी नहीं थी। नाटच संघों ने अपने अभिनयों को बिलकुल बन्द नहीं कर दिया था। इस युग में पेशेवर पर्यटक दलों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी; स्कूलों और विश्व-विद्यालयों में लैटिन (लातीनी) नाटक, इटालवी नाटकों के अनुवाद और देसी नाटक भी अभिनीत होते थे, दरबारों में इतालवी चेहरे लगा कर किये जाने वाले अभिनयों और इसी प्रकार के स्थानीय अभिनयों तथा कभी-कभी बाहर से आये पेशेवर दलों के लिए भी थोड़ी बहुत रुचि थी। स्वाँगोपम नाटकों के अभिनय के लिए नगर अधिकारी ज़िम्मेदार होते थे। विशेषतया ये अभिनय उस समय होते थे जब किसी सम्राट का आगमन होता था, अथवा जब लार्ड मेयर का प्रवेश-संस्कार संपन्न होता था।

हमने पहिले ही देख लिया है कि किस प्रकार चमत्कार नाटकों के विनोद-मूलक तत्वों ने (अथवा यदि आप चाहें तो कह सकते हैं विनोदों की ठूँस-ठास ने) उन वाक्चातुर्य पूर्ण विष्कम्भकों के लिए रास्ता साफ़ किया जो उतने ही धर्म निरपेक्ष थे जितने जान हेउड के। 'मोरालिटी' नाटक भी अब 'क्रानिकिल्स' नाम की विधा में परि-वर्तित हो रहे थे। मोरालिटी और क्रानिकिल के बीच एक संक्रमणमूलक विद्या उन नाटकों में प्रस्फुटित हुई जो राजनीतिक उद्देश्य से लिखे जाते थे; उदाहरण के लिए 'अपान बोथ मैरेज़ेज आव दी किंग' और 'किंग जान' हैं जिनमें से (डीशन या राजद्रोह) नाम का पात्र सम्भवतः आर्कबिशप आव केण्टरबरी का प्रतिनिधित्व करता था, यूज़र्फ पावर (अपहृत सत्ता) पोप का, और इम्पीरियल मैजिस्टी सम्राट का प्रतिनिधित्व करता था, आदि)। ऐसे भी नाटकों उदाहरण मिलते हैं जिनके शीर्षक से ही उनके उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं : 'दी थ्री लाज़ आव नेचर,' 'मोज़ेज ऐण्ड क्राइस्ट,' 'करप्टेड

वाइ दी 'साडेमाइट्स', 'फ़ेरिसीज़ ऐण्ड पेपिस्ट्स ।' (यह अन्तिम नाटक सोलहवीं शताव्दी के आरम्भिक काल का है। इसमें कुछ पात्रों की वस्त्र-सज्जा के सम्बन्ध में यह निर्देश मिलते हैं : 'आइडोलेटरी (मूर्तिपूजा) को बूढ़ी जादूगरनी की तरह, साडोमी को सभी सम्प्रदायों के साधुओं की तरह, ऐम्बीकियन को विशप की तरह, कवेशसनेस (लोलुपता) को पोप पंथी डाक्टर की तरह, हिपोक्रेसी, (ढोंग) को पुरानी कड़ाही के रंग में (सजाओ) । यदि हम इस बात का पता लगाने लगे कि कैसे इस प्रकार के नाटकों ने, गीति-नाट्यों का सहारा लेकर ऐतिहासिक क्रानिकिल नाटकों के लिए रास्ता बनाया--शेक्सपियर के आरम्भकालीन नाटक इसी प्रकार थे--और कैसे इसी प्रकार चमत्कार नाटकों का 'डेविल' मोरालिटी नाटकों का 'वाइस' और अन्तिम रूप में विदूपक बना जो बार-बार एलिज़ाबेथकालीन धर्मनिरपेक्ष नाटक में सामने आता है तो हमें अनेक अध्याय लिखने पड़ेंगे । ऐसा इसलिए कि इस युग के इंगलैण्ड में संक्रमण-मूलक नाट्य सक्रियता बहुत अधिक बढ़ गयी थी और इतिहासकारों तथा विद्वानों ने अनेक नाट्य-शैलियों एवं उपशैलियों का वर्णन किया है। मगर हम तो यहाँ विश्व रंगशालाओं का संक्षिप्त-सा पर्यालोचन कर रहे हैं। इसलिए यह उचित होगा कि हम यहाँ मनोरंजन के साधन के रूप में, राजनीतिक और धार्मिक प्रचार के साधन के रूप में, दरबारी और नागरिक उत्सवों की शोभा और शृंगार के रूप में नाटक को प्रचलित करने के लिये किये गये प्रयोग की भावना की सर्वव्यापकता पर ही अपनी दृष्टि डालें । यद्यपि अब भी किसी रंगशाला की इमारत निर्मित नहीं हो पायी थी, कोई नामी कलाकार नहीं हुआ था, फिर भी रंगशाला सजीव हो उठी थी।

साम्राज्ञी एलिज़ाबेथ रंगशाला की संरक्षक तो थीं, मगर एक सीमित रूप में ही। यात्रा-मेला नाटकों और चेहरे धारण कर किये जाने वाले अभिनयों की शान-शौकत, चमक-दमक के लिए उनके मन में कभी न तृप्त होने वाली भूख थी। वह प्रहसन को पसन्द करती थी। मगर यहाँ नाटककार अथवा 'सज्जाकार' को वैसा प्रोत्साहन नहीं मिलता था जैसा कि इटली के राजे उनको देते थे। यहाँ गम्भीर नाटक लिखने के लिए नाटककारों को नियुक्त नहीं किया जाता था, शानदार रंगशालाएँ नहीं बनवायी जाती थीं। सही यह है कि अब भी दरबार के मन में इनके प्रति कुछ-कुछ दुर्भावना बनी हुई थी। 'क्रानिकल' नाटकों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि यह विश्वास नहीं किया जाता था कि उनमें सम्राट् को लोक-दृष्टि के प्रकाश में ऊँचा स्थान दिया ही जायगा। और, शीघ्र ही समस्त धार्मिक नाटकों पर निषेध लगा दिया गया--क्योंकि यह कोई नहीं कह सकता था कि किस प्रकार कोई भी प्रान्तीन नाट्य-संघ अपरीक्षित 'चमत्कार' नाटक के माध्यम से धर्मद्रोही सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दे अथवा ग़लत

राजनीतिक 'मोरालिटी' नाटक को जिस भी रूप में अभिनीत कर दे।

फिर भी, दरबार कम से कम अभिनेताओं और नाटककारों का समर्थन तो करते ही थे—चाहे वह समर्थन निष्क्रिय ही क्यों न हो। कुछ पदवीधारी सामन्तों ने अपने नाम का प्रयोग करने दिया और अभिनय करने वाली कम्पनियों को एक प्रकार का संरक्षण भी प्रदान किया। पर्यटक दलों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी कि 'सामान्य अभिनेताओं' और संरक्षण-प्राप्त अभिनेताओं के बीच अन्तर करने के लिए 'सामान्य अभिनेताओं' पर प्रतिबन्ध लगाये गये। शुद्धतावादी तो पहिले से ही नाटक पर आक्रमण करते आ रहे थे। यह एक ऐसे संघर्ष का आरम्भ था जिसकी अन्तिमपणिरित रंगशालाओं के बन्द हो जाने और १६४२ ई० में अभिनयों पर संपूर्ण निषेध्याज्ञा लागू कर देने में हुई। मगर धर्म-पुरोहितों ने जो दबाव डाला, दरबार और सामन्तों ने उसका विरोध किया। उन्होंने इस प्रकार नाटककारों का पक्षपात केवल इस अर्थ में किया कि उन्हें इस बात का अवसर मिल सके कि वे जन-समूह का मनोरंजन करें। और, यही वह लोकपरक रंगशाला है जो हमें मारलो, शेक्सपियर और जान्सन प्रदान करेगी। किले के हालों और दरबार के नृत्य कक्षों में जिस प्रकार के अभिनय होते थे और इनसे दूर और अलग प्रक्रिया के रूप में कालेजों में जो अभिनय होते थे, उनको देखकर हम यह कह सकते हैं कि उस युग की 'रंगशाला' सराय के प्रांगण की तरह थी। इन्हीं उभरती हुई पेशेवर पर्यटक अभिनेताओं की कम्पनियों के लिए ही नवजात नाटककारों ने—उन सम्भ्रान्त विद्वानों ने जो देख रहे थे कि कट्टरपंथी साहित्य उस ओजस्वी संसार में बहुत प्राणहीन-सा लग रहा है—अपना श्रम ख़र्च किया।

उन नाटककारों में, जिन्हें हम 'शेक्सपियर का पूर्वज' समझते हैं, ऐसी सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं, जो उस युग के राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में परिलक्षित की जा सकती हैं; इन्हीं से सराय के प्रांगण और सड़कों के किनारे के अभिनयों का परिलक्षण किया जा सकता है। उसमें एक ऐसी संजीवनी शक्ति और समृद्धि थी जो कभी-कभी मर्यादा त्याग देती; एक ऐसी उन्मुक्तता और तीव्र व्यापकता थी जिसने नाटक में अद्वितीय बहुरंगीपन और उत्तेजक भावनात्मक चरमताएँ उत्पन्न कर दीं, जिसके लिए उन्हें शिल्प के सूक्ष्म स्थलों, अतिशय चतुराई अथवा तिकड़म की आवश्यकता नहीं रह गयी : यदि हम तत्कालीन जीवन के संदर्भ में ही इन विशेषताओं को देखें तो हम इन्हें आसानी के साथ समझ सकते हैं। जहाँ पर ऐसे प्रेक्षक हों जिनके बीच अब तक कोई भी स्त्री बिना बुर्का ओढ़े आयी ही न हो, वहाँ तो ज़ोरदार लेखन, कथा में घनिष्टता से अधिक तड़क-भड़क के पक्ष में 'अभिनय के प्रभाव' को बलिदान कर देने के लिए दोहरे कारण थे। आरम्भिक नाटककार ने सीधे-सीधे सशक्त और

चित्रात्मक नाटकों की रचना शुरू कर दी। 'तीन घण्टे में ही वह सारे संसार की दौड़ लगा लेता हैं; विवाह करता है, बच्चे पैदा करता है, बच्चों की शादी करता है, वे साम्राज्य जीत लेते हैं, दानवों की हत्या कर डालते हैं, वह ईश्वर को स्वर्ग से धरती पर उतार लेता है, और दानवों को नरक से खींच लाता है।' पशेवर नाटककारों ने इटालवी पुनरुत्थानकालीन साहित्य को कथा के लिए सामग्री चुराने का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना लिया, मगर उन्होंने चोरी किये हुए अपने माल को पुरानी मध्ययुगीन ढीली-ढाली क्रानिकिल-परक विधा में ढाल दिया, जिसमें तेज़, अभिनेय घटना पर ही विशेष बल दिया गया।

सर्वप्रथम अंग्रेजी दुःखान्त नाटक, जो अब तक प्राप्त है, 'गोर्बोडक' के नाम से विख्यात है। इसके लेखक थामस सैकवाइल और थामस नार्टन थे। यह १५६२ ई० में अभिनीत हुआ था। यह एक सैनेकी नाटक है, इसमें अंग्रेज़ी कथासूत्र है, 'अतुकांत छन्द' का प्रयोग हुआ है——तुकहीन लघु गुरुक्रमानुसार, द्विवर्णिक चरण से युक्त पंच-पदियों वाला छंद——जो कि मारलो और शेक्सपियर के हाथों इतना गौरवशाली और महान् बनने वाला था। 'गोर्बोडक' की विशेषता है सक्रियता के स्थान पर अलंकृत भाषा का प्रयोग, जिसमें 'मौन अभिनय' की पुरानी परिपाटी और मूक नृत्य-नाट्य के टुकड़े भी जोड़ दिये गये थे। 'राल्फ रोइस्टर डोइस्टर' सर्वप्रथम 'नियमित' सुखान्त नाटक है। कुछ समय पहिले के निकोलस उडल ने प्लाटस के आधार पर इसकी रचना की थी। इसके तुरन्त बाद, विशप स्टिल कृत, द्रुतगामी प्रहसनमूलक सुखान्त नाटक 'गामर गर्टन्स नीडिल' सामने आया। मानो इनकी प्रतिष्ठापना करने, इन्हें तिथ्यांकित करने के बाद हम उन दर्जनों नाटककारों की ओर ध्यान दे सकते हैं जिन्होंने अधिक सुनिश्चित रूप से नाट्य रचना को एक पेशे के रूप में स्वीकार किया, अंग्रेजी नाटक प्रयास को सुनिश्चित दिशा दी, और ऐसे नाटकों की रचना की जिनको प्रतिमान के रूप में स्वीकार करके शेक्सपियर अपनी कम परिपक्व नाटकों की रचना करने वाला था—— ऐसे नाटक जिनकी ऊँचाई को बाद में शेक्सपियर ही पार कर सका।

जान लाइली प्रारम्भिक नाटककारों में सर्वप्रथम और सबसे अधिक स्वतंत्र नाटककार था, और इसी कारण वह बहुत कम अंश में सच्चा ऐलिज़ाबेथी था। या, शायद इस कारण कि वह दरबार के लिए लिखने में ही अपनी प्रतिभा ख़र्च करता था, और पुरुष अभिनेता ही सदैव उसके मस्तिष्क में बने रहते थे। इसलिए वह आम रंग-शालाओं के योग्य रचनाएँ कम ही लिख पाता था; और इसीलिए उसकी रचनाओं में नाटकीयता और ओज की भी कमी रहती थी। उसकी रचनाएँ रोमांचक और चटख कृत्रिमता से भरी होती थीं। उनमें पौराणिक कथानकों और पात्रों का ही चित्रण रहता

था—यदा-कदा उनमें गीतात्मक सरसता भी होती थी, परन्तु साधारणतया वे कमज़ोर होते थे। शायद लाइली ने नाटक की जो सबसे बड़ी सेवा की वह इस बात में अधिक थी कि उसने अंग्रेजी दुःखान्त नाटक में पद्य को 'ग्राह्य' बना दिया। उसने एक ऐसे मार्ग को प्रशस्त किया जिस पर उसके जीवनकाल में ही उससे भी बड़े-बड़े नाटककार चले। उसके ठीक विपरीत थामस किड हुआ जिसने 'दी स्पेनिश ट्रेजेडी' नाम का एक उत्तेजक गीति-नाट्य लिखा। १५९०ई० के आसपास यह नाटक सबसे अधिक बिकता था और इसका प्रभाव भी इंगलैण्ड के बाहर दूर-दूर तक पड़ा। यह एक तीव्र उतार-चढ़ाव वाला परन्तु पठनीय एवं अभिनेय नाटक है। यह उस युग में अत्यधिक प्रचलित ख़ूरेज़ी से भरे दुःखान्त के श्रेष्ठ नाटक का उदाहरण है। हम भी उसके सम्राट् के साथ चीख़कर पुकार उठ सकते हैं :

क्या और भी ऐसा कोई युग था जिसमें ऐसे भयानक काम होते थे !

मगर हम किड की रचना की ताज़ा ओजस्विता और दुःखमूलक कथा की नाटकीय ऋजुता को लक्ष्य किये बिना रह नहीं सकते। यद्यपि 'दी स्पेनिश ट्रेजेडी' में सेनेकी प्रेत मौजूद है फिर भी इसमें एक ऐसी नाटकीयता है जो हमें हैरान कर देती है। इस अर्थ में यह 'गोर्बोडक' से आगे बढ़ गया है; 'गोर्बोडक' में तो नाटकीय सक्रियता का स्थान वर्णन, चित्रण और बीच-बीच में आने वाले भाषण ने ले लिया था। किड एक विशिष्ट प्रकार का पेशेवर लेखक था। वह एक द्रुतगामी ज़ोरदार लोकप्रिय रंगशाला के लिए नाटक लिखा करता था। मगर 'गोर्बोडक' के लेखक तो दरबारी, ग़ैर-पेशेवर, क्लासिकी दृष्टि से शुद्ध रचनाकारों की अनुकृति करने वाले नाटककार थे।

जार्ज पील भी एक लोकप्रिय नाटककार था, मगर कम से कम उसने एक दरबारी नाटक ऐसा ज़रूर लिखा जिसने लाईली को उसी के स्थान पर पराभूत कर दिया। जहाँ लाइली ने साम्राज्ञी की चाटुकारिता अत्यन्त हल्के ढंग से पौराणिक आख्यान का सहारा लेकर की थी, वहीं पील ने अपना नाटक 'दी अरेनमेण्ट आव पेरिस' प्रस्तुत किया, जिसमें जुपिटर (बृहस्पति) ने वीनस को सोने का सेब नहीं दिया जिससे कि डायना चेहरा लगा कर अभिनय करने के बाद आगे बढ़कर साम्राज्ञी के सामने घुटने टेक सके और उस पुरस्कार को, धरती पर चारित्रिक पवित्रता की देवी और अद्वितीय 'अप्सरा एलिज़ा' को अर्पित कर सके। जहाँ तक आम रंगशाला का सवाल है, पील अच्छी तरह शिक्षित और पर्याप्त साहित्यिक प्रतिभा-संपन्न भाड़े का लेखक है जो अपने भविष्य को विकत्रित करने के लिए यत्नशील है।

राबर्ट ग्रीन को इससे भी बढ़कर अनेक बहुविध उपलब्धियों का श्रेय प्राप्त था। जिस प्रकार अंधाधुंध तरीक़े से रहकर उसने अपने विवाहित जीवन को बर्बाद कर दिया

और एक भद्दी अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसी प्रकार उसने अपने नाटकों के शिल्प के बारे में भी लापरवाही की। मगर जहाँ तक अनेकरूपता, स्वतंत्रता और नवीन उपलब्धि की ताजगी का सवाल है, शेक्सपियर की पूर्वछाया, उसकी विलक्षण प्रतिभा के कारण उसमें मिलती थी। इन्हीं कारणों से उसकी कृतियाँ स्थायी रूप से महत्वपूर्ण हो गयीं। शायद, 'फ्रायर बेकन एण्ड फ्रायर बुंगे' में उसके हास्य, कोमलता, और ताज़गी के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि एलिज़ाबेथी नाटककारों ने जो विपुल नाट्य साहित्य तैयार किया था, छपे हुए रूप में उसका तृतीयांश से अधिक नहीं बचा है। नाटक तुरन्त लिखे जाते थे, खेले जाते थे और तुरन्त भुला दिये जाते थे। केवल कुछ ही ऐसे नाटक होते थे जो मुद्रित करने की नीयत से लिखे जाते थे। लगता है कि शेक्सपियर ने भी अपने मंचीय नाटकों की पाण्डुलिपियों को स्थायी रूप से रखने की समस्या पर बिल्कुल विचार नहीं किया था। अनेक नाटक जो बच रहे हैं, उनके लेखकों के रूप में कम से कम तीन नाटककारों का नाम लेना आवश्यक है। थामस लाज नाट्य रचना की कला से छेड़छाड़ करता था। मगर उसने जो भी लिखा, खूब लिखा। उसने एक अ–नाटकीय 'रोज़ालिंडे' लिखा। कथा-स्त्रोत के रूप में उसकी ख्याति अत्यधिक हुई जिसका आधार लेकर शेक्सपियर ने 'एज़ यू लाइक इट' की रचना की। थामस नैश भी, इसी प्रकार, अत्यन्त प्रतिभासंपन्न एलिजाबेथी नाटककार था। उसने अपनी नाट्य–रचना 'दी आइल्स आव डाग्ज़' में इतनी घोर अश्लील आलोचनाएँ कीं कि उसे जेल की हवा भी खानी पड़ी। इस नाटककार से सम्बन्धित इस घटना से हमें यह बात याद आ जाती है कि उस युग में साहित्यिक रचनाओं के कारण अक्सर लेखक को विवादों, जब्रिया देश निकाला, क़ैद और झगड़ों, मारपीट का भी शिकार बनना पड़ता था।

शेक्सपियर के पूर्वजों में से सबसे अन्तिम, सबसे महत्वपूर्ण, यही नहीं, उन सब में एकमात्र प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति—क्रिस्टोफ़र मारलो हुआ है। यदि उसके बाद शेक्स-पियर न हुआ होता तो भी एलिज़ाबेथी थियेटर को गौरवशाली कहने के लिए पर्याप्त कारण था। एक शराबखाने में झगड़ा हो जाने के फलस्वरूप तीस ही वर्ष की उम्र में मारलो मार डाला गया। मगर अपनी मृत्यु के पहिले ही उसने जो चार नाटक विरचित किये उन्हीं के कारण तत्कालीन थियेटर को इतना गौरव प्राप्त हो गया। यह अनुमान लगाना बिल्कुल निरर्थक है कि मारलो की परिपक्व प्रतिभा से किन-किन महान् रचनाओं का सृजन हुआ होता। मगर साधारण सी मूर्खता के फलस्वरूप जो जीवन-धागा टूट गया उस पर अफ़सोस करने के लिए रुकना बेकार है। शायद रंगशाला के इतिहास में इससे

अधिक दुःखद और सर्वनाशक दुर्घटना नहीं हुई।

बेन जान्सन ने 'मारलो की शक्तिशाली धारा' के बारे में लिखा है, और इस वाक्य से ही पाठक या दर्शक नाटककार के पद्यों की ओजस्विता और महान्‌ता का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाता है। मारलो के प्रथम नाटक 'तैमूरलेन दी ग्रेट' की भूमिका में ही इन विशेषताओं की प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं :

माँ के पालना झुलाते मोहक मधुर गीतों की लयकारी
और विदूषकों की भड़ैती से तुष्ट होने वाली आत्मप्रवंचना से दूर
हम आपको शाही युद्ध के खेमे की ओर ले चलेंगे,
जहाँ आप सिदियन तैमूरलंग को
संसार को चुनौतीपूर्ण उद्‌घोषों से धमकाते
और अपनी विजयिनी तलवार से साम्राज्यों पर ज़ुल्म ढाते देखेंगे.....

इस नाटक के अभिनय में जो सनसनी पैदा करने वाले अतिरेक अवश्यम्भावी हैं, उन्हीं का सन्तुलन करने के लिए ऐसे भारी-भरकम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो कभी-कभी मात्र आडम्बर बन कर रह जाते हैं। मगर, इनके साथ ही, उसमें उत्कृष्ट काव्य-सौन्दर्य भी है—और कभी-कभी मानवीय करुणा भी ! जब 'ज़ेनोक्रेट' मर जाती है :

थेरीडमस

......कुछ भी तो नहीं बचा, क्योंकि वह मर गयी है, मेरे स्वामी !

तैमूरलंग

'क्योंकि वह मर गयी है ?' तुम्हारे शब्द मेरी आत्मा को छेद रहे हैं !
आह, प्रिय थेरीडमस, अब ऐसा मत कहो ;
गोकि वह मर गयी है, फिर भी मुझे यही सोचने दो कि वह जीवित है,
उसके लिए मेरा दिल तड़प रहा है,
उस दिल को मैं यही कहकर सब्र दिलाना चाहता हूँ।....

मारलो का दूसरा नाटक 'दी ट्रेजीकल हिस्टरी आव डाक्टर फ़ास्टस' यद्यपि पूर्ण रूप से नाटक नहीं है, फिर भी इसमें फ़ास्ट की कहानी को साहस के साथ प्रयुक्त किया

गया है और अक्सर उत्कृष्ट पद्यों में ढाल दिया गया है। जब हेलेन उन अन्तिम दुःखद क्षणों में उसके सम्मुख लायी जाती है तो फ़ास्ट कहता है :
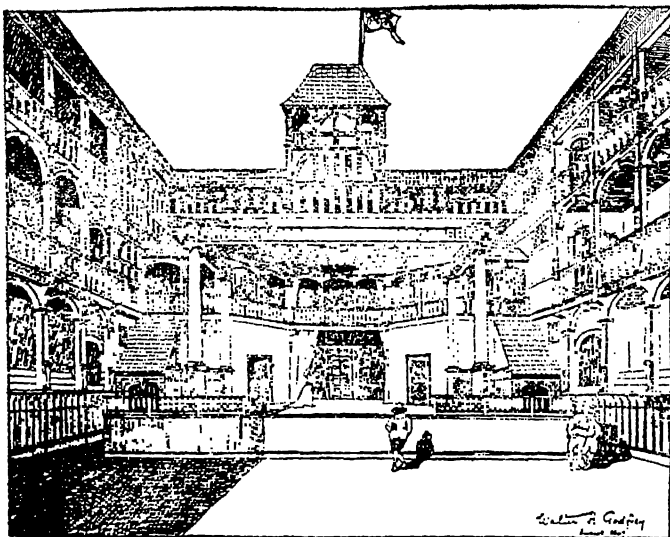
वाल्टर एच० गाडफ्रे कृत फार्चुन थियेटर की एक पुनर्रचना। इमारत के निर्माण के मूल अनुबन्ध पत्र के अनुसार अंकित एक एलिज़ाबेथी नाट्यशाला। (ऐशले एच० थार्न डाइक कृत' 'शेक्सपियर्स थियेटर से।')

क्या यही वह मुखड़ा था जिसके लिए हज़ारों जहाज़ समुद्र पर चल पड़े थे,
और इलियम की बुर्जहीन मीनारों को जलाकर ख़ाक कर दिया था?
प्रिय हेलेन, मुझे एक चुम्बन देकर अमर बना दो। (चुम्बन लेता है)
उसके ओंठ मेरी आत्मा को चूसे ले रहे हैं;
देखो, वह कहाँ उड़ी जा रही है! —
आओ, हेलेन आओ, मेरे प्राणों को मुझे वापिस दे दो!
मैं तो यहीं रहूँगा क्योंकि स्वर्ग इन्हीं होठों में है
और जो हेलेनमय नहीं है, वह धूल है, कुछ नहीं है!
मैं पेरिस बन जाऊँगा, और तुम्हारे प्यार में,
ट्राय के स्थान पर वर्टेनबर्ग को ध्वस्त किया जायगा :

और मैं अशक्त मेनेलोस से युद्ध करूँगा,
और मैं अपने कलंगीदार मुकुट में तुम्हारा निशान लगाऊँगा :
हाँ, मैं एशिलश के टख़नों में घाव करूँगा,
और तब हेलेन के पास एक चुम्बन के लिए आऊँगा।
ओह, तुम सहस्त्रों सितारों से जड़े
सांध्यकालीन वातावरण से भी अत यधिक मनोरम हो;
तुम जलजलाते बृहस्पति नक्षत्र से भी अधिक जाज्वल्यमान् हो
जब कि वह अभागिन सेमिली के सामने गया था :
कामासक्त अरेथुज़ा की नीलाभ बाहों में बँधे
आकाश के सम्राट् से भी अधिक मोहक-ऐश्वर्यशालिनी हो :
तुम्हीं, केवल तुम्हीं मेरी प्रेयसी रहोगी !

और इस नाटक के अन्त में समवेत गान में वे पंक्तियाँ भी गायी जाती हैं जो स्वयं कवि के संदर्भ में अक्सर उद्धृत की जाती हैं––कवि जो कि इतनी कम उम्र में ही मार डाला गया था :

वह शाख़ ही कट गयी जो अभी सीधी उगती, बढ़ती,
और जल गयी अपोलो के जय चिन्ह लारेल की टहनी......

'दी ज्यू आव माल्टा' और 'एडवर्ड द्वितीय' अधिक प्रौढ़ रचनाएँ हैं। इनमें ऐसी नाटकीय आन्तरिक एकता है जिसका अभाव उसके प्रारम्भिक नाटकों में रहा है। 'दी ज्यू आव माल्टा' का अध्ययन अक्सर 'दी मर्चेण्ट आव वेनिस' की समानता और असमानता के लिए किया जाता है। केन्द्रीय पात्र समान रूप से चटख़ है, लेकिन बहुत कम मानवीय है। शेक्सपियर के अधिक सन्तुलित, यद्यपि ढीले-ढाले ढंग से ग्रंथित, नाटक के मुक़ाबिले, इसकी सक्रियता में उग्रता अधिक है। 'एडवर्ड द्वितीय' को सामान्यतया, उसके उत्कृष्ट शिल्प और चरित्र-चित्रण के लिए––मारलो की सर्वश्रेष्ठ रचना माना जाता है। परन्तु, अन्ततोगत्वा, यह नाटककार की काव्यात्मक समृद्धि ही है जिसके कारण उसे शेक्सपियर के पास बैठने का अवसर मिला। उसके पहिले किसी ने भी इतने कौशल के साथ, मुक्त छंद की रचना नहीं की थी। एलिज़ाबेथयुगीन दर्शकों को उसकी जिस विशेषता ने सबसे अधिक प्रभावित किया, वह यही थी कि उसने नाटक की विधा में इतनी अधिक मात्रा में भावावेश भर दिया।

जिन रंगशालाओं के लिए किड और ग्रीन और पील और मारलो ने नाटक लिखे, उनका विकास उन प्राचीन सराय के प्रांगणों से हुआ था जिनमें पर्यटक अभिनेता अपना अभिनय आयोजित किया करते थे। १५७६ ई० में, अर्ल आव लीस्टर अभिनेता मण्डली के अध्यक्ष जेम्स बरबेज़ ने लन्दन के एक बाहरी अंचल में एक रंगशाला खोली जिसका नाम थियेटर था। यह स्थान नाट्य-विरोधी लार्ड मेयर के सीमाक्षेत्र के बाहर और सहानुभूति न रखने वाले नगर अधिकारियों की पहुँच से बाहर था। लगभग तुरन्त बाद 'कर्टेन' नाम से इसके बिल्कुल पास ही एक दूसरी रंगशाला भी खुल गयी। दोनों रंगशालाएँ अनाच्छद रंगशाला के प्राचीन प्रतिमान को सामने रखकर बनायी गयी थीं। बहुत बाद में रंगशाला कि उपर छत डालने की परिपाटी शुरू हुई। तब भी ऐसा केवल उसी समय होता था जब नाटक खेला जाता था। (आप यह न भूलें कि इस पूरे काल में, अक्सर दरबार में, विश्वविद्यालय में, कानूनी समाज के प्रांगणों अथवा कक्षों में ये नाट्याभिनय होते रहते थे)।

जनसाधारण के लिए निर्मित रंगशालाएँ कुछ उसी प्रकार की होती थीं जैसी यहीं पर मुद्रित चित्रों में दिखायी गयी हैं। (मैंने ख़ास तौर से इस बात पर ध्यान दिया है कि कौन-सा चित्र तत्कालीन रंगशाला का उदाहरण है और कौन-सा बाद की रंगशाला का काल्पनिक चित्र है।) यह याद रखना चाहिए कि कुल मिलाकर यह इमारत एक मीठी पूरी की शक्ल की अथवा जैसा कि शेक्सपियर कहा करता था, 'एक लकड़ी के गोले' की शकल की होती थी। इसमें जो छज्जों की उठती हुई क़तारें रहती थीं और नीचे एक गड्ढा होता था जो सराय के प्रांगणों की—नाट्य कम्पनियाँ रंगशाला के रूप में केवल इन्हीं अभिनय-स्थलों को जानती थीं—ही परम्परा में निर्मित होता था। विभिन्न रंगशालाओं में स्वभावतः रंगमंचों की रूपरेखा में अन्तर होता था; यद्यपि उनकी आधी छतें और उनका यवनिका से ढंका भीतरी रंगमंच, दोनों स्थायी रूप से बने होते थे। स्पष्ट ही यह एक ऐसी रंगशाला थी जो कलावन्तों के अभिनय के लिए बिल्कुल ठीक थी। इसमें रंगमंच इतना आगे बढ़ा हुआ होता था कि वह दर्शकों के बीच तक पहुँच जाता था। केवल थोड़ी जगह पर पर्दा पड़ा रहता था। इसमें दृश्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इटालवी चित्रमय रंगमंच से भिन्न यह बिल्कुल सादा सा रंगमंच होता था।

इसमें दृश्य-परिवर्तन प्रेक्षकों की कल्पना में ही हो जाता था जिसे नाटककार के वर्णनात्मक पद्यों से स्फूर्ति मिलती थी। उदाहरण के लिए, किड कृत 'दी स्पेनिश ट्रेजेडी' के एक ही अंक में, नौ 'स्थानों' पर पन्द्रह दृश्य आते हैं। लगता है, कभी-कभी सूचना-पट पर ही लिख दिया जाता था कि अभिनय का दृश्य क्या है। मगर शायद

सामान्यत: वक्व्यों की पंक्तियों और प्रेक्षकों के बुद्धि-चातुर्य के मेल से ही काम चल जाता था। उस समय मंच 'सज्जा' पर विचार ही नहीं किया जाता था। फिर भी लगता है कि रंगशाला के सभी तत्व---रंगमंच, प्रेक्षागृह, अभिनेता, वस्त्राभूषण आदि सभी चटख़, ओजस्वी समृद्धिशाली रहे होंगे। अन्य किसी ढंग से ऐसे युग में काम ही नहीं चल सकता था, जिसमें जीवन इतना समृद्ध, इतना साहसिक, इतना आत्म-प्रभावी था।

उस ज़माने में, आज की तरह, नाटक देखना एक सहज दैनन्दिन कृत्य नहीं था। हम तो आज चुपचाप रंगशाला में चले जाते हैं, और वहाँ अर्ध-साहित्यिक नाटक के पाठाभिनय देख-सुन कर चले आते हैं। मगर एलिज़ाबेथन दर्शक बड़ी धूमधाम के साथ अभिनय देखने जाते थे। उनके मन में नाटककार अथवा अभिनेता के लिए कोई श्रद्धा अथवा विचार नहीं रहता था। जो मनचले छैला वहां उपस्थित रहते थे नाटक का आनन्द लेने में उनका मन नहीं लगता था, उसे पीछे छोड़ कर उससे अधिक स्वयं मनोरंजन करने लग जाते थे। वे ऐसी हरकतें करते थे जिससे लोगों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। ज़मीन पर बैठे दर्शक, हर मौक़े पर चीख़-चिल्ला कर प्रशंसा अथवा अप्रशंसा के अपने भाव को व्यक्त करते थे।

ज्यों ही रंगशाला की इमारत पर इस बात की सूचना देने वाला झण्डा लहरा उठता कि 'खेल शुरू होने वाला है', एक विचित्र प्रकार के प्रेक्षकों की भीड़ जमा हो जाती थी : नीचे ज़मीन पर उम्मीदवार लोगों की बैठी ताश खेलती टोलियाँ, शहर के बेकार लोग, कुछ निर्लज्ज स्त्रियाँ, दृश्य अथवा तमाशा देखने वाले पर्यटक, ड्यूटी से छूटे हुए सैनिक, तट पर मौजूद ज़हाज़ी, आदि; और ऊपर छज्जों पर छात्र और कवि और मेधावी, तीक्ष्ण बुद्धि वाले नागरिक या दरबार के छोटे-मोटे पिछलग्गू (शायद अपनी उन स्त्रियों के साथ, जो बिना किसी मर्द को साथ लिये अकेले आने की हिम्मत नहीं कर सकती थीं), और रंगमंच पर ही कुछ बने-ठने छैले, रंगीन तबीयत के मनचले और रईस, जो दूसरे को देखने और अपने को प्रदर्शित करने के लिए समान रूप से लालायित थे, जो मनमाने ढंग से जब चाहे अभिनय को रोक देते और जो लगातार धुंआ उड़ाते रहते, बातें करते रहते और अपने रूप और अपने साज-श्रृंगार को प्रदर्शित करते रहते। एलिजाबेथन नाटक ऐसे ही लोगों---संस्कृत और असंस्कृत, अशिक्षित लोगों, निम्न कोटि और उच्च कोटि के लोगों, नाटक के प्रेम के कारण आये हुए और अपनी उच्चता प्रदर्शित करने के लिए आये हुए लोगों के विचित्र मिश्रण से बना था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब कोई ओजस्वी काव्य-पाठ होता अथवा जब अभिनय में चुस्ती और फूर्ती रहती तो दर्शक उसका भरपूर आनन्द लेते थे। यदि वाक्यों के उच्चा-

रण में ढिलाई होती अथवा वे बहुत कमज़ोर होते अथवा यदि अभिनय में सुस्ती और लद्धड़पन रहता तो लोग शोरगुल मचा कर उसकी भर्त्सना भी करते थे। लोगों को परिष्कारहीनता से एतराज़ न था। मगर साहित्यिक सूक्ष्मता से तो सुखान्त अथवा दुःखान्त नाटक की हत्या ही हो जाती। मंच पर यदि कोई ऐसी बात होती जिसको देखने में मन न लगता तो लोग ताश या पासा खेलने लगते; और जौ की शराब पीने और फलों तथा मिठाइयों के खाते रहने की अनवरत प्रक्रिया तो सदैव चलती ही रहती थी।

इस बात के अगणित प्रमाण मिलते हैं कि यदि दर्शकों को सचमुच नाटक पसन्द नहीं आता था तो वे खुलकर उसकी ज़ोरदार निन्दा करते थे; अक्सर दर्शकों के बीच झगड़े भी हो जाते थे, गड़बड़ी मच जाती थी, ख़ून-ख़राबा हो जाता था और नाटक बन्द कर दिया जाता था——यद्यपि यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं था कि इस झगड़े का कोई भी सम्बन्ध नाटक अथवा अभिनेताओं से हो। रंगशाला तत्कालीन सक्रिय, अत्यधिक तीव्र, दुस्साहसी सामाजिक जीवन का अविभाज्य अंग थी। हम यह तो देख ही चुके हैं कि किस प्रकार मारलो और ग्रीन को उस युग की उच्छृंखलता और दुस्साहसिकता के कारण अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इसी प्रकार के अनेक नाटककार, अभिनेता रंगशाला के संरक्षक भयंकर दुस्साहसिकता, मदिरालय के व्यभिचारों और हिंसापूर्ण झगड़ों के शिकार हो गये। जो रंगशाला शरीफ़ शेक्सपियर के नाटकों का मूल्यांकन करना जानती थी वह इस प्रकार की दंगाई रंगशाला से कुछ ही कम थी; पास ही भालू का नाच करने वाले अखाड़े से वह सम्बन्धित थी और उन चकलों से बहुत दूर न थी जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी में अधिक कोमल और प्रोज्ज्वल शब्दों में 'अनियंत्रित आलय' कह दिया जाता था।

जो भी हो, अन्य स्थानों और युगों की भांति यहाँ इस युग में अभिनेता घृणित वर्ग के लोग न थे। इस समय इनकी कम्पनियों में केवल पुरुष ही होते थे और वे विशष रूप से प्रशिक्षित लड़के लड़कियों की भूमिका करते थे। स्पेन में, पहिले से ही महिलाएँ 'स्थायी' रंगमंच पर आने लगी थीं। यहाँ तक कि वे बिल्कुल अनलंकृत बाड़ों में बनी रंगशालाओं में भी अभिनय करने लगी थीं। लेकिन इंगलैण्ड में ऐसा नहीं था। चमत्कार नाटकों में ग़ैर-पेशेवर अभिनेत्रियाँ निश्चय ही अभिनय करती थीं। चेहरा लगा कर खेलने वाले नाटकों में दरबार की सम्भ्रान्त महिलाएँ भी भाग लेती थीं। मगर वे सार्वजनिक रंगशालाओं में अभिनय नहीं करती थीं। नाट्य संघों द्वारा प्रस्तुत अभिनयों में लोग प्रवेश शुल्क देकर भीतर जाते थे। 'गाड के लिए ६ पेंस' और 'लुसीफर के अभिनय के लिए ८ पेंस' के उल्लेख मिलते हैं। मगर ये एलिज़ाबेथी अभिनेता पेशेवर थे। ये अभिनेता अपनी कला का अध्ययन-अभ्यास—दो ध्येयों को सामने
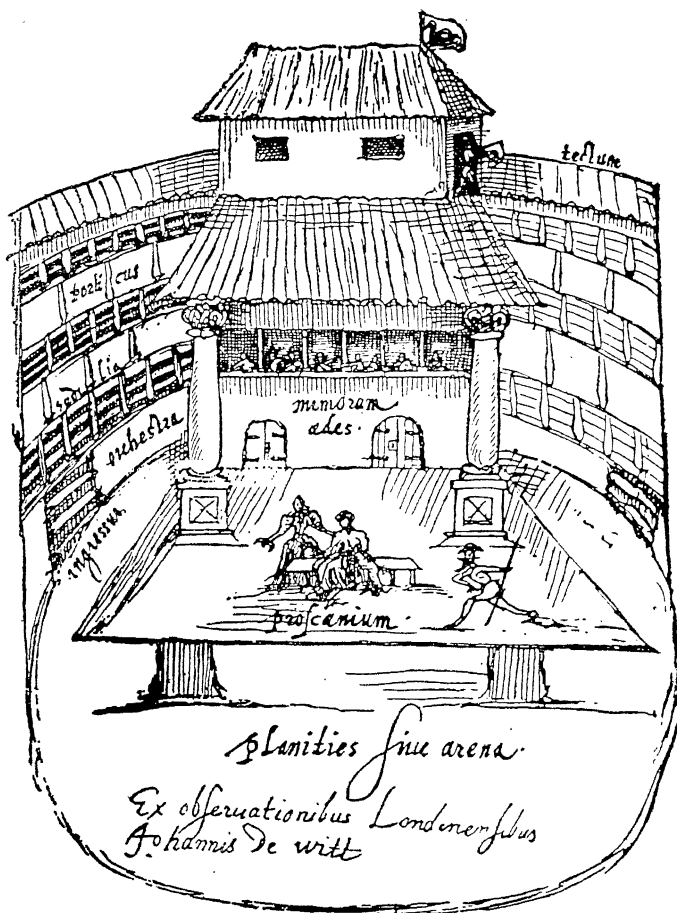
लगभग १५९६ ई० का लन्दन स्थित स्वान थियेटर का जोहान्न डेविट कृत एक रेखांकन। यह एलिज़ाबेथकालीन रंगशाला के स्वरूप के उन सम-सामयिक उदाहरणों में से एक है जिसकी प्रामाणिकता संदेह से परे रही है।

रख कर करते थे––पहिला ध्येय था फ़र्श पर बैठ कर नाटक देखने वाली जनता का मनोरंजन करना, दूसरा ध्येय था अधिक विवेकशील रुचि को संतुष्ट करना जो ज़ोरदार और वास्तविक बन गयी थी।

अभिनेताओं के लिए दी गयी हेमलेट की जो प्रसिद्ध वक्तृता है, उससे हम उस युग की अभिनय कला के सम्वन्ध में एक धारणा बना सकते हैं; और उस अभिनेता से भी जिसने 'हेरड के अभिनय में हेरड को भी मात कर दिया था' उस 'अपनी खोपड़ी' पर पेरीविग के बालों की टोपी पहिनने वाले 'उद्दण्ड आदमी' से जो 'आवेश के टुकड़े-टुकड़े कर रहा है, चिथड़े उड़ा रहा है, ज़मीन पर बैठे निम्नस्तरीय दर्शकों के कानों को फाड़े डाल रहा है,' उन अभिनेताओं से जो 'आवेश के प्रवाह, झंझा, और यदि मैं कह सकूँ तो, वात्याचक्र में. . .ऐसे संयम को प्राप्त करते और प्रयोग में लाते हैं जिससे उसमें स्निग्धता आ जाती है––और जो अपनी 'जिह्वा से सहज ही' वक्तृताओं को बोल देते है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शेक्सपियर को उन सह-अभिनेताओं के कारण परेशानी उठानी पड़ी जो, 'इस प्रकार अकड़ कर चले और चीखे-चिल्लाये कि मैंने सोचा कि किसी किराए के कारीगर ने इन आदमियों की रचना कर दी, और इनकी रचना कुघड़ ढंग से कर दी; इन्होंने मानवता की अनुकृति कितने घृणित ढंग से की।' मगर एक तरफ़ जहाँ अभिनय-कला किसी यथार्थवादी माप-दण्ड से जाँचने पर कृत्रिम, अतिरेकपूर्ण और आडम्बरयुक्त थी, वहीं, फिर भी हम हेमलेट के शब्दों में विवेक, शालीनता और संयम का प्रयोग पाते हैं जो एक वास्तविक व्याख्यानमूलक कला का द्योतक है।

१५८८ ई० में या इसी के आसपास, इसी ज़ोरदार धमा-चौकड़ी वाली रंगशाला में, विलियम शेक्सपियर, अपने स्ट्रैटफ़ोर्ड अपान-एवान नामक सुरम्य गाँव से आया था। वृत्तान्त का आरम्भ इस तरह करने में बुद्धिमानी होगी कि शायद वह १५८८ ई० में या इसी के आसपास लन्दन आया; ऐसा इसलिए कि शेक्सपियर के जीवन से सम्बन्धित तथ्य के रूप में सामान्यतया जो बहुत सी बातें कही जाती हैं, वे केवल अनुमान अथवा अध्याहार हैं अथवा वे अस्पष्ट तथ्यों और सम्मतियों पर आधारित हैं। कहा जाता है कि शेक्सपियर का जन्म १५६४ ई० में एक क़साई के घर हुआ। उसका क़साई पिता एक सम्मानित नगर अधिकारी भी था। वह इससे मिलते-जुलते अन्य व्यवसाय करता था; यह कि उसने कुछ वर्षों तक एक स्थानीय ग्रामर स्कूल में पढ़ाई भी की, शायद उसे लेटिन का कुछ ज्ञान हो भी गया। यह कि उस समय जब कि उसका पिता अन्य सहयोगी व्यवसायों में घाटा उठाकर फिर क़साई के पेशे में वापिस आया तो उसने अपने पिता के सहायक के रूप में

क़साई का काम भी किया, यह कि जब वह अठारह उन्नीस वर्ष के बीच में था तो उसने एन्न हाथावे नामक, अपने से आठ बरस बड़ी, महिला से विवाह कर लिया। यह कि वह अपने पारिवारिक जीवन में सुखी नहीं था, और यह कि वह कुछ दिनों के लिए पागल सरीखा हो गया था, और उसने अपने दुराचरण को चमकाने के लिए, पास के सर थामस लूसी की रियासत में जांगल-चौर्य किया और इसीलिए वह स्ट्रेटफ़ोर्ड अपान-एवान से लन्दन चला आया और रंगशाला के द्वार तक पहुँच गया। ऐसे भी अपुष्ट साक्ष्य मिलते हैं कि आरम्भ में वह रंगशाला में आये हुए लोगों के घोड़ों की रास थामता था। (छैले लोग नगर से घोड़ों पर ही चढ़ कर आते थे।) मगर जो भी हो, इस कहानी से यह साबित हो जाता है कि एक दम निचले स्तर से ऊपर की ओर उठने की नाटकीय कथा की भाँति ही उसका जीवन था। ऐसा इसलिए कि शेक्सपियर तत्काल ही बुरबागे की कम्पनी में अपना नाटक लेकर फेरी लगाने लगा और शीघ्र ही एक अभिनेता भी बन गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसने पुराने नाटकों से सामग्री लेकर और उनका रूपान्तरण करके ही अपना साहित्यिक कार्य आरम्भ किया। यह एक सामान्य पेशा था; और साथ ही नयी पाण्डुलिपियों पर भी इतना अधिक कार्य किया गया कि लगता है कि कुछ नाटक ऐसे हैं जिनके रचनाकार का समुचित रूप से निश्चय अब तक नहीं हो सका। पील, ग्रीन और लाज ने बाद के विद्वानों को अपने सम्मिलित कार्यों के कारण इस क़दर भ्रम में डाल रखा है कि वे यह तय नहीं कर पाते कि किस नाटक का कौन-सा अंश किस नाटककार द्वारा रचित है। आज तक यह मात्र अनुमान का ही विषय है कि हेनरी षष्ठ के कौन से अंश शेक्सपियर की लेखनी से प्रसूत हैं, या कौन से मारलो अथवा ग्रीन या पील की लेखनी से प्रसूत हैं। यह भी पता नहीं है कि 'टाइटस ऐण्ड्रोनिकस' को मंच के लिए तैयार करने में शेक्सपियर की सेवा कितनी है। उस ज़माने में व्यवस्थापक लेखक से सीधे-सीधे नाटक एक रक़म देकर ख़रीद लेता था। और अभिनीत करने के पहिले उसमें यथासम्भव परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन करने का अधिकार उसको होता था।

मगर नाटककार की हैसियत से प्रसिद्धि प्राप्त करने के पहिले ही शेक्सपियर ने अभिनेता के रूप में ख्याति प्राप्त करली थी। लगता है कि वह एक अच्छा अभिनेता था—उसकी अभिनय कला के सम्बन्ध में हमारी इतनी ही जानकारी है। अभिनेताओं की अनेक सूचियों में उसका नाम मिलता है। और, किसी ने लिखा भी है कि "वह अत्यन्त उत्तम रीति से अभिनय करता था।" बहरहाल, मंच के बाहर भी उसकी प्रशंसा सर्वत्र होती थी। और हम उसकी कल्पना एक शालीन, वाक्चतुर, सर्वप्रिय और जैसा कि १६०१ ई० के एक नाटक में उल्लिखित है "प्रिय मास्टर शेक्सपियर"

अंकित मानो हम उनसे आज ही मिले हैं। रोमियो, जूलियट, दी नर्स, शायलाक, मेकबेथ और लेडी मेकबेथ, विचेज़, बाटम, पक, इयागो, डस्डीमोना, डागबेरी, सर टोवी, सर एण्ड्रयू और मालवोलियो, पेत्रूशियो और केट, ओफ़ीलिया, पोलोनियस, एरियल, प्रास्पेरो, सीज़र, कासियस, ब्रूटस, मेरी वाइव्ज़। इस सूची के बावजूद अभी क्रानिकल नाटकों की माला में आये उन महान् ऐतिहासिक व्यक्तियों की चित्रशाला की
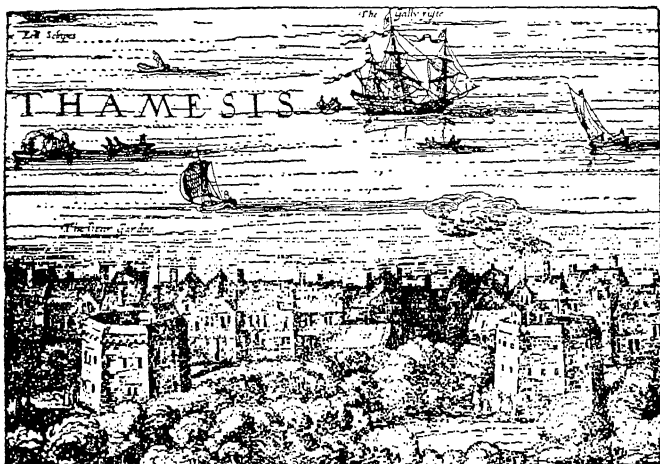
१६१६ ई० में विस्सखेरकृत लन्दन के एक चित्रात्मक नक्शे का एक अंश। जिन इमारतों पर झण्डा लगा है उनका अर्थ है "आज यहां अभिनय होगा।"
('दी स्टेज इयर बुक, १९२७ ई० से उद्धृत।)

चर्चा नहीं हुई है जिसने इस विधा को इतना ऊँचा उठा दिया है कि वह मानव जीवन की दुःखान्तता के समकक्ष हो गयी है। और फिर भी कितनी विस्मयकारी रूप भिन्नता, कितना अविस्मरणीय चरित्र-चित्रण! हर दिन हमारा इनका समागम होता है। ये पात्र हमारे दैनन्दिन जीवन के अंग बन गये हैं, शायद बाइबिल के अतिरिक्त अन्य कोई इस प्रकार हमारे दैनन्दिन जीवन का अंग नहीं बन पाया। स्कूल का हर विद्यार्थी उनको जानता है। वर्ष प्रति वर्ष दार्शनिक उनके कारनामों का परायण करके आत्मबल संग्रह करते हैं। और, ओह, हाँ! जिन नाटकों में ये पात्र सामने आते हैं, वे प्रायः लगातार उन देशों में अभिनीत होते रहते हैं, जहाँ प्रेक्षकों की कलात्मक अनुभूति-

सूक्ष्मता तीव्र है और मस्तिष्क उत्सुक हैं।

मैं यह मान लेता हूँ कि अर्ध-ग्राम्य, अर्ध सुखान्तक 'ऐज़ यू लाइक इट' अथवा अंशतः प्रहसन मूलक सुखान्तक और अंशतः कोमल प्रगीतात्मक 'ट्वलव्थ नाइट' अथवा 'व्हाट यू विल', की कहानी सुनाकर अथवा 'दी मर्चेण्ट आव वेनिस' के इतने अधिक सम्मिश्रित पात्रों की दुःखान्तक-प्रहसनमूलक कथा कह कर मैं अपने पाठकों की अवमानना ही करूँगा। निस्सन्देह उनमें से प्रत्येक में हम एक पूर्ण नाटक का रेखाचित्र पा सकते हैं, जिसकी सूची इतनी योग्यतापूर्वक पोलोनियस ने बनायी है : "दुःखान्तक, सुखान्तक, इतिहासमूलक, ग्राम्यपरक, ग्राम्यपरक-प्रहसनमूलक, ऐतिहासिक-ग्राम्यपरक, दुःखान्तक-इतिहासमूलक, दुःखान्तक-प्रहसनमूलक, इतिहासमूलक-ग्राम्यपरक, अविभाज्य दृश्य अथवा अनन्त काव्य!" परन्तु आपको ये सब शेक्सपियर की मौलिक रचनाओं में मिल जायँगे; और इसके अतिरिक्त, कोई भी ऐसे अन्य नाटक नहीं हैं जो इतनी सफलता के साथ अपनी कहानी फिर से सुनाने की क्षमता का उल्लंघन करते हों (जिनकी कहानी फिर से अकथ्य हो) या जो अपने नग्न विशाल ढाँचे में इतनी पूर्णता के साथ अपने मृदु स्वाद-गंध को छिपा रखने में समर्थ हों।

निस्सन्देह ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि शेक्सपियर के नाटकों का अधिवास पात्रों के चरित्र-चित्रण, काव्य और घटना कथन और आनन्दप्रद आत्मश्लाघा में ही अधिक रहता है। और इसीलिए उनकी गढ़न कमज़ोर होती है; कुल मिलाकर नाटक सत्यमेव नाटकीय नहीं होता। परन्तु यदि किसी की दृष्टि में सभी युगों के रंगमंच का इतिहास हो तो वह आसानी से इस नतीजे पर पहुँच सकता है कि आज की रंगशाला ही इतनी सीमित है, इतनी संकुचित है कि उसमें इतना पुष्कल नाटकीय घटना-विधान और समृद्ध पच्चीकारी और दूरगामी कल्पनाशीलता समा ही नहीं सकती। चित्रित दृश्यावली, यथार्थमूलक स्थिति और व्यक्तिगत अभिनय के स्तर से होकर जो कुछ आया है उस सबको अपने में समो लेना वाक्स-स्टेज, चित्रित-सेटिंग और यवनिका-मण्डित नाट्यशाला के लिए सम्भव नहीं है। किसी भी नाट्य-प्रस्तुतकर्ता के लिए शेक्सपियर एक चुनौती है। और जो भी व्यक्ति उन्नीसवीं शताब्दी की रंगशाला की अब भी चली आयी सीमाओं से चिपका रहना चाहता है, वह शेक्सपियर की इस चुनौती को स्वीकार करने में सर्वथा असमर्थ है। वह केवल अपनी जान बचाने के लिए बग़लें झाँकने लगता है और कह देता है कि शेक्सपियर अ-नाटकीय है। मगर स्वयं शेक्सपियर के ज़माने में उसके नाटक रंगमंच पर सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किये जाते थे; उनकी प्रसिद्धि उनके अभिनय में ही थी, उनका अंग-प्रत्यंग 'अभिनय' के लिए ही रचा गया था। और, जब तक कि कोई नवीन

शेक्सपियर उदित न हो जाय, ये नाटक फिर आज सर्वोत्कृष्ट प्रमाणित होते दिखायी देते हैं—आज जब कि आधुनिक रंगमंच अपने को उतना ही स्वतंत्र बनाने, मात्र अभिनय के सर्वथा उपयुक्त बनाने, जितना कि एलिज़ाबेथी रंगमंच था (यद्यपि उतना नंगा नहीं) की प्रक्रिया को पूरा कर रहा है—इस बीच हमारे पुस्तकागार में जितने भी नाटकीय अथवा अ-नाटकीय काव्य-साहित्य है उसमें शेक्सपियर की रचनाएँ अब भी सर्व प्रमुख हैं। और हम देखते हैं कि चाहे अच्छी तरह और चाहे यों ही साधारण रूप में शेक्सपियर के नाटक अब भी यदा-कदा खेले ही जाते हैं।

हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि शेक्सपियर की उमड़ती काव्य प्रतिभा ने उसके नाटकों के गढ़न को अक्सर आवश्यकता से अधिक विस्तार दे दिया है। 'ए मिड समर नाइट्स ड्रीम' मिश्रित और रूपहीन मालूम पड़ता है। 'टेम्पेस्ट' में नाटकीय एकता लगभग नहीं के बराबर है। लेकिन इतनी बड़ी ग़लतियों का इतना महान् प्रायश्चित क्या अन्यत्र हुआ है ? बाक़ी के लिए, आइए, हम शेक्सपियर की ही पंक्तियों से उसकी काव्यगत उत्कृष्टता और पात्रों के साथ उस काव्य के सहज सामञ्जस्य को फिर से याद करें।

'गीत' भी उस भावना को अभिव्यक्त करते हैं जो पात्र—घटना का आन्तरिक अंग है। 'एज़ यू लाइक इट' को ताजगी देने वाली ग्राम्य भावना का संयोजन इस गीत से अधिक और कौन-सा वाक्य कर सकता :

उपवन के हरे वृक्ष की छाया में
कौन मेरे साथ लेटना चाहता है,
और अपनी प्रसन्न स्वर लहरी को
प्यारी चिड़िया के स्वर से मिला देना चाहता है,
इधर आओ, इधर आओ, इधर आओ......

या, फिर इसके बिल्कुल विपरीत, याद कीजिए लियर की वे पंक्तियाँ जिनमें उस सम्राट् का चित्रण है जो बुरी तरह प्रताड़ित है, पागल हो गया है, मगर फिर भी एक सम्राट् ही है, दृश्य आरम्भ होता है :

लियर

ओह, मैं पोर-पोर सम्राट् हूँ :

जब मैं घूरता हूँ, तो देखो प्रजा कैसे काँपने लगती है।

और दूसरे दृश्य में एकदम का कायापलट :

लियर

दया करके मेरा मज़ाक मत उड़ाओ :
मैं एक निरा मूर्ख प्यारा बूढ़ा हूँ......

नाटक में अक्सर प्रारम्भिक पंक्तियाँ अपनी गाढ़ी रेखाओं से ही नाटक की 'भावना' का पूर्वाभास दे देती हैं; देखिए 'ट्वेलव्थ नाइट' में :

ड्यूक

यदि प्रेम संगीत से पलता है, तो चलने दो;
मुझे उसके रसातिरेक का सुख लूटने दो,
जिससे कि उसकी भूख शांत हो जाय और मर जाय।
फिर वही तान! वही प्राणलेवा अवरोह :
ओह, मेरे कानों को तो यह ऐसा लगा
मानो गमकती पुष्प राशि की श्वास-वायु हो
प्राण चुराती, सुगंध बिखराती!
बस अब अधिक नहीं......

मगर जब उद्धरणों का ताँता एक बार आरम्भ हो जाता है, और जब हम चरित्रमूलक वाक्यों पर विचार करना आरम्भ कर देते हैं तो इनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है कि हमें पात्रों की छवियों की चित्रशाला पर जिस तरह विस्मय होता है, उसी तरह इन लिखित पद्यों पर भी होने लगता है। चाहे वह पोर्शिया का वाक्य हो—'दया के गुण पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर न पड़ जाय,' अथवा ओथेलो का वाक्य हो, 'मैं जैसा हूँ मुझे वैसा ही कहो,' या फिर मेकबेथ और लेडी मेकबेथ के बीच का वह दृश्य हो जिसमें वह डरता है कि कहीं उसका हाथ 'बहुसंख्यक सागरों को गहरे लाल रंग से रंग न दे,' या उसकी मृत्यु पर उसकी चीत्कार :

इसके बाद तो उसे मरना ही था;
इस शब्द के लिए भी समय आता ही।
कल, और कल और कल,
बार-बार आता है, चला जाता है
दिन प्रति दिन, निश्चित क्रम से,
जीवन पथ पर, जब तक छोर नहीं आ जाता;
और हमारे सारे व्यतीत कलों में ऐसे दिव्य मूर्ख रहे हैं
जो मौत के धूलिया गर्त्त में समा गये।
बुझ जा, बुझ जा क्षणभंगुर लौ :
जीवन एक छाया है, चलती-फिरती;
एक नगण्य अभिनेता जो अपनी अवधि में
मंच पर अकड़ता है, आवेश प्रकट करता है,
और फिर भुला दिया जाता है;
एक क़िस्सा है यह किसी मूढ़ का गढ़ा,
जिसमें नाद और उद्वेग बहुत है,
सार कुछ नहीं।

अब बाक़ी के लिए हम हेमलेट को लें। नाटक की दृष्टि से, रक्तरंजित दुःखान्तक नाटकीय रचना की दृष्टि से, चरित्र-अनुशीलन की दृष्टि से यह एक इतनी सुगठित कृति है और साथ ही विचारपूर्ण वाक्यों से यह इतनी भरी-पूरी है कि इसके अतिरिक्त कोई अन्य कोश नहीं मिलता जिससे इतने रत्न निकले हों जो सार्वजनिक प्रयोग में आये हों, जो लोगों के कान में इतनी घनिष्ठता से गूँजे हों, जो उनको सौ बार पढ़ने वाले को भी यथावत् भरपूर शक्ति प्रदान करते हों। हम यहाँ केवल इसी बात पर ग़ौर कर लें कि किस प्रकार विचार, सौन्दर्य, मानवीय करुणा नाटकीय रूप में, मंच पर उपस्थित पात्र की वाणी में और उसके साथ ही नाटकीय प्रभाव में रहने वाले अन्य लोगों में रस बस गये हैं।

ओफीलिया

ओ, कितना महान् व्यक्ति यहाँ कितना बदल गया है!
वह जो एक राज्याधिकारी की, सैनिक की, विद्वान् की आँख, ज़बान तलवार था;

जो राज्य की आशा और उगता पुष्प था,
जो जनता की अभिरुचि का माप कलश और स्वरूप का साँचा था,
जिसके ऊपर सभी देखने वालों की निगाहें लगी रहती थीं, खो गया, सब खो गया!
और, मैं, सभी स्त्रियों में सर्वाधिक विषण्ण, दुखियारी,
जिसने उसके संगीतमय शपथों के मधु को चूस लिया,
अब देख रही हूँ कि वही श्रेष्ठ व्यक्ति, वही सर्व सत्ताधारी तर्क कर रहा है।
उन मधुर घन्टियों की तरह जो कटु हो गयी हैं, बेसुरी, कर्कश हो गयी हैं;
वह अप्रतिम रूप, खिले यौवन की वह मधुर आकृति
इस क्षणिक उन्माद में जल कर खाक हो गयी; हाय रे दुर्भाग्य,
वह सब देख लेना जो मैंने देखा, वह देखना जो मैं देख रही हूँ!

और सम्राट् स्वयं अपना चरित्र-चित्रण इन दो पंक्तियों में करता है :

ओह, कितना घोर मेरा अपराध है जिसकी दुर्गन्ध आसमान तक पहुँच रही है;
जो आद्य अभिशाप से ग्रस्त है......

लेकिन वस्तुतः अंग्रेजी भाषा में हेमलेट के स्वगत कथनों की तुलना करने वाला कुछ भी नहीं है। मैं उस स्वगत-कथन का यहाँ छोड़ देता हूँ जो 'ओह, कितना दुष्ट और कृषक-दास मैं हूँ' से शुरू होता है। उसके साथ मैं एक अन्य स्वगत कथन, पूरा का पूरा, उसके संदर्भ के साथ यहाँ उद्धृत करता हूँ। यह मैं इस बात का अन्तिम उदाहरण देने के लिए कर रहा हूँ जिससे पता चलता है कि जैसे शेक्सपियर ने काव्य को नाटक से समन्वित कर दिया, केवल कथानक को ही नहीं सजाया, वरन् पात्र, कथा, क्रिया और काव्य के सौन्दर्य को एक ही में इस प्रकार गूँथ दिया कि नाट्यकला अपने चरम को प्राप्त हो गयी।

हेमलेट

बना रहूँ या विनष्ट हो जाऊँ : प्रश्न यह है :
श्रेयस्कर यह है कि क्रूर दुर्भाग्य की ठोकरों और तीरों को सहूँ,
अथवा, मुसीबतों के सागर के विरुद्ध शस्त्र उठा लूँ,

उनका सामाना करूँ, उन्हें समाप्त करूँ। मर जाऊँ : सो जाऊँ :
मिट जाऊँ; यदि एक नींद से ही दिल के सारे दर्द मिट जाते हैं
और इस शरीर को लगने वाले हजार धक्के सह्य हो जाते हैं,
तो यह एक ऐसी परिसमाप्ति है जिसके लिए
हमें निष्ठापूर्वक कामना करनी चाहिए। मर जाना, सो जाना;
सो जाना : स्वप्न देखना : आह, यही तो मुसीबत है;
मौत की उस नींद में जाने कौन से सपने आवें,
जब इस नश्वर देह की खोल को हम उतार फेंकते हैं
तब भी क्या हमें विश्राम मिलता है : यही एक विचार है
जो इतने लम्बे जीवन को यातना में परिणत कर देता है;
क्योंकि कौन सह सकता है समय की मारों और तिरस्कारों को,
उत्पीड़क के अत्याचारों को, दम्भी की धृष्टता को,
अवमानित प्यार की पीड़ा को, क़ानून की देर को,
अधिकारी की उद्दण्डता को, अयोग्य की उपेक्षा को—
जब कि वह स्वयं अपना निस्तार ख़ाली एक
सूजे से कर सकता है? कौन इस बोझ को ढोता फिरे
एक थकी ज़िन्दगी को लिए कराहते-कराहते, पसीना बहाते,
मगर मौत के बाद भी किसी चीज़ का भय,
वह अजाना देश जहाँ गया हुआ मुसाफ़िर
फिर वापिस नहीं आता, इसी से जी घबड़ाता रहता है,
और हम जानी-पहचानी मुसीबतों को झेलने को उद्यत हो जाते हैं,
और उनकी ओर नहीं भागते जिन्हें हम जानते नहीं?
अन्तरात्मा का यह विवेक हम सब को कायर बना देता है
और इस तरह हमारी निजी दृढ़ता का रंग
विवेक की विवर्ण छाया में धूमिल पड़ जाता है,
और इसीलिए गहरी दृढ़ता और निश्चय की दुस्साहसिकता
की लहरें ग़लत मोड़ ले लेती हैं
क्रियाशीलता का नाम ही मिट जाता है। तो अब दया करो!
ओ प्रिय ओफीलिया! अप्सरा, अपनी प्रार्थनाओं में
मेरे पापों को भी याद रखना!

ओफीलिया

मेरे प्रिय स्वामी,
आप इतने दिनों तक कुशल से तो रहे ?

हेमलेट

मैं तुमको सविनय धन्यवाद देता हूँ, मैं अच्छा हूँ, अच्छा हूँ।

ओफीलिया

मेरे स्वामी, अपनी याद को निरन्तर बनाये रखने के लिए आपने
मुझे जो उपहार दिये थे, बहुत दिनों से मैं उन्हें लौटाना चाहती हूँ;
मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप उन्हें वापिस ले लें।

हेमलेट

नहीं, मैं नहीं लूँगा,
मैंने तुम्हें कभी कुछ नहीं दिया।

ओफीलिया

मेरे सम्मान्य स्वामी, आपको अच्छी तरह पता है कि आपने दिया था;
और उनके साथ मधुर प्रणय गीत भी दिया था
जिससे उन वस्तुओं का मूल्य और भी बढ़ गया : अब उनकी सुगंध उड़ गयी है।
उन्हें वापिस ले लीजिए : जब दाता का हृदय कठोर हो जाता है
तो लेने वाले की निगाह में मूल्यवान् उपहार भी गर्हित बन जाता है।[1]
यह लें, मेरे प्रभु !

---

१. दृष्टव्य—'याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।'
—कालिदास (मेघदूत)

इस नाटक में भी एक ऐसा गद्य मिलता है (जिसका उपयोग केवल कुछ ही वर्षों पहिले से रंगमंच पर होना शुरु हुआ था।)जो लचीले, अभिव्यंजनापूर्ण, मृदु भावों का माध्यम बन गया था। आप पोलिनियस और क़ब्र खोदने वाले दृश्यों का अवलोकन करें तो आपको मालूम हो जाएगा कि इस गद्य में विचारपूर्ण हास्य मौजूद है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि—हम यहाँ रंगशाला का अनुशीलन कर रहे हैं, मात्र नाट्य-ग्रंथों का नहीं—हैमलेट के इस दुःखान्त नाटक की अन्तिम पंक्ति है—"जाओ, सैनिकों को आदेश दो, तोपों की सलामी दें।" और इसके बाद शव यात्रा होती है, और बाहर तोपों के दगने की आवाज़ होती है।

एलिजाबेथी युग में शेक्सपियर के बाद जो नाटककार हुए वे शेक्सपियर की ख्याति से सीधे-सीधे इतना दब गये थे कि इतिहास में अपने लिए समुचित स्थान बना न सके। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि विद्यार्थी पहिले उस व्यक्ति की ओर जाँय जिसके नाटकों के एक ही गुच्छे में उस युग की सारी अभिरुचियाँ और तत्कालीन रंगमंच की सम्पूर्ण उत्कृष्टता प्राप्त हो जाय। मगर फिर भी, बेनजान्सन, जान फ्लेचर और जान-वेबस्टर किसी भी अन्य युग के महान् कृतिकार हो सकते थे।[1] यदि इसके साथ ही जार्ज

---

१. इस युग की रंगशाला और नाटक आश्चर्यजनक रूप से जितने समृद्धिशाली थे, उतने ही इन विषयों की पुस्तकें भी हैं। रंगशाला के सम्बन्ध में सबसे अधिक विवरणपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण पुस्तक है: ई० के० चैम्बर कृत 'दी एलिजाबेथन स्टेज' (आक्सफोर्ड,१९२३); मगर पाठक को डब्ल्यू०जे० लारेन्स, विक्टर ई० आलब्राइट और विलियम पोयल के विशिष्ट अनुशीलनों को देख लेना चाहिए; साथ ही एशले एच० थार्नडाइक कृत 'शेक्सपियर्स थियेटर' (न्यूयार्क, १९१६) को भी। इस विषय पर आधिकारिक इतिहास है ए० डब्ल्यू० वार्ड कृत 'ए हिस्टरी आव इंगलिश ड्रामेटिक लिट्रेचर टु दी डेथ आव क्वीन एनी' (लन्दन और न्यूयार्क, ३ भाग, १८९९), एलर्डाइस निकोल कृत 'ब्रिटिश ड्रामा' (न्यूयार्क, चतुर्थ संशोधित संस्करण, १९४७) अंग्रेजी नाटक का उत्कृष्ट संपूर्ण इतिहास है। डोनाल्ड ब्रूक कृत 'दी रोमांस आव दी इंगलिश थियेटर' (लन्दन, १९४८) में नाटक का एक संक्षिप्त परन्तु पूर्णतया सचित्र रूप मिल सकता है। सिडनी ली कृत 'ए लाइफ़ आव विलियम शेक्सपियर' (लन्दन, १९२५) शेक्सपियर की प्रामाणिक जीवनी है। मारशेटे चुटे कृत 'शेक्सपियर आव लन्दन' (न्यूयार्क, १९४९) और आइवर

चेपमैन, फ्रान्सिस ब्यूमा, थामस, डेकर, थामस मिडिल्टन, जान फ़ोर्ड, जेम्स शर्ले, फिलिप मासिंजर, थामस हेउड, सेमुअल रोले जैसे अन्य नाटककारों का नाम भी जोड़ लिया जाय तो उपलब्धियों का इतना मूल्यवान् कोश तैयार हो जाता है कि जैसा अन्य किसी भी युग में नहीं हो पाया। अंग्रेज़ी रंगशाला के बाद के तीन सौ वर्षों के इतिहास में फिर इतने महत्वपूर्ण नाटककारों के इतने नाम नहीं मिलते। मगर फिर यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र में, दुःखान्तक, सुखान्तक और क्रानिकल नाटकों में, शेक्सपियर ही सर्वोपरि है। वे सब के सब समृद्धिशाली सक्रिय रंगशाला के ही हैं, ज़ोरदार, विस्तारप्रिय, अमिताचार और उद्दण्डता से भी अधिक नियंत्रण और उदासी से डरने वाले। सच यह है कि वे आडम्बरपूर्ण दुस्साहसिकता और विनोदप्रियता से निकल कर ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर रहे थे, जहाँ अपरिष्कार और अश्लीलता तथा उत्तेजनापूर्ण संगीत-नाटक का ही प्रभुत्व था। लेकिन इसके साथ इस युग में अमर उपलब्धियाँ भी थीं।

बेन जान्सन शेक्सपियर से अधिक विद्वान् था और अपने युग के लोगों में सबसे अधिक रोबदार व्यक्तित्व का आदमी था। वह अधिक सांसारिक भी था। मगर दुःखान्तक नाटक के लेखक की हैसियत से निश्चित ही निम्नकोटि का था। शायद क्लासिक साहित्य का उसका ज्ञान आवश्यकता से अधिक था और वह सिद्धान्तों को व्यवहार में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप करने देता था। इस प्रकार इस सूक्ति में कुछ तत्व अवश्य है कि शेक्सपियर स्वर्ग से भेजा गया था और जान्सन कालेज से (यद्यपि जान्सन कभी किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने नहीं गया)। सुखान्त नाटक में, दूसरी ओर, उसे लगभग शेक्सपियर के समान ही सफलता मिली। उसके नाटक मानवीय कम थे, इतने मृदु भी न थे कि याद रखे जा सकते; बहुत शालीनतापूर्ण ढंग से। अलंकृत भी न थे। परन्तु एक नये क्षेत्र—व्यंग्यात्मक सुखान्त नाटक-में वे उत्कृष्ट थे और उन्होंने भविष्य के नाटककारों के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया।

'कामेडी आव ह्यूमर्स' (प्रहसनों का सुखान्तक) जिसे जान्सन ने केवल अपने व्यवहार में ही नहीं, वरन् अपने बहु-प्रचारित सिद्धान्त में भी सामने रखा था एक ऐसी विधा थी जिसमें क्रिया के स्त्रोत परिस्थितियों में ढूँढे जाते थे, पात्रों में नहीं। घटना का उद्भव पात्र से होता था, अब वह, स्वयं उसी के लिए विकसित नहीं किया

ब्राउन कृत 'शेक्सपियर' (गार्डन सिटी १९४९) अधिक लोकप्रिय और सुपाठ्य ग्रंथ हैं।

जाता था। इसके अतिरिक्त, जान्सन का कथन था कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई विशिष्टता अवश्य होती है, उसके चरित्र की विशिष्टता—संक्षेप में 'हास्य'—जो कि सुखान्त नाटक का स्त्रोत है। और 'एवरीमैन इन हिज़ ह्यूमर' और 'वोलपोन' और 'पोयटेस्टर' के साथ ऐसी कमज़ोरियों पर व्यंग्य करने के लिए आगे बढ़ा और उसने भविष्य की सन्तान के लिए ऐसे नाटक लिख छोड़े जो आज भी उतने ही रोचक लगते हैं जितने रोचक वे एलिजाबेथ के युग में थे। 'दी अलकेमिस्ट' और 'बार्थोलोमियो फ़ेयर' भी उतने ही लोकप्रिय हैं। हुआ यह कि जान्सन के समय के कुछ लोगों ने सोचा कि उसके कुछ पात्रों के चरित्र सम्बन्धी हास्य में उनके स्वभाव की कुछ कम प्रशंसनीय विशेषताएँ पायी जाती हैं। फल यह हुआ कि तुरन्त उसने अपने को मंचीय झगड़ों में फँसा हुआ पाया। एक नाटक में प्रतिस्पर्धी नाटककार पर व्यंग्य किया गया और फिर उसके नाटक में पहिले वाले नाटककार के ऊपर प्रति-व्यंग्य किया गया। बेन जान्सन तो भावी पीढ़ियों के लिए जीवित रहा, मगर अधिकतर 'कामेडीज़ आव ह्यूमर्स' की प्रतिस्पर्धी कृतियाँ अलमारियों में अछूती पड़ी हैं, उनमें से बहुत कम ही छप भी पायीं।

फिर भी 'दी वार आव थियेटर्स' के संघर्ष में जान्सन के विशिष्ट प्रतिद्वन्द्वी डेकर और मार्स्टन ने ऐसे नाटक लिखे जो केवल अपने ही समय में महत्वपूर्ण न थे, बल्कि जो अनेक तत्कालीन नाटककारों की रचनाओं को पीछे छोड़ कर आज भी जीवित हैं। डेकर का एक यथार्थवादी सुखान्तक 'शू मेकर्स हालीडे' और उसका रोमांटिक सुखान्तक 'ओल्ड फार्चूनेट्स' अब भी ज़ोरदार हास्य उत्पन्न करते हैं। 'दी आनेस्ट व्होर' अपनी सच्चाई और असामान्यता के ही कारण आज भी जीवित है। बहरहाल, मास्टर्न सब से अधिक याद इसलिए किया जाता है कि उसने कुछ ही समय पहिले के अपने प्रतिस्पर्धी जान्सन और जार्ज चैपमैन से मिल कर 'ईस्टवर्ड हो' लिखने में सहायता प्रदान की। व्यंग्यात्मक सुखान्तक के क्षेत्र में जान्सन के ही समकक्ष चैपमैन था। उसने अपने दुःखान्तकों में गहरा चरित्र-चित्रण न रहते हुए भी असामान्य रूप से ओज भरा। मगर उसका नाम बार-बार जो लिया जाता है वह इसलिए नहीं कि उसने नाटक लिखे, बल्कि इसलिए कि उसने होमर का अनुवाद किया। उसके सुखान्तक 'आल फ़ूल्स' से निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं जो यह प्रमाणित करती हैं कि कभी-कभी उसके पद्य अत्यन्त उत्कृष्ट होते थे :

दम्भ भी कितना अंधा होता है !
दूसरों से सम्बन्धित विषयों की आलोचना करते समय
हमारी आँखें कैसे चील की तरह तेज़ हो जाती हैं—

मगर अपनी आलोचना करते समय हम कैसे चमगादड़ बन जाते हैं....

थामस हेउड ने, जिसे लैम्ब ने 'हमारा गद्यात्मक शेक्सपियर' की उपाधि दे दी थी, रंगमंच को 'ए वोमन किल्ड विथ काइंडनेस' नाम का अपना ऐसा घरेलू नाटक प्रदान किया जो उस युग के अपने तरह के नाटकों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जहाँ तक सुखान्तक का प्रश्न है मासिंजर ने 'ए न्यू वे टु पे ओल्ड डेट्स' नामक रचना तैयार की। इस रचना का निर्माण उसने सर गाइल्स ओवररीच के चरित्र के आधार पर किया था। आज भी यह रचना अत्यन्त लोकप्रिय है। उसके अतिरिक्त एक और भी अलग-थलग नाटक है वेब्स्टर कृत 'दी डचेज़ आव माल्फी।' बाद के सालों में उसकी प्रसिद्धि बढ़ी थी। यह एक उग्र नाटक है, परन्तु यह हमें विगलित कर देता है। यह इस बात का उदाहरण है कि जिस नाटक को शेक्सपियर और मारलो ने इतना महान् और शालीन बना दिया था, वही किस प्रकार उत्तेजक संगीत–नाटक और आडम्बर अलंकृति की ओर फिर चला गया।

अँग्रेजी नाटककारों में फ्रांसिस ब्यूमां और जान फ़्लेचर सबसे प्रसिद्ध सह-लेखक है। ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि ब्यूमां-फ़्लेचर कृत नाटकों से ब्यूमां से भी अधिक मांसिजर का सम्बन्ध है। चाहे श्रेय कोई भी ले ले, मगर यह एक ऐसा संयुक्त-श्रम का कार्य था जिसमें दो स्त्रोतों का चिन्ह कदापि नहीं मिलता। यह भी नहीं कि सह-प्रयास से रचे गये इस नाटक का क्षेत्र बहुत सीमित रहा हो। हास्यमूलक वीरोचित नाटक 'दी नाइट आव दी बर्निंग पेस्टल' अथवा दुःखान्तक सुखान्तक 'दी नाइट आव माल्टा' अथवा सीधा-सादा सुखान्तक 'रूल ए वाइफ़ एण्ड हैव ए वाइफ़' (जिसका लेखक अक्सर केवल फ़्लेचर को ही माना जाता है), 'दी मेड्स ट्रेजेडी' से अधिक प्रसिद्ध हुए। 'नियमित' रंगमंच के इतिहास में संयुक्त नाट्य-रचना का यह सब से अधिक सफल युग रहा है। बाद के शेष एलिजाबेथी नाटकों में यदि संवेगों का आधिक्य रहा है, तो इसके साथ ही हम ब्यूमां और फ़्लेचर को भी उनके नाटक 'दी नाइट' में प्रायः इसी प्रकार के हास्य-व्यंग्य के लिए साधुवाद दे सकते हैं। फिर भी, हमें यह समझना चाहिए कि अब हम ऐलिजाबेथी नाटक की ऊँचाई एवं उत्कृष्टता से नीचे उतर कर ढलाव की ओर बढ़ रहे हैं।

मोटे तौर से, १५९० ई० से १६२० ई० के बीच के तीस वर्षों में, रंगमंच का ख़ूब विकास हुआ था। उसने शेक्सपियर को पूर्ण विजय प्राप्त करते और जाते हुए देखा; उसने उन तमाम नाटककारों और नाटकों को देखा, जिनकी चर्चा हमने यहाँ की है। इस युग में जीवन की गति तीव्र थी, उसमें साहसिकता थी, अलंकृति

थी। रंगशाला उभर कर, अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में इस युग की व्याख्या करने लगी थी, उसका दर्पण बन गयी थी। महान् नाटककार भी थे; अक्सर महान् नाटककार स्वयं अभिनेता भी थे या, वे वहीं रहकर अभिनयों की देखभाल भी करते थे। मंच का स्थान जीवन के हृदय में था। लन्दन अब भी एक मध्ययुगीन नगर था जिसमें दो लाख से भी कम लोग आबाद थे। मगर नाटककारों ने इसके द्वार पर इटली, फ्रांस और स्पेन को ला खड़ा किया। और प्राचीनों के ऐसे काल्पनिक देशों को यहाँ समुपस्थित कर दिया जिन्हें उसके पहिले के कवि अथवा भौगोलिक लोग जानते ही न थे। इन्होंने जिस ख़ज़ाने को यहाँ लाकर रख दिया उसकी विदेशी रत्नराशि उतनी ही मूल्यवान् थी जितनी वह राशि थी जिसे मानव हृदय और मानवीय दुर्बलताओं के गह्र-गह्वर से ढूँढ़कर निकाला गया था। इंगलैंड में यह अन्वेषण, विकास-विस्तार, और समृद्धिशाली जीवन का युग था। नाटककारों ने जिस प्रकार की रत्नराशि का पता लगाया और संग्रहीत करके रख दिया उसकी तुलना किसी भी अन्य क्षेत्र से नहीं की जा सकती।

इन तमाम वर्षों में, जब कि सार्वजनिक रंगशालाएँ इस प्रकार समृद्ध हो रही थीं, और लन्दन के जीवन को इतना समृद्ध बना रही थीं, दरबारों में ऐसी रंगशालाएँ थीं और विद्यार्थियों, बच्चों की कम्पनियों और ग़ैर-पेशेवर लोगों द्वारा ऐसे अभिनय हो रहे थे जिनका दर्शन हम तब करेंगे जब हम चेहरे लगा कर किये गये तथा अन्य दरबारी नाटकों का अनुशीलन करेंगे। (पृष्ठ ३६२ पर चित्र देखिए और प्लेट नं० २५ देखिए!) मगर ग्रीन और मारलो और शेक्सपियर के नाटक लकड़ी की बनी रंगशालाओं के लिए गये थे लिखे (फिर देखिए नीचे का चित्र), और ज़मीन पर बैठने वाले निम्न-स्तरीय लोगों, छज्जों पर बैठे सजे-बजे छैलों और मंच पर विराजमान मनचले सभ्रान्त सामन्तों के लिए लिखे गये थे।

विशेष प्रकार की, छत से ढकी रंगशाला का आरम्भ हो गया था, और निस्सन्देह इटालवी शैली की सजी-बजी सेटिंग की माँग के प्रति अधिकाधिक मात्रा में ध्यान दिया जाने लगा था——पहिले पोशाकों और साज-सज्जा की अन्य सामग्री पर ध्यान दिया गया और बाद में, व्यंजनापूर्ण 'दृश्यावली' के लिए प्रयत्न किया गया। परन्तु सामान्यतया, मंच के ऊपर अभिनय करने की एलिज़ाबेथी प्रणाली ही उस महान् युग में चलती रही। नाटक विशेष रूप से अभिनीत होने के लिए ही लिखे जाते थे, इनमें दृश्यमूलक सजावट अथवा पठनीयता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। इस युग में नाटककार, अभिनेता, नाट्य-प्रस्तुतकर्ता और प्रेक्षक——भावना में बिलकुल एक हो गये थे। मनोरंजन के कार्य में सभी एक दूसरे के साथ सहयोग करते थे, किसी प्रकार

उन्होंने प्रतिभा के स्त्रोतों के मार्ग उन्मुक्त कर दिये थे। सभी उस उच्च, महान्, काव्यात्मक रंगशाला के अंग बन गये थे जिसका चित्र शेक्सपियर का नाम लेते ही हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है।
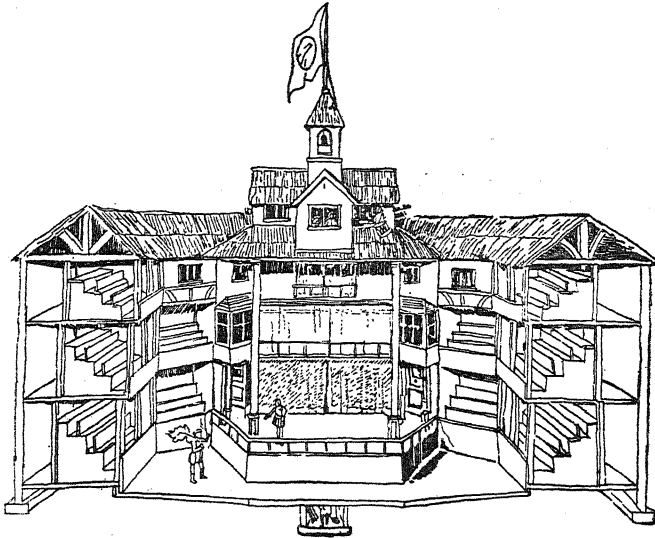
ग्लोब थियेटर के रंगमंच की एक आकृति जैसी कि वह गैलरी के संभागीय कट से दिखायी देती थी, लन्दन स्थित शेक्सपियर की "वुडेन ओ।" (जान क्रानफ़ोर्ड एडम्स कृत एक पुनर्रचना के आधार पर मारिस पर्सिवल द्वारा रेखांकित ।)

अध्याय १३

शुद्धतावादी और शैतान का उपासनागृह

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के इंगलैण्ड के शुद्धतावादी (प्यूरिटन) लोगों ने जितना ही ईसा-विरोधी साम्राज्य के उस अंश का अनुसंधान किया जिसे थियेटर-लैण्ड कहा जाता था, उन्हें उसमें स्थित ऐसे अनाचारों और गर्हित बातों का पता चला, जिनका संकेत प्राचीन रोमन काल के बदनाम टरटूलियन ने भी नहीं किया था। और निश्चय ही 'रंगशाला के अभिशाप' की समस्या अत्यधिक जटिल बन गयी थी। पिछले सम्राटों के नैतिकतावादी आखिर ऐसे रंगमंच के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे जो सीधे देवी-देवताओं की उपासना वाली परम्परा में था---यद्यपि मूल में वह धार्मिक था, परन्तु ऐसा वह हीदोनीन देवताओं की कृपा से ही था। मगर एलिजाबेथी रंगमंच तो ईसाई चर्च की परम्परा में था, वह ईसाई धर्म सम्बन्धी अभिनयों का उत्तराधिकारी था और शुद्धतावादी भी ईसाई ही थे, यद्यपि वे पोप-विरोधी थे। रोम के पतनशील मंच के विपरीत, उसका सम्बन्ध विद्वान लोगों, कवियों, सामन्तों से था। तब तो यह और भी भयानक बात थी कि यह इतना अश्लील, इतना अपवित्र था!

शुद्धतावादियों के उपदेशों में और परचों में रंगशाला के जो पाप गिनाये गये थे वे ये थे : चर्चों को खाली कर देना, देवी-देवताओं की पूजा परम्परा को जारी रखना, सत्य को भ्रष्ट करना, पापमय, राजद्रोहपूर्ण, अश्लील कहानियों को मंच पर प्रस्तुत करना, वंचकता और व्यभिचार सिखाना, भगवान् को प्रेरित करना कि वह लन्दन में प्लेग भेज दे, युवकों को आलसी और अपव्ययी बनाना, आवारा स्त्रियों और उनके ग्राहकों के मिलने के लिए स्थान देना, पोप की सहायता करना, कुंवारी लड़कियों और पतिव्रता पत्नियों को दुश्चरित्र बनाना, चारित्रिक दृढ़ता और गम्भीरता को खोखला बनाना आदि, आदि।

अब धार्मिक दृष्टिकोण से रंगशाला की निन्दा कठोरतम रूप में हो चुकी थी, चाहे उसमें कुछ अच्छाई रही भी हो, पर ईश्वर के सामने वह अपराधिनी थी : क्योंकि क्या शैतान ने इसका आविष्कार नहीं किया था, क्या उसने इसे बहुदेववादियों को प्रदान नहीं किया था, क्या इन बहुदेववादियों ने इसे पोपवादियों को प्रदान नहीं किया था, जिन्होंने इसे ईश्वर के मन्दिर में प्रविष्ट होने दिया ? 'अनीश्वरवादी नाटक और विष्कम्भक जो इस देश में इतने प्रचलित हैं : वे बेबीलोन के हरामी नहीं तो और क्या हैं ? क्या यह रंगशाला ग़लतियों और भ्रमों की बेटी नहीं है ? उनकी यह नारकीय कृति (शैतान की अपनी रचना पवित्र वस्तुओं का मज़ाक़ उड़ाने के लिए) जिसे उन्होंने हीदेन लोगों को दिया, हीदनों से पोपवादियों के पास और पोपवादियों के पास से हमारे पास नहीं आयी ? . . .अब वे धर्म को और पवित्र वस्तुओं को मंच पर लाते हैं : इसमें कोई आश्चर्य थोड़े ही है, कि स्वयं ईश्वर की निन्दा की जाती है तो योग्य से योग्य और शक्तिशाली से भी शक्तिशाली आदमी भी कैसे बचते ?' १६०७ ई० में एक उपदेश में विलियम क्राशा ने ये बातें कहीं, —यह वह समय था जब कि शेक्सपियर अपने नाटकों की रचना कर रहा था और इससे भी पहिले १५७७ ई० में ही थामस ह्वाइट ने निम्नांकित उपदेश दिया था :

लन्दन के साधारण नाटकों को देखिए। उस भीड़ को देखिए जो वहाँ एकत्र होती है, पीछे-पीछे जाती है। खूब अच्छी तरह सजी-बजी भरी-पूरी उन रंगशालाओं को देखिए जो कि लन्दन की अपव्ययिता और मूर्खता के शाश्वत प्रासाद हैं। . . .क्या मैं उन भयानक पंछियों की गिनती करूँ जो इस घोंसले में बच्चे जनती हैं ? निश्चय ही मैं लज्जित हूँ और उसका वर्णन करके आपके पवित्र कानों को अपमानित नहीं करूँगा। मगर पुराने संसार की तुलना फिर होने लगी है और व्यभिचारगृह मात हो गये हैं। अगर मैं उनकी सच्ची तस्वीर यहाँ खींचूँ तो पता चलेगा कि सब लोगों के अनुमान से अधिक और बहुत से लोगों के विश्वास से भी अधिक भयानक अनाचार और निरन्तर बढ़ते पाप इन रंगमंचों द्वारा होते हैं : निस्सन्देह आप शायद ही किसी ऐसे पाप का नाम ले सकें जो कि उस गन्दे नाले में खुल कर न होता हो : चोरी और छिनालपन : घमण्ड और उड़ाऊपन: शैतानियत और ईश्वर निन्दा : नरक के ये तीनों जोड़े कुत्ते वहाँ सदैव भूँकते रहते हैं, बहुतों को काट भी लेते हैं, ऐसा काट लेते हैं कि वे कभी अच्छे नहीं हो पाते। . . .

थियेटर और कर्टेन की चर्चा करते हुए, जिनका निर्माण अभी-अभी हुआ था, जान नार्थब्रुक ने १५७७ ई० में लिखा :

शैतान अपना काम इससे अधिक तेजी से न कर पाता; अपनी इच्छाओं को पूरी करने और दूसरों को सिखाने के लिए उसे इससे अच्छी पाठशाला भी न मिलती, उन स्थानों, नाटकों और रंगशालाओं से बढ़कर, औरतों को काम-वासना के जाल में फँसाने और निकृष्ट छिनालपन की अश्लील सम्भोगेच्छा का शिकार बनाने का स्थान अन्यत्र कहाँ मिलता...इसने लोगों के दिलों में इतनी अन्धी उत्तेजना भर दी है कि वे यह खुले आम कहते नहीं लजाते कि ये नाटक उतने ही अच्छे हैं जितने कि धर्मोपदेश, और यह कि नाटक देखकर वे ईश्वर की वाणी सुनने के बराबर या उससे भी अधिक सीखते हैं...बहुत से ऐसे लोग हैं जो एक व्यर्थ का नाटक देखने के लिए दो या तीन घण्टे रुक सकते हैं, मगर एक धर्मोपदेश सुनने के लिए वे एक घण्टा भी नहीं खर्च कर सकते।...उनके नाटकों में आप तिड़ीबाज़ी, शरारत, धोखा और अश्लीलता से सम्बन्धित सारी बातें सीख लेंगे। जब आप यहाँ यह सीख लेंगे कि अपने पति अथवा पत्नी को कैसे धोखा दिया जाय, कैसे झूठ बोला जाय, कैसे वेश्यावृत्ति की जाय, कैसे दूसरों के पास उनकी प्रेमिकाओं को पहुँचाया जाय, कैसे किसी का सतीत्व नष्ट किया जाय, कैसे किसी को बहकाया जाय, कैसे किसी के साथ दग़ा की जाय, चापलूसी की जाय, झूठ बोला जाय, क़सम खायी जाय, क़सम तोड़ी जाय, कैसे व्यभिचार के लिए औरतों को फँसाया जाया, कैसे हत्या की जाय, जहर दिया जाय, कैसे राजाओं की अवज्ञा की जाय और उनके ख़िलाफ़ विद्रोह किया जाय, कैसे ख़ज़ानों को लूटा जाय, या कैसे कामाचार की ओर बढ़ा जाय, कैसे नगरों को क़स्बों को, लूटा जाय, बर्बाद किया जाय, कैसे रुपया बर्बाद किया जाय, कैसे ईश्वर-निन्दा की जाय, कैसे प्रेम के गन्दे गाने गाये जायँ, कैसे गन्दी बातें बकी जायँ, कैसे घमण्डी बना जाय, कैसे दूसरे देशों का मज़ाक उड़ाया जाय, व्यंग्य किया जाय, निन्दा की जाय...तो ऐसे विष्कम्भकों और अन्तरालों में क्या इन बातों को अमल में ले आना भी आप नहीं सीख जाएँगे ?

रंगशालाओं में जो उदाराशयता का पाठ पढ़ाया जाता था, उनके अतिरिक्त और भी ऐसी शिक्षाएँ और प्रभाव थे, जिन्हें ये प्यूरिटन लोग पापमूलक समझते थे—जिनमें, पता नहीं क्यों, वे दुःखान्त नाटक से उत्पन्न दुःख को और हास्य को भी शामिल कर लेते थे।

फ़िलिप्स स्टब्स ने अपने 'दी एनाटमी आव एब्यूज़ेज़' में अभियोग लगाते हुए कहा है :

"सम्राट् की खिल्ली उड़ाने वाले और उनको अपमानित करने वाले पाखण्डी

और चापलूसी करने वाले 'ग्नाटोज' क्या बिना दण्ड पाये ही रह जायँगे ? इसलिए होशियार हो जाओ, तुम चेहरे लगा कर नाटक करने वाले अभि नेताओ, तुम रँगे-चुने शव स्थानो, तुम मंच धूर्त्तो (एम्बोडेक्सटर्स) समय रहते होशियार हो जाओ और हिसाबिये की तरह अपना हिसाब-किताब पहिले से ही दुरुस्त कर लो, कि तुम जो कुछ कर रहे हो उसका नतीजा क्या होगा ! ऐसा न हो कि ईश्वर का क्रोध

इंगलैण्ड के सत्रहवीं शताब्दी के रंगमंचों के दो सम सामयिक रेखांकन।
('रोक्साना' और कर्कमैन की 'विट्स' से।)

तुम्हारा नाश कर दे। भगवान् को अब गालियाँ मत दो, उसकी प्रजा को अपनी गन्दगी से अब पापाचारी मत बनाओ, उसकी पवित्र वाणी में ऐसी अपवित्र निस्सारता को सम्मिश्रित मत करो।...अगर उनके नाटकों में अपवित्र बातें हैं तो वे ईश्वर का अपमान करने की ओर अभिमुख हैं, वे पाप को पानी दे रहे हैं--ये दोनों बातें घृणित हैं। इसलिए चाहे वे यह करते हों या वह करते हों, वे मर्यादा और शालीनता के शत्रु हैं, वे शैतान का थन पीकर हमें मूर्तिपूजा, देवपूजा और पाप का रस पिला रहे हैं। जहाँ कहीं भी वे जाते हैं, ईश्वर का अभिशाप उनके ऊपर सवार रहता है। यदि ईसा का निवास उनके भीतर रहता है तो वे ईसाई साम्राज्य में कहीं भी टिकने का स्थान नहीं

पा सकते। क्योंकि जितनी देर तक वे वहाँ रहते हैं जहाँ अभिनेता जाते हैं, उतनी देर तक वे रति के राजमहल में रहते हैं, शैतान के पूजागृह में जाकर राक्षस की उपासना करते हैं, ईसामसीह के साथ दग़ा करते हैं। ...क्या वे लोगों को ईश्वर की वाणी सुनने से, ईश्वरपरक भाषणों और धर्मोपदेशों को सुनने से विरत नहीं करते? आप दुगनी, तिगनी तायदाद में उन्हें अपनी ओर ले जायँगे जब कि भगवान् का मन्दिर खाली पड़ा रहेगा? क्या वे वेश्यालय नहीं चलाते, अखण्ड मूर्खता नहीं करते, मूर्तिपूजा-परक उपासना की याद को ताजा नहीं करते? क्या वे पुँश्चलता और अपवित्रता को बढ़ावा नहीं देते? इतना ही नहीं, क्या वे कुंवारी कन्याओं के सतीत्व और पवित्रता का भक्षण नहीं करते? इसका प्रमाण यह है कि वे निरन्तर, दिन प्रति दिन, प्रत्येक घड़ी, हर रात और दिन को, हर आँधी-बरखा को भी झेल कर नाटकों और विष्कम्भकों को देखने के लिए रंगशाला और यवनिका के पास जाते हैं..."

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में 'नियमित' रंगशालाओं के अतिरिक्त लोकनाट्य और लोकनृत्य सम्बन्धी सक्रियता भी पर्याप्त मात्रा में रही है। यहां 'ममर्स' के एक दृश्य का अंकन है जो कि ब्रूगेल के चित्र पर आधारित काष्ठ-चित्र है।

१५५० ई० से १६२० ई० के बीच अतिशय ईमानदार और सशक्त रूप से न्याय-परायण प्युरिटनों ने रंगशालाओं पर तीव्र आक्रमण किये थे, उनके उत्तर में नाटक-

कारों ने एक के बाद एक छोटी पुस्तिकाएँ लिखीं।[1] मगर उनमें सबसे अच्छे उत्तर तो मार्लो, शेक्सपियर और जान्सन के नाटक थे। (दूसरे तथा और भी अधिक कटु उत्तर प्युरिटनों के उन व्यंग्य-चित्रों में थे जो बीसों सुखान्त नाटकों में अंकित किये गये थे।)

अब हम ऐसे युग में आ गये हैं, जब कि पहिले से अधिक स्पष्ट रेखा पवित्रतावादी कार्यकर्ताओं और ऐसे लोग के बीच खींच दी गयी जो अनियन्त्रित जीवन व्यतीत करते थे या जो अपने आरामतलब पड़ोसियों के सम्बन्ध में आश्वस्त रहते थे। ज्यों ही इंगलिश चर्च ने अपना सम्बन्ध रोम से तोड़ लिया, सुधारवादियों ने नाटक को पोप और पोपवादियों के विरुद्ध कठोर आलोचना का अस्त्र बना लिया (आपको याद होगा कि ओसोरी के बिशप ने 'किंग जान' लिखा था जिसकी प्रसिद्धि 'बिलियस बेल' के नाम से हुई थी।) मगर अब रंगशाला निश्चय ही प्युरिटन-विरोधियों के पक्ष में हो चली थी। अगर यह असयंमित जीवन व्यतीत करने वालों के पक्ष में थी तो यह हास्य और उत्कृष्ट काव्य और दुःखान्त नाटक के शोधन की ओर भी थी।

---

१. अपनी अमूल्य पुस्तक दी एलिज़ाबेथन स्टेज (चार भाग, आक्सफोर्ड, १९२३) में ई० के० चैम्बर्स ने उत्तरों और आरोपों के तिरसठ उद्धरण (जिससे मैंने अपना उद्धरण भी लिया है) छापे हैं; और उसने 'डाकूमेन्ट्स आव कन्ट्रोल' एक सौ साठ उद्धरण लेकर जोड़े हैं। अन्तिम ग्रंथ सूची सम्बन्धी टिप्पणी में जो पुस्तकें दी गयी हैं वे सभी इस विषय को संक्षिप्त रूप में लेती है। मगर हम जिस युग में प्रवेश कर रहे हैं, उसके सारे तत्वों के विषद अनुशीलन के लिए पाठकों को अलर्डाइस निकल्स कृत 'ए हिस्टरी आव रेस्टोरेशन ड्रामा' (कैम्ब्रिज, १९२८) और उसी लेखक की बाद की रचना 'ए हिस्टरी आव्र अर्ली एटिन्थ सेन्चुरी ड्रामा' और 'ए हिस्टरी आव लेट एटिन्थ सेन्चुरी ड्रामा' (केम्ब्रिज, १९२९ और १९२७) पढ़ना चाहिए। निकल्स की एक पूर्णतया सचित्र पुस्तक है 'दी डेवलपमेन्ट आव दी थियेटर' (न्यूयार्क तृतीय संस्करण, १९४८)। इस युग तथा अंग्रेजी रंगशाला के सम्पूर्ण इतिहास में स्थूल रंगशाला और रंगमंच में जो भी परिवर्तन हुए इसका सर्वश्रेष्ठ अनुशीलन इस ग्रंथ में है। अभिनय एवं अभिनेताओं के संक्षिप्त उल्लेख के लिए देखिए' आर० फ़क़् हार्सन शार्प कृत 'ए शार्ट हिस्टरी आव दी इंगलिश स्टेज' लन्दन और न्यूयार्क, १९०९) इस विषय के उत्कृष्ट अध्ययन हैं—लिली बी० कैम्पबेल कृत 'सीन्स एण्ड मेशीन्स आन दी इंगलिश स्टेज ड्यूरिंग दी रेनासां' (केम्ब्रिज, १९३३) और अलर्डाइस निकल्स कृत 'स्टूअर्ट मास्कस एण्ड दी रेनासां स्टेज' (लन्दन, १९३७)।

१६१० ई० में काशा ने 'शैतान, पोपवादियों और अभिनेताओं' तीनों को एक ही वर्ग में रखा था। यह जो नया वर्गीकरण हुआ वह हमें इस बात का स्मरण दिलाता है कि चीनियों ने भी अभिनेताओं, नाइयों और गुलामों पर विशेष क़ानूनी प्रतिबन्ध लगाये थे और रोम वालों ने चोरों, कुटनों, भगोड़ों, अभिनेताओं और काव्यपाठ करने वालों को 'इनफेमिस' (कलंकित) नाम की एक ही श्रेणी में रखा था; और हिन्दुस्तान में जहाँ एक ओर कुलीन अभिनेताओं का एक वर्ग था, वहीं एक दूसरा वर्ग भी था जो वधिकों, मछुओं, फाँसी देने वालों और भंगियों के समकक्ष माना जाता था और इसीलिए वह नगर के बाहर रहने के लिए और सड़क की जिस पटरी से कुलीन लोग चलते थे, उसके दूसरी ओर की पटरी से चलने के लिए विवश था। इंगलैण्ड में, १५४५ ई० में ही 'सामान्य अभिनेता' सरकारी तौर से 'गुण्डों, आवारों, स्वामी हीन व्यक्तियो और दुश्चरित्र लोगों के वर्ग का मान लिये गये थे। और एलिज़ाबेथी नाटक के सम्पूर्ण गौरवशाली युग में नागरिक अधिकारी इस इच्छा और प्रयत्न में उपदेशकों के साथ थे कि इन 'संदिग्ध चरित्र वाले दुष्टों' को 'सभी ईसाई साम्राज्यों के बाहर निकाल दिया जाय।' तो फिर उनको दमन, देश निष्कासन, और विनाश से किसने बचाया ?

एलिज़ाबेथ के दरबार ने, प्रायः सहिष्णुता के वशीभूत होकर और यदा-कदा संरक्षण प्रदान करके, इन रंगशालाओं को एक सुनिश्चित स्थान प्रदान किया, नाटककारों को आत्मविश्वास दिया, कुलीन व्यक्तियों को अनुज्ञा प्रदान की कि वे बिना किसी संकोच के नाटक देखने जायँ। ज्यों ही किसी नाटक में शाही खानदान की अश्लील आलोचना होती अथवा कोई राजद्रोहात्मक बात कही जाती राज-दरबार तत्काल नाटककार और अभिनेता पर वार करता। मगर साम्राज्ञी और सामन्तों की सहानुभूति रंगशाला के पक्ष में थी। (हाँ, बाद में, समस्या राजनीतिक बन गयी कि इंगलैण्ड पर सत्ता किसकी रहे---दरबार की या पवित्रतावादियों की।) और कुछ समय बाद कम से कम एक महत्वपूर्ण अवसर पर शासकीय सत्ता रंगमंचों की भर्त्सना करने वाले को सख्त सज़ा देने के लिए आगे बढ़ी थी :

१६३२ ई० में, असहिष्णु नैतिकतावादी और धर्मोन्मत्त विलियम प्राइन ने, सात वर्षों तक लगातार काम करने के बाद, एक रचना प्रकाशित की जिसका नाम 'हिस्ट्रियो-मास्टिक्स' था। यह एक ग्यारह सौ पृष्ठों की पुस्तक थी जिसमें रंगमंच और उसके अनाचारों पर क्रूर आक्रमण किया गया था। जहाँ कहीं भी, कभी भी, किसी भी व्यक्ति द्वारा जो कि रंगमंच से नाम के लिए भी सम्बन्धित था, रंगशाला के भीतर या आस-पास किये गये किसी भी अपराध का सुराग मिला, प्राइन ने उसे टाँक लिया और उसे

इस अपशब्दों के क्लासिक-ग्रंथ में सदैव के लिए जड़ दिया। इस संग्रह में जिस सामग्री का उपयोग किया गया वह एलिज़ाबेथ काल के बाद के पाठकों के लिए, कोई नयी चीज़ न थी। मगर हुआ यह कि इस अभागे लेखक ने उस दुर्घटना की चर्चा करते हुए, जिसमें कुछ पेशेवर अभिनेत्रियों ने एक अभिनय में भाग लिया था (निस्सन्देह ये स्त्रियाँ फ्रांसीसी थीं)—यह कह दिया कि ये अभिनेत्रियाँ 'बदनाम वेश्याएँ' थीं। जिस समय इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ, उसी समय, साम्राज्ञी हेनरीटा मेरिया एक ग्रामीण नाटक के ग़ैर-पेशेवर प्रदर्शन के लिए रिहर्सल कर रही थीं। प्राइन को बुरी तरह दण्डित किया गया, उसे आजीवन कारावास और जुर्माने की सज़ा मिली, उसके दोनों गालों पर एस० एल० (राजद्रोही निन्दक) खुदवा दिया गया और उसके दोनों कान-काट लिये गये।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सारी घृणा, असहिष्णुता, और युद्धोद्यतता एक ही तरफ़ न थी। और निश्चय ही कोई भी व्यक्ति, जो रंगशाला को क्षणिक और व्यावसायिक स्नेह से अधिक गहराई के साथ प्यार करता है, जो रंगमंच को सर्वथामुक्त देखना चाहता है, वह उस स्थिति को देखकर संशयात्मक ढंग से सिर हिला देगा जो कि शेक्सपियर से युग के पचास वर्ष बाद शैतान के पूजा-मन्दिरों में हुई। क्योंकि बेन जान्सन, शर्ले और ब्यूमां और फ्लेचर के बाद शायद ही कुछ रचा गया हो, जिसका आज कोई मूल्य हो; हाँ, रेस्टोरेशनकालीन कुछ सुखान्तक अवश्य लिखे गये जिसमें शालीनता-पूर्ण वाक्चातुर्य और आत्मा की भ्रष्टता का सम्मिश्रण इतनी दक्षता के साथ किया गया था, जैसा कि संसार में अन्यत्र नहीं किया जा सका।

यदि रंगशालाई अभिनेताओं और नैतिकतावादियों के बीच ईसा के जन्म के ठीक पहिले से ही अपूरणीय खाई न रही होती तो इतने दिनों तक इन दोनों दलों में अनवरत, इस प्रकार की लड़ाई न चलती रहती। एक बात तो है। ईसाई संसार प्रकृत्या दो वर्गों में विभक्त रहा है। एक अंग इन्द्रियगत आनन्दों पर अविश्वास करता रहा है, हास्य पर सन्देह करता रहा है और वह जीवन के हल्के-फुल्के, प्रसन्नतामूलक, अधिक रंगीन तत्वों को बहिष्कृत करने और दबाने के लिए सदैव उत्सुक रहा है। दूसरा अंग देवी-देवतावादी मनोरंजनों से चिपका रहा है, जीवन में अवसर ढूँढने, साहसिक कार्य करने, इन्द्रियपरक और भावनामूलक अनुभवों को जीवन के प्रियतम आनन्द के रूप में स्वीकार करने के लिए उद्यत रहा है। फिर, प्यूरिटन स्पष्टता को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। और, वह जानता है कि सच्चाई से अधिक भयानक वस्तु और कुछ नहीं है। उसकी पहिली प्रेरणा यह होती है कि वह ज्ञान और अनुभव को एक सीमित दायरे में रखे; वह उसे समुचित आचरण की उस धारणा के अनुसार रखे जो कि एक अपौर-

षेय धर्म की पुस्तकों में स्वीकृत है।

कलाकार जानता है कि कला, विशेषतः रंगशाला, निषेधों और सीमाओं में घुट कर मर जाती है। वह स्वभावतः प्रतिबन्धक आज्ञाओं के विरुद्ध संघर्ष करती है। फिर भी अपने ही पक्ष के कुछ लोगों की गद्दारियों के कारण उसका संघर्ष और भी अधिक जटिल बन जाता है। सत्रहवीं शताब्दी के इंगलैण्ड में कामाचारियों, अतिरेकवादियों, व्यवसायियों ने अपनी आज़ादी इतनी मर्यादाहीन बना दी कि उस समय के अनेक नाटक १००० में ९९९ व्यक्तियों को आज अरुचिकर पाठ्य-सामग्री मालूम पड़ते हैं। हमारी अपनी बीसवीं शताब्दी में प्रबन्धक और नाटककार, जिनके दिमाग़ में अर्थलाभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता, मंच पर सनसनीपूर्ण नाटक प्रस्तुत करते हैं, जिसमें मार-पीट, नग्नता और यौन-परक वीभत्सता का प्रदर्शन होता है; और इस प्रकार वे उन लोगों का मार्ग अत्यन्त कठिन बना देते हैं जो सीधी-सादी आज़ादी के इच्छुक हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम यहाँ यही कहना चाहते हैं कि ये व्यावसायिक लोग नाटक को ऐसे क्षेत्रों में पहुँचा देते हैं जहाँ विषय-वस्तु प्रेक्षक के मन पर इतना छा जाती है और उसे इतना अभिभूत कर देती है कि रंगशालीय कला का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। स्टुअर्ट शासकों के युग में सफलतापूर्वक निषिद्ध कुछ नाटकों का यदि हम अनुशीलन करें—केवल उन्हीं नाटकों का नहीं जो अपने सूक्ष्म गुणों के कारण विशिष्ट संस्करणों और उसी प्रकार के संग्रहों में सुरक्षित हैं—तो हमें लगेगा कि बहुत से लोग रंगमंच को केवल अश्लील परिस्थितियों और वीभत्सता के प्रदर्शन के लिए ही प्रयुक्त करते थे; हमें यह भी लगेगा कि जो लोग मात्र कला के प्रस्फुटन-पल्लवन के लिए स्वतंत्रता का संघर्ष कर रहे थे, उनका संघर्ष उन लोगों के कारण जटिल हो गया जो वेश्याओं-कुलटाओं की कहानियों और कामाचार का संकेत करने वाली स्थितियों का उपयोग करके धन अर्जित करना चाहते थे।

प्युरिटनों की मानसिक स्थिति ऐसी थी कि एक दर्जन शेक्सपियर भी रंगशाला की स्थिति को औचित्य नहीं प्रदान कर सकते थे। मगर दूसरी ओर, प्रत्युत्तरात्मक भावावेश की दुर्भाग्यपूर्ण अतिशयता दिखायी देती थी। अगर वे चाहते तो अपने जोश का केवल एक अंश इस बात में लगा सकते थे कि प्रेक्षकों की भीड़ में दुश्चरित्र स्त्रियाँ और रंगमंच पर अश्लीलता का प्रयोग करने वाले नाट्य-निर्माता और अभिनेता न आने पावें। मगर शेक्सपियर के युग में वस्तुस्थिति चाहे जो भी रही हो, अब रंगशाला का पतन अनेक दृष्टियों से शुरू हो गया था। विचित्र बात यह है कि लन्दन में अनेक बार प्लेग का जो प्रकोप हुआ उससे प्यूरिटनों को बड़ी सहायता मिली। अनेक

बार उनके कारण रंगशालाएं अस्थायी रूप से बन्द कर दी गयीं।

जो लोग इस बात में विश्वास करते थे कि रंगमंच बिलकुल स्वतंत्र होना चाहिए, और जो लोग निषेध और प्रतिबन्धक आज्ञाओं का समर्थन करते थे—इनके संघर्ष का एक लम्बा इतिहास है। सत्रहवीं शताब्दी के इंगलैण्ड में इस इतिहास का सबसे सजीव अध्याय लिखा गया। इसके पहिले प्युरिटनवाद कभी इतना कट्टर अथवा शक्तिशाली नहीं था। रंगमंच इसके पहिले कभी इतना कामाचारिक नहीं था; यद्यपि वह अब भी महती नाट्यकला को प्रश्रय दे रहा था। इस संघर्ष का अन्त तब हुआ जब १६४२ ई० में प्यूरिटनवादियों ने सभी रंगशालाओं को बन्द करा दिया। रेस्टोरेशन-काल में कुछ समय के लिए ऐसा घनघोर संघर्ष अवश्य हुआ, मगर उसके बाद फिर ऐसा नहीं हुआ। हमारे सामने अनेक ऐसे शोषक नाट्य-निर्माता हैं जो अश्लीलता को 'यथार्थवाद' के आवरण में ढंक देते हैं। मगर ये अधिकतर अपवाद ही हैं। इनकी संख्या बहुत कम है और हम समझते हैं कि 'सामान्य अधिकारी' सम्पूर्ण रंगशाला पर प्रतिबन्धक क़ानून लागू किये बिना ही इनका निषेध करने के लिए रास्ते निकाल लेंगे। हमें इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि आज भी पेरिस में खुले आम और स्पष्ट रूप में सरकारी तौर से बड़ी रंगशालाओं में वेश्याओं के प्रवेश की प्रथा है। मगर हम इस बात पर कंधा सिकोड़ कर चुप रह जाते हैं। कारण यह है कि गम्भीर नाटक से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है; यह तो नाट्य-विद्रूप का ही एक अंश होता है। संक्षेप में, नियमित लोकतंत्रात्मक शासन-सत्ता की स्थापना के फलस्वरूप और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और स्वतंत्रता की भावना के विकास के नतीजे में अश्लील रंगमंच की समस्या अत्यन्त सरल हो गयी है।

इंगलैण्ड ही ऐसा देश है जिसमें नाटकों पर सरकारी प्रतिबन्धक नियम लागू रहा है; और इस तरह इसने रंगशाला जाने वाले लोगों को उस महान् और शायद निर्दोष आनन्द से वंचित रखा जो कि अन्य देशों के प्रेक्षकों को सुलभ था—विशेषतया ऐसा इब्सन, शा और दूसरे विचारक नाटककारों के साथ हुआ। इस व्यवस्था के कारण अंग्रेजी रंगमंच आधुनिक युग का सबसे निर्जीव रंगमंच बन गया और उसमें वे सारे गुण और अवगुण आ गये जो कि इस निर्जीवता की छाया में अवश्यम्भावी थे। मगर कोई भी लोकतांत्रिक आज इस प्रकार के मनमाने प्रतिबन्धक नियम को स्वीकार न करेगा। सामान्य उदारता और व्यक्तिगत शालीनता ही इस समस्या को अन्तिम रूप से सुलझा सकती है।

हमने अभी अत्यन्त संक्षेप में 'नियमित' रंगशालाओं के सम्बन्ध में कुछ कहा। अब हम ग्रामीण-नाट्य की चर्चा करेंगे जिसके कारण उस व्यक्ति पर क्रोध का

कठोर बज्रपात हुआ जिसने सब से अधिक शोर मचा कर माँग की थी कि ईश्वर अभिनेताओं को नष्ट कर दे। १६४२ ई० तक सार्वजनिक रंगशालाएं नाटचशाला के आकार-प्रकार, या अभिनय अथवा नाटकों में बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के चलती रहीं। पुरुषों की कम्पनियों में अब भी लड़के ही लड़कियों की भूमिका करते थे। ये कम्पनियाँ लन्दन के बाहर लम्बी-लम्बी यात्राओं पर जाती थीं। धीरे-धीरे नाटच-लेखन से पुरानी गर्मी समाप्त हो गयी, पुराना काव्य लुप्त हो गया, शेक्सपियर और ज.न्सन का उत्कृष्ट हास्य समाप्त हो गया। तेज़ घटनाओं वाले और तिकड़मों से पूर्ण स्पेनी नाटकों से ही रूपान्तरण के लिए सामग्री मिलती थी। दुःखान्तकों में मारधाड़ की मात्रा बढ़ गयी और सुखान्तकों में परिष्कारहीनता बढ़ गयी। सार्वजनिक रंगशालाओं ने उन बुराइयों से बचने की कोशिश नहीं की जिनके कारण उनका घनिष्ट सम्बन्ध चकलाखानों से हो गया। शुद्धतावादियों से युद्ध चलता रहा। यहाँ तक कि अन्त में १६५२ ई० में वह समय भी आया जब कि सभी रंगमंचीय नाटकों का दमन कर देने का क़ानून बन गया। यह क़ानून इसलिए लागू हुआ कि अब प्यूरिटन शक्तिसम्पन्न थे। विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी और लैटिन दोनों भाषाओं में विद्योचित प्रकार के नाटक अब भी लिखे जाते रहे। मगर जेम्स प्रथम के युग के बाद, जहाँ तक रुचि का सम्बन्ध है, सार्वजनिक रंगशालाओं को जिस नाटच-रूपों ने पीछे छोड़ दिया वे थे छद्मवेशी, चेहरे लगा कर अभिनय करने की प्रणाली और दरबारों का अभिनय। क्योंकि अब अंग्रेजी नाटचाभिनय में नवीनतत्व प्रविष्ट हो गये थे। इस समय एक दो ऐसी नाटच-लिपियाँ भी तैयार हो गयीं जो साहित्य के रूप में स्थायी बन गयीं।

अपने युग में एलिज़ाबेथ ने छद्मवेशी-चेहरे लगा कर किये गये अभिनयों में अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की थी। उसने उन यात्रा-मूलक अभिनयों में भी रुचि दिखायी थी जो लन्दन से बाहर जाते समय और दूसरे नगरों से फिर लन्दन में प्रवेश करते समय आयोजित होते थे। वह प्रत्येक अभिनय देखने के लिए उपस्थित होती थी। बाद के युग में अनेक सामन्त ग़रीबी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो गये। क्योंकि जब भी उनके उत्सवों में सम्मिलित होने के लिए साम्राज्ञी पधारती थी, वे अपनी शक्ति और साधन से अधिक खर्च कर डालते थे। साम्राज्ञी के सम्मान में विशेष ग्रामीण नाटक अभिनीत किये जाते थे। किले के बागों अथवा जंगलों में चौकियों वाले दृश्य सजाये जाते थे। (इसका उदाहरण प्लेट संख्या २५ है); क़िले की नृत्यशालाओं में संगीत और नृत्य से समन्वित छद्मवेशी नाटकों को प्रस्तुत किया जाता था, और कभी कभी इटालवी नाटचाभिनय के चमत्कारिक तत्व इन अंग्रेज़ी अभिनयों में भी प्रविष्ट हो जाते थे। हेनरी अष्टम के युग से ही दरबारों में फ्रांसीसी और इटालवी

कला के लिए दिलचस्पी पैदा हो गयी थी; और एलिज़ाबेथ के 'मास्टर आव रिवेल्स' (मनोरंजन अधीक्षक) ने व्यय का जो विवरण रख छोड़ा है, उसके इन्दराज़ में निर्मित आगे बढ़े हुए सेटिंग, नक़ली-बादल, पिछले-पर्दे पर अंकित दृश्य-खण्ड, झालरों और पुनरुत्थानकाल में स्वीकृत इसी प्रकार के साज-सामानों का भी वर्णन मिलता है। हेनरी अष्टम के युग में इटालवी भवन-निर्माता और चित्रकार अंग्रेज़ी दरबार में रहा करते थे।

आरम्भ में ग्रामीण-नाटक छद्मवेशी नाटक से बहुत घनिष्ट रूप में सम्बन्धित था। अब वह दरबारी मनोरंजनों से फिर सम्बद्ध हो गया। शेक्सपियर में यह आवेग अन्य आवेगों से मिश्रित हो गया। उसके रोमांचक (रोमांटिक) सुखान्तक सच्चे नाटक बन गये जिसमें ग्रामीण ताज़गी और मिठास भरी रहती थी। इस युग में इस विधा में केवल फ़्लेचर ने पूर्णता प्राप्त की। उसने 'दी फ़ेथफ़ुल शेफ़र्डेस' में जितनी अधिक वास्तविक मनोरमता भर दी उतनी किसी भी अन्य अंग्रेजी ग्रामीण नाटक में नहीं मिलती। इटालवी 'पास्तर फिदो' की अनेक बातों में नक़ल करते हुए भी उसने मौलिकता और सब से अधिक काव्यात्मक प्रसाद का प्रमाण दिया। इस कृति को नाटक से अधिक काव्य के रूप में याद किया जाता है। निस्सन्देह इसके गुण अधिकतर साहित्यिक हैं। बेन जान्सन ने 'दी सैड शेफ़र्डेस' की रचना की। यह नाटक पूरा न हो सका। इसमें उसने एक अंग्रेज़ी दृश्य (शेरउड फ़ारेस्ट) में अत्यन्त सफलता-पूर्वक ग्रामीण दृश्य आरोपित किया और अंग्रेज़ी पात्रों को भी वैसा ही रूप दिया। मगर जहाँ तक जान्सन और दूसरे नाटककारों का सम्बन्ध था, मूल प्रेरणा छद्मवेशी नाटकों की रचना के क्षेत्र की ओर मुड़ गयी। ऐसा हम तभी स्वीकार करेंगे जब हम यह मान लें कि अवास्तविक सौन्दर्य और कृत्रिम सादगी की इच्छा ही, इन दोनों प्रकार को कोमल और सुसज्जित 'नाटकों' के मूल में है।

जान्सन ने तीस से अधिक छद्मवेशी नाटकों के लिए रचनाएं तैयार कीं और उनमें अद्वितीय, अपूर्व गीतात्मक मनोरमता भर दी। मगर अन्त में उसने अनुभव किया—जैसा कि इस प्रकार के नाटक का प्रत्येक रचनाकार अनुभव करने के लिए विवश है—कि दृश्यावली, वस्त्राभूषण तथा नृत्य के अधिक दिखावटी तत्वों ने रचना को दबा दिया। उसके बाद जान मिल्टन ने 'कोमस' लिखा। उसमें अनेक अलंकारयुक्त कविताएं थीं। इन कविताओं में आश्चर्यजनक रूप से पवित्र नैतिक संवेग थे। और सच यह है कि यहाँ सामान्य रूप से अत्यन्त साधारण और मोहक एक नाटचविधा ने शानदार काव्य और अमर कल्पनाशीलता का रूप ले लिया। पवित्रता के लिए यह अत्यन्त महान् श्रद्धाञ्जलि है। मंचीयता की दृष्टि से इसमें कुछ कमियाँ हैं, अभिनय की दृष्टि

से इस की रूपाकृति समुचित नहीं है; हम यह स्मरण रख सकते हैं कि छद्मवेशी नाटकों की पाण्डुलिपियों में रूपहीनता की सम्भावना रहती ही है, और इस कमी को भूल कर हम उसकी आनन्ददायक पठनीयता का सुख उठा सकते हैं। ये नाटक किस प्रकार अवसर विशेष के लिए लिखे जाते थे 'कोमस' इसका एक उदाहरण है। यह लुडलो कैसिल में खेले जाने के लिए लिखा गया था। १६३४ ई० में यह उस अवसर पर खेला गया था जब कि अर्ल आव ब्रिजवाटर के लार्ड प्रेसीडेन्ट आव वेल्स बनने के उपलक्ष्य में मनोरंजनों का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था। इसमें सभी अभिनेता ग़ैर-पेशेवर थे। अर्ल के भी तीन बच्चे उनमें शामिल थे। जिस गीताकार ने इस नाटक के लिए संगीत की रचना की थी, उसी ने नाटक के मंचीकरण की भी देखभाल की थी।

अब तक दरबार इस प्रकार के छद्मवेशी नाटकों के लिए पागल हो चुके थे और जब
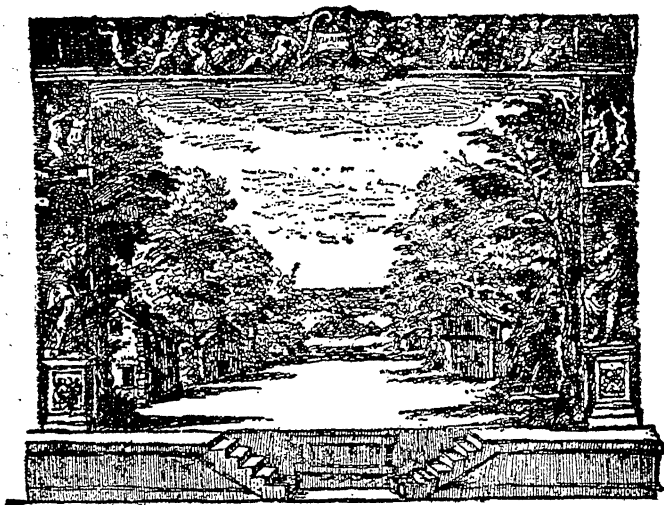
इनिगो जोन्स कृत एक मास्क सेटिंग जो १६३५ ई० में इटालियन शैली के 'फ्लोरीमीन' के प्रस्तुतीकरण में प्रयुक्त हुआ था। (केनेथ मैकगोवन कृत 'दि थियेटर आव टुमारो' से।)

तक कि ऐसा एक अभिनय न संपन्न हो जाय तब तक कोई भी 'अवसर' पूरा नहीं माना जाता था। अभिनय अधिक सज-धज के साथ किये जाते थे और उनमें इतना धन खर्च

किया जाता था कि उस पर विश्वास नहीं होता। और अभिनयों को 'काटने-छांटने' के सम्बन्ध में—जैसा कि असन्तुष्ट जान्सन इसे कहता था—हमारी भेंट इनिगो जोंस से होती है जो अंग्रेजी नाट्यशाला के इतिहास में अपनी तरह का अकेला व्यक्तित्व है। बहुत पहिले, सत्रहवीं शताब्दी के बिल्कुल आरम्भिक दिनों में, इस महान् शिल्पी ने 'इटालियन शैली' के रंगमंचों और मंच सेटिंग के निर्माण के सम्बन्ध में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। उसने इटली की यात्रा की, यवनिका-मण्डित रंगमंच की सुविधाओं का अध्ययन किया, और उन तमाम 'प्रभावों' की जानकारी प्राप्त की जो कि उस समय इटालवी प्रेक्षकों को आनन्द प्रदान कर रहे थे। विशेन्जा के पल्लाडियन रंगमंच का एक-एक विवरण उसने लिखा। उसने इसी प्रकार के पूर्वांग-दृश्यखण्डों और रोमन-स्कीन रंगशालाओं के चित्र बनाये। उसने इंगलैण्ड की रंगशालाओं में मंच के ऊपर फ्रेम में सामने का पर्दा, यवनिका, लगाने की प्रथा चलायी। उसने 'चित्रित' दृश्यावली और अलंकृत वस्त्राभूषण के प्रयोग का भी आरम्भ किया। वह महत्वपूर्ण-रंगशालीयकलाकार है, क्योंकि सब से अधिक उसने ही, १६४२ ई० में, सराय के प्रांगण में निर्मित रंग शाला के समाप्त हो जाने के बाद, अंग्रेज़ी रंगशाला के विकास का दिशा-निर्देश किया। सब से अधिक उसने ही यवनिका-मण्डित फ्रेम को मंच पर लगाने की प्रथा की स्थापना की और एविज़ाबेथी अभिनय-मंच के स्थान पर चित्रित रंगमंच को चालू किया। अठारहवीं शताब्दी के रंगमंचों पर इस चबूतरेनुमा उठे रंगमंच की कुछ विशेषताएं (विशेष तौर से झालरदार पर्दे) फिर से चालू हो गयीं। अन्य वस्तुएं इटालवी 'दृश्यावली' के लिए आम मांग के सामने दब गयीं।

शेक्सपियर के ज़माने में भी लन्दन में एक छतदार रंगशाला, 'ब्लैकफ्रेयर्स' थी। उसकी पेशेवर कम्पनी ने इसमें अनेक बार अभिनय भी किया था। परन्तु इस बात को जानने का आधार नहीं मिलता कि यह रंगशाला किस प्रकार ग्लोब रंगशाला शैली से या यह छद्मवेशी रंगमंच से भिन्न थी। अक्सर 'नियमित' प्रदर्शन दरबारों के लिए आयोजित किये जाते थे—कभी-कभी यह अभिनय पेशेवर पुरुष कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था और अधिकतर बच्चों की प्रीतिभाजन कम्पनियों द्वारा। बहुत पहिले से ही यह प्रथा चली आयी थी कि ग्रामर स्कूल के विद्यार्थियों को अभिनेताओं दलों में प्रशिक्षित किया जाता था। लगभग दो सौ वर्षों तक भजन-मण्डली के लड़कों ने संगीत और नाटक को इस अवसर पर समन्वित किया था। इन बच्चों और बिशप के सम्बन्धों की एक अस्पष्ट झाँकी हमें मिलती है।

जो भी हो, उस अवसर पर इन स्कूलों और भजन मण्डलियों से निकले अभिनेता दल लोकप्रिय हो गये। उनके लिए विशेष रूप से नाटक लिखे जाते थे। इन नाटकों

में बीच-बीच में आने वाले गीतों पर विशेष बल दिया जाता था। उस युग के नाट्योत्सवों के विवरण में 'चिल्ड्रेन आव दी रायल चैपेल' और 'पाल्स ब्वायज़' का वर्णन बार-बार आता है। प्यूरिटनवादियों के विरोधों में तो इनका वर्णन आता ही है। १५९७ ई० में चैपेल चिल्ड्रेन के आचार्य को सरकारी तौर से इस बात का अधिकार मिल गया कि वह बच्चों को अपनी कम्पनी में भर्ती के लिए 'प्राप्त' करे और उनके लिए निवास की व्यवस्था करे; उसने इस टुकड़ी को पेशेवर कम्पनी का रूप दिया। इस कम्पनी ने ब्लैक फ्रेयर्स थियेटर में, स्पष्टतः एलिज़ाबेथ की अनुमति प्राप्त करके, अपना अभिनय प्रस्तुत किया।

मगर सामान्यतया, हम यह समझ सकते हैं, कि इन बच्चों की कम्पनियाँ 'विशेष' अवसरों पर ही और ख़ास तौर से दरबार के लोगों के सामने ही अपना प्रदर्शन प्रस्तुत करती थीं। सार्वजनिक मनोरंजनों से उनका सम्बन्ध कम था। निजी रूप से आयोजित 'सामाजिक' उत्सवों से इनका सम्बन्ध अधिक घनिष्ट था। (ब्लैक फ्रेयर्स, निश्चय ही, एक 'निजी' रंगशाला भी कहा जाता था। ऐसा विशेषतः इस विचार से कहा जाता था कि नगर में स्थित रंगशालाओं पर लागू क़ानून के शिकञ्जे से बचा सके; इसलिए नहीं कि उनमें साधारण लोगों के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध था। (खुले रंगमंच वाली रंगशालाओं में जो लोग सम्मिलित होते थे, उनसे अधिक 'चुने हुए' प्रेक्षक इसमें आते थे, मगर दरबार की नृत्यशालाओं में आयोजित अभिनयों में जिस प्रकार केवल कुछ लोग निमंत्रित होते थे, ऐसा यहाँ नहीं था।) बच्चों के अभिनय की यह प्रक्रिया एलिज़ाबेथी शासन के उत्तर काल में और जैकोबीय थियेटर के युग में आरम्भ हुई। उस समय के पतनशील सार्वजनिक रंगमंच की तुलना में, जिसमें छद्मवेशी अभिनय की प्रधानता थी, विदेशी सेटिंग में राजाज्ञा से अभिनय होते थे, और रंगशाला बिल्कुल अलंकृत हो गयी थी, ये अधिक रोचक भी थे।

जब १६४२ ई० में पार्लियामेंट ने रंगमंचीय नाटकों का दमन कर दिया तो उस समय इधर-उधर छिटपुट पेशेवर अभिनेता ही रह गये थे (कुछ ऐतिहासिक अभियोग उनके पीछे भी लगे हुए थे) और साथ ही नाटककारों की ओर से भी एक लम्बी चुप्पी क़ायम थी। १६६० ई० में रेस्टोरेशन के युग तक लन्दन के रंगमंचों पर किसी भी प्रकार की सक्रियता नहीं थी, बस यही था कि ये रंगमंच बिल्कुल उखाड़ कर फेंक नहीं दिये गये थे। सर विलियम डेवीनेंट अकेले आदमी थे जिन्होंने इस अन्तराल में नाटकीय अभिनयों के लिए द्वार उन्मुक्त करने की हिम्मत थी। उनको केवल यह कहने पर ही सफलता मिली कि वह संगीतमय कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहते हैं। नाटक नहीं आपेरा प्रस्तुत करना चाहते हैं। डेवीनेंट कवि, नाटककार, रंगशाला-व्यवस्थापक, सम्राट्-

वादी सब कुछ रह चुके थे, इसलिए वह शासक वर्ग के प्यूरिटनों से किसी भी प्रकार की विशेष सुविधा की आशा नहीं कर सकते थे। जो भी हो, पहिले पहिल उन्हीं के अभिनयों ने उस लम्बी चुप्पी को तोड़ा। १६५६ ई० में रटलैण्ड हाउस में उन्होंने बड़ी होशियारी से 'इंटरटेनमेंट, बाई डेक्लेमेशन ऐण्ड म्यूजिक, आफ्टर दी मैनर आव दी एंशियेंट्स' (प्राचीनों के आधार पर अलंकृत वक्तव्य और संगीत के द्वारा मनोरंजन) को रंगमंच पर प्रस्तुत किया। ठीक इसके बाद, उसने सूचना पट्टों पर अपने नाटक 'दी सीज आव दी रोड्स' के अभिनय की सूचना दी—यह संगीत से पूर्ण नाटक अधिक था, आपेरा कम।

एलिज़ाबेथी सार्वजनिक रंगशाला का नहीं, यह घटना छद्मवेशी नाट्य परम्परा का फल थी। शेक्सपियरी रंगशाला के सम्बन्ध में जिस सक्रियता से हम परिचित हैं, बाद में आने वाली रंगशालाओं की सक्रियता उससे सर्वथा भिन्न थी। यही नहीं कि अब एक भिन्न प्रकार का रंगमंच और दृश्यावली तैयार हो गयी थी, वरन् यह भी कि अब एक नये प्रकार का साहित्यिक नाटक भी रचा जा रहा था जिस पर फ्रांस के नाटककारों का प्रभाव बहुत अधिक था। यह सही है कि इसके तुरन्त बाद इंगलैण्ड में आपेरा एकाएक उड़ चला, मगर इस कहानी का अगला अध्याय, जैसे कि शीघ्र देखेंगे, इटली के बाद फ्रांस से ही सम्बद्ध था। डेवीनेंट के सहासपूर्ण प्रयासों की महत्ता इसलिए भी अधिक है कि उसके कारण संगीतहीन दुःखान्तकों की नयी विधा के लिए मार्ग खुल गया। उदाहरण के लिए, उत्तर-एलिजाबेथ कालीन इंगलैण्ड के एक मात्र महान् अथवा लगभग महान् दुःखान्तक लेखक ड्राइडन ने डेवीनेंट को वीरतापूर्ण नाटक का आरम्भकर्ता स्वीकार करते हुए लिखा है :

जहाँ तक वीरतापूर्ण नाटकों का सम्बन्ध है.....अंग्रेजी रंगशाला में उन पर सर्व प्रथम प्रकाश सर विलियम डेविनेंट द्वारा पड़ा। उस विप्लवकारी युग में दुःखान्तकों और सुखान्तकों के अभिनय पर प्रतिबन्ध लग गया था, इसलिए कि उनमें उन नेक लोगों की कुछ निन्दा की सामग्री रहती थी, जो अभद्र व्यंग्य सहन करने की अपेक्षा कहीं अधिक आसानी के साथ अपने वैध सम्राट् से अधिकार छीन सकते थे। फलतः डेविनेंट अपने विचारों को दूसरी दिशा में लगाने के लिए विवश हो गया। वह नैतिक मूल्यों की कविता में लिख कर उनका सस्वर पाठ कराने के लिए मजबूर हो गया। इस संगीत का मूल रूप, और वे दृश्य, जिन्होंने उसकी रचना की शोभा बढ़ायी, इन दोनों को उसने इटालवी आपेरा से ग्रहण किया। मगर मेरा अनुमान है कि अपने पात्रों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए उसके लिए उन्होंने कार्नेली और कुछ फ्रेंच कवियों से प्रेरणा प्राप्त की।......

. . . . .

और इस वीरतापूर्ण नाटक के सम्बन्ध में ड्राइडन से अधिक दूसरा कोई जानता भी नहीं। 'दी आरफ़न' और 'वेनिस प्रिज़र्वड', का भूखों मरने वाला लेखक थामस आटवे ही, ड्राइवन के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति है जिसे हमें इस रेस्टोरेशन-कालीन नाटच-विधा के सम्बन्ध में याद रखने की आवश्यकता है।

यदि हम इस वीरतापूर्ण नाटच-विधा को अंग्रेजी नाटच परम्परा की एक शृंखला के रूप में देखें तो, उस युग की गम्भीरता के फलस्वरूप, हमें यह कह सकने का कारण मिल जायगा कि यहाँ वाद के एलिजावेथकालीन दुःखान्तक लेखकों की अनुत्तर-दायित्व पूर्ण स्वेच्छाचारिता गम्भीर हो गयी थी। और यह कि इस समय गम्भीर अविचारपूर्ण अमिताचारता-सी लगती थी। मगर ड्राइडन के अलंकारपूर्ण नाटकों में जो अभिनय-मूलक कदर्थता है और तड़क-भड़क है, उसे लक्ष्य करने के लिए किसी विशेष दृष्टि की आवश्यकता नहीं है; नाटक के गढ़न और उसकी कविताओं पर फ्रांसीसी क्लासिक नाटकों का जो प्रभाव है, वह बिल्कुल स्पष्ट है। ड्राइडन की रचनाओं में इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि वह इंगलिश चैनल के उस पार के शुद्धता-वादियों के प्रति अधिक आस्थावान् था। दुःखान्तकों में एलिजाबेथयुगीन यत्किंचित आज़ादी भी लुप्त हो गयी। दुःखान्तकों में सुखान्तकों को मिला देने की रुझान भी एकाएक समाप्त हो गयी; और अतुकान्त कविता का स्थान तुकान्तकों ने ले लिया। यह सही है कि पहिले अभिनय में कृत्रिमता रहती थी, मगर अब तो पात्र के लिए केवल लिखित सामग्री को ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना और मंच के ऊपर अकड़ कर चहलक़दमी करना भर रह गया था। इन वीरतापूर्ण दुःखान्तकों में अधिकतर राजकुमारों और विजेताओं और सम्भ्रान्त महिलाओं का ही अभिनय होता था। इनके कथानक प्रणय और युद्ध से सम्बन्धित होते थे। अब नाटक का गुण, भावना, संवेदना और साहस में केन्द्रित न था; अब वह काव्य की निर्मलता, उपदेशात्मक प्रयोजनों, वीरतापूर्ण कहानी और अलंकारों के प्रदर्शन में ही केन्द्रित था।

जान ड्राइडन कृत 'दी कांक्वेस्ट आव ग्रेनाडा' वीरतापूर्ण नाटक का एक उदाहरण है। ऐसा नहीं कि इसमें किसी प्रकार की महानता नहीं। उसकी बाहरी रूपरेखा, प्रकृति के सम्बन्ध में एक निश्चित, सशक्त बेपरवाही, अलंकृत और कृत्रिम उच्चारण-सम्भाषण—इन सब में एक महानता थी। इसमें एक ऐसी महानता थी जिसने इसे अपने युग में लोकप्रियता प्रदान की। शायद वह आज तक प्रेक्षकों को आन्दोलित करती रहती। मगर नाटक में तुकान्त कविता एक कमज़ोरी होती है, आपेरा के सम्बन्ध में भी बात कुछ ऐसे ही है। वह भी एक ऐसी कमज़ोरी है जो किसी कृत्रिमता के युग में भले ही किसी प्रकार चल जाय, मगर साधारणतया उसके कारण नाटक

में विकृतियाँ आती ही हैं। अपनी भूमिका में ड्राइडन ने लिखा कि उसने 'पिछले युग से अधिक रंगीन युग के मनोरंजन के लिए' अपनी रचना लिखी। पहिले के कवियों को उत्कृष्ट न हो पाने के लिए क्षमा करते हुए उसने स्वयं अपने नाटक में अधिक उत्कृष्ट रुचि का परिचय दिया है :

यदि प्रेम और सम्मान को अब अधिक ऊंचा स्थान मिल गया है,
तो यह कवि नहीं, वरन् युग की प्रशंसापूर्ण देन है।
वाक्चातुर्य को अब अधिक ऊंचा स्थान प्राप्त हो गया है,
हमारी अपनी भाषा भी अब अधिक सुसंस्कृत और मुक्त हो गयी है
अब हमारी सम्भ्रान्त स्त्रियों-पुरुषों की वाणी में उन कवियों की
कविताओं से भी अधिक हाजिरजवाबी आ गयी है।

यदि भाषा और रुचि में पहिले से अधिक 'चारुता' आ गयी थी तो नैतिकता में तो ऐसा नहीं ही हुआ था। यदि नखरेबाज़ कुलीन प्रेक्षकों ने पहिले वीरतापूर्ण दुःखान्तकों का स्वागत किया था तो अब वे निर्जीव सुखान्तकों की माँग कर रहे थे जिसमें अलंकारों के स्थान पर सूखी हाज़िरजवाबी का पुट रहता था। और उसी हाज़िरजवाबी के कारण नगर के बाहर तक ज़ायक़ेदार ग़प्पें और वेश्यालयों से सम्बन्धित गन्दी बातें फैलीं। लक़-दक़ करते 'रेस्टोरेशनकालीन सुखान्तक' की ओर ध्यान देने के पहिले, कुछ मज़े के साथ और थोड़ी ईर्ष्या के साथ भी, हम यह याद कर सकते हैं कि तत्कालीन नाटककारों ने ड्राइडन के दुःखान्तक की पोल जान ली थी, और उन्होंने 'दी रिहर्सल' नाम के एक व्यंग्य-विनोदात्मक नाटक को गढ़ लिया जिसने इन सारे कुलीन 'प्रभावों' की अच्छी तरह चिन्दी उड़ायी और जो नगर के ऊपर एक दम छा गया। बहुत दिनों तक लोग इसे ड्यूक आव बिरमिंघम कृत ही मानते रहे। परन्तु शायद कई लोगों ने मिल कर इसकी रचना की थी। इंगलैण्ड में वीरतापूर्ण दुःखान्तक का इसने प्रायः अन्त ही कर दिया। यहाँ इतना और भी जोड़ा जा सकता है कि बाद में ड्राइडन ने अतुकान्त छंदों वाला नाटक भी लिखना शुरू कर दिया और खुल कर शेक्सपियर का अनुकरण किया। उसने सीधे-सीधे शेक्सपियर के अनेक नाटकों का रूपान्तरण भी किया। यह सही है कि शेक्सपियर के नाटकों के ये रूपान्तर बहुत अच्छे नहीं हैं, वे मूल से निकृष्ट हैं, फिर भी कहीं-कहीं ड्राइडन ने उत्कृष्ट रूपान्तर भी किया है। और इन 'आल फ़ार लव आर दी वर्ल्ड वेल लास्ट' को, जो कि एण्टोनी और क्लियोपेट्रा की कहानी की पुनर्रचना मात्र है, ड्राइडन ने बिल्कुल एलिज़ाबेथी शैली में लिखा। अनेक आलोचक अब भी इस नाटक

को बहुत महान् मानते हैं।

रेस्टोरेशनकालीन सुखान्तक का अनुशील करते समय यह अच्छा होगा कि आरम्भ में ही हम अपनी नैतिक धारणा, अपनी आत्मा, अपनी अभिरुचि का परीक्षण कर लें। ये तेजस्वी नाटक हमें स्तम्भित कर देते हैं, बाद में हमने 'सुरुचि' के सम्बन्ध में जो भी धारणाएं बनायीं उन सब का प्रतिवाद इन नाटकों में है। विचारों में ये अनैतिक और अभिव्यक्ति में अश्लील हैं। यदि इनका प्रेक्षक निस्संग दृष्टि नहीं अपना सकता तो अच्छा होगा कि वह इनको देखने न जाय। फिर भी कितनी तेज़, कितनी हाज़िर-जवाबी से भरी, कितनी समर्थ शैली है इन नाटकों की !

लगभग चौथाई शताब्दी पहिले ब्रैंडर मैथ्यूज़ ने लिखा—'कांग्रेव और वाइचरले फ़र्क्हर और वानब्रुघ ने मोलियर के चौखटे को केवल इसलिए अपनाया कि वे उसके चारों ओर अपना गन्दा कपड़ा टांग सकें।' इतना ही कह कर उसने रेस्टोरेशनकालीन नाटककारों को अपने नाटक के इतिहास में टाल दिया। तब से अब, संसार अधिक 'विस्तृत' हो गया है। अब कांग्रेव के नाटक खेले जाते हैं, उनके नवीन संस्करण छपते हैं और रेस्टोरेशनकालीन नाटककारों को सुखान्तक-रचना के आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। बौद्धिक स्वतंत्रता के इस युग में, नैतिक स्वतंत्रता के विस्तार और दार्शनिक उदासीनता के इस काल में कांग्रेव और वाइचरले फिर अपनी पूर्णता में प्रतिष्ठित हो गये हैं। शायद बात यह है कि उन्होंने अपने ज़माने के केवल कुछ बहुत आगे बढ़े हुए लोगों के लिए ही रचना की थी। और अब फिर प्रेक्षकों का एक वैसा ही दल उठ खड़ा हुआ है। जो लोग इनसे सम्बन्धित हैं वे बतायेंगे कि इनके प्रेक्षक ही एक मात्र 'सुसभ्य' लोग हैं, खुले दिमाग़ वाले सांसारिक प्राणी हैं जिन्हें बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है। दूसरे लोग कहेंगे कि यह एक अति-अपमिश्रित दर्शकों का दल है जिसे केवल बनावटी और मिर्च-मसाले से भरा मनोरंजन ही आनन्द दे सकता है। और सचमुच यह नाटक केवल कुछ लोगों के लिए है, शालीन, वाक्चातुर्यपूर्ण, असामान्य शैली एवं परिष्कार से पूर्ण; मगर पूर्णतया अस्वाभाविक; ज्योंही इसे मानवीय भावना की कसौटी पर कसा जाय, इसकी चमक ख़त्म हो जाती है।

जिस जनता के लिए रेस्टोरेशनकालीन सुखान्तक लिखे गये थे, वह कुलीन, सीमित दरबारी 'समाज' ही थी। लन्दन के बाहर किसी भी प्रकार की नाट्य-सक्रियता न थी। सम्राट् के अपने निजी समाज को छोड़ कर प्यूरिटनवादी हर बात पर हावी थे और लन्दन में केवल दो नाट्यशालाएं रह गयीं थीं। इनमें छैले, बाँके और मनचले रसिक लोग किसी मनोरंजन के लिए एकत्र होते थे ; उनके साथ उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाली; उच्छृंखल विचारोंवाली दरबारी स्त्रियाँ और फ़ैशनपरस्त
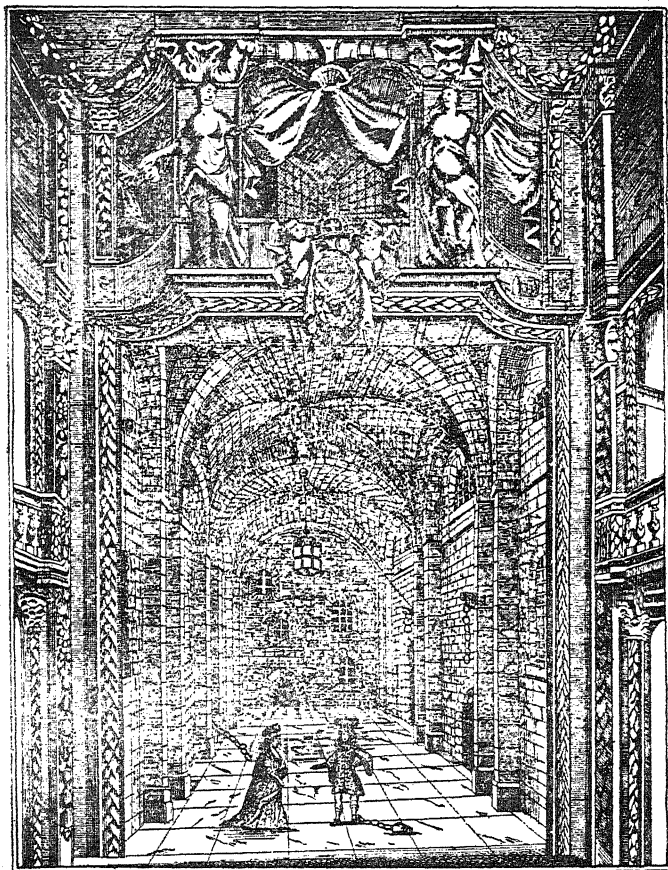
लिंकन के इन फ़ील्ड्स में ड्यूक के थियेटर का भीतरी भाग। १६७३ ई० में एक चित्र उत्कीर्ण किया गया था। १८०९ ई० में वह चित्र छपा था जिसमें शीर्षक था––"ऊपर वर्णित रंगशाला का मंच और उसका अत्यन्त भव्य अग्र-भाग।" इससे यह पता चलता है कि इंगलैंड की "नियमित" रंगशालाओं में जिन इटालियन प्रोसीनियमों का प्रवेश अभी-अभी हुआ था, उन्हें कितना अधिक पसन्द किया जाता था।

वारांगनाएं भी इन मनोरंजनों में शामिल रहती थीं। इन मनचले, हाज़िरजवाब भाँड़ों, और दरबार के पिछलग्गुओं के अतिरिक्त और कोई भी इन नाटकों को देखने के लिए नहीं जाता था। एक भ्रष्ट व्यभिचारी समाज के लिए ही जिसका नेतत्व एक चरित्र-भ्रष्ट दुराचारी सम्राट कर रहा था, इन नाटककारों ने अपनी रचनाएं तैयार की थीं। उस समय मानवीय भावना, नैतिक आदर्शों की चिन्ता और ईमानदारी से भरी सहृदयता प्रदर्शित करने से बढ़ कर कोई अपराध नहीं था। हर वस्तु में एक सख़्त ऊपरी चमक-दमक होनी ज़रूरी थी। हाज़िरजवाबी का नैरंतर आधार ही लोगों को प्रसन्न रख सकता था। चमक-दमक शैली और शालीनता ही वे गुण थे जिनकी उपलब्धि वांछनीय समझी जाती थी।

जान्सनी सुखान्तकों की परम्परा में ऐसे अनेक परिवर्तनशील व्यक्ति होते रहे। जिन्होंने चार्ल्स द्वितीय के युग की कृत्रिमता को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया। ड्राइडन ने उस पर परम्परा से मिलते-जुलते कुछ नाटक लिखे, और जार्ज एथेरेज ने किसी हद तक जान्सन और फ्लेचर का ही राग सुनाया; फिर भी तीन सुखान्तक 'दी कामिकल रिवेंज आर लव इन ए टब' और 'शी उड इफ़ शी कुड' और 'दी मैन आव मोड आर सर जान फोपलिंग' अपने नामों से ही अच्छी तरह तत्कालीन नाट्य-रचना की अभिरुचि का परिचय दे देते हैं। शायद यह विलियम वाइचरले था जिसने तेज़-तर्रार कथोपकथन और उद्दीप्त शैली की स्थापना वाद के युग के लिए अपनी रचनाओं में की। 'दी कंट्री वाइफ़', और 'दी प्लेन डीलर' दोनों अपरिष्कृत नाटक हैं, मगर बड़े मज़ेदार हैं। उसके बाद सत्यमेव नाटककारों का एक विशिष्ट दल सामने आया जिसमें विलियम कांग्रेव, सर जान वानब्रुघ और जार्ज फ़र्कुहर थे।

इनमें काग्रेव ने साबित कर दिया कि वह सर्वाधिक स्थिर शैली की हाज़िर-जवाबी की अप्रतिहत धारा के स्वामी हैं। और 'इन दि वे आव दी वर्ल्ड' और 'लव फ़ार लव' के रूप में उन्होंने अँग्रेजी कृत्रिम सुखान्तकों में सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की उनको अपने नाटकों की चिन्ता किंचित् मात्र नहीं है। मगर इसी तरह उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि वही उस युग की आत्मा हैं। यदि उनके नाटकों में नैतिकता का नाम आता है तो केवल इसलिए कि उसे उलट देने से नाटक की रोचकता में कुछ वृद्धि हो जाती है। यदि उनके नाटकों में जीवन की अभिव्यक्ति होती है तो यह जीवन केवल कुछ संकुचित-साधारण बुद्धि वाले लोगों का, दरबारी, समाज के कामाचारी लोगों का जीवन है। इन कृत्रिम कथानकों में कोई मनुष्य नहीं विचरण करता। फिर भी इनमें ऐसे वाक्-युद्ध और हाज़िर-जवाबी के कथोप-कथन हैं जो सत्यमेव अद्वितीय हैं। 'लव फ़ार लव' शुद्ध सुखान्त के सर्वाधिक निकट है।

उसके कुछ पात्र हैं—स्कैण्डल (निन्दा), टेटिल (बकबकाना), फ़ोरसाइट (दूरदर्शिता) ट्रेपलैण्ड (कपट नगर), मिसेज़ फ्रेल (श्रीमती कमज़ोरी) और मिस प्रू (कुमारी प्रू) मगर यदि पाठक—अब हमारे अभिनेता इन चरपराते पृष्ठों वाले नाटकों के रंगमंच पर कृत्रिम रूप से प्रस्तुत करने का अधिकार खो चुके हैं—'दी वे आव दी वर्ल्ड अपना दो' घण्टा इसे पढ़ने में ख़र्च करें तो वे उस विशिष्ट प्रकार का उसके उत्कृष्टतम रूप में देखेंगे। इसमें हाज़िरजवाबी से ऊपर उठकर एक गम्भीरता मिलेगी, और इतना ओजपूर्ण चरित्र चित्रण मिलेगा जैसा शुद्ध नाट्य-रूप में इसके पहले कभी नहीं मिला था। निश्चय ही यहाँ कांग्रेव ने रेस्टोरेशनकालीन नाटककारों सुखान्तक की आधी परिष्कारहीनता छील कर अलग कर दी। उसने हाज़िरजवाबी की तलवार को इतना चमका दिया कि उसकी चमक-दमक के चकाचौंध में हम अन्य सारे विचारों को लगभग खो देते हैं। एक पात्र विटउड के दो वाक्यों से इस विषय की तह तक हम पहुँच जाते हैं—"हाज़िर-जवाबी को स्त्री की वफ़ादारी से अधिक सत्यशील नहीं होना चाहिए। एक में किन्हीं अंगों के पतन की बात है, दूसरे में सौंदर्य की।" लगता है यहाँ एक सारभूत तत्व कह दिया गया है: सत्यनिष्ठा, शैली, वफ़ादारी मार्मिक' हस्तलाघव, उस्तादी, बात को पलट देने की, कला दार्शनिक निस्संगता, कौशल के सम्बन्ध में।

कोले सिब्बर के अनुसार जिस कम्पनी ने कांग्रीव के दुःखान्तकों का अभिनय प्रस्तुत किया उसमें "तेरह ऐसे अभिनेता थे जो अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा में समान स्तर के थे।" और, यद्यपि हम आधुनिक लोग यह सोचते हैं कि अक्सर जिस अभिनेता की अत्यधिक प्रशंसा अपने युग में हुई है यदि वह आज होता तो शायद हमें प्रसन्न न कर पाता. फिर भी हम बेटर्टन की कम्पनी के सम्बन्ध में यह सोचते सकते हैं कि वह कांग्रीव के छुरे की धार की तरह व्यंग्योक्तियों और तीक्ष्ण प्रतिभा के प्रदर्शन के सर्वथा उपयुक्त थी। शायद रंगमंच पर आने वाली महिलाओं ने—अंग्रेज़ी रंगशाला के इतिहास में यह पहिला अवसर था जब कि महिलाएँ रंगमंच पर आयीं—अपनी भूमिकाओं को सहजता और चपलता प्रदान करने में अपने को मर्दों से अधिक योग्य साबित किया। इन सुखान्तकों में जिस प्रकार की दरबारी बारवनिताओं एवं नायिकाओं का चित्रण किया गया, वैसी ही भूमिका भी उन्होंने की। अपने अभिनय के लिए इनमें से सबसे अधिक ख्याति श्रीमती ब्रेसगर्डिल ने प्राप्त की, यद्यपि इतिहास में नेल ग्विन का ही नाम अधिक बड़ा बना कर लिखा गया है। ऐसा अंशतः इसलिए हुआ कि उसमें अत्यन्त मोहक प्रगल्भता थी; अंशतः इसलिए भी कि सम्राट ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया था। इस प्रकार रंगशालीय रक्त का सम्मिश्रण शाही रक्त से हो गया। इसी का फल था कि इंगलैण्ड के बाद के अवैध सामन्त वर्ग की मानसिक संपन्नता बहुत अधिक बढ़ गयी।

चार्ल्स द्वितीय के राज्यारोहण के बाद लन्दन में दो नाटक कम्पनियाँ थीं। उनमें से एक थी "किंग्स सर्वेंटस" नामक कम्पनी। इसे शाही परिवार की सदस्यता प्राप्त करने का गौरव मिल चुका था। इस रूप में वे "जेन्टिलमेन आव दी चैम्बर" कहे जाते थे। दूसरी कम्पनी का नाम था "ड्यूक आव यार्कस कम्पनी।" इन नामों से ही पता चल जाता है कि अन्य युगों के "लुच्चों-बदमाशों" का जो स्तर था, उससे बिल्कुल भिन्न और पृथक इन कम्पनियों का स्तर था। इस समय मंच पर इटालवी यवनिका -चौखटा लगाने की प्रथा चल चुकी थी और नियमित रंगशालाओं में हमेशा के लिए चेहरे लगा कर अभिनय करने का ढंग भी स्वीकार हो गया था। जहाँ तक मंच पोशाक का सम्बन्ध है, परम्पराओं का एक मिश्रित ढंग स्वीकार कर लिया गया था। कुछ पात्रों की पोशाक अवश्य ही रोमान्टिक और कोमल "ऐतिहासिक" ढंग के रहे होंगे, जब कि उसी नाटक में दूसरे पात्र तात्कालिक फ़ैशन की पोशाक या ताज़ा फ्रांसीसी शैली की पोशाक धारण कर मंच पर उतरते रहे होंगे। परिपाटियों और शैलियों का यह सम्मिश्रण एलिज़ाबेथी युग की एक विशेषता थी। यह लगभग सौ साल तक इसी रूप में चलती रही।

१६८२ ई० में, उपर्युक्त दोनों कम्पनियों एक में मिला दी गयीं। इसका नाम "किंग्स कम्पनी" रख दिया गया और सर्व प्रथम इसने ड्रूरी लेन थियेटर में अभिनय किया। ड्यूक थियेटर अथवा डारसेट गार्डेन थियेटर के मंच का जो चित्र यहाँ दिया गया है, उसे देख कर पाठक को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह आधुनिक 'बाक्स-सेट' दृश्य है। पीछे के पर्दे और कमरे (जिनके बारे में हम आगे और भी बतायेंगे) कुछ इस प्रकार बनाये गये थे कि जब वे रंगशाला के एक विशेष स्थान से देखे जायँ, शाही बैठने के स्थान से देखे जायँ, तो वे ऐसे ही लगें। मगर किसी भी दूसरे स्थान से उनका यह आदर्श रूप दिखायी नहीं देता था। इसमें सामने का मंच और बाक्स भी हटा दिया गया है।

सर क्रिस्टोफ़र रेन का यह चित्रांकन ड्रूरी लेन थियेटर के ही आधार पर बना हुआ मालूम पड़ता है। यह इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित करता है कि किस प्रकार लन्दन ने भी रंगशाला-योजना की युरोपीय शैली का ही अनुगमन शुरू कर दिया था। यहाँ हम सोपानीकृत मंच देख सकते हैं। यह आगे उभरी हुई दृश्यावली को प्रदर्शित करने के लिए बनायी गयी थी, इसमें हम मुर्गीखाने के सन्दूकों–समान अर्ध-वृत्ति देख सकते हैं और पुनरुत्थानकालीन प्राचीनर स्तम्भ और ऐसी ढली कार्निस देख सकते हैं जिसमें पर्दे के नीचे झालर लगी है, मंच के नीचे दरवाज़े हैं जो कि एलिज़ाबेथकालीन अभिनय मंच की ही परम्परा की याद दिलाते हैं। यह सही है कि अनेक दृष्टियों से अंग्रेजी रंगमंच

महारानी एलिज़ाबेथ अपने सम्मान में आयोजित, चेहरे धारण कर उद्यानों में होने वाले मनोरंजनों की परंपरा का एक अभिनय देख रही हैं। इस चित्र का नाम है 'दी मास्क आव ज़ेबेटा'। जुनो, मिनर्वा और वीनस की भूमिकाओं में अभिनेत्रियां अभिनय कर रही हैं।
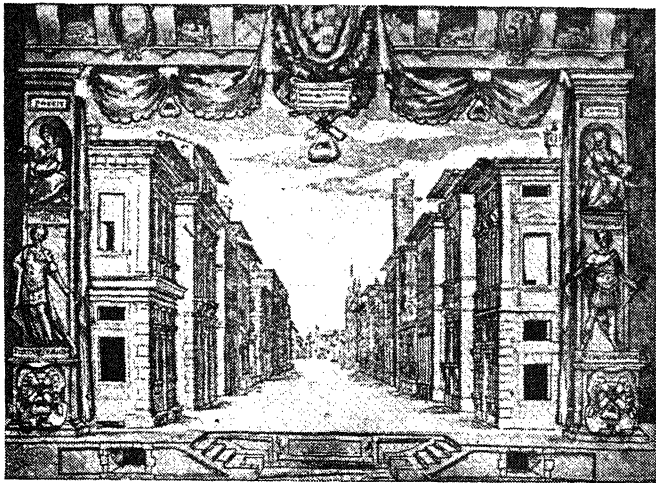
इटालियन इमारती दृश्यमूलक सेटिंग। इसी प्रकार की सेटिंग का प्रारम्भ इंगलैण्ड में, एलिज़ाबेथन युग में हुआ था। इस चित्र में सीना के केथीड्रल स्क्वायर का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। यह दृश्य परिचित प्रोसीनियम चौखटे के पीछे तैयार किया जाता था।
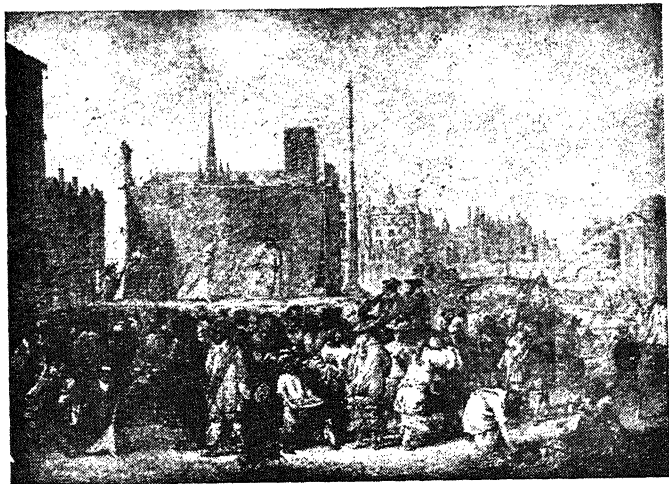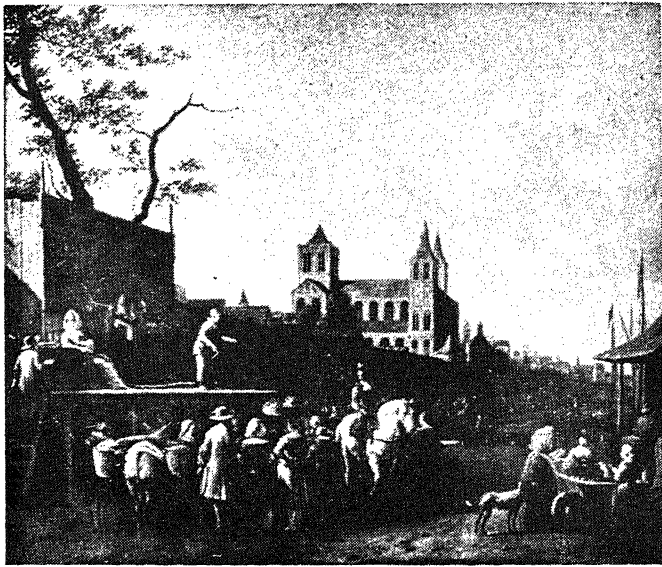
खुले मैदान के चबूतरानुमा मंचों के लिए सत्रहवीं शताब्दी की दो छवियाँ। ऊपर, पियरे ऊवेरमान्स कृत 'चार्ल्टन सर उने प्लेस दे पेरिस।' नीचे, ओरवियेटन के मंच का एक चित्र जिसका अंकन गेरिट-एड्रियानाज़ बरकीडेन ने किया था।
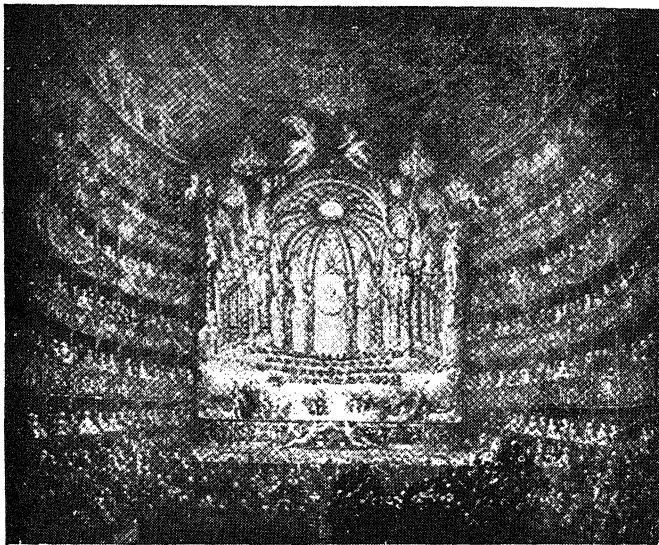
ऊपर, १६७० ई० के पूर्व का मंचीय दृश्य जिसमें फ्रेंच और इटालवी विदूषक अभिनय कर रहे हैं। मोलियरे बिलकुल बाएं किनारे पर हैं; दूसरे लोगों के बीच जोदेलेत, ग्रोस-गुइलोमे और साकामोचे भी हैं जिन्हें हम केवल उनके चेहरों के नामों से ही जान सकते हैं। जिस तरह फ्रांसीसी रंगमंच पर इटालियन सड़कों का दृश्य और कामेदिया पात्रों को स्वीकार कर लिया गया था, उसी प्रकार, बाद की शताब्दी में, इटली की नृत्य-नाटय रंगशाला को ही फ्रांस में टकसाली रंगशाला

अन्तर्राष्ट्रीय बन गया था। यदि हम वीरतापूर्ण दुःखान्तक के लिए इटालवी आपेरा और कार्नेल की फ्रांसीसी शैली के ऋणी हैं तो रेस्टोरेशनकालीन सुखान्तक भी मोलियर से प्रभावित हैं। यह फ्रांसीसी उदाहरण ही था जिसके फलस्वरूप रंगमंच से लौंडे गायब हो गये और उनके स्थान पर अभिनेत्रियाँ काम करने लगीं।
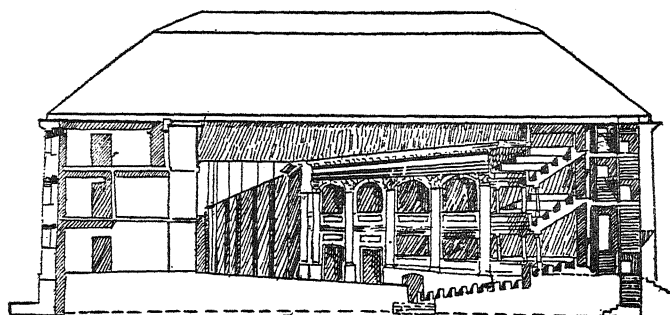
क्रिस्टोफर रेन कृत एक रंगशाला की डिज़ाइन। शायद १६७४ ई० के ड्रूरी लेन रंगशाला के लिये ही यह बनायी गयी थी। सोपानी मंच, विंग्ज़, मंच-द्वार, अनेक प्रकोष्ठ और छोटा-सा पिट जिसमें बेंचें पड़ी रहती थीं, सभी दृष्टव्य हैं।

(जिस मूल रेखाचित्र के आधार पर यह चित्र बना है, वह अब आल सोल्स कालेज, आक्सफोर्ड, की लायब्रेरी में सुरक्षित है।)

और हाँ, एक महिला नाटककार का भी आविर्भाव हुआ। वह ऐसी लेखिका थीं जो अत्यन्त सजीव एवं युग-निर्माणकर्ता के रूप में याद की जाती है। श्रीमती आफ्रा-बेन उन अनेक लगभग महान् नाटककारों में से एक मानी जाती हैं जिन्होंने रेस्टोरेशन-कालीन दर्शकों को खूब हँसाया और अँग्रेजी नाटककारों में इस एकमात्र महिला ने अश्लील कथानकों को अपने नाटकों में सफलतापूर्वक उतार देने में किसी से भी बाज़ी नहीं हारी। आज की दृष्टि से, उसके दुराचारपूर्ण कार्य-कलाप अतिशय विचित्र मालूम पड़ते हैं। (मगर इन्हीं के कारण, इँगलैण्ड की जिन अमर प्रतिभाओं को वेस्ट मिनिस्टर अबे में जगह मिली उन्हीं के बीच इस महिला को भी स्थान मिला।)

मगर सम्राट् और सामन्तों की इच्छा-पूर्ति के लिए यह जो भड़ैती की गयी उसकी प्रतिक्रिया ने उस वृत्त को उस विन्दु पर पूरा कर दिया जहाँ से यह अध्याय आरम्भ होता है। १६९८ ई० में जेरेमी कोलियर ने अपने 'शार्ट व्यू आव दी इम्मोरालिटी ऐण्ड प्रोफ़ेननेस आव दी इँगलिश स्टेज' प्रकाशित किया। मगर इस वार यह कोई धर्मान्ध कट्टरपन्थी नहीं बोल रहा था, कोई उग्रतावादी आँखें बन्द करके चीख नहीं रहा था। अब
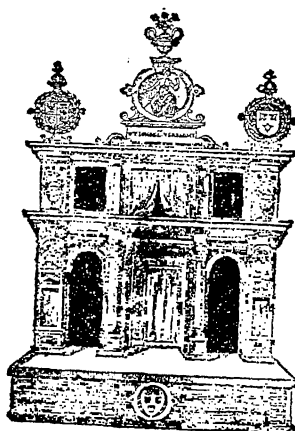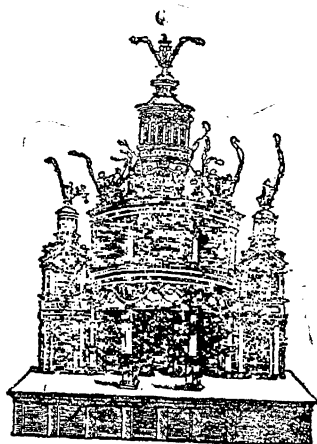
मध्य सोलहवीं शताब्दी के घेन्ट और एन्टवर्प स्थित रेडेरीजेकर सोसायटियों के दो औपचारिक रंगमंच। विल्हेम क्रिजेनाख कृत 'दि इंगलिश ड्रामा इन दी एज आव शेक्सपियर' से।

एक बहुज्ञ, कुछ-कुछ विनोदी, और संयत स्वभाव वाला व्यक्ति केवल उस बात पर प्रकाश डाल रहा था जिसे वह अपने ज़माने के रंगमंच के सम्बन्ध में सच समझता था। इसका प्रभाव तत्काल और काफ़ी दूर तक पड़ा। गम्भीर अश्लीलता लगभग समाप्त हो गयी; या कम से कम रंगशालाओं ने कांग्रेव, फ़र्क़ुहर और वानबुध के बाद किसी नवीन कृत्रिम नाटककार का निर्माण नहीं किया। नाटक का साहित्यिक मूल्य भी घट गया; कोली सिब्बर को नाटककार के रूप में महत्वपूर्ण स्वीकार करना कठिन है, यद्यपि वह

अभिनेता–लेखक–व्यवस्थापक की हैसियत से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति था—वह एक परिश्रमी कवि था और एक ईमानदार आदमी था'—यह भी किसी ने जोड़ दिया था। रिचर्ड स्टील ने कुछ नाटक लिखे जिनमें भावुकता के स्वर थे—यही एक स्वर था जिससे रेस्टोरेशनकालीन नाटककारों का कोई भी सम्बन्ध न था। और जोज़ेफ
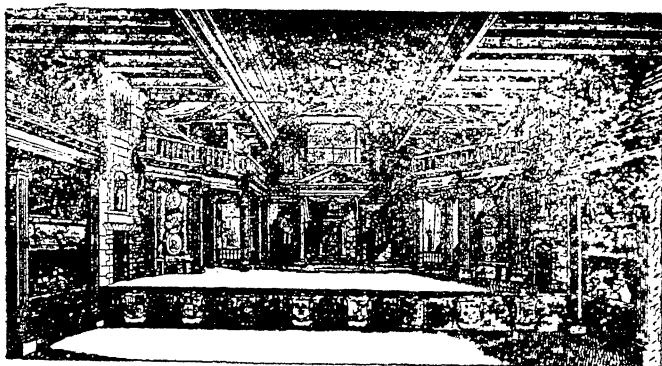
१६३८ ई० का आम्सटर्डम स्खोबुर्ग का विचित्र रंगमंच। इसमें मध्ययुगीन एक ही साथ अनेक मंचों के अवशिष्ट तत्व देखे जा सकते हैं। इसमें छज्जेदार एलिजाबेथन चबूतरा और इटालियन बीथी–मंच के चिन्ह भी हैं। इसमें पर्दा, और प्रकाष्ठों के ऊपर गैलरी बेंचें भी दृष्टव्य हैं। इसका प्रेक्षागृह सामूहिक रंगशालाओं की ही भांति था। इसका फ़र्श चिपटा था और सभी ओर दोतल्ले प्रकोष्ठ थे। (निकोलस वान केम्पन कृत एक सम-सामयिक उत्कीर्ण चित्र से, जैसा कि वह 'दास बूहनेनबिल्ड' में कार्ल नीसेन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।)

एडीसन ने एक शुद्ध दुःखान्तक लिखा जिसका नाम था 'केटो'। यह खूब लोकप्रिय हुआ। मगर आज हम इन नाटकों को रेस्टोरेशनकालीन आज़ादी की प्रतिक्रिया के रूप में ही स्वीकार करते हैं। अठारहवीं शताब्दी के प्रथमांश में ही कोलियर विजय प्राप्त कर चुका था। ड्राइडन ने तो प्रायः सार्वजनिक रूप से अश्लील नाटकों की रचना करके अपने हाथ गन्दे करने के लिए पश्चात्ताप किया, क्षमा-याचना की।

फ्रांस और पुनरुत्थानकालीन रंगमंचों की वात हम एक क्षण बाद करेंगे। पहिले यहाँ रुक कर हम यह देख लें कि इस छोटे से वर्णन में छोटे देशों के रंगमंचों को समुचित स्थान और अवसर न दिया जा सका। एक डेनमार्क है जहाँ इसी समय हालबर्ग के नेतृत्व में एकाएक एक रंगशाला का उदय हुआ। तत्कालीन युरोप के दो सबसे महान् नाटककारों में एक नाम इनका भी था। आज तक उनके सुखान्तक केवल स्कैंडिनेविया में ही नहीं, जर्मनी में और कभी-कभी सुदूर देशों में भी खेले जाते हैं। और फिर हालैण्ड है जिसमें क्रिश्चियन धार्मिक नाटक के युग में बहुत तेज़ रंगशाला थी, जहाँ पुनरुत्थान कालीन स्वतंत्रता की प्राण वायु का संचार हुआ था; जहाँ उसी समय ये प्रयोग हुए थे जिस समय कि इँगलैण्ड में हुए थे। विश्व इतिहासकार के लिए डच रंगशाला विशेष रूप से रोचक है क्योंकि यहाँ सोलहवीं शताब्दी में कुछ विचित्र इटालवी रंगमंचों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने शायद अँग्रेजी रंगमंचों को भी प्रभावित किया। यहाँ की नाट्यशाला में क्लासिक मध्ययुगीन और स्थानीय प्रभावों का कुछ ऐसा विचित्र सम्मिश्रण हुआ जैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस पृष्ठ पर और इसके पहिले के पृष्ठ पर हमने दो चित्र दिये हैं जो अपनी कहानी स्वयं कहते हैं और हमें अपने मुख्य क्रीड़ास्थल फ्रांस की ओर बढ़ जाने की प्रेरणा देते हैं।

अध्याय १४

फ्रांस के सम्राट्, वारांगनाएँ और नाटककार

आप चाहें तो अपने मानसपटल पर लुई चौदहवें के दरबार का चित्र खींच सकते हैं; सम्राट् के वैभव-ऐश्वर्य का भव्य समारोह : स्वयं महान् सम्राट्, लुई दी ग्रैण्ड, रोये-सोलील--"ल' एतात, संस्त मोई; वार्साई और सेंट क्लाउड में विशाल प्रसाद और उद्यान, पेरिस में लूवरे, मुसाहिबों की भीड़, और कमनीय स्त्रियां, सुन्दर और पूर्णतया कुशल वारांगनाएँ, मनचले पुरुष; गोटा-पट्ठा और झालर, प्रेम के नीड़, साटन और रेशम के कपड़े एक अनन्त, शाश्वत छद्म क्रीड़ा की भाँति; कलाबाज़ियाँ आतिशबाज़ियाँ, सामूहिक नृत्य लीलाएँ, उत्सव; उन साहित्यिकों और कलाकारों की गोष्ठियाँ, जो दरबारी बनने की लालसा रखते हैं; फ़ैशनेबुल बनने के लिए दरबारी भी तो कला के मामले में हस्तक्षेप करते हैं। इस प्रसन्न और सम्भ्रान्त समाज के चित्र पर ध्यान केन्द्रित कीजिए, जो बिल्कुल कृत्रिम, आवश्यकता से अधिक अलंकृत--ज़रूरत से ज्यादा सामानों से लदे-फंदे, यह बात कालीन-सोफ़ा सजाने वाले कह सकते थे--और तब आपको उन परिवर्तनों की कुञ्जी मिल जाएगी जो कि रंगशाला में सत्रहवीं शताब्दी में हुए। अब, लगभग दो शताब्दियों तक दरबारीपन ही रंगमंचीय कला की विशेषता बनने वाली थी।

१६०० ई० के तुरन्त बाद पेरिस फ्रांस के जीवन का केन्द्र तथा सब कुछ बन गया। इसके बाद से फ्रांस का, इस राज-नगर का समर्थन करने के लिए, दुहा जाना आरम्भ हो गया। और पेरिस के सारे कार्यकलापों पर शाही दरबार का तेजोमय अधिपत्य भी स्थापित हो गया। अब शाही परिवार तथा उसके प्रिय लोगों की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुकूल ही नाट्यालय तथा मंच-सेटिंग का रूप स्थिर होने लगा। यहाँ तक कि नाट्य-रचना पर भी नियंत्रण रहने लगा। रंगशाला पर शौक़ीन और उच्छृंखल

दरबारीपन के बाह्याडम्बर का इतना प्रभाव पड़ गया कि उन्नीसवीं शताब्दी तक इसके सम्बन्ध में फिर कोई सवाल ही नहीं उठाया जा सका। उसकी चमक-दमक इतनी बढ़ गयी कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भी वह रंगशालाओं पर छायी रही और नवीन मशीन युग के अनुरूप एक कला की संरचना में बाधा उपस्थित करती रही।

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस एक आराजकतापूर्ण वातावरण से उभरा ही था। उस अराजकता की स्थिति में कला की ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने की फ़ुर्सत ही नहीं थी; किसी भी प्रकार के सामाजिक अथवा सांस्कृतिक जीवन का केन्द्रीकरण नहीं था; ऐसी कोई राजनीतिक राजधानी भी न थी जिसके सम्बन्ध में मतैक्य हो। रंगशालीय परिस्थिति भी लगभग उतनी ही अनगढ़ और अविकसित थी जितनी कि पास के जर्मनी में। ऐसा उस समय था जब कि इटली, स्पेन और इंगलैण्ड में पुनरुत्थानकालीन स्वर्ण युग आकर जा चुका था। फ्रांस पीछे रह गया था; वह केवल अशिष्ट देशी रंगमंच से ही परिचित था। अथवा, कभी कभी अन्य देशों से नाटक करने वाले दल आ जाया करते थे और अपना अभिनय प्रस्तुत कर लिया करते थे। फिर भी साठ वर्षों के ही अन्दर फ्रांस अपनी सबसे शानदार नाटकीय उपलब्धि और सफलता का दर्शन करने वाला था; उसके सर्वोत्कृष्ट नाटकों की रचना होने वाली थी, वह समस्त युरोप की रंगमंच कला का सबसे अधिक ऐश्वर्य शाली केन्द्र बनने वाला था और समस्त पाश्चात्य संसार में, जहाँ तक नाटकों की समस्या का प्रश्न है, निर्णायक के रूप में स्वीकार किया जाने वाल था। इस सफलता का गौरव इतना चकाचौंध पैदा कर देने वाला था कि फिर आगे अठारहवीं शताब्दी के बाद तक उसका अनुकरण ही होता रहा; और जब प्रजातंत्र ने सचमुच एक नयी चुनौती सामने रखी तो भी छोटे-मोटे कलाकार पुराने चकाचौंध से इतना अधिक प्रभावित थे कि अनजाने ही वे उसका अनुकरण करते रहे, और सम्राटों ने तथा उनकी वारांगनाओं ने रंगशाला को जो विशेषता प्रदान की थी उसे चालू रखे रहे। निस्सन्देह कला की सम्पूर्ण बुर्जुआ (कुलीन) अवधारणा, आज के दिन और घड़ी तक सामान्य जीवन से रोमांटिक रूप में अलग, रोमांटिक रूप से शाही, अलंकृत, झूल-झालरदार, और रोमक वस्त्र-पोशाक समन्वित सज्जा के साथ चलती चली जा रही है। बजाय इसके कि कला को जीवन की सघनता के रूप में स्वीकार किया जाता, प्रजातंत्र ने उसे कोमल दिनों की ओर पलायन के रूप में ग्रहण किया; उसे केवल कुछ लोगों का स्वत्व समझा; उसे पूर्व के व्यय-साध्य मनोरंजन की प्रदीप्ति का सेवन करने का साधन समझा। इस रईसी दुःस्वप्न से सबसे अधिक हानि रंगशाला की हुई। इसलिए यह आवश्यक है कि आरम्भ से ही इस "दरबारीपन" के बारे में हमारी कुछ जानकारी हो जाय।

हमें याद रखना चाहिए कि यह समृद्ध इटालवी दरबार ही थे जिन्होंने नृत्य-कक्षीय रंगशाला और चित्रित सेटिंग की उद्भावना की थी और यह कि उनके ही संरक्षण में नव-क्लासिक नाटक का विकास हुआ था और आपेरा का अन्वेषण किया गया था। फ्रांस ने इन सारी भावधाराओं को ग्रहण कर लिया और पेरिस के केन्द्रीभूत दरबार ने क्लासिकवाद को नयी प्रभुता प्रदान की जिस पर इटालियन रंगशाला की और इटालवी रंगमंच की साज-सज्जा की मान्यता की मुहर लगी हुई थी, और उसने स्पष्ट ही सदैव के लिए रंगशालीय कला के ऊपर आपेरा को लाद दिया।

फ्रांस की दरबारी सक्रियता से दो रूपों में नियमित रंगशाला प्रभावित हुई थी : नाट्य-रचना पर यह धारणा लाद दी गयी कि शासक वर्ग की सम्पूर्ण शक्ति और उसके सारे नियम ईश्वरनिर्मित हैं। दूसरी बात यह है कि दरबारी जीवन की बाहरी चमक-दमक जिसमें वारांगनाओं द्वारा प्रयुक्त भड़कीले वस्त्राभूषणों का भी विशेष स्थान था, रंगमंच पर प्रस्तुत नाटकों में भी हावी हो गयी।

जहाँ तक नाट्य लेखन का प्रश्न है, इटालवी नियम परिश्रमपूर्वक संहिताकृत कर दिये गये थे। भविष्य में नाट्य रचना के अपरिवर्तनशील आधार के रूप में वे स्वीकृत हो गये थे। 'क्लासिक' शब्द की परिभाषा भी रूढ़ बन गयी थी : इसी के बाद से, उन लोगों में जो नियम के अन्दर रह कर कट्टरता के साथ उनके अनुसार ही नाट्य-रचना करते थे तथा उन लोगों में जो निर्द्वन्द्व प्रयोगवादी थे और जो नाट्य-रचना को जीवन के समीप लाना चाहते थे अथवा जो नाट्य-रचना और जीवन को साथ-साथ विकसित होने देना चाहते थे, पार्थक्य बढ़ता जा रहा था। ऐसी अकादेमियाँ बनायी गयीं जिनका काम उन लेखकों को सम्मानित करना था जो नियमानुकूल नाट्य-रचना के हामी थे और उन लेखकों का विरोध करना था जो इन स्वीकृत नियमों का उल्लंघन करते थे। और, विशिष्ट रंगशालाओं को आर्थिक-सहायता दी गयी, उनको क्लासिक नाटक का सरकारी भवन बनाया गया, और अक्सर नियमित दुःखान्तकों और सुखान्तकों के प्रस्तुतीकरण के लिए उन्हें एकाधिकार दे दिया गया।

नियमों के इस संहिताकरण तथा रंगशालाओं के इस विशेषाधिकार प्रदान के फलस्वरूप नाट्य लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा; क्योंकि जहाँ एक ओर नाटककार राजदरबार की चमक-दमक और संरक्षण के प्रभाव में अपना सर्वश्रेष्ठ अपनी रचना में प्रकट करता था वहीं उसे नाट्य-रचना सम्बन्धी मनमाने 'नियमों" के कारण बाधा भी पहुँचती थी। इसके अतिरिक्त वह सामान्यतया अपने को इस कल्पना से संतुष्ट रखता था कि वह सम्भ्रान्त बुद्धिजीवियों का एक अंग है, और इस प्रकार वह रक्त के कारण सम्भ्रान्त बने लोगों के भी समकक्ष है। और निश्चय ही उस युग के एक महान्

प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति को, जिसने तमाम नियमों का उल्लंघन किया था, अकादमी में प्रवेश नहीं मिला। उसने एक विशेषाधिकार-संपन्न कम्पनी को चुनौती भी दी—मगर एक सम्राट ने अधिक विवेकशीलता और उदारता प्रदर्शित की और उसने अपने दरबार के बने भेदों का विरोध किया। फिर भी, सामान्यतया, सत्ता से चिपका रहना ही इस पूरे युग की विशेषता बन गया। इस युग के नाट्य लेखन में नियमपालन के प्रति अभिरुचि, एक कृत्रिम औपचारिकता, अमानवीयता तथा भावना की गहराई की कमी हमें सर्वत्र मिलती है। आचार-व्यवहार का महत्व अधिक था, रचना का, सृजनका महत्व कम था। नाटककार कृत्रिम मर्यादा, खोखली प्राञ्जलता, गम्भीर मनःस्थिति की सीमाओं के भीतर रह कर रचना करता था; अथवा वह छोटी-मोटी बातों को बढ़ाकर वाटिका-गोष्ठियों, नृत्यों, और शाही आदेश पर हुए अभिनयों के लिए छद्मवेशी नाटकों अथवा यात्रा नाटकों की भांति मनोरंजनपूर्ण रचनाएँ तैयार करता था।

रंगशालाओं में वारांगनाओं का प्रवेश अत्यन्त मायावी ढंग से हो रहा था। रंगशाला की साज-सज्जा में ऐसे अलंकरण और चमक-दमक का प्रवेश हो गया जो सम्राट की इन प्रेमिका वारांगनाओं की सजावट के लिए भले ही उचित रही हो, मगर नाट्यशाला के लिए उचित न थी (यद्यपि दो सौ वर्षों बाद ही यह पेरिस आपेरा हाउस तथा अन्य सैकड़ों वाह्य-शोभी अनुकरणों में अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकी)। प्रेक्षागृह निजी कटघरों की सोपानीकृत व्यवस्था बन कर रह गये और मंच-सज्जा कोमल और वैभवशाली बन गयी। जैसा कि हम दूसरे अध्याय में देखेंगे, अगणित अन्य क्रीड़ा वस्तुएँ भी जोड़ दी गयीं। इन अनेक ठोस बातों के जुड़ने के अतिरिक्त एक अधिक सूक्ष्म बात भी जोड़ी गयी, रंगमंचीय जीवन पर एक शाही 'ज्योति' चमक उठी। अभिनेता खूब भड़कीले वस्त्र धारण करने लगे, उनके आचार-व्यवहार में कुलीनता आ गयी, दरबारी ताजगी और सप्राणता आ गयी। थोड़ी सी नियमित रंगशालाओं और नृत्यशालाओं में लगातार आदान-प्रदान होता रहा, यहाँ तक कि अन्त में, पुराना चबूतरानुमा रंगमंच शाही रंगशाला की इमारत से ग़ायब हो गया। और नाट्य प्रस्तुतीकरण शाही कृपा से आयोजित विशिष्ट लोगों का उत्सव बन गया। यहाँ रंगशाला का प्राचीन डायोनिशियन उल्लास कुछ वाहय-दिखावटी चमक दमक और शाही पिछलग्गुओं के क्षुद्र षड़यंत्रों के साथ मिश्रित हो गया। लेकिन जो भी हो, महान् सम्राटों के तेज का प्रभाव रंगशालाओं पर पड़ता ही रहा। (इस पृष्ठ के पास के प्लेट २७ को देखिए और उसके बाद के प्लेट २८ को भी)।

१६०० ई० में परिस में एक ही रंगशाला थी : वह अशिष्ट सा 'होटेल दे बूरगोन' नामक स्थान था। अंशतः वह प्राचीन खुले चमत्कार-रंगमंचों के सदृश था और उसमें

स्थायी सेटिंग की व्यवस्था अब भी थी। नगर में अभिनेताओं का कोई स्थायी दल न था। नाट्य-लेखन का कार्य प्रायः बन्द हो गया था, यद्यपि अब भी पुराने धार्मिक नाटकों और प्रहसनों का एक संग्रह सा मौजूद था और कुछ साहित्यिक लोग नव-क्लासिक इटालियनों की तरह दुःखान्तकों की रचना अब भी करते जा रहे थे। जब घूमते-फिरते विदूषकों की टोलियाँ आ जातीं तो रंगशाला सज उठती। अक्सर ये लोग मेलों की ऋतु में आते; कभी-कभी नक़ली डाक्टर अपना प्रचार करने के लिए इन अभिनेताओं का अभिनय अपने चबूतरों पर करवाते थे। इंगलैंड में ठीक इसी समय गौरवशाली एलिज़ाबेथी प्रस्फुरण हुआ जब कि शेक्सपियर कृत 'रोमियो ऐण्ड जुलियट' और 'ऐज़ यू लाइक इट' लन्दन के रंगमंचों को जगमगा रहे थे, और जब कि यह महान् कवि हैमलेट अथवा ओथेलो अथवा किंग लियर की रचना कर रहा था। स्पेन में लोपे दे वेगा अपनी शक्ति के चरम बिन्दु पर पहुँच रहा था। इटली में पुनरुत्थानकाल के बाद जो रचनात्मक सक्रियता का ज्वार आया था, वह उतर चुका था; और सही यह है कि उस युग की सुनसान रंगशालाओं में इटालवी अभिनय कम्पनियाँ ही आकर कभी-कभी कुछ रोशनी बिखेर जातीं। यहाँ तक कि होटेल दे बूरगोन में भी १५९९ ई० में इटली से आयी हुई एक बाहरी कम्पनी ने एक स्थानीय अभिनेताओं की टुकड़ी की तरह असंस्कृत अभिनय प्रस्तुत किया। इस अवसर पर पेरिस की ओर से कोई भी नाटक प्रस्तुत नहीं किया जा सका। १६२२ ई० में ऐसा अवसर आ गया जब कि नगर में एक भी नाटकीय मनोरंजन आयोजित न हो सका।

१६०० ई० और १६२२ ई० के बीच, जैसा कि हम देखेंगे, इस बात की कोशिश बार-बार होती रही कि स्थायी रूप से, सुनिश्चित ढंग से, रंगशालीय सक्रियता चालू हो सके। लेकिन इस समय के बाद काफ़ी दिनों तक भ्रमणकर्ता दलों के प्रदर्शन ही अत्यधिक रोचक रूप में होते रहे। हम उन्हें अपनी मानस दृष्टि से संत लारेन्स और संत जर्मेन के मेलों में अस्थायी रूप से अपना रंग मंच सजाकर अभिनय करते देख सकते हैं। इन मेलों में वृहद् आनन्दोत्सव होते थे। अक्सर सम्राट् भी यहाँ के जुए के अड्डों, बिक्री के शिविरों, मंचीय प्रदर्शनों और विचित्र अभिनयों में जाया करते थे। कभी कभी अभिनेताओं के दल अपनी इच्छा से ही यहाँ आकर अपने पुराने और नये प्रहसनों, विनोदी अभिनयों, जादूगरी और उछलने-कूदने और लुढ़कने-पुढ़कने का तमाशा करते थे। ज़्यादातर यह होता था कि ये टुकड़ियाँ उन बड़े अभिनेता-दलों का अंग होती थीं जो उस युग के नक़ली डाक्टरों के साथ लगे रहते थे। (ये नक़ली डाक्टर लाइसेंस प्राप्त डाक्टरों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते थे)। ये अभिनेता दवा बेचने वालों के साथ घूम-घूम कर प्रदर्शन करते और दवाओं का प्रचार करते थे। इनके प्रदर्शन यूँ ही मनोरंजनपूर्ण अभिनय होते थे

जिसमें विदूषक होते थे, जादूगरी के तमाशे होते थे और अश्लील संकेत एवं भाव भंगियों का प्रदर्शन होता था। फिर भी एक सम्पूर्ण प्रहसन तो अभिनीत होता ही था। फ्रांस में आई गिलोसी जैसी मशहूर कम्पनी को भी एक नक़ली डाक्टर ही लाया था।
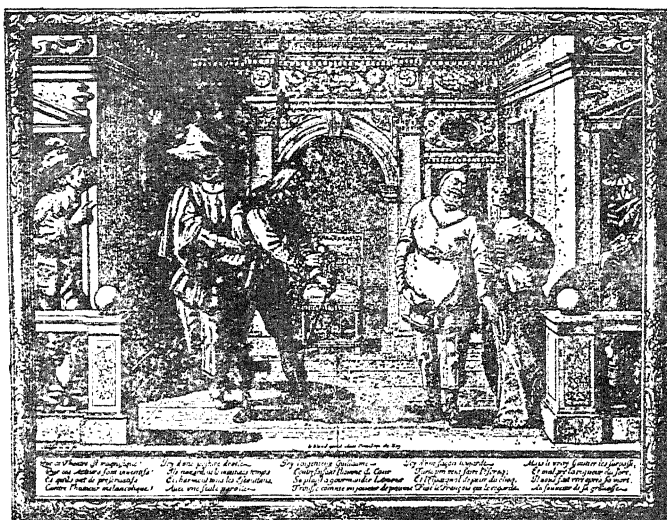
'होटेल दे बूरगोन' का रंगमंच, अब्राहम बोस्से के उत्कीर्ण चित्र से। इस दृश्य में केन्द्रीय पात्र तुर्लपिन, ग्रोस-गुइलोमे, और गोतियर-गरगुइले हैं।

उस युग के रंगमंच पर अभिनेताओं के साथ अधिकतर ये दवा बेचने वाले लोग और उनकी बोतलें ही दिखायी देती थीं : यहाँ तावारिन के 'प्लेस दोफाइन' के रंगमंच का ऐसा ही दृश्य दिखायी दे रहा है। इसमें उस समय के दर्शक, खरीददारों के दल, महान् नक़ली डाक्टर मोंदोर, खुद तावारिन और अन्य अभिनेता, संगीतज्ञ, ये सभी चित्रित किये गये हैं; साथ ही सादा रंगमंच भी है जिसके पीछे पर्दा टँगा हुआ है। इटालवी विदूषक नक़ली डाक्टर ओरवियतन की अधिक सजी रंगशाला के चबूतरे का दृश्य पास ही के प्लेटों में दिखायी देता है, उसी के साथ कुछ बाद वाले सड़क के किनारे के रंगमंच का दृश्य है। अक्सर उसका अभिनय ही पांट न्यूफ़ की विशेषता थी। रंगशाला के बाहर अभिनय करने की प्रथा, 'गम्भीर' नाटक के राजदरबारों के हाथ का

खिलौना बन जाने के बहुत दिनों बाद तक, प्रचलित रही। यह तब तक चलती रही जब तक कि दुःखान्त और दोनों प्रकार के नाटकों के लिए इटालवी शैली के घर के भीतर के रंगमंच समुचित अभिनय स्थल नहीं बन गये।

१६०० ई० में भी 'होटल डे बूरगोन' सम्भ्रान्त लोगों की सुविधा प्राप्त रंगशाला थी, यद्यपि इसमें अपने अभिनेता न थे और राह चलते अभिनेता ही यहाँ अभिनय
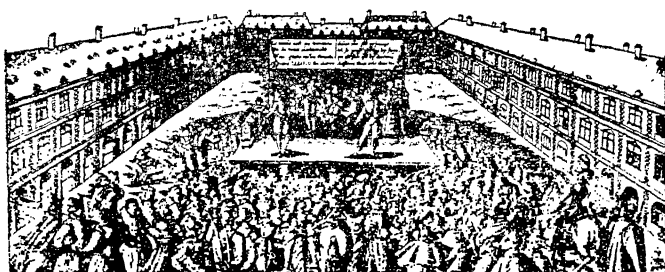
प्लेस डाफिने, पेरिस, में मोनडोर और तबारिन, अब्राहम बोस्से ने जैसा उन्हें खचित किया। (विक्टर फोरनेल कृत लेस रुए दु वियु पेरिस से।)

प्रस्तुत कर दिया करते थे। १४०२ ई० में ही चार्ल्स षष्ठ ने पेरिस में 'ब्रदर्स आव दी पैशन' को पवित्र रहस्य नाटकों का अभिनय करने का अधिकार दे दिया था। और वर्षों तक इन मौसमी अभिनयों का अत्यधिक सम्मान होता रहा। मगर जब चर्च 'धार्मिक' नाट्यों के प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में ली गयी आज़ादी से चौकन्ना हो गया तो उसने अनुमति वापिस ले ली। फिर उसने सक्रियतापूर्वक आगे आने वाले अभिनयों का विरोध किया; इसके बाद उपर्युक्त विशेषाधिकार वापिस ले लिया गया। १५४१ ई० में, ब्रदरहुड के अभिनेताओं का नाम सरकारी तौर से 'नासमझ कमकर' पड़ गया और "यह अभियोग लगाया गया कि 'दी एक्ट्स आव दी एपोसिल्स' को खींच-तान कर लम्बा करने के लिए इन लोगों ने अनेक अप्रामाणिक बातें जोड़ दीं, उसके आदि तथा अन्त में अमर्यादित प्रहसन एवं नृत्य-नाट्य के टुकड़े जोड़ दिये और अपने नाटक को बढ़ाकर छ-सात महीना लम्बा कर दिया, जिसने ईश्वर पूजा की ओर उदासीनता पैदा की और अब भी कर रहा है, जिसके कारण लोग भिक्षा और दान की ओर से विमुख हो गये, पर स्त्रीगमन, और अनवरत कुमारी सम्भोग, निन्दा, विद्रूप और घृणा में वृद्धि हो गयी।" इसके अतिरिक्त अभिनय के बीच 'सारा धर्मोपदेश बन्द कर दिया गया।' यहाँ तक कि पादरी लोग भी

अपनी पूजा के कृत्य को जल्दी-जल्दी समाप्त करके नाटक देखने के लिए जाने लगे। १५४८ ई० तक ब्रदरहुड के विरुद्ध आन्दोलन इतना मज़बूत हो गया कि इसके बाद वे रहस्य नाटकों का अभिनय करने से रोक दिये गये। यद्यपि उनको अपवित्र 'शालीनतापूर्ण और क़ानूनी' नाटक प्रस्तुत करने का अधिकार अब भी था, और पेरिस तथा उसके आसपास के स्थानों में अभिनय करने का एकाधिकार भी उन्हें प्राप्त था। विरोध होते रहे। और १५८८ ई० में सम्राट के पास प्रार्थना-पत्र भेजा गया कि 'इस होटेल डे बूरगोन' नामक अश्लीलता के गर्त्त और शैतान के घर को समाप्त कर दिया जाय।'

बहरहाल, अब १६०० ई० में 'ब्रदर्स आव दी पैशन' ने अभिनय करना बन्द कर दिया था। आख़िरकार इसके सदस्य कारीगर और व्यापारी ही थे ! अब रंगशाला पेशेवर होने लगी थी; प्रेक्षकों ने ऐसे ऊँचे स्तर के नाटकों की माँग शुरू कर दी थी जैसे स्पेन और इटली की कम्पनियों के होते थे। मगर पेरिस में कोई भी 'ब्रदरहुड' का नाम अपनाये बग़ैर और उसके लाभ की चिन्ता किये बग़ैर नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं कर सकता था। वे अपनी सरकार से प्राप्त अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते ही थे। अपनी रंगशाला के बाहर वे अन्य अभिनय होने ही नहीं देते थे। जो भी नाटक दल उनकी रंगशाला में अभिनय करता था उससे वे खिराज वसूल कर लेते थे (यद्यपि मेले के अवसरों पर पेरिस में आयोजित प्रान्तीय कम्पनियों के अभिनयों को वे रोक सकते थे, न वे सम्राट की आज्ञा प्राप्त किसी कम्पनी के अभिनय पर प्रतिबन्ध लगा सकते थे)। मगर यह 'होटेल दे बूरगोन' पेरिस की पहिली नियमित रंगशाला थी; और कुछ ही दिनों बाद हम देखते हैं कि यह या वह साहसी प्रान्तीय कम्पनी इसे किराये पर ले रही है, इसे इटालियन लोग (जिनमें आई गिलोसी और आंद्रीनीस भी शामिल हैं) किराये पर ले रहे हैं। और अन्त में १६१० ई० में यह उस कम्पनी को किराये पर दी गयी जो पेरिस में किसी क़दर स्थायित्व का दावा कर सकती थी। वैलेरन लेकोम्ते के नेतृत्व में यह दल 'दि किंग्स प्लेयर्स' के नाम से इस रंगशाला में बारह बरस तक बना रहा। समाज में इसने अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया, और इसने सत्यमेव नाट्य साहित्य के विकास में सहायता प्रदान की। और जब ब्रदरहुड की अतिरिक्त लोभलिप्सा के कारण ये अभिनेता फिर रंगशाला के बाहर ढकेल दिये गये और पूरे मौसम भर कोई नाटक न हो सका तो एक दूसरी कम्पनी ने 'प्रिन्स आव आरेंज प्लेयर्स' के नाम से कुछ समय के लिए इसे किराये पर लिया, लेकोम्ते और उसके 'किंग्स प्लेयर्स' वापिस आये और तब लगभग अर्धशताब्दी तक यह रंगशाला उन्हीं के अधिकार में रही।

१६२९ ई० में एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी कम्पनी पेरिस में आ गयी। 'प्रिन्स आव आरेंज प्लेयर्स' ने शाही कम्पनी के मुक़ाबिले में अपने को स्थायी प्रतिद्वन्द्वी के रूप में

स्थापित कर लिया। शीघ्र ही उन्होंने पेरिस में, 'मारे' नाम की द्वितीय प्रसिद्ध रंगशाला खोल ली। इस द्वितीय कम्पनी ने जो कि अधिक महत्वपूर्ण भी थी, एक नये नाट्य लेखक पियरी कारनेल को जन्म दिया जिसका प्रथम नाटक 'मेलाइत' १६२९ में खेला गया।

नाटक-लेखन भी रंगमंचीय स्थिति की ही भाँति अराजकता ग्रस्त था। पिछली शताब्दी में ही पुराने ग़ैर-पेशेवर लोगों द्वारा प्रहसन-लेखन की परम्परा समाप्त हो गयी थी। उसके बाद हर व्यक्ति इटालवी सुखान्तकों से प्रभावित हो गया था। जहां तक दुःखान्तकों का सम्बन्ध है, फ्रांस में कोई देशी परम्परा न थी। और यह इटली की नव क्लासिक परम्परा थी जिसका विकास फ्रांस में हो रहा था। १५५० ई० के ठीक बाद नाटककार स्टीफ़ेन जोडेल ने, जो कि प्रसिद्ध साहित्यिक दल 'प्लीयड' के रोंसार्ड का शिष्य था, एक सिनेकी दुःखान्तक 'क्लियोपेत्रे कैप्टिव' की रचना की। यह एक अत्यन्त अलंकार सम्पन्न रचना थी और इसमें क्लासिक के अवशेष भूत-प्रेत, सामूहिक गान आदि थे। जोडेल को 'फ्रांस के दुःखान्तकों का पिता' कहा जाता है। उसने प्रतिमान के रूप में इटालवी नव-क्लासिक विधा को ही स्थापित नहीं किया, वरन् उसने एलेक्ज़ेड्राइन छंद छः मात्राओं की पंक्तियों के तुकान्त दोहों को भी चालू किया (यद्यपि उसने केवल इसी का प्रयोग नहीं किया) इसके बाद सदियों तक विशिष्ट फ्रांसीसी माध्यम के रूप में इसी का प्रयोग होता रहा। उसकी अनुकृति करने वाले अनेक लोगों में राबर्ट गार्नियर भी था जो कि अपने लिए उच्च स्थान बनाने में समर्थ हो सका : उसने दुःखान्तकों की रचना की। ये दुःखान्तक अलंकारयुक्त बिल्कुल न थे। कारनेली के उद्भव तक ये इसी रूप में चलते रहे।

इटली की ही भाँति, फ्रांस के आरम्भिक नाटककार भी प्रचलित सार्वजनिक रंगशाला से घृणा करते थे,और एक लम्बे अर्से तक रंगमंच और दुःखान्तक-लेखन के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहा। पढ़े-लिखे लोग सामूहिक गान से चिपके रहे, क्रिया को देखने की बजाय उसके अलंकृत वर्णन का ही रस लेते रहे, और इसी प्रकार की अनुचित, प्राण-लेवा नाट्य-परम्पराओं से बँधे रहे। ग़ैर पेशेवर दल, अपने नाटकों का अभिनय करते रहे। मेलों और बाज़ारों में जो नाट्यात्मक सक्रियता थी, उससे वे बिल्कुल अलग रहे।

मगर यह अनिवार्य था कि एक समय की धाराएँ साथ-साथ ही प्रवाहित हों। शायद ग्रामीण नाट्य और रोमांसवादी नाटकों ने, जो विधा के रूप में स्पेन और इटली से सम्बन्ध रखते थे, अपरिवर्तनशील दुःखान्तक पर कोमलतापूर्ण प्रभाव डाला। जो भी हो, धीरे-धीरे साहित्यिक दुःखान्तक भी रंगमंच पर आने लगे। और एक नयी

विधा शुरू हुई जो कि न तो पूर्ण रूप से प्रहसन मूलक थी, न दुःखान्तक थी, मगर वह अपने साहित्यिक रोमांटिक विषय तत्व के कारण, व्यापक रूप से लोकप्रिय थी। धीरे-धीरे विकसित होती जनाभिरुचि के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए सुखान्तकों में कोई मूलभूत परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कारण यह है कि जनप्रिय फ्रेंच प्रहसन और साहित्यिक-सुखान्तक रचनाकारों द्वारा इटली से फ्रांस में लाये गये टेरेंसीय सुखान्तकों के बीच कोई गहरा अन्तर न था। निस्सन्देह लोकप्रिय रंगमंच ने, बहुत दिनों से विदेश से आने वाली 'कामेदिया देल आर्ते' की कम्पनियों और उनके पात्रों 'दोतोरे, पेंटालोन, आर्लेचिनो' और दूसरे लोगों को छद्मवेशों को अपने में जज़्ब कर लिया था। उसी समय विशिष्ट महत्वपूर्ण लेखक इन्हीं पात्रों को और कई 'ख्याति प्राप्त' टकसाली स्थितियों को भी अपनी रचनाओं में स्थान दे रहे थे। सुखान्तक-नाट्य रचना का जो भी उल्लेख मिलता है, उसमें अधिकांश बाद के इटालवी पुनरुत्थानकालीन रचना का लिप्यन्तरमात्र ही है; उनमें कोई भी महत्वपूर्ण नहीं है।

वह लेखक जो अपने अभिनेता दल के साथ पेरिस आकर १६१० ई० में दी किंग्स प्लेयर्स की हैसियत से 'होटेल दे बूरगोन' में प्रविष्ट हुआ अलेक्ज़ान्द्री हार्डी था। उसने 'ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अपने व्यवसाय की माँगों को पूरा करते समय भी अपनी कला के मूल सिद्धान्तों को नहीं भूला था।' उससे साहित्य और लोकप्रिय धाराओं के बीच जो सफल समन्वय स्थापित किया, उसके सम्बन्ध में उसी के उपर्युक्त वाक्य के अतिरिक्त और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। उसने एकान्तिक साहित्यिक रचना से ठोस गढ़न और काव्यात्मक भाषा ले ली और क्ल‍ासिकल तथा रोमाण्टिक नाटकों से (विशेषतया स्पेनी नाटकों से) कहानी कहने की सरल परिपाटी अपना ली। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि कैसे भाषणों द्वारा उस स्थिति को ला दिया जाय, जब कि उसकी उच्चारणात्मक अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण हो सकेगी। कहा जाता है कि उसने दुःखान्त-सुखान्तकों का श्रीगणेश किया। लगता है कि आदि से अन्त तक उसने सम्बन्ध जोड़ने का, समन्वय स्थापित करने का ही काम किया। और, उस अवसर पर इसी बात की आवश्यकता भी थी। इसलिए उसके काव्य में—उसने एलेक्जेंद्राइन छंद को ही अन्तिम रूप से स्वीकार किया था—बहुत सी कमियाँ रह गयी थीं, जिन्हें दूर करना आवश्यक था। शायद उसकी सबसे बड़ी सेवा यह थी कि उसने एक प्रतिमान सामने रख दिया : अभिनेताओं का मार्ग प्रदर्शन करके उसने उन्हें साहित्यिक नाटकों की ओर उन्मुख किया (इस समय अभिनेता-लेखकों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी) और कवियों ने भी अपने छंदों का थोड़ा बहुत परित्याग करके शाही अभिनेता दल अथवा मारे थियेटर के उनके प्रतिस्पर्धियों के लिए नाट्य सामग्री उपलब्ध की।

मगर, इन कवियों ने, पूर्व पुरुषों से प्राप्त नाटक-सम्बन्धी प्राचीन पवित्र नियमों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, नहीं उन्होंने हार्डी की सहज-प्रवहमान् नाटकीय सक्रियता के पक्ष में अलंकृत वक्तृताशैली का ही परित्याग किया। उन्होंने जो किया वह यह था कि तत्कालीन रंगमंच की परिपाटियों को स्वीकार कर लिया, समवेत गान जैसे स्पष्टत: असंगत तत्वों को छोड़ दिया,और क्लासिक रूप को थोड़ा मानवीय मन्तव्य और व्यक्तिगत चरित्र के अनुरूप ढाल दिया। मगर फिर भी, यह ग़ैर-लचीली, कृत्रिम

एक टेनिस कोर्ट रंगशाला जिसमें 'अभिनय के लिए छोटा सा कक्ष' है। इसमें एक साथ चलने वाले अनेक दृश्य नहीं हैं। (एफ० शोव्यो कृत सम-सामयिक रेखाचित्र का वारेन डो० चेनी द्वारा अंकन।)

वस्तु ही वनी रही, और हमारी आधुनिक धारणा के अनुसार काव्यात्मक अभिषेक के गौरव से ही उसका उद्धार हो सका। उसके ऊपर दरबारी प्रभाव अत्यधिक मात्रा में छाया हुआ था।

जिस पार्थिव रंगमंच के स्तर पर महान् कवि उतरे अब भी वह अपरिष्कृत था। हमें यह पता नहीं कि सचमुच 'होटेल दे बूरगोन' की बनावट कैसी थी। मगर पेरिस की दूसरी रंगशालाएं तो टेनिस कोर्ट को बदलकर ही बनायी मयी थीं। जब यह लगा कि

अब वह अवसर आ गया जब नाटक का अभिनय बन्द कमरे में ही होना चाहिए, तब नाट्य निर्माताओं ने 'नाटक देखने के लिए समुचित स्थान' का निश्चय करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। और, ढके हुए टेनिस कोर्ट, जिनमें दर्शकों के लिए छज्जे और कुर्सियाँ ही थीं, इसके लिए उपर्युक्त स्थान हो गये। 'दी प्रिन्स आव आरेंज' के अभिनेताओं ने १६२९ ई० में 'मेलाइन' के उद्घाटन और १६३४ ई० के बीच एक के बाद एक तीन

'होटेल दे बूरगोन' में एक साथ अनेक सेटिंग जिससे पता चलता है कि कैसे धर्म-निरपेक्ष मंच पर अब भी धार्मिक नाटकों का प्रभाव बाक़ी था। (मंच कलाकार मोहेलोट की डिजाइन से पुनः अंकित, यह एक पुस्तक 'बिबलियोथेके नेशनेल', पेरिस, में अब भी सुरक्षित है।)

टेनिस कोर्टों पर अधिकार किया; अन्तिम था मारे टेनिस कोर्ट, जिसके कारण आगे चल कर इस दल का यही नाम पड़ गया । हम कल्पना कर सकते हैं कि इसमें प्रेक्षागृह एक लम्बा, सँकरा और लगभग नंगा कमरा था, जिसमें बग़ल की दीवारें थीं, मुख्य फ़र्श पर बेंचें पड़ी हुई थीं जिनका सामना कमरे के एक ओर बने रंगमंच की ओर था। पृष्ठ ३८७ पर जो रेखाचित्र छपा है उससे उस रंगशाला के सम्बन्ध में कुछ घनिष्ठ जानकारी प्राप्त होती है और उसकी व्यवस्था का अनुमान होता है। 'होटेल दे बूरगोन' इसी तरह लम्बा और सँकरा था। मगर जिस एक भाग के सम्बन्ध में निश्चित प्रमाण मिलता है वह है उसका रंगमंच। यह रहस्य अथवा चमत्कार नाटकों के लिए रंगमंचों के आधार पर ही

निर्मित हुआ था। इसमें अभिनय के लिए एक नंगा खुला स्थान पीछे और बग़ल में रेखांकित रहता था, साथ ही वहाँ कुछ ऐसे चित्रण, प्रतिकृतियाँ अथवा संकेत रहते थे जिनसे यह पता चलता है कि अब अभिनय कहाँ पर, किस स्थल पर हो रहा है। इस समन्वित सेटिंग के सम्बन्ध में रेखाचित्रों की एक सम्पूर्ण पुस्तक अब भी प्राप्त है। यह बताती है कि मंच सज्जाकार कैसे हार्डी अथवा उसके साथी नाटककारों की हर नवीन रचना के लिए, यहाँ तक कि कारनेली के लिए भी, 'होटेल दे बूरगोन' में 'एक साथ ही सेटिंग' तैयार कर देते थे।

नवम्बर १६३६ ई० के अन्तिम पक्ष में, एक शाम को, मारे थियेटर में कारनेली कृत 'ले सिड' नाटक का अभिनय प्रथम बार हुआ। रंगमंच के प्रत्येक इतिहास में इस तिथि को रेखांकित कर दिया गया है क्योंकि इसी दिन फ्रांसीसी दुःखान्त नाटक का महान् युग आरम्भ हुआ। कारनेली के सुखान्तक तो लोकप्रिय हुए थे, मगर अब तक उसके किसी दुःखान्तक को जनता ने नहीं देखा था। यदि उस दिन, इस नाटक के उद्‌घाटन के समय पेरिस में मौजूद होते तो हम जो कुछ देखते, वह कुछ-कुछ इस प्रकार का होता :

प्रेक्षागृह में मोमबत्तियों की हलकी रोशनी में बहुमिश्रित दर्शक गण बैठे हुए हैं। बारजों पर वारांगनाओं और मनचले लोगों का जमावड़ा है। इस विशेष अवसर पर मुख्य फ़र्श की सर्वश्रेष्ठ बेंचों पर भी वही लोग जमे हुए हैं। उन्हीं के पास बैठे हैं साहित्यकार, अफ़सर, भ्रमणार्थी, व्यापारी; यहाँ तक कि दरबार के नौकर-चाकर, आवारा और मनचले साहसिक लोग सभी हैं—ये वे लोग हैं जो इतने अनियंत्रित हैं कि यदि अभिनेता भाग्यवान् हो तभी बिना झगड़ा-फ़साद या युद्ध के अभिनय पूरा हो पायगा। प्रक्षेकों को एक हृष्ट-पुष्ट और हथियारों से अच्छी प्रकार लैस द्वारपाल ने भीतर आने दिया है। इस व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि जो लोग बिना टिकट लिये भीतर घुस आवें उन्हें मार-पीट कर बाहर खदेड़ दें। सिर्फ़ सामन्त लोग ही ऐसे हैं जिन्हें मालिक अथवा टिकट देखने वाला भी बाहर नहीं निकाल सकता। (क्या यह अभिनेता-मालिक वातिस्तिनो ही नहीं था जिसे एक टिकट न ख़रीदने वाले दरबारी से झगड़ा मोल लेने के कारण खुले-आम क़त्ल कर दिया गया, और उसके बारे में कोई भी कार्रवाई नहीं की गयी ?) रंगमंच पर पर्दा नहीं है। उसके ऊपर 'महल' और 'स्थानों' के चित्र हैं जो यह इंगित करते हैं कि वहीं पर अभिनय किया जायगा। इन स्थानों में से हर एक उस खुली जगह को स्पर्श करता है जहाँ अभिनेता खड़े होकर अपनी भूमिका करेंगे। कहीं सम्राट् की कौंसिल का कमरा है, कहीं किसी स्त्री का कक्ष है। वहाँ कोई अन्य सामान नहीं।

जब प्रेक्षागृह की मोमबत्तियाँ बुझा दी गयीं तो अभिनेत्रियाँ अत्यन्त भड़कीली

पोशाक पहिने मंच पर आयीं। फ़ौरन उन्होंने पद्यात्मक शैली में कथोपकथन शुरू कर दिया, ज़ोरों के साथ, समरस स्वरों में; यहाँ प्रकृति का कोई भी बहाना नहीं है। सही यह है कि विश्वासभाजन सखी की दूसरी वक्तृता छत्तीस पंक्तियों की है। मगर अब स्त्रियाँ चली गयी हैं—पुरुष मंच पर आ गये हैं—यह दल का नायक मोनडोरी है। ये अभिनेता मारपीट करने वाले लोग हैं, मोनडोरी के आक्रमण की योजना यह है कि वह एकाएक एक विस्फोट से ही दर्शकों को स्तम्भित कर दे। फिर रुक जाय और फिर धीरे-धीरे हल्के स्वरों से उस तनाव को ढीला कर दे। अभिनय है यह, किसी ग़लती से ऐसा नहीं हो गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी वक्तृता में कुछ ऐसे भी वाक्य हैं जो अधिक शान्त हैं। मगर फ्रांसीसी पद्य तेज़ी से, प्राञ्जल रूप में चलता है। और कवि बार-बार उन अलंकृत फुलझड़ियों को दोहराता है जिन्हें मोनडोरी इतना अधिक पसन्द करता है।

कथानक उधार लिया हुआ है। वह लगभग इसी नाम के एक स्पेनी नाटक से सीधे-सीधे ले लिया गया है। आबरू की प्राचीन प्रिय समस्या के गिर्द ही सारा कथानक चक्कर काटता है। अपने बाप के अपमान का बदला लेने के लिए डान रोदरीग शिमेने के पिता की हत्या कर देता है। शिमेने उसकी प्रेयसी है। इस बाधा के बावजूद दोनों प्रेमी कैसे एक-दूसरे से मिलेंगे? हम देखते हैं कि डान रोदरीग कर्त्तव्य और प्रेम के बीच फँसा हुआ है। फिर हम देखते हैं कि शिमेने अपने प्यार के विरुद्ध संघर्ष करती है, क्योंकि परम्परा के प्रति उसके मन में श्रद्धा है। इसी बीच उसका नायक आश्चर्यजनक कार्य करने के लिए युद्ध में चला जाता है। ठीक है, हम यह जानते हैं कि अन्त में क्या होगा—मगर उत्कृष्ट अभिनय के लिए कितना अच्छा अवसर है यह!

निस्सन्देह यह अभिनय दर्शकों पर छा जाता है। दिनों और हफ़्तों तक 'ले सिड' हर ज़बान पर मौजूद रहता है। समस्त पेरिस में रोयेने तरुण 'अवोकत' पियरी कारनेली कृत इस नए प्रकार के नाटक चर्चा होती है। पुराने जमे हुए नाटक कार क्रोधोन्मत्त हो रहे हैं। विवादों का घनघोर दौर शुरू हो गया। कार्डिनल रिशेलू ने अपने अधिकार-का प्रयोग इस तरुण नाटककार के विरुद्ध किया—यहाँ तक कि उन्होंने अकादमी-शियनों को आदेश दिया कि वे भी उसका निषेध करें। ऐसा लगता है कि जहाँ तक इस नाटक का सम्बन्ध हैं, तीन समानता का सिद्धान्त लागू न हो सका। जनता और दरबार ने कारनेली का पक्ष लिया। नवीन फ्रांसीसी नाट्यशास्त्र की स्थापना हो गयी।

कारनेली ने फ्रेंच रंगमंच को ऐसा क्या दे दिया जो पहिले नहीं था? स्पेन से उसने वीरतापूर्ण नाट्यात्मक स्थिति, विराटता, महत्ता का एक नवीन संकेत प्राप्त किया। उसने इन तत्वों पर नियंत्रण क़ायम किया, उन्हें फ्रांसीसी अनुशासन के अन्दर रखा।

स्पेनी नाटकों, घटनाओं के एक के वाद एक आने के स्थान पर उसने वीरतापूर्ण ढाँचे में उत्तेजक मानवीय कहानी जोड़ दी। आज के निजत्व के अर्थ में यह मानवीय नहीं है, एक निस्संग रूप से आडम्वरपूर्ण होने के अतिरिक्त वह विशेष उत्तेजक भी न था; वह सम्भाव्य से भी इतना अधिक दूर था कि उससे नैकट्य नहीं स्थापित किया जा सकता था; मगर निश्चय ही पहिले के फ्रांसीसी क्लासिक लेखकों ने जो बुद्धिवादी रचनाएं लिखी थीं उनसे कहीं अधिक जनता के निकट उसकी रचनाएं थीं। यद्यपि उसकी शैली में अलंकरण था—कम से कम, काव्य में, जो कि तुकान्त अलेक्जेंड्राइनों के रूप में था, तीव्र प्रवाह था और कभी-कभी उसमें वड़ी शान भी थी। तूफ़ान प्रेमी अभिनेताओं के लिए, औपचारिकता-प्रिय दरवारी प्रेक्षकों के लिए यह एक पूर्णतया उचित पद्य-माध्यम था। नाटकीय कथानक को एक ही मुख्य संघर्ष में वाँध कर, विना इधर-उधर वहूंके, विना उप-कथानकों के चक्कर में पड़े, पराकाष्ठा-मूलक सहजता तक पहुँचा देने की उसकी कला ने भविष्य के फ्रांसीसी दुःखान्तक के लिए एक प्रतिमान स्थापित कर दिया।

कारनेली ने अन्य सफलताएँ भी प्राप्त कीं—'सिन्ना, होरेस, पोलियुक्ते।' तीन एकताओं और अन्य अरस्तूवादी 'नियमों' की सीमा में अपनी कला को बाँधने की आवश्यकता के अन्तर्गत वह थोड़ा कसमसाता है, छटपटाता है। मगर शायद वह देखता है कि अपने वीरतापूर्ण ढाँचे और विराट्ता और एक घनीभूत प्रभाव के माध्यम से वह जो कुछ लाता है उसका सामञ्जस्य जव प्राचीन क्लासिकवाद से हो जायगा तो एक ऐसी नाट्य विधा का जन्म होगा जो सभी फ्रांसीसी रंगमंचों के अनुकूल होगी, शायद प्रत्येक देश की प्रत्येक दुःखान्त रचना के लिए, हमेशा हमेशा के लिए अनुकूल होगी। वह नियमों को स्वीकार करता है। अपने सारे क्रिया-कलाप को एक दिन में और एक स्थान पर केन्द्रित कर देने के अनुशासन के कारण वह एक वड़ा नाटककार वन गया। या शायद वह और भी महान् नाटक लिखने में सफल होता यदि उसे बाधाओं का सामना न करना पड़ता। इसे कभी कोई निश्चयपूर्वक न बता सकेगा। मगर कारनेली उसी अकादमी के लिए एक विशिष्ट नाटककार बन गया जिसने पहिले उसका बहिष्कार किया था। उसी के माध्यम से फ्रांसीसी लोग यूनानी परम्परा के संरक्षक और भाष्यकार भी बन गये।

इसके बाद फ्रांसीसी क्लासिकवाद युरोप की प्रत्येक 'वैध' नाटककार से जो माँग करता था उसे हम कुछ संक्षिप्त नियमों में अवश्य प्रकट कर सकते हैं : समय, स्थान और क्रिया-कलाप की एकता अवश्य क़ायम रहनी चाहिए; प्रत्येक नाटक को पाँच अंकों में विभाजित होना चाहिए; प्रत्येक नाटक को पद्यवद्ध होना चाहिए; मार धाड़ आदि की वातें रंगमंच के बाहर ही होनी चाहियें; पात्रों को और प्रेक्षकों को

उनके सम्बन्ध में केवल सूचना भर देनी चाहिए; कोई भी प्रहसन अथवा उप-कथानक बीच में नहीं घुसेड़ना चाहिए; कथा-वस्तु में उदात्तता अवश्य होनी चाहिये और पात्रों को भी अवश्य महान् होना चाहिए।

पियरे कारनेली (एक पुराने छपे चित्र से।)

इसी आचार संहिता के अनुसार कारनेली ने अपने नाटकों की रचना की; और निश्चय ही उसके पात्र इतने महान् हैं, उसका पद्य इतना उत्कृष्ट है कि आज भी लोग

'कामेदी फ्रांके' उसकी चमक-दमक और प्रदर्शन देखने के लिए जाते हैं। हाँ, जब उसकी तुलना शेक्सपियर के अधिक मानवीय नाटकों से की जाती है, तभी उसकी प्रायः असह्य औपचारिकता और उसकी नग्नता की ओर लोगों का ध्यान जाता है। इसके अतिरिक्त, फ्रांसीसी क्लासिक कला एक समय, एक स्थान और एक ही बौद्धिक मानस-स्थिति को स्वीकार करती है। संकीर्ण सीमाओं में यह एक बहुत बड़ी कला है, एक शुष्क कला है, एक ऐसी कला है जो भावुकता और व्यक्तिगत संवेग से तटस्थता की माँग करती है। उसकी विशिष्टताएं औपचारिक हैं, जिनका रसास्वादन और जिनकी प्रशंसा बौद्धिक स्तर पर ही की जा सकती है।

कारनेली के बाद रेसीन का आगमन हुआ। उसने आवेग को कम बौद्धिक बनाया। मगर उसने नाट्य रूप को और भी अधिक सरल और घनीभूत बना दिया। सभी नियमों को स्वीकार किया—और जिस दुःखान्तक विधा को कारनेली ने कुछ रुक-रुक कर आरम्भ किया था उसे निश्चित रूप से स्थापित किया। लेखक के रूप में रेसीन एक अध्यवसायी शिल्पी था; और वह क्रिया एवं कथोपकथन को अभिनय और अलंकृत सम्भाषण के रूप में ढालने की कला को अच्छी तरह समझता था। कला के ऐसे क्षेत्र में, जो कि कम सरगर्मी वाला, कभी न झुकने वाला, निर्दोष रूप से साहित्यिक और शालीनता पूर्ण था, उसने किसी प्रकार ऐसे नाटकों की रचना की जिनमें महान् चरमोत्कर्ष थे, और उत्कृष्ट उत्तेजक स्थितियाँ थीं। फ्रांसीसी भाषा में 'अभिनय की दृष्टि' से 'फ़ेद्रे' सबसे महान् रचना है। अर्थात् यह नाटक अभिनेता को अलंकृत संवेग अभिनीत करके सफलता प्राप्त करने का सब से अच्छा अवसर प्रदान करता है।

थोड़े-से पात्रों को और एक सरल किन्तु पूर्णतया सन्तुलित कथानक—जो कि कट्टरवादी यूनानी अथवा रोमन स्त्रोतों से ही प्रायः सदैव चुना जाता था—को लेकर रेसीन ने शानदार रचनाएं तैयार कीं। एक प्रकार से उसका ढंग मनोवैज्ञानिक था। वह यह दिखाने में अधिक रुचि प्रदर्शित करता कि उसके पात्रों को क्या क्या सहना पड़ा, बजाय इसके कि उन्होंने क्या क्या किया। मगर आज 'मनोवैज्ञानिक नाटक' से लोगों का जो तात्पर्य होता है उससे वह बहुत दूर था।

यह दुर्भाग्य की बात है कि अंग्रेजी भाषा इस योग्य नहीं है कि उसमें फ्रांसीसी पद्यों का अनुवाद उनके मूल्यों की रक्षा करते हुए किया जा सके। इसलिए हम अच्छी तरह और पूरी तरह उसकी जाँच करने की योग्यता नहीं रखते। इसलिए हम उसके आंशिक वैभव का ही आनन्द ले सकते हैं। मूल फ्रांसीसी भाषा में 'फ़ेद्रे' के अनेक स्वगत-कथनों में से एक हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। मूल में यह पद्य खण्ड सस्वर पाठ तथा अभिनय के लिए कितना उपयुक्त है, इसमें कितना तीव्र प्रवाह है :

फ़ेद्रा (अकेले)

ओ कठोर हृदया रती, तुम आज मुझे इतना लज्जित
और दुखी देख रही हो, क्या मेरा पर्याप्त अपमान अभी भी नहीं हो चुका ?
क्या इससे भी अधिक कठोरता सम्भव है ?
तुम्हारे सारे तीर सीधे कलेजे में लगे हैं, तुम्हारी जीत हो गयी।
क्या तुम फिर से नयी प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहती हो ?
क्या तुम और भी अधिक दुराग्रही शत्रु पर आक्रमण करना चाहती हो ?
हिप्पोलिट्स तुम्हें नज़रन्दाज़ करता है, तुम्हारे क्रोध का सामना करता है,
वह तुम्हारी वेदी पर सिर नहीं झुकाता, घुटने नहीं टेकता।
तुम्हारे नाम से ही उसके गर्वीले दम्भी कानों को धक्का लगता है।
हमारे स्वार्थ समान हैं : अपना बदला चुकाओ,
प्यार करने के लिए उसे विवश करो......

इस प्रकार हम उस नाटक से थोड़ी दूर ही रह जाते हैं जिसकी रचना रेसीन ने की थी। हम कथानक और कहानी की मर्यादा और शान को समझते हैं; मगर शब्द-साधन के औचित्य को केवल अपूर्ण रूप से जानते हैं। शायद किसी दिन समुचित अँग्रेजी अनुवाद का चमत्कार देखने को मिल ही जाय और चाहे उसमें तुकान्त दोहों के वही मूल्य न भी रह पायें, मगर शायद अन्य मूल्य रह जायँ जिनकी कमी उत्तेजक काव्य के द्वारा पूरी हो सके। रेसीन ने युरीपीड्स के जिस नाटक 'हिप्पोलिटस' के आधार पर अपने नाटक 'फ्रेदे' की रचना की थी उसी को मूल यूनानी से अंग्रेजी में रूपान्तरित करके गिलबर्ट मरे ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

रेसीनने अपने अन्य प्रसिद्ध दुःखान्त नाटकों को यूरीपीड्स तथा उससे प्राचीन नाटककारों की रचनाओं, विशेषत: 'इफ़ीजिनी', 'ला थेबाइदे' और 'आंद्रोमाके' पर ही आधारित किया। मगर अक्सर वह इसके आगे भी बढ़ा। उसने अपने 'इस्थर' और 'अथाले' के लिए बाइबिल से सामग्री संग्रहीत की और 'बजाज़ेत' के लिए समकालीन इतिहास का सहारा लिया। हां, उसने बड़े और महान् कथानकों और काफी अच्छे स्तर के पात्रों को ही इन सामग्रियों में से चुना।

रेसीन और कारनेली के नाटक निश्चय ही विशेष रूप से रंगशाला के ही लिए थे, अभिनय के ही लिए लिखे गये थे। हां, वह रंगशाला विशिष्ट प्रकार की और सीमित संख्या के दर्शकों की थी, ऐसे दर्शक जो चुने हुए और शिक्षित थे और जिनके लिए

साहित्यिक परिष्कार और अभिनेता की कलापूर्ण वक्तृता का अत्यधिक महत्व था। इन नाटकों का सम्बन्ध रंगशाला के अभिनय के लिए बने रंगमंच से था। इनका सम्बन्ध बहुविध चित्रों से सजे रंगमंच से नहीं था जो कि अब भी, इस समय भी, यहाँ प्रचलित हो रहा था। १६४१ ई० में ही रिशेलू की नृत्य-रंगशाला बन चुकी थी। इस रंगशाला में जैसा
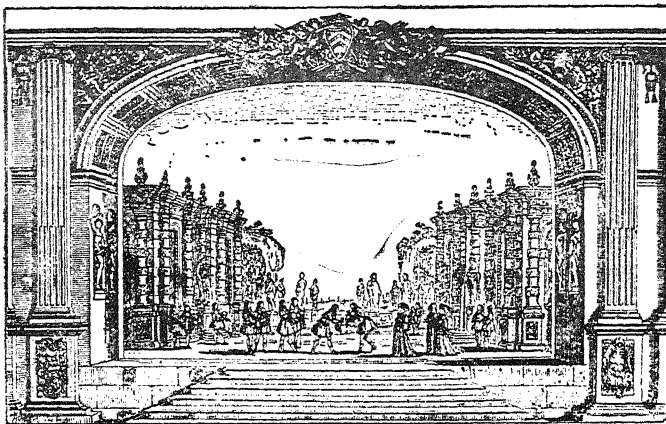
कार्डिनल रिशेलू के राजमहल की एक नृत्यशाला का मंच जिसमें 'मिरामे' की सेटिंग लगी हुई है। (ल' एन्शियने फ्रांस: ले थियेटर एट ला म्युजिके में एक छपे चित्र से।)

कि इस चित्र में दिखाया गया है एक रंगमंच था जिस पर यवनिका लगाने का चौखटा भी बना हुआ था, इटली से आये सारे यांत्रिक एवं दृश्यमूलक सुधार भी इसमें कर दिये गये थे। यहीं हम यह भी बता दें कि इस महान् कार्डिनल ने अपने प्रोत्साहन और संरक्षण द्वारा फ्रांसीसी नाट्य कला को स्थापित करने में अकेले जितना काम किया उतना किसी भी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया; यद्यपि ऐसी महानता वह स्वयं अपनी नाट्य रचना में नहीं प्राप्त कर सका। सम्राट् ने भी 'पेतित-बूरबान' राजमहल में इसी इटालवी शैली की एक रंगशाला निर्मित करवायी।

कुछ समय बाद रेसीन का 'एलेक्ज़ेडर दी ग्रेट' दो प्रतिद्वन्द्वी कम्पनियों द्वारा दो भिन्न प्रकार के रंगमंचों पर खेला गया—एक था 'होटेल दे बूरगोन' का रंगमंच और दूसरा

था पैलेस 'रायल' (पहिले रिशेलू का राजप्रासाद) का रंगमंच। फिर इसके वाद इसे मोलियर की कम्पनी को दे दिया गया। यह मान लिया जा सकता है कि दोनों प्रकार की रंगशालाओं में अभिनय देखने के लिए जो जनता एकत्र हुई, वह दरबारी जनता थी। दरबारी जीवन की चमक-दमक और साहसिकता ने ही रेसीन के नाटकों की भाषा और ढांचा निश्चित किया था।

जहाँ तक फ्रांसीसी दुःखान्त रंगमंच का प्रश्न है, कारनेली और रेसीन को छोड़कर कोई एसा नाम नहीं है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ हो। कभी कभी इस त्रिगुट में एक तीसरा नाम वालतेयर का भी जोड़ दिया जाता है। मगर वाल्तेयर तीनों एकताओं को स्थापित करने के लिए जो युद्ध कर रहा था उसी के लिए उसका नाम रंगशालीय इतिहास में इतना महत्वपूर्ण हो गया, उसके नाटकों के लिए नहीं। अपने कुछ समकालीनों की भाँति वह भी विश्वास करता था कि उसने रेसीन को पीछे छोड़ दिया है। मगर स्वयं फ्रांसीसी रंगशाला ने उसके प्रेरणाहीन दुःखान्तकों की ओर से उदासीन रहकर उसे स्थायी रूप से उपेक्षित कर दिया। फिर भी चतुर और प्रतिभाशाली वालतेयर ने अपनी समकालीन रंगशाला पर उसी प्रकार अपना प्रभाव जमाया जिस प्रकार साहित्य और विचारों की दुनिया में। उसने दुःखान्त नाटक की परिभाषा की; बल्कि दुःखान्त नाटकों के लेखकों के कर्त्तव्यों पर एक वक्तव्य दिया। यह एक ऐसा वक्तव्य है जिसका अनुशीलन करना चाहिए :

एक प्रख्यात और रोचक घटना को दो या तीन घण्टों की अवधि में बाँध देना; पात्रों को मंच पर तभी उपस्थित करना जब उनको आना चाहिए; रंगमंच को कभी बिल्कुल खाली न छोड़ना; कथानक को ऐसे सँजोना कि उसमें सम्भाव्य और आकर्षक बातें एक समान ही आवें; ऐसा कुछ भी न कहना जो अनावश्यक हो; मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना, हृदय को आन्दोलित करना; काव्य में प्रांजलता का प्रयोग करना और प्रत्येक पात्र को इस प्राञ्जलता से अभिभूत रखना; जिस प्रकार अत्यन्त प्राञ्जल गद्य का शुद्ध उच्चारण किया जाता है, उसी प्रकार अपनी ज़बान को भी बोलना और इस बात की कोशिश करना कि तुकान्त टुकड़ों के कारण विचारों की धारा टूट न जाय; एक भी पंक्ति को कठोर, या दुर्बोध अथवा अलंकृत न होने देना, यही वे शर्तें हैं जिनकी पूर्ति की माँग आजकल दुःखान्त नाटकों में की जाती है।[१]

---

१. ब्रेंडर मैथ्यूज कृत 'दी डेवलपमेंट आव दी ड्रामा' (न्यूयार्क, १९०६) का अनुवाद। इस अध्याय के विषय को ध्यान में रखकर इसी लेखक की 'मोलियर : हिज लाइफ़ एेण्ड हिज़ वर्क्स' (न्यूयार्क, १९१०) के अध्ययन की सिफ़ारिश की जा सकती है।

और विश्वास मानिए वालतेयर ने इन नियमों के पालन पर हठ भी किया। वह रंगशाला के साम्राज्य का पोप बन गया, जिसके बिशप और छोटे-मोटे धर्मोपदेशक,
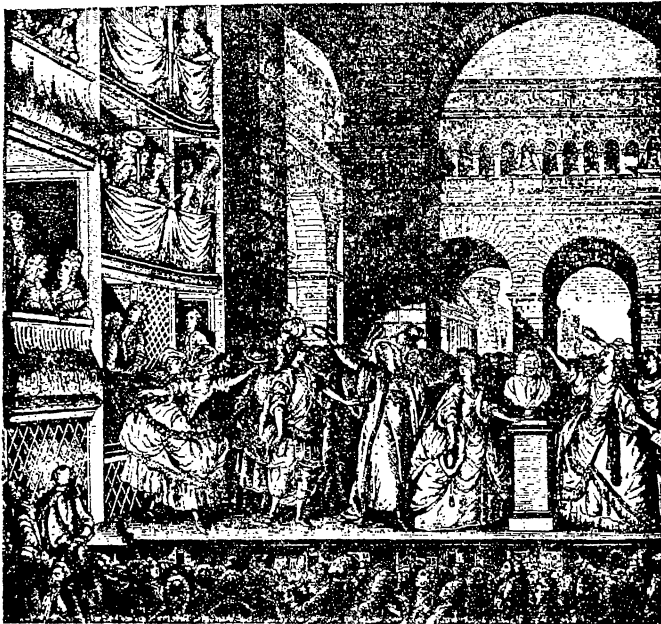
थियेतर फ्रांके में वालतेयर का राजतिलक, उसके 'इरेन' के छठे प्रस्तुतीकरण, मार्च ३०, १७७८ ई०, के अवसर पर। (इसकी डिज़ाइन मोरयो ले जुयेने ने बनायी थी। गोचेर ने उसे उत्कीर्ण किया। उसी उत्कीर्ण चित्र का एक अंश यहां प्रकाशिति है।)

फ्रांसीसी नाटक और रंगशाला की तत्कालीन कहानी रोचक ढंग से, यद्यपि विद्वत्ता-पूर्ण ढंग से नहीं, फ्रेडरिक हाकिन्स कृत 'एनाल्स आव दी फ्रेंच स्टेज फ्राम इट्स ओरिजिन टू दी डेथ आव रेसीन' (लन्दन, दो खण्ड, १८८४) में कही गयी है। अंग्रेज़ी में इधर फ्रांसीसी रंगशालीय कला के सम्बन्ध में बहुत कम अच्छी किताबें प्रकाशित हुई हैं। मगर डब्ल्यू० जी० मोरे कृत 'मोलियर : ए न्यू क्रिटिसिज़्म' (आक्सफोर्ड, १९४९) अवश्य पढ़िए।

जैसा कि हमने देखा है, फ्रांस, इटली, जर्मनी, यहां तक कि इंगलैण्ड में भी थे (यद्यपि युरोप के अधिकांश भागों में नाटक इस समय 'अधोगत' था)। हर जगह दुःखान्त नाटकको फ्रांसीसी नियमों का पालन करना पड़ता था। क्योंकि क्या फ्रांसीसी नाटककार

'पेतित्स कामेदियन्स' की रंगशाला के मंच का एक दृश्य। मंच पर दर्शक भी बैठे हैं। (ग्रेवीलोट के एक अंकित चित्र से जैसा कि उसे जे० जे० जसेरलैण्ड कृत 'शेक्सपियर इन फ्रांस अन्डर दी एन्शियन रिजीम' में प्रकाशित किया गया है।)

प्राचीनों के उत्तराधिकारी नहीं बन गये थे—इतना ही नहीं, उन्होंने क्या यूनानियों की कला में और भी अधिक सुधार नहीं किया था? अवश्य किया था। कम से कम, उस दरबारी युग के लिए, अपरिवर्तनशील, ठस, प्रेक्षकों के लिए तो यह सुधार ही था।

यह अधिनायक उदारमना था, इसलिए उसने शेक्सपियर के नाटकों को पसन्द

किया—वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति जो अपनी सभ्यता के प्रति अत्यन्त निश्चित होते हुए भी आकर्षक असभ्य व्यक्ति को पसन्द करता है–गुदड़ी में पड़े लाल की भाँति। नियमों की अवहेलना के लिए उस मृत गायक की भर्त्सना करते हुए उसने उसमें ऐसे गुण देखे जिनकी प्रशंसा करनी ही पड़ी। उसने शेक्सपियर के अनेक रूपान्तरों का संशोधन करके उनकी अनेक त्रुटियों को दूर किया। मगर उसने रेसीन कृत 'इफीजेनी' में 'विशेष रंगमंचीय योग्यता' देखी। और निश्चय ही उसके अपने सुनियमित नाटक उन सभी स्थानों में खेले गये और विचारे गये जहां सभ्यता की पहुँच हो चुकी थी।

मगर हम यहां उस व्यक्ति के सम्बन्ध में अब अधिक देर तक बातें नहीं करना चाहते जिसका प्रभाव कुछ समय के बाद ही कम होने लगा था (वाल्तेयर ने जिस समय अपना दूसरा नाटक लिखा, उस समय लेसिंग का जन्म हो चुका था, और जब वाल्तेयर ने अपना अन्तिम नाटक लिखा, उसके बहुत पहिले से ही लेसिंग ने उस पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था।) मगर इस अधिनायक का शासनकाल लम्बा था, खतरों और साहसिक कार्यों से भरा था और इतना उत्तेजक था कि जिसकी कोई सीमा नहीं। और जब यह अधिनायक लघु मानव बन कर अपने राजनीतिक और धार्मिक विचारों के कारण, जो कि उतने कठोर न थे जितने कि नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी उसके विचार थे, बार-बार देश से निष्कासित हो चुका तो अन्त में वह फिर रंगशाला में सफलता प्राप्त करने के लिए वापिस आया। १७७८ ई० में वह पेरिस वापिस गया। उस समय उसकी उम्र ८४ वर्ष की थी। वहां उसने 'कामेदी फ्रांके' में अपने दुःखान्त नाटक 'ईरीन' का अभिनय देखा और फ्रेंच रंगमंच के इतिहास में सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न दर्शकों की एक भीड़ के सामने स्वयं अपने चित्र को अत्यन्त आदरपूर्वक प्रतिष्ठापित देखा। मगर अब हम उस युग तक बढ़ आये हैं जो कि मोलियर की विजय और फ्रांसीसी सुखान्तक नाटक के गौरवशाली ज़माने से बहुत दूर है।

मगर इसके पहिले कि हम वाल्तेयर के नाम छोड़ कर आगे बढ़ जायँ, एक रंगशाला-सम्बन्धी रीति की चर्चा और कर देना आवश्यक मालूम पड़ता है। कारण यह कि बाद का हर नाटककार, हर अभिनेता और हर रंगमंच का कार्यकर्त्ता, इसके लिए उसका ऋणी है। ज़िद करके उसने दर्शकों को रंगमंच से भगा दिया। आपको याद होगा कि किस प्रकार शेक्सपियर की रंगशाला के मनचले रसिया लोगों ने रंगमंच के ऊपर अभिनेताओं के ही समीप बैठकर अपने को लोगों के लिए एक समस्या बना लिया था और किस प्रकार वे नाटक की ओर से लोगों को विमुख कर दिया करते थे। कहा जाता है कि पेरिस में कारनेली का 'ली सिड' नाटक अभिनीत हुआ और उसे युगान्तर-कारी सफलता प्राप्त हुई, उस समय पहिले मंच पर लोगों के बैठने के लिए सीटें बनायी

गयी थीं। सीटों का क्रम आगे बढ़ता गया, यहां तक कि दोनों ओर कुर्सियों की क़तारों के बीच अभिनेताओं को अभिनय करने के लिए भी स्थान की कमी पड़ने लगी। यह बात पृष्ठ ३९८ के चित्र में अत्यन्त स्पष्ट रूप में मालूम पड़ जाती है।

मंच पर ये जो छैला और मनचले तमाशबीन बैठते थे वे ध्यानपूर्वक चुपचाप अभिनय नहीं देखते थे। वे मनचाहे ढंग से अन्दर बाहर आते-जाते रहते थे और ज़ोर-ज़ोर से टीका-टिप्पणियां करते रहते थे; नाटक, अभिनेता और प्रेक्षागृह में बैठे प्रेक्षकों के ऊपर अपनी उच्चता का रंग जमाने का प्रयास करते रहते थे। वाल्तेयर को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उसने स्थायी रूप से इन लोगों को मंच के बाहर खदेड़ दिया और रंगमंच को अभिनय के लिए ख़ाली करा दिया। भगवान् उनका भला करे!

१६४३ ई० में, कुछ शौक़िया अभिनेताओं और कुछ अर्ध-पेशेवर अभिनेताओं ने एक कम्पनी बनायी जिसका नाम था 'लेस एनफेन्त्स द फ़ेमिली' (परिवार के बच्चे) इन्होंने यह महत्वपूर्ण निश्चय किया कि ये लोग, पेरिस के नियमित थियेटर दलों से प्रतिद्वन्द्विता करेंगे। उन्होंने एक टेनिस कोर्ट को किराये पर लिया। एक सामन्त को अपना संरक्षक बनाया और "दी इलसट्रियस थियेटर" के नाम से दुःखान्तकों के अभिनय की घोषणा की। यह प्रयास बार-बार असफल हुआ। मजबूर होकर ये लोग प्रान्तों में भ्रमण करने निकले। उनके साथ एक नौजवान था जो औसत से अधिक पढ़ा-लिखा था और जिसमें हास्य-व्यंग्य का देसी कौशल भी था। उसका नाम था जीन बैपतिस्ते पोके-लिन। वह एक कुर्सियों पर गद्दी चढ़ाने वाले कारीगर का बेटा था। रंगमंच के लिए उसने अपना नाम "एम० द० मोलियर' रख लिया। जब वह पहिली बार रंगमंच पर आया तो असफल हो गया। परन्तु यदि वह इस प्रकार असफल न हुआ होता तो फ्रेंच रंगशाला के इतिहास में इतनी महान् कहानी न जोड़ पाता। जो भी हो, हम यह विश्वास कर सकते हैं कि बारह बरस तक विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करते रहने के कारण उसे दो उपलब्धियाँ हुईं जिनके फलस्वरूप वह संसार का सर्वप्रथम सुखान्तक लेखक बन सका : उसे उन मंचीय प्रभावों का निजी अनुभव प्राप्त हुआ जो निश्चित रूप से दर्शकों का मनोरंजन करते हैं, और संघर्ष, सहकारिता, षड़यंत्र, ग़रीबी और सफलता से उत्पन्न दार्शनिक हास्य और शालीनतापूर्ण सुबुद्धि की परिपक्वता प्राप्त भी हुई।

अभिनेता मोलियर अपनी कम्पनी के साथ १६५८ ई० में, पेरिस वापिस आया। अब तक वह नाटककार मोलियर बन चुका था। वह अनेक प्रहसनों और सुखान्तकों की सफल और प्रभावपूर्ण रचना कर चुका था। यह सही है कि वे 'कामेदिया देल आर्ते' के रूपान्तरण से थोड़ा ही भिन्न थे, मगर उनमें पर्याप्त ताज़गी अवश्य रही होगी। 'पेतित बूरबोन' में सम्राट और दरबारियों के समक्ष, पेरिस में जब उसका प्रथम अभिनय हुआ

तो, दुःखान्तक नाटक के कारण नहीं, उसके प्रहसनों के कारण उसकी इतनी अधिक प्रशंसा हुई। यहाँ तक कि इस कम्पनी को यह विशेषाधिकार मिल गया. कि वह शाही रंगशाला में, इटालवी कामेडियनों से अन्तर देकर लगातार अपना अभिनय प्रस्तुत किया करे। उस दिन से अपने जीवन के अन्त तक—यद्यपि मोलियर को लगातार व्यक्तिगत सफलताओं और पेशों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण उत्पन्न संघर्षों से जूझना पड़ा—वह एक सफलता से दूसरी सफलता की ओर बढ़ता ही रहा। यहां तक कि अन्त में उसे फ्रांसीसी रंगशाला के सर्वप्रथम व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

एक बात है। जो लोग पहिले के दुःखान्तक अतिरंजन सम्भाषण अथवा प्रहसन-नात्मक भड़ैंती के ऊपर संयमित अभिनय को तर्जीह देते थे, अब उसे विशेषतया सुखान्तकों का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता मानने लगे। वह एक चतुर व्यवस्थापक और निदेशक भी था। १६५९ ई० तक उसने 'लेस प्रेशियसेस रेडीक्यूल्स' नामक एक व्यंग्य उन अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं पर लिखा और खेल डाला था, जो अन्य महिलाओं से ऊंची संस्कृति का दावा करती थीं। और नयी-नयी सुसंस्कृत बनी महिलाओं (प्रेशियसेस) पर किया गया व्यंग्य अत्यन्त सफल उतरा। (निस्सन्देह रंगशाला का प्रवेश शुल्क एकदम दूना हो गया)। इस नाटक का कथानक तो अत्यन्त नगण्य है; जिस तिकड़म से दो नौकर अपने मालिकों के स्थान पर स्वयं प्रेमिकाओं से इश्क लड़ाने लगते है, वह कथानक बहुत पुराना है। पात्र भी इटालवी प्रहसन के प्रसिद्ध पात्रों के ही अनुकरण मात्र हैं। मगर मोलियर ने इस नन्हे और साधारण से प्रहसन में समृद्ध हास्य भर दिया, उसमें खूब त्वरापूर्ण प्रसन्नता भर दी। उसके हास्य में एक ऐसी ताजगी थी जो बिलकुल असामान्य थी; और उसमें एक सामाजिक दृष्टि भी थी। फ्रांस के सुखान्तकों में इसके पहिले यह बात देखने में नहीं आती। इसके बाद और भी रचनाएं सामने आयीं और १६६१ ई० में मोलियर ने 'इकोले देस मारिस' प्रकाशित किया। यह व्यंग्यात्मक प्रहसनों की महती लम्बी शृंखला में पहिली रचना थी।

मोलियर को अपने कार्य में जो इतनी सफलता मिली उसकी कुञ्जी के रूप में उन सामग्रियों और विशेषताओं के स्रोत का सूत्र जान लेना और उसके मूल का पता लगा लेना सम्भव है। फ्रांस में पुराना देशी प्रहसन तो था ही, पियरे पथेलिन' की वास्तविक हास्य रचना तो थी ही; उधर बाहर से आया नाटक भी था जिसमें ढेर की ढेर घटनाएं रहती थीं और षड़यंत्रों पर विशेष बल दिया जाता था। और सब से अधिक, इटालवी 'कामडिया देल आर्ते' के मनगढ़न्त प्रहसन और सुविदित विदूषक-पात्र तो थे ही। मोलियर ने अन्त के इन पात्रों और प्रहसनों से बहुत-कुछ ग्रहण किया; उसने इनसे

लोकप्रियता में प्रतिद्वन्द्विता भी की; बचपन से वह इनके तिकड़मों—जादुओं का इनकी प्रतिभा का आनन्द लेता आया था। ('लेस प्रेशियसेस रेडीक्यूल्स' में भी मोलियर के साथी अभिनेता जोदेले, ला ग्रेंज और दू क्रोइज़ी, इन्हीं नामों के पात्रों की भूमिका में मंच पर उतरते थे। यह परम्परा उन्होंने इटलीवालों से ग्रहण की) । कारनेला ने भी, बाद के अपने सुखान्तक 'ले मेन्तेयुर' के पहिले एक रचना लिखी थी जिसमें उसने एक स्पेनी मूल रचना में एक प्रहसन पात्र की रचना की थी।

मगर इस एक आदमी का चमत्कार यह था कि उसने इतने स्रोतों से और प्रभावों से सामग्री संग्रहीत करके उनको इस प्रकार परिवर्तित-परिवर्द्धित और संशोधित किया कि कला की एक नवीन विधा तैयार हो गयी और वह उस ऊँचाई तक पहुंच गयी जहां उसके बाद इस देश अथवा किसी अन्य देश का कोई नाटककार कभी भी नहीं पहुंचा सका। जिस प्रकार शेक्सपियर ने आश्चर्यजनक स्वतंत्रता के साथ सामग्री उधार ली और ऐसी शैली में रचना आरम्भ की जो सद्यः उसके हाथ में आ गयी, और फिर भी उसने ऐसी व्यापकता और ऐसी समृद्धि प्राप्त की जो उसके समकालीन अथवा बाद के अन्य सभी युगों के रचनाकारों के लिए सर्वथा अप्राप्य थी; ठीक उसी प्रकार सुखान्तकों के सम्बन्ध में मोलियर के साथ भी हुआ। उसने खुलकर अनुकरण किया और सामग्री संग्रहीत की। मगर उसने अपनी रचनाओं को ऐसी मौलिकता प्रदान की जो मंच के लिए लिखित समस्त प्रहसन, हास्य साहित्य में अद्वितीय बनी रही।

निश्चय ही शेक्सपियर ने दुखान्तकों के क्षेत्र में अद्वितीय उपलब्धियों और सफलताओं के अतिरिक्त एक सीमित दायरे में अद्वितीय सुखान्तकों की भी रचना की ह। या शायद यह कहना ज़्यादा अच्छा होगा कि उसने ऐसे सर्वश्रेष्ठ अभिनेय नाटकों की रचना की जो अर्ध-सुखान्तक और अर्ध कल्पनाशील नाटक के मिश्रित रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये। ऐसे नाटकों को 'रोमांटिक कामेडी' का नाम दिया गया है, यद्यपि इस नाम से उस नाट्य रूप का बिल्कुल ठीक-ठीक बोध नहीं होता। इस श्रेणी के नाटकों में 'ट्वेलव्थ नाइट' और 'ऐज़ यू लाइक इट' भी शामिल हैं। इसके साथ ही 'दी मेरी वाइब्ज़ आव विंडसर' नामक प्रहसन के निकट पहुँचने वाले सुखान्तक का नाम भी लिया जा सकता है। मगर जहां तक शुष्क सुखान्तक का प्रश्न है और जिसके सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि हास्य की भावना का सार ऐसे ही सुखान्तकों ही में रहता है, मोलियर ही सर्वश्रेष्ठ है।

जो नाटक किसी महत्व का दावेदार होता है, उसमें किसी सीमा तक गम्भीरता अवश्य रहती है। सुख अथवा दुःखपूर्ण अन्त के पुराने कुघड़ निकष को छोड़कर हम सुखान्तक का (दुःखान्तक से) भेद प्रयोजनपूर्वक इस तरह कर सकते हैं कि वह नाटकीय

सक्रियता का ऐसा रूप है जो हमारे हँसने की प्रवृत्ति को स्पर्श करता है, करुणा और पीड़ा की भावनाओं को नहीं। सुखान्तक हास्य का नाटक है, चाहे वह हास्य सहानुभूतिपूर्ण हो अथवा मजाक उड़ाने के लिए हो। साधारणतया किसी सुखान्तक की उत्कृष्टता का निकष यह है कि वह 'सुचिन्तित हास्य' उत्पन्न करता है अथवा नहीं। वह नाटक जिससे अप्रत्याशित असम्भाव्य के सम्भव हो जाने के कारण, घटना के एकाएक अकारण घट जाने के कारण, अथवा मूल नाटक में कोई नवीन असम्बद्ध बात जोड़ देने के कारण विचारहीन हास्य की सृष्टि होती है उसे हम प्रहसन कहते हैं।

सच्चा सुखान्तक तो मनुष्य के स्वभाव के कारण, उसी के भीतर से उत्पन्न होता है, सामान्यतया स्वभाव की कमज़ोरियों के सहज बुद्धिपरक सच्चाइयों के विरुद्ध संघर्ष के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। वह उत्पन्न होता है मानव स्वभाव के पापों और कमज़ोरियों का मज़ाक़ उड़ने के कारण। यदि उसी समय सहानुभूति का उद्रेक होता है, तो नाटक भावुकतापूर्ण सुखान्तक के निकट पहुंच जाता है। वह जी उबा देने वाली क्षुद्र और खोखली कोमलता और मधुर उच्छ्वासों से भर उठता है। वह न तो प्रहसन बन पाता है, न भड़ैती ही (क्योंकि इनमें हास्य, विभिन्न पात्रों के अन्तरविरोधों और असंगतियों के कारण और क्रियाशीलता के कारण जिसमें वे डाल दिए जाते हैं, उत्पन्न होता है)। मगर हम जिसे मूल रूप से सुखान्तक, उत्कृष्ट सुखान्तक मानते हैं, वह व्यंग्यमूलक होता है, उसमें सहानुभूति का रंग नहीं चढ़ा होता।

फ्रांसीसी लोग समझते हैं कि वे सच्चे हास्य की भावना के संरक्षक हैं। इन बातों की विवेचना करते समय वे दावा करते हैं कि दूसरे राष्ट्र सुखान्तक में सहानुभूति और व्यक्तिगत संवेग को जोड़कर उसे विनष्ट कर देते हैं। इसके बजाय वे जीवन को एक अलमारी पर रख देते हैं और नतीजे को उससे अलग होकर, आसक्तिहीन दृष्टिकोण से देखते हैं; वे संवेगात्मक अथवा मानवीय प्रतिक्रिया में कदापि नहीं फँसते। यहां हम इस बात पर बहस नहीं करना चाहते कि यदि दुःखान्तक अधिक मानवीय हो तो वह अधिक मनोरंजनकारी होगा अथवा नहीं—वह 'वैध' भी होगा या नहीं। फ्रांसीसी दर्शकों को इतनी उदासीनता की छूट दे सकते हैं कि वे व्यंग्यात्मक सुखान्तक के शुद्ध वाक्चातुर्य का आनन्द और रस उस प्रकार लें जिस प्रकार हम ऐंग्लो-सेक्सन लोग नहीं ले सकते। वह रंगशाला में अनासक्त होकर प्रवेश करता है, अपने निजी संवेगों को वह अपने घर पर ही छोड़ आता है। और अनासक्तिपूर्ण सुखान्तक के क्षेत्र में उसका मोलियर सर्वश्रेष्ठ है!

यह विशिष्टता ज़रा कठिन है—क्योंकि नाटक मात्र मानवीय होता है—मनुष्य की वह क्रिया ही हमारी आँखों के सामने आती है, रंगमंच पर दिखायी देती है,

जो कला को उसका समुचित रूप प्रदान करती है। आज रंगशाला इस प्रयोग का प्रयास कर रही है कि यथार्थवादी नाटकों में क्रियाशीलता को घनिष्ट और पात्र को बिल्कुल निजी बनाया जाय। मगर हम मोलियर को इस भावना के साथ पढ़ते हैं कि उसमें एक सुन्दर, महान् तटस्थता है, मनुष्य की कमज़ोरियों और बेवकूफ़ियों के सम्बन्ध में एक दृष्टि है जो कभी भी नीचे कीचड़ में नहीं उतरती, जो उनके निजी जीवन की सस्ती भावकता को स्पर्श नहीं करती। किसी तरह, होता यह है कि पात्रों के रूप निश्चित हो जाते हैं; वे हमारे सामने उपस्थित होते हैं, अपनी हास्य की भूमिका पूरी करते हैं, फिर लुप्त हो जाते हैं। ये पात्र महान् और वास्तविक होते हैं, जीवन और सामाजिक दृष्टि से यथार्थ होते हैं, मगर वे हमसे यह माँग नहीं करते कि हम उनको अपने दिल में बैठा लें। आइए हम यह मान लें कि यह अनासक्त सुखान्तक ही 'उच्च' सुखान्तक है।

मोलियर ने सामाजिक पात्रों की इतनी बड़ी चित्रशाला खड़ी कर दी कि केवल शेक्सपियर में ही ऐसे पात्र इससे अधिक संख्या में मिल सकते हैं जो सारे संसार में निकष के रूप में स्वीकारे जाते हैं। मोलियर ने तत्काल ऐसे गम्भीर आलोचनात्मक स्वर का विकास किया कि उससे समृद्धिशाली हास्य को, सजीव षड़यंत्र को, प्राचीन सुखान्तक को बल मिला। 'लेस प्रशेयसेस रिडीक्यूल्स' को जिस सामाजिक दृष्टि ने विशिष्टता प्रदान की थी, वह उसकी नाट्यकला की विशिष्टता बन गयी। जीवन की हास्यास्पद रूढ़ियां, समाज की बनावट की त्रुटियाँ, मानव स्वभाव की कमज़ोरियां—ये सब उसका निशाना बनीं। अच्छे प्रकृति के हास्य, कँटीली ठिठोलियों के सहारे उसने दम्भ, निरर्थक बातों, स्वभावों, धर्मों और मिथ्या विश्वासों को नंगा करके सामने रख दिया। नाटककार से भी बढ़कर सामने एक दार्शनिक, एक नैतिकतावादी, मूर्खताओं की खाल उधेड़ने वाला एक व्यक्ति आ गया। सम-सामयिक समाज की कमजोरियों को उसकी व्यंग्यात्मक प्रतिभा ने ढूँढ़ निकालने में सफलता प्राप्त की। ऐसा करके उसने नाटक को यथार्थवाद के एक क़दम और नज़दीक ला दिया। अपने निकट के जीवन के सम्बन्ध में इसके पहिले किसी ने भी इतनी गम्भीरतापूर्वक नहीं लिखा था। चाहे गद्य हो, चाहे तुकान्त दोहे हों, मोलियर ने आश्चर्यजनक पूर्णता के साथ, उत्कृष्ट शालीनता के साथ, लिखा। इसका पद्य प्रगीतात्मक अथवा अलंकारिक अर्थ में 'काव्यात्मक' नहीं है। उसकी सहजता, प्राञ्जलता और नमनशीलता ही उसकी विशेषता है। उसके दु:खान्तक का क्षेत्र—हालांकि व्यंग्यात्मक औपचारिकतापूर्ण सुखान्तक ही उसकी मुख्य सफलता है—अत्यन्त असाधारण रूप से व्यापक है। प्रहसन से स्थितिमूलक सुखान्तक से होते हुए पात्रमूलक सुखान्तक तक यह विस्तार था। और इसके बाद

दुःखान्तमूलक सुखान्तक तक समूहनृत्य और विष्काम्भक तक भी इसका विस्तार था।

'ले बुर्जुआ जेन्टिल होम', 'लेसफ़ेमेस सेवेन्तस', 'लेस प्रेटोयुसेस' उसके नाटक के ऐसे

स्गनारेले की भूमिका में मोलियर

नाम थे जो लोगों की ज़बान का हिस्सा बन गये। उसके पात्रों के नाम से ही हम आज किसी को तारतुफ़े, किसी को अलसेस्ते कहकर पुकारते हैं। परन्तु शायद सबसे महत्व पूर्ण बात है हास्य-पात्रों की विविधता। यहां हम विश्व रंगमंच के सर्वाधिक स्मरणीय ढोंगियों, वंचकों, नक़ली डाक्टरों और रंगबाज़ कुलीनों का दर्शन करते हैं। अंग्रेज़ी कृत

शीर्षकों वाले नाटकों 'दी अफ़ेक्टेड मिसेज़' और 'दी लर्नेड लेडीज़' में हम बनी हुई औरतों की सही तस्वीर देखते हैं, 'ले बुर्ज़ुआ जेन्टिल होम' में रोब जमाने वाले व्यापारियों को पाते हैं; 'तारतुफ़े' में हमें पवित्र ढोंगी मिलता है, 'ले मेडिसिन मालग्रे लुई' और 'ल' आमूर मेडिसिन' में हमें नकली डाक्टर मिलते हैं, 'ले मिसान्थ्रोप' में 'सर्वश्रेष्ठ समाज' का दर्शन होता है; 'ल' आवरे' में कंजूस से भेंट होती है; इत्यादि।

'तारतुफ़े' मोलियर की सर्वोत्कृष्ट रचना का उदाहरण है। घटना घटती है सुनिश्चित सामाजिक स्थिति वाले फ्रांसीसी कुलीन ओरगों के घर में। ओरगों के दो वड़े लड़के हैं। उसने एक दूसरी स्त्री से शादी कर ली है। यह और सुन्दर एवं मोहक तरुणी है (इस औरत के लिए उसने जो भूमिका लिखी वह अपने एक पात्र को ध्यान में रख कर ही लिखी थी। ऐसा वह अक्सर करता था। इस बार उसने अपनी पत्नी को ध्यान में रखकर ही भूमिका लिखी थी। उसकी पत्नी उम्र में उसकी आधी थी।) ओरगों ने इस नाटक में धार्मिक विषय को उठाया। उसने अपने घर में एक पवित्र वंचक को स्थान दिया जिसका नाम तारतुफ़े था। नौजवान लड़के एक चुस्त, चालाक नौकरानी के सहारे उस धोखेबाज़ को घर से निकालने का प्रयत्न करते हैं। उधर धर्मप्राण ओरगों और उसकी बूढ़ी मां लड़कों के इस प्रयत्न का विरोध करती है। दो अंकों में स्थिति इसी प्रकार बनी रहती है। इनमें ओरगों की बेटी मारियेना की प्रणयलीला पर विशेष बल दिया जाता है। ओरगों उसे इसलिए समाप्त कर देता है कि वह उसे तारतुफ़े को प्रदान कर सके।

मगर उस वंचक (आरम्भ से ही दर्शक उसे इसी रूप में जानते हैं) के पास अन्य अधिक दुष्टतापूर्ण योजनाएं हैं। ओरगों की दौलत हथियाने के बाद वह उसकी स्त्री को भी हथिया लेना चाहता है। पहिली बार वह तीसरे अंक में मंच पर आता है। इसके बाद उसकी शक्ति बढ़ती हुई दिखाती है। यहां से इस सुखान्तक में एक दुष्टतापूर्ण गम्भीरता आ जाती है। तत्काल वह ओरगों की पत्नी एलमिरे से प्रेम करना शुरू कर देता है। और जब ओरगों का बेटा तारतुफ़े के षड़यंत्र का भण्डाफोड़ करता है तो इसके उत्तर में तारतुफ़े के ऊपर और भी अधिक विश्वास जताने के लिए वह अपनी जायदाद उसके नाम लिख देता है। अन्त में, अपने पति के इस अन्धविश्वास को समाप्त करने के लिए एलमिरे ओरगों को मेज़ के नीचे छिपा देती है और तारतुफ़े को प्रणय-लीला में आगे बढ़ने का अवसर देती है। अब जब कि ओरगों को तारतुफ़े की वंचकता पर पूरा विश्वास हो जाता है, वह तारतुफ़े के सामने आ खड़ा होता है और घर से निकल जाने के लिए उसे आदेश देता है। तारतुफ़े बेहयाई के साथ दावा करता है कि वह घर उसका है और उसे नहीं ओरगों को घर छोड़कर निकलना पड़ेगा। अन्तिम अंक में

तारतुफ़े

मेरे सीने में जो दिल है वह पत्थर का नहीं है।

एलमिरे

मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि आपके सारे उच्छ्‌वास स्वर्ग की ओर अभिमुख हैं,
इस संसार की कोई भी वस्तु आपके विचारों को बाँध नहीं सकती।

तारतुफ़े

शाश्वत वस्तुओं के सौन्दर्य के प्रति प्रेम
सांसारिक सौन्दर्य के प्रति हमारे प्रेम को नष्ट नहीं कर सकता।
हमारी नश्वर इन्द्रियां ईश्वर द्वारा इस संसार में निर्मित
पूर्णतम रचनाओं को देखकर भाव-विभोर हो सकती हैं।
उसकी कमनीयता तुम्हारे अन्दर प्रतिभासित हो रही है और
तुम्हारे अन्दर उसके अनोखे चमत्कार......
प्रकृति के उस महान् सृष्टा की प्रशंसा किये बग़ैर
और तुम्हारे प्रेम से अपने सम्पूर्ण हृदय को प्रदीप्त किये बिना
तुम जो कि उस रचनाकार का सुन्रदतम प्रतिबिम्ब हो,
मैं तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकता था, तुम जैसी पूर्ण सुन्दरी की ओर ।
पहिले मैं यह सोचकर कर काँप उठता था कि कहीं यह गुप्त प्रेम
किसी शैतान का धोखे से भरा जाल न हो;
मैंने अपने दिल पर ज़ोर डाला कि वह तुम्हारे सौन्दर्य वश में न हो जाय।
क्योंकि मैं समझता था कि यह मेरी मुक्ति से रास्ते की बाधा है।
मगर शीघ्र ही, ज्ञान का प्रकाश पा जाने पर,
ओ परम सौन्दर्यमयी, मैंने देख लिया कि मेरा यह आवेग कितना निष्कलंक है,
कैसे मैं इसे संकोचपूर्ण शालीनता के योग्य बना पाऊंगा......'

मगर बिना सम्पूर्ण नाटक का पूरा चित्र देखे कोई यह नहीं समझ सकता कि क्यों इसके कारण बरसों तक पेरिस में घनघोर वाद-विवाद चलता रहा। लगता है कि ऐसे लोग भी थे जो वंचक तारतुफ़े को चर्च का ही अथवा शक्तिशाली धार्मिक समाज का प्रतीक समझते थे। और सम्राट् ने भी, जो मोलियर के अत्यन्त उदार संरक्षक थे, कुछ समय के लिए इस नाटक के प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध लगाना उचित समझा। पाँच वर्ष बाद

ही 'तारतुफ़े' को बिना किसी शर्त के जनता के सामने प्रदर्शित होने का अवसर मिल सका।

मोलियर को अनेक झगड़ों और षड्यंत्रों का सफल मुक़ाबिला करना पड़ा था। 'होटेल दे बूरगोन' के नाट्य दल से तो उसे प्रतिद्वन्द्विता करनी ही पड़ी थी। उसकी जवान स्त्री के कारण उसके ऊपर जो मुसीबतें आयीं, उनका भी मुक़ाबिला उसने किया। उसे निन्दात्मक आरोपों और दरवारी षड्यंत्रों से भी जूझना पड़ा। इन सब के साथ-साथ वह रंगशाला की व्यवस्था अपने अभिनय और अपनी नाट्य-रचना द्वारा चलाता रहा। मगर पेरिस वापिस आने के पन्द्रह बरस बाद ही उसका स्वास्थ्य कार्याधिक्य के कारण टूट गया। 'ले मालादी इमैजिनेयर' के चौथे अभिनय में मंच पर किसी प्रकार लुढ़कने-पुढ़कने के बाद वह घर वापिस आया, सो गया और केवल कुछ ही घण्टों में उसके प्राण पखेरू उड़ गये। स्थानीय धर्म-पुरोहितों ने चर्च में उसका अन्तिम संस्कार भी न होने दिया, और गाँव के कब्रिस्तान में उसके शव को गाड़ने की अनुज्ञा भी न दी। जब आर्क बिशप आव पेरिस, जो कि स्वयं बदनाम उड़ाऊ व्यक्ति था, से अपील की गयी तो उसने भी इस निषेधाज्ञा का समर्थन किया। अन्त में, सम्राट् के हस्तक्षेप करने पर ही उसके शव को क़ब्र में डाला जा सका, मगर उसमें भी यह शर्त लगायी गयी कि उस समय कोई भी संस्कार अथवा समारोह न हो; और शेक्सपियर की ही भाँति यह महान् लोकप्रिय,, शरीफ़, उदारमना व्यक्ति, आधी रात को एक दूर पड़ी कब्र में डाल दिया गया। मगर उसकी प्रतिभा अमर थी, और उसकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी। इतनी प्रसिद्धि फ्रांस के बाहर किसी भी नाटककार अभिनेता को नहीं मिली। यहां तक कि सौ साल बाद फ्रांसीसी अकादमी ने भी उस व्यक्ति का अनुसंधान किया और उसे सम्मानित किया।

उसके बाद प्रथम कोटि का कोई भी सुखान्तनाटक लिखने वाला व्यक्ति पैदा नहीं हुआ। जिस एक व्यक्ति को कुछ चर्चा की जा सकती है उसका नाम है जीन-फ्रांकोई रेगनार्ड। उसके नाटक अब भी बचे हुए हैं, उनमें वही जिन्दादिली है, वही हार्दिकता है; मगर वह मोलियर का अनुकृतिकार है, उसका साथी सहयोगी किसी भी अर्थ में नहीं।

मोलियर ने अक्सर सम्राट लुई चौदहवें के दरबार के लिए नृत्य-नाट्य, विष्कम्भक और तत्क्षण निर्मित नाट्य लिखे। वह अपनी रंगशाला के कामों में इतना व्यस्त रहता था कि वह 'समाज' के कार्यों में सदैव भाग नहीं ले पाता था (पहिले उसके पास 'पैलेस रायल' का रंगमंच था, बाद में पेतित-बूरबोन का रंगमंच उसके पास था); फिर स्वभाव से भी वह इस तरह का बना था कि वह एक दरबारी का अलंकृत और कृत्रिम जीवन नहीं व्यतीत कर सकता था। यद्यपि वह दरबारी था, मगर वहां पर वह एक अजनबी की ही भांति रहता था। फिर भी दरबारी मनोरंजनों—आयोजनों में उसके

अनुदानों के उल्लेख मिलते हैं। और उसकी कला के ये कमज़ोर पक्ष छैला-मनचलों और वारांगनाओं द्वारा आपेरा और नृत्यशीलाओं में प्रयुक्त झालरों और चुन्नटदार घांघरों में मिल गये।

जो भी हो, मोलियर ने अन्य सभी नाटककारों से अधिक अपने गम्भीर सुखान्तकों को दरबारी प्रभावों से अछूता रखा। न तो दृश्यमूलक अतिरेकों की माँग, न नियमों का उल्लंघन करने पर अकादमी से निष्कासन का भय ही उसे सुखान्तक-लेखन में समझौता करने को मजबूर कर सका। उसके नाटकों के लिए दृश्यावलियों की ज़रूरत बिल्कुल न थी। साज-सज्जा के सामानों की भी ज़रूरत न थी। 'तारतुफ़े' में एक मेज़ की ज़रूरत पड़ी; कभी-कभी अन्य नाटकों में भी बस ऐसे ही एक दो सामानों की ज़रूरत पड़ जाती
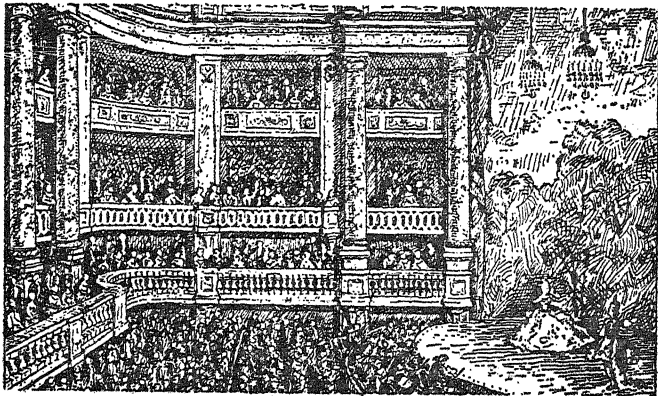
अभिजात वर्ग के लिए डिज़ाइन की गयी फ्रांसीसी रंगशाला। इसमें अत्यन्त नीचा वृन्द-वादन कक्ष तथा छज्जे के सर्वश्रेष्ठ बैठने के स्थान दृष्टव्य हैं। जेब्रील दे सेंट आओबिन के कलर-चित्र के आधार पर वारेन डी० चेनी द्वारा अंकन।)

थी। उसने वैसा ही लिखा जैसा उसे उचित लगा। उसने नियमों की पर्वाह नहीं की। उसने वास्तविक ,कठोर और जैसा चाहता था ठीक वैसी ही रचना की और मनमाने पात्र भी गढ़े। वह दरबार का था, दरबारी युग का था, फिर भी उससे ऊपर था। उसने अपनी कला को ऐसा रूप दिया कि वह अपने ज़माने की अनगढ़ रंगशाला में फब

प्लेट २८

रेसीन

सम्राट् और कार्डिनल मज़ारिन के सामने अभिनय करते हुए मोलियरे और उसके दल के लोग। (उन्नीसवीं शताब्दी के कलाकार वी० ए० पोयर्सन द्वारा प्रस्तुत दृश्य का पुनरांकन जो कि मोलेण्ड कृत 'मोलियरे : सा वीए एट सेस औव्रेजेस' में प्रकाशित है।)
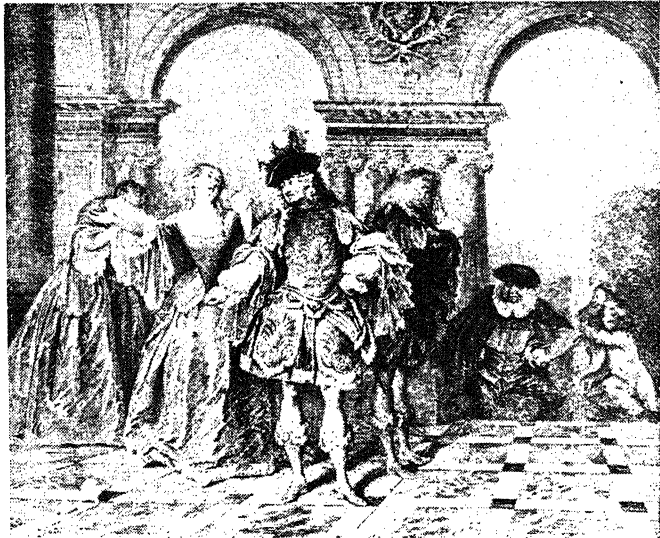
वाट्टेयु द्वारा अंकित दो चित्र। इनमें तत्कालीन फ्रांसीसी रंगशाला की अलंकृति स्पष्ट है। ऊपर, "ल' अमूर और थियेतर फ्रांके।" नीचे, "लेस कामेदियेन्स फ्रांके।" (सी० एन० कोचिन और जे० एम० लियोतार्ड द्वारा खचित चित्र के आधार पर। यह चित्र 'ले म्यूसी दे ला कामेदी फ्रांके' में प्रकाशित है।)
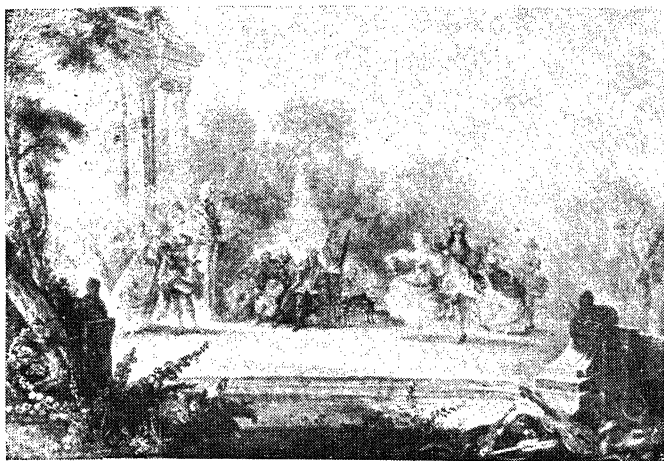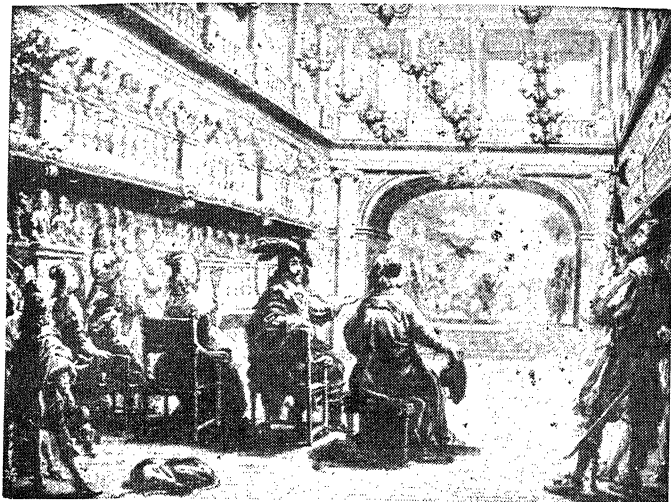
पेतित बूरबोन प्लेस में सम्राट की नृत्य-रंगशाला। दर्शकों में लुई १३वें, अन्नी आव आस्ट्रिया और कार्डिनल रिशलू भी हैं। यह दृष्टव्य है कि इटालियन कलाकारों द्वारा लाया गया 'प्रोसीनियम फ्रेम' यहाँ स्थायी रूप से स्वीकार कर लिया गया है। (लूबरे गैलरी के एक अंकित चित्र से।) नीचे, लैन्सर्ट कृत एक चित्र से जिसका शीर्षक है 'सीन फ्राम ऐन आपेरा।' (विल्डेन्स्टीन एण्ड कम्पनी, न्यू यार्क एण्ड पेरिस, के सौजन्य से प्राप्त एक फ़ोटोग्राफ़ से।)

सके; फिर भी उसने उसे अपनी कला से ऐसा परिष्कृत किया कि वह हर रंगशाला में उचित लग सके। निश्चय ही वह अपने समय से भी बड़ा था।

मगर उसके अलावा, उस युग की सीमाओं ने सभी रंगमंचों को प्रभावित किया था। सम्राटों, वारांगनाओं, अकादेमीशियनों, नौसिखिये-कलाकारों का साम्राज्य अब भी फ्रांस में कायम था। वे अब भी रंगशाला पर दरबारी रंग चढ़ा रहे थे। वे राजमहलों और छावनियों में अब भी निजी रंगशालाएं बना रहे थे और उनके रंगमंचों पर अभिनय कर रहे थे। अनेक नृत्यों में स्वयं सम्राट् सम्मिलित होते थे। उन्होंने सजीबजी रंगशालीय आयोजनों का प्रचलन कर दिया था। यांत्रिक-व्यवस्था, दृश्यावली, नृत्य सभी इटली से लाये गये थे। इस अध्याय के चित्रों को देखें, विशेषतया नीचे के रेखा-चित्र को देखें और यदि बाद के चार प्लेटों को देखें; आपको पता चल जायगा कि किस तरह रंगशालाओं पर दरबारी ज्योति झलमला रही है। फिर एक नवीन अध्याय को उलटिये और अभिनयमूलक प्रभावों की अटूट श्रृंखलाबद्ध कहानी पढ़िए।

अध्याय १५

आपेरा, चित्रीकरण और अभिनय

इस अध्याय का कथ्य, मैं आपको चेतावनी देता हूँ, चित्रों में है। क्योंकि मेरा उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि किस प्रकार नाटकों की सज्जा गौरवान्वित हुई है और फिर उन विशिष्ट व्यक्तियों का नाम बताना है जो इस 'महान् अभिनय के युग' में प्रदीप्त हो उठे। वास्तविक रंगमंचीय वस्तु, नाटकीय रूपक या मण्डलायित रंग-प्रस्तुतीकरण, के बारे में कुछ ज़्यादा कहना नहीं है। मोलियर के बाद फ्रांस में विश्व-नाटककार के स्तर का कोई भी रचयिता १८३० ई० तक नहीं हो पाया। और स्पेन, इटली और जर्मनी के प्रेक्षागृहों के लिए तो यह युग जड़ का ही रहा है। बैले, आपेरा, चमत्कार, महान् अभिनेता—ये ही इस युग के महत्वपूर्ण तत्त्व हैं।

बैले—जिसे हम संगीतात्मक और दृश्यात्मक सज्जा में नाट्य-नर्तन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं—मोलियर के अन्त के युग में, लगभग एक शताब्दी तक राज-दरबार के मनोरंजन का प्रिय साधन रहा है। १५८१ ई० में हेनरी तृतीय के फ्रेंच राज-दरबार कमोबेश 'शेतो दे मोतियर्स' में इटालियन बैले 'कामीक दे ला रायने' का आनन्द लिया। इस घटना का अंकन एक चित्र में किया गया है जिसे आप पुनर्जागरण और दृश्यावली का प्रारंभ वाले अध्याय में पायेंगे। इसके बाद, देशी आपेरा की स्थापना का प्रयत्न होता रहा किन्तु बीच-बीच में परिपूर्ण इटालियन आपेरा की प्रस्तुति फ्रांस में आकर, होती रही। किन्तु अन्ततः लुई चतुर्दश ने एब्बे पियरे पेरीन के ग्राम्यगीत के संगीतात्मक नाटकीय उपस्थापन को इतना पसन्द किया कि उसने राजकीय प्रोत्साहन दिया, और १६६९ ई० में पेरीन को राजकीय अधिकार-पत्र दिया गया, जिसके अधीन 'अकादमीए दे म्यूज़ीके' (आज का पेरिस आपेरा) स्थापित किया गया।

इसी बीच राजदरबार में वह इटालियन जीन बप्तिस्ते लली शक्तिमान हो चुका था जिसे फ्रांस के आपेरा–उपस्थापकों में प्रथम होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब वह दस या बारह वर्ष का था तब 'लुली' (लोरीगायक) के रूप में फ्लोरेंस से फ्रांस आया था। पहिले सेवक अथवा रसोई में सहायक छोकरे के रूप में राजा की भतीजी की सेवा में

एक अफ्रीकन और नेप्चुन की बैले वस्त्र-सज्जा, सज्जाधीक्षक मार्टिन द्वारा।
(ल' ऐन्शियने फ्रांस : ले थियेतर एट ला म्युजिके)

रहा था। बाद में वह वाद्य-मण्डली का नेता और मान्य राजकीय संगीत रचनाकार हो गया। १६७१ ई० तक वह तीस राजकीय बैले की संगीत-रचना कर चुका था, जिनमें मोलियर के भी कई बैले थे। उनमें से कुछ में वह राजा के सामने अभिनय भी कर चुका था और आंशिक रूप से कुछ अत्यन्त संदिग्ध उपायों से प्रियपात्र के रूप में अपना पथ प्रशस्त कर चुका था। और इसलिए यह विस्मयजनक नहीं है कि १६७२ ई० में राजा की रखेलों में से एक मैदम मेंतेस्वान के साथ षड्‌यंत्र कर, वह पेरीन से 'अकादिमीए दे म्युजिके' का अधिकारपत्र और सुविधाएँ छीनने में सफल हो गया। तब से पन्द्रह वर्षों तक

लुली ही मानो फ्रेंच आपेरा का प्रतीक बना रहा और तब से आपेरीय प्रस्तुतियों में हमेशा बैले तत्व सशक्त बने रहे।

आपको याद होगा कि इटालियन आपेरा, राजदरबारों की परिधि से बाहर निकल चुका था। और उसने अपने निजी 'सार्वजनिक रंगमंच' बना लिये थे। किन्तु फ्रांस में यदि यह पदाधिकारियों के एकाधिकार में परिचालित वैयक्तिक रूप में प्रदर्शित कला नहीं तो कम से कम राजदरबार द्वारा संरक्षण प्राप्त तो बना ही रहा। यह कहा

अठारहवीं शताब्दी बैले के लिए वस्त्र जलोट के आधार पर)।

जाता है कि लली ने अपनी कला को चौदहवें लुई की रुचि को संतुष्ट रखने में सीमित रखा, जो तीव्र और अतिस्वरात्मक संगीत को नापसन्द करता था और हम कह सकते हैं कि यहां एक वास्तविक फ्रांसीसी मर्यादा ने आपेरा को एक ऐसी अति से बचा लिया जो सुदूर दक्षिण में जाकर कभी-कभी उच्छृखंल हो उठता था। जो भी हो लुली ने इटालियन शालीनता की रक्षा की, कुछ वृन्द-संगीत के तत्वों को जोड़ा और अपने सहयोगी क्विनाल्ट के फ्रांसीसी पद्योंको पूरी तरह गेय बना दिया। उसने फ्रांसीसी आपेरा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किये। बैले उपस्थित करने के अपने लम्बे अनुभव से प्राप्त व्यावहारिक रंगमंच शिल्प से उसने आपेरा को रंगमंच के योग्य बनाया, और सचमुच

उसने बैले के छंदों को हर संगीतात्मक नाट्य प्रदर्शन में स्थायित्व प्रदान किया। (यदि आप आज किसी प्रस्तुति में जांय और आश्चर्य करें कि उन्होंने क्यों उस नृत्य-विनोद के लिए नाटक को रोक दिया है, तो आपको इस उत्तेजित करने वाले इटालियन फ्रांसीसी का स्मरण अवश्य आयेगा जिसने राज महिलाओं और सज्जनों के शौक़िया विनोद को व्यावसायिक आपेरीय विष्कम्भक में बदल दिया।) और आपेरा के ढांचे की रचना और संगीत के सुरुचिपूर्ण विकास के साथ राजकीय कलाकारों ने उन बाह्य दृश्य-जनित प्रभावों को भी उसमें जोड़ दिया जो तब से 'महान्' आपेरा के ऊपर छाये हुए हैं।

चूँकि लम्बे समय से बैले में आभिजात पुरुषों और महिलाओं का नर्तन होता आया था, उसका वेश-विन्यास भी प्राचीन राजाओं, देवियों, चरवाहों, जादूगरों का राज-गृहीत रूप ही होता था। इसके साथ ही कभी-कभी सम-सामयिक अमेरिकन एवं प्राच्य विदेशी वेशभूषा भी अपना ली जाती थी। एक सम-सामयिक उत्कीर्ण चित्र में ड्यूक दे गाइज आश्चर्यजनक रूप से बड़े अमरीकन श्रेष्ठ-सज्जा में दिखायी पड़ता है; इस प्रकार की गौरव वृद्धि इस काल की रंगमंचीय वेशभूषा में सामान्य-सी बात थी। लुली के बाद के पचास वर्षों में आपेरा बैले की प्रगति इसलिए रुक गयी कि व्यावसायिक नर्त्तकों ने जिस अत्यधिक अलंकृत तथा भारी वेश-भूषा को राज महिलाओं से विरासत के रूप में पाया था उसका त्याग करने में उपस्थापकगण झिझकते रहे। प्रसिद्ध नर्तकी कमार्गो (लगभग १७३०–४० ई०) के समय के पहिले वेश-विन्यास में क्रमिक परित्याग की क्रिया नहीं आरम्भ हुई। और उसकी पूर्ति से तो बीस साल और लग गये जब नावेरे ने रंगमंचीय नृत्य का पूर्ण परिष्कार कर दिया। तब भी बाल-रूम में ढीला वस्त्र पहनने और दूसरी और कृत्रिमताओं की परम्परा हमारी शताब्दी तक चलती ही रही और इजाडोरा डंकन ने वह क्रान्ति सम्पन्न की।

नियमित रंगमंच पर वेष-भूषा आपेरा की अपेक्षा कम आनन्ददायिनी नहीं थी। नाटकों को भी अपने इस नये प्रतियोगी के सामने राजा की आँखों में गिरना नहीं था। इसलिए सामान्य नाटकों में भी हम पात्रों को सिल्क साटन, प्लश में सज्जित दैत्याकार शिरोवस्त्र से युक्त, सिरों को शिरस्त्राणों एवं कलंगियों के भार से झुका, उनके शरीरों के पीछे विशाल परिमाण में कमख्वाब का पुछल्ला देखते हैं। यह पद्धति शानदार, शाही, मन्दगति वाले गंभीर अभिनय के प्रतिकूल नहीं थी। क्या अभिनय अंशतः इस वेषभूषा से प्रभावित था?

वात्तो, जिसने अठारहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में स्वयं रंगमंच के लिए चित्रण किये, अपने अद्वितीय राजसी स्पर्श के साथ थियेटर फ्रांके के अभिनेताओं को उनकी सारी उत्कृष्टता में चित्रित करता है जैसा यहाँ (प्लेट नं० ३० में) दिखाया

गया है। जब लुई चौदहवें ने होटेल दे बूरगोन और मोलियर वाली (जो अभी तक उसकी विधवा द्वारा चलायी जा रही थी) दोनों वर्तमान कम्पनियों को एक होने का आदेश दिया तो सुविधा प्राप्त राजकीय अभिनय दल को १६९० ई० में 'थियेतर फ्रांके' का नया नाम दिया गया। इस एक हो गये दल को उसने पेरिस में फ्रांसीसी भाषा में नाटक उपस्थित करने का एकाधिकार दिया, यद्यपि इसने आपेरा उपस्थापकों या सर्वदा लोकप्रिय इटालीय कामेडियनों को हानि पहुँचाने का कोई काम
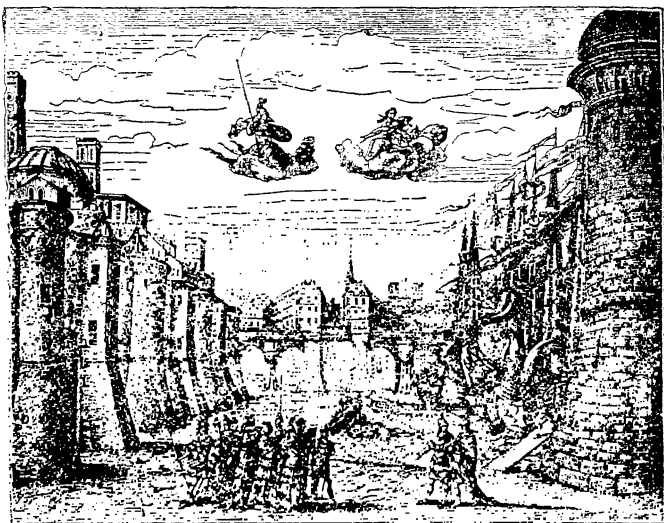
बादलों पर चलने वाले पात्रों, चलते-फिरते पानी के जहाजों आदि का दृश्य जिसमें यंत्रों का खूब प्रयोग हुआ है। 'आपेरा लेस नोसेस दे थिटिस एट पीली,' पेरिस, १६८९ ई०। (ल' एनिशयेन फ्रांस : ले थियेटर ए टला म्युजिके।)

नहीं किया। दो नियमित कम्पनियों के एकत्र होने की तिथि १६८० ई० सामान्यतः, वर्तमान 'कामेदिए फ्रांके' की स्थापना तिथि भी मानी जाती है। (जब महत्तर संस्था का सवाल उठता है तो थियेटर फ्रांके और 'कामेदिए फ्रांके' दोनों नाम बहुधा एक दूसरे के लिए प्रयुक्त होते हैं।)

यदि बैले का वेशविन्यास नियमित रंगमंच तक फैल गया तो राजकीय कला-

कारों की वह दूसरी नाटकीय वस्तु, दृश्यकला समान रूपसे नियमित और आपेरा दोनों ही रंगमंचों पर प्रयुक्त होने लगी। इटालीय दृश्यभूमिका की सेटिंग अपना ली गयी और इटालीय प्रभाव ने फ्रेंच नाटयगृहों का स्वरूप निश्चित किया, यद्यपि पेरिस के वार्साई राज दरबार ने सज्जा में विलासिता को और जोड़ दिया। कभी भी न लांघी जा सकी चित्रित सेटिंग विस्तार की ओर उन्मुख होती गयी (यद्यपि बाद के युगों में वे और भी स्वाभाविक एवं प्रामाणिक बनायी गयीं) और लाग तथा चातुरी के मोह में रंगमंचीय यांत्रिकता ने विस्तृत और जटिल होती गयी। हम विश्वास कर सकते हैं कि कुछ दृश्यावलियाँ भड़कीली और प्रशंसनीय होंगी, फिर भी नाटकीयता के साथ-साथ आपेरीय रंगमंचों पर दिखावटी सेटिंग के विस्तार की हम निन्दा करेंगे, पर हमें मानना पड़ेगा कि प्रेतछायाएँ तथा तार पर चढ़ने आदि की युक्तियाँ रोमांच के क्षण प्रदान करती थीं।

गायाकोमो तोरेली नामक कलाकार ने पेटिट वोर्वान महल के प्रेक्षागृह में उस समय के कुछ अत्यन्त विस्तृत एवं प्रभावकारी रंगमंच-चित्र प्रस्तुत किये। कहा जाता है कि वह वेनिस से पेरिस आया था; वेनिस नगर में उसने कुछ ऐसे रहस्यमय लाग प्रदर्शित किये थे कि निश्चय ही शैतान के साथ उसका सम्पर्क होना मान कर दर्शकों ने नकाब चढ़ा लिया और उसे मारने का प्रयत्न किया। उसने भड़कीलेपन के नये स्तर के कायम करने के साथ तीव्र दृश्य-परिवर्तन में नयी कुशलता की स्थापना की। मैंने यहाँ पाठक को याद दिलाने के लिए एक चित्र (प्लोइन) दिया है जिसमें मुख्य पर्दे का फ्रेम, दृश्यांकन और चित्रित दृश्य-विस्मय के साथ ही इटली से आया था।

तोरेलीने १६६० ई० में पेरिस छोड़ा। उसके बाद गास्परे विगरानी नामक दूसरा इटलीवासी आया जिसने राजा के लिए एक प्रासाद-नाटयशाला निर्मित की। इसमें दृश्य विधान की इतनी प्रधानता थी कि उसके आगे और बातें फीकी पड़ गयीं। इसीलिए वह जगह 'सैले डि मशीन्स' कही जाने लगी। वहाँ रंगमंच पर किसी भी ज्ञात प्रभाव का दृश्य प्रस्तुत किया जा सकता था और सज्जा में भी वह विविएनस की अद्‌भुत रचनाओं के साथ प्रतिद्वंद्विता करती थी। कुछ ही बाद पेरिस में विवि-एनस के प्रसिद्ध अनुगामी ज्यां निकोलस सर्वेन्दोनी का आगमन होने वाला था। किन्तु फ्रांसीसी कलाकार नयी शैली में अंकन करना भी सीख रहे थे।

प्रेक्षागृह स्थापत्य में घोड़े की नाल के आकार का दर्शकमण्डप पूर्ण हो रहा था। यह उस आकार के प्रत्यक्ष दृश्यों की दृष्टि से उस युग में तर्क सम्भव प्रसार था। जब कि दर्शक बैठने को ठोस तख्तों के स्थान पर अलग बाक्स चाहते थे। वार्साई में

शेतो का आपेरागृह यद्यपि चौदहवें लुई के बाद के युग का, जिसका हम अन्वेषण कर रहे हैं, बना है किन्तु वह इटालीय मूल के फ्रांसीसी संस्करण का प्रतिनिधि है। उस युग के अनेक मुद्रित चित्रों के रूप में परिचित बाद का आपेरा-रंगमंच प्रदर्शित करता है कि किस एक विशाल प्रेक्षागृह की दर्शक मण्डली रंगमंच के सम्बन्ध में क्या ख्याल रखती थी और कितनी पूर्णता से रंगमंच एक चित्र बन गया था और कोर्निले के समय में अभिनय के लिए प्रयुक्त वह प्लेटफार्म अब कितना बदल गया था। सच तो यह है, कि सारे प्रेक्षागृह आपेरागृह बन गये थे। (पृष्ठ २१६ और ३३६ के चित्र देखिए)।

मिश्रित स्वरूप में रंगमंचकला—जिसमें न तो अभिनय, न साहित्यिक नाटक कोई एक तत्व प्रधान नहीं रहता —का आदर्श इस बीसवीं सदी में कलाकार को रंगमंच में इतना संलग्न किये हुए है कि एक पृथक कला के रूप में अभिनय पर विचार करने के विरुद्ध तक एक भावना है। गत तीस वर्षों में नाटचगृहों में अर्जित सब से बड़ा लाभ निश्चित रूप से समन्वित नाटच प्रस्तुति को समग्र रूप में देखने की प्रगति ही है।

किन्तु अतीत में ऐसे भी युग थे जब कथा और कविता का सबसे से अधिक महत्व था। अन्य विषयों में जब चमत्कार और युक्ति अथवा लाग का प्रभाव सामने हो तभी दर्शकों प्रभावित होते थे—और भी दूसरे तब सन्तुष्ट होते थे जब कला मर्मज्ञता से पूर्ण अभिनय का शक्तिशाली प्रदर्शन रंगमंच कला का मर्मविन्दु बन जाता था। हम लोगों को इसमें अब कोई सन्देह नहीं रह गया है कि अभिनय को अंशदायी या सहायक कला समझा जाना चाहिए—कदाचित् पूरी रंगप्रस्तुति के लिए आवश्यक कला-वर्ग में केन्द्रीय कला। किन्तु इतने पर भी स्वतंत्र रूप से महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति की उपेक्षा यह कलान्तर्गत एक शिल्प मात्र है। सत्रहवीं शती के उत्तरवर्त्ती और अठारहवीं शताब्दी के अधिकतम भाग को समेटने वाले काल में अभिनय रंगमंच की क्रियाशीलता में सर्वाधिक उत्कृष्ट तत्व था और एकमात्र तत्व था जिसके सम्बन्ध में उस युग का इतिहास लिखा जा सकता है। इँगलैण्ड में ड्राइडेन के बाद, स्पेन में काल्डेरन के बाद, फ्रांस में मोलियर के बाद विश्व-महत्व के नाटककार से भेंट नहीं होती और जर्मनी तब तक कोई योगदान सामने प्रस्तुत नहीं करता जब तक एक शताब्दी बाद गेटे और शिलर जैसे तारे उदित नहीं हो जाते। तब तक केवल अभिनेतागण परम्परा को जारी रखते हैं।

जब अभिनेता शौकिया या लगभग—'इत्वर' होते थे उन दिनों से सम्मानित 'कामेदिएन दुरॉय' के प्रदीप्त समय तक फ्रांस में तीव्र प्रगति होती रही। अभिनेताओं की स्थिति अच्छी बनाने के लिए रिशेतियो विशेष रूप से स्मरण

करने योग्य है। किन्तु जब मोलियर की भाँति एक श्रेष्ठ अभिनेता रंगमंच का प्रतिनिधित्व करता है तब अभिनेताओं का विशेष आदर स्वाभाविक है। मोलियर का ही समय है, जब फ्रांस के महान् ट्रैजिक अभिनेताओं की सूची में सब से प्रथम व्यक्तियों से हमारी भेंट होती है। (जिन्होंने दुःखान्त खेला है वे अच्छी तरह से अधिक स्मृत प्रतीत होते हैं। यद्यपि यह एक सामान्य विश्वास है कि सुखान्त खेलना अधिक कठिन कला है फिर भी श्रेष्ठ दुःखान्त अभिनय करने वाले सुखान्त के अभिनेताओं से ज्यादा अच्छी तरह याद किये जाते है।)

माइकेल बैरन ने प्राचीन ऐश्वर्यशील और तड़क-भड़क वाले अभिनय का विरोध कर प्रतिष्ठा प्राप्त की। इससे अस्वाभाविकता और जड़ता कुछ कम हुई। तुकान्त वृत्त के नाटकों को खेलते समय कृत्रिमता से बचना कठिन नहीं, असंभव था। किन्तु जहाँ उसके अग्रजों ने (जिनमें मोनडोरी सर्वाधिक महान् था) तुक पर जोर दिया और गीत-गान की नियमबद्धता को अस्वीकृत किया तहाँ बैरन ने लीक तोड़ी और शब्दों को अधिक स्वाभाविक लय में डाला; साथ ही स्वाभाविक भावों के साथ स्वर के उतार-चढ़ाव को स्वीकार किया। परम्परा और स्वाभाविकता के उस प्रगतिशील संघर्ष में वह प्रथम योद्धा था। वह युद्ध हमारे अपने दिनों तक जारी है। अपने समय के पहिले के किसी ज्ञात व्यक्ति से उसकी मुखाकृति का अभिनय अधिक अभिव्यक्ति-परक था और उसने अंग-भंगिमाओं के उन नियमों से बँधने से इनकार कर दिया जो परम्परा के रूप में विकसित हो गये थे। एक बार अपने स्वाभाविक परिअंग संचालन की आलोचना किये जाने पर उसने उत्तर दिया —

"मेरे साथी निर्देश देते हैं कि भावोद्रेक के बीच भी मैं अपनी बाहों को अपने सिर के ऊपर न जाने दूँ, किन्तु यदि भावावेग उन्हें वहाँ ले जाता है तो मैं उन्हें जाने दूँगा। भावावेग नियमों से ज्यादा अच्छी तरह जानता है।" और यह सचमुच एक समय बड़ी क्रान्तिकारी बात थी, जब हर चीज़ के बारे में नियम थे और उन्हें कार्यान्वित कराने के लिए अकादमियाँ। अभिनय एक मान्य स्वतंत्र कला बन गया था और राजदरबारी, लेखक आदि यह देखने को नाटचगृह जाते थे कि अमुक या अमुक रेसाइन या कार्नेले के पदों का किस प्रकार उपयोग करते हैं। हर प्रभाव एवं शैली की तालिका बनायी जाती थी।

बैरन ने बिलकुल मान लिया था कि वह अपनी कला के शिखर पर पहुँच गया है। वह कहा करता था—"संसार में केवल दो महान् अभिनेता हुए हैं:—रोशियस और मैं। हर शताब्दी का अपना सीज़र होता है, जब कि एक बैरन को पैदा करने के लिए दो हजार वर्ष जरूरी हैं। किन्तु जब वह फ्रांसीसी रंगमंच में सबसे बड़ा

व्यक्तित्व बन गया हो, तो ३८ वर्ष की आयु में ही एकाएक 'रिटायर' (कार्यमुक्त) हो गया। स्पष्टतः उसने सोचा कि रंगमंच का संसार बैरन के लिए बहुत छोटा है। अभिनेता, सचमुच, अहंकार से कभी मुक्त नहीं होते। मैं आज भी कुछ का नाम आप को गिना सकता हूँ लेकिन ऐसा कभी ही होता है कि श्रेष्ठता की भावना इतनी गहरी जमी हो कि अभिनेता इस तरह रंगमंच छोड़ने की बाध्यता का अनुभव करे।

तीस वर्ष के अपने निजी जीवन के बाद बैरन मंच पर लौट आया और प्रायः पहले की भाँति उसने अपना स्थान बना लिया बल्कि उसने और नयी-नयी बातें निकालीं। यह वही था जिसने दूसरी पीढ़ी के हाथ में मशाल दी।

प्राचीन प्रकार के, स्पष्टतया अलंकारिक अभिनय में जिन्होंने प्रतिष्ठा अर्जित की, उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध चम्पमेस्ले और डुक्लोस थीं। पहली अपनी आवाज के दक्षतापूर्ण प्रयोग में विशेषरूप से प्रसिद्ध थी। एक समकालीन ने लिखा था—"वह इसके प्रयोग में इतनी कला प्रदर्शित करती है और वह इसके उतार-चढ़ाव इतनी अच्छी तरह स्वाभाविकता से पूर्ण करती है कि उसका हृदय सचमुच उस भावना से भरा मालूम पड़ता है जो केवल उसके मुँह में है।" और सचमुच 'गौरवशाली' अभिनय के दोष की यही एक कुँजी है। प्रभावों की हमारी सारी प्रशंसा के बाद, इसकी विशालता और वेग पर हमारे रोमांच के बावजूद, अन्त में यह 'केवल मुँह में' याद आ ही जाता है। उन दिनों हम 'स्वाभाविकता' की तीव्र प्रगति के लिए यदि कोई सफाई या बहाना ढूँढ़ते हैं, तो हमें अवश्य अध्ययन करना पड़ेगा कि किस तरह अभिनेता अधिकाधिक हृदय से, अपने भावनात्मक केन्द्र से बोलने में प्रयत्नशील हुए। कृत्रिम रुचि के प्रति, बुद्धि के प्रति भी, संवेदन आलंकारिक पद्धति में भले ही आ जाय किन्तु गंभीरतर भावना प्रवण आध्यात्मिक संदेश जिसे हम गंभीर नाटक का तत्व मानते हैं, वह शब्दों के राकेट (प्रक्षेयास्त्र) या रूढ़िग्रस्त चेष्टाओं से नहीं ले आया जा सकता। मदाम डुलोस अपनी गुरु मदाम चम्पमेस्ले से भी ज्यादा सीमा तक गेय चीज़ों पर चलती रहीं, और दूसरों के साथ उन्होंने ख्याति अर्जित की और वह उस समय भी प्रतिष्ठित बनी रहीं जब अस्थायी रूप से तड़क-भड़क की शैली समादृत नहीं रह गयी।

प्रसिद्ध फ्रांसी अभिनेताओं की चित्रशाला में हम क्विनाल्ट के चित्र के आगे ठहर सकते हैं। रंगमंच परिवार में सर्वाधिक ज्ञात क्विनाल्ट डुफ्रीस्ने, आरंभिक अठारहवीं शती की अपराह्नकालीन नाट्य का आराध्या है। किन्तु यह एन्द्रीने लेकोव्रिअर है, जो शीघ्र ही सबकी आँखों पर चढ़ जाती हैं। और वह बैरन के द्वारा किये सुधारों के पूरे ज्वार को लौटा ले आती है। वह रंगमंच पर घटाटोप

षडयंत्र, मिथ्यागौरव, जो तत्कालीन कलाकार-जीवन में व्याप्त था, के विरुद्ध अरुचि के साथ प्रवेश करती है। जबकि अधिकांश प्रसिद्ध अभिनेत्रियों रूढ़िग्रस्त और तड़क-भड़क में डूबी थीं, वह सरल और निष्ठायुक्त थी। (जितना कि

चित्रित दृश्यों को बदलने तथा बादल आदि प्रदर्शित करने के लिए निर्मित एक रंगमंच का मानचित्र। (ग्रोबर्ट कृत दे ल' एक्जीक्युशन ड्रामातिके।)

एलेक्जाड्रियन छन्द की सीमा में संभव था,) जहां मान्य दुःखान्त अभिनेत्रियाँ कृत्रिम और भड़कीली थीं, वह क्षीण, मृदु और अनलंकृत थी। उसने अपनी ग्रामीण निष्ठा और भावना के साथ माइकेल बैरन की शिक्षाओं को इस तरह मिला दिया और दर्शकों को अपनी भूमिका में ऐसी सजीव जान पड़ी जैसा इसके पहले कोई और नहीं जान पड़ा था। केवल मुँह में ही दिखने वाले भावोत्तेजन से अलग ऐन्ड्रीन लेको-व्रिअर अपनी भावोत्तेजना हृदय और आत्मा से ग्रहण करती थी। और बहुत ही

थोड़े समय में वह थियेटर फ्रांस की प्रमुख अभिनेत्री बन गयी।

रंगमंच के बाहर भी वह उसी प्रकार प्रभावशालिनी बन गयी थी जितनी कि मंच पर थी और उसका कलाकक्ष पेरिस के सामाजिक एवं कलापूर्ण जीवन का केन्द्र बन गया था। किन्तु दुर्भाग्य से उसके अर्द्ध-राजन्य प्रेमी का ध्यान गरीब होकर जन्मी ऐन्द्रीने और राजकुमारी होकर जनमने वाली के एक स्त्री के बीच बट गया, और जब ईर्ष्या बढ़ गयी, तो महान् अभिनेत्री को विष देने के एक षडयंत्र का भण्डाफोड़ हुआ। १७२९ ई० में एक दिन लेकाव्रियर ने इसका रंगमंचीय बदला ले लिया। फ्रेडे खेलते समय उसने उस बाक्स की ओर कदम बढ़ाये जहाँ उसकी प्रतिद्वंद्विनी बैठी थी और उसके बिल्कुल सामने उन लोगों के प्रति सम्बोधित की गयी कुछ काव्य-पंक्तियाँ पढ़ीं, जो अपराध करने में अपने को सुरक्षित समझ कर अपना निर्लज्ज मुख दिखाते हैं। दर्शक इस नाटक के भीतर के नाटक को देख खड़े हो गये और उन्होंने संदिग्ध नहीं छोड़ा कि उनकी सहानुभूति किसके प्रति है। किन्तु आधे वर्ष के अन्दर ही प्यारी ऐन्द्रीने एकाएक मर गयी। हर आदमी कहता था—विष से, किन्तु किसी ने विष देने वाले को ढूँढ़ने का साहस नहीं किया।

पुराना अन्याय एक बार फिर दुहराया गया और अपने युग की महत्तम अभिनेत्री जो कल तक आदरणीय और प्रिय थी कानून और चर्च द्वारा दफन की सुविधा के अस्वीकृत कर दिये जाने के कारण, आधी रात को बाहर ले जायी गयी और ऐसी अनजानी कब्र में डाल दी गयी कि आज तक भी कोई उसका पता नहीं पा सका। फिर भी महान् वाल्तेयर ने उसके बारे में लिखा—'जहाँ केवल कृत्रिमता और अलंकारिकता ही प्रदर्शित की जाती थी वहाँ इस अतुलनीय अभिनेत्री ने प्रायः हृदय की भाषा में बोलने की कला का आविष्कार किया और भावना एवं सत्य को प्रदर्शित किया।'

नाटकलेखन के क्षेत्र में बाहर वाल्तेयर ने रंगमंच की प्रगति के कार्य में भी बड़ी सहायता की। (आप याद रखें कि उसने दर्शकों के रंगमंच को मुक्त किया।) शायद उसके इंगलैण्ड में दीर्घ निवास से इसका कुछ वास्ता था, किन्तु उसने निश्चय ही फ्रांसीसी अभिनय की सबसे बुरी रूढ़िग्रस्तता को समझ लिया था और जब लेकोव्रिअर की मृत्यु के बाद अभिनय पुरानी तड़क-भड़क की ओर सरकने लगा, उसने 'कामेदिए फ्रांसाइसे' के अभिनेताओं को एक प्रकार की रुकावट के बाद आगे कार्य करने के लिए प्रेरित किया और शक्ति दी। यद्यपि उसे मदाम इज़्ले डूम्सनिल के साथ जो बीच-बीच में भावोद्वेग के अभिनय में मर्यादा का अतिक्रमण कर जाती थी, कुछ सफलता मिली, पर वह उसकी सह-अभिनेत्री मदाम इज़्ले क्लेयरोन को अलंकृत उदात्तता से रोकने में असफल रहा। सचमुच यह क्लेरोन का आत्मचैतन्य और महत् वाग्नैपुण्य

था जो क्रान्ति-पूर्व के रंगमंच तक चलता रहा और जिसने तालमा के संयम और स्वाभाविकता के नये संघर्ष को आवश्यक बना दिया। दुर्भाग्य से मदाम इज़ले डूम्सनिल की कमजोरी ऐसी थी कि अन्त में 'वह केवल वेकान्तीस-भर स्वाभाविकता से खेल सकती थी' और उसका प्रभाव कम हो गया।

इसी बीच वाल्तेयर को एक नौजवान अभिनेता 'लेकाइन मिल गया था जिसे वह अपने विचारों के अनुसार प्रशिक्षित कर सकता था। अन्त में लेकाइन 'कामेदिए फ्रांसाइसे' का प्रमुख अभिनेता बन गया; वह अलंकृत क्लेयरोन के साथ खड़ा हो सकता था : साथ ही उसमें विदेशी परम्पराओं को अपने निजी स्वाभाविक आकर्षण के साथ निभाने की शक्ति भी थी। और लेकाइन ही था, जिसने मशाल उस तरूणी तालमा के हाथ में पकड़ायी, जिसे पन्द्रह वर्ष बाद ऐसे युग में प्रकृति के लिए संघर्प करना था जब फ्रांस राजनीतिक क्रान्ति की प्रसव-वेदना से पीड़ित था। किन्तु इसी बीच 'कामेदिए फ्रांसाइसे' कम्पनी 'ऊंचे' अभिनय के दुःखदायी रोग में फिर से ग्रस्त हो गयी। लेकाइन के जाने के साथ फ्रांस से 'महान अभिनेताओं का युग' चला गया।

एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ियों तक पेरिस में इटालियन अभिनेता जम गये थे और उनका यश एवं लोकप्रियता भी फ्रांसीसी अभिनेताओं की अपेक्षा अधिक स्थिर थी। सामान्यतया उनकी सहायता अधिक उदार थी। वे हमेशा अपने ईर्ष्यालु प्रतिद्वंद्वियों के हाथों उपद्रव से बच नहीं पाते थे, और १६९७ ई० तक राजा ने उनकी दी हुई सुविधाएं लौटा लीं; इस पर उन्होंने फ्रांस छोड़ दिया। किन्तु २० वर्ष बाद एक नयी कम्पनी राजधानी में बुलायी गयी और क्रान्ति तक पेरिसवासियों को प्रहसनात्मक सुखान्तों से, और बाद में आपेरा से, आनन्दित करती रही।

मोलियर के समय इटलीवासियों ने अपने में ऐसे दो अभिनेताओं का दावा किया। जिनका नाम महान कलाकारों की गाथाओं में सम्मिलित हो गया है :—स्केरामाउसे (फिओरिली) और डोमनीक। फियोरिली ने ही इटली के स्केरामुशिआ की भूमिका को विस्तार देकर इस विख्यात पात्र को विकसित किया और इतिहास में स्केरामाउशे के नाम से अमर हो गया। उसके बाद दूसरों ने भी स्केरामाउशे की भूमिका की किन्तु उस पात्र के सृजन और सर्वोत्तम अभिनय का गौरव उसे ही मिलेगा। उसके एक जीवनी लेखक ने लिखा—"हम कह सकते हैं—उसके पैर, उसके हाथ, उसका सिर, उसके शरीर का प्रत्येक अंग बोलता था और उसकी अत्यन्त साधारण चेष्टा भी सुचिन्तित होती थी।" घेरार्डी, जो 'थियेटर इटालियन' के कुछ नाटकों का संग्रह प्रकाशित करने के कारण याद किया जाता है, कहता है—"अतुलनीय स्केरामाउशे,

जो रंगमंच का भूषण था और उस युग के अत्यन्त प्रसिद्ध अभिनेताओं का आदर्श था। वह एक अभिनय द्वारा लोगों को लगभग चौथाई घंटे तक हंसी के मारे मारे डालता था, जिसमें वह बिना एक शब्द बोले ही अपना भय प्रकट करता है। योग्यतम वक्ता की सुन्दरतम हृदयग्राही अलंकृति की अपेक्षा वह साधारण और स्वाभाविक ढंग से हृदय को छू लेता है।"

डोमिनीक ने, जो वस्तुतः गिसेप्पे डोमिनिको बियाँकोलेली था, हर्लेक्विन की

हर्लेक्वीन्स के साथ दो नाटचाभिनय। यह उस समय का दृश्य है जब इटालियन प्रहसन "हर्ले क्वीनेड" नाटकों का रूप ग्रहण कर रहे थे। (पुराने मुख पृष्ठ से।)

भूमिका को पहले खेली गयी सीमा से विस्तारित किया। सचमुच यह विश्वास करने का कुछ कारण है कि उसने पात्र को उससे अधिक गंभीर बना दिया, जितना सच्चा 'कामेदिआ देल आर्ते' दल चाहता था। पेरिस में इटालियन कम्पनी फ्रांसिसी वातावरण से प्रभावित हो रही थी। किन्तु डोमीनीक प्रभूत रूप से लोकप्रिय था और

जब वह १६८८ ई० में मरा, प्रेक्षागृह एक महीने के लिए बन्द कर दिया गया। और फिर दल में ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं आया। राजा ने केवल नौ वर्ष बाद इटली के अभिनेताओं को निर्वासन दे दिया और अठारहवीं शती की कम्पनी ने कभी इतनी ऊंचाई नहीं पायी।

इटली के कामेडियनों ने पेरिस की भलीभाँति सेवा की; केवल मनोरंजन करने में ही नहीं, मोलियेर की प्रतिभा को निश्चित रूप से प्रभावित करने में थी।

टामस बेटर्टन की अभिनेता मण्डली का, जिसने ऐसी पूर्णता से कृत्रिम 'रेस्टोरेशन कामेडी' लंदन में प्रदर्शित की, उल्लेख किया जा चुका है, और श्रीमती ब्रेसगर्डिल और नेलग्विन के नामों को इस प्रकार के संक्षिप्त पर्यवेक्षण में उचित स्थान प्रदान किया गया है। अपने समय में बेटर्टन श्रीमती बैरी के साथ अभिनय करता था जो इसलिए ज्यादा अच्छी तरह याद की जानी चाहिए कि उसने उस परम्परा को आगे ले चलने में सहायता की, जिसे अठारहवीं शताब्दी के उत्तरवर्ती अभिनेताओं का मार्ग दर्शन करना था।

यहाँ फिर रूप चित्रों (पोर्ट्रेट्स) की एक चित्ताकर्षक दीर्घा है : काली सिब्बर और ड्रूरीलेन बूथ और विल्कस, के उसके साथी अभिनेता–प्रबन्धक; एने ओल्डफील्ड , किटी क्लाइव और पेग वोफिगेंटन ; जेम्स क्विल और चार्ल्स मैकलिन। इनमें से केवल अन्तिम को ही भविष्य की ओर प्रगति करने वाला कहा जा सकता है : एक ऐसा भविष्य जिसे एक ही व्यक्ति डेविड गैरिक की देह और व्यक्तित्व में घनीभूत किया जा सकता है महान अभिनय के युग में इंगलैण्ड में दूसरे सभी नाम उसके सामने धुँधले पड़ जाते हैं।

सुखान्त नाटकों में तो अभिनय उचित रूप से कृत्रिम थे किन्तु दुःखान्त के अभिनय में तो कृत्रिमता का अतिरेक ही था। बेटर्टन से क्विन तक गरजती वाणी और प्रभावकारी सदर्प गति अत्यन्त स्वाभाविक विशेषताएं मानी जाती थीं। इसके बाद लघु डेविड गैरिक यह सिद्ध करने आ गया कि स्वाभाविक वस्तु शानदार आलंकारिकता की अपेक्षा अधिक सुखद और अधिक आन्दोलित करने वाली होती है। यह एक ऐसा व्यक्ति था, जो शारीरिक दृष्टि से अधिक अनुकूल न होने पर भी केवल अपनी गतिमयता और अभिव्यंजना मात्र से दर्शकों में मैकबेथ , लियर तथा हैमलेट के विषय में एक नयी समझ भर देता था; जो अपनी सहज दीप्ति और उत्फुल्लता से सुखान्त अभिनय में एक प्राण पैदा कर देता था। रंगमंच के बाहर भी गैरिक उसी प्रकार पसन्द किया जाता था। क्योंकि वह मिलनसार , प्रतिभाशाली, सुपठित और हाज़िरजवाब था। रंगमंच पर उसकी सफलता जन्मजात अभिनेता होने के नाते बहुत कम थी, स्वाँग के लिए असंदिग्ध

प्राकृतिक देन के साथ उसने विस्तृत अध्ययन, प्रबुद्ध अभ्यास तथा जीवन को अच्छाई से ग्रहण करके सत्प्रेरणाएं प्राप्त की थीं। रंगमंच से उसका पहला सम्बन्ध नाटककार के रूप में था, अभिनेता के रूप में नहीं, उसका पहला नाटक १७४० ई० में डूरीलेन थियेटर में अभिनीत हुआ था।

१७४१ ई० में उसने गुडमैस फील्ड थियेटर में किसी नियमित अभिनेता की अनुपस्थिति में उसकी जगह, विना अपने का व्यक्त किये, हर्लेक्विन का अभिनय किया। उसने ऐसा कुछ तथा कौतुकवश और कुछ उस पेशे के लिए योग्यता की परीक्षा के रूप में यह अभिनय किया था जिसकी ओर उसका हृदय तो प्रेरित करता था किन्तु उसकी सम्मानित कुटुम्ब परंपरा उसमें बाधा डालती थी। किन्तु केवल सात महीने बाद रिचर्ड थर्ड के रूप में उसने असाधारण सफलता प्राप्त की। उसके शीघ्र बाद उसने अपना शराब का व्यापार छोड़ दिया और अपनी सारी शक्ति अभिनय और नाटक-लेखन की ओर लगा दी। उसकी अपील ऐसी महान् थी कि वह इंगलैण्ड के रंगमंचीय संसार में उछल कर प्रथम स्थान पर बैठ गया और ६ वर्ष के भीतर ही भवन और व्यवसाय सहित ड्रूरीलेन थियेटर के दो तिहाई हिस्से को खरीदने में समर्थ हो गया और ४० वर्ष तक लन्दन के प्रमुख रंगमंच पर उसने शासन किया।

अभिनेता के रूप में गैरिक अपने साथ वास्तविक क्रान्ति ले आया। रिचर्ड कम्बरलैण्ड ने लिखा—"पुरानी चीजें त्याग दी गयीं और वह अपने साथ एक ऐसी उज्ज्वल एवं प्रकाशपूर्ण नयी व्यवस्था लाया जिसने दीर्घकाल से अलंकृत वक्तृत्व शैली में अन्ध विश्वास रखने वाले एक रुचिहीन युग का अन्त कर दिया।" संक्षेप में प्रकृति के प्रबुद्ध समागम द्वारा गैरिक ने प्राचीन अभिनय संप्रदाय की दर्पमुखरता, कठोरता और वृथा बकवास को दूर रखा। उसने कला को 'चरित्र अभिनय' के रूप में ज्ञात प्रणाली की ओर मोड़ दिया। जैसे सच्चे सुखान्त नाटक की परीक्षा स्थिति मात्र से उदय होने की अपेक्षा चरित्र के द्वंद्व से उदित होने पर अधिक अच्छी तरह की जा सकती है, वैसे ही वास्तविक अभिनय चरित्र की गहराई से निर्णीत किया जा सकता है, केवल विशिष्ट वेश बदलने के रीते आवरण मात्र से नहीं। गैरिक ने अभिनय को जीवन का स्पर्श प्रदान किया। क्विन ने कहा—"अगर यह नौजवान सही है, तो हम सब गलत हैं।" वह जितना समझता था उससे अधिक सच्चाई से उसने यह बात कही।

प्रबन्धक और निर्देशक की हैसियत से गैरिक ने बहुत-सी दिशाओं में नये स्तर और मान की स्थापना की। उसने अशिष्टता और भद्देपन को कम किया (इस सम्बन्ध में जेरेमी कोलिए के समय से ही प्रगति हो रही थी, किन्तु फिर भी सुधार के लिए काफी गुँजाइश थी) उसने वेश-रचना और दृश्य-विधान को सहजज्ञान की
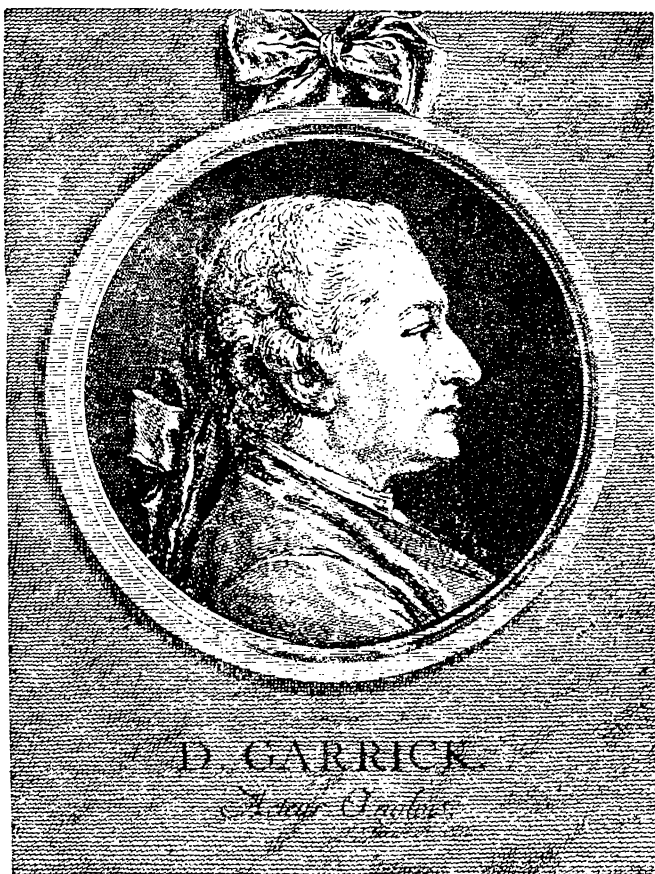
डेविड गेरिक

जसेरण्ड कृत 'शेक्सपियर इन फ्रांस अन्डर दी एन्शियेनस रिजीम, में दिये गये सी० एन० कोचिन के चित्र से ।)

प्रेरणा के अनुकूल बनाया। यद्यपि यह प्रगति भी प्रदर्शन और कृत्रिमता के जंगल के रास्ते से आधा ही आगे बढ़ सकी थी और उसने अपने समय में इंगलैण्ड में रंगमंच को मान्य कलाओं के बीच एक निश्चित स्थान दिला दिया। शायद ही कभी अभिनेताओं ने कलाकारों के बीच और सम्मानित समाज में इतनी समानता और सफल प्राप्त किया हो (यद्यपि पहले भी वे बहुधा उन राज दरबारों द्वारा मान्य किये जा चुके थे जो बहुत ज्यादा गुणी नहीं थे।) नाटकों के निर्वाचन में गैरिक एलिजाबेथनों की ओर लौटा; उसने अपनी महत्तम सफलता शेक्सपियर की भूमिकाओं में प्राप्त की और उसने शेक्सपियर के चौबीस नाटकों को प्रस्तुत किया। जिस रूप में उसने इन नाटकों को ग्रहण किया उसके बारे में जितना ही कम कहा जाय, उतना ही बेहतर होगा। हम मान लें कि रेस्टोरेशन कामेडी और वीर दुःखान्त नाटकों के प्रचलन के बाद इतनी पूर्णता से महान् एलिजाबेथयुगीन को नाटकों पुनरुज्जीवित करने की दिशा में यह एक अधिक भद्र और गौरवपूर्ण पग था।

अपनी अभिनय कम्पनी का निर्माण करने में गैरिक ने अभिनेता के रूप में अपने चमकने की इच्छा के महत्व को कम कर दृष्टि की स्वाभाविक न्यायपूर्णता और विशालता रहने दी; उसने अभिनेता-मण्डली के लिए काफी बलिदान किया; उसने कठोर अनुशासन रखा, और जिस आधुनिक आदर्श ने बीसवीं शताब्दी की अभिनय कला की सर्वोत्तम उपलब्धियों को प्रेरणा दी उसे दूसरे किसी के पहिले उसी ने देखा था। उसने एक अभिनय यंत्र का सृजन किया और अपने यंत्र का एक उपयुक्त और खुला रास्ता देने के लिए उसने अपने मंच पर से दर्शकों का दूर रखा।

'महान अभिनेताओं का युग' शब्द में जो एक पक्षीयता है, वह बहुत कुछ गैरिक के इस प्रकार अपनी रंगशाला को संचालित करने से मिथ्या हो जाती है। वह शेक्सपियर के उत्तम अभिनय अंशों के 'लिखने' के दोष से भी मुक्त नहीं किया जा सकता, किन्तु उसके हाथों महान् नाटककार को उसकी अपेक्षा बहुत कम क्षति पहुँची जितनी उससे कम प्रतिभा सम्पन्न अभिनेता रूपान्तरकारों द्वारा बाद के युगों में पहुँची है, और हम हर्ष के साथ, गैरिक को अठारहवीं शताब्दी के महान 'अभिनेता' के रूप में निर्दिष्ट कर सकते हैं, जिसने उस आदर्श की ओर रंगमंच की प्रगति के लिए बहुत कुछ किया जो हमारी पीढ़ी में व्यापक स्वीकृति पा रहा है, एक श्रेष्ठ अभिनेता और उसके लघु सहायकों की उपेक्षा 'अभिनेता-मण्डल' का आदर्श।

लेकिन अध्याय को अभिनेता के रूप में उसकी निजी उपलब्धि पर टिप्पणी किए बिना समाप्त करना अन्याय होगा, और चूँकि हमने उसके दुःखान्त अभिनय के अंश बता दिये हैं उसके हास्यपूर्ण चरित्र-चित्रणों के विषय में लिखे गये एक जर्मन

यात्री के विवरण[1] को भी चुनना चाहूँगा।

"पहले वह सीधे केशाधान (विग) पहनता है, और आप उसका पूरा गोल चेहरा देखते हैं। बाद में जब वह खूब पीये हुए घर लौटता है उसका चेहरा करीब-करीब आधा बालों से घिर जाने के कारण पूर्णिमा के कुछ दिन पूर्व के चन्द्र सा प्रतीत होता है। खुला हुआ भाग रक्तिम और पसीने से चमकता हुआ है, फिर भी अत्यन्त विनीत, जिससे यह दूसरे अर्द्ध भाग की हानि पूरी कर देता है। वेस्टकोट ऊपर से नीचे तक खुला है; मोजों में सलवटें हैं, गेटिस ढीले हैं, और विशेषता यह है कि दोनों एक ही जोड़े के नहीं हैं। यह आश्चर्य की बात है कि सरजान ने औरतों के जूते नहीं पहने हैं।

"इस शोकपूर्ण स्थिति में वह अपनी पत्नी के कमरे में प्रवेश करता है और उसके इस आकुल प्रश्न के उत्तर में कि उसे क्या हुआ है (और उसके पास अपने प्रश्न के लिए काफी कारण हैं।) वह उत्तर देता है--"श्रीमती जी, (रजतमत्स्य की भाँति) बिलकुल ठीक।" फिर भी वह दरवाजे की चौखट से आगे नहीं बढ़ता और उस पर इतना अधिक झुक जाता है जैसे वह अपनी पीठ रगड़ना चाहता है।

"कभी नृशंस बन जाता है, कभी मद्यपों जैसा बुद्धिमान; फिर बड़ा दयालु बन जाता है। यह सब दर्शकों की तीव्र हर्षध्वनि के बीच हो रहा है। उस दृश्य से, जिसमें वह सोने जाता है, मुझे चकित कर देता है। जिस ढंग से वह आँखें बन्द किए हुए, चकराते हुए सिर और पीले चेहरे से अपनी पत्नी से झगड़ा करता है, अपनी 'र' और अपनी 'ल' ध्वनियों को मिश्रित करता है, अब सख्त सुस्त कहता है,अब ऐसे नैतिक वाक्यों में फूट पड़ता है जिनसे उसकी वर्तमान स्थिति का घोर विरोध है। फिर उसके ओठ हिलाने का वह ढंग, जिससे आप पता नहीं पा सकते कि वह चबा रहा है, स्वाद ले रहा है या बोल रहा है। वह यह सब कुछ उस आशा से कहीं अधिक था जो मैंने उस

---

१. जी० सी० लिचेनबर्ग-रचित। अनुवाद मन्त्जिअस रचित इतिहास के पाँचवें भाग में मिलता है। इस भाग में संक्षिप्त रूप से परन्तु मनोरंजक ढंग पर अंग्रेजी रंगमंच का वर्णन मिलता है। पाठक को डा० डोरोन की 'देयर मेजेस्टीज सर्वेन्ट्स : एनल्स आव दि इंगलिश स्टेज फ्राम टामस वेटरर्टन टु एडमन्ड कीन' (लन्दन, ३ भाग, १८८८) पुस्तक में इस युग के बारे में प्रभूत सामग्री मिलेगी। सारे युगों का स्पर्श करने वाला रूपरेखात्मक छोटा इतिहास एच० बार्टन बेकर का 'हिस्टरी आव लन्दन स्टेज एण्ड इट्स फेमस प्लेयर्स' (लन्दन ऐण्ड न्यूयार्क, १९०४) है। पर्सी फिट्जेरल्ड कृत 'लाइफ़ आव डेविड गेरिक (लन्दन, १८९९) भी देखिए।

व्यक्ति से की थी---यह सब उससे भी ज्यादा था जितना मैंने इसी के और अभिनयों में देखा है। आप उसे इस अभिनयांश में 'प्रिरागेटिव' शब्द का उच्चारण करते हुए सुनेंगे। दो या तीन बार प्रयत्न करने के बाद वह तीसरी शब्द ध्वनि का उच्चारण करने में समर्थ हो सका।"

यह ज्योतिकर अंश एक जर्मन आलोचक की रचना से उद्धृत किया गया है और चमत्कार -युग के बाद उस देश में जो नाटकीय अभिरुचि या क्रियाशीलता आयी उसका प्रथम संकेत है। किन्तु अब अठारहवीं शती आ गयी है और उसके साथ जर्मनी का ज़माना आ गया है।

अध्याय १६

स्तर्म अन्द द्रंग

पुनरुत्थान के बाद असाधारण रूप से अधिक अर्से तक जर्मनी की रंगशालाएं असंस्कृत, विदूषकतापूर्ण और पूर्णतया असाहित्यिक रहीं। यही वह देश है जहां रोमन रंगमंच के पतन के बाद प्रथम अवशिष्ट क्रिश्चियन नाटक रचे गये थे। जहां तक मध्ययुगीन धार्मिक नाटकों की शक्ति-सम्पन्नता का प्रश्न है यह देश किसी से भी पीछे न था। परन्तु पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक यहां की रंगशाला नितान्त असभ्य एवं प्रारंभिक अवस्था में थी। मंच क्या थे, मात्र बाहरी चबूतरे या ज़मीन से ऊपर उठे हुए स्थान थे। या अधिक से अधिक ख़ाली कमरे थे। नाटक क्या थे, बस छिछले मज़ाक थे या कुघड़ विदेशी रूपान्तरित रचनाएं थीं। बस उनमें नटों के खेल-तमाशे और हैंसवुर्स्ट या पिकिल हेरिंग-जैसे पात्र और जोड़ दिये जाते थे। अभिनय बिल्कुल विदूषकों-जैसा और अस्वाभाविक, अतिरेकपूर्ण एवं अस्थिर होता था। तब जब स्पेन, इंगलैंड और फ्रान्स में धर्म-निरपेक्ष नाटकों का पुनरोदय हो रहा था तब युरोप की अन्य रंगशालाएं भी इसी प्रकार के युग का अनुभव प्राप्त कर चुकी थीं। परन्तु अन्यत्र कहीं भी यह युग इतना लम्बा नहीं हुआ, न सच्ची नाट्य-प्रतिभा की ज्योति से इतना विहीन ही जितना कि यह था। यह अक्षरशः सत्य है कि सदियों तक जर्मनी में केवल सस्ती, ओछी रंगशाला—केवल विदूषकों की रंगशाला थी।

यह अपरिष्कृत लोकप्रिय रंगमंच सदैव से, मध्ययुग से ही निरंतर सशक्त, विविध रूपों में सक्रिय, तथा जर्मनी के विभिन्न अंचलों में फैला हुआ था। परन्तु इसकी उपलब्धि इतनी कम थी कि बाद के युगों के लिए यह एक भी महत्वपूर्ण नाटक न छोड़ सका। १७५० ई० तक कोई भी ऐसी स्मरणीय रचना न हो सकी जिसका महत्व उस क्षेत्र के बाहर भी होता। फिर सहसा सारी विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित धाराएं सहसा एक

धारा में मिल गयीं और जर्मन राष्ट्रीय नाट्य-प्रवाह सशक्त होकर बाधाओं को हटाता आगे बढ़ने लगा। इस धारा ने फ्रांसीसी आधिपत्य को मिटा दिया, और कुछ दशकों में ही जर्मन नाटकों और जर्मन प्रभाव का विस्तार पाश्चात्य संसार की सभी रंगशालाओं में हो गया। परन्तु इन प्रारंभिक दिनों में रंगमंच-संबंधी कोई साहित्य नहीं मिलता—रंगशाला के सिद्धान्तों से संबंधित तो कोई भी साहित्य बिल्कुल नहीं प्राप्त होता। संक्षेप में, नाट्याभिनय-संबंधी सक्रियता किसी न किसी रूप में चलती रही। रंगमंच में अपढ़, अशिक्षित एवं अकुशल अभिनेता आते रहे और असंस्कृत दर्शक भी एकत्र होते रहे। इनकी दुनिया विद्वानों, साहित्यकारों, सम्भ्रान्त लोगों तथा सामान्यता प्रगतिशील व्यक्तियों की दुनिया से बिल्कुल अलग रही।

इस स्थिति के लिए पर्याप्त कारण अठारहवीं शताब्दी के पहले जर्मन जातियों के विस्तृत इतिहास में मिलते हैं। उस युग में उनमें किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय एकता न थी; राष्ट्रीय चेतना भी न थी। सभ्यता एवं कलात्मक जीवन का काई केन्द्र नहीं था। उस समय का 'समाज' विकेन्द्रित, यहां तक कि, अराजकतापूर्ण था। उस समय सारे देश में युद्धों का भयानक झंझावात चल रहा था। इसमें मुकुलित होते, बढ़ते-विकसते साहित्यिक प्रयास विनष्ट होते जा रहे थे। जमी हुई रंगशालाओं का भी जीवित रहना असंभव हो गया था। यदि स्वतंत्र राज दरबार कभी मनोरंजन के लिए रुचि दिखाते भी थे तो उनका ध्यान रंगमंच की ओर शायद ही कभी जाता। वे फ्रांसीसी सम्राटों की नक़ल भी करना चाहते थे। अधिक-से-अधिक विदेशी अभिनेताओं के किसी दलको कभी-कभी बुलाकर उसका एकाध अभिनय देख लिया करते थे। इटली के निकटवर्ती राजधानी वाले नगरों—म्यूनिख़ अथवा वियना में कोई इटालियन आपेरा-रंगशाला कुछ समय तक चलती , फिर बन्द हो जाती। परन्तु यह भी यदाकदा ही होता।

एक तरह से, जैसा कि हम देखेंगे, अन्य देशों से अधिक बड़ी संख्या में जर्मनी में विदेशी नाटक कम्पनियां आयीं, परन्तु किसी भी देश के नाटक अथवा कलाकारों ने कोई ऐसा सूत्र नहीं छोड़ा जिसका सहारा लेकर किसी महत्वपूर्ण तत्कालीन रंगमंचीय प्रक्रिया का अनुशीलन किया जा सके।

मध्ययुगीन जर्मनी के अन्तिम दिनों में, धार्मिक नाटक अपना स्वाभाविक मार्ग छोड़कर 'रिफ़ार्मेशन' की सेवा करने लगा। जिस कैथोलिक चर्च ने इसे जन्म दिया था अब उसी पर यह अक्सर आक्रमण करता था। इसी तरह प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी के निकलस मैनुएलकृत नाटक 'दी पोप ऐण्ड हिज़ प्रीस्टहुड' ('पोप एवं उनका पौरोहित्य') यह प्रदर्शित किया गया है कि पोप अपने दरबारियों और सैनिकों के साथ अपने सांसारिक वैभव और ऐश्वर्य का आनन्द लेते हुए विचर रहा है और भोले-भाले

पाल तथा पीटर उसके पीछे यह अनुमान करते-से चले चल रहे हैं कि आखिर इस शाही ठाट-बाट का व्यक्ति है कौन ?

किन्तु सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि चमत्कारिक अभिनय आरंभ में नादान जनता की सुविधा के लिए अपने जादू और हास-परिहास के तत्व समेटे रहते थे, वे अब अन्ततोगत्वा, लोकप्रिय हास्य तथा सुखान्त नाटकों में परिणत हो गये थे। जर्मनी के 'श्रोवेटाइड अथवा कार्निवल नाटक' मध्ययुगीन फ्रांस के अंतिम चरण के संक्रमणमूलक फ्रांसीसी हास्य-नाटकों के बिलकुल समानान्तर थे, अनुरूप थे। अन्तर

मीस्टरसिंगर्स के लिए चर्च में आयोजित एक रंगमंच । अलबर्ट कोस्टर कृत एक पुनरालेखन की ड्राइंग ।)

केवल यह था कि फ्रांस के हास्य-नाटककार परपुरुष-निरत स्त्रियों के पतियोंसम्बन्धी कहानियों से ज़्यादातर मसाला लेते थे जब कि जर्मन ग्रामीण समाज के हास्यास्पद अंगों से अपने नाटकों के लिए सामग्री प्राप्त करते थे। आधुनिक अभिरुचि की दृष्टि से यदि हम इन हास्य-नाटकों का अनुशीलन करें तो हमें पता चलेगा कि कुछ अपवादों को छोड़कर जिसमें अकृत्रिम सरलता और अतिशय चातुर्य से उत्पन्न हास्य अनगढ़ ग्रामीण हास्य पर हावी हो जाता है, ये दोनों प्रकार के नाटक निम्नस्तरीय और गर्हित हैं। सामान्यतया श्रोवेटाइड नाटकों के अन्तिम भाग में अपने पूर्ववर्ती चमत्कार-नाटकों से उत्तराधिकार में प्राप्त, परंपरानुसार कुछ कविताएं होती थीं जिनमें नाटककार अपनी रचना के औचित्य के संबंध में कुछ निवेदन करता था। और यह भी आशा प्रकट करता था कि उसने नैतिक मूल्यों, सिद्धांतों को आवश्यकता से अधिक आघात नहीं पहुंचाया है जो स्वयं उसे वास्तव में बहुत प्रिय हैं। (युरोप के अन्य देशों की भांति जर्मनी में भी जेसुइटों ने

चमत्कारी नाटकों और छाया-नाटकों—जिनके सम्बन्ध में मैं अभी और प्रकाश डालूँगा—के तत्वों को संग्रहीत करके लैटिन भाषा में कुछ उपासनामूलक नाटक सुसंस्कृत दर्शकों को दृष्टि में रखकर लिखे।)

एक जूता बनाने वाले कवि हैन्स शाश ने, जो कि नूरेम्बर्ग का रहने वाला था, इन श्रावेटाइड नाटकों से और मीस्टरगायकों के अभिनयों से—यह ग़ैरपेशेवर कलाकारों

१५७४ ई० में बाजार-मंच पर विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत एक नाटक के दृश्य। ('थिएटर आर्ट्स मन्थली' के सौजन्य से प्राप्त एफ० आर० लेचमान कृत 'दी स्टूडेन्टेन डेस क्रिस्टोफोरस स्टीमीलियस' से।)

का एक दल था जो तत्कालीन जर्मन समाज के एक बहुत बड़े भाग का मनोरंजन अपनी कलाओं किया करता था—अपनी अद्वितीय कला के लिए सामग्री एकत्र की। सोलहवीं शताब्दी की जर्मनी की रंगशाला से संबंधित यही एक महत्वपूर्ण स्मरणीय नाम है। उसने पुराने धार्मिक नाटकों के आधार पर ऐसे संवाद लिखे जिसके कारण सरल अभिनय संभव हो सकता और जो सरल साधारण दर्शकों को प्रिय भी लग सकता था। उसने संक्रातिकालीन हास्य नाटकों के खुरदरेपन से अपने को अलग रखा। उसने सनसनी अथवा आतंक, रक्तपात, गर्जन-तर्जन, मार-धाड़ को भी बचाया—अगली शताब्दी में जो

नाटक रचे गये उनमें भी ये बातें बचायी गयीं थीं—और इस प्रकार का सुखान्त नाटक रचा जो उस युग का एकमात्र लोक-नाट्य बन गया। उसने चरित्र-चित्रण अथवा साहित्यिक नक्काशी के लिए कुछ भी प्रयास नहीं किया। उसके बाद के नाटककारों ने उसकी परम्परा को स्वीकार भी नहीं किया। उसने सीधे-सादे सरल पद्य-नाटक लिखे। उनकी कला भी सरल थी। जाने-पहचाने लोगों के सामान्य जीवन से ही उसने सरल हास्य ढूँढ़ निकाले। न उनमें ईर्ष्या थी, न अधिक अतिशयोक्तियां थीं। वह सजीव हास्यकार से कुछ अधिक है, परन्तु वह अपने समय के रंगमंच का युग-निर्माता नहीं है। उसने और उसके सहयोगी ग़ैरपेशेवर अभिनेताओं ने सरायों के आंगनों में तथा ईसाई स्कूलों और गिरजाघरों में अपने हास्य-नाटक अभिनीत किये। निश्चित रूप से वे थोड़ा अनगढ़, अपरिष्कृत थे। परन्तु नाटक, रंगमंच और अभिनय कला सब की दृष्टि से विचार करने पर यह पता चलेगा कि ये लोग उन स्थानीय पेशेवर कम्पनियों से अधिक महत्वपूर्ण थे जिन्हें उनके बाद के डेढ़ सौ वर्षों में नाटक परम्परा का वहन करना पड़ा।

ईसाई धर्म के दवाव के कारण रोमन रंगशाला के समाप्त हो जाने के उपरान्त अक्सर हमने जो एक विशेष बात देखी है, वह है विश्वविद्यालयों और स्कूलों में गठित विद्यार्थियों की रंगशाला, जो अक्सर पेशेवर रंगशालाओं को भी प्रभावित करती थी। कभी-कभी ये इटालियन मानवतावाद और फ्रान्सीसी शास्त्रीयतावाद को भी आत्मसात् कर लेती थीं। पुनरुत्थान तथा सुधारकालीन जर्मनी में इस प्रक्रिया के चिन्ह यदा-कदा ही मिलते हैं। विश्वविद्यालयों में अब भी प्राचीन महान् नाटककारों, विशेषतया प्लाटस और टेरेंस में रुचि बनी हुई थी। इस प्रकार के नाटकों में विद्यार्थी अभिनय करते थे, कभी लैटिन भाषा का अभ्यास करने की दृष्टि से और कभी ऋतु-महोत्सव मनाने की दृष्टि से। विद्यार्थियों के लिए नये नाटक लिखे जाते थे। आरंभ में वे प्राचीन नाटकों के आधार पर लिखे जाते थे। बाद में उनमें ज़्यादा मौलिकता आ गयी और अन्त में इन नाटकों में विद्यार्थियों के जीवन तथा आस-पास रहने वाले नगरवासियों के जीवन से संबंधित घटनाओं की प्रमुखता रहने लगी। शायद विद्यार्थियों के इन अभिनयों में समकालीन पेशेवर नाटकों के मुक़ाबले अधिक सफ़ाई रहती थी। निश्चय ही इनमें अधिक सतर्कता बरती जाती थी, अक्सर उनकी सेटिंग बहुत अच्छी और वस्त्राभूषण अधिक आकर्षक होते थे। अभिनेता-मंडलियां जिस प्रकार का रंगमंच बनातीं और इस्तेमाल करती थीं उनकी तुलना में विश्वविद्यालयों के भीतरी सभाभवनों अथवा एकान्त खुले आँगनों में बहुत अच्छी सेटिंग तैयार होती थी। साल्ज़बर्ग में इटालियन प्रभाव बहुत पहले से और लगातार आता रहा था। (समस्त युरोप में यह नगर मध्य-

युगीन तथा प्राचीन सज्जा के समन्वय-स्थल में रूप में अतिशय महत्वपूर्ण है।) इस स्थान पर अभिनय सुसज्जित स्थल पर होते थे। हैंसवुर्स्ट के सम्पूर्ण राजत्व-काल में यह स्वतंत्र धारा जर्मनी के लोकप्रिय रंगमंच पर प्रवाहित होती रही। यदा-

कदा यह जानने को मिलता है कि विश्वविद्यालयों का अनुभव प्राप्त करके अमुक अभिनेता व्यवस्थापक घृणित पेशेवर रंगमंच पर आया। जोहांस केल्टन, जिसने एलेक्ट्रोरल सैक्सन हास्य अभिनेताओं के दल की व्यवस्था की, सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में ऐसा ही एक व्यक्ति था। परन्तु सामान्यतया उद्देश्य, रुचि तथा सफलता की दृष्टि से विश्व-विद्यालय के रंगमंच और पेशेवर रंगमंच में जमीन-आसमान का अन्तर था।

लोकप्रिय स्थानीय रंगशाला को जिस कार्य ने सजीव बनाया, और उसकी भारी काया में नयी सक्रियता उत्पन्न की, वह था बाहर से आनेवाली विदेशी अभिनेता-

मण्डलियों द्वारा किये जाने वाले अभिनय का उदाहरण। यह नहीं कि ये 'आगन्तुक कलाकार' अपने साथ कोई पवित्र अथवा भिन्न वस्तु लाये हों और उसको बराबर निभाते रहे हों। देर-सबेर इन सब ने हैसबुर्स्ट को अपने पात्रों की सूची में जोड़ा। यहां तक कि दुःखान्त नाटकों में भी उन्होंने ऐसा ही किया। परन्तु यह सही है कि ये अपने साथ नये नाटक लाते थे और निश्चय ही शुरू में अपने साथ अभिनय और प्रस्तुतीकरण की नयी शैलियां भी लाये। इटालियन कंपनियों के बहुत दिनों बाद 'दि इंग्लिश कामेडीज़' का आना प्रारंभ हुआ। इनका आगमन महत्वपूर्ण था। एक उल्लेख मिलता है कि १५६८ ई० में 'कामेदिया देल आर्ते' सुखान्त नाट्यकला नामक कंपनी लिंज और वियना में आयी थी। वह बाद में भी ६ वर्षों तक आती रही। ववेरिया के दरबार ने इसके पहले भी इसके उदाहरण देखे थे। मगर अंग्रेज़ तो सोलहवीं शताब्दी के अन्त तथा सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में यहां आये। इंग्लैंड से जो दल आये थे वे अपने साथ अनेक अंग्रेजी नाटक लाये थे। जर्मनी आते समय, रास्ते में ही लगता है, उन्होंने कुछ ऐसे नये संशोधन-परिवर्तन किये जो इंगलैंड में नहीं किये गये थे। मगर हमें बतलाया गया है कि प्रस्तुतीकरण में भयानक हिंसापूर्ण घटनाओं, उत्तेजक षड्यंत्रों, आतंकवादी और हिंसात्मूलक स्थलों का जैसा समावेश था, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। साथ ही हालैंड में प्रचलित विद्रूपमूलक अभिनय का भी उसमें समावेश था। इससे भी ये विदूषक अभिनेता प्रभावित हुए थे। कुछ उल्लेखों से यह अनुमान होता है कि इन अभिनेताओं में कुछ तो अवश्य डच विश्वविद्यालय के छात्र रहे होंगे। जो भी हो, अंग्रेजी नाटकों का जर्मनी में प्रवेश हुआ, और यद्यपि जर्मन नाट्य-रचना के प्रयासों पर उनका प्रभाव अत्यन्त अल्प था, परन्तु यह सत्य है कि अठारहवीं शताब्दी के जर्मनों के लिए ऐसा मार्ग प्रशस्त कर दिया गया कि वे रंगशाला पर फ्रांसीसी अधिपत्य को चुनौती दे सकें।

जर्मनी में बाहर से आने वालों का यह क्रम अर्से तक चलता रहा और फ्रांसीसी कंपनियों के साथ इटालियन, अंग्रेज़ और डच कंपनियां भी बराबर आती रहीं। इन देशों से जो नाट्यांश अथवा रूपान्तरित नाटक जर्मनी में आते थे, उनमें नाटककार ऐसे तत्व जोड़ देते थे जो कमोबेश उनके निजी हो गये थे। इस प्रकार प्रायः ऐसे स्थानीय नाटक भी तैयार हो जाते थे जिनमें 'हेमलेट' अथवा 'रोमियो जूलियट' या 'तारतुफ़े' के कथानक आ जाते थे। फ्रांसीसी क्लासिक युग समाप्त होने के थोड़े ही समय बाद, यहां कार्नेली, रेसीन और मोलियर के अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटक तथा इटली के सुखान्त नाटकों के आधार पर नाटक तैयार हो गये। लगता है कि इस समय कुछ नाटक मंडलियां बहुत अच्छी तरह से संगठित थीं—उनको इस या उस छोटे दरबार में नियुक्ति प्राप्त करने का सम्मान भी मिला है—परन्तु इनमें से अधिक लोगों का जीवन

सामान्य स्तर का था। ये मस्त मौला थे। इनमें आत्मसंयम की अतिशय कमी थी। इस मामले में वे इतने ही सस्ते थे जितने 'कामेदिया दल आर्ते' कंपनी के अभिनेता। इनमें से कुछ लोग देर-सबेर अपने देश को वापस गये। बाकी लोग पीछे रह गये और जर्मन नागरिक बन गये। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कोई नहीं बता सकता कि सत्रहवीं शताब्दी का नाट्य-आन्दोलन किस अंश में स्थानीय है और किस अंश में बाहर से उधार लिया हुआ है।

इन नाटकों की सामग्री, कथानक और पात्रों का जहां तक सम्बन्ध है, एक बात तो निश्चत है। वह यह कि निम्न रुचि वाले---साधारण दर्शकों के कारण मर्यादा और सच्चाई का स्तर काफ़ी नीचे गिरा दिया गया था। जितने नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये उनमें उछल-कूद, नटों के करतब, नाच और विदूषकों के अभिनय के अंश काफ़ी मात्रा में जोड़ दिये गये। परंपरागत विदूषक न केवल सुखान्त नाटकों में बल्कि दुःखान्त नाटकों में भी भूमिका करते थे। जब नाटक इटालियन सुखान्त नाटकों के आधार पर रचित होता तो उसमें वे जोड़े गये अंश अच्छी तरह खप जाते। परन्तु यदि उसका आधार चमत्कारों से उद्धृत नूह की कहानी अथवा कोई इफ़ीजिनिया होता तो इन अंशों के जोड़ने से उसकी मर्यादा में कोई वृद्धि न होती बल्कि वह घटती ही थी। संक्षेप में, हर प्रकार की सामग्री का प्रयोग करके, चाहे वह इटालियन प्रहसन अथवा आपेरा हो, शेक्सपियर की रोमांटिक रचनाएं हों अथवा फ्रांस का क्लासिक नाटक हो, प्रायः एक सस्ती और भद्दी हास्यास्पद रचना तैयार कर दी जाती।

इन शताब्दियों में जो भावना थी और जो कुछ व्यवहार में होता था उसका प्रतीक हैंसवुर्स्ट 'दी जैक पुडिंग' है---उस जमाने का अश्लील 'हर्लेक्वीन' है। भले वह केवल इटालियन हर्लेक्विन हो परन्तु उसे भी जर्मन भोंडेपन ने और निम्नस्तर पर पहुँचा दिया था। फिर इस नाम के साथ, इटली के भांति, किसी महान् प्रतिभासंपन्न अभिनेता का नाम नहीं जुड़ा है। सामान्यतः केवल वही उसके प्रशंसक हैं जो रंगशाला को उच्च स्तर का बनाने के नाम पर उसे रंगमंचीय धोखा-धड़ी, भद्दापन, नंगापन का प्रतिरूप बना देना चाहते हैं। अधिक से अधिक वह मनोरंजक विदूषक है; वह एक ऐसा विशिष्ट प्रकार का मूर्ख है जो हर मामले में अपनी नाक घुसेड़ता है। पर यहां वह अन्यत्र से अधिक मोटा है। उसमें तथा उत्तम प्रकार के 'कामोदिया देल आर्ते' के नाटकों के अधिक जिन्दादिल विदूषकों में (कुछ अध्यायों के पहले हमने इनकी प्रशंसा, इनकी अश्लीलता के बावजूद की है) एक अन्तर है। यह वही अन्तर है जो कि इटालियन भूमिकाओं के पीछे की समझदारी एवं सुबुद्धि तथा जर्मन पेशेवर कलाकारों और असंस्कृत दर्शकों के भद्देपन में है। इटालियन प्रहसनों अथवा सुखान्त नाटकों में

भूमिका की कमी को पूरा करने का काम अभिनेताओं को ही दिया जाता था। ये अभिनेता प्रत्युत्पन्नमति होते थे, तुरन्त सवाल-जवाब कर सकते थे, संसार के विभिन्न देशों से आने के कारण इनकी पृष्ठभूमि भी विस्तृत होती थी। मगर जर्मन प्रहसनों में कथोपकथन आंशिक रूप से बिल्कुल तुरन्त गढ़ा हुआ होता था। कारण यह है कि उनके यहां रिहर्सल बहुत कम होते थे। (इसे वे बहुत कठिन काम मानते थे।) लिखित पाण्डुलिपि अधिकतर कंपनी के ही किसी व्यक्ति की लिखी होती थी, जिसका आधार कोई विदेशी रचना होती थी। किन्तु कंपनी में लगभग समाज से बहिष्कृत, अर्धशिक्षित अभिनेता, नट और बाजीगर ही होते थे। बहुत से ऐसे दल होते थे जिनके सारे सदस्य एक ही परिवार के होते थे। इसका भी एक कारण था—वह यह कि यदि एक बार कोई व्यक्ति किसी ऐसी टुकड़ी का सदस्य हो जाता था तो उसे अथवा उसके कुटुम्ब के किसी सदस्य को कोई सम्मानपूर्ण काम नहीं मिल पाता था।

'हैंसवुर्स्ट' नाना रूपों में मंच पर उपस्थित हो गया था। उसकी पीढ़ी या परंपरा को डच प्रहसन से सर्वथा अलग नहीं किया जा सकता। यही नहीं कि अक्सर वह हर्लेक्विन (या कहीं यह पुलचिनेलो तो नहीं है ?) से मिला दिया जाता है, बल्कि एक 'महिला हर्लेक्वीन' भी है जिसने उसकी कुछ विशेषताओं को अपना लिया था। विशेष अवसरों पर वह पास के किले के विनोदमूलक तत्वों को ले लिया करता था : बहुत दिनों तक वियना ने उसे टायरोलियन किसान का विद्रूप प्रस्तुत करते देखा। किन्तु यह सब होते हुए भी वह मूल रूप से हैंसवुर्स्ट ही बना रहता था। जिसने प्रायः दो सौ वर्षों तक जर्मन रंगमंच पर अपना आधिपत्य बनाये रखा। वह असाहित्यिक विदूषकता एवं स्पष्ट लोकप्रियता का प्रतीक बना रहा।

जिस समय अधिक गंभीर समझे जाने वाले नाटक प्रस्तुत किये जाते हैं—उदाहरणार्थ हाप्टाकशंस—और वे सामान्य प्रहसनों, नटों की कलाबाजियों आदि का स्थान ले लेते हैं तो भी वे हैंसबुर्स्ट के शीर्षकों का इस्तेमाल किये बगैर नहीं रह सकते : 'दी वर्ल्ड्स ग्रेट मौन्सटर' और 'दी लाइफ एण्ड डेथ आफ़ दी लेट इम्पीरियल जनरल वालेंस्टीन', 'ड्यूक आफ फ्रीडलैण्ड', 'विद हैंसवुर्स्ट' आदि। एक विशिष्ट प्रहसन का प्रचार इस तरह किया गया था—'ए स्कूल मास्टर मर्डर्ड बाई ए पिकल-हेरिंग आर दी बेकन थीव्ज़ नाइसली टेकन इन।'[1]

---

१. इस अध्याय में शीर्षक तथा अन्य अनेक विवरण कार्ल मांतज़ोयस कृत 'ए हिस्ट्री आफ़ थियेट्रिकल आर्ट' (लंदन १९०९) से लिये गये हैं। यह दुख की बात है कि यद्यपि जर्मन रंगमंच के संबंध में जर्मन भाषा में अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं, परन्तु

इस युग में रंगमंच साहित्य से इतना अधिक दूर आ गया था कि वे थोड़े से लोग जो चाहते थे कि जर्मन साहित्यिक नाटक को भी इटालियन अंग्रेजी, फ्रांसीसी या स्पेनिश नाटकों के स्तर पर ले आवें---और निश्चय ही उसमें से किसी एक प्रतिमान को स्वीकार करके ही ऐसी रचना करें---केवल ऐतिहासिक नाम बनकर रहे गये परन्तु उन नामों को ज्योतित करने वाले अच्छे नाटकों का कहीं पता नहीं चलता। ये नाम हैं आंद्रियस ग्रिफ़ियस, जेकब एयर, मार्टिन आपिज़, और क्रिश्चियन वीज़। डेनियल कास्परवान लोहेंस्तीन का ही एक नाम ऐसा था जो कुछ दिनों तक प्रसिद्ध रहा। परन्तु उसको यह यश इसलिए प्राप्त हुआ कि युग की रुचि को संतुष्ट करने के लिए उसने अपना स्तर नीचे गिराया। वहां जितने भी संघर्षमय नाटक लिखे गये सबसे अधिक हिंसात्मक और रक्तरंजित नाटक उसके ही थे। परन्तु उसके ग्रन्थ पुस्तकालय को अधिक सुशोभित कर सके, रंगमंचों को कम।

और इस तरह हम १७५० ई० तक पहुँच जाते हैं। अभिनयों में अब भी अतिवाद देखने को मिलता है। ज़ोर-ज़ोर से तथा अत्यन्त कृत्रिम ढंग से वाक्यों का उच्चारण करना अब भी दुःखान्त, करुणापूर्ण अभिनय की कला के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। इस कला को अब भी महान माना जाता था। दुःखद परिस्थितियों में जकड़ा और आवश्यकता से अधिक नपा-तुला क़दम रखने का प्रचलन अब भी था। प्रहसनों अथवा सुखान्त नाटकों में आवश्यकता से अधिक गतिमयता अब भी आ जाती थी। मंचीय पर्दों से अधिक ज़ोरदार सेटिंग होती थी, यद्यपि उनका चित्रांकन बहुत मामूली होता था; नाटकों की संपूर्ण सूची में से अधिक से अधिक दृश्य चुनकर अंकित कर दिये जाते थे। आपको ऐसी सेटिंग परंपरागत रंगशालाओं में, विशेषतया फ्रांसीसी नगरपालिकाओं की रंगशालाओं में मिलेगी। (जैसे झोपड़ी 'महल' और जंगल की सेटिंग)। रंगशाला चाहे खुले मैदान में हो सकती थी या भद्दे पर्दों से ढके मंचवाली या कभी-कभी किसी किले के नाचघर में भी हो सकती थी। इस ज़माने तक नाटक कम्पनियां सारे जर्मनी और आस्ट्रिया में घूमती फिरती थीं। इनमें से कुछ को दरबारी सम्मान भी प्राप्त था। कभी वे इन देशों के बाहर भी स्कैंडीनेविया, रूस और स्विटजरलैण्ड तक चली जाया करती

अंग्रेजी में उनका अनुवाद उपलब्ध नहीं है। परन्तु थोड़ा-थोड़ा करके सामग्री एकत्र की जा सकती है। मांतज़ीयस के ग्रन्थ भाग ५ और ६ से और डब्लू० शीरेर कृत 'ए हिस्ट्री आव जर्मन लिटरेचर' (आक्सफोर्ड १९०६) अथवा कालविन थामस की संक्षिप्त पुस्तक 'ए हिस्ट्री आव जर्मन लिट्रेचर' (लंदन १९२८) से सामग्री मिल सकती है।

एक ऐसा केन्द्र बना लिया जिस ओर समस्त जर्मनी की बौद्धिक विकास-सम्बन्धी सूचनाएं प्रवाहित होती रहें। केरोलिना न्यूबर ने जर्मनी में नवीन रंगमंच स्थापित करने के सम्बन्ध में जो स्वप्न देखा था, उसमें उसने दो बातें पहिले ही से मान ली थीं। पहिली बात यह है कि हैंसवुर्स्ट बिलकुल निकाल फेंका जाय, उसे अँधेरे गर्त में गिरा दिया जाय और अभिनय में से उन अतिवादों को भी हटा दिया जाय जो 'हाप्टाकशन्स' में भी मिलते हैं। दूसरी बात वह यह चाहती थी कि रंगमंच से सम्बन्धित लोगों और साहित्यिक लोगों या कम से कम 'सुसंस्कृत लोगों' में एकता स्थापित हो जाय। न्यूबर-दम्पति अपनी कंपनी लीपज़िक ले आये। अब यह कम्पनी उनकी निजी हो गयी थी। लीपज़िग इस समय, १७२७ ई० के चिरस्मरणीय साल में, नवजाग्रत जर्मनी का बौद्धिक केन्द्र बन गया था। ज्यों ही प्रथम अंक समाप्त हुआ, हमें पता चल गया कि हमारी सुन्दरी केरोलिना और तानाशाह गोटशेड में समझौता हो गया है। कैरोलिना प्रतिज्ञा करती है कि उसके साथ मिलकर वह रंगमंच को पतन के गर्त से निकाल कर और ऊँचाइयों पर ले जाकर रहेगी।

अनेक साल बीत गये। हम देखते हैं कि न्यूबर-दम्पति की अपनी 'रायल-पोलिश ऐण्ड एलेक्टोरल सेक्शन कोर्ट कामेडियंस' कम्पनी सारे जर्मनी में घूम-घूम कर अपना कठिन काम, 'हैंसवुर्टवाद और पुराने हाप्टाकशन का मोह छोड़कर अनूदित श्रेष्ठ फ्रान्सीसी दुःखान्त नाटकों अथवा उच्चतम प्रहसनों के प्रति रुचि जागृत कराने का काम कर रही है। एक प्रकार से गोटशेड अपनी सट्टेबाज़ी में सफल भी हुआ। उसने मान्यता प्राप्त प्राचीन फ्रांसीसी नाटकों का अनुवाद किया। उसने और उसके मित्रों ने उसकी नक़ल करके नाटक भी लिखे।

केरोलिना न्यूबर ने उदासीन जनता को सुधारने का काम हाथ में लिया और उसमें डटी रहकर निश्चय बहादुरी दिखायी। इसमें एक दयनीय पक्ष भी था। वह यह कि इसका कोई कारण न था कि क्यों जनता उसके आडम्बरपूर्ण निर्जीव नाटकों को देखे और इनके स्थान पर उन विदूषकतापूर्ण नाटकों को क्यों न देखे जिसमें कम से कम मनोरंजन तो होता ही था। किन्तु उसके प्रयत्नों से एक लाभ अवश्य दिखायी पड़ता है आरम्भिक दिनों में अभिनेताओं के एक नये दल में एक नयी प्रेरणा और भावना जाग्रत हुई है और साहित्यिकों और विद्यार्थियों में भी एक ऐसी भावना जाग्रत हुई है जिसके कारण वे रंगमंच में स्वयं सीधे-सीधे रुचि लेने लगे हैं।

केरोलिना की अपनी विपत्ति का जन्म भी अभिनय के प्रति इस भावना और व्यवहार में परिवर्तन के कारण हुआ। वह बहुत सुन्दर भी थी। उसे अनुभव भी बहुत था, परन्तु अभिनेताओं में वह अग्रणी न थी। जब उसने अपनी कंपनी के अभिनय का

स्तर ऊंचा कर दिया तो धीरे-धीरे उसे पता चला कि उसे यह देखना पड़ेगा कि दुनिया उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ती चली जा रही है और उसकी प्रतिभा पीछे पड़ गयी है। कुछ तो इसका कारण कुछ यह था कि वह धीरे-धीरे गतयौवना हो रही थी और

स्ट्रासबुर्ग, १६५५ ई० में, विंग सेटिंग्ज के साथ एक रंगमंच। उस समय जो सामान्य प्रभाव उत्पन्न किये जाते थे, उनका यह अधिक स्वाभाविक चित्रण है; इसमें विंग के किनारे दबे हुए हैं। (जोसेफ़ ग्रिगोर कृत 'वीनर ज़ेनिश्खे कुन्स्ट' से।)

कुछ यह कि मानव भावना मानवीय सीमाओं के आगे बढ़ जाने की आदी है। फिर भी उसका साहस बहुत दिनों तक बना रहा। हैमबुर्ग के दर्शकों से उसका जो झगड़ा

हुआ उसका कारण यह साहस ही अधिक था, और सामान्य खीझ कम। ऐसी बातें पहिले कभी नहीं सुनी गयी थीं, फलतः कंपनी के अभिनय बंद कर दिये गये। तानाशाह गाटशेड की इच्छा थी कि वह उसकी स्त्री द्वारा अनूदित वाल्तेयर कृत 'अलज़िरे' रंगमंच पर प्रस्तुत करे। अपने दुस्साहस के कारण ही उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। कारण यह था कि यह अनुवाद उस रचना से घटिया था जो पहिले से ही वहां मौजूद थी। फलतः यह तानाशाह उससे नाराज़ हो गया, और उसका दुश्मन बन बैठा। वह और कुछ तो न कर सका मगर उसने केरोलिना को तोड़ अवश्य दिया।

किन्तु यह तो हुआ ही कि खल नायक हैंसवुर्स्ट सरकारी तौर से सदैव के लिये अंधेरे गर्त्त में गिरा दिया गया। कुछ समय के लिए जब न्यूबर दम्पति लीपज़िग गये तो उन्होंने वहां एक रंगमंच बनाया। ऐसा उन्हें इसलिए करना पड़ा कि 'बुचर्स गिल्ड हाल' पर एक घृणित कंपनी ने अधिकार कर लिया था। यहां गाटशेड की नैतिक सहायता प्राप्त कर उन्होंने हैंसवुर्स्ट और उसके सभी हर्लेक्वीन तथा अन्य सहयोगियों के विनाश का उत्सव मनाया। कुछ क्षणों के लिए केरोलिना का सितारा फिर बुलन्द हुआ, क्योंकि सांकेतिक भाव-भंगियों ने सारे जर्मनी में रुचि उत्पन्न कर दी।

परन्तु कुछ ही समय बाद हैंसवुर्स्ट फिर से जी उठा। हम एक वर्ष बाद ही न्यूबर कंपनी को एक नाटक प्रस्तुत करते हुए देखते हैं जिसमें हैंसवुर्स्ट मौजूद है। इससे हमें यह पता चलता है कि हमारी इस प्रधान अभिनेत्री की स्थिति इतनी खराब हो गयी है कि अब पुराने तरीकों तक अपने को गिरा देने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई चारा नहीं है। निश्चय ही संसार ने किसी ज़माने की सुन्दरी, बहादुर और सुदर्शिनी केरोलिना के साथ दुर्व्यवहार किया। हैमबुर्ग ने उसे फिर शरण दी मगर उसकी विद्रोही भावना को निरन्तर निषेध द्वारा दंडित किया। उसकी कंपनी के अनेक मूल्यवान सहयोगी उसे छोड़कर चले गये। रूस की एक यात्रा ने आर्थिक दृष्टि से उसका सर्वनाश कर दिया। लीपज़िग में उसने अपने जानी दुश्मन गोटशेड से फिर समझौता किया। इस समय यही उसका सबसे बड़ा आलोचक था। उसने गोटशेड के एक नाटक को ठीक वैसे ही रंगमंच पर प्रस्तुत किया जैसे वह चाहता था। इसमें उसने एक अपना बनाया व्यंग्य भी जोड़ दिया जिसमें गोटशेड को सेन्सर के रूप में दिखाया। इसके बाद परिवर्तनों पर परिवर्तन होते रहे। कभी इसे, कभी उसे पकड़ पाने की पागलों सरीखी कोशिश चलती रही। क़र्ज़ हुआ, दल के बाद दल विघटित हुए, सरकार की ओर से अपमानित होना पड़ा; जनता ने उदासीनता दिखायी और अन्त में भयंकर ग़रीबी का अभिशाप गले पड़ा।

ड्रेस्डन के निकट एक छोटे गांव वाले घर में उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु का दृश्य हमें सबसे अधिक प्रभावित करता है, क्योंकि उसने अत्यन्त गर्वीली आत्मा का

प्रमाण दिया। अन्त तक वह डिगी नहीं। हाँ, और लोग अवश्य उसके प्रति आस्था एवं कोमल भावना प्रदर्शित करते रहे। ये पुराने अभिनेता न थे, वरन् गांव के वे सीधे-सादे लोग थे जो उस अवकाश और ग़रीबी के दिनों में उसके सन्निकट आ गये थे। अन्तिम क्षण में वह थोड़ा-सा मुस्करायी थी। उसे याद आया था कि शायद गोटशेड को भी नीचे उतरना पड़ा, उसकी साहित्य और रंगमंच के नेतृत्व की गद्दी छिन गयी थी। नये जवान कलाकारों, लेखकों और अभिनेताओं ने उसका मज़ाक तक उड़ाना शुरू कर दिया था। हम आशा करते हैं कि शायद उसे इस बात का पता था कि यदि किसी एक व्यक्ति ने इस नयी पीढ़ी को इतना समर्थ बनाया है कि वह नाट्य कला के अखिल विश्वमूलक विकास का अंग बन सके, तो यह वह स्वयं थी। जवान लोग क्रूर होते ही हैं। उन्होंने इस महिला को भी 'पुराने फ़ैशन' की क़रार दे दिया परन्तु अन्तिम सच्चाई की कुछ झाँकियों ने उसे आश्वस्त किया। उसने साहित्य और रंगमंच में एकता पैदा कर दी; उसने अभिनय की कला को एक नया प्रयोजन प्रदान किया।

अंतिम अंक के पहिले एक ऐसा घटनापूर्ण दृश्य उपस्थित हुआ था जिसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना चाहिए था। हमारी दृष्टि में लीपज़िग का वह नौजवान विद्यार्थी आना चाहिए था जिसका नाम गोटहोल्ड एफरायम लेसिंग था। वह उन बुद्धिजीवियों में था जो कि न्यूबर दम्पत्ति के दल में आकर शामिल हो गये थे। सच यह है कि प्रायः दो वर्ष तक यह लड़का उस कंपनी के इर्द-गिर्द मँडराता रहा। इसका कुछ सम्बन्ध कंपनी की एक सुन्दर दासी की भूमिका करने वाली लड़की से था। उसने रंगमंच का सीधा अनुभव प्राप्त किया। बिना इसके वह संसार का द्वितीय महत्वपूर्ण 'रंगशाला सिद्धान्त' का पंडित नहीं बन सकता था, और न वह जर्मनी का प्रथम महान् नाटककार ही बन सकता था। केरोलिना न्यूबर ने उसका एक गैरपेशेवर नाटक अभिनीत भी किया। इसमें उसके साथी विद्यार्थियों का जीवन चित्रित था और यह भी ठीक है कि इसी के बाद से अपने सैद्धान्तिक अनुशीलन को उसने प्रायः बन्द कर दिया और पेशेवर रंगशाला के लिए अपने को प्रशिक्षित करने लगा।

रंगमंच की बहुत ही मामूली और ऊपरी जानकारी रखने वाला विद्यार्थी भी 'हेम्बुर्गीश ड्रामाटर्जी' का नाम अवश्य जानता होगा। यह वस्तुतः नाट्यालोचन-सम्बन्धी लेखों का एक संग्रह ही है; आज-कल पेरिस, बर्लिन या न्यूयार्क की रंगशालाओं में जब महत्वपूर्ण नाटकों का उद्‌घाटन होता है तो बीसों आलोचक उसपर अपनी समीक्षात्मक सम्मति लिखते हैं, यह आलोचनात्मक लेख-संग्रह कुछ वैसा ही है, परन्तु उसमें उससे अधिक कुछ और अवश्य होगा क्योंकि विद्वान् लोग आज भी उसे पढ़ते

हैं और उसका उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त उसका एक महत्व और भी है। जर्मनी में प्रकाशित नाट्याभिनय-सम्बन्धी यह प्रथम आलोचनात्मक लेख-संग्रह है। जब यह प्रकाशित हुआ तो तुरन्त अन्य राजधानियों से भी इस प्रकार के ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। उनमें से कोई तो इसी ड्रामाटर्जी (नाट्य शास्त्र) की चोरी के संस्करण थे। केरोलिना न्यूबर ने जो धारा प्रवाहित की, उससे भी इसे बहुत बल मिला।

लेसिंग का 'ड्रामाटर्जी' उस अवसर पर प्रकाशित हुआ जब कि हैम्बुर्ग में प्रथम जर्मन नेशनल थियेटर १७६७—१७६९ ई० में स्थापित करने की कोशिश की जा रही थी। अब तक जर्मनी में जितनी कंपनियां खुली थीं उनमें निश्चय ही यह सर्वश्रेष्ठ थी। इसमें कौनराड एकहाफ़ तथा फ्रेड्रिख लुडविग श्रीडर नाम के दो अत्यन्त कुशल अभिनेता भी थे जो तब से आज तक जर्मनी के रंगमंच के दो सर्वश्रेष्ठ अभिनेता माने जाते हैं। नाटकों का चुनाव भी अत्यन्त उच्चस्तर का था। बहरहाल, व्यवस्था में अनेक खामियों थीं और अभिनेताओं के बीच षडयंत्र भी चलते रहते थे। फलतः राष्ट्रीय रंगमंच स्थापित करने का प्रयास निष्फल गया। जो भी हो यह अवसर तो महत्वपूर्ण था ही, क्योंकि यह एक ऐसे देश में स्थायी रंगशाला स्थापित करने का प्रयत्न था जहाँ संस्थागत रंगशालाएँ उन्नीसवीं तथा आरम्भिक बीसवीं शताब्दी में युरोप की सर्वोत्कृष्ट रंग-शालाओं के रूप में प्रतिष्ठित होने वाली थीं। (परन्तु वियना में १७१२ ई० से ही एक स्थानिक रंगशाला थी और प्रसिद्ध बर्गथियेटर का इतिहास भी १७४१ ई० से आरम्भ होता है, यद्यपि १७७६ ई० में आकर उसने राष्ट्रीय रंगशाला का रूप लिया)। और इसके साथ ही वहाँ वह अधिक महत्वपूर्ण स्मारक तो था ही—हैम्बुर्ग थियेटर के अधि-कारी आलोचक लेसिंग की आलोचनाओं का संकलन !

'हैम्बुर्ग ड्रामाटर्जी' का प्रकाशन निस्सन्देह केवल स्थानीय ही नहीं, अन्तर-राष्ट्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। कारण यह है कि इसी में लेसिंग ने फ्रांसीसी 'क्लासीसिज़्म' को चुनौती दी थी। लेसिंग को अरस्तू के बाद प्रथम महान् आलोचक कहा जाता है। शायद ऐसा कहकर हम फ्रांसीसियों को थोड़ा नीचे गिरा देते हैं। तो भी यह जर्मन इतना उदार था कि वह विश्व भर के नाटकों को सम्यक् दृष्टि से देखने की क्षमता रखता था। इंगलैण्ड के बाहर वह प्रथम व्यक्ति था जिसने शेक्सपियर को रंग-मंच के अमर कलाकारों में स्थान दिया था। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने लोगों का ध्यान फ्रांसीसी दुःखान्त नाटकों की ओर से हटाकर अधिक मानवीय एवं मुक्त अंग्रेज़ी नाटकों की ओर आकृष्ट किया था। उसने यह साबित करने की भी हिम्मत की थी कि वाल्तेयर-रेसीन परम्परा 'क्लासिक' न थी। निश्चय ही यह यूनान-विरोधी थी। यद्यपि फ्रांसीसी अमर नाटक गद्दी से हटाये जा रहे थे, मगर उनका स्थान लेने के लिए

वह एक भी महान् जर्मन नाटक सामने न ला सका, परन्तु वह शेक्सपियर का उपयोग करता रहा। थोड़े ही समय में शेक्सपियर के नाटकों का प्रस्तुतीकरण जर्मनी में राष्ट्रीय उत्सव बन गया। यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी की आरम्भिक दशाब्दियों में
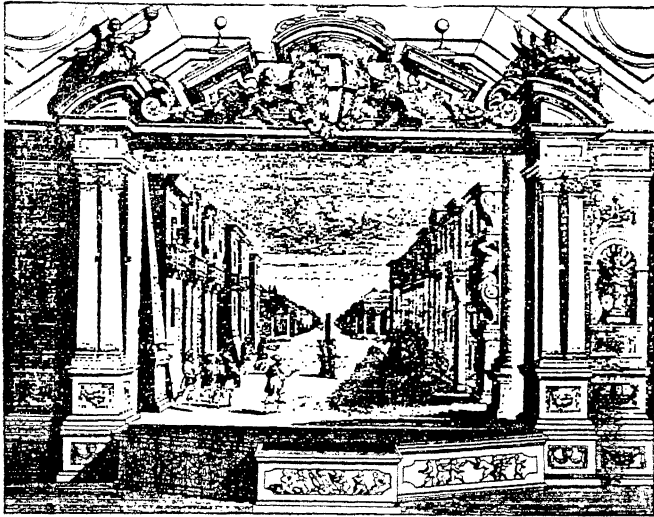
जर्मन दरबारों में अक्सर जो नाट्याभिनय हुआ करते थे, उनका चाहे जो सम्बन्ध लोकप्रिय रंगमंच से रहा हो, वे इटालियन शैली के आपेरा ही हुआ करते थे। यह १६६१ ई० का म्युनिच में प्रदर्शित 'ल' एरिन्टो' का एक दृश्य है। चौखटे में जड़े हुए प्रोसीनियम वाले रंगमंच और वीथी-सेटिंग का दृश्य दृष्टव्य है। (मैक्स ज़ेन्गर कृत 'गेशीख्ते देर मुंचनेर ओपर' से।)

इस महान् नाटककार का सच्चा घर मध्य युरोप बन गया, जब कि अंग्रेजी भाषी राष्ट्र उनका साहित्य पढ़कर, या कभी-कभी उनके नाटकों को खेलकर उन्हें केवल सम्मानित कर रहे थे।

लेसिंग और आगे बढ़ा। उसने कभी अपने को महान् नाट्यविद् दिखाने की कोशिश नहीं की। उसने हैम्बुर्ग के प्रवास में सरकारी कवि के पद को अस्वीकार कर दिया। इसके स्थान पर वह वैतनिक आलोचक ही बना रहा। यह सब होते हुए भी,

उसने जितने नाटक लिखे उनमें से कुछ तो अतिशय 'मानवतावादी' रचनाएं बन गयीं। ऐसे मानवतावादी नाटक इसके पहिले कभी अभिनीत न हुए थे। निस्सन्देह वह एक दूसरे किसी हद तक अधर्मी फ्रेंच लेखक के पद-चिह्नों पर चलने की कोशिश कर रहा था। वह लेखक दिदरो था। इसके साथ हो वह एलिजाबेथी नाटककारों की रचनाओं से भी लाभान्वित हुआ था। उसका सर्वोत्तम नाटक "मिन्नावान बार्नहेल्म" आज भी निरन्तर जर्मन रंगमंच पर अभिनीत होता रहता है। यह एक कोमल गंभीर गद्यात्मक सुखान्त नाटक है जिसके पात्र सजीव हैं। उसका दुःखान्त नाटक 'मिस सारा सैम्पसन' बाद के बुर्जुआ नाटकों की तरह का है। यह साधारण जीवन का नाटक है। इसमें झूटी शालीनता और फ्रांस से लायी गयी प्रणाली से बचने की कोशिश की गयी है। 'एमिलिया गालोटी' में राजकीय पात्र नयी ईमानदारी और झिझक के साथ सामने लाये गये हैं। लेसिंग के नाटकों में से कोई भी रंगमंच के महान् अमर नाटककारों की कृतियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उस वर्ग में आने के लिए जो बड़प्पन उनमें होना चाहिए वह नहीं है, परन्तु वे अच्छी तरह अभिनीत हो सकते हैं, उनसे सहानुभूति भी होती है, उनसे ही यह भी पता चलता है कि जर्मनी के नाटक भी नाट्य साहित्य के अंग बनने लगे हैं।

ब्रांडर मैथ्यू, जो तीव्रता के साथ इस बात पर बल देता था कि नाटक का अध्ययन सम-सामाजिक प्रातिनिध्य के संदर्भ में किया जाना चाहिए, तेजस्वितापूर्वक यह प्रकट करता है कि लेसिंग प्रथम नाटककार है जो अपने नाटकों की रचना इस भाँति कर सका है कि दृश्य के परिवर्तन अंकान्तर पर ही आते हैं, वह विभिन्न सेटिंग वाले दृश्यों से अंक को भंग होने से बचाता है। इस प्रकार केवल अंकारम्भ के बाद लम्बी प्रतीक्षा वाले विराम को बचाता है। इस समय तक शेष युरोप के साथ-साथ जर्मनी में नियमित रंगमंच और आपेरा स्टेज पर इटालियन चित्र-दृश्यावली आ गयी थी।

'स्तर्म अन्द द्रंग' यह नाम लेसिंग के बाद आने वाले और नाटककारों के साहसी और उत्साही वर्ग की रंगमंचीय क्रियाशीलता का समेटनेवाले युग का है, जिसमें अमर गेटे और शिलर का उदय हुआ। यह शब्द अशांति और अत्याचार दोनों का संकेत करता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग काफ़ी पीछे के युग तक के लिए किया जा सकता है। जर्मन रंगमंच की कहानी आरम्भ से काफ़ी तूफ़ानी रही है, और निश्चित रूप से यह विशिष्ट तूफ़ान तब से उठ रहा था, जब जर्मनी 'कामेदिया देल आर्ते' के कलाकारों, अंग्रेज़ी हास्य अभिनेताओं और फ्रांसीसी दलों का संगम-स्थल था, और 'न्यूबरे-गाटेशेड' घटना तूफ़ानी भूमिका से कुछ अधिक थी। किन्तु बहुत से इतिहासकारों को अभी तक यह अनुभव होता रहा है कि मध्यशताब्दी के

बाद जर्मनी एकाएक तरुण प्रतिभाओं के स्पंदनों तथा साहसिक प्रयोगों और पीड़ादायी यात्राओं के साथ जीवित हो उठा था और साहित्यिक एवं नाटकीय पुनर्जन्म के संघर्ष और तूफ़ान में पड़ गया था।

स्तर्म अन्द द्रंग शब्द एक छोटे नाटककार के नाटक के नाम से ग्रहण किया गया है, जिसे शेष विश्व भूल चुका है। जर्मनी साधारणतः जर्मन राष्ट्रीय नाटक की स्थापना के लिए इच्छुक अगणित नाटककारों को उत्पन्न कर रहा था। प्रचंडता केवल सामान्य अशांत क्रियाशीलता में ही नहीं, उलट-फेर की तो बात ही क्या, वलिक वैयक्तिक नाटकों के भीतर हिंसा और अतिवादिता में भी लक्षित हो रहा था। विभीषिका और स्वच्छंदता की बाढ़ आ गयी थी जो प्रायः नवप्राप्त स्वतंत्रता के बाद आती है, लेकिन जब स्थिरता आयी तो ठोस रूप से सृजन करने वाले बहुत से नाटककार हुए और तूफ़ानी वृष्टि के शिखर पर महान गेटे और शिलर रंगमंच पर आये।

नाटक-लेखन के बाहर, अभिनय, मंचरचना और रंगमंचीय स्थापत्य के मामले में भी यही सामान्य क्रियाशीलता और प्रगति थी। बाद में 'जर्मनी का गैरिक' कहे जाने वाले एकहोफ़ ने अकृत्रिम, निष्ठायुक्त अभिनय का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था और परम्परागत शब्द-चातुर्य और वाचालता भरी पद्धति अपनी एक समय अर्जित की गयी लोकप्रियता खो रही थी। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि 'प्रयोजन' की तरंग अभिनेताओं में बलवती हो गयी थी। उनमें से बड़ी संख्या 'हैंसवुर्स्ट शैली' और 'जितना ग्रहण कर सको ग्रहण करो' प्रकार के वर्गीकरण के सामने नये नाटकों और गौरवान्वित कंपनी प्रयत्नों को वरीयता देने लगी थी। इस समय भी अच्छी तरह से रिहर्सल करने के बाद आये प्रस्तुतीकरण के बारे में बड़ा दावा नहीं किया जा सकता और लापरवाह अचिन्तित रचना की (सृजनात्मक प्रकार की नहीं) पुरानी पद्धति का आग्रह भी कम नहीं था। अधिक गंभीर क्षेत्रों में अत्यन्त स्वाभाविक और सरल दुःखान्त भी शुद्धतम वार्साई पद्धति से बिलकुल राजसी वेश-भूषा में खेली जाती, किन्तु उसमें महत्तर वस्तुओं की स्पंदनशीलता और संभावनाएं भी दिखायी पड़ती हैं और एकहोफ़ का उत्तराधिकारी नौजवान श्रोडर दृश्य-पट पर आ जाता है।

स्टेज सेटिंग भी सुधर गयी है। वह आपेरीय प्रदर्शन की ओर झुक गयी है; नयी चित्र सेटिंग बुरी तरह से चित्रित होने की जगह अच्छी तरह से चित्रित होने लगी है। 'यांत्रिक प्रभाव' आ गये हैं। नाटकों का विज्ञापन रूपांतरण, मशीन और छद्मवेश के साथ होता है। जहाँ-तहाँ वस्तुतः अच्छा रंगमंच निर्मित हो रहा है। फ्रांस

और इटली की भाँति 'प्रोसीनियम फ्रेम' वाले रंगमंच वन गये हैं। उन प्राचीनतम स्थायी राजकीय रंगशालाओं में से एक गोथा १७७६ ई० में निर्मित हो चुकी है जिनका वाद के जर्मन रंगमंचीय जीवन में विशिष्ट स्थान वन गया। (यहीं एकहोफ ने अभिनय और निर्देशन में अपने अन्तिम वर्ष बिताये।)

लेसिंग और गेटे के मध्यवर्ती काल से बाहर बहुत थोड़े नाम उल्लेखनीय हैं। फ्रेडरिक गाटलीब क्लापस्टाक ने बहुत से धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण नाटक लिखे। क्रिस्टाफ़ मार्टिन वाइलैंड ने ऐसे नाटक लिखे जो अब महत्वपूर्ण नहीं रह गये हैं। लेकिन शेक्सपियर के उसके अनुवादों ने उसे स्मरणीय स्थान दे दिया है। हेनरिक विलहेल्मवान गर्सटेनवर्ग और मैक्सीमिलियन क्लिगर स्तर्म अन्द्र ड्रंग की पराकाष्ठा-स्वरूप थे लेकिन ये सारे नाम और उनकी सारी रचनाएँ उस जोहान वुलफगैंग गेटे की तुलना में फीकी पड़ जाती हैं जिसका नाम नाट्य-साहित्य के क्षेत्र की विश्व प्रतिभाओं की सूची में असंदिग्ध रूप से आज भी अंतिम है।

रंगमंच के छः या आठ 'अमर' लोगों में गेटे सबसे कम रंगमंचीय कलाकार है। वह उन सब लेखकों में सब से महान् है जो रंगमंच पर तो गये परन्तु उसके नहीं हो गये; एक सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्तित्व जो उनके ऊपर प्रभुता करने के लिए आया किन्तु मंच पर स्थित रहने के लिए नहीं। सोफोक्लीस, शेक्सपियर, मोलियर, जीवन या उद्देश्य के दूसरे विचारों से मुक्त रंगमंच के ही लोग थे, किन्तु इस श्रेष्ठ पंक्ति में उत्तरवर्ती गेटे एक भिन्न प्रकार है, हमेशा अकेले ढंग का कवि।

निश्चित रूप से किसी भी हैसियत से रंगमंच की सेवा करने के लिए आने वाले लोगों में यह गंभीरतम व्यक्तित्व था और इसका स्वरूप सर्वोत्तम था। दर्शन, राजनीति, विज्ञान, साहित्य आदि विभिन्न रुचियों में से इसे भी एक के रूप में ग्रहण करने के स्थान पर यदि गेटे ने केवल रंगमंचीय लेखन के ही लिए अपना जीवन दिया होता तो बाद के सारे युगों में सोफ़ोक्लीज और शेक्सपियर के साथ अत्यन्त उच्च स्थान पर स्वीकार किया जाता; उसके वर्तमान स्वरूप में हमेशा के लिए एक अपवाद लगा हुआ है कि उसके नाटक उतनी अभिनीयता के साथ रचित नहीं कि वे प्रमुख रूप से रंगमंचीय प्रवाह के लिए ही हों। जहाँ तक रंगमंच का सम्बन्ध है, उनमें आंशिक विशिष्टता का भाव है। नाटकीय द्वन्द्व में तेजस्वी, दार्शनिक विश्लेषण और अनिवार्य रूप से सुन्दर छंदों से व्यवधान पड़ जाता है, ये चीजें अभिनीत कथा से तुरन्त उत्पन्न नहीं होतीं।

वह 'वीमर' की राजकीय रंगशाला में २६ वर्ष तक निर्देशक रहा, और इस प्रकार उसे व्यावहारिक रंगमंचीय शिल्प को सीखने और अभिनेता तथा दर्शक के बीच

प्लेट ३२

चार्ल्स कोयपेल द्वारा चित्रित आंद्रियेने लेकोव्रेडर (डेशियर कृत 'ले म्युज़ी दे ला कामेदी फ्रांके' से)

प्लेट ३३
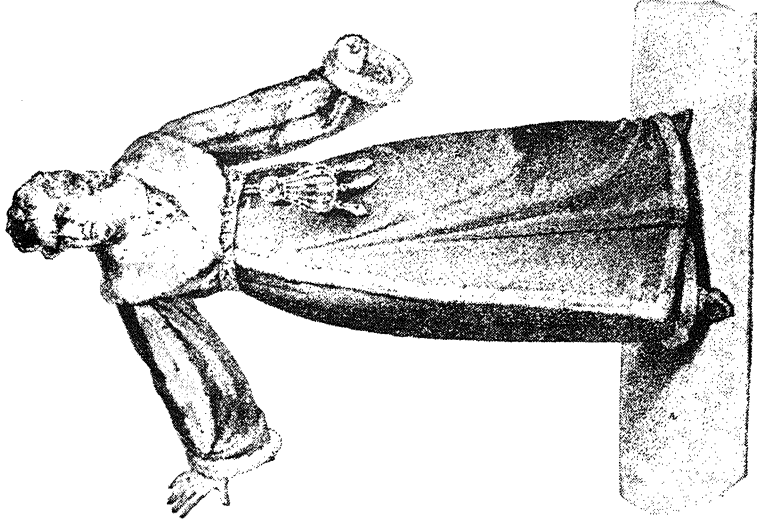
बाएं, गुसेप्पे बियांकोलेली, जो कि फ्रांस में डाक्टर की भूमिका में डोमिनिके के नाम से प्रसिद्ध थे। (सेम्बन कलेक्शन के केटालाग से।) दाहिने, तालमा।
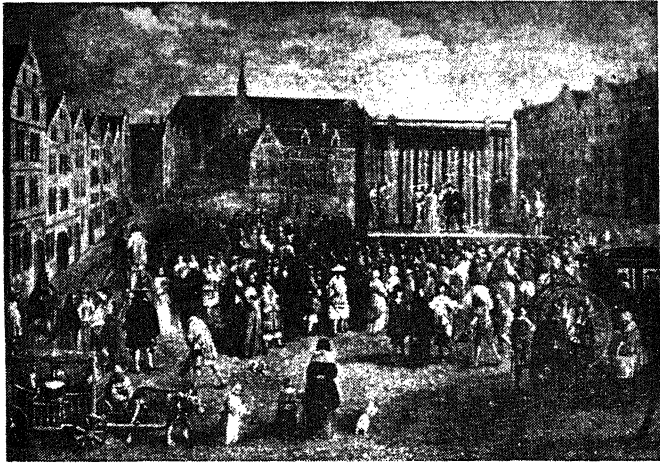
सड़क की पटरी पर बने रंगमंच पर हेंसवुर्स्ट (काले रंग में) । नीचे, ब्रुसेल्स के एक बाज़ार के चौराहे पर, एक रंगशाला, चित्रकार एफ़० वान देर म्युलेन की दृष्टि में । (लीख़तेन्स्तीन गैलरी, वियना, की मूल प्रति से ।)

एन्जेलिका कौफ़मान द्वारा चित्रित तारुण्य-संपन्न गेटे। दो शताब्दियों के जर्मन नाटक के इतिहास को समुचित रूप से इस एक वाक्य में बांधा जा सकता है—"हैन्स वुर्स्ट से गेटे तक।"

के सम्बन्ध को मापने का पूरा अवसर मिला। फिर भी वह कुछ असंपृक्त और अलग-अलग रहा। शेक्सपियर या मोलियर या छोटे उदाहरण लें तो लोपे दे वेगा या लेसिंग के समान रंगशाला में नाटक का ठीक-ठीक और पूर्ण औचित्य उसके यहाँ नहीं है। उसकी रचनाओं में रंगमंच का विशिष्ट जीवन, अभिनय की 'अनुभूति' या महज़ रंगमंचोपयोग्यता नहीं है। फिर भी कैसे अद्‌भुत उत्तम नाट्यांश हैं। एलिज़ाबेथ युगीनों के बाद पहली बार हम अनुभव करते हैं कि नाटक एक 'निश्चित महानता' का अर्थ लिये आया है।

जैसी कि आशा की जा सकती है उसने फूहड़ ढंग से नाटकीय, किन्तु मौलिकता, वेगयुक्त भावना, साहसपूर्ण स्वतंत्रता और कविता, प्रतिभा के इन चिन्हों से युक्त नाटक को आरम्भ किया। 'गोत्ज़वान बर्लिखिंजेन' वस्तुतः 'स्तर्म अन्द द्रंग' की परम्परा में अंकित अंतिम परिणति थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि फ्रांसीसी प्रभुत्व समाप्त हो गया था, शास्त्रीय नियम बिखर गये थे और जर्मन राष्ट्रीय नाटक कार्नेली––रेसीन––वाल्तेयर सम्प्रदाय के स्थान पर शेक्सपियर की पद्धति की समीपवर्ती रेखा का अनुसरण करने लगा था। उसमें एक सरल भावना और ताज़गी भी आ गयी थी।

दूसरे गद्यात्मक या पद्यात्मक नाटक आये, उसी तरह मूल्यों में विषय राज्य सभा के लिए ग्राम्यगीत नाट्य की एक परम्परा भी आयी। इतिहास के ध्वंसावशेषों के प्रति बहुत बाद को पुनर्जागरणकालीन रुचि और अध्ययन के साथ गेटे ने 'इफिजीनिया' और 'तास्सो' लिखा, किन्तु नवशास्त्रीयवाद की उसकी अपनी धारणा की औपचारिक सीमाओं ने उसके नाटकों के नाटकीय प्रभाव को अवरुद्ध कर दिया। एक छोटा पारिवारिक नाटक 'क्लेविगो' सम्भवतः प्रस्तुतीकरण के मामले में सबसे ज़्यादा प्रभावशाली था, और 'एगमोंटे' में ज़रूर असाधारणरूप से नाटकीय दृश्य-विधान है लेकिन नाटकीय ढाँचे में वही शिथिल लगता है। वस्तुतः सर्वोत्तम रचना 'फ्राउस्ट' ही गेटे उन विशेषताओं को प्रकट करता है जो उसे उच्चतम लोगों के नाम के साथ रखता है।

यह दुःखान्त नाटक प्रायः जीवन भर के विचार और प्रयत्न का परिणाम था। प्रथम धारणा द्वितीय खंड की समाप्ति के प्रायः चौथाई शताब्दी पहले ही आगयी थी। इस रचना की संक्षिप्त कथा या वर्णन प्रस्तुत करना संभव नहीं है क्योंकि केवल कविता, गंभीर दर्शन और अवसर पर घनीभूत भावना ही ढाँचे की अनुपातहीनता तथा अनाटकीय मंद गति की पूर्ति करती है। गेटे ने नाटक के आधार के लिए 'फाउस्ट' की पुरानी कथा ग्रहण की, जिसने अपनी आत्मा शैतान के हाथों

वेंच ही दी थी। उसने एक ऐसे दुःखान्त नाटक की रचना आरम्भ की जिसमें उसके अपने और मानवता के सारे निजी अनुभव ग्रथित होते थे।

नाटक (उस रचना के लिए यह शब्द दोहरे रूप में अनुपयुक्त है) एक 'थियेटर प्रोलोग' (प्राक्कथन) से आरम्भ होता है, जिसमें मैनेजर, कवि और बूथ-रंगमंच की मेरी ऐंडरच्यू जीवन, रंगमंच और प्रेक्षकों के सम्बन्ध में विवाद करते हैं। स्वर्ग के दूसरे 'प्रोलोग' में मेफिस्टोफेलीज़ को भगवान को यह वचन देता प्रदर्शित किया जाता है कि वह फाउस्ट को पथभ्रष्ट कर सकता है। यह वही अंश है जिसे अभी-अभी अपवित्र और अप्रकाशनीय समझा गया है। गेटे ने इसे मध्यकालीन धार्मिक नाटकों की सरलता और सहजता की ओर कितना ढाल दिया, यह अन्त की पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगा।

(मेफिस्टोफेलीज़ अपने आप)

कभी-कभी मैं प्राचीनों की बात सुनना चाहता हूँ
और चाहता हूँ अत्यन्त शिष्ट बनना।
सचमुच यह उस महान् प्रभु की कृपा है
कि उसने शैतान से बातें करने का सौजन्य दिखाया।

किन्तु मुख्य नाटक के प्रथम दृश्य में 'गोथिक चैम्बर' में हम नाटक के गंभीर अभिप्राय को सम्पन्न होते देखते हैं। विद्वान फाउस्ट अपनी बौद्धिक उत्सुकता में सारे बन्धनों के विरुद्ध प्रयत्न करता है, आत्महत्या के लिये लुब्ध है, किन्तु विष के प्याले को एक तरफ़ हटा देता है। वहां से घटनाक्रम बढ़ चलता है—तीव्रता से तो कभी नहीं, किन्तु अत्यन्त वैविध्यपूर्ण अलंकृतिपूर्वक आगे। फ़ाउस्ट लोगों के बीच है; मेफिस्टो फेलिस से प्रलुब्ध फाउस्ट, अध्ययनरत है; फाउस्ट समझौता करता है; फाउस्ट मनोरंजन के लिए ज्ञान और सिद्धान्त को छोड़ देता है और ऐसी ही सरल और भोली मार्गरेट की कथा भी है। उसके प्रथम प्रवेश से लेकर अंधगृह में उसके अन्तिम दृश्य तक, तर्क के बिना, उसकी कथा बारह दृश्यों में कही गयी है। उसमें कहीं तो साधारण उड़ान है और कहीं 'वालपुर्जिस नाख्त' के नाम वाले विशाल वर्णन हैं; इस प्रकार उसमें बाधा आ जाती है। यह सब मानवीय नाट्य में व्यवधान-सा प्रतीत होता है, लेकिन ऊँचे अर्थों में यह इतना ठीक है कि इसके बिना दुःखान्त घटना की कल्पना ही संभव नहीं है।

इस प्रथम खंड में बाद के वर्षों में गेटे ने द्वितीय खंड जोड़ा जो स्वतः अपने में

एक पूर्ण नाटक है किन्तु प्राथमिक रूप में मानवीय कथा के आधार के विना इसको समझना और भी कठिन है, और यह और भी अस्पष्ट हो जाता है। यह पारलौकिक के प्रति एक उड़ान है, जिसने जर्मन डाइरेक्टरों को छोड़ और सभी के छक्के छुड़ा दिये; जर्मन डाइरेक्टर प्रथम खंड की अत्यन्त गंभीर नाटकीय कठिनाइयों को जीत कर सन्तुष्ट हो गये। जी० एच० लुइस ने अपनी अद्वितीय रचना 'दि लाइफ़ ऐण्ड वर्क्स आफ़ गेटे' में लिखा––"यह अद्‌भुत कविता, जिसकी लोकप्रियता की कोई मिसाल नहीं है, सनातन समस्या के प्रति अदम्य सम्मोहन के साथ सब प्रकार के लोगों को आन्दोलित करती है। इसमें हाज़िरजवाबी, हास्य, करुणा, बुद्धि, रहस्य, संगीत, भक्ति संदेश, चमत्कार, व्यंग्य सभी तत्व हैं। वीणा का एक तार भी स्वरहीन नहीं है; हृदय का एक तंतु भी अछूता नहीं रह गया है।" और सचमुच यूनान के तीन दुःखान्त नाटककारों और शेक्सपियर को छोड़कर सारे संसार में किसी भी लेखक ने ऐसा दुःखान्त नाटक नहीं लिखा है, जिसे गंभीर पाठक पढ़ने के लिए सदा और सर्वत्र आतुर रहते हैं। जो यहाँ उन अंशों को उद्धृत करने की इच्छा होती है जो इस काव्य के वैशिष्ट्य को प्रकट कर सकते हैं, किन्तु उसका स्वरूप इतना विशाल है और विषय व्यापक रूप से इतना समृद्ध है कि कोई भी चुना गया अंश उपयुक्त और पूर्ण नहीं हो सकता। फिर यह भी एक दुःखदायी दृश्य है कि अंग्रेजी अनुवाद काम चलाऊ भर हैं जो विशाल नाटक के व्यापक रूप को तो हमारे सामने ला देते हैं, किन्तु इससे काव्यात्मक मूल्यों को दुःखद हानि पहुँचती है।

'फाउस्ट' का रचयिता यह कवि–नाटककार––बाद के इतिहासों में वीमर की राजसभा के बौनों के बीच में विशाल दैत्य-सा प्रतीत होता है। इनमें सुखान्त एवं दुःखान्त दोनों का स्वाद है। आप यदि एक भी जीवन-कथा पढ़ेंगे तो उससे आपका मनोरंजन भी होगा और आप द्रवित भी हो जायँगे। महान् नाटककार एक तरह रंगमंच से अलग था, फिर भी जीविकोपार्जन के लिए उसे एक विशेष प्रकार के रंगमंच का अध्यक्ष होना पड़ा। पहले वह शौकिया कलाकारों से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध था। फिर २६ वर्षों तक द्वितीय श्रेणी के व्यावसायिक अभिनेताओं की कंपनी का निर्देशक रहा। वह अभिनय के अत्यन्त विस्तृत नियमों का भी लेखक है; और अन्त में वह अपने तुच्छ स्वामी वीमर के ड्यूक और उसकी प्रेमिका की कृपा पर अवलम्बित रहा। वर्षों तक उन्होंने उसके जीवन को दुःखपूर्ण बनाये रखा। अन्त में एक उपस्थापन को लेकर, जिसमें एक प्रशिक्षित कुत्ता मुख्य अभिनेता था, उन्होंने उसे राजकीय रंगशाला से इस्तीफ़ा देने को बाध्य कर दिया। यह कहते हर्ष होता है की अपनी अपरिपक्व मृत्यु के पूर्व उसने शिलर के साथ दस वर्षों तक सह-उपस्थापक की

स्थिति का आनन्द लिया।

जोहान क्रिस्तोफ फ्रेडरिक वान शिलर(१७५९–१८०५ ई०) में काव्य प्रतिभा तो कम किन्तु रंगमंचीय शिल्प की समझ कहीं अधिक थी। उसने 'मेरिया स्टुअर्ट' और 'विलहेल्म टेल' ये ऐतिहासिक नाटक लिखे, जिनका अभिनय आज भी हमें आन्दोलित कर देता है। रोमांटिक नाटक 'डान कार्लोस' तथा षड्यंत्रमूलक नाटक 'कबाल ऐण्ड लव' आज भी रंगमंचीय रचना की दृष्टि से सबसे अधिक प्रभावशाली हैं। रंगमंच से दूर रहने की जगह शिलर ने प्रस्तुतीकरण की हर युक्ति और मूल्य को सीखा, जिससे आधुनिक नाट्यालोचक उसके नाटकों को रंगमंच की शक्ति का पूर्ण माध्यम मानते हैं। काव्यात्मक आवरण में गीतिनाटक जैसी रचना के निर्माण की, सचमुच, उसकी एक अपनी शैली थी।

'दि रावर्स' शीर्षक उसका प्रथम नाटक उसकी बाईस वर्ष की अवस्था में लिखा गया। यह नाटक गीतिनाट्य और भावोत्पादक दुःखान्त के बीच चक्कर काटता था और अपरिपक्व प्रतिभा के सारे अनिश्चय के साथ समाप्त होता था। किन्तु इसी के कारण वह तुरन्त रंगशाला में ले लिया गया। (मैनहीम नेशनल थियेटर ने इसे प्रस्तुत कर मानो एक घटना घटा दी हो)। शिलर ने साहित्यिक व्यक्ति की दृष्टि के साथ के साथ ही रंगमंच की दृष्टि से भी अपनी कला पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। उसका अभिनेता बनने का भी कुछ विचार था किन्तु इस महत्वाकांक्षा को छोड़कर उसने अच्छा किया। धीरे-धीरे उसने अपने अतिवाद पर एक प्रकार का नियंत्रण किया और अपने प्रथम छंदोबद्ध दुःखान्त 'डान कार्लोस' तक पहुँचते-पहुँचते वह महान् गंभीर नाटककार समझा जाने लगा। वह इतिहास तथ्यों का प्रयोग निर्ग्रन्थ होकर करता है और मानवीय नाटकीय अभिव्यक्ति की एकसूत्रता की अपेक्षा ऐतिहासिक यथार्थता या पहले निर्धारित आदर्श नाटकीय स्वरूप की कम परवाह करता है। उसने उस नाट्य विधान तथा नाट्य कौशल के कसाव को आगे बढ़ाने के लिए कुछ नहीं किया, जो उन्नीसवीं शताब्दी के नाट्यलेखन की विशेषता है। बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि अतिवादी युगों के अधिक रोमांचक, अधिक भावुक, बढ़े-चढ़े कवि नाटककारों, एलिजाबेथयुगीनों और कैल्डेरान को रंगमंच की और खींचने वाले उद्रेक का वह उत्तरकालीन प्रतिफल था। कभी-कभी उसकी सर्वाधिक प्रभावशाली समझी जाने वाली रचना 'वालेंसटीन' सामान्य रंगमंचीय सीमा से परे चली जाती है, यद्यपि उसके गंभीर साहित्यिक मूल्य और दार्शनिक अर्थ से इनकार नहीं किया जा सकता।

गेटे और शिलर के काल में जर्मनी में ज़ोरदार वैयक्तिक पहलक़दमी के

लीपज़िग में अपने 'फुंगफ्रा वान ओरलियन्स' नाटक के प्रीमियेरी के बाद रंगशाला छोड़ कर जाते समय शिलर का अभिनन्दन, १८०१ ई०। ('इलस्ट्रीटे ज़ीतुंग' में थियोबाल्ड वान ओयेर की एक ड्राइंग से।)

आदर्शवाद की प्रवृत्ति विद्यमान थी, जिसने 'जोन आफ़ आर्क',और 'विलियम टेल' जैसे विषयों को चुनने के लिये प्रवृत्त किया। वीमर में, जहां गेटे और शिलिर ने साथ-साथ बहुत समय बिताया, एक नया राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता और मानवतावाद के प्रति-भक्ति विकसित हो रही थी। वह क्रान्ति के पवन का एक प्रश्वास था, जो जल्दी ही विनाश की अग्नि प्रज्वलित करने वाला तथा राजनीतिक संस्थाओं को पलटने वाला था और आनुषंगिक रूप में रंगमंच को सुधारने वाला था। नये विकास का एक मूल रूसो भी है, जिसके विचार जर्मनी में व्यापक और तीव्र रूप में स्वीकृत हो चुके थे।

दूसरी ओर, स्वाभाविकता और गद्य की ओर वह रहा पहिले का प्रवाह अवरुद्ध हो गया। जो यथार्थवाद उन्नीसवीं शताब्दी का वैशिष्ट्य बनने वाला था, उसकी ओर रंगमंच को जाने के लिए अभी समय कहीं अधिक उत्तेजनापूर्ण था, तूफ़ान एवं संघर्षपूर्ण हिंसा कहीं ज्यादा थी, तरुण जर्मनी का नया आदर्शवाद कहीं अधिक बलवान था। पहिले तथा कथित रोमांटिक युग आयेगा। उसके पूर्व गेटे और शिलर का यह कवित्वमय और उच्च नाटक है जो महज़ रोमांटिसिज़्म से कहीं अधिक सुन्दर है और यथार्थवाद के बिलकुल विपरीत किन्तु फिर भी इसमें एक ऐसी स्वतंत्रता, स्फूर्ति और ताज़गी है जो उस समय के स्वीकृत क्लासिज़्म में बिल्कुल अज्ञात है।

तथापि शिलर और गेटे के ठीक बाद के नाटककारों में भावुकता की वह रेखा मिलती है, जो सीधे रोमांटिसिज़्म की ओर जाती है। अश्रुपूर्ण पारिवारिक नाटक विशेष प्रिय हुए यद्यपि अधिकांश लोकप्रिय लेखक कभी उसे लिखते थे और कभी इन दोनों महान् नाटककारों के अनुकरण में प्रवृत्त होते थे। महान श्रोडर (रंगमंच के इतिहासकार अभी भी उसे यही कहते हैं) ने बहुत से नाटक लिखे, जिनके नाम भरी मिलते हैं। आगस्ट विलहैल्म इफलैंड नामक अभिनेता नाटककार इसी तरह का लिक्खाड़ था। उसका उन लोगों में स्थान है, जिन्होंने 'पढ़ने के लिए नहीं, अभिनय के लिए' नाटक लिखे थे। उन्होंने तत्कालीन रंगमंच में असाधारण लोकप्रियता प्राप्त की, लेकिन पहिले और बाद के अभिनेता गैरिक और पिनेरो या डेविड बेलस्को और जार्ज एम० कोहन के नाटकों की ही भांति उनके नाटक भी सनातन सिद्धान्तों पर नहीं, प्रचलित रुचि और क्षणिक भावोद्वेग पर आधारित हैं।

लेकिन जहां श्रोडर और इफलैंड ने अपने अभिनय के लिए और जर्मनी के संस्थापक रंगमंच की स्थापना में सेवा करने के लिए इतिहास में स्थान प्राप्त किया, तहाँ आगस्ट वान कोत्सब्यू स्थायी रूप से नाटककार के रूप में यश प्राप्त कर सके। उनके समय के आलोचकों ने उन्हें प्रथम श्रेणी की प्रतिभा मानने की ग़लती की और

उनके नाटक सारे युरोप के देशों में प्रिय हुए। जब प्रतिक्रिया हुई, तो उनकी रचनाएँ छद्म-गीतिनाट्य सिद्ध हुई, और कभी के अपने यश के समान ही बड़े अपयश के भागी होकर वह बुरी नाटक–रचना के एक विशिष्ट उदाहरण बन गये। जैसे गेटे और शिलर अच्छी प्रवृत्तियों के परिणाम थे, उसी तरह वह दुरुत्साह और तूफ़ानी दल की यथार्थ पराकाष्ठा भी हैं। वह नाटकीय शिल्प की ऐसी प्रतिमूर्ति हैं, जो वास्तविक नाटक को रोमांचकारी क्रियाशीलता समझने की ग़लती कर बैठता है।

दो अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रतिभाओं के बावजूद ऐसे भी लोग हैं जो रामांटिसिज़्म के पहले के जर्मन रंगमंच की कहानी को 'दि ग्रेट एक्टर्स' की (महान् अभिनेताओं की कहानी के एक अध्याय के रूप में रखना पसन्द करते हैं। मार्तज़ियस ने ६ खंडों की अपनी पुस्तक 'हिस्टरी आफ थियेट्रिकल आर्ट' (रंगमंच–कला का इतिहास) में इस सारे युग को उस खण्ड में रखा है जिसमें अठारहवीं शताब्दी के महान् अभिनेताओं का वर्णन है। वह समस्त सामग्री एकहोफ़, श्रोडर, और इफलैंड इन तीन नामों के अन्तर्गत बाँट देता है। श्रोडर संभवतः इस प्रकार के शीर्षस्थानीय यश के लिए पर्याप्त शक्तिशाली और सार्वभौम था, किन्तु दूसरे कठिनता से ही विश्व विख्यात व्यक्तित्व होंगे। एकहोफ तब संयम और निष्ठा ले आया, जब इन गुणों की बहुत आवश्यकता थी, किन्तु वह शासन होने की अपेक्षा शान्तिपूर्ण और मानवीय रूप में प्रभावकारी था।

तथापि श्रोडर केवल अपने समय का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता ही नहीं था, अपितु राष्ट्रीय रंगमंच के रचनात्मक युग में सर्वप्रमुख व्यक्ति था, दूसरे सारे अभिनेताओं के लिये मान्य आदर्श था और उसने अपनी कंपनी को सच्चे अधिकार और अन्तर्दृष्टि के साथ निर्देश दिया। उसने राष्ट्रीय रंगमंच के लिए उस स्थल से संघर्ष चलाया, जहाँ हैम्बुर्ग में हुआ दुर्भाग्यपूर्ण प्रयत्न (जो लेसिंग द्वारा प्रसिद्ध हो गया) छूट गया था। उसी हैम्बुर्ग में बीस वर्षों तक उसने उत्तरवर्ती रंगमंच का इस सफलता से निर्देशन किया कि वह बाद में जर्मनी का रंगमंचीय केन्द्र बन गया। उसने इस तरह की अन्तर्ग्रंथित कंपनी बनायी, जैसी पहले किसी ने नहीं बनायी थी; उसने शेक्सपियर के नाटकों को रंगमंच पर उपस्थित किया। इस प्रकार नाटककारों ने देखा कि उन्होंने जिन नाटकों को पढ़ने के लिए आदर्श बनाया था, वे समान रूप से रंगमंच पर भी प्रभावशाली हुए। उसने अभिनय-व्यवसाय को एक प्रकार की महत्ता प्रदान की। अपेक्षाकृत अल्पवय में जब उसने आराम के जीवन को ग्रहण किया तब तक उसने उन सारे उद्देश्यों को पूरा कर लिया था, जिन्हें तरुण केरोलिना न्यूबर को स्वर्णिम स्वप्न प्रतीत होता था। जर्मनी का रंगमंच 'स्थापित' हो चुका था, अभिनेता सृजनात्मक कलाकार बन चुके थे और

साहित्य एवं रंगमंच के संगम में गेटे और शिलर की रचनाओं के कुसुम विकसित हो चुके थे। अब वह जर्मनी नहीं रह गया था, जो 'हैंसवुर्स्टवाद' का आनन्द लेता था, या जो किसी विदेशी कंपनी द्वारा लायी गयी सैद्धान्तिक दृष्टि में कभी-कभी अच्छी परन्तु बहुधा बुरी नाट्यकला के कारण अपने को अनुगृहीत अनुभव करता था।

अध्याय १७

रंगमंच और लोकतंत्र का जन्म

अठारहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते युरोप और अमेरिका में अपने को देशभक्त, विद्रोही, स्वतंत्रता के पुत्र, भाई और लोकतंत्रवादी कहने वाले लोगों के द्वारा व्यापक स्तर पर होलियां जलायी गयीं। जैसा कि क्रान्ति के अवसरों पर प्रायः होता है, अनेक लोगों ने सक्रिय रूप से बहुत सी बातों को अनुचित ठहराया, और अधिकांश जनवर्ग उदासीनतापूर्वक तमाशा देखता रहा। मगर विद्रोही अल्पसंख्यकों की इतनी ज्वलंत ईमानदारी और संलग्नता एवं इतनी तीव्र सक्रियता थी कि आकाश में फैली लाल रोशनी में कोई भी देख सकता था कि कहीं किसी राजा का सिर किसी सूली पर लटका पड़ा है और कहीं रिपब्लिकनों की छोटी-सी भूखी टुकड़ी के सामने सम्राट् की सेना के बचे-खुचे लोग जान बचाकर भागे जा रहे हैं। अत्यन्त शीघ्र लोकतंत्र एक जमी हुई वास्तविकता बन गया, और युरोप के सभी राजे बैठे-बैठे आँख मलते यह देखते रहे और विस्मय करते रहे कि फ्रांस के लुई के भाई के साथ (और उससे भी भयानक, उसकी किसी समय की परम सुन्दरी मेरी एंतोयेनेत के साथ) जो कुछ हुआ क्या वह सत्य था? और क्या यह भी सत्य था कि अभी कल के अमेरिकन उपनिवेशवादियों ने कज़िन जार्ज की फ़ौजी टुकड़ियों को कोड़ों से पीट डाला!

'पुनरुज्जीवन' (रिनेसां) तथा 'मानवतावाद' के जन्म के दिनों से, जब कि मनुष्य ने स्वयं ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था और अपने लिए विचार करने का काम चर्च को सौंप देने से इन्कार कर दिया था, कभी इतना बड़ा विप्लव नहीं हुआ था जितना इस समय हुआ। 'पुनरुज्जीवन' के पहिले ईश्वरीय अधिकार के सहारे कैथोलिक चर्च शासन करता था। जब अमेरिकन और फ्रांसीसी जनता ने अपने राजाओं को विस्थापित कर दिया तो यह निश्चय हो गया कि शायद, ईश्वरीय

अधिकार के सहारे ही, लोकतंत्रवादियों के हाथ में शासनसूत्र आएगा। और जो कुछ हुआ सो हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव-आत्मा को एक नयी प्रकार की मुक्ति मिली। और चूँकि रंगमंच का सम्बन्ध, सबसे पहिले, मनुष्य की आत्मा से ही है, अतः इसके लिए तो निश्चय ही यह अत्यन्त महान् अवसर था, शायद यह द्वितीय 'पुनरुज्जीवन' का अवसर था। जिस प्रकार कई पीढ़ियों पहले से कार्य-कारणों और असफल प्रयत्नों की शृंखला थी उससे उन विचार-प्रणालियों में उपस्थित क्रान्ति का सम्बन्ध है जिसने लोकतंत्र को जन्म दिया, ठीक इसी प्रकार इसके पूरे प्रभाव और इसके मूल्यों के सम्बन्ध में सही निर्णय भी बाद की कई पीढ़ियों के गुजरने के बाद ही स्पष्ट रूप से दिया जा सकेगा। निश्चय ही, आज, उस क्रान्ति के डेढ़ सौ वर्ष बाद, हम लोकतन्त्रात्मक प्रणाली से सम्बन्धित केवल मिथ्या विश्वासों के कारण ही इतने अन्धे हो जाते हैं कि हम यह सोचने में असमंजस करने लगते हैं कि जिस स्वतंत्रता का जन्म और पुनर्जन्म १७७६ ई० और १७८९ ई० में हुआ उसके साथ उतनी ही बुराइयां भी आयीं जितनी महान् अच्छाइयां आयीं थीं। हममें से वह व्यक्ति निश्चय ही किसी काम का नहीं है जो लोकतंत्र के अतिरिक्त किसी अन्य तंत्र को स्वीकार करे; निश्चय ही हमारे अन्दर इतनी सामान्य समझ है जो बताती है कि मानव आत्मा को उन्मुक्त होना ही चाहिए, कि सम्राटों का ऐश्वर्य अथवा दैवी अधिकार–सत्ता मिथ्याधारणा है, और यह कि केवल आत्मा और कार्य की स्वतंत्रता से ही न्याय का जन्म हो सकता है, उसकी प्रतिष्ठा हो सकती है। परन्तु जहाँ तक रंगमंच का सम्बन्ध है, इस धारणा से किसी अंश में असहमति और अनिश्चित धारणाओं के लिए गुंजाइश है। कुछ ही वर्षों पहले मुझसे एक कलाकार ने, जिसे मैं रंगमंच के सबसे बड़े कलाकारों में एक मानता हूं, अपने विरोध को इन शब्दों में प्रकट किया—'प्राचीन रंगमंच की मौत हो गयी, पर नये रंगमंच का जन्म नहीं हुआ। रंगमंच इस समय व्यापारियों, नये-नये बने रईसों के हाथ में है। यह सब प्रक्रिया उस सत्यानाशी फ्रेंच क्रान्ति के साथ ही आरम्भ हुई।'

एक निराशापूर्ण वास्तविकता यह है कि लोकतंत्र के जन्म से न तो रंगमंचीय कला में 'पुनरुज्जीवन' का आरम्भ हुआ और न इसके ठीक पहिले गेटे और शिलर के नेतृत्व में काव्य-नाट्य के विकास के रूप में जो एक मात्र नवीन रंगमंचीय उपलब्धि थी उसी को कोई बल मिल सका। यह लिखते हुए हर्ष होता कि लोकतंत्र की भावना का उदय होते ही रंगमंच की गौरवशाली सक्रियता उभरी, और अन्त में फिर से मनुष्य की पुनर्जाग्रत आत्मा का वाहन बन गयी। परन्तु वास्तविकता यह है कि उसका पतन होने लगा। पतनशीलता का यह वही क्रम था जो युरोप के अधिकतर देशों में पिछले दिनों से चल रहा था। लगभग सौ वर्षों तक अमरता का पद प्राप्त करने वाला कोई यशस्वी

नाटककार अब न हो सकता था। तब तक ऐसा कोई नाटककार पैदा न हो सकता था जब तक कि युरोप और अमेरिका में शासन करने वाले लोकतंत्रवादियों को उनकी पूँजीवादी नैतिकता और पूँजीवादी शोषण के लिए भर्त्सना करने वाला, उनको खरी-खोटी सुनाने वाला न पैदा हो जाय। अब तो इब्सन और शा के आविर्भाव तक किसी नये महान् नाटककार का उदय असम्भव था। सम्राटों से छिन कर ऐश्वर्य का जो कवच, और जो आभरण जनता को प्राप्त हो गया था, वह कुछ ऐसा था कि उसमें डायोनीशियन (विराट्) भावना स्पष्टतः लुप्त हो गयी थी।

फ्रांसीसी क्रान्ति के ठीक पहिले फ्रांस, जर्मनी और स्पेन के दरबारों में रंगमंचीय सक्रियता के कुछ प्रोज्जवल प्रमाण मिल जाते थे। इंगलैण्ड और इटली में नाट्य-रचना की कला में गोल्डस्मिथ, शेरीडन और गोल्डोनी तथा ग्रोजी के रूप में, वास्तविक उद्रेक हुआ था। क्रान्ति के पहिले इन स्थितियों का पर्यवेक्षण करते समय, क्रान्ति के दिनों का विश्लेषण करने के पूर्व, हमें कुछ आवश्यक तथ्यों पर ध्यान देना होगा। इन दिनों में, रंगमंच को राज-दरबारों में ही प्रश्रय मिलता था। उसे जन-समाज से जो समर्थन मिलता था वह अपर्याप्त था। उसे राजन्य वर्ग से जो संरक्षण मिलता था उसी से वह फलता-फूलता था। विश्लेषणात्मक दृष्टि अथवा तथ्य-निरूपण की दृष्टि से नाटक उस समय तक जन-साधारण के स्तर तक नहीं पहुंच सका था। उसमें अब भी नाटकीयता अधिक थी, उसकी अपनी ज़िन्दगी थी, उसमें जन-साधारण के जीवन का वर्णन अथवा चित्रण नहीं था। परन्तु अब इस बात के स्पष्ट चिन्ह मिलने लगे थे कि व्यापक दृष्टि से नाटक, चाहे रुक-रुक कर ही सही, अधिकाधिक मात्रा में परिचित होता जा रहा था। प्राचीन निरपेक्षता और दूरी का स्थान अब जीवन की सामान्य घटनाओं से निकटता के कारण व्यक्तिगत संवेगों ने लेना शुरू कर दिया था।

वाल्तेयर के बाद फ्रांस के रंगमंच पर कोई प्रभावशाली व्यक्ति अवतरित नहीं हुआ था। महान् अभिनय का भी पहिले एक युग था, परन्तु अब वह भी एक स्मृति-मात्र रह गया था। दुनिया आगे बढ़ गयी थी। फ्रांसीसी अफ़सर-मण्डली और फ्रांसीसी रंगमंच फ्रांसीसी क्षेत्र के बाहर की कला के प्रति उदासीनता ही नहीं वितृष्णा का भाव रखता था। फलतः वह पुरानी पिटी-पिटाई लकीर का ही फ़कीर बने रहने में मगन था। जर्मनों ने हमेशा के लिए 'नाट्य रचनाओं के नियमों' से सम्बन्धित मिथ्या धारणाओं को बन्द कर दिया था। परन्तु फ्रांस में यह परिपाटी अब भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी। जर्मन और अंग्रेज नाट्य-अभिनेताओं ने नये प्राणों और नयी मानवीयता की प्रतिष्ठा कर दी थी। परन्तु 'कामेदी फ्रांके' के प्रेक्षागृह में आप ऐसी बात की आशा और कल्पना नहीं कर सकते थे। अब भी वहां दुःखान्त नाटकों के अभिनय में मार-धाड़

और शब्दों के तोड़-मरोड़ का आधिक्य ही रहता है। इस युग का फ्रांस अपने अतीत पर जीवित है और धीरे-धीरे मर रहा है।

फिर भी उस युग के रंगमंच में अपना कुछ वैशिष्ट्य अवश्य था। उसमें, जैसा कि हम अभी देखेंगे, चित्रात्मकता थी। लुई चौदहवें के महान् युग से ही उसमें एक प्रकार की तेजस्विता रहती चली आयी थी। परन्तु अब जब कि शाही ठाट-बाट की पोशाकें धारण करने वाले तेजस्वी कलाकार ही नहीं रह गये थे तो उस परम्परागत तेजस्विता में भी खोखलापन आ गया था। अब भी उनके प्रेक्षागृह रत्नजटित और लक़दक़ होते थे, अब भी युरोप के सबसे अधिक सजे हुए रंगमंच उन्हीं के माने जाते थे। अब भी वहां एक परम्परा थी। इस परम्परा के कारण ही फ्रांस का रंगमंच इस समय भी रूढ़िग्रस्त और अर्ध-जीवित दिखायी पड़ता है। अपने कलाकारों से उसे नेतृत्व नहीं प्राप्त होता; वह अब भी दरबारी रूढ़ियों और नियमों से बँधा हुआ है। अब भी सम्राट्-द्वारा नामांकित अभिनेता, जिन्हें रंगमंच की कला का कुछ भी ज्ञान नहीं, फ्रांस की सरकारी रंगशालाओं के प्रत्येक विवरण का निर्देशन-संचालन करते दिखायी पड़ते हैं। वे इस बात में राय और आदेश देते हैं कि महिलाएं किस अंग का प्रदर्शन करें और किस अंग का प्रदर्शन न करें। दूसरी चीज़ जिसमें इनकी रुचि थी, यह थी कि नाटकों की पहिले से ही ऐसी जाँच कर ली जाय जिससे रंगमंच पर कोई ऐसी बात न कही जा सके जो प्राचीन युग के लिए असम्मान सूचक हो। अब दरबारों में 'रेसीन' जैसे लोग नहीं होते थे।

इस अधमरे रंगमंच पर अब भी इक्के-दुक्के चमत्कारी कलाकार अवतरित हो जाया करते थे। अभिनेता डुचिज ने किसी माध्यम से शेक्सपियर से परिचय प्राप्त किया। वह ब्रिटिश चैनल के उस पार के 'बर्बर' नाटककार से प्रेम करने लगा। उसने शेक्सपियर के नाटकों को फ्रांसीसी परम्परागत नाटकों की आन्तरिक एकता और गठन के अनुरूप ढाला, संघर्षों-द्वन्द्वों को मंच के पीछे की परोक्ष क्रिया के रूप में रख उसे निर्जीव बना दिया, फ्रांस की रूढ़ि के अनुसार एक विश्वास-भाजन पात्र को जोड़ दिया, और नाटक के मूल पाठ को ऊंचे काव्य से अलंकृत कर दिया। कल्पना कीजिए कि हेमलेट का संपूर्ण नाटक एक दिन की अवधि में समाप्त हो जाता है और उसकी समस्त घटनाएँ एक ही स्थान पर घटती हैं, सम्राट् का विश्वास-पात्र पोलोनियस एक नया पात्र है जो गरट्रूड का विश्वास पात्र बनने के लिए जोड़ दिया जाता है। मूल नाटक की सक्रियता बहुत अंश में खत्म कर दी जाती है और ये चारों ही अधिकतर घटनाओं का वर्णन कर देते हैं, और हेमलेट-ओफीलिया के प्रेम-प्रसंग को गाढ़ा बना कर उछाल दिया जाता है—और यह सब कुछ पद्यबद्ध शैली में होता है।

दरबारी वारांगना-अभिनेत्रियों की एक शानदार और उत्कृष्ट परंपरा इस समय अवश्य थी (दरबारी रंगमंच के नियम के अनुसार इसके लिए छूट थी)। विचित्र बात यह है कि मिली राकोर्त उन सब में अच्छी अभिनेत्री थी। दिदो की भूमिका में जब यह सर्वप्रथम रंगमंच पर आयी तो उसकी सफलता से सनसनी फैल गयी। इस समय वह केवल सोलह वर्ष की थी। कुछ वर्षों के बाद एक बार 'कामेदी फ्रांके' ने उसे इस अपराध में बर्खास्त कर दिया कि एक रात बिना कोई कारण बताये ही वह अभिनय के लिए नहीं आयी; तत्कालीन रंगमंचीय व्यवस्था में यह अक्षम्य अपराध था। परन्तु उसका अभिनय-कौशल इतना अप्रतिम और बढ़ा-चढ़ा था कि कंपनी को विवश होकर उसे स्थायी सदस्य के रूप में फिर बुलाना पड़ा। फिर भी बाद की पीढ़ियाँ उसे इन गुणों के लिए नहीं, वरन् उसके मर्दानापन, मकान-मालिक को पीटने जैसी रंगमंचीय जीवन से असम्बद्ध घटनाओं, जेल की सज़ाओं और छाया-नाट्य की भूमिका से सम्बन्धित लगातार चलती रही बदनामी के कारण ही याद करती रहीं। इस युग में तलमा महान् के प्रारम्भिक अभिनयों की भी चर्चा रही परन्तु हम उसका वर्णन यथास्थान करेंगे। हम उसकी चर्चा क्रान्ति के मध्य में और नैपोलियन के स्नेहपात्र के रूप में करेंगे।

इस युग में जो अनेक व्यर्थ के परन्तु लोकप्रिय नाटककार हुए, उनमें अपवाद के रूप में एक व्यक्ति सामने दिखायी देता है; इस सम्पूर्ण युग में एक ही व्यक्ति का नाम स्मरणीय है और वह नाम है बूमार्के! उसके मनोहर और सूक्ष्मतापूर्ण सुखान्त नाटक 'द बार्बर आफ सेवाइल' और 'द मैरेज आव फ़िगारो' अब भी रंगमंच पर अभिनीत किये जाते हैं। परन्तु उनका रचयिता अपने विचार और कार्य की स्वतंत्रता के लिए प्रसिद्ध है—वह भी ऐसे युग में जब कि समझदार लोग जान-बूझ कर अपनी आँखें बन्द कर लिया करते थे। और जब ग्रन्थकार और सामान्य जन राज्यसत्ता के सम्मुख सफ़ाई के साथ समझौता कर लिया करते थे। बूमार्के ने ही शाही सेंसर और पेरिस के सरकारी नाट्यगृहों को परिचालित करने वाली शक्तियों से दृढ़ता और बहादुरी के साथ संघर्ष किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि नाटककार का पात्रों की भूमिका अदा करने वाले कलाकारों का चुनाव करने में हाथ रहे। इस प्रकार उसे अभिनेताओं और बहुत से शक्तिशाली रक्षकों की पंक्ति में चुनाव करने का अधिकार प्राप्त हो गया। 'कामेदी फ्रांके' के अभिनेताओं का दल अब उसकी रायल्टी के सम्बन्ध में धोखा नहीं दे सकता था। उसने एक ऐसा रुख़ लिया जिसके फलस्वरूप अन्ततोगत्वा नाटककारों का संघ बन गया। यह संघ आज ठगी और शोषण से इन नाटककारों की पूरी तरह रक्षा करता है।

परन्तु इसके साथ-साथ यह भी कहना चाहिए कि अकेले बूमार्के ने रंगमंच को

वह नाटक प्रदान किया जिसने अपने अभिनयों के माध्यम से लोकतंत्र की ओर प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। वाक्चातुर्यपूर्ण 'मैरेज आव फ़िगोरा' में पतनशील सामन्तवादी समाज के सम्बन्ध में प्रभूत उल्लेख हैं। उसमें उस कटुता को पूरी

मध्य अठारहवीं शताब्दी में फ्रेंच रंगमंच पर अभिनय करने वाली अभिनेत्री की वस्त्र-सज्जा—यह तत्कालीन रंगमंच और रंगशाला का प्रतीक है।

अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है जो व्यापक थी, परन्तु अच्छी तरह खायी गयी थी। फलतः लुई सोलहवें ने व्यक्तिगत रूप से इसके अभिनय का विरोध कर दिया था। पाँच वर्षों तक यह कृतसंकल्प नाटककार सेंसर के विभिन्न कार्यालयों से संघर्ष करता रहा, तब कहीं प्रथम बार इसे रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सका। यह धीरे-धीरे बदलते हुए युग का प्रमाण था कि सम्राट् के क्रोध के बावज़ूद उसे नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में

सफलता प्राप्त हो गयी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह व्यंग्यपूर्ण सुखान्त नाटक, जिसमें कमज़ोर सामन्तवर्ग के विरुद्ध उठते-उभरते जन-साधारण को चित्रित किया गया है, फ्रांस के सरकारी सहायता-संरक्षण प्राप्त रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया और अनेक दर्शकों से भरी रंगशालाओं में इसका अभिनय हुआ। उस युग को ध्यान में रखते हुए यह बहुत बड़ी बात थी। २७ अप्रैल १७८४ ई० को जब इस प्रदर्शन का उद्घाटन 'थियेतर फ्रांके' में पहिली बार हुआ तो दरवाज़े और खिड़कियाँ टूट गयीं और दंगासा हो गया। जो भावना फैल गयी थी उसकी अन्तिम परिणति बैस्टील के पतन में होने वाली थी; उसकी परिणति होने वाली थी उस व्यापक हिंसा की अभिव्यक्ति में जो वहां की महान् रंगशालाओं की चहारदीवारी के भीतर हो रही थी।

परन्तु सामान्यतया इस युग का फ्रांसीसी रंगमंच निर्जीव था, प्रतिभा से आन्दोलित नहीं था; वह पुरानी अभिनय-कला और चालू परम्परागत नाटकों से ही संतुष्ट था, और एक कमजोर परन्तु सत्ता-सम्पन्न राज-दरबार के दबाव में इत्मीनान के साथ चलता चला जा रहा था। पुरानी नाटक-रचना-प्रणाली जैसी कृत्रिम थी और भावना की अभिव्यक्ति के लिए दीर्घसूत्री ढंग को ही सर्वश्रेष्ठ मानती थी, उसी प्रकार अभिनय-कला भी अस्वाभाविक थी। जिस प्रकार उसका करुण-काव्य कृत्रिम और भड़कीला था, उसी प्रकार वस्त्राभूषण भी थे। जिस प्रकार दरबारी समाज का जीवन अप्राकृतिक और अवास्तविक तथा अरक्षित था उसी प्रकार भरपूर जीवन से वह भिन्न एवं विच्छिन्न था। फ्रांसीसी रंगमंच पर शब्द निर्वाचन पर अत्यधिक बल दिया जाता था। इस बात में वे अभिनेता अतिशय कुशल थे, यद्यपि अभिनय-कला के अन्य सभी अंगों से वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। उस समय पेरिस में पाँच सक्रिय रंगमंच थे। पेरिस का विशिष्ट रूप से सम्मानित एवं सरकारी संरक्षण प्राप्त 'कामेदी फ्रांके', इसके साथ दुःखान्त एवं सुखान्त नाटकों को खेलने में दक्ष एक कंपनी भी थी जिसका नाम 'ल कामेदियंस आर दीनेयर्स टुरोय' था। 'एकादमी रायल दे म्यूज़िके', 'थियेटर दे ल' आम्बिगू-कामिके' और 'थियेटर निकोले' जहां हास्य-विनोद, चमत्कार और नाट्य-नृत्य होता था, और अन्त में 'थियेतर इतालिए' जो कभी-कभी सत्यमेव सरकारी रंगमंच से प्रतिस्पर्धा करने लगता था, परन्तु साधारणतः संगीत-नाटक प्रस्तुत करने के लिए बाध्य था। कई शताब्दियों तक वैध रंगमंच की कृत्रिम सीमाओं और प्रतिबन्धों ने, सरकारी आज्ञा- प्राप्त एकाधिकार ने नवीन रंगमंचीय सर्जना को अवरुद्ध कर रखा था। जब क्रान्ति ने इस एकाधिकार को समाप्त कर दिया तो सहसा इन पाँचों रंगमंचों के स्थान पर लगभग पचास रंगमंचों का प्रादुर्भाव हो गया।

फ्रांस में १७६० ई० के पहिले आधी शताब्दी में ग़ैरपेशेवर रंगमंचों का दौर था

जो महत्वहीन तो थे ही, किन्तु महत्वपूर्ण रंगशालाएँ उससे कम दिलचस्प थीं। इन वर्षों में सच्चे रंगमंच तो शाही दरबारों में ही थे। विभिन्न राजाओं—सामन्तों के क़िलों में भी छोटे-मोटे रंगमंच थे। ग्रामीण क्षेत्रों के बड़े-बड़े आदमियों और शहरों के सामाजिक नेताओं के घरों में भी रंगमंच होते थे। इस समय जर्मनी में दरबारी रंगमंच टकसाली रंगमंच के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगे थे और उनका रूप पेशेवर रंगमंच-जैसा बनने लगा था। ऐतिहासिक दृष्टि से वहां उस समय सचमुच रंगमंचीय प्रगति हुई। किन्तु तत्कालीन फ्रांस के रंगमंच खिलौने की तरह हो गये थे। उनसे केवल ग़ैरपेशेवर कलाकारों का मनोरंजन होता था। चूँकि उनका सम्बन्ध राजा और रानी से रहता था इसलिए उनका कुछ महत्व भी था। लुई महान् (लुई दि ग्रैण्ड) के ज़माने में, जैसा कि हमने देखा है, दरबार को एक राष्ट्रीय कला के विकास में योग देना पड़ा था। लुई सोलहवें के राजत्वकाल में वार्साई की निजी रंगशाला को अक्सर प्रयोग में लाया जाता था किन्तु इसमें पेरिस से मंगाये गये नाटक अभिनीत होते थे।

मगर वार्साई के क़िले में 'थियेटर दे पेतित अपार्टमेंट्स' भी था। और बाहर पार्क में ट्रियानान्स की तरफ़ एक निजी रंगमंच था जो मेरी एंतियोनेत के लिए विशेष रूप से बनवाया गया था। निस्सन्देह यह महारानी के लिए अत्यन्त उत्कृष्ट खिलौना था। आज हम खुलकर उन कलाकारों-सज्जाकारों का मज़ाक उड़ाते हैं जो आधुनिक रंगशालाओं को उस प्राचीन महिमामयी सज्जा की नक़ल करके सजाते हैं। परन्तु महारानी की निजी रंगशाला में यदि इस प्रकार की नक्काशी, चित्रकारी और अलंकरण न हो, हरम जैसी सजावट और चमक-दमक न हो तो और कहां हो? प्लेट नं० ३८ के चित्र में ऐसे कई सिद्धान्तों का प्रयोग देखा जा सकता है जो कि उस युग की अनेक बड़ी रंगशालाओं में व्यवहृत हुए थे। यह पारस्परिक अर्द्धवृत्ताकार शैली पर निर्मित हुआ है जिसमें बैठने के लिए तीन फ़र्शे हैं। एक सामान्य विशेषता है पाठ-प्रवक्ता का प्रकोष्ठ, प्रेक्षागृह का तुलनात्मक छिछलापन, वाद्य-वृन्द के लिए बना हुआ एकदम नीचा स्थान; जिसकी रचना कुछ इस प्रकार हुई है कि बैठने का स्थान पहिले छज्जे तक उठ गया है। इस चित्र में जो छज्जा दिखाया गया है वह मेरी एंतियोनेतकालीन छज्जे से कुछ अधिक बड़ा और शानदार रेखाओं द्वारा बन गया है। बात यह है कि १८३६ ई० में सम्राट् लुई फिलिप के काल में, उसके बड़े परिवार को ध्यान में रख कर इस छज्जे को बड़ा कर दिया गया था। धन द्वारा जो कुछ भी साधन जुट सकता था सभी जुटाकर इस रंगमंच को सजाया गया था और सेटिंग तैयार करने के लिए बड़े से बड़े कलाकार बुलाये गये थे। जब भी झक सवार होती स्वयं मेरी एंतियोनेत मंच पर अभिनय करती थी। ऐसा वह पाँच वर्षों तक करती रही। हालाँकि अभिनय के लिए वह इस प्रकार लगातार

रंगमंच पर नहीं आती थी जिस प्रकार मदाम दी पाम्पाडोर अपने क़िले के रंगमंच पर प्रस्तुत होती थी।

१९ अगस्त १७८५ ई० की संध्या को महारानी के 'निर्देशन' में अन्तिम बार अभिनय हुआ। क्रान्ति की छाया इस समय तक फ्रांस की धरती पर पड़ने लगी थी। इस संकट के अवसर पर भी शाही दरबार को आमोद-प्रमोद में अपना वैभव-विलास दिखाने और धन बर्बाद करने में संकोच न हुआ। मेरी एंतियोनेत ने उस समय 'दि बार्बर आव सेवाइल,' नामक सुखान्त मनोरंजनपूर्ण नाटक अभिनीत करने का निश्चय किया। महारानी ने स्वयं रोजीना की भूमिका ग्रहण की, और बूमार्के को भी अभिनय के लिए निमंत्रित किया। अभी कुछ समय पहले कामेदी फ्रांके में 'दि मैरेज आव फिगारो' के उद्‌घाटन के अवसर पर एक काण्ड हो चुका था। शहर में अब भी इस बात की ज़ोरदार चर्चा थी कि बूमार्के ने अपने नाटक पर लगाये गये शाही प्रतिबन्ध की ज़रा भी पर्वाह नहीं की और उसने सामन्तों की खुलकर खिल्ली उड़ायी। उसी नाटक के रचयिता को महारानी ने उसी के दूसरे नाटक में अभिनय करने के लिए आमंत्रित किया। यह अभिनय वहां होने वाला था जहां सम्राट् से उसकी मुलाक़ात अवश्य होती! यह पूछा जा सकता है कि यह मात्र साहस का अतिरेक था अथवा इसमें अभिनेत्री-महारानी की निजी रुचि की बात थी (जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं); जिस रुचि के कारण महारानी ने सम्राट् के आक्रोश को नज़रअन्दाज़ करके अपने प्रिय दरबारी को इस तरह बढ़ावा दिया। जो भी हो, इतना तो निश्चित ही है कि शाही नाट्याभिनयों और आमोद-प्रमोदों ने भी उस दिन की सामूहिक घृणा को किसी न किसी मात्रा में अवश्य उद्दीप्त किया जब कि लोकतंत्रवादियों ने सम्राट् और साम्राज्ञी को समान रूप से फांसी पर चढ़ा दिया।

परन्तु यदि महारानी–द्वारा नाट्याभिनय फ्रांस की जनता के एक वर्ग को नापसन्द था तो दूसरी ओर सम्राट की प्रेमिकाओं, दरबारियों आदि को भी इस बात की खुली छूट थी कि वे लगातार उत्सव मनायें, नृत्य करें, तथा वार्साई और दूसरे राज-महलों में आमोद-प्रमोद मनायें और उनमें से कम से कम एक दरबारी सामन्त के लिए नाट्याभिनय वरदान साबित हुआ। यदि स्पष्ट कहें तो मदाम दी पाम्पादोर को ऐसा लगने लगा था कि उसके वासनामय प्रेमी लुई पन्द्रहवें का ध्यान अब उसकी ओर से हटने लगा है। अब सम्राट् का ध्यान फिर अपनी ओर आकृष्ट करने की आवश्यकता उसे अनुभव हो रही थी। उसे अपने को फिर से आकर्षक एवं महत्वपूर्ण साबित करना था। इतिहासज्ञों का कहना है कि वह अभिनय कर सकती थी, नृत्य कर सकती थी और यह कि वह बहुत सुन्दर थी। अगर कमी थी तो केवल एक समुचित रंगमंच की। राजमहल

के एक छोटे बरामदे में प्रेक्षागृह निर्मित हुआ और एक अतिशय सुसज्जित रंगमंच तैयार किया गया। दरबारी सामन्तों के बीच से ही कलाकार-अभिनेता चुने गये। इस प्रकार अभिनेताओं का एक विशिष्ट दल तैयार हो गया जिसमें मदाम दे पाम्पादोर का सबसे महत्वपूर्ण स्थान था। यह संसार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग़ैरपेशेवर अभिनेताओं का दल था और उसमें मदाम दे पम्पादोर ही सबसे अधिक लोकप्रिय, वहुचर्चित अभिनेत्री थीं। उनको इतनी बड़ी सफलता मिली, उनका आकर्षण और योग्यता इतनी प्रभावशाली और मोहक थी कि उन्होंने अपने प्रेमी सम्राट् का हृदय पूरी तरह जीत लिया; साथ ही शाही रंगमंच की भी स्थापना कर दी जो चार वर्षों तक वार्साई के राजमहल का सबसे आकर्षक अंग बना रहा।

इस रंगमंच पर 'एसिस एण्ड गलेटिया' नामक नाटक को अभिनीत किया गया था। सौभाग्य से कोचीन ने उसका अंकन-चित्रण (प्लेट ३९) अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से कर दिया है। इसमें मदाम दे पम्पादोर गलेटिया की भूमिका में रंगमंच पर आती हैं। वाइकाम्ट रोहन एसिस की भूमिका में आते हैं। प्रेक्षकों में सम्राट्, महारानी और शाही दरबार के सदस्यों को देखा जा सकता है। साथ ही, बैठने की व्यवस्था का भी स्पष्ट चित्रण दिखायी देता है। प्रेक्षागृह की सुरुचिपूर्ण सजावट और बारीक कारीगरी का अनुशीलन हमें थोड़ी देर रुक कर करना चाहिए। सम्राट् की एक प्रेमिका के एक खिलौने-सा ही यह छोटा-सा रंगमंच था। सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी में चित्रात्मक सेटिंग तैयार करने की जो प्रवृत्ति चल रही थी उसका एक सजीव उदाहरण इस चित्र में मिलता है। रंगशाला की इमारत का महत्व एक इमारत की दृष्टि से ही अधिक होता है। मंच तो अभिनय की ही दृष्टि से तैयार किया जाता है। परन्तु इस चित्र में देखने से पता चलता है कि लगभग आधी इमारत से स्थापत्य खो-सा गया है। और रंगमंच भी बिल्कुल छिप-सा गया है। इसमें चित्रकार का अपना आदर्श पूरी तरह हावी हो गया है, और अभिनेता (जैसा कि आधुनिकतावादी लोग कहते हैं) उस भव्य चित्र-पट पर सर्वथा ग़ैरमौज़ू लगते हैं।

उस समय ग़ैरपेशेवर पात्रों द्वारा नाटक अभिनीत करने की जो परम्परा चल रही थी, जो व्यापक आन्दोलन चल रहा था, दरबारी रंगमंच उसके अंग विशेष थे। सम्राट और उसके दरबारी जो कुछ करें, उसके नीचे की श्रेणी के लोगों को उसका अनुसरण अवश्य करना चाहिए। उस श्रेणी के नीचे वालों को भी ऐसा ही करना चाहिए। इस प्रकार संभ्रान्त से असंभ्रान्त तक, कुलीन से अकुलीन तक नक़ल करने, अनुसरण करने की यह परिपाटी चलती रहनी चाहिए। गानकोर्ट्स ने लिखा है—"छोटा रंगमंच शहर की किसी हवेली में निर्मित होता है, बड़ा रंगमंच राजमहल में

तैयार होता है। फ्रांस के इस छोर से उस छोर तक सारा समाज रंगमंच का ही स्वप्न देखता है। राजसी महिलाएँ रंगमंच के बग़ैर जी नहीं सकतीं, अपना अभिनय प्रदर्शित करने के लिए उन्हें रंगमंच चाहिए ही।" फिर भी इस सारी प्रक्रिया का केवल सामाजिक महत्व है। अक्सर, ग़ैरपेशेवर अभिनेता से अधिक अच्छे साबित होते हैं। वे पेशेवर अभिनेताओं से कम बनने वाले, अधिक दत्तचित्त और नाटक की आत्मा के प्रति, मूल भावना के प्रति अधिक निष्ठावान् होते हैं। आज जब कि दो महाद्वीपों पर 'छोटे' रंगमंचों का आन्दोलन इतना व्यापक हो गया है, हमें इस बात के प्रमाण मिल रहे हैं, परन्तु रंगमंच के विकास का अध्ययन—अनुशीलन करते समय हमारा ध्यान ग़ैरपेशेवर रंगमंचों की ओर बहुत अधिक देर तक नहीं टिक पाता। हमारा ध्यान तो पेशेवर रंगमंचों की ओर ही, अधिक अंशों में, लगा रहता है।

इस युग में इँगलैण्ड में, प्रेक्षक गैरिक के नवीन युग–विधात्री सूझ-बूझों के फल का आनन्द ले रहे थे। यद्यपि ब्रिटिश रंगमंच का पतनकाल अब शुरू हो गया था फिर भी निश्चय ही तत्कालीन फ्रांस की तुलना में इंगलैण्ड की अभिनय कला बहुत अधिक आगे बढ़ी हुई थी। मगर जब गैरिक ने १७७६ ई० में ड्रूरी लेन की व्यवस्था से अवकाश ग्रहण किया तो इँगलैण्ड के सबसे महान् अभिनेताओं ने भी रंगमंच से सम्बन्ध तोड़ लिया, और इसी समय लन्दन के रंगमंच से वह एक मात्र सर्वश्रेष्ठ निर्देशक भी हट गया जिसने अपनी शताब्दी में नाट्याभिनय के कार्य को अत्यन्त शान-बान के साथ संगठित किया था, जिसने रंगमंच को एक महत्ता और मर्यादा प्रदान की थी और अभिनय कला को अन्य कलाओं के समकक्ष ला बिठाया था।

बहुत दिनों से नाट्य रचना की कला में गिरावट आ गयी थी। और गैरिक तथा उसके साथियों ने पूर्व की नाट्य रचनाओं, विशेष कर शेक्सपियर के नाटकों के साथ जो आज़ादी ली थी, उनमें जो हेरफेर किया था, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि तत्कालीन रुचि में गिरावट आने लगी थी, वह अमानवीय होने लगी थी; उसमें कठिन, गतिहीन, ख़राब नाटक लिखे जाने लगे थे। सबसे बुरी बात यह थी कि महान् प्राचीन नाटकों को रूपान्तरित कर दिया जाता था या उनका अंग-भंग कर दिया जाता था। ऐसा वे इसलिए करते थे कि अभिनय में सरलता है अर्थात् ये नाटक अच्छे अभिनय के वाहक अथवा साधन बन सकें। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रंगमंच को अत्यन्त सम्मानित पद मिल गया था; उसके लिए व्यापक लोक-रुचि उत्पन्न हो गयी थी और पढ़े-लिखे लोगों की व्यापक आलोचनात्मक दृष्टि भी उनकी ओर हो गयी थी। अभिनेताओं के एक वर्ग ने इस समय अंग्रेजी समाज में अपने लिए अभूतपूर्व सम्मानित स्थिति बना ली थी।

यहां ग़ैरपेशेवर रंगशालाओं के लिए कोई व्यापक अभिरुचि उत्पन्न नहीं हुई थी। दरबार ने रंगमंच के प्रति किंचित् भी आस्था नहीं प्रकट की। हां, शाही दरबार का पुरुष वर्ग रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले स्त्री वर्ग के प्रति थोड़ी बहुत आसक्ति अवश्य प्रकट करता था। अभिनेत्री-प्रेमिका की परम्परा अवश्य ही यथारीति चलती जा रही थी। जनता यह आशा करती थी कि जो कोई महत्वपूर्ण अभिनेत्री होगी उसका कोई न कोई सामन्त अथवा फ़ैशनेबुल प्रेमी अवश्य होगा—हो सकता है कि उसके एक से अधिक प्रेमी हों—और इसी प्रकार अनेक राजाओं अथवा सामन्तों का सम्बन्ध रंगमंच के इतिहास के साथ स्थापित हो जाता था। तेज़-तर्रार और शोख़ तथा लोकप्रिय लौंडी डोरोथी जार्डन ने उस व्यक्ति के साथ लगभग विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया (उससे उसे दस बच्चे हुए) जो बाद में विलियम चतुर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। होरेस वालपोल ने एलिज़ाबेथ फ़ैरन का वर्णन करते हुए बताया है कि वह सर्वाधिक कुशल अभिनेत्री थी। उसने अर्ल आव डर्बी से विवाह करने के लिए अपना रंगमंचीय जीवन समाप्त कर दिया। इसी समय अर्ल आव डर्बी की प्रथम स्त्री का सौभाग्य से देहान्त हो गया और एलिजाबेथ फ़ैरन को पटरानी का पद मिल गया। कुशल अभिनेत्री श्रीमती राबिंसन ने 'समाज' , ग्रंथ रचना, जेल-जीवन और अभिनय का अनुभव प्राप्त करने के बाद प्रिंस आव वेल्स (बाद में जार्ज चतुर्थ) की प्रेमिका बनने का भी सौभाग्य प्राप्त किया। परन्तु यह प्रणय सम्बन्ध कुल दो वर्षों तक चला और सम्राट् ने उसके प्यार की पूरी क़द्र नहीं की। परन्तु इन सम्बन्धों के आधार पर राजवंश और अभिनय कला में भी सम्बन्ध स्थापित करना ग़लत होगा। सच यह है कि इस युग के बाद से अंग्रेज़ सम्राटों और साम्राज्ञियों ने अपने लिए अलग-अलग अ-रंगमंचीय रास्ते चुनने शुरू किये (अब इनके रंगमंच के साधन और इनके संरक्षण का पात्र कुछ और चीज़ें हो गयीं), और इस प्रकार, लोकतंत्र के सर्वस्वीकृत जन्मकाल से पहिले ही रंगमंच को पूर्णतया 'जनता' का ही प्रश्रय और समर्थन मिलने लगा। कुशाग्र-बुद्धि गैरिक ने ड्रूरी लेन से काफ़ी धन कमाया। साथ ही उसने नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में भी अत्यन्त उच्च स्तर कायम रखा; नाटकों के चुनने में भी तत्कालीन कृत्रिमता-पूर्ण और संशयालु रुचि का ध्यान रखते हुए उसने कुशलता दिखायी। मगर जब उसने वह रंगमंच छोड़ दिया तो रंगमंच के जीवन में भी उतार-चढ़ाव आने लगे; उसे भी अपने को एक स्वतंत्र आर्थिक दृष्टि से सफल संस्था के रूप में बनाये रखने के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस पूरे व्यापार में कभी क्षणिक रूप से सौन्दर्य और सम्पन्नता के अवसर भी आये, मगर उसका महत्व निरन्तर समान रूप से बना न रह सका। तब से कुल १७५ वर्षों तक, इंगलैण्ड में कोई भी ऐसी संस्था न पनप सकी जिसे

राष्ट्रीय रंगमंच का नाम दिया जा सके।

गैरिक के अवकाश ग्रहण करने के तीन वर्ष पूर्व एक प्रतिभा अवश्य उदित हुई थी, और मज़े की बात यह है कि इस प्रतिभा का उदय हुआ था 'कांवेंट गार्डन थियेटर' नामक एक प्रतिद्वन्द्वी रंगशाला में। कभी इस रंगशाला में नृत्य-नाट्य हुआ करते थे। इसी में १७७३ ई० के मार्च महीने में आलिवर गोल्डस्मिथ का 'शी स्टूप्स ट कांकर' नामक नाटक रंगमंच पर पहिली बार प्रस्तुत किया गया। जनवरी १७७५ ई० में रिचर्ड ब्रिन्सले शेरीडन का नाटक 'दी राइवल्स' भी यहाँ अभिनीत हुआ। इस प्रकार इस निर्जीव युग में भी, एकाएक इंगलैण्ड में अठारहवीं-उन्नीसवीं शताव्दी के लगभग-अमर एक पात्र नाटककार का आविर्भाव हुआ।

गोल्डस्मिथ अपने पूर्ववर्ती सुखान्त नाटककारों का बहुत कम ऋणी है। वह शेरीडन से अधिक उन्नीसवीं सदी के नाटक–रचना–कौशल का प्रणेता है। 'रेस्टोरेशन' काल के नाटककारों की रचनाओं में वाक्पटुता में सरगर्मी की कमी थी और जीवन से एक प्रकार का जान-बूझ कर लायी गयी असंपृक्तता थी। मगर गोल्डस्मिथ ने अपनी रचना में ताज़गी और स्वाभाविकता पैदा की। वह सरगर्मी की कमी और असंपृक्तता से बच गये। यद्यपि अब भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि जब क्रोकर, हार्ड कैसिल, और लम्पकिन जैसे पात्र अपनी भूमिका अदा करते हैं तो 'यथार्थ' शब्द को कोई औचित्य प्राप्त हो सकता है। फिर अनेक स्वगत-कथनों और 'आश्चर्य तथा क्रोध से उत्पन्न चीत्कार' और अनेक 'ज़ाउण्ड्स' के बावजूद 'शी स्टूप्स टु कांकर' की प्रारम्भिक पंक्तियों का घरेलूपन सम्पूर्ण नाटक में, आदि से अन्त तक, बना रहता है:

श्रीमती हार्डकैसिल

मैं क़सम खाती हूं, श्री हार्ड कैसिल, आप बहुत विचित्र आदमी हैं। हमारे अतिरिक्त क्या सारे देश में कोई और भी ऐसा है जो कभी-कभी नगर न जाता हो, वहां जाकर अपनी धूलन झाड़ आता हो? देखो न, दोनों हाग्स कुमारियाँ हैं और हमारी पड़ोसिन श्रीमती ग्रिग्सबी भी तो हैं—जो हर जाड़े में एक महीने के लिए अपने पर पालिश चढ़ाने शहर अवश्य जाती हैं।

हार्ड कैसिल

ठीक है, और वहां से पूरे साल भर के लिए झूठा गर्व और बनावट साथ ले आती हैं। लन्दन आखिर अपने सारे मूर्खों को अपने पास ही क्यों नहीं रखता? मेरे ज़माने

में, शहर की मूर्खताएँ बहुत धीरे-धीरे हमारे बीच फैल पाती थीं मगर अब तो वे घोड़ा गाड़ी से भी अधिक तेज़ी से चलती हैं।...

......मुझे हर पुरानी चीज़ से मुहब्बत है : पुराने दोस्तों से, पुराने ज़माने से, पुरानी रीति-नीति से, पुरानी पुस्तकों से, पुरानी शराब से, और मेरा विश्वास है डोरोथी (उसका हाथ अपने हाथों में लेते हुए) कि तुम भी स्वीकार करो करोगी कि मैं अपनी पुरानी स्त्री से भी बहुत मुहब्बत करता हूं।

मार्लो और केट के बीच जो वार्तालाप होता है, उसका भी एक अंश यदि उद्धृत किया जाय तो उसमें हमें प्राचीन कृत्रिमता के साथ ही एक नवीन ताजा कोमलता भी मिलेगी :

मार्लो (अलग हट कर)

हाय भगवान्, वह तो रो रही है। एक शालीन सामान्य स्त्री में पहिली बार मुझे इस प्रकार की कोमलता दिखायी दे रही है, और इसने मेरे हृदय को छू लिया है। (उससे) क्षमा करना सुन्दरी, इस परिवार में तुम्हीं एक ऐसी स्त्री हो जिसे छोड़ कर जाने को मन नहीं होता। मगर यदि मैं तुमसे स्पष्ट कहूं तो हमारे वंश, सम्पन्नता और शिक्षा-दीक्षा में इतना अन्तर है कि हम दोनों में सम्मानपूर्ण सम्बन्ध होना असम्भव मालूम पड़ता है। और मैं उस मासूमियत को धोखा नहीं देना चाहता जिसने मेरे ऊपर विश्वास किया है, मैं उस व्यक्ति का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहता जिसका क़सूर सिर्फ़ यह है कि वह अत्यन्त प्यारी है।

मिस हार्डकैसिल (अलग हट कर)

उदार व्यक्ति! मुझे तो इसके प्रति श्रद्धा होने लगी है। (उससे) मगर मेरा परिवार तो मिस हार्ड कैसिल के सरीखा ही भला है, और यद्यपि मैं ग़रीब हूं, परन्तु संतोषी व्यक्ति के लिए यह कोई बहुत बड़ा अभिशाप नहीं है।...

गोल्डस्मिथ ने इसके पूर्व एक दूसरा सुखान्त नाटक लिखा था जिसका नाम था 'दी गुड नेचर्ड मैन।' मगर यह नाटक 'शी स्टूप्स टू कांकर' की तुलना में कम ओजस्वी है और इसको उतना अधिक सम्मान भी नहीं मिल सका। नाटककार उसकी सफलता

का उत्सव मनाने के एक वर्ष बाद ही मर गया—इस समय तक इसका विजय-अभियान धीरे-धीरे दोनों महाद्वीपों के रंगमंचों तक पहुँचने लगा था।

रंगमंचीय नभ में नाटककार और नाट्य प्रस्तुतकर्ता के रूप में शेरीडन चमकते नक्षत्र की भांति उदित हुए और फिर राजनीति, 'शानदार ज़िन्दगी' और कर्ज़ के धुँधलके में खो गये। कुछ वर्षों तक वह ब्रिटिश रंगमंच के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में, केवल नाटककार के रूप में ही नहीं, प्रस्तुतकर्त्ता के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे। यद्यपि लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने नाम के लिए ड्रूरी लेन पर आधिपत्य किया परन्तु धीरे-धीरे उपर्युक्त दोनों हैसियतों में उनका महत्व घटने लगा। 'दी राइवल्स' और 'दी स्कूल फ़ार स्कैण्डल' अब भी पुस्तकालयों की अल्मारियों की शोभा बने हुए हैं : वे अब भी संगीत-नाटक गृहों के कक्षों में रखे हुए हैं—इस बात के प्रमाणस्वरूप कि शेरीडन में सुखान्त नाट्य-रचना की कितनी नैसर्गिक प्रतिभा थी। स्कूल के बच्चे, जो उसके नाटकों का शीर्षक तक भूल गये हैं, मिसेज़ मालाप्राप, और लिडिया लैंग्विश, सर लुशियश ओ'ट्रिगर और लेडी स्नीयरवेल, चार्ल्स सरफ़ेस, लेडी टीज़िल और सर बेंजामिन बैकबाइट को अब भी याद करते हैं।

मस्त-मौला शेरीडन चौबीस वर्ष की उम्र में ही 'दी राइवल्स' के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। उनकी वाक् चातुरी की प्रशंसा होने लगी थी और समाज में वह पूछे जाने लगे थे। उसी समय वह एक महिला के साथ भाग निकलने के लिए शोहरत हासिल कर चुके थे। पच्चीस वर्ष की उम्र में उनको 'दी डुयना' के कारण दूसरी सनसनीपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। संगीत के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए ही यह नाटक लिखा गया था। यह नाटक रंगमंच पर बहुत दिनों तक सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया। फलतः उन्होंने इतना धन कमाया कि जब ड्रूरी लेन थियेटर से गैरिक अवकाश ग्रहण करने लगे तो इन्होंने उसकी बहुत बड़ी हिस्सेदारी खरीद ली। जब वह छब्बीस वर्ष के हुए तो उन्होंने अपने परिवार के ६ व्यक्तियों के साथ उस ऐतिहासिक रंगशाला की व्यवस्था करनी शुरू कर दी। इस प्रकार उन्होंने लन्दन के रंगमंचीय जीवन में एक सर्वथा नवीन और गौरवशाली युग का समारम्भ किया और अपनी रचना 'दी स्कूल फ़ार स्कैंडल' को रंगमंच पर अभूतपूर्व ओजस्विता के वातावरण में प्रस्तुत करके उसे युग की एक घटना बना दिया। वालपोल ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है—"ऐसा लगता था कि इसके द्वारा रंगमंच को आश्चर्यजनक रूप में पुनर्जीवन प्राप्त हो गया।"

शेरीडन मात्र एक पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं थे जो रंगमंच पर अपनी रचना और अभिनय-सम्बन्धी कुछ सिद्धान्तों को लेकर प्रस्तुत हो गये थे। उनके पिता अभिनेता

थे—यद्यपि वह बहुत कुशल और सफल अभिनेता नहीं थे, फिर भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। शेरीडन की मां एक लेखिका थीं। वह ऐसी मण्डली में उठते-बैठते थे जिसकी गहरी रुचि रंगमंच में थी। अपनी उम्र के अनुसार उन्हें जीवन का व्यापक निजी अनुभव भी प्राप्त था। जब उन्होंने ड्रूरी लेन की व्यवस्था अपने हाथ में ली तो इँगलैण्ड की सर्वश्रेष्ठ अभिनय करने वाली कंपनी उन्हें उत्तराधिकार में मिली। यह एक बड़ी पूंजी थी जिसकी क़ीमत उन्होंने पहिचानी। वह अपने प्रखर रुचि वाले उन प्रेक्षकों को भी पहिचानते थे जिन्हें प्रसन्न करने के लिए उन्हें अपने नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत करने थे। उस समय की रंगमंचीय कला की सीमाओं और मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कुछ वर्षों तक लन्दन की जनता को नाट्योत्सवों का आनन्द प्रदान किया। जब कभी उनकी नाटक-मण्डली में कोई स्थान रिक्त होता तो वह देश की सर्वश्रेष्ठ नवीन प्रतिभा को चतुराई के साथ ढूंढ निकालते।

परन्तु यह भी एक सच्चाई है कि शेरीडन ने इस काल में केवल एक और नाटक लिखा—'दी क्रिटिक' या 'ए ट्रेजेडी रिहर्सड'—उस समय कोई अन्य नाटककार ऐसा न हुआ जिसका नाम याद रखा जाय। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि इन चार नाटकों को लिखकर ही शेरीडन ने नाट्य-रचना की अपनी प्रतिभा अथवा महत्वाकांक्षा समाप्त कर दी। फिर शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि रंगमंच और अभिनय में उनकी रुचि प्राथमिक न थी, गौण थी। शेरीडन एक संभ्रान्त व्यक्ति थे। राजनीति और सामाजिक जीवन ने उनका अत्यधिक समय और शक्ति ले ली और उन्हें नाटक रचने और उन नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का समय ही न मिल सका। दिन दिन व्यवस्था-कार्य दूसरे लोगों के हाथों में जाने लगा। एक रात उनकी रंगशाला में, जिसे उन्होंने तोड़ कर ऐसा बनवा लिया था कि वह युरोप की द्वितीय रंगशाला बन गयी थी और जिसमें एक साथ ३९०० प्रेक्षक बैठ कर अभिनय देख सकते थे, आग लग गयी। उस समय शेरीडन 'हाउस आव कामंस' में एक वाद-विवाद में हिस्सा ले रहे थे। जब उन्हें आग लगने की सूचना दी गयी तो भी उन्होंने वाद-विवाद छोड़ कर जाने से इन्कार कर दिया। यह घटना १८०९ ई० की है। अब निर्देशन का कार्य अपने हाथ में लिए हुए उन्हें तैंतीस वर्ष हो चुके थे। इस अग्निकाण्ड के बाद से रंगमंच के साथ उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी समाप्त हो गया। कला की दृष्टि से इसके साथ उनका जो सम्बन्ध था वह भी अगले बीस वर्षों बाद खत्म हो गया।

एक समय जो अत्यन्त उत्कृष्ट और सुव्यवस्थित कंपनी थी उसमें निर्देशन की कमी के कारण विघटन आने लगा और षड्यंत्रों का दौर शुरू हो गया। निर्देशक के स्थान पर अन्य लोगों ने व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। कभी ये लोग ठीक ढंग से

मेरी बेटी विद्या की संतति बने, मैं नहीं समझती कि बहुत अधिक पढ़ना-लिखना किसी भी तरुणी के लिए शोभा की बात है; उदाहरण के लिए, मैं उसे कभी भी ग्रीक या हिब्रू या अलजब्रा या इस प्रकार के अन्य विषयों के झंझट में नहीं फँसने दूँगी। उसके लिए यह भी आवश्यक नहीं होगा कि वह तुम्हारे किसी अंकगणित, ज्योतिष या ड्राइंग के औज़ारों को छुये। मगर सर अन्थोनी, जब वह नौ वर्ष की हो जायगी तो मैं उसे बोर्डिंग स्कूल में भर्त्ती करा दूँगी जिससे वह थोड़ी-सी कुशाग्र बुद्धि हो जाय और थोड़ी चतुर हो जाय। तब, श्रीमान्, उसे थोड़ा-बहुत हिसाब-किताब रखना आ जायगा। जब कभी वह बड़ी हो जायेगी तो मैं उसे ज्यामिति पढ़ाऊंगी, जिससे उसे आस-पास के देशों के बारे में जानकारी हो जायेगी और सर अन्थोनी, इससे भी अधिक मैं उसे मर्यादाशील लड़की बनाना चाहती हूँ। जिससे वह शब्दों को अशुद्ध न लिखे, न उनका अशुद्ध उच्चारण ही करे, जैसा कि आजकल लड़कियाँ अत्यन्त शर्मनाक ढंग से करती हैं। साथ ही वह जो कुछ कहती है इसका अर्थ भी वह अच्छी तरह समझ सके। सर अन्थोनी, मैं चाहती हूँ कि एक औरत बस इतना भर जान ले। मैं नहीं जानती कि मैं जो कुछ कह रही हूँ उसमें कोई लग़ो बात है।...फिर मेरी भाषा पर कोई आरोप? आपका इसके बारे में क्या विचार है? मेरे वाक्यांशों पर लांछन? कितनी बड़ी निठुरता है यह? निश्चय ही यदि मैं संसार में किसी बात पर गर्व करती हूँ तो अपनी भाषा पर, अपनी सुन्दर शब्द-योजना पर!

शेरीडन और गोल्डस्मिथ ही दो ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें हम बाद में नाटककारों के लिए उत्तराधिकार के रूप में कुछ देन छोड़ जाने वाले महान् नाटककारों के रूप में याद करते हैं। परन्तु इस युग में कुछ ऐसे साधारण लोग भी हुए हैं जो अपनी चित्रात्मक विशेषता और महती तत्कालीन लोकप्रियता के कारण उल्लेखनीय हो गये। उस समय एक अभिनेत्री थी जिसको स्थायी सम्मान मिला। नाटककारों में जार्ज कोलमैन नामक पिता-पुत्र, थामस हालक्रोफ्ट, जान ओ'केफे और फ्रेडरिक रेनाल्डस थे। ये सभी खूब जमकर लिखने वाले लोग थे। यही इनकी विशेषता थी। कहा जाता है कि इनमें से अन्तिम व्यक्ति फ्रेडरिक रेनाल्डस ने सौ नाटक लिखे। इन सब नाटककारों के सम्बन्ध में एक हँसी आने वाली और अत्यन्त दुःख बात यह थी कि ये लोग अपने युग के रंगमंच को अच्छी तरह समझते थे, इसलिए इनको सनसनीपूर्ण सफलता मिलती थी, लोग इनके नाटकों के पीछे पागल हो जाते थे, परन्तु अन्त में वे एकदम ग़ायब हो जाते थे। विदूषक तो सबकी हँसी के पात्र बन जाते थे। उनके लिए थोड़ी बहुत सहानुभूति भी जगती थी। असंस्कृत बूढ़ा बाप सोने के दिलवाला साबित

होता था। 'इन्जीन्यू'—मृदु, अबोध वालिका, जिसमें मोहक बचपना था, लोकप्रिय सुखान्त-रंगमंच पर अपने विजय अभियान के लिए निकल पड़ती थी। यहाँ आधुनिक चरित्र रचना, तथा ऐसे पात्रों की कल्पना, जो ठोक-पीट कर मानवीय बना लिये जाते थे—के लिए एक प्रयास-सा दिखायी देता है। परन्तु पात्रों के इस रूप-निरूपण में अतिशय भावुकता से काम लिया जाता था।

एक ज़माने तक अभिनेताओं में परम्परागत 'टाइप' के चरित्र-चित्रण से बहुत कम भिन्नता दिखायी देती है। घिसी-पिटी रंगमंचीय जीवन-कल्पना ही प्रदर्शित होती रही, गहराई में उतरने की कोशिश बहुत कम हुई। यह युग अत्यन्त सुरुचिपूर्ण था; इसमें सच्ची भावनाओं को छिपा कर रखा जाता था और संसार के सामने तक कठोर, उद्दीप्त वाह्यरूप दिखा दिया जाता था। समस्त बुराइयों और समस्त अच्छी भावनाओं पर एक चातुर्यपूर्ण संशय का पर्दा पड़ा रहता था। मानवीय संवेगों और आध्यात्मिकता को युग की मांग के प्रतिकूल माना जाता था। तब फिर पात्रों से यह कैसे आशा की जाती सकती थी कि वे भावनाओं की सच्चाई अथवा गहरे संवेगों को अपने अभिनयों में प्रकट करें? केम्बल्स के समय तक अभिनेताओं में से वे लोग जो अस्वाभाविक पात्रों की भूमिका करते थे, सबसे अधिक आकर्षक होते थे। वह 'सज्जन' स्मिथ जिसका ऐसा नाम केवल इस लिए पड़ा था कि वह सामान्य अभिनेताओं से बिल्कुल भिन्न था, शिक्षित, सुरुचिपूर्ण, सुन्दर वस्त्रावृत, धनाढ्य, और एक संभ्रांत व्यक्ति की बेटी से विवाहित। वह दूसरे शौकीन तबियत लोगों को रंगमंच पर ला सकता था। एक तेज़ ज़बान, बात-बात में बदल जाने वाली महिला श्रीमती अबिंग्टन ने, जो निश्चित रूप से अपना जीवन खूब अच्छी तरह व्यतीत करने के बाद ही रंगमंच पर आयी थीं, लेडी टीज़ेल की भूमिका में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। और जार्ज फ्रेडरिक कुक, एक विचित्र अभिनेता, जिसे शराब पीने के बाद ही अभिनय करने की प्रेरणा मिलती थी, अक्सर इस नशे की स्थिति में, क्षण भर के लिए प्रतिभा के उच्चतम शिखर तक पहुँच जाता था। मगर इसी नशे के कारण वह देर तक अभिनय करने लायक न रह सका। अक्सर अपने व्यक्तिगत अभिनयों का इसने सत्यानाश कर डाला क्योंकि अब वह अपने पैरों के बल खड़े होकर केवल अभिनय कर सकता था, उसमें रचनात्मक क्षमता लुप्त हो गयी थी। (जब लन्दन में टिका रहना असम्भव हो गया तो वह अमरीका चला गया। वहाँ उसने प्रभूत सफलता प्राप्त की, यद्यपि उसने जानबूझ कर वहाँ के तथाकथित-शालीन लोगों को अपमानित भी किया। उसने शराबख़ोरी की भर्त्सना करने वाली नैतिकतापरक भावनाओं को व्यक्त करके ही अपना अभिनय समाप्त किया।)

मगर इन सब में सारा सिड्डन्स का स्थान सबसे ऊंचा था। ब्रिटिश रंगमंच के सत्यमेव महान् अभिनेताओं में इनका स्थान था। इनके भाई जान फिलिप केम्बेल इनके समकक्ष थे। यद्यपि उनमें उतनी तेजस्विता न थी, फिर भी उनका दबदबा सारा सिड्डंस की ही तरह था और लगभग पच्चीस वर्षों तक उन्होंने अपनी बहिन की तरह ही रंगमंच पर अपना आधिपत्य बनाये रखा। यह महिला पवित्र, मर्यादाशील और बात-व्यवहार में किंचित शुष्क थीं। इसलिए वह फैशनेबल समाज के दिखावटी उच्छृंखलता-पूर्ण जीवन से बिल्कुल दूर थीं और इसीलिए उन्हें रंगमंचीय जीवन की कठिनाइयों, षडयंत्रों और झगड़ों में नहीं उलझना पड़ा। उनके रंगमंचीय जीवन में एक ही कठिनाई आयी। यह कठिनाई आयी ड्रूरी लेन थियेटर में इनके अभिनय-जीवन के बिल्कुल आरम्भिक काल में जबकि इन्होंने अपने पिता की कंपनी में अत्यधिक सफलता प्राप्त की थी, पहिले शिशु अभिनेत्री और फिर एक प्रधान महिला के रूप में। (यद्यपि इनकी उम्र अभी बीस साल की भी नहीं थी) (जब सत्ताईस वर्ष की आयु में १८७२ ई० में ड्रूरी लेन रंगशाला में दूसरी बार जब यह प्रेक्षकों के सम्मुख आयीं तब वह उन महत्वपूर्ण अवसरों में से एक साबित हुआ जब कि एक महानगर की जनता रंगमंच की रानी की विशेषताओं को स्वीकार करती है, मान्यता प्रदान करती है, अभिनन्दित करती है। उस विजयिनी रात के बाद पहिले ड्रूरी लेन और बाद में कोवेंट गार्डेन में वह सर्व प्रधान, प्रथम अभिनेत्री के रूप में, बराबर अप्रतिम और अप्रतिहत बनी रहीं। उनकी अभिनय शैली को 'क्लासिक' (शास्त्रीय) का स्थान और आदर मिला। उस समय फ्रांस में जो अभिनय-शैली प्रचलित थी उससे इनकी अभिनय-शैली का कोई सम्बन्ध न था। इनकी अभिनय-शैली में सादगी और संयम की ओर अधिक झुकाव था। यद्यपि उसमें अब भी कुछ कृत्रिमता थी, ऊपरीपन था, स्पष्टतः 'कुलीनता' थी, परन्तु यह उनकी भावना और मर्यादाशील, शानदार बाहरी रूप की ही प्रतिच्छाया थी। उनके अन्दर कहीं एक आग सुलग रही थी, एक कल्पना जाग रही थी। और, जब वह मान-मर्यादापूर्ण शाही भूमिकाओं में उतरती थीं तो इस निजी भावना के कारण वह जनता आन्दोलित और चमत्कृत हो उठती थी जो अब तक बिल्कुल रूढ़िवादी और कमज़ोर अभिनय देखने की अभ्यस्त थी। उन्होंने महान् शेक्सपीरियन प्रमुख नारी-पात्रों की भूमिकाएँ कीं। 'लेडी मैकबेथ' की भूमिका में उनको अत्यधिक प्रसिद्धि मिली। तत्कालीन अतिशय 'प्रचलित' नाटकों में भी उन्होंने भावुकतापूर्ण प्रमुख भूमिकाएँ कीं।

जान फिलिप केम्बल अपनी बहिन के ठीक पुरुष-प्रतिरूप थे। हां, उनमें वह कल्पना न थी, वह तेज न था। जब किसी ऐसे सामन्त नायक की भूमिका करनी पड़ती जो दृढ़तापूर्वक उच्च आदर्शों का पालन तो करता परन्तु जिसमें कोई महान् प्रेरणा

न होती तो वह प्रत्येक सम्भव कौशल एवं निपुणता का परिचय देते। उनका अभिनय उच्चस्तरीय, शाही और विशद होता था। यहां से वहां तक उनके अभिनय में एक संलग्नतापूर्ण सच्चाई होती थी जिसे उन्होंने परिश्रम के साथ अर्जित किया था। उनकी बहिन को यह विशेषता सहज ही प्राप्त थी। उन्होंने पौरोहित्य के लिए अध्ययन किया था। इसलिए उनके अभिनय में, कुछ आलोचकों ने बाद में, किसी अंक में एक भारीपन और अनिवार्य मात्रा से अधिक मर्यादा लक्षित की थी। उनकी इस स्वभावगत जानबूझ कर अभिनय करने की कला ने उन्हें विश्वसनीय अभिनेता तो बना दिया था, परन्तु उनकी कला रोमांचकारी अथवा स्वतः प्रेरित न थी। फिर भी उन्होंने और उनकी बहिन ने दो दशाब्दियों तक लन्दन के रंगमंच पर अपना सिक्का जमाये रखा।

फिलिप केम्बल पन्द्रह वर्षों तक न केवल प्रमुख अभिनेता रहे, वरन् वह उस समय ड्रूरी लेन थियेटर के मंच व्यवस्थापक भी थे जब कि शेरीडन नाममात्र को उसके संचालक थे। अपनी बहिन से अधिक उन्होंने अपनी अभिनय-प्रणाली को एक नवीनता प्रदान की और दिखा दिया कि क्लासिक अभिनय एक शाही, अनलंकृत, संयमपूर्ण वस्तु है। उन्होंने कमोबेश अनेक शेक्सपीरियन नाटकों को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि लन्दन के प्रेक्षक चमत्कृत और विस्मित हो गये। उन्होंने पुरानी और दारिद्र्यपूर्ण सेटिंग को हटा दिया। और फ्रेंच, इटालियन निकृष्ट साज-सज्जा एवं अलंकरण के स्थान पर, जिसे 'वास्तविकता-परक' माना जाता था परन्तु वह वास्तविकता क्लासिस्ट फ़ैशन की होती थी, उन्होंने उसे विशद और शाही या खूब तड़क-भड़क वाला बना दिया। गैरिक के युग से ही शेक्सपीयर को 'और भी अच्छा' बनाने की प्रक्रिया चलती चली आ रही थी। केम्बेल और उसके प्राम्पटर ने 'कोरियोलेनस' को फिर से रूपान्तरित किया, और उसे इस प्रकार प्रचारित किया गया—'कोरियोलेनस या दी रोमन मेट्रन,' शेक्सपियर और थाम्सन की एक परिवर्तित संशोधित दुखान्त कृति।

सारा सिड्डन्स और जान फिलिप केम्वल अगली शताब्दी तक अच्छी तरह चलते रहे। इसके बाद अभिनय, नाट्य रचना और प्रस्तुतीकरण के सारे प्राचीन मानदण्ड नष्ट हो गये। अब ये संक्रान्ति काल के चिन्ह नहीं रह गये, बल्कि ये स्वयं में एक युगान्त के प्रमाण बन गये। यदि हम मान लें कि यह ऐसा युग था जिसे हम क्लासिक कह सकते हैं—आगामी 'रोमाण्टिक' और 'रियलिस्टिक' युग से भिन्न—तो इस युग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण यही दोनों व्यक्ति थे।

परन्तु परिवर्तन की शक्तियां, जिनके कारण ही इस अध्याय का ऐसा शीर्षक बना, इँगलैण्ड में बहुत कम स्पष्ट हो पायीं (यद्यपि उस देश में अमेरिकन और फ्रेंच क्रान्तियों के बहुत पहिले से एक हद तक लोकतंत्रवाद का आरम्भ हो चुका था)। केम्बल

के आधिपत्य काल में एक ऐसी घटना घटी जो इस बात का प्रमाण थी कि भीतर ही भीतर रंगमंच पर भी लोकतंत्र के प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे थे। यदि आप १८०९ ई० में १८ सितम्बर और १५ दिसम्बर के बीच किसी शाम को कोवेंट गार्डन थियेटर में गये होते तो आप वहां के प्रेक्षागृह में, रंगमंच पर नहीं, एक असाधारण प्रकार का अभिनय देखते। उन तीन महीनों में केम्बल की कंपनी ने अपने नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये या उन्हें नृत्य-नाट्य के रूप में अभिनीत किया। इस अभिनय में ज्यों ही कोई अभिनेता कुछ कहने के लिए अपना मुँह खोलता, प्रेक्षक स्वर-तालबद्ध ढंग से शोर मचाना शुरू कर देते "ओ-पी, ओ-पी, ओ-पी!" और तब सारी जनता उठ खड़ी होती, 'नृत्य' करने लगती, जमीन पर पाँव पटकने लगती अथवा 'ओ–पी, ओ–पी' से ताल मिलाकर बेंत पीटने लगती। बीच-बीच में वह तरह-तरह की आवाज़ें करती, सीटियाँ बजाती, सिसकारी भरती, घंटिया बजाती और प्रेक्षागृह में प्रचलित विरोध के अन्य तरीक़े अपनाती। इन तीन महीनों में कुल इकसठ बार अभिनय हुए पर इस पूरे काल में ये विरोधात्मक प्रदर्शन होते रहे। ये प्रदर्शन, इस रूप में, सामान्य ढंग से नहीं होते थे: बीच-बीच में घूंसेबाजी, गिरफ़्तारियों और ओ–पी के चिन्ह वाले झण्डे लेकर जुलूसों का भी दौर चलता रहा। परन्तु इस बात को सदा ध्यान में रखा गया कि अभिनेताओं को इस झगड़े से अलग रखा जाय।

"ओ–पी" का अर्थ "ओल्ड प्राइसेज़" और लन्दन की जनता सिर्फ़ यह प्रदर्शन करना चाहती थी कि वह अपने प्रिय कला-मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए प्रवेश-शुल्क में बढ़ोत्तरी नहीं चाहती। केम्बल और उनके सहयोगियों ने देखा कि नयी स्थिति में जब रंगमंच पर नाटकों को प्रस्तुत करने की प्रणाली में परिवर्तन कर दिया गया है और नाट्य-नृत्य की नयी इमारत में भी बहुत कुछ खर्च हो गया है तो पुराने प्रवेश शुल्क से पूरा नहीं पड़ सकता। इसलिए उन्होंने प्रत्येक सीट के किराये में छः पेंस अथवा एक शिलिंग की वृद्धि कर दी। रंगशाला लगातार इन इकसठ अभिनयों में बढ़े हुए मूल्यों के आधार पर ही उठायी गयी। परन्तु इस पूरे समय में, जब केम्बल ने पहिली रात में नाटक की प्रस्तावना के लिए मुँह खोला तब से लेकर तीन महीने बाद तक अभिनेताओं की आवाज़ें विरोधी स्वरों और शोर-गुल की लहरों में डूबती रहीं। "ओल्ड–प्राइसेज", "ओल्ड प्राइसेज" का नारा 'ओ–पी, ओ–पी, ओ–पी' की टेक में बदल गया। जनता संगठित हो गयी, ओ–पी नृत्य का आविष्कार हो गया और इन दंगे-फसादों में हिस्सा लेना सामाजिक कार्य बन गया।

इस तरह लन्दन की जनता ने यह प्रदर्शित कर दिया कि जब राजवंश ने रंगमंच का संरक्षण बन्द कर दिया और इस प्रकार स्पष्टतः कला का संरक्षण जनता के हाथों

प्लेट ३६

एक निजी रंगशाला जैसा कि वह रंगमंच से दिखायी देती है। बिनेट के आधार पर लेराय द्वारा अंकित छवि से।)

प्लेट ३७
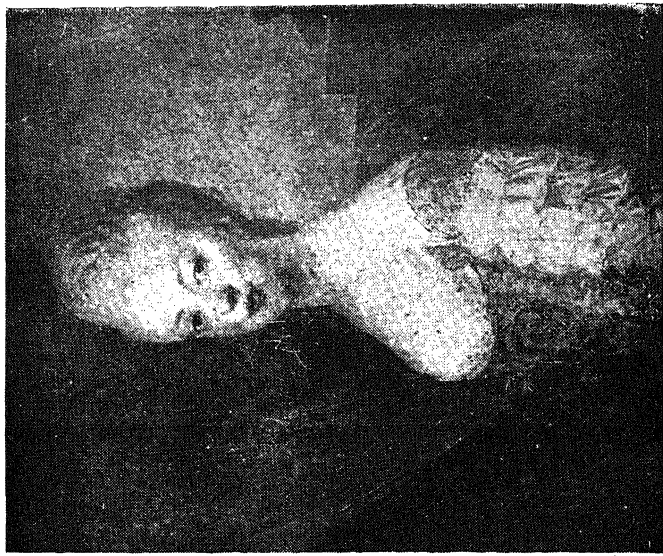
दरबारी रंगशालाओं के दो प्रसिद्ध अभिनेता-व्यवस्थापक । दाएं, जे० एस० डुप्लेसिस द्वारा अंकित साम्राज्ञी मारी एन्तोयेनेत। बाएं, एम० क्यू० दे ला तूर द्वारा चित्रित मदाम दे पाम्पादोर ।

प्लेट ३८
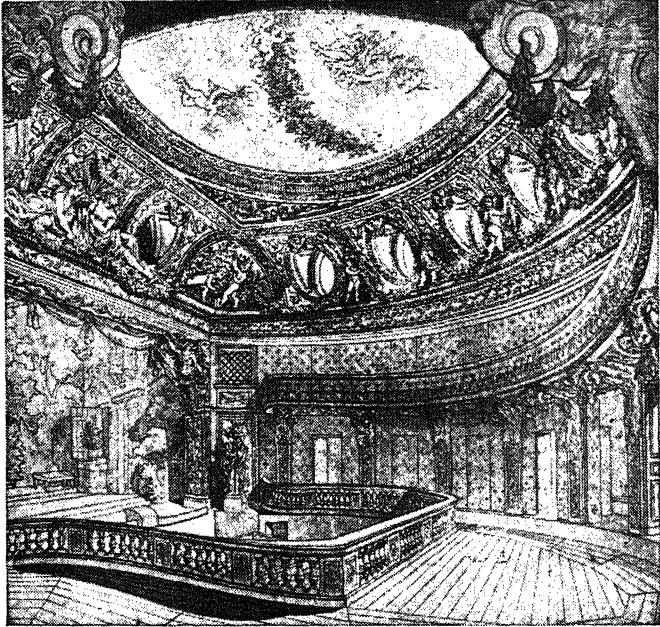
त्रियानोन में मारी एन्तोयेनेत की मनोरम रंगशाला का भीतरी भाग।
(एडालफ़ी जूलियेन की 'ला कामेदी ए ला कूर' में ए० बरनार्ड कृत चित्रांकन के आधार पर।)

प्लेट ३९
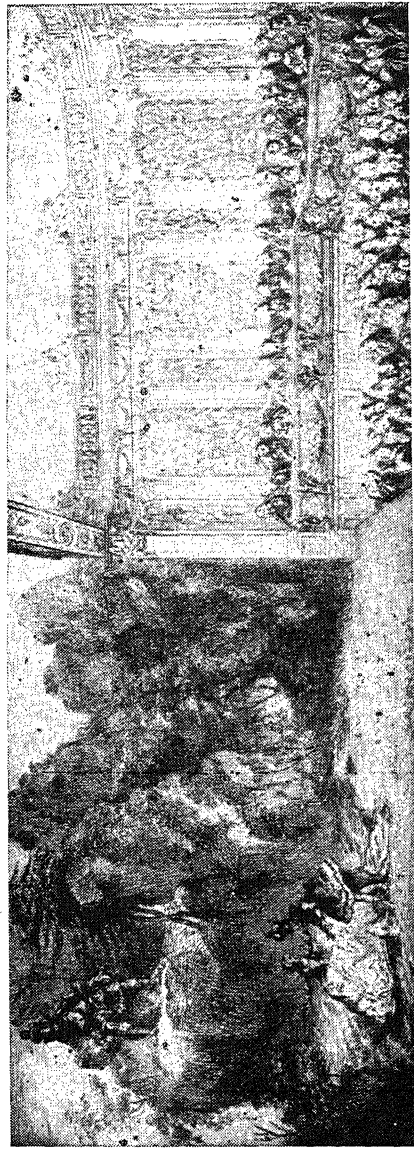
वार्साई के राजमहल में मदाम दे पाम्पादोर की रंगशाला। (कोचीन के रेखांकन का गुइलमेत द्वारा चित्रण।)

में आ गया तो इस स्थिति में थैलीपति और नियामक शक्तिधारी शासक की तरह ही जनता भी अपनी इच्छा को प्रभावपूर्ण और मनमौजी ढंग से, चाहे वह ढंग उतना शिष्ट न हो, प्रकट कर सकती थी। उन्होंने सावित कर दिया कि रंगशाला में, आंशिक रूप से ही सही, लोकतंत्र पूरी शक्ति के साथ आ धमका है।

१७६२ ई० में कोवेन्ट गार्डेन थियेटर में दंगा का एक दृश्य ('दी स्टेज इयर बुक' १९२७ ई०, में छपे एक प्राचीन चित्र से।)

हम देख चुके हैं कि वीमर में, जहां गेटे और शिलर शाही रंगमंच से सम्बद्ध थे, आज़ादी की भावना उत्पन्न हो गयी थी। अभिनेताओं की कंपनी की तुलना में आज़ादी की यह भावना अतिशय महत्वपूर्ण थी। परन्तु आज़ादी की यह ज्योतिशिखा जर्मनी में उस समय और उसके बाद भी सचमुच धीरे-धीरे ही जलती रही। आज़ादी की जो भावना उस समय वातावरण में थी वह एक अस्पष्ट और अप्रकट आदर्श के रूप में व्याप्त थी। स्वयं गेटे में, सिद्धान्त और व्यवहार के बीच, यह संघर्ष प्रत्यक्ष था। निश्चय ही आज़ादी के प्रति उनकी आस्था निर्विवाद थी। शायद उनसे अधिक निष्ठावान् आदर्शवादी कभी हुआ ही नहीं। मगर इसी के साथ, रंगमंच के निर्देशक की हैसियत से वह एक छोटे से क्षेत्र के एक साधारण घमण्डी, ज़ालिम, ड्यूक की सेवा भी कर रहे थे। जो एक ऐसा व्यक्ति था जिसने अपनी छिछले स्वभाव वाली, महत्वा-

कांक्षिणी प्रेमिका को छूट दे रखी थी कि वह अपनी शाही आज्ञाओं द्वारा उस कवि को अपमानित करे (यह छोटा सा शासक कितनी निकृष्ट मनोवृत्ति का था यह बात प्रसिद्ध घुंघराले बाल वाले कुत्ते की घटना से ही साबित हो गयी थी)। और गेटे स्वयं, आज़ादी और समानता के सम्बन्ध में अपने स्पष्ट विचारों के बावजूद, रंगशाला में निरंकुश शासन बन जाया करता था। यह बात प्रसिद्ध थी। वह एकान्तिक रूप से शासन करता था, कठोरता दिखाता था। उसकी यह कठोरता रंगमंच से बढ़ कर प्रेक्षागृह तक व्याप्त थी। ताली बजाना अथवा सीटी बजाना समान रूप से निषिद्ध थे।

यह प्रमाण लिखित रूप में प्राप्त है कि सीटी बजाने वाले गिरफ्तार किये गये थे। एक बार एक आलोचक ने अभिनय की आलोचना की तो उसे रियासत के बाहर निकाल दिया गया। अभिनेताओं के ऊपर कठोरतापूर्वक नियम लागू किये जाते थे। एक बार एक अभिनेत्री बर्लिन की एक रंगशाला में काम करने चली गयी। उस समय यह नियम था कि वीमर के अभिनेता अन्यत्र काम नहीं कर सकते। उसने इस नियम का उल्लंघन किया था। फलतः वापिस आने पर उसे उसके घर में ही एक सप्ताह के लिए क़ैद कर दिया गया, साथ ही सिपाही का सप्ताह भर का वेतन भी उसे जुर्माने में देना पड़ा।[१] इस प्रकार जिस समय अन्यत्र लोकतंत्र जन्म ले रहा था, जर्मनी में स्वातंत्र्य-प्रेम और अधिकार-प्रदर्शन एक साथ हाथ में हाथ डाल कर चल रहे थे। जर्मनी में इसके बाद के युग को रोमांटिसिज़्म का युग कहा गया। लोकतन्त्रात्मक युग वहां आया ही नहीं।

---

१. मान्तज़ीयस कृत इतिहास के भाग छः में गेटे के निरंकुशतावादी ढंगों का विशद उल्लेख मिलता है। ग्रन्थकार ने अभिनय के अतिरिक्त नाटक के किसी अंश की थोड़ी भी चर्चा नहीं की है। मगर पुस्तक के भाग पांच और भाग छः में उसने जर्मनी में रोमांटिसिज़्म काल के आरम्भ से रंगमंच की स्थिति का अत्यन्त पठनीय चित्र उपस्थित किया है। जी० एच० ल्यूज कृत 'दी लाइफ आव गेटे' में पाठकों को विवरण-सहित वर्णन मिलेगा। (एवरी मैन्स लाइब्रेरी एडीशन में यह अत्यन्त सरलतापूर्वक प्राप्त हो सकता है।) पेशेवर कलाकारों के सम्बन्ध में अपने पूर्वग्रह के कारण मान्तज़ीयस ने मेरी एन्तियोनेत और फ्रेंच ग़ैरपेशेवर रंगमंच को एक शब्द में ही याद करके टाल दिया है। अधिक सूचना के लिए एडाल्फ जूलियस कृत 'ला कामेडी ए ला कोर' (पेरिस एन० डी०) को पढ़ना चाहिए। इंगलैण्ड के शाही रंगमंच की जानकारी के लिए एलेनोर बासवेल कृत 'दी रेस्टोरेशन कोर्ट स्टेज' (कैम्ब्रिज, मास, १९३२) पढ़िए।

इटली एक ऐसा विप्लवपूर्ण देश था कि वहां किसी राष्ट्रीय रंगमंच की सम्भावना ही नहीं हो सकती थी। फिर भी नाट्य-रचना की प्रतिभा का एक उद्रेक जैसा हुआ। विट्टोरियो अलफ़ीरी के न्यूनाधिक राजनीतिक दुःखान्त नाटकों में आज़ादी की सच्ची भावना प्रतिष्ठित दिखायी देती है। ये नाटक महती ऐतिहासिक शैली में लिखे गये हैं। इनमें अठारहवीं सदी के नाटकों-जैसी भावोत्तेजना है, इनमें उच्च कोटि का संवेग है, मगर (यदि इन्हें यंत्र कौशलपूर्ण इटालियन अभिनय-शैली में खेला जाय तो) ये और
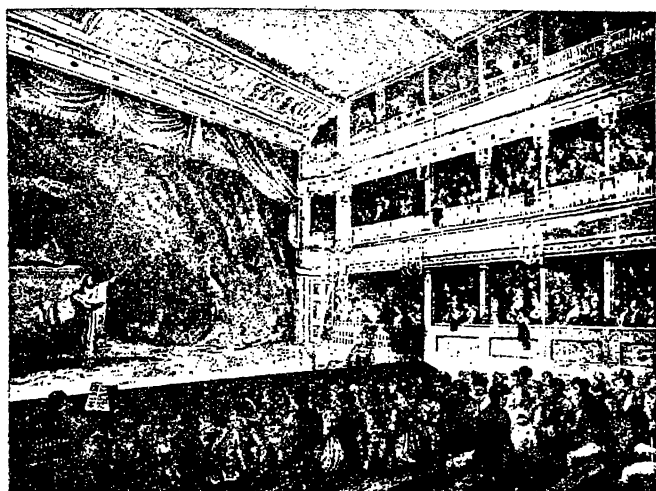
हेमार्केट, लन्दन, १८१५ ई० के लिटिर थियेटर का भीतरी भाग। इसके प्रोसीनियम द्वार, प्रकोष्ठ, कक्ष और गैसलाइट दृष्टव्य हैं।

उत्तर के देशों के प्रेक्षकों की अपेक्षा लैटिन जातियों को आन्दोलित करने के लिए अधिक उपयोगी हैं। फिर भी, अलफीरी को इटली का सबसे महान् दुःखान्त नाटककार माना जाता है। जिसने प्रसिद्ध 'मेरोप' नामक नाटक की रचना की। और फ्रांस की 'वाल्तेयर प्रणाली' से सम्बन्ध स्थापित किया।

मगर सुखान्त नाटक की रचना करने वाले नाटककार की हैसियत से कार्लो गोल्डोनी संसार-प्रसिद्ध हैं। आज भी उनके नाटक इटली के भीतर और बाहर समान

रूप से खेले जाते हैं। वह महान् तकनीकी आचार्य थे। उन्होंने एक वर्ष में सोलह नाटक लिखे। अपने सम्पूर्ण रंगमंचीय जीवन में उन्होंने कम से कम डेढ़ सौ नाटक लिखे। 'कमेदिया देल आर्ते' का जो पतन भड़ैती और अश्लीलता के कारण हो गया था, उससे इनको घृणा हो गयी थी। राष्ट्रीय साहित्य में अनुकरण के लिए इन्हें कुछ नहीं मिला। (अरेतिनो और मैकियावेली से उन्हें शायद ही कोई प्रेरणा मिलती क्योंकि वह अश्लीलता के विरुद्ध क़दम उठा चुके थे) इसलिए उन्होंने अपने लिए स्वतंत्र मार्ग चुना। उन्होंने अपने आसपास की जनता और वस्तुओं के सम्बन्ध में लिखा। वह कुलीन नाटककारों में से एक थे। उन्हें मानवता में, 'उसके मूल रूप में' रूचि थी। उनके पात्र इतने वास्तविक और परिचित थे, भाषा इस क़दर बोलचाल की थी, कि हमें फिर प्राचीन शाहीपन और सम्भ्रान्त एकान्तिकता से आगे बढ़ कर परिचयमूलक घनिष्टता और वास्तविकता की ओर विकास के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसे देश में यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण लगती है जहां सुखान्त नाटक का सम्बन्ध परम्परागत विशिष्ट पात्रों, सधी-बँधी जानी-पहचानी परिस्थितियों और बार-बार दोहराये जाने वाले दृश्यों से रहा हो।

परन्तु गोल्डोनी को अपने देश में ही विरोध अधिक मिला, समर्थन कम। रोमांटिक इटालियन स्वभाव न तो वास्तविकतामूलक स्थिति-चित्रण, न तो कुलीनतावादी करुणा का उद्रेक ही पसन्द करता है। उसे तो पसन्द यह है कि दुःखान्त नाटकों में जोश-ख़रोश हो और सुखान्त नाटकों में कुछ उछल-कूद हो और पात्र सजीव हों। कार्लो गोज़ी नामक एक आलोचक ने गोल्डोनी के आधिपत्य को चुनौती दी, और उस वयोवृद्ध लेखक को फ्रांस के अधिक अनुकूल वातावरण में चले जाने के लिए विवश कर दिया। इस आलोचक ने स्वयं एक नाटककार बन कर गोल्डोनी को बहुत अधिक परेशान कर दिया। वह इटालियन रंगमंच का सर्वोत्कृष्ट नाटककार बन बैठा। कहा जाता है कि दोनों की भेंट वेनिस की एक किताब की दुकान में हुई। वहां गोल्डोनी ने गोज़ी पर व्यंग्य करते हुए एक सच्ची बात यह कही कि किसी नाटक की तीव्र आलोचना करना आसान है, मगर एक अच्छे नाटक की रचना करना कठिन है। गोज़ी ने उत्तर दिया कि वह कुछ ही दिनों में ऐसा सुखान्त नाटक लिखेंगे जो वेनिस के विनोदप्रिय प्रेक्षकों को पसन्द आयेगा। और बहुत कम समय में ही, वेनिस के प्रेक्षक 'दी थ्री आरेन्जेज़' के हास्य-विनोद का आनन्द ले रहे थे। इस नाटक में गोज़ी ने गोल्डोनी के नव-आविष्कृत नाट्यरूपों की ख़ूब खिल्ली उड़ाई और व्यक्तिगत रूप से भी उन पर कुछ आक्षेप किये। और, प्रेक्षक सीधे-सीधे गोज़ी के पक्षधर हो गये और इसके बाद सदैव गोल्डोनी को नहीं, उसे ही यह प्रतिष्ठा दी गयी कि वह जाज्वल्यमान

प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करता है।

पता नहीं यह घटना सही है या गढ़ी गयी है। परन्तु यह निश्चय है कि इटली में, जहां लोकतंत्र को अनुकूल वातावरण शायद ही कभी मिला हो, गोज़ी ही स्वाभाविक विकास-क्रम में सबसे आगे आते हैं। 'कामेदिया देल आर्ते' (जिसे वह उचित ही नाट्य-कला का वास्तविक और अनुपम प्रस्फुटन मानते थे) से उन्होंने बहुत कुछ लिया था। उन्होंने उसमें प्राच्य के प्रति ममता के कारण कुछ बाह्य-तत्वों का भी समावेश किया। उसके ताने-बाने को रचाया और सजाया और उसे घटनाओं से भरा-पूरा बनाया। उनकी कला चटख़ और उत्कृष्ट रूप में अलंकृत थी और तब से फिर संसार के क्षेत्र में नहीं दिखायी पड़ी। परन्तु उसमें जो घनी नाट्यात्मकता है रूपान्तर की दृष्टि से, सीधे अनुवाद की दृष्टि से न सही, बार-बार उसका पुनरुत्थान होता रहा है। (मैंने इसका रूपान्तर ही देखकर अतिशय आनन्द प्राप्त किया था। इसकी रंगीनी और उसके हास-परिहास की हार्दिकता ने ही मुझे आकृष्ट किया था जब कि मैंने गोज़ी कृत 'तुरान्दो' को एक रूसी टुकड़ी द्वारा अत्यन्त विनोदपूर्ण ढंग से पेरिस के ओडियों में—ज़रा अभिनय के इस स्थान पर ध्यान दीजिये—देखा था। इटली में 'आज़ादी' की ओर जो धारा बह रही थी उसे गोज़ी ने पलट दिया। इसके बाद लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक हमारे इस कथा-प्रसंग में इस देश की चर्चा नहीं मिलती।

वास्तविक क्रान्ति के क्षेत्र में वापिस आकर हम देखते हैं कि पेरिस की जनता सन् १७८९ ई० में बेस्टील पर हमला कर रही है। यद्यपि रंगशाला में यह क्रान्ति अत्यन्त क्षीण विकास के रूप में प्रविष्ट हुई थी, परन्तु जीवन में यह एक भयानक सत्य बन गयी थी। अब तक रंगमंच पर ऐसे नाटक अभिनीत हो चुके थे जिसमें बहुत मर्यादित और संयत ढंग से क्रान्तिकारी भावनाएँ व्यक्त की गयी थीं। प्रथम राजनीतिक संघर्ष के क्षणों से ही 'समुचित और उपयुक्त' नाट्य-रचना की एक लहर आने लगी थी। जब भी कभी कोई विश्व-संकट उपस्थित होता है तो उस प्रलय का ऐसा ही प्रभाव होता है। परन्तु उस समय जो भी नाटक लिखे गये उनमें से एक भी आज महत्वपूर्ण नाटक के रूप में जीवित नहीं है। युद्धकाल में सदैव गहरी भावनाओं का मन्थन एवं उद्रेक होता है। परन्तु कला के लिए ये बाह्य संघर्ष और उत्तेजनापूर्ण भावनाएँ अनुकूल वातावरण निर्मित नहीं करतीं। अनवरत संघर्ष के रक्तिम प्रकाश में मनुष्य की रचनात्मक शक्तियां, उसकी आध्यात्मिकता और अनुचित-उचित के सम्बन्ध में उसका विवेक सभी जड़ीभूत हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि तात्कालिक शौर्यपूर्ण संघर्ष अथवा संसार में व्याप्त विचार-धारा में परिवर्तन का फल यह नहीं हुआ कि नाट्य-कला सम्बन्धी सक्रियता बढ़ जाय। नाटककारों और अभिनेताओं ने क्रान्ति में हिस्सा लिया।

"कामेडी फ्रांके" के सदस्य भी क्रान्ति के पक्षधर बने। कंपनी में मतभेद हो गया और कुछ समय तक वहां अभिनय अथवा नाट्य-रचना का सारा काम ठप हो गया। नाटककार इतने घनघोर लोकतंत्रवादी बन गये कि उनके दिमाग में केवल यह बात रह गयी कि किस प्रकार वे राजनीतिक संघर्ष में अपने मत का समर्थन करने के लिए रंगमंच का उपयोग करें।

१७८९ ई० में जो एक निष्प्रयोजन राजनीतिक नाटक हुआ उसको एक वाह्य अमरत्व प्राप्त हुआ। बैस्टील के पतन के बाद चार महीने के भीतर ही 'थियेटर फ्रांके' के बोर्ड पर एक प्रारम्भिक राजनीतिक नाटक के अभिनय की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। यह नाटक था मैरी जोसेफ़ शेनियर कृत 'चार्ल्स नवम्'। 'सेंट वार्थोलोमियो ईव' के अवसर पर जो नर हत्या हुई थी उसी को विषय बना कर यह नाटक दुःखान्त नाटकों के रीत्यानुसारी ढंग पर रचा गया था। इसे इच्छा न रहते हुए भी अभिनेताओं के उस दल ने प्रस्तुत किया था जिसका झुकाव अब भी राजवंश की ओर था, परन्तु जिसे 'जनमत' के आगे झुक जाना पड़ा था। इस नाटक ने प्रत्येक दर्शक के हृदय में व्याप्त देश-भक्ति की भावना ओजस्विता की चिनगारी लगाकर सुलगा दिया। रात के बाद रात को भावनाओं से भरे प्रेक्षक आते थे; प्रत्येक रात को वे सामन्ती ज़ुल्मों के दृश्य देखते जिसके फलस्वरूप उनका जोश बढ़ जाता था और उनके हृदय में लोकतंत्रात्मक भावनाओं का विस्फोट होता था। जिन्होंने इन दृश्यों को अपनी आँखों से देखा है, वे बताते हैं कि प्रत्येक ऐसे अभिनय के अवसर पर दर्शक जोश से पागल हो उठते थे, तेज़ क्रान्तिकारी नारे लगाने लगते थे, लोगों का हृदय उत्साह से भर उठता था। जिन लोगों ने इन नाटकों को पढ़ा है वे सभी इस बात से सहमत हैं कि पढ़ने में ये नाटक कठिन हैं, उत्तेजक नहीं हैं, उनमें नाट्यात्मकता की कमी है। परन्तु यहां तो नाट्य-रचना के विशेष तत्वों काव्य, भावनाओं की गहराई, चरित्र-चित्रण, अभिनय आदि का कोई सवाल ही नहीं था। यहां तो बात बस इतनी थी कि एक राजा ने अपनी प्रजा के क़त्ल की आज्ञा दी कि हंगामा मच गया, वैसे ही जैसे कि किसी राजनीतिक आम सभा में ठीक मनोवैज्ञानिक अवसर पर किसी ने झण्डी हिला दी और शोरगुल मच गया। उस समय उस नाटक के विषय से बिलकुल असम्बद्ध एक तीव्र उत्तेजना व्याप्त हो जाती थी। यह बैस्टील के पतन और गिलोटाइन के लाल आतंक के बीच का समय था। अब भी एक राजा अपने ग्रामीण महलों में दरबार करता था क्योंकि उस समय नाटक या कोई भी अन्य वस्तु ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती थी जब कि विरोधी जनता का प्रदर्शन हो जाय।

'चार्ल्स नवम्' को जब रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया तो पहिली बार तलमा नामक एक नया अभिनेता महत्वपूर्ण बन कर सामने आया। बाद में, इसी अभिनेता

को फ्रांस का सबसे बड़ा अभिनेता बनने का अवसर मिलने वाला था। बात यह थी कि दरबार-द्वारा सहायता–प्राप्त इस कंपनी में यह तलमा अकेला दृढ़ क्रान्तिकारी था। नाटक में इसे सर्वप्रमुख भूमिका करने का अवसर मिला। कारण यह हुआ कि एक वयोवृद्ध अभिनेता ने यह भूमिका करने से इसलिए इनकार कर दिया कि वह राजवंश के साथ सहानुभूति रखता था। और जब कंपनी के बहुसंख्यकों ने लोकतंत्रवादी दर्शकों के सम्मुख अपना नाटक प्रस्तुत किया तो उसने ही इज्ज़त बचाई और इस भूमिका को औचित्य प्रदान किया। 'कामेदी फ्रांके' के इन दरबारी कलाकारों ने शायद सम्राट् के दबाव में आकर और निश्चित रूप से सम्राट् के साथ सहानुभूति रखने के कारण, यह निश्चय किया कि जब भी नाटक में दर्शकों की रुचि थोड़ी कम होने लगे उसी समय उसे रंगशाला से वापिस कर लिया जाय। ऐसा समय आया जब कि नाटक को वापिस करने के लिए रूचि की कमी एक बहाना बन सकती थी। पता नहीं देश-भक्ति के कारण ऐसा हुआ अथवा लेखक की इस स्वाभाविक इच्छा के कारण कि उसका नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता रहे और उसकी रायल्टी बनती रहे, और एक नये अभिनेता की इस इच्छा के कारण कि वह बार-बार एक महत्वपूर्ण भूमिका में रंगमंच पर आता रहे, आज़ादी के समर्थकों ने अपने को सक्रिय बनाया और विरोध प्रदर्शित किया। अन्त में, एक रात जब कि एक दूसरा नाटक रंगमंच पर चल रहा था, प्रेक्षक अगली पंक्ति में उठ खड़े हुए और उन्होंने साफ़-साफ़ माँग की कि अगली रात को 'चार्ल्स-नवम्' रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाय। जब अभिनेताओं ने उस खेल को जारी रखना चाहा तो दर्शकों ने आवाज़ लगानी शुरू की 'चार्ल्स-नवम्।' एक चालाक अभिनेता अपनी भूमिका छोड़ कर आगे आ गया। उसने बताया कि 'चार्ल्स नवम्' नाटक को रंगमंच पर फिर प्रस्तुत करना असम्भव है क्योंकि दो अभिनेता, जो प्रमुख अभिनय करते रहे हैं, बीमार हैं। तुरन्त तलमा सामने आ गया। उसने बताया कि जो अभिनेता सबसे प्रमुख भूमिका करता था वह उतना बीमार नहीं है और दूसरे व्यक्ति की भूमिका के लिए जनता उसके स्थान पर किसी दूसरे अभिनेता को स्वीकार कर लेगी। बड़े जोश के साथ उपस्थित प्रेक्षकों ने तलमा की बात स्वीकार कर ली। दूसरी शाम को ही तलमा ने 'चार्ल्स-नवम्' की भूमिका एक बार फिर की। प्रेक्षागृह में दंगा हो गया, मगर नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिया गया।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कंपनी के भीतर सुलह और भाईचारे का वातावरण आ गया। आपसी उत्तेजना इतनी बढ़ गयी कि नौदेत नामक अभिनेता, जिसने अभिनेताओं के बीमार होने का बहाना बनाया था, तलमा से द्वन्द्व युद्ध करने पर आमादा हो गया। इसके बाद सम्राट् के समर्थक अभिनेताओं ने जो कि अब भी शाही विदूषक

माने जाते थे, युक्तिपूर्वक 'थियेटर फ्रांके' संस्था से तलमा को निकाल दिया।

कुछ ही समय बाद इस वहिष्कृत अभिनेता के समर्थकों ने एक 'थियेटर पार्टी' का संगठन किया। इन लोगों ने 'तलमा, तलमा' के शोर से रंगशाला को भर दिया। और इसी शोर में अभिनय के समय उच्चरित पंक्तियाँ डूब गयीं। अधिकारियों के इस बहाने पर उन लोगों ने विश्वास कर लिया कि दूसरे दिन शाम को उनकी माँग का जवाब दिया जायगा। दूसरी रात को सम्राट के पक्षधर प्रेक्षक भी बराबर की संख्या में रंगशाला में आ गये। इस समय अभिनय नाम की कोई भी चीज़ वहाँ न थी। पुराने अभिनेताओं का कहना था कि जब तक उच्च अधिकारियों से सलाह न कर ली जाय तब तक तलमा को रंगमंच पर प्रस्तुत न होने दिया जाय। (रंगशाला वैधानिक रूप से अब भी सम्राट के चार अधिकारियों के आदेशों के अनुसार ही संचालित होती थी)। तब एक वयोवृद्ध लोकप्रिय अभिनेता दुगाजों, जिसे उस रात प्रमुख भूमिका करनी थी, सामने आया कि तलमा सही है और जब तक उसका तरुण साथी तलमा अपने पद पर फिर नहीं बुला लिया जाता, वह रंगशाला में वापिस नहीं आयेगा। इसके बाद फिर कुछ गड़बड़ी हुई, बारजों और बेंचों को तोड़ा-फोड़ा गया, मगर दर्शक धीरे-धीरे शान्त हो गये और वे इन अभिनेताओं तथा राष्ट्रीय रंगमंच के बारे में एकतरफ़ा बहसें सुनते रहे।

जब उच्च अधिकारियों से निर्णय की माँग करने की बात आयी तो सम्राट नहीं, नगर-अधिकारियों की ओर से फ़ैसला आया कि तलमा और दुगाजों दोनों को उनके पुराने स्थानों पर वापिस बुला लिया जाय। फिर भी इस निर्णय के लागू होने में कुछ देर हुई, शायद सम्राट् के समर्थक अब भी यह आशा लगाये हुए थे कि राजमहल से कोई-न-कोई आदेश आवेगा। २६ दिसम्बर १७९०ई०की शाम को 'जनता' ने रंगशाला में घुसकर दंगा किया, आपस में मारपीट की, जमे हुए कट्टरपंथी अभिनेताओं की आवाज़ को बन्द कर दिया। दूसरे दिन रंगशाला औपचारिक रूप से बन्द कर दी गयी। दो महीने के बाद सम्राट् के समर्थक अभिनेताओं ने अपनी हार मान ली; कम से कम उन्होंने यह मंजूर कर लिया कि तलमा और दुगाज़ों को वापिस बुला लिया जाय।

मगर अब कोई भी स्थायी समझौता असम्भव था। अब प्रमुख अभिनेत्रियों ने त्याग-पत्र देना शुरू कर दिया। इनकी शिकायत थी कि कंपनी जब तक अपनी शान और मर्यादा का पालन नहीं कर सकती तब तक उसके अन्दर 'लाल' अभिनेता घुसे रहेंगे। रंगमंच के उपद्रव प्रेक्षागृह के समर्थन के कारण दूने हो गये। पुराना 'कामेडी फ्रांके' इस क़दर छिन्न-भिन्न हो गया कि अब उससे शान्तिपूर्ण वातावरण अथवा

प्लेट ४०

श्रीमती सिड्डन्स

प्लेट ४१
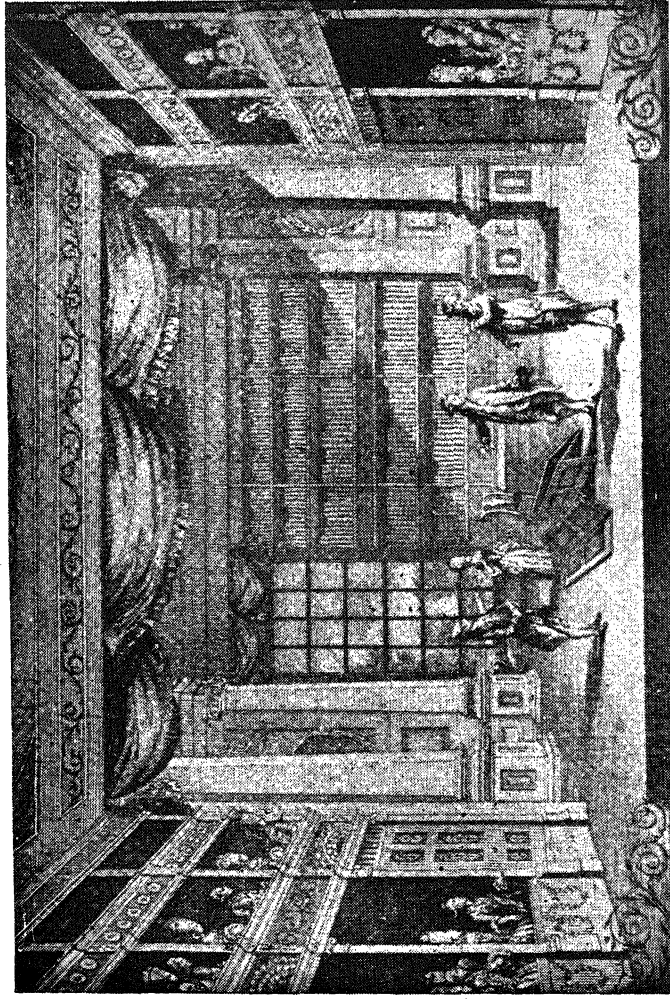
ड्रूरी लेन थियेटर में 'दी स्कूल फ़ार स्केण्डल', कीविंग सेटिंग के साथ प्रसिद्ध यवनिका का दृश्य। (किताब की अलमारियाँ, खिड़कियाँ, और दृश्य खण्ड, सभी काले कपड़े पर अंकित हैं।) ऐशले एच० थर्नडाइककृत 'शेक्सपियर्स थियेटर' से।)

रोमान्टिक युग में मंचीकरण। ऊपर, थियेतर दु पैले-रायल में 'ले ड्युक्स पिजन्स' का एक दृश्य, पेरिस १८३८ ई०—तत्कालीन सेटिंग में नवीनता की खोज का एक उदाहरण। नीचे, थियेतर देला पोर्ते सेंट मार्टिन, (१८३९ ई०) में 'ला पाक्ते दे फेमिने' का एक दृश्य। (अभिनेता मेलिग्वे के लीथोग्राफ के आधार पर।)
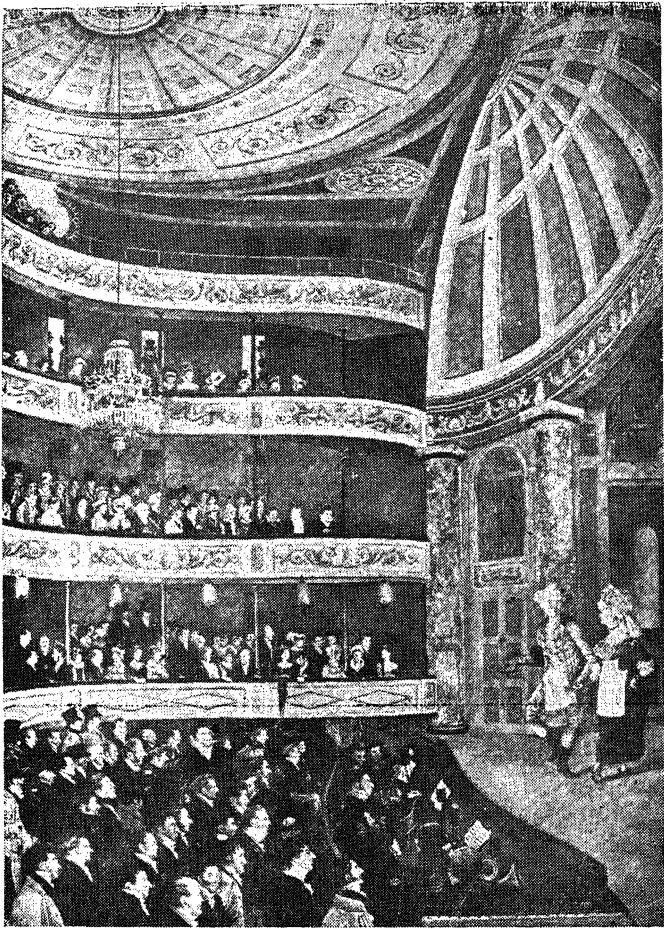
१८२२ ई० में जान सियर्ल द्वारा चित्रित पार्क थिसेटर, न्यू यार्क (इस नाम की यह दूसरी रंगशाला है।) रंगमंच पर चार्ल्स मेथ्युज़ और मिस जान्सन। प्रेक्षागृह में तत्कालीन अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण न्यू यार्क निवासी हैं। एक कुञ्जी के सहारे इनमें से अस्सी व्यक्तियों को पहिचाना जा सकता है। उस काल की अंग्रेजी रंगशालाओं की भाँति यहाँ भी प्रोसीनियम-द्वार हैं। (इस चित्र के मालिक न्यू यार्क हिस्टारिकल सोसायटी के सौजन्य से।)

कलात्मक अभिनय की आशा करना बेकार था। नेशनल असेम्बली ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार सम्राट् के विदूषकों का एकाधिपत्य समाप्त हो गया और सभी नाटक कंपनियों को समान रूप से अधिकार प्राप्त हो गये। यह क़दम ऐसा था जिससे कुछ लोगों का विशेषाधिकार समाप्त हो गया। निश्चय यह आज़ादी की ओर क़दम था। इस तरह तलमा और उसके कुछ 'लाल' साथी राज्य की कंपनी से अलग हो गये और उन्होंने एक प्रतिद्वंद्विनी संस्था बना ली। उस वर्ष अठारह और नाट्य-संस्थाएँ खुलीं। इस शताब्दी के समाप्त होते-होते पचास संस्थाएँ खुल गयीं। स्वभावतः 'थियेटर दे ला रूदे रिशेलू' में स्थापित नयी कंपनी क्रान्तिकारी और थियेटर फ्रांके में स्थापित पुरानी कंपनी सम्राट्वादी गढ़ और प्रचार केन्द्र बन गयीं। ये दोनों कंपनियां विशुद्ध राजनीति दृष्टिकोण से ही नाटकों का चुनाव करती थीं। तलमा की कंपनी ने शेक्सपियर के कुछ नाटकों को भद्दे ढंग से रूपान्तरित करके रंगमंच पर प्रस्तुत किया। परन्तु सही बात यह है कि यह ऐसा समय ही नहीं था कि कला के नाम पट्ट को रंगशाला के द्वार पर लटकाया जाता।

बाद के संकटकाल में दो रंगशालाएँ किसी तरह अपनी गाड़ी घसीटती रहीं। जब सम्राटों के अन्त का समय आया तो दोनों संस्थाओं को देश-भक्ति-परक शीर्षकों की फ़िकर करनी पड़ी। आखिर 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व' के नारे के प्रति कुछ तो भक्ति दिखानी ही थी—चाहे वह भक्ति ऊपरी ही हो। कुछ सप्ताहों तक ये रंगशालाएँ बन्द रहीं। लोगों का सारा ध्यान गिलोटीन पर नर-हत्या का जो नाटक चल रहा था उसी की ओर लगा हुआ था। परन्तु ज्यों ही वह खूनी महीना समाप्त हुआ, प्रत्येक व्यक्ति यह चाहने लगा कि रंगशालाएँ फिर खुल जायँ। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का क्रम फिर तेज़ी के साथ चलने लगा।

अब ये दोनों प्रतिद्वन्द्वी समान आधार पर स्थित न थे। और पुराने सम्राट्-समर्थक अभिनेता, जो अब अपनी संस्था को 'थियेटर दे ला नेशन' कहते थे, अपनी बेवकूफ़ी से बाज़ न आये। अपने नाटकों में वे अब भी ऐसे राजनीतिक टुकड़े रखते थे जो अविवेकपूर्ण थे। इसके कारण दोनों के बीच की खाई और भी चौड़ी हो गयी। तलमा और उसके साथियों को किसी भी प्रकार का ख़तरा न था। इसी समय 'नेशन' दल ने 'ले अमी दे लोय' नामक नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जिसमें उसने कम्यून के अतिवादियों की खुल कर निन्दा की, मध्यम मार्ग अपनाने की सलाह दी और कुछ लोकप्रिय वामपक्षीय नेताओं की खिल्ली भी उड़ायी। फ़ौरन रंगशाला के भीतर और बाहर तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। जनमत अभी भी दो वर्गों में विभक्त था, इसलिए दमन के स्थान पर संघर्ष की समस्या आ खड़ी हुई। चारों ओर दंगे हुए। थियेटर की ओर

तोपों के दहाने घुमा दिये गये। परन्तु आश्चर्य है कि कम्यून के समर्थक हार गये। रंगशाला बन्द कर दी गयी, मगर वह कुछ दिनों के बाद फिर खुल गयी। शाही विदूषकों का यह अन्तिम युद्ध अथवा मोर्चा था। वे साफ़-साफ़ पुरानी अधिकार-सम्पन्न सरकार के समर्थक थे। सितम्बर १७९३ ई० में कंपनी के सदस्य गिरफ़्तार कर लिये गये और जेल में डाल दिये गये। केवल एक विदूषक गिरफ़्तार नहीं किया गया क्योंकि वह दवा कराने के लिए कहीं दूर चला गया था। जब उसे यह सूचना मिली तो उसे मिरगी का दौरा हो गया और वह मर गया। इस आतंक का कारण था। इन अभिनेताओं को भी अपने से भी कम प्रतिक्रियावादी लोगों की भांति ही सूली पर चढ़ना था।

यह भी क़िस्मत की ही बात थी कि जिस राज्यादेश के अनुसार उन अभियुक्त
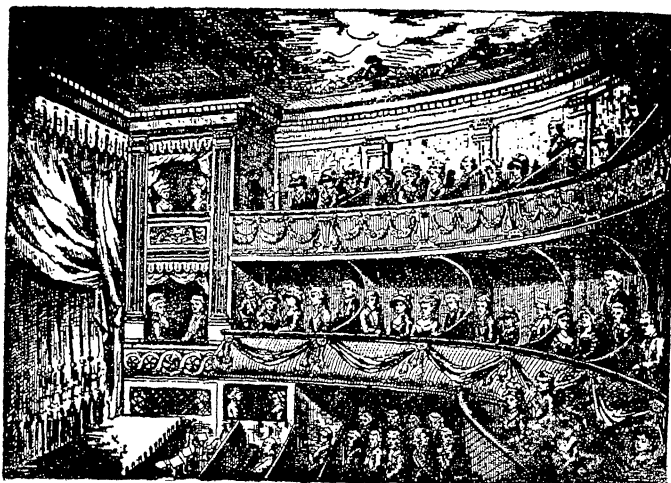
रीम्स में एक रंगमंच, १७८५ ई०। उस युग की एक विशिष्ट छोटी रंग-शाला। गहरे प्रकोष्ठ का एक अंश अब भी खड़े होकर अभिनय देखने वालों के लिए सुरक्षित है। (पेरिस के 'ले थियेमे आ रीम्स' से।)

अभिनेताओं को सुनिश्चित तिथि पर अदालत के सामने उपस्थित होना था, उस पर हस्ताक्षर भी एक ऐसे अभिनेता का था जो कला की दृष्टि से नितान्त निम्न-कोटि का था और जो 'कामेदी फ्रांके' अथवा किसी अन्य सम्मानित रंगमंच पर कभी प्रवेश न

पा सका था। मगर कम्यून के अन्दर के ही किसी अन्य कलाकार ने कुछ ऐसा वहाना दिया कि जिसके कारण फाँसी का कार्य स्थगित कर दिया गया उस दिन तक के लिए जब तक कि आतंक समाप्त न हो जायँ और लोगों की रक्त-पिपासा शान्त न हो जाय।

पर यह समय रंगमंचीय कला के लिए उपयुक्त न था। इस बात के लिए आदेश पर आदेश जारी किये गये कि किसी तरह नाटकों को लोकतंत्रवादी मार्ग पर ढाला जाय। हास्यास्पद निषेधाज्ञाएँ जारी की गयीं। किसी भी तरह ऐसा नाटक अभिनीत नहीं हो सकता था जिसमें किसी भूमिका में कोई सामन्त प्रदर्शित किया गया हो। 'मांश्योर' तथा 'मदाम' जैसे सम्मानवाचक शब्दों के वोलने पर भी रोक लगा दी गयी क्योंकि इन शब्दों के माध्यम से विशिष्टता का वोध होता था। शाही ज़माने के अनेक अत्यन्त सम्मानित और महत्वपूर्ण नाटकों पर रोक लगा दी गयी, कुछ को रूपान्तरित कर दिया गया। यह आवश्यक हो गया कि प्रत्येक नाटक से लोकतंत्रवादी पावनता झलके। इस प्रकार का एक आंदोलन चल गया कि जब्रिया तौर से देश के प्रत्येक नगर में एक रंगशाला खोली जाय जो कि खाली गिरजाघरों में स्थापित की जाय और इनके माध्यम से 'पुरोहितों की मूर्खताओं को भूल जाने के लिए लोगों को शिक्षित किया जाय।' तलमा की कंपनी ने इस समय वैसे ही निष्प्राण नाटक प्रस्तुत किये जैसे कि प्रतिद्वन्द्वी कंपनियों ने किये थे।

नाटकों के स्तर गिर गये और एक प्रकार की अराजकता आरम्भ हो गयी। अन्त में १७९९ ई० तक दोनों कम्पनियों की पुरानी शत्रुता खत्म-सी हो गयी और 'कामेदी फ्रांके' के दोनों अंग फिर एकता की कड़ी में वँधने लगे। 'रू डी रिशलू' की रंगशाला में वे बिल्कुल एक हो गये। 'थियेटर फ्रांके' का नाम वदल कर यही नाम रखा गया था और यही आज तक चला आ रहा है। शीघ्र ही नेपोलियन ने इस पुनर्स्थापित कंपनी की सहायता की जिससे वह अराजकता को समाप्त कर अनुशासन स्थापित कर सकी। नेपोलियन ने कंपनी की इतनी अधिक सहायता की कि उतनी सहायता सम्राट् लोग कभी नहीं कर सके थे। उसने क्लासिक नाटकों को फिर से एकाधिकार प्रदान कर दिया, उसने उस 'डिक्री आव मास्को' पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके मातहत आज भी सुखान्त नाटक खेले जाते हैं। उसने स्पष्ट रूप से कंपनी के कार्यों में व्यक्तिगत रुचि ली। यह सही है कि वह अपने दरबार में एक दुःखान्त नाटककार को उस तरह न बुला सका जिस तरह लुई चौदहवें के दरबार में रेसीन को सम्मानपूर्वक बुलाया गया था, परन्तु उसने कोशिश करके नवीन प्रतिभाओं का पता लगाया और उन्हें प्रोत्साहन दिया। मगर कला की दृष्टि से नाट्य-रचना की प्रायः मृत्यु हो चुकी थी। इस युग की एक मात्र प्रतिभा था——तलमा।

हम देखते हैं कि तलमा को विजय पर विजय मिलती जा रही थी। यहाँ तक कि उसने फ्रांस की अभिनय-कला का रूप ही बदल दिया। वह पूर्व-रोमांटिक युग के पेरिस के रंगमंच की शोभा और शृंगार बन गया। यह भी लगभग एक अवसर की ही बात थी कि वह अपने अन्य सभी सहयोगियों के मुक़ाबिले प्रगति के लिए सबसे अधिक योग्य और तैयार साबित हुआ। उसका पिता चाकरी करता था। परन्तु वह महत्वाकांक्षी था। वह फ्रांस छोड़ कर इंगलैण्ड चला गया और वहाँ दाँत बनाने का काम करने लगा। उसका बेटा फ्रांके जोजेफ़ कुछ समय के लिए पढ़ने फ्रांस भेजा गया। इधर जिस समय वह लन्दन में एक दाँत के डाक्टर के सहायक के रूप में काम कर रहा था, उसका बेटा एक फ्रेंच बस्ती में, जहां रंगमंच पर नाटक प्रस्तुत किये जाते थे, ग़ैरपेशेवर अभिनेताओं का नेता बन गया। इसी समय उसे शेक्सपियर के नाटकों में रुचि पैदा हुई। नाट्य-रचना में स्वतंत्र तरीक़ा अपनाने और अंग्रेज़ी अभिनय की तुलनात्मक दृष्टि से संयमित शैली में भी उसे रुचि उत्पन्न हुई। जब उसने दाँत बनाने का काम छोड़ दिया और 'कामेडी फ्रांके' द्वारा संचालित अभिनय के स्कूल में भर्ती हुआ तो उसके हृदय में फ्रांस की भारी भरकम शैली तथा अभिनय-मंच की तड़क-भड़क से वितृष्णा उत्पन्न हो चुकी थी। वह केम्बल की तरह क्लासिक सादगी और वास्तविकता का अलमबरदार बन गया। आरम्भ में ही उसने एक ऐसा काम किया जिससे पुराने वयोवृद्ध अभिनेता घबड़ा गये। वह वाल्तेयर कृत 'ब्रूटस' में रोमन ट्रिब्यून की भूमिका में रंगमंच पर आया। इस समय वह बिलकुल रोमन पहिनावे में था, उसके हाथ-पाँव नंगे थे। यह पहिनावा उस समय प्रचलित पंखदार सजे-बजे, गद्देदार पहिनावे से बिल्कुल उल्टा था।

मगर वर्ष व्यतीत हो जाने पर, क्रान्ति-सम्बन्धी घटना-क्रम के ख़त्म हो जाने पर, इस अत्यन्त खूबसूरत और तेज़ अभिनेता को ऐसा अवसर मिला कि वह फ्रेंच अभिनय में किसी प्रकार का सुधार कर सके। स्वाभाविक अधिकार से ही वह पेरिस के रंगमंच का प्रमुख अभिनेता बन गया। स्वाभाविकता के क्षेत्र में वह सदैव नये-नये प्रयोग किया करता, यद्यपि जिस प्रकार की स्वाभाविकता का हामी वह था, उसमें और आज के बिलकुल निजी शैली के अभिनयों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। परन्तु उसने अनेक भूमिकाओं में मानवता के प्राण फूँके। पहिले इन्हीं भूमिकाओं में आने वाले पात्रों में एक शाही ठाट-बाट होता था, कुलीनता के प्रति एक मोह होता था। उनमें एक ऐसी कृत्रिमता होती थी कि जो उनको जीवन की वास्तविकता से काफ़ी दूर कर देती थी। तलमा के साथ कठिनाई यह थी कि उस युग की रीति के अनुसार, सिकन्दरी शैली का प्रयोग करना पड़ता था; यह स्वाभाविक भावनाओं के मार्ग में एक मौलिक बाधा

थी। यह सही है कि वह अपने समय का बादशाह था। मगर हमें लगता है कि यदि उसका उदय कुछ समय बाद हुआ होता तो वह फ्रांस के रंगमंच के सभी नेताओं का नेता

मदाम तलमा

होता। जो भी हो, वह एक ऐसा बादशाह हुआ जो कठिनाइयों के बीच भी प्रगति करता गया। यदि उसे ऐसा नाटककार भी मिल गया होता जो उसके विचारों की तरह स्वयं भी विचार रखता अथवा उसे शेक्सपियर के नाटकों का कोई सुयोग्य अनुवादक ही मिल

गया होता तो उसने अपने ज़माने के फ्रांस की अभिनय कला को ही बदल दिया होता। इस कठिनाई के बावजूद उसकी खूब आलोचना हुई, खूब संघर्ष हुआ, परन्तु उसने प्रगति का रास्ता निकाल ही लिया।

अपने व्यक्तित्व अभिनय में, स्वतंत्रता एवं स्वाभाविकता के अपने सिद्धान्तों का उदाहरण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त उसे निराश, पागल और आतंककारी भूमिकाएँ भी करनी पड़ी। उसने अगणित पागलों और आतंककारी भयानक पात्रों की भूमिकाएँ कीं। इन भूमिकाओं में बँधे-सधे छन्दों की जंजीरों से मुक्त हुआ जा सकता था और वास्तविक भावनाओं का स्वाभाविक रूप में व्यक्त किया जा सकता था। जनता और नये अभिनेताओं को ये नये तरीके उत्तेजक और प्रशंसनीय मालूम पड़े। आलोचक तो उतने अधिक आश्वस्त नहीं हुए। उस समय अबे ज्योफ्राय ने अपनी आलोचना को इन शब्दों में व्यक्त किया—'उसकी सफलता इस बात में थी कि वह भावनाओं के उद्रेक को इस सीमा तक बढ़ा-चढ़ा देता था कि सन्निपात अथवा पागलपन की स्थिति आ जाय। वह डूचिज़ जैसे निराशा अथवा अवसाद के प्रेमी लोगों की मंडली का नेता था.... अवसाद के ये बीज स्वयं अपने में ही निकृष्ट होते हैं, कारण यह है कि आतंक उत्पन्न करने वाले नाटक फ्रांसीसी प्रेक्षकों के स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं। लन्दन के प्रेक्षकों को ही ऐसे नाटकों का आनन्द लेना चाहिये।......तलमा के स्वरों का उतार-चढ़ाव कुछ ऐसा असाधारण होता है कि लोग डर के मारे काँप उठें। मगर ऐसे अच्छे अवसर बहुत ही कम आते हैं। फलतः उनका प्रभाव क्षणिक होता है। इसलिए अच्छा होता कि वह फिर कलात्मक अभिनय की मर्यादा और सीमा में ही वापिस आ जाता।'

समकालीन आलोचना का जो आंशिक रूप हमारे सामने यहां आया, उसी में हमें तलमा की अभिनय-कला के मुख्य दोष की कुंजी मिल जाती है। नयी-नयी प्राप्त आज़ादी के कारण जो अतिरेक हो जाया करता था तथा मिथ्या क्लासिक नाट्य-लेखन द्वारा लगाये नियंत्रण एवं इन निर्दिष्ट बिन्दुओं के बीच जो विरोध था कृत्रिम वही उस दोष का कारण था। मगर जो उद्धरण हमने यहाँ दिया है उसी से तलमा के रास्ते में आयी हुई कठिनाइयों का भी पता चल जाता है। अंग्रेजी नाटकों की जो भर्त्सना इस में की गयी है (शायद शेक्सपियर की ही सबसे अधिक आलोचना की गयी। 'ओथेलो' को जब रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया तभी यह आलोचना प्रकाशित हुई थी) और 'कलात्मक अभिनय की मर्यादा और सीमा' को जो बात यहां की गयी है, उससे इस कठिनाई का पता चल जाता है। प्राचीन रंगमंच से जो परम्परा चली आयी थी उसके संरक्षक स्वीकृत सीमाओं का उल्लंघन बर्दाश्त न कर सकते थे। विशेषतः 'कामेदी

फ्रांके' के रंगमंच पर तो वे परम्परागत अभिनय का पालन ही चाहते थे। तलमा ने अपनी ओर से यह चुनौती स्वीकार कर ली। वह सुधारक की भूमिका सजग होकर और प्रसन्नतापूर्वक करता रहा (यद्यपि वह अपने इस आलोचक ज्योफ्राय के पीछे पड़ा रहा) और जितने भी नौजवान लेखकों और अभिनेताओं को हो सका, उसने पथभ्रष्ट कर दिया; उसके प्रभाव से केवल यही लोग बच सके कि जो रूढ़ियों से बिलकुल बँधे हुए थे। १८२६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। यह घटना रोमांटिसिज़्म के आरम्भ होने के चार वर्ष पहिले घटी। अगर उसे यह माध्यम (रोमांटिसिज़्म का) मिलता तो सचमुच बहुत बड़ी बात होती।

इस प्रकार, जबकि धीरे-धीरे और अनेक प्रकार का तोड़फोड़ करने वाला
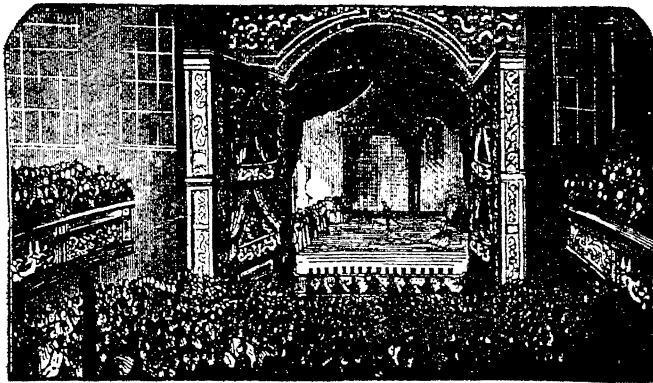
'न्यू ओरॉलयेन्स में, एक प्रारम्भिक अमेरिकन 'आपेरा हाउस।' पहिले चार प्रकार के प्रकोष्ठ निर्मित करने की अभिजात प्रणाली थी उसी का अवशेष। हाँ, अब प्रेक्षागृह अवश्य अत्यधिक जनवादी हो गया है। (ओलिव लोगन कृत 'बिफ़ोर दी फुट-लाइट्स एण्ड बिहाइन्ड दी सीन्स' से।)

लोकतंत्र युरोप के रंगमंचों में प्रवेश कर रहा था, अमेरिका में, जहाँ १७७६ ई० से लोकतंत्र का आविर्भाव हो चुका था, एक नये प्रकार के स्वतंत्र जीवन का विकास

हो रहा था; यह विकास अंग्रेजी जीवन से बिलकुल अलग प्रकार का था। चार्लेस्टन, फिलाडेल्फिया, न्यूयार्क और बोस्टन जैसे केन्द्रों में रंगमंच की प्रतिच्छाया दिख जाती थी। किन्तु अमेरिका में मातृभूमि इंगलैण्ड की परम्परा और रीतियों में स्पष्ट अन्तर आ गया था। ऐसे तेज़-तर्रार और महत्वकांक्षी वच्चे से ऐसी ही आशा की जा सकती थी साथ ही, जो चित्रात्मकता और गतिशीलता का प्रेमी है वह वहुत कुछ ऐसा ही करेगा जैसा कि वहाँ हुआ। फिर भी १८२० ई० तक अमेरिकन रंगमंचके विकास में कोई ऐसी बात नहीं हुई जिसे अन्तरराष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो सके।

उत्तर में काफ़ी जोश के साथ उन पवित्रतावादियों का संघर्ष जारी था जो सभी प्रकार के सुखों और आनन्द के स्रोतों को बुरा समझते थे। दक्षिण ने तो सदैव से ही शाश्वत नाटकीय प्रेरणा का स्वागत किया था। मगर यह सब एक शुद्ध औपनिवेशिक ढंग से ही हुआ था। सच यह है कि हम इन सभी कार्यों और आन्दोलनों को उसी रूप में देख सकते हैं और उतना ही महत्व दे सकते हैं जितना कि इंगलैण्ड के किसी सांस्कृतिक उपनिवेश को दिया जा सकता है। डबलिन का अत्यन्त सजीव परन्तु अतिशय सामान्य रंगमंच इसका एक उदाहरण है। इन उपनिवेशों में, जो कि बाद में राज्य बन गये, रंगशाला बनीं। पहिले वहाँ केवल साधारण हाल बने। फिर लन्दन के प्रतिमान पर रंगशालाएं निर्मित हुई। अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश में ऐसी प्रारम्भिक रंगशालाएँ, चलती-फिरती कंपनियों के काम आती थीं। परन्तु इस शताब्दी के अन्त में कई विशाल रंगशालाएँ निर्मिमत हुई। इनमें से शायद सवसे महत्वपूर्ण न्यूयार्क का पार्क थियेटर था जिस का उद्घाटन १७९८ ई० में हुआ। फिलाडेल्फिया में १७९८ ई० में चेस्टनतट स्ट्रीट थियेटर खुला। यह रंगशाला बाथ के थियेटर रायल की विवरणपूर्ण अनुकृति थी। इस समय तक अमेरिकन प्रेक्षक विशद चित्रात्मक दृश्यावलियों की आशा करने लग गये थे। चार्ल्स सिसेरी नामक एक इटालियन व्यक्ति ने, जिसकी शिक्षा पेरिस में हुई थी, रंगमंच की साज-सज्जा और अलंकरण में सहायता दी और युरोपियन परिपाटी के अनुरूप उसे सजाया। अधिकतर नाटक लन्दन से ही मँगाये जाते थे। रंगशाला में वह अवसर अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था जब कि अंग्रेजी कंपनियाँ अथवा अंग्रेज अभिनेता रंगमंच पर आते थे। किन्तु चौथाई शताब्दी में ही ऐसी स्थिति आ गयी जब कि अमेरिका में ऐसे अभिनेता पैदा हो गये जो आगन्तुक अभिनेताओं के आधिपत्य को चुनौती देने लगे। इस बीच सरकारी क्षेत्रों में लोकतंत्र का जो प्रवेश हुआ उसका कोई महत्वपूर्ण प्रभाव

नाटयरचना, अभिनय अथवा पश्चिमी महाद्वीपों की रंगशालाओं की डिजाइन पर नहीं पड़ा।

क्रूकशांक द्वारा चित्रित, १८१० ई० के इंगलिश रंगमंच के एक दृश्य में अंग्रेज प्रेक्षकों और अभिनेताओं के बीच घनिष्ट सामञ्जस्य दृष्टव्य है।
('थियेटर आर्ट्स प्रिन्टस', सीरीज ४, से।)

अध्याय १८

रोमांसवाद : रंगशाला पलायन के रूप में

यूनानियों के अत्यन्त ही परंपरागत महाकाव्यात्मक शैली के नाटकों से लेकर पत्रकारिता की शैली में रचित आधुनिक काल के परिचित नाटकों तक प्रगति की लम्बी दौड़ में रंगमंच को प्राचीनता के बन्धन से मुक्ति दिलाना और उसे जीवन के अधिक निकट लाना नाटककारों का सतत् प्रयास रहा है। उन्नीसवीं सदी के रोमांसवादी नाटककारों ने हर्षोल्लास के साथ इस बात की घोषणा की कि नाट्य-रचना के पुराने बन्धन अब टूट चुके हैं, प्रकृति की उन्मुक्तता को समझा जा चुका है और संसार को नाटक की समृद्ध कलात्मकता का पहली बार पूरा-पूरा बोध हुआ है। उनकी घोषणाओं से इस बात का पता भी चलता है कि नाटकों के क्षेत्र में एक सर्वथा नवीन तथा अत्यन्त ही समृद्ध और गौरवपूर्ण युग का आरम्भ होने वाला है जिसका प्रथम शंखनाद विक्टर ह्यूगो ने 'क्रामवेल' (१८२७ ई०) की अपनी भूमिका में किया जिसे पढ़कर मन आज भी उद्वेलित तथा आन्दोलित हो उठता है। किन्तु साथ ही खेद इस बात का भी होता है कि इन रोमांसवादी नाटककारों का कृतित्व यथार्थ-वाद के क्षेत्र में एक दुर्बल प्रयास-मात्र होकर रह गया है।

रोमांसवाद को यदि हम और भी व्यापक अर्थ में समझने का प्रयत्न करें तो, अर्थात् वह रोमांसवाद जो नाटककार को कल्पना के पंखों पर सुदूर आकाश में ऊंचे ऊंचे उड़ने को बाध्य करता है; वह रोमांसवाद जिसके प्रभाव की परिधि में पात्रों के संघटन और रंगमंच पर क्रियाओं के संचयन तथा संयोजन में सहज व्यवधानहीनता का आभास होता है और मानव जीवन के गूढ़, आन्तरिक, आध्यात्मिक पक्षों पर ही नाटककार की दृष्टि रहती है और वह अपनी बात कभी गद्य, कभी पद्य और कभी मूक-अभिनय के माध्यम से कहता है, अर्थात् वह रोमांसवाद जो रचना को इन्द्रिय-जनित

सौन्दर्य में निमग्न कर देता है, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि रोमांसवाद उस नाट्य-साहित्य का एक दूसरा नाम मात्र है जिसे हम सुन्दर, स्वच्छ, भव्य अथवा विराट् नाट्य-साहित्य कह सकते हैं, जिसमें मानवीय भावनाओं का अतिरेक हो, और कदाचित् यही कारण है जो हम लोग शेक्सपियर को रोमांसवादी नाटक का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक मानते हैं।

किन्तु रोमांसवाद का अर्थ यदि १८३० ई० के फ्रांसीसी नाटककारों की रचनाओं से समझा जाय तो निश्चित ही रोमांसवाद की परिभाषा इतनी संकीर्ण हो जायगी कि उसमें शेक्सपियर की विराटता का एक अंश भी नहीं समा सकेगा। वास्तविकता यह है कि शेक्सपियर की रचनाओं में जहाँ रोमांसवाद है वहीं वह अभिव्यक्तिवाद (एक्सप्रेशनिज़्म) की सीमा-रेखा का भी स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है और ऐसा इसलिये है कि वह जीवन को सर्वदा अधिक से अधिक गहराई से कूतने और उसे अधिक से अधिक घनीभूत बनाने को इतना प्रयत्नशील रहता है कि बाह्य-प्रकृति के मूल्यांकन के लिए उसके पास समय ही नहीं रहता। इसका एक कारण यह भी है कि मानव-चरित्र और मानव-प्रकृति में अधिक से अधिक अन्तर्दृष्टि रखने की चिन्ता में ज़िन्दगी के सतही तथ्यों की ओर इसका ध्यान भी नहीं जा पाता। कदाचित् यही कारण है जो शेक्सपियर का रोमांसवाद फ्रांसीसी नाटककारों के रोमांसवाद से भिन्न भी है और अधिक व्यापक भी है। १८३० ई० के फ्रांसीसी नाटककार जहाँ जीवन की चित्रात्मकता से आकर्षित होते हैं वहीं यह भी स्वीकार करते हैं कि ज़िन्दगी के सतही तथ्यों और प्राकृतिक विस्तारों की अपनी सीमाएँ होती हैं जो नाटककार की कल्पना-परिधि को ही नहीं बाँधती बल्कि रंगमंच के लिए अनिवार्य नाटकीय अभिव्यक्तियों को भी पंगु बना देती हैं। कल्पना के इसी संकोच और अभिव्यक्ति की इन्हीं सीमाओं के कारण उन फ्रांसीसी नाटककारों की रचनाएं आज प्रायः इतनी म्रियमाण हो चुकी हैं कि उनका स्वर अब न तो रंगमंच पर सुनायी देता है और न पुस्तकालयों में पुस्तकों के पृष्ठों पर। उनकी इस असफलता का कारण यह भी है कि उन्होंने रोमांसवाद को यथार्थवाद की राह का सब से पहला व्यवधान समझा था।

यहाँ मैं इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि रोमांसवाद और यथार्थवाद को विरोधी अर्थों वाले दो विरोधी पदों के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तु ह्यूगो, ड्यूमा तथा बुलवर-लिटन को यदि हम रोमांसवादी कलाकार मानें तो हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि रोमांसवाद की असफलता का कारण यथार्थवादी सीमाएँ होती हैं, कम से कम वह भावोद्वेग और अनावश्यक शब्द-जाल के साथ उसका एक आनुषंगिक कारण तो है ही।

उन्नीसवीं सदी में कला न तो जीवन के निकट थी और न जीवन की अभिव्यक्ति थी। उसके क्रिया-कलाप और कर्म-केन्द्र कुछ विशिष्ट संस्थानों और संग्रहालयों तक ही सीमित थे। साथ ही यह विश्वास भी जड़ पकड़ता जा रहा था कि कलाओं का सृजन और अभिनन्दन जीवन का स्वभाव नहीं, जीवन से पलायन है। संगीत, चित्रकला और नाटक को भी जीवन के लिए नीरस व्यापारों से क्षणिक मुक्ति का साधन मात्र समझा जाता था, जो हमारी श्रवण तथा अवलोकन शक्तियों का मनुहार अत्यन्त ही अपरिचित, अस्वाभाविक तथा विजातीय ध्वनियों और दृश्यों के माध्यम से करते हैं। साथ ही युग की वस्तु-परक वस्तुवादिता युग को आस्थाहीन बनाती जा रही थी जिसकी परिणति अनुभूत तथा अवलोकित तथ्यों पर आधारित यथार्थवाद में होती जा रही थी। और इसलिए नाटककार के लिए यह आवश्यक होता जा रहा था कि चित्रात्मकता की खोज में जहाँ वह संभावनाओं की सीमा का अति-क्रमण करना चाहता है वहीं तथ्यों के विस्तार पर भी दृष्टि रखे और संवेगात्मक क्षणों में भी अपने पंख मनुष्योचित स्वप्नवादिता से परे फैलाने की चेष्टा न करे।

दर्शक भी साधारण जीवन की बदरंग दुनिया से निकलकर रंगीनी की प्रतीति चाहता था किन्तु ऐसी रंगीनी भी नहीं जो उसको जीवन की वास्तविकता से विमुख कर दे, बल्कि ऐसी रंगीनी जो उसे सत्य का आभास दे। इस 'सत्य' के प्रति दर्शक का मोह इतना गहरा होता था कि अपने को नायक की साहसिक यात्राओं के भावानात्मक स्वर के रूप में देखना और पीड़ित नायिका के क्रन्दन में स्वयं भी मानसिक क्रन्दन करना उसका अनिवार्य अंग हो गया था। और यही कारण है जो रोमांसवाद की भव्यता निर्बन्ध अथवा स्वच्छन्द न हो सकी; उसके उन्नत आदर्शवादी पात्रों को यदा-कदा यथार्थवाद की भूमि पर भी उतरना पड़ा और कल्पना को अपनी यात्रा पर रुक-रुक कर चलना पड़ा ताकि वह मार्ग की भावनात्मक संभावनाओं का भी आलिंगन करती चले। इस युग में हेमलेट. पोर्शिया अथवा आथेलो जैसे पात्र, जिनकी वास्तविकता पर विश्वास करने को सहसा जी न चाहे, नहीं मिलते——ऐसे पात्र जो मनुष्य की आत्मा की गहनतम अनुभूतियों के प्रतीक-से प्रतीत होते हैं और हमारे अन्तर के उन उद्वेलनों को साकार करते हैं जिनकी करवट मात्र ही अपने में एक महान् नाटक हो। इसके वितरीत, इस युग के पात्र व्यवहारों में जीवन से परे और जीवन से ऊपर तो अवश्य हैं किन्तु कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जब वे हमारे जीवन के बहुत ही निकट होते हैं। उनके क्रिया-कलाप ऐसी परिस्थितियों से उद्भूत होते हैं जो सत्य का आभास देती हैं और संघर्ष, विश्वासघात, वियोग तथा बलिदान आदि तत्वों के संयोग तथा सम्मिश्रण से निर्मित तथा रचित होती हैं।

फ्रांस के रोमांसवाद को गहरा रोमांसवाद नहीं कहना चाहिए। निषेधात्मक रूप से फ्रांस के रोमांसवाद से फिर भी पर्याप्त लाभ हुआ। शास्त्रीय शैली में रचित, नाट्यशाला के नियमों और उपनियमों से बँधे, कमज़ोर, क्लासिकल नाटकों का ह्रास हुआ, नाटककार को खुली हवा में सांस लेने का अवसर मिला और उसे प्रकृति के द्वार तक पहुँचने तक का मार्ग प्रशस्त मालूम पड़ा।

स्वतन्त्र होकर नाटककार ने अपने कृतित्व में भव्यता का आह्वान किया। काल और स्थान के एकता-सम्बन्धी जर्जर नियमों के बन्धन टूट गये; मानवता के चित्रण के लिए विशाल पृष्ठभूमि तैयार हुई और इस बात को आवश्यक नहीं समझा गया कि नाटक के पात्र अनिवार्यतः उन्नत अथवा आदर्श हों और नाटक का घटना-क्रम अनिवार्यतः पराक्रमपूर्ण हो। उच्च के साथ ही निम्न और सशक्त के साथ ही अशक्त पात्रों की भी अवतारणा हुई और इस प्रकार एक अत्यन्त ही नवीन नाट्य-शैली का अवतरण हुआ। सुन्दर और असुन्दर, लौकिक और अलौकिक दोनों को आवश्यक समझा गया और 'चित्र' के साथ ही 'विचित्र' को भी स्थान मिला। नाटकों में ऐश्वर्य और अतिरंजना आई, घटनाओं का चक्रव्यूह तैयार हुआ और जीवन की आपाधापी प्रतिबिम्बित तथा प्रतिध्वनित होने लगी।

विचित्र किन्तु वास्तविक पात्रों के सृजन की धुन में ह्यूगो और ड्यूमा को अधम, वर्णसंकर, जातिभ्रष्ट, अपराधी पात्रों की अवतारणा करनी पड़ी। ऐसा कदाचित् इसलिए करना पड़ा कि किसी दूसरे प्रकार के पात्र इस नये युग के नवीन नाटकों की विस्तृत रूपरेखा में समीचीन नहीं प्रतीत होते। विरोधी भावनाओं की सृष्टि के लिए उन्होंने निर्दोष पात्रों साथ दोषयुक्त पात्र तथा निर्मल एवं पवित्र पात्रों के साथ ही आसक्त पात्र भी गढ़े। ऐसा उन्होंने पेरिस के जुगुप्सित, अतिशयोक्ति-पूर्ण भावात्मक नाटकों को आदर्श मानकर किया था। क्लासिकल नाटकों के इस पतनकाल में कुछ ऐसे भी असाहित्यिक नाटक सामने आये जो अपनी साहित्यिक निम्नता से अशिक्षित दर्शकों का सस्ता मनोरंजन मात्र कर पाते थे। ऐसे नाटकों का आकर्षण विशेषतः उनका वैचित्र्य, भावनात्मक झटके देनेवाली उनकी घटनाएँ, और यंत्रों के प्रयोग से उत्पन्न उनके प्रभावों में निहित होता था। ऐसे नाटकों में पात्रों के कर्म अत्यन्त ही अतिरंजनापूर्ण होते थे और स्वयं पात्रों के विकास में किसी क्रमिक कलात्मकता अथवा एकता का हाथ नहीं होता था। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि विभिन्न प्रभावों को ग्रहण करने में उदारवृत्ति के पोषक रोमांसवाद के चित्रात्मक तथा रंगीन निकेतन में पात्र-कर्म की उपर्युक्त विशेषता को भी समुचित स्थान मिला।

नाटक के काव्य और उसकी भाषा के स्वरों में भी बुलन्दी आई। फलतः

ह्यूगो के अनेक नाटकों में चमत्कारपूर्ण गीतित्व को प्राधान्य मिला। शब्दजाल तथा अलंकार की प्रवृत्ति बढ़ी, साथ ही उनसे बोल-चाल की साधारण भाषा भी टकराने लगी। इस प्रकार रोमांसवादी नाटक का जो साहित्यिक कलेवर सामने आया वह सर्वथा निर्दोष नहीं है। छिछलेपन के साथ ही भव्यता को भी स्थान मिला और कल्पना के ऐश्वर्य के बावजूद कलाकार की हथेली रिक्त ही रही।

नाटककारों ने कृतित्व को भाव-बोझिल बना दिया यद्यपि प्रकृति के प्रति अपने नये सिद्धान्तों से उन्होंने कल्पना की बागडोर नियंत्रित रखने का भी कम प्रयास नहीं किया। पात्रों के चित्रण के लिए उन्होंने बहुत ही विस्तृत भाव-भूमि तैयार की, कदाचित इतनी विस्तृत भावभूमि जो घटनाओं और पात्रों के आधिक्य और कल्पना की अत्यन्त ही ऊंची उड़ान के बावजूद स्वयं शेक्सपियर भी नहीं तैयार कर पाया है, क्योंकि शेक्सपियर का ध्यान सदैव पात्रों को किसी एक केन्द्र-विशेष की ओर ले जाने की ओर होता था। फल यह हुआ कि ह्यूगो अथवा ड्यूमा के पात्रों को एक सप्ताह से अधिक समय तक याद रखना कठिन हो गया (ड्यूमा के 'लाडेम ओक्स कैमेलिया' को अपवाद समझना चाहिये क्योंकि वह रोमांसवाद के बाद की रचना है—उस समय की रचना जब रोमांसवादी मेलोड्रामा की परम्परा समाप्त हो गयी थी और कलात्मक दृष्टि से भी उत्तम नाटक लिखे जाने लगे थे)।

फ्रांस के रोमांसवादियों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने नाट्य-रचना के क्लासिकल नियमों को तोड़ दिया। साहित्य-रचना की शास्त्रीय सीमारेखा का अतिक्रमण करने के कारण ही उन्हें रोमांसवादी कहा गया। रोमांसवाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले साधारण जनों के उस साहित्य-विशेष के लिए किया गया था जो 'रोमांस' भाषाओं में रचा गया। 'रोमांस' भाषाएं सामान्यजनों की उन सामान्य बोलियों को कहते हैं जो विद्वानों और धर्मशास्त्रियों की परिष्कृत तथा सुसंस्कृत लेटिन से बहुत भिन्न थीं। रोमांस भाषाओं में रचित साहित्य सबसे पहले प्रेम तथा साहसिक कृतियों पर आधारित कथाओं के रूप में रचा गया। जीवन को बहुत समीप से देखने और उसका भरपूर चित्रण करने में विश्वास रखने वाले, क्लासिकल नाटकों के विरोधी रोमांसवादी नाटककार कदाचित इसीलिए कथानकों की खोज में मध्यकालीन रोमांस-कलाओं की ओर उन्मुख हुए थे। किन्तु आगे चलकर रोमांसवाद की व्यापक परिधि में संकीर्णता आने लगी और रोमांसवादी नाटककार जीवन को निकट से देखने के बजाय जीवन से पलायन करने लगे।

रोमांसवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण नाटकाकारों की संख्या अपेक्षाकृत न्यून है। प्रारंभिक काल के नाटककारों में पिक्ज़ेरे कोर्ट मुख्य है। रचना-बाहुल्य और शिल्प-

कुशलता उसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। उसके नाटकों से रंगमंच पर व्याप्त प्रभावों तथा अभियानों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। (देखिए, प्लेट ४२ तथा ४४)।

अल्फ्रेड दे विज्नी ने भी अपने नाटक प्रचुर रोमांसवादी शैली में ही लिखे किन्तु अत्यधिक अलंकारात्मकता तथा शब्दाडम्बर के कारण वह बोझिल हो गयी है। इस नवीन आन्दोलन की सर्वाधिक मुखर वाणी विक्टर ह्यूगो की थी। इसकी नवीन शैली सम्बन्धी प्रभावपूर्ण घोषणाएँ उसने लिखीं। 'हरनानी' (१८३० ई०) सर्वाधिक विवादास्पद नाटक के रूप में सामने आयी। विक्टर ह्यूगो की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उसने रोमांसवादी नाट्य-शैली में आपेरा की भव्यता की स्थायी परम्परा चलायी। गीति-तत्व और रंगमंचीय विधान-शक्ति का तो उसे वरदान था और संभवतः इसीलिए उसके हाथों में नाटक ज्योति-स्तम्भ के समान दीप्त हो उठा। किन्तु जब उसकी प्रतिभा का ह्रास आरंभ हुआ तब उसकी गहनता और भावानुभूति मन्द पड़ने लगी और यही कारण है जो करुणा और शब्द-वैभव की संचित सम्पत्ति के चुक जाने के बाद रोमांसवादी नाटक प्रायः छिछला तथा अस्तित्वहीन हो गया। 'हरनानी', 'रुई ब्लास' तथा 'मेरियन देलार्मे' नामक नाटकों का उल्लेख आज बस स्मरण मात्र के लिए किया जाता है। ह्यूगो के बाद केसेमीर डेलावाइन तथा एलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा आते हैं। जहाँ तक तात्कालिक यश का प्रश्न है ड्यूमा ह्यूगो का प्रतिद्वंदी था किन्तु रोमांसवादी आन्दोलन के प्रवर्तक-विशेषज्ञों में ह्यूगो ही सर्वाधिक उल्लेखनीय माना जाता है। ड्यूमा ने बहुत लिखा और इतना लिखा कि प्रतिक्रिया स्वरूप उसकी कृतियाँ मौन के गर्त्त में डूब गयीं।

ह्यूगो ने रोमांसवाद को 'साहित्य में औदार्य का समावेश' कहा है। सच भी है कि १८२५ ई० के पूर्व के फ्रांसीसी रंगमंच को स्वतंत्र तथा उदार बनाने की आवश्यकता थी। साहित्य से सर्वथाहीन नाटक, मेलोड्रामा-लेखकों के प्रयत्न से, पहले ही स्वतंत्र हो चुके थे, अब ड्यूमा और ह्यूगो ने रंगमंच को भी स्वतंत्र करके साहित्य में सचमुच ही वास्तविक औदार्य लाने का प्रयत्न किया। ऐसी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए रंगमंच को क्लासिक नाटकों की गर्वोन्नत ऊंचाई से नीचे रोमांसवाद की ओर उतरना पड़ा।

इसके बहुत दिन पहले जार्ज लिलो नामक लन्दन के एक नाटककार ने 'जार्ज बार्नवेल' शीर्षक एक नाटक लिखा जिसका विषय था लन्दन में काम सीखने को आये हुए एक नागरिक की बरबादी। उस नाटक की रचना साहित्य-क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना थी और वह इसलिए कि मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित 'घरेलू दुःखान्तकों' (डोमेस्टिक ट्रेजेडी) का प्रचलन संभवतः उसी नाटक के प्रकाशन से

हुआ। नाटकों में एक प्रकार के विशिष्ट, जाने–पहचाने, घरेलू मानवीय तत्व का समावेश हुआ। साहित्य के अनेक समालोचकों को ह्यूगो के रोमांसवाद का उद्गम भी इन्हीं मध्यवर्गीय दुःखान्तों में दिखलायी पड़ता है जो क्लासिकल नाटकों के अलौकिक विरलेपन के विरुद्ध अवतरित हुए थे। रोमांसवाद में जहाँ तक उच्च को निम्न तथा राजा को रंक के पार्श्व में बिठलाने का प्रश्न है वहाँ तक इस वर्ग के नाटककारों को अच्छी सफलता मिली है। इसी बीच 'दुःख-सुखान्त' नामक नाटक का एक दूसरा रूप भी उत्पन्न हुआ जिसको सर्वाधिक प्रश्रय फ्रांस और जर्मनी में मिला। लाइलो से प्रेरणा लेकर फ्रांस में दिदरो ने भी कुछ ऐसे ही नाटक लिखे जो प्रकृति-वाद के अत्यधिक समीप हैं और जिनका उल्लेख भावी नाटकों की पूर्व-सूचना के रूप में किया जाता है। यथार्थवाद अथवा प्रकृतिवाद पर आधारित भावुकता-वादी नाटककारों में मैरिवा का उल्लेख मिलता है। उसने रोमांसवादी नाटक को एक विशिष्ट लालित्य प्रदान किया। दुःख-सुखान्त तथा मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित दुःखान्त नाटकों की लोकप्रियता लेसिंग की रचनाओं से जर्मनी तक फैली। संभव है कि ह्यूगो और ड्यूमा की रचनाओं पर इन साहित्यिक गतिविधियों की भी प्रभाव पड़ा हो।

१८३० ई० के आसपास अंग्रेजी रोमांसवाद में विद्रोही भावना को प्रश्रय उतना अधिक नहीं मिला जितना उसे फ्रांस के रोमांसवाद में मिला। सच पूछिये तो अंग्रेजी रोमांसवाद की अभिव्यक्ति जितनी प्रचुरता के साथ अंग्रेज़ी गीति-काव्य और अंग्रेज़ी उपन्यास-साहित्य में हुई उतनी अंग्रेज़ी नाट्य-साहित्य में न हो सकी (शैली कृत 'दि सेंसी' तथा बायरन रचित 'मैनफ्रेड' और ऐसे ही लगभग आधे दर्जन अन्य नाटकों को अपवाद समझना चाहिये और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि इन नाटकों का साहित्यिक रूप तो नाटकीय अवश्य है, किन्तु रंगमंच के दृष्टिकोण से सर्वथा न्यून है)। वातस्व में अंग्रेज़ी रोमांसवादी नाटक पर ह्यूमा और ड्यूगो की ही प्रतिच्छाया है। लगता है जैसे 'बार्नबेल' विदेश जाकर अपनी मौलिक खिन्नता में गठरी भर भव्यता तथा अभिव्यक्ति का ऐश्वर्य मिला लाया हो।

शेरिडन नोलेस की गणना प्रारंभिक रोमांसवादी नाटककारों के साथ न होकर अन्तिम दुःखान्तवादियों के साथ होनी चाहिए क्योंकि रोमांसवाद के प्रारंभिक काल में गुण की दृष्टि से तो वैसे कोई उत्तम दुःखान्त नहीं लिखा गया किन्तु इतना ही क्या कम है जो दुःखान्त नाटकों की रचना तो हुई! १८२० ई० में जब नोलेस की पहली रचना सामने आयी तब विलियम हैज़लिट ने लिखा 'इस युग की विशेषताएं समालोचनात्मकता, उपदेशात्मकता-विरोधाभास और रोमांसवाद हैं।'

मेलनोट

"यह सब से बड़ा आघात है ! कितने सुकुमार हृदय को मैंने बेधा है ? आप मुझ से त्रस्त तनिक भी न हों महानुभाव ! मैं पत्थर का नहीं हो गया हूँ। मैं उससे उसका वह प्यार कदापि नहीं छीनूँगा जो मेरे प्यार से कई गुना पवित्र है। प्यार और करुणा की देवी पालिन ! तुम्हारी स्मृति मुझे फिर से सन्मार्ग दिखाये। अलौकिक कोमलता और सौन्दर्य की ऐसी अनुपम देवी का पति दीन और निम्न हो सकता है, तुम्हारी आँखों में आँखें डालने का साहस और तुम्हारा प्यार पाकर प्यार पर न पछताने की क्षमता उसमें अवश्य होनी चाहिये। वह तुम्हें अपने अन्तर में संजोकर कह सके कि देखो, जहाँ तुम हो वहाँ न कोई धोखा है, न कोई कपट है। ऐसा आदमी कदापि नहीं हूँ पालिन ! कदापि नहीं !"

डेमस (एकान्त में मेलनोट से)

"तुम महान् पुरुष हो मेलनाट ! साथ ही एक महान् सैनिक भी हो। मेरी फ़ौज में आ जाओ। आज मुझे एक पत्र मिला है। हमारा जवान कप्तान इटली में अपनी फ़ौज के साथ पड़ा हुआ है। मुझे उसका साथ देना है। अगर तुम मेरे साथ चलो तो आज मैं कूच कर जाऊं।"

मेलनोट

"माँगने का साहस करता तो कदाचित यही वरदान मैं माँगता भी। मुझे आप जहाँ भी चाहें भेजें और वहाँ भी भेजें जहाँ आपके शत्रु सबसे खूँखार हों। जब आपको या आपके देश फ्रांस को मनुष्य की बलि देने की आवश्यकता हो तब आप मुझे बुलायें। आपकी कितनी सराहना होती है, लोगों के मनों में आपके प्रति कितनी अगाध श्रद्धा है, और आपसे ही मैंने छल किया ? सब चला गया, किन्तु अब भी बहुत कुछ शेष है। आपकी याद मेरी मृत्यु तक साथ देगी। यदि मैं जीवित रहा तो आपके इस स्नेह-भाजन पर जो कलंक आ गया है उसे अवश्य मिटा सकूँगा और यदि लड़ते-लड़ते मारा गया तो मेरी आत्मा आपके चरण चूमेगी और प्यार जीवन की अन्तिम घड़ी में मौत के साथ मेरी साँसें गिनेगा।..."

इसी नाटक के एक अन्य अंक से एक उदाहरण लीजिये। उपर्युक्त प्रसंग के

वाद ढाई साल बीत चुके हैं। मेशनोट संग्राम से गौरव प्राप्त करके लौटा है। पिता को बर्बाद हो जाने से बचाने के लिए पालिन उसी दिन धनवान खलनायक व्यूसेंत के हाथ अपने को सौंप देने वाली है। मेलनोट वेश बदल कर पालिन से मिलता है। वह उसे पहचान तो नहीं पाती है किन्तु अपने हृदय का हाल उससे वह पूरा-पूरा बतला देती है (आँसू आ जाते हैं उस दृश्य की कल्पना करके)। मेलनोट दस्तावेज फाड़ डालता है और इटली के संग्राम से लाये हुए द्रव्य को देकर पालिन के पिता के प्राण बचाता है और पालिन को हृदय से लगा लेता है। अन्त में एक उपदेश है :

मेलनोट

आह ! प्रेम जो हमें पाप में ले जाता है,
यदि सच्चा है, वही लौटकर ले आता है।
और मनुज जो बीती पर पछतावा करता,
वह भविष्य में दुर्लभ दैव गुणों को वरता।

तो रोमांसवाद ने नाटक को प्रकृति के इतने निकट ला पहुँचाया था। भव्यता का भी समावेश उसमें उसी अनुपात से हुआ। फ्रांस के नाटककारों ने नाटक के रूप को एक विशेष दिशा दी थी—उन्होंने नाटकों की रचना का माध्यम पद्य को बनाया था। 'दि लेडी आव लायंस' में पद्य और गद्य दोनों का सम्मिश्रण है। मेलोड्रामा का तत्व ह्यूगो और लिटन दोनों की रचनाओं में समान रूप से पाया जाता है। वह एक ऐसी विशेषता थी जिससे उस काल के समालोचकों की दृष्टि भी आकर्षित हुई। १८३८ ई० में जब 'दि लेडी आव लायंस' पहली बार खेला गया तक उसकी समालोचना करते हुए लन्दन के 'टाइम्स' ने लिखा—'नाटक के पात्र ठीक मेलोड्रामा के पात्रों के समान हैं। क्लाड किसी दुर्भाग्य का शिकार होकर शुरू में कपट रचता है किन्तु बाद में एक अनुपम योद्धा बन जाता है। राक्षसी वृत्ति के प्रतीक व्यूसेंत की गणना नाटक के ऐसे पात्रों में होनी चाहिये जिनका अस्तित्व बीस साल पहले के मेलोड्रामा नाटकों के अतिरिक्त और कहीं अब देखने को भी नहीं मिलता। कुछ इसी प्रकार का चरित्र उस वृद्ध सज्जन का भी है जो दिवालिया होने के भय से अपनी पुत्री को भी एक दुष्ट के हाथ सौंप देने को तैयार हो जाते हैं।' किन्तु फिर भी लिटन की रचना एक सुन्दर साहित्यिक रचना है जो रंगमंच पर भी काफ़ी प्रख्यात हुई थी। ऐसे नाटकों के अतिरिक्त कुछ दूसरी तरह के नाटक भी लिखे गये

जिनमें प्रहसन, नाविकों के जीवन पर आधारित लोक-नाटक, तथा घोड़ों और अन्य जानवरों के विभिन्न लोमहर्षक करतबों पर आधारित सरकस-नाटक (देखिये, प्लेट सं० ४४) आदि मुख्य हैं। फ्रांस की तरह अंग्रेजी रंगमंच पर भी नाटकों के इन सभी रूपों तथा प्रकारों में मेलोड्रामा सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ।

यदा-कदा शेक्सपियर के नाटक भी खेल लिये जाते थे। इसके साठ साल पहले तो यह हाल था कि उसके लगभग सभी उत्तम नाटकों के कई-कई परिवर्द्धन और रूपान्तर तथा उस समय के उत्तम अभिनेताओं द्वारा उनके कई-कई प्रदर्शन भी हो चुके थे। नयी शताब्दी के शुरू होते ही लोगों की रुचि उनके रूपान्तरों और अभिनयों में प्रायः बिलकुल नहीं रह गयी और जब रोमांसवाद का पूर्ण पुनर्जागरण हो गया तब भी शेक्सपीयर के नाटकों की ओर जनरुचि को उन्मुख करने का कोई प्रयास नहीं दिखायी दिया। उन्नीसवीं सदी के नये रोमांसवाद की संकुचित परिधि में शेक्सपियर का रोमांसवाद अच्छी तरह खप भी नहीं पाता।

यदि एडमंड कीन को रोमांसवादी काल का उत्तम अभिनेता माना जाय तो यह भी स्वीकार करना होगा कि रोमांसवादी काल में अभिनय के क्षेत्र में भी नवीन पंथ तैयार हुए—वैसे एडमंड कीन ड्रूरी लेन के मंच पर १८१४ ई० में ही उतर चुका था। रोमांसवादी नाटककारों के लक्ष्य को वह पूरा-पूरा समझता था और इसीलिए अभिनय की कला को वह इतनी ऊंचाई तक ले गया कि पहले की प्रायः सभी अभिनय-परम्पराएँ झूठी पड़ गयीं। कालरिज ने लिखा है—'कीन को अभिनय की मुद्रा में देखना ऐसा ही है जैसे शेक्सपियर की रचनाओं को तड़िज्ज्योति में हृदयंगम करना।' कीन ने अभिनय की भव्यता में प्रकृति की स्वाभाविकता का सामंजस्य किया ? और अभिनय करते समय कदाचित नाटककार की भावनाओं से भी अधिक गहराई तक पहुँचा। उसको पात्रों के अन्तःकरण की सूक्ष्म तथा सच्ची पहचान थी और इसीलिए उन्हें वह अपने अभिनय में साकार भी न कर पाया। उसकी प्रतिभा में अपूर्व चमत्कार था और अभिनय का तो मानो उसे अलौकिक वरदान था। इस कला के इतिहास में उसका स्थान निःसन्देह बेजोड़ है। एक न्यूनता अवश्य थी जो उसकी अपनी न्यूनता नहीं थी वरन सम्पूर्ण रोमांसवाद की न्यूनता थी और वह यह थी कि जहाँ उसे शाही अथवा स्थिरता के भाव व्यक्त करने होते थे वहाँ उसकी क्षमताएं पंगु हो जाती थीं। वह सर्वदा गतिशील रहता और भावनाओं की तरंगों पर लहराता रहता। रंगमंच से परे भी उसका जीवन ऐसा ही था—प्रखर, प्रमत्त, निर्बन्ध। यदि रोमांसवादी अभिनय इसी को कहते हैं तो वह निःसन्देह रोमांसवाद का सर्वोत्तम अभिनेता था। उसका स्मरण आज हम उसकी ओथेलो, शायलाक तथा

रिचर्ड तृतीय की भूमिकाओं के कारण करते हैं क्योंकि स्वयं अपने काल के पात्रों को वह उतनी अच्छी तरह अभिनीत नहीं कर पाया था।

शैली ने अपने सुप्रसिद्ध दुःखान्त 'सेंसी' में जिस सौन्दर्य की सृष्टि की वह एलिज़ाबेथी नाटकों के बाद प्रायः दुर्लभ हो गया। मृत्युदण्ड के लिए ले जायी जाती हुई बीट्रिस के अन्तिम शब्द, जो नाटक के भी अन्तिम शब्द हैं, सुनिए :

"तू मेरी कमरबन्द बांध दे माँ। और इन बालों को लपेटकर कोई अच्छा-सा जूड़ा बना दे। ये छोटे सरल जूड़े बड़े ही प्यारे लगते हैं। किन्तु माँ, तुम्हारी वेणी तो खुलती जा रही है। अनेक अनेक बार हमने एक दूसरे की वेणी बनायी है किन्तु अब वह अवसर कभी नहीं आयेगा माँ। अब हम प्रस्तुत हैं प्रभु ! ठीक है, हाँ, यह वेणी बिलकुल ठीक है।"

सहजता, सरलता, सुन्दरता की दृष्टि से तो रचना बेजोड़ अवश्य है किन्तु ऐसी रचनाएं रंगमंचीय तकनीक की दृष्टि से उत्तम नहीं होतीं क्योंकि उनमें क्रिया-शीलता के अभाव के कारण अभिनेता को अपनी कलात्मक प्रतिभा का परिचय देने का अवसर नहीं मिलता। संभवतः यही कारण है जो रोमांसवाद के तथाकथित सर्वोत्तम कवि रंगमंच की दृष्टि से नाटकों की रचना करने से प्रायः सर्वदा कतराते रहे। वह तो लिटन जैसे रोमांसवादी उपन्यासकारों की ही क्षमता थी जो अपनी कृतियों में कारुणिक दृश्यों की सृष्टि करके पाठकों की आँखों से आँसू निकाल सकते थे।

बायरन ने 'मैनफ्रेड' के बारे में स्वयं लिखा है—'कथोपकथन अथवा नाटक की शैली में रचित यह एक प्रकार का काव्य है,अत्यन्त ही अनियंत्रित, तत्ववादी, अनिर्वचनीय।' बेशक इस रचना में बायरन की प्रतिभा का जादू खूब निखरकर अभिव्यक्त हुआ है किन्तु रंगमंच पर इसकी सफलता अवश्य ही सन्दिग्ध है। 'मैनफ्रेड', 'मैरिनो फ़लियरो' 'सरडाना पेलस' तथा 'वर्नर' आदि सभी रचनाएँ ड्रूरी लेन थियेटर में अभिनीत हो चुकी हैं और कुछ तो अन्यत्र भी खेली गयी हैं किन्तु रंगमंच की दृष्टि से उत्तम रचनाएं न होने के कारण वे समय के प्रवाह में विस्मृत हो गयीं। यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि उन्नीसवीं सदी के आरंभ में, प्रसिद्धि में कीन की बराबरी के अभिनेता विलियम चार्ल्स मैक्रीडी ने भी बायरन के कुछ नाटक खेले थे, और 'वर्नर' का अभिनय तो थोड़े-थोड़े समय के बाद प्रायः बाईस साल तक प्रशंसित होता रहा; यहाँ तक कि १८८७ ई० में लन्दन में 'वर्नर' का एक 'स्पेशल मैटिनी शो' भी हुआ जिसमें स्वयं हेनरी इरविंग मुख्य अभिनेता था। फिर भी बायरन के नाटकों की ख्याति उसके पाठकों तक ही

सीमित रही और दर्शकों अथवा श्रेताओं का प्रिय वह कभी नहीं बन सका।

साहित्यिक अथवा काव्यात्मक नाटकों की रचना की परम्परा रोमांसवाद के बाद भी सक्रिय रही, विशेषतः टेनिसन तथा ब्राउनिंग के नाटकों में, किन्तु अंग्रेज़ी रंगमंच की दशा कुछ ऐसी थी कि उस ओर साहित्यकारों का ध्यान बहुत निकट तक नहीं जा सका। शताब्दी के प्रारंभ के दर्शकों में अंग्रेजी रंगमंच का आकार बहुत ही विस्तृत हो गया था। कारण यह था कि नाटक दिखलाने की वैधानिक अनुमति उस समय इंगलैंड के केवल तीन रंगमंचों को ही थी। फलतः उन रंगमंचों को और भी अधिक विस्तृत कर दिया गया था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि विस्तृत आकार के मंचों की भी अपनी सीमाएं होती हैं क्योंकि उनपर अत्यन्त चमत्कारिक तथा प्रचंड कोलाहलपूर्ण तूफ़ानी दृश्यों के अभिनय ही सफल हो पाते हैं। इनके अतिरिक्त जो अपेक्षाकृत लघु आकार वाले रंगमंच थे उनपर वास्तविक नाटकों के प्रदर्शन की सरकारी अनुमति के अभाव में प्रहसन, मेलोड्रामा-संगीत तथा आपेरा आदि का प्रचलन हो गया। मेलोड्रमा का प्रदर्शन बहुधा संगीत-नाटक के नाम से किया जाता था।

यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि मेलोड्रामा के बहुत से लेखक रंगमंच की तकनीक में भी दक्ष थे। उनमें से अधिकतर लेखकों की रचनाएं तो अब प्रायः लुप्त हो चुकी हैं, किन्तु इस वर्ग के अन्तिम और संभवतः सर्वाधिक प्रख्यात लेखक दियों बुसीकोल्त की रचनाओं में 'आरा-ना-पोग,' 'दि कोलीन बान' तथा 'लन्दन ऐश्योरेंस' का स्मरण आज भी किया जाता है जिनकी तुलना जानसन, फ़्लेचर तथा शेरिडन की रचनाओं से की जा सकती है। अन्तर केवल यह है कि इन नाटकों में समय के प्रवाह में भ्रष्ट मेलोड्रामा के घटियापन का भी समावेश है।

इसी प्रसंग में अपेक्षाकृत निम्नतर रंगमंच के कलाकार जोज़ेफ़ ग्रिमाल्डी का भी उल्लेख होना चाहिए। उसका स्मरण 'कमेदिया देल आर्ते' तथा आधुनिक चल-चित्र, स्कारामाउश तथा चार्ली चैपलिन की परम्परा के बीच की कड़ी के रूप में किया जाता है। उसका जन्म लन्दन में एक इटालियन अभिनेता पिता के घर हुआ था वह अपने युग का सर्वश्रेष्ट विदूषक बन गया था। अंग्रेजों के सर्वप्रिय मूक-अभिनयों में विदूषकीय तत्व के सम्मिश्रण से ग्रिमाल्डी ने उन्हें एक नवीन संस्कार दिया। उसने प्रदर्शन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए रंगमंचीय उपादानों का अधिक से अधिक प्रयोग किया किन्तु उसकी ख्याति अधिकतर उसकी अद्वितीय अभिनय-प्रतिभा पर ही आधारित है। दर्शकों का प्रिय भी वह एक अनन्य विदूषक के रूप में ही हुआ। हास्य-अभिनय की उसने जो परम्परा स्थापित की वह आज भी अक्षुण्ण है। संभवतः इसीलिए उसे हास्य-अभिनय का 'माइकेलएंजेलो' कहा गया।

उधर जर्मनी के रोमांसवादी आन्दोलन की अभिव्यक्ति टे तथा शिलगेर की रचनाओं में पहले ही हो चुकी थी और यद्यपि उनकी रचनाओं में शब्दाम्बर दोष प्रायः बिलकुल नहीं था किन्तु रोमांसवाद का विकास वहाँ उन अर्थों में न हो सका जिन अर्थों में ड्यूमा तथा ह्यूगो के रोमांसवाद को समझने का प्रयत्न किया जाता है।

रोमांसवादी साहित्य का अरुणोदय जर्मनी में वीमर के राजदरबार में सबसे पहले गेटे, शिलर तथा उनके मित्र-लेखकों की कृतियों में चमत्कृत हुआ। वास्तव में जर्मनी ये दो महान् लेखक कुछ ऐसे नाटकों की रचना कर रहे थे जिनमें सच्ची सहजता थी, साहित्यिक सुसम्पन्नता थी और गहनता भी थी। जो लालित्य और जो मृदुलता हमें उनकी रचनाओं में मिलती है वह न तो अंग्रेज़ी रोमांसवादी नाट्य-साहित्य में है और न फ्रांसीसी रोमांसवादी नाट्य-साहित्य में। यही कारण है जो फ्रांसीसी रोमांसवाद की परिभाषा में जर्मनी का रोमांसवादी साहित्य ठीक-ठीक नहीं उतर पाता। हाँ, जर्मन रोमांसवाद के अन्य नाटककारों की रचनाएँ ह्यूगो अथवा लिटन की रचनाओं से अवश्य ही कम महत्वपूर्ण हैं। इसलिए प्रस्तुत अध्याय में जर्मनी के रोमांसवादी नाटकों का उल्लेख समीचीन नहीं होगा। वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है।

हम सोच सकते हैं कि रोमांसवाद जर्मनी के ही कला-तन्तुओं से निर्मित एक परिधान है। वस्तुतः इस बात को सिद्ध करना भी कठिन नहीं है। उन्नीसवीं सदी के लिए अनेक जर्मन कलाकार तथा कवि और उपन्यास -लेखक अपनी रचनाओं द्वारा इस बात की पुष्टि भी करते हैं। प्रश्न केवल यह है कि जर्मनी के रोमांसवादी रंगमंच के दृष्टिकोण से शिलर के बाद किसी अन्य उल्लेखनीय नाटककार का नाम नहीं मिलता। इतना ही नहीं, यथार्थवादी नाटककार हाफ़मैन के पहले भी हमें किसी प्रख्यात रोमांसवादी नाटककार का उल्लेख नहीं मिलता।

इतना अवश्य है कि रोमांसवादी रंगमंच तथा नाटक-सम्बन्धी सिद्धान्तों की जितनी विवेचना और जितना विश्लेषण जर्मनी में हुआ उतना अन्यत्र न हो सका। इस क्रियाशीलता का परिणाम भी अच्छा ही हुआ। जर्मन रंगमंच पर शेक्सपियर की हवा एक बार और चली और आज भी यह एक विवादास्पद विषय बना हुआ है कि जनमानस का सर्वाधिक प्रिय 'राष्ट्रीय' नाटककार गेटे है या शिलर है या शेक्सपियर है। उस काल का सबसे बड़ा साहित्यकार न कोई कवि था और न कोई नाटककार था बल्कि श्लेगल नामक एक समालोचक तथा अनुवादक था। 'आन ड्रैमेटिक आर्ट ऐण्ड लिटरेचर' शीर्षक उसकी महत्वपूर्ण पुस्तक आज भी नाटक तथा

रंगमंच-विषयक अधिकारिक रचना समझी जाती है। इस पुस्तक से उन लेखकों की सक्रियता और उपलब्धियों को बल मिला जो नाटक तथा रंगमंच को शास्त्रीयता के बन्धन से मुक्त कराना चाहते थे।

जर्मनी के समालोचक जिन लेखकों को रोमांसवादी कहते हैं उनमें हेनरिक वान क्लीस्ट, जोहन लुडविग टीक तथा ज़कारिया वर्नर उल्लेखनीय हैं। प्रायः ये सभी लेखक ह्यूगो के पहले के हैं और रंगमंच अथवा नाटक-सम्बन्धी वाद की बातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस कारण हम यह भी कह सकते हैं कि जर्मन नाटक में रोमांसवाद से जितना लाभ नहीं हुआ उतनी हानि हुई और अराजकता फैली। काल की सीमा को तोड़कर जीवित रहने वाले नाटकों में क्लीस्ट का 'डास कैचेन वान हेल्ब्रान' ही एकमात्र उल्लेखनीय रचना है किन्तु उसमें भी शेक्सपियर का ही रोमांसवाद प्रतिबिम्बित हुआ है, न कि फ्रांस का नवीन रोमांसवाद। श्लेगल ने शेक्सपियर के सत्रह नाटकों के जर्मन काव्यानुवाद प्रस्तुत किये जिसके पीछे उसका लक्ष्य था जर्मनी के साहित्यिक रंगमंच की प्रचलित परम्परा में परिवर्तन प्रस्तुत करना। स्मरण रहना चाहिए कि इस प्रकार का प्रयत्न किसी अन्य जर्मन अथवा फ्रांसीसी नाटककार द्वारा नहीं किया जा सका था।

उन्हीं दिनों आस्ट्रिया में भी "फ्रेज़ ग्रिल पार्ज़र द्वारा आस्ट्रियन साहित्य के सर्वोत्तम नाटकों की रचना की जा रही थी। वह किसी विशेष रचना-परम्परा का अनुयायी न होकर एक स्वतंत्र साहित्यकार था। उसके नाटकों के विषय अधिकतर ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होते थे जिनकी रचना में उसने नये प्रकृतिवाद और रचना-स्वच्छन्दता सम्बन्धी अपनी धारणाओं का भी सामञ्जस्य किया। वह अपनी अभिव्यक्ति में फिर भी नियंत्रित था और अपने प्रभावोत्पादन में अत्यधिक मृदुल और अन्त के क्लासिकल साहित्यकारों की रुचि का ऐश्वर्य भी उसमें कम नहीं था। रोमांसवाद के सन्दर्भ में उसका नाम कदाचित इसीलिए कम उपयुक्त प्रतीत होता है। रंगमंच पर अभिनय के योग्य नाटकों में उसने ऐश्वर्य और स्थायित्व की स्थापना की। यही कुछ कारण हैं जो उसके दो-तीन नाटकों का स्थान आस्ट्रिया और जर्मनी के सरकारी रंगमंचों पर आज भी सुरक्षित है।

इंगलैंड की तरह जर्मनी में भी अभिनेता का स्थान विशेष आकर्षक माना जाता है। लुडविग देव्रायन्त में भी हमें वही उन्माद, वही सम्मोहन और वही चमत्कार देखने को मिलता है जो एडमंड कीन में है। मांतज़ियस ने उस समय के अभिनेताओं का वर्णन निम्नांकित शब्दों में किया है—"रोमांसवादी धारा का जर्मन अभिनेता भी एक अजीब जीव होता था। उसके बाल लम्बे, उलझे तथा प्रायः काले

होते थे जिनकी पृष्ठभूमि में उसका चेहरा पीला और पतला दिखायी पड़ता था। आँखें उदास और गहरी होती थीं तथा भौंहें काली और खिंची-खिंची सी। उसकी मुस्कुराहट में एक ख़ास दर्द, एक ख़ास कड़ुवाहट होती थी और उसके होंठ हिलते-से जान पड़ते थे। वह लम्बा-सा रोमन लबादा पहनकर अपने मित्रों के बीच एक अजब आडम्बर अथवा कृत्रिमता के भाव से विचरता रहता था—अत्यन्त उदास, खोया-खोया-सा, कभी-कभी हँस भी देता था—एक अत्यन्त ही खोखली और जुगुप्सित हँसी।' और जर्मनी के ऐसे तमाम अभिनेताओं में—जिनका वंश आज भी निःशेष नहीं हुआ है—देवायन्त सबसे अधिक अनोखा, असंगत तथा अतिवादी जान पड़ता था। अभिनय में रोमांसवादी प्रभाव उत्पन्न करने के लिए उसने कठिन परिश्रम किया—यह एक ऐसा तथ्य है जो उसकी प्रतिभा और असफलता दोनों पर प्रकाश डालता है। अपनी कला में उसने उस कठिन ऊँचाई को भी छू लिया था जिसका स्पर्श आजकल कोई नहीं कर पाया था, और इस प्रकार उसने श्रोताओं को चमत्कृत तथा आमोदित और मंत्रमुग्ध किया। किन्तु स्थिर अथवा शांत पात्रों की भूमिका में वह सर्वथा असफल रहा। कीन की तरह प्रेरणा के लिए उसने भी शराब अपनायी जो ऐसी प्रवृत्ति थी जिससे अभिनेता को लाभ के बजाय हानि ही होती है।

उसी समय फ्रांस में भी ठीक उसी तरह के शराबी तथा रोमांसवादी अभिनेता कार्यरत थे। फ्रेडरिक लेमैत्री का नाम उल्लेखनीय है। किन्तु उसने न तो बहुत मदिरा पी और न वह बहुत ऊँचा उठा। उसकी सफलता की कहानी उसके मूक-अभिनयों से आरम्भ होती है। बूलेवर्ड दु क्राइम' के प्रसिद्ध मेलोड्रामाओं से भी उसे अच्छी ख्याति मिली। उन मेलोड्रामाओ का यह नाम पड़ने का कारण यह है कि नगर के जिस भाग में और जिन लोकप्रिय रंगमंचों पर उनका प्रदर्शन होता था वे दर्दनाक हत्याओं, अनैतिक प्रलोभनों द्वारा स्त्री-हरण तथा अग्निकांड आदि के लिए कुख्यात थे। वह विक्टर ह्यूगो तथा अन्य रोमांसवादी नाटककारों की रचनाओं में भी अभिनय करता रहा और प्रमुख अभिनेता के रूप में ख्याति भी प्राप्त करता रहा किन्तु उसके अभिनय में न तो अतीत के अभिनेता तालमा की क्रान्ति थी और न भविष्य के अभिनेता रैचेल अथवा बर्नहार्ड का चमत्कार था।

लैमेत्री के समय में डेबरा का स्मरण इसलिए किया जाता है कि उसने एक प्राचीन पात्र पर सदा के लिए अपनी छाप डाल दी और एक परंपरा को जन्म दिया। फ्रांसीसी मूक अभिनयों के कलाकार पायरो की भांति उसमें भी दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देने की अपूर्व क्षमता थी। भूमिकाओं का निर्वाह भी उसने जिस गम्भीरता के साथ किया वह प्रशंसनीय है किन्तु गहराई भी उसमें बस उतनी ही थी जितनी

नाटक के करुण पक्षों तथा बुद्धि-पक्षों के लिए उपयुक्त थी। वास्तव में पायरो की अभिनय-कला को भी प्रसिद्धि दिलाने का श्रेय डेबरा को ही है—अभिनय की वह कला जिसमें कलाकार का रूप श्रोता के सामने म्लान, शीर्ण, विकीर्ण, तथा काव्यमय दिखलायी पड़ता है। हाँ, हास्य अथवा विनोद में यदि आप मर्दानगी या ज़िन्दादिली के समर्थक हैं तो आपको इस प्रकार का अभिनय इटली के हास्य-अभिनेताओं की
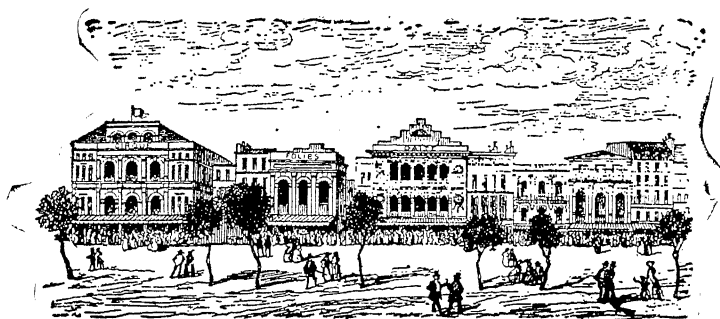
ला बुलेवर्ड दु क्राइम

कला का बिगड़ा हुआ रूप मात्र जान पड़ेगा —विशिष्टतः रोमांसवादी, भावुकता पूर्ण। मैं आपसे सहमत हूँ। भावुकतावादी पायरो का फ़ैशन भी ड्यूमा अथवा ह्यूगो के नाटकों से अधिक दिन नहीं चल सका। डेबरा के पुत्र चार्ल्स तथा उसी के एक दूसरे पुत्र ने रंगमंच पर पिता द्वारा स्थापित परम्परा को क़ायम रखने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका प्रयास अत्यन्त ही दुर्बल था। इसीलिए अभिनय का वह चलन, जिसकी लोक-प्रियता के पीछे मात्र एक कलाकार की प्रतिभा थी, अभिनय-कला की किसी परंपरा विशेष के रूप में अधिक दिनों तक नहीं टिक सका।

१८३० ई० वाले अर्थ में आपेरा सदा कृत्रिम और साधारणतः रोमांसवादी होता है। ल्यूली के बाद के आपेरा के इतिहास पर दृष्टिपात करना भी इसी अध्याय में उपयुक्त होगा। इटली में सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में आपेरा प्रायः स्कार्लेटी द्वारा निर्दिष्ट राह पर ही अग्रसर था। अर्थात्, उसमें संगीत-तत्व की अभिवृद्धि होती रही और उस काल में प्रचलित आपेरा शैली के अनुसार उसका संगीत भी तीन विशिष्ट वर्गों में विभाजित होता रहा। आपेरा मूलतः इटली की कला है और कदाचित इसीलिए उसकी प्रचुरता भी इटली में ही हुई। किन्तु आपेरा

रचयिताओं में ल्यूली का नाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वह इटली का नहीं. फ्रांस का कलाकार था। आपेरा-रचना के क्षेत्र में कुछ ही दिनों बाद इंगलैंड में भी पर्याप्त सक्रियता देखी गयी। हेनरी पर्सेल ने एक बोर्डिंग हाउस की कुछ लड़कियों के सहयोग से 'डिडो ऐण्ड एनियस ' शीर्षक आपेरा का प्रदर्शन किया। उसके कृतित्व से जान पड़ता है कि समय की अभिरुचि से बाध्य होकर यदि उसने सामयिक संगीत की रचना शुरू न कर दी होती तो वह एक उत्तम आपेराकार होता। बाद में, अंग्रेजी आपेरा में इटली, फ्रांस और जर्मनी के आपेरा तत्व भी सम्मिलित हो गये किन्तु फिर भी इंगलैंड में कोई उच्चकोटि का आपेराकार नहीं उत्पन्न हो सका। फिर कुछ अत्यन्त ही अद्भूत, स्वकेन्द्रित, अन्य आपेराओं से विलग, लघु आपेराओं का भी प्रचलन हुआ जिन्हें 'बैलेड-आपेरा' कहना चाहिये। उदाहरण-स्वरूप गे के 'बेगर्स आपेरा' का नाम लिया जा सकता है जिसका आनन्द यदा-कदा आज भी लिया जाता है। इंगलैंड में ही, बाद में, गिलबर्ट और सुलिवान के प्रयत्नों से सुन्दर संगीत-प्रहसनों का भी प्रचलन हुआ किन्तु अंग्रेजी भाषियों की अभिरुचि आपेरा-रचना की ओर अपेक्षाकृत न्यून थी। (उधर न्यूयार्क में भी संसार के सर्वाधिक-खर्चीले किन्तु सर्वाधिक भव्य आपेरा सामने आये किन्तु वे अधिकतर विदेशी थे)।

गिलबर्ट तथा सुलिवान के लघु कामिक-आपेरा अंग्रेजी रंगमंचीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण प्रकरण के रूप में आते हैं। इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये कामिक-आपेरा बस यों ही अचानक नहीं उत्पन्न हो गये वल्कि उनके पीछे लगभग डेढ़ सौ वर्षों का अथक परिश्रम निहित तथा सम्मिलित है जो तथा-कथित भव्य आपेराओं के स्थान पर हलके-फुलके मनोरंजनपूर्ण संगीत की अवतारणा के लिए किया गया था। वास्तव में आपेरा बुफा अथवा कामिक आपेरा का सृजन पहले -पहले इटली के कठिन तथा गम्भीर आपेरा से मुक्ति पाने के लिए किया गया था। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रचलित गम्भीर आपेराओं के विभिन्न अंकों के मध्य में प्रस्तुत अगम्भीर तथा हलके-फुलके दृश्यों को ही मिलाकर कामिक बुफ़ा अथवा कामिक-आपेरा की रचना की गयी थी। इस क्षेत्र का सर्वोत्तम रचयिता इटैलियन कलाकार पर्गोलेजी था और इसमें सन्देह नहीं कि उस तरह के आपेरा काफ़ी दिनों तक इटली में ही रचे जाते रहे। बाद में उसका प्रचलन फ्रांस में भी हुआ। इस प्रकार फ्रांस के प्रख्यात कामिक-आपेरा सामने आये। किन्तु फ्रांस में इटली के कामिक बुफ़ा के रूप में और भी अभिवृद्धि हुई; उसमें हास्य, विनोद और व्यंग्य के साथ ही साथ रोमांसवादी संगीत-लहरी का भी समावेश हुआ। इस नाते बुफ़ा को गम्भीर आपेरा का 'शोधक' भी कहा जाता है---उन्हीं गम्भीर आपेराओं का शोधक, जिनसे वह उद्भूत हुआ था और

यदा-कदा जिनका उपहास करने से भी वह बाज़ नहीं आता था।

रंगमंच की संज्ञा के योग्य जर्मनी में कोई गम्भीर रंगमंच नहीं था। हाँ, १७०० ई० के पूर्व वहाँ की छोटी-छोटी राजधानियों में बहुसंख्यक आपेरा अवश्य ही फैले हुए थे जिनमें कभी-कभी देसी रचनाओं का भी अभिनय होता था। इस क्षेत्र का सबसे महान् कलाकार हैंडेल था जो हैम्बुर्ग छोड़कर इटली चला गया, जहाँ वह इटैलियन परम्परा के आपेरा रचकर इटली के कलाकारों से भी अधिक सफल हुआ। इसी तरह जर्मन कलाकार ग्लक का भी सितारा दक्षिण में चमका। किन्तु ग्लक का विश्वास था कि इटली का आपेरा संगीत का ही एक विकसित रूप है और नाटक उसके लिए एक बहाना मात्र है। इसलिए वियना और पेरिस में उसने ऐसी 'आपेरात्मक' रचनाओं में सुधार लाने के प्रयत्न किये। मेरी एंतियोनेत के संरक्षण में उसने बहुत सी ऐसी रचनाएं प्रस्तुत कीं जिनमें रचना के उन तमाम नियमों और सिद्धान्तों का उल्लंघन किया जो उन दिनों इटली के रचयिताओं-द्वारा एक प्रकार के पवित्र अन्तर्राष्ट्रीय रचना-सिद्धान्त के रूप में विकसित किये जा रहे थे। उन सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक आपेरा में गायकों तथा वादकों की संस्था तथा संगीत के आयाम निर्धारित होते थे। ग्लक ने आपेरा का समुचित संस्कार तथा परिष्कार करके उसे संगीत-सम्भूत नाटच-कला के समीप पहुंचाया, नाटक की आन्तरिक आवश्यकताओं के अनुकूल संगीत की सृष्टि की और संगीत के माध्यम से ही परिस्थितियों तथा घटनाओं की अभिव्यक्ति करने का भी प्रयत्न किया। गायकों के अहं की तुष्टि के लिए इटली के-रचयिता आपेरा की रचना कुछ इस ढंग से करते थे कि उसमें प्रत्येक गायक के स्वर और उसके गाने के ढंग का अधिक से अधिक प्रदर्शन हो सके। इसलिए इटली का आपेरा 'स्वर' और 'संगीत' की प्रदर्शनी मात्र होकर रह गया था। इसके विपरीत ग्लक ने संगीत को आपेराकाव्य की गौण अनिवार्यता के रूप में प्रस्तुत किया। इटली के रचयिताओं के साथ उसने एक प्रकार का संग्राम छेड़ दिया और जहाँ तक आपेरा के कंठ-संगीत के अति-आधिक्य को कोसों दूर छोड़ देने का प्रश्न है, उसकी पर्याप्त विजय भी हुई।

मोज़ार्त और बिथोवन का भी इस कला को अपना-अपना अलग-अलग योगदान था। मोज़ार्त की रचनाओं में इटालवी आपेरा का सौन्दर्य भी था, उसकी अपनी मौलिक ताज़गी भी थी और समुचित हास्य भी था (उसने आपेरा बुफ़ा तथा आपेरा-सीरिया, अर्थात हास्य-आपेरा और गम्भीर आपेरा दोनों से प्रेरणा ग्रहण की)। बिथोवन की रचनाओं में और भी अधिक गहरी संगीताभिव्यक्ति थी किन्तु इस प्रकार की संगीताभिव्यक्ति उसके 'फाइडेलियो' नामक दुर्लभ तथा दुर्गम आपेरा में ही

पायी जाती है। वेबर ने अपने संगीत में सामान्यतः उन भावों का सृजन किया जो बाद में वैगनर की रचनाओं में चमके। उसने पात्रों के आन्तरिक जीवन तथा नाटक की परिस्थितियों के अनुरूप संगीत की रचना की और वाद्यवृन्द के क्षेत्र में नये प्रयोग किये। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि इटली के संगीतकारों का अन्धानुकरण न करके प्रायः इन तीनों संगीतकारों ने संगीत-सृजन में प्राचीन जर्मन संगीत-वार्ताओं का सहारा लिया।

स्वयं इटली के नाटककारों में भी इस दृष्टि से काफ़ी परिवर्तन आता जा रहा था कि उनकी कृतियाँ अधिक से अधिक लोकप्रिय, अधिक से अधिक मधुमिश्रित तथा कम से कम शास्त्रीय होती जा रही थीं। किन्तु उन्होंने संगीत तथा नाटक के तत्वों के समुचित समन्वय की दिशा में प्रायः कोई प्रगति नहीं की। फलतः भव्यता के क्षेत्र में इटली के आपेरा में दिखावेपन और छिछलेपन की मात्रा आज भी कम नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि रोज़िनी, डोनिज़ेटी तथा वर्दी ने आपेरा के संगीत को काफी अधिक लोकप्रिय तथा मधुर बना दिया। दुःखान्त की उग्रता को संगीत के समन्वय से कम कर देने वाले संगीतकारों में डोनिज़ेटी और उसकी सुप्रसिद्ध रचना 'लूशिया द लैमरमूर' उल्लेखनीय है। इसी प्रकार वर्दी ने अपने 'रिगोलेत्तो' तथा 'ला त्रेवियाता' नामक रचनाओं में संगीतमय दुःखान्तों की एक अत्यन्त ही सुन्दर तथा अलंकारपूर्ण और सर्वथा नवीन रूप प्रदान किया। इस दृष्टि से उसकी 'आइदा' तथा 'इल त्रैवेतोर' नामक रचनाओं की तो और भी अधिक सराहना होनी चाहिए।

उसी समय फ्रांस में जर्मनी का मेयरबीयर (इटली में अध्ययन करने के पश्चात् उसने अपना नाम जेकब मेयर बीयर के गियाकोमो मेयरबीयर रख लिया था)। एक बिल्कुल दूसरी ही दिशा में प्रगति कर रहा था। उसने इटली की अतिवादी संगीत-परायणता का बहिष्कार किया और एक ऐसी भव्य शैली उत्पन्न की जो अपनी दिव्यता और विशालता के कारण काफ़ी बोझिल हो गयी थी। उसका रोमांसवाद शुद्ध सच्चे अर्थों में फ्रांसीसी रोमांसवाद था जिसमें फ्रांस के रोमांसवादी मेलो-ड्रामाओं के दोष तथा गंवारपन भी आगये थे। उसके बाद गाउनोद तथा उसका प्रसिद्ध संगीत-नाटक 'फाउस्ट' सामने आया, जिसका संगीत नाटक की आवश्यकता के अनुकूल तो था ही, वह अधिक व्यापक प्रभावों के लिए भी समुचित रूप से सुन्दर तथा उपयुक्त था। इस प्रकार उसकी रचनाएं संगीत की उपयुक्त अनुपयुक्त प्रदर्शनी मात्र नहीं थी।

तो वैगनर के पहले आपेरा की स्थिति यही थी। पेरी की ऐतिहासिक रचना 'यूरीदाइस' के कोई ढाई सौ वर्षों के बाद तक भी कोई ऐसा कलाकार नहीं पैदा हुआ था

जो संगीत के माध्यम से नाटकों की रचना करता और रंगमंच पर एकाकी गायकों का नाटक के बीच-बीच में प्रकट होकर देर तक गाते रहने की परंपरा का खण्डन करता। वह काम किया वैगनर ने। आपेरा की रचना के क्षेत्र में ही उसने अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं की, रंगमंचों तथा नाटचशालाओं के भौतिक निर्माण के क्षेत्र में भी उसने युगान्तकारी परिवर्तन प्रस्तुत किये। उसने जर्मनी के आपेरा को संसार का सर्वाधिक सम्पन्न तथा अतुलनीय आपेरा बना दिया।

वैगनर ने अपने नाटच-गीतों की रचना इस क्रान्तिकारी विचार से की थी कि आपेरा में एकता, निरन्तरता तथा सब मिलाकर दिलचस्पी के गुण होने चाहिए। संगीत की रचना के साथ ही साथ उसने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर मंच पर संगीत के निर्देशन तथा प्रदर्शन में भी दक्षता प्राप्त की। उसकी सफलता को आपेरा की भावी विचार-परम्परा का पूर्व शकुन समझना चाहिए। क्लासिकल पद्धति के प्रति उसकी घोर अनास्था थी किन्तु साथ ही उसका यह विश्वास भी था कि यूनान के सर्वोत्तम नाटक यूनान के जीवन और परंपरा की ही देन है। विषय-वस्तु की खोज में संभवतः इसीलिए उसने अपने ही देश की पौराणिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया और ट्यूटानिक पुराण-कथाओं से अपने नाटकों के लिए उपयुक्त सामग्री एकत्र की। उसका विश्वास था कि नाटक को संगीत-नाटक के भावनात्मक स्वभाव के अनुरूप होना चाहिए और उससे अनुभूति को अधिक गहन करने में अधिक से अधिक सहायता मिलनी चाहिए। नाटक के कथानक और शब्दों के भाव को ध्वनियों में सही-सही प्रतिध्वनित करने के लिए उसने संगीत का एक नवीन ढाँचा तैयार किया और रंगमंच पर एकाकी गलेबाज़ों की उस परम्परा का भी परित्याग किया जिससे नाटक की क्रियात्मक तथा भावनात्मक एकता और निरन्तरता को बाधा पहुँचती थी। संगीत के स्वरों में उसने ऐसे भावों का सृजन किया जिनके बारम्बार श्रवण मात्र से श्रोतागण पात्रों के कर्मों तथा नाटक की घटनाओं से सहानुभूति का नाता जोड़ने को बाध्य हो जाते थे।

बचपन में ही जिस अपूर्व प्रतिभा का परिचय मोजार्ट ने दिया था वह वैगनर न दे सका। उसका जन्म १८१३ ई० में हुआ और उसका लालन-पालन कुछ ऐसी अनुकूल परिस्थितियों में हुआ कि कलाओं को हृदयंगम करने का उसे पर्याप्त अवसर मिला। उसके पिता नाटककार थे, साथ ही अभिनेता और चित्रकार भी थे। वह परियों की कहानियाँ तथा दुःखान्त नाटकों का प्रेमी था और पन्द्रह साल की उम्र में संगीत का भी प्रेमी हुआ। 'रिन्ज़ी' तथा 'दि फ्लाइंग डचमैन' प्रभृति उसके प्रारंभिक आपेरा सबसे पहले ड्रेसडेन ने प्रदर्शित किये। 'दि फ्लाइंग डचमैन' की

गणना वैगनर के सर्वोत्तम आपेराओं में नहीं की जाती फिर भी जब वह प्रदर्शित किया गया तो वह अपने समय से इतना आगे था कि उसका उचित मूल्यांकन न होने के कारण वह असफल रहा। १८४५ ई० में जब उसका 'तैनहाज़र' सामने आया और उसने 'लोहेनग्रिन' ' की रचना की तब जर्मनी के संगीत-संसार में क्रान्ति की लहर दौड़ गयी, साथ ही पर्याप्त मत-विपर्यय भी हुआ। समालोचकों के वर्ग ने उसके संगीत को स्वर-हीन, अपरूप तथा अराजकतापूर्ण कहा और दूसरे वर्ग ने उसके गौरव-पूर्ण सृजन-स्वातंत्र्य, भावाभिव्यक्ति तथा लयात्मकता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वैगनर के विरोधियों की संख्या उसके प्रशंसकों की संख्या से अधिक थी। कदाचित् यही कारण है जो उसके 'लोहेनग्रिन' के प्रदर्शन में कई वर्ष की देर हो गयी और उसे कुछ दिन ग़रीबी में काटने पड़े और दरबारियों के षडयंत्रों का भी शिकार होना पड़ा। उसके राजनीतिक विचारों के कारण उससे अधिकारीगण भी अप्रसन्न थे। १८४९ ई० में वह पेरिस भाग गया किन्तु वहाँ भी उसे निराशा ही मिली। वहाँ से वह ज़ूरिच गया जहाँ वह बारह वर्ष देश-निकाले की स्थिति में रहा। बारह वर्ष की अवधि में वह रचनाएँ भी करता रहा। उसकी अत्यधिक राष्ट्रीय रचनाएं 'रिंग', 'डास रीनगोल्ड' और 'गाटर डैमरंग' इसी काल की देन हैं। इसी काल में उसने 'ट्रिस्टन अन्द आइसोल्ड' भी रचा; और भी बहुत-सी किताबें लिखीं। १८६१ ई० में पेरिस के आपेरा भवन में उसका 'तैनहाज़र' प्रस्तुत किया गया किन्तु श्रोताओं को उसका पूरा-पूरा श्रवण सहन न हुआ। वे अभिनेताओं पर चिल्लाने लगे; फलतः तीन प्रदर्शनों के बाद उसे बिलकुल बन्द कर देना पड़ा। उसी साल यह ख़बर मिली कि वैगनर जर्मनी लौट सकता है। ४८ वर्ष की उम्र में वह घर लौटा किन्तु घर लौटकर भी उसे ग़रीबी और संघर्ष ही प्राप्त हुआ। अन्त में जब बवेरिया के सम्राट् ने उसे संरक्षण दिया तब उसको राष्ट्रीय संगीत-नाटक तथा राष्ट्रीय-रंगमंच की अपनी योजना को सक्रिय करने का अवसर मिला।

अन्त में १८७६ ई० में उसका स्वप्न साकार हुआ। बेरूथ में 'फ़ेस्टिवल थियेटर' का भवन बना जहाँ रचे जाने के लगभग २८ वर्ष बाद उसका 'रिंग' प्रस्तुत किया गया। उसके बाद सात साल वह और जीवित रहा, किन्तु फिर भी वह चिन्ताओं से बिलकुल मुक्त न हो सका। पैंसठ साल की उम्र में उसने 'पार्सीफल' की रचना की और सत्तर साल की आयु में मर गया। जीवन भर वह योद्धा की तरह जूझता रहा और जितनी भर्त्सना, जितने षडयंत्र और जितनी ग़लतफ़हमियों का सामना उसे करना पड़ा उतना उस काल का कोई दूसरा कलाकार नहीं कर सकता था। मृत्यु के बाद उसे लोगों ने युगप्रवर्तक कलाकार कहा और उसकी

गणना विश्व रंगमंच की सर्वोत्तम प्रतिभाओं में की गयी। आज आपेरा के क्षेत्र में संसार की प्रायः सभी राजधानियों में वैगनर की रचनाएं प्रचलित तथा सम्मानित हैं।

बैगनर के रंगमंचीय सुधार-सम्बन्धी विचारों में रंगमंच पर चित्र आदि के प्रदर्शन-सम्बन्धी सुधार की बात सम्मिलित नहीं है। वेरूथ में उसने रंगमंच की रचना भी इटली के रंगमंचों पर प्रयुक्त वस्तुओं तथा उपादानों को ही ध्यान में रखकर की थी। हाँ, 'आडिटोरियम' की डिज़ाइन में उसने अवश्य क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। दूसरे स्थानों के 'आडिटोरियम' घोड़े की नाल की डिज़ाइन के होते थे जिनमें दर्शकों के 'बाक्सों' की कई तहें होती थीं। बरूथ में बैठने का प्रबन्ध कुछ ऐसा था कि दर्शक को मंच के अधिक से अधिक समीप रहने का अवसर मिलता था और वरूथ के रंगमंच का प्रभाव कुछ ऐसा व्यापक सिद्ध हुआ कि पचास साल के अन्दर ही जर्मनी और अमेरिका के प्रायः सारे रंगमंच इस तरह के बना दिये गये कि प्रायः हर दर्शक मंच के पास होता था। किन्तु उस समय के कुछ पुराने आपेरा भवन अब भी ऐसे थे जिनमें अपेक्षाकृत कम धनवान् दर्शकों की सैकड़ों सीटें रंगमंच से दूर थीं और इसीलिए वे अभिनेताओं के निकट दर्शन से वंचित रह जाते थे।

प्रस्तुत प्रकरण का प्रारंभ शेक्सपियर की चर्चा से हुआ था जो रोमांसवादी साहित्यकार था!—यदि 'रोमांसवाद' पद के प्रणेताओं का मन्तव्य ऐसे संकुचित साहित्य से न रहा हो जिसकी व्यापकता उसकी यथार्थवादिता तथा भावुकता-वादिता के कारण सीमित रही हो अथवा जिसे अनिवार्यतः गर्वित शब्दाडम्बरपूर्ण अथवा अतियोक्तिपूर्ण साहित्य कहा जाये। प्रकरण की समाप्ति हो रही है वैगनर की उपलब्धियों पर चर्चा से, जिसने आपेरा के क्षेत्र में रोमांसवाद के नीचे प्रायः वे तमाम क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जो रोमांसवादी साहित्यकार करना चाहते थे। किन्तु वैगनर की प्रतिभा उनसे भी आगे एक ऐसे लोक तक पहुँची जहाँ उसे वादों में बाँधना कठिन हो गया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आपेरा भवन में वैगनर के श्रोता को यूनानी कलाकार डायोनिशस की रचनाओं का सच्चा आनन्द मिलता है, यद्यपि वह आनन्द कभी-कभी ही मिलता है और मिलता भी है तो बस थोड़ी ही देर के लिए, क्योंकि आपेरा का माध्यम आज भी उसके लिए बहुत अपूर्ण है। हो सकता है कि इस प्रबल आकर्षण का कारण वैगनर का संगीत हो, न कि उसका नाटक। जो भी हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वैगनर रंगमंच पर उस अनूठे सौंदर्य को ले आया जो हमारी आत्मा को अपने में डुबो देने और हमारे मस्तिष्क को सर्वथा स्थिर कर देने में समर्थ था।
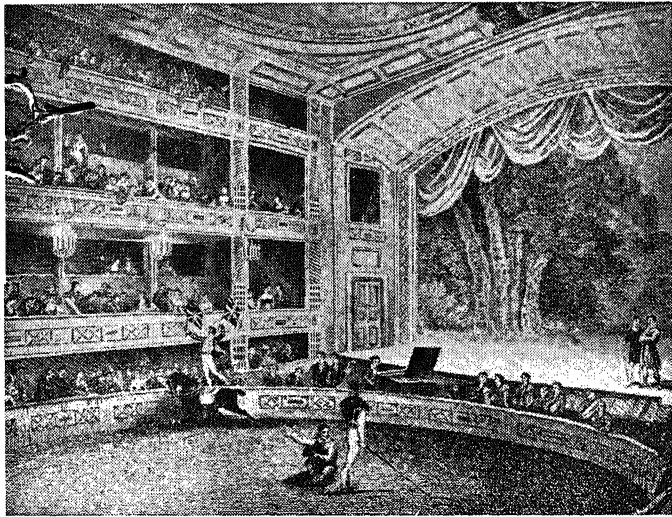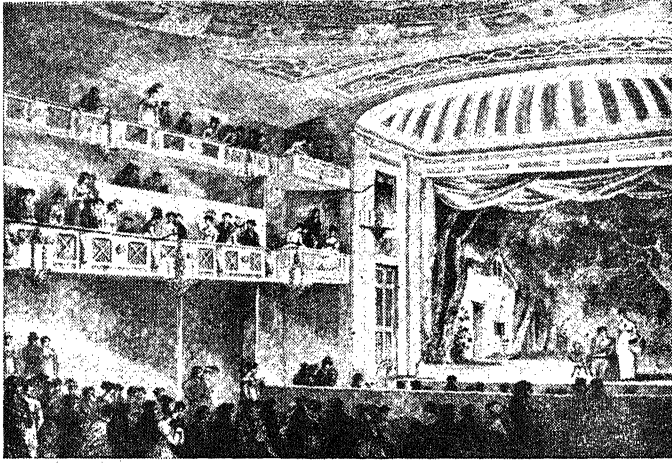
ऊपर, सान्स पारील थियेटर, लन्दन, १८१६ ई० का भीतरी संभाग। नीचे, ऐशले के ऐम्फी थियेटर, लन्दन, १८१५ ई० में इक्वेस्ट्रियन नाटक का एक उदाहरण, जिसमें सरकस और रंगशाला के तत्व मिला दिए गए थे। (समसामयिक मुद्रित चित्र से।)
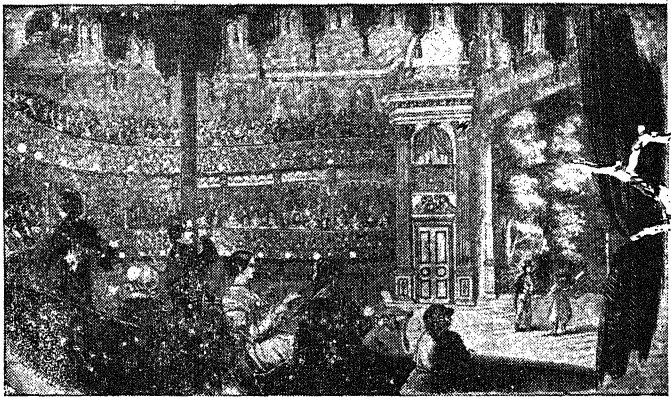
ऊपर, रोमान्टिक युग के दो अग्रणी अभिनेता : शायलाक की भूमिका में एडमण्ड कीन और विलियम चार्ल्स मेकरेडी। नीचे, एक 'अमेरिकन संग्रहालय का लेक्चर रूम,' न्यू यार्क, १८५३ ई०। प्युरिटेनिकल युग में रंगशाला का एक बदला हुआ रूप, जिसमें दर्शक अन्तरात्मा की वर्जना बिना बैठ सकें। मध्य शताब्दी में यहाँ अमेरिका में अंग्रेज़ी रंगशाला का मंचाग्र और प्रोसीनियम द्वार रायज थे। (ये चित्र पुराने छपे चित्रों से लिए गए हैं। 'ग्लेसन्स पिक्टोरियल ड्राइंग रूम कम्पेनियन' से रंगशाला का दृश्य।)
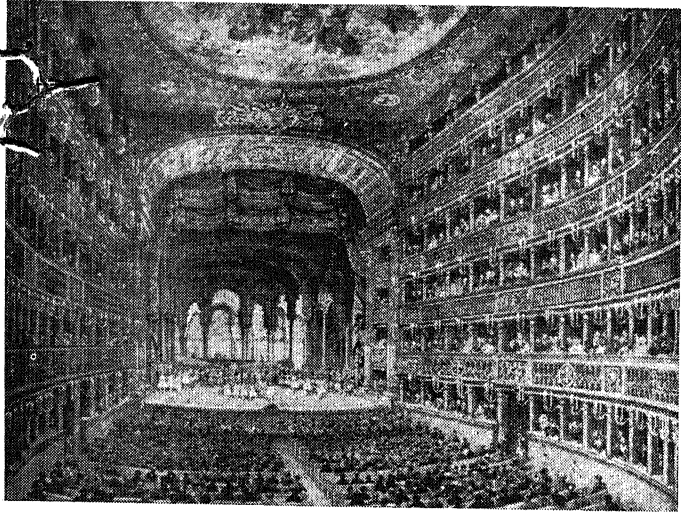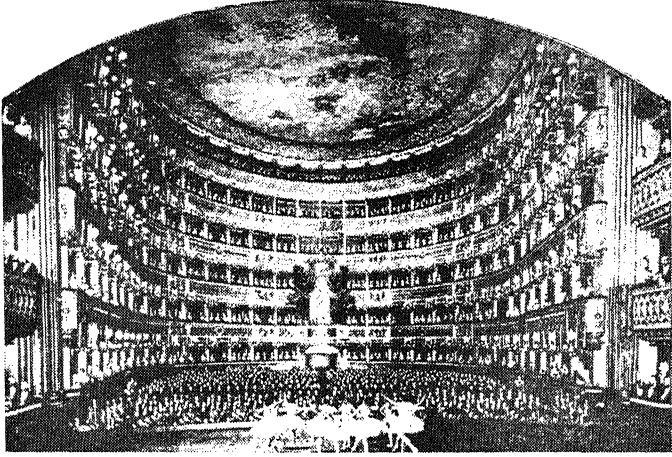
नेपुल्स में सान कार्लो आपेरा हाउस जैसा कि वह रंगमंच और प्रेक्षा-गृह से दिखायी देता था। इसमें अर्धवृत्ताकार व्यवस्था ही चल रही है।
(ब्रोगी फोटोग्राफ़ से ।)
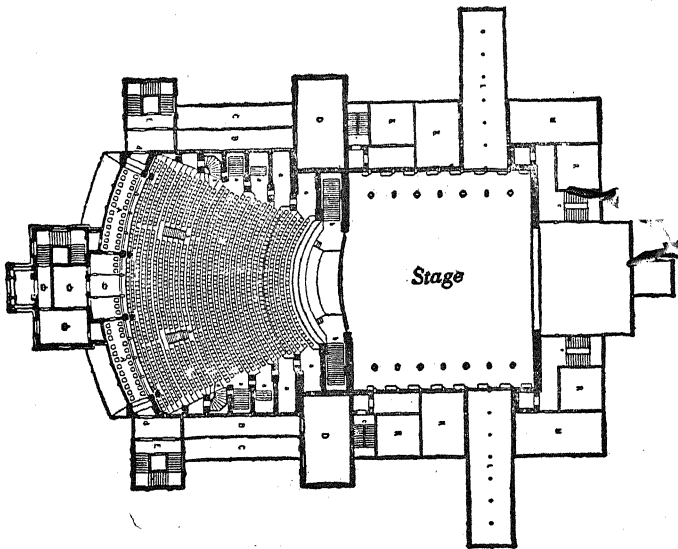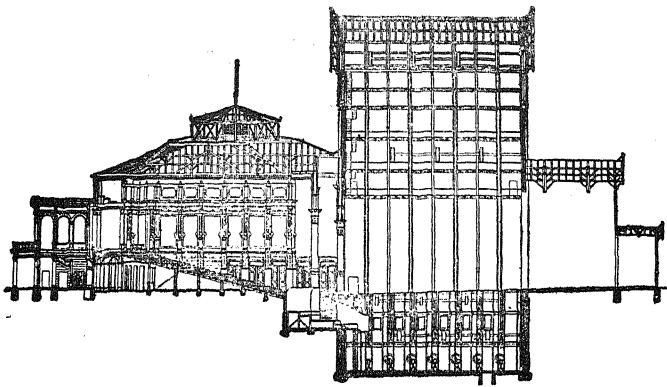
बेरयूथ फ़ेस्ट्सपीलहौस का संभाग और मान चित्र। इस प्रेक्षागृह में मंच के सामने त्रिभुजाकार बैठने की व्यवस्था है। यहीं से रंगशाला निर्माण की इटालियन-फ्रांसीसी प्रणाली के प्रति आधुनिक विद्रोह आरम्भ हुआ। इसकी डिज़ाइन वैगनर वैगनर के साथ मिल कर भवन निर्माणकर्ता सेम्पर ने बनायी। (शाख़ के 'माडर्न आपेरा हाउसेज़ ऐण्ड थियेटर्स' से।)

अध्याय १६

सुरचित नाटक, सुललित दृश्य : विक्टोरियनिज़्म

१८३०ई० में जब 'थियेटर फ्रांके' (फ्रांसीसी रंगमंच) पर रोमांसवादी की पताका लहराने लगी, संघर्ष, दंगे और शोरगुल का भी युग आरम्भ हुआ। फ्रांस की सरकारी रंगशाला में प्रदर्शन के निमित्त स्वीकृत क्रान्तिकारी नाटकों में 'हरनानी' नाटक प्रथम था। विक्टर ह्यूगो के मित्रों ने कुछ नाटकों के प्रथम प्रदर्शन में नीले तथा लाल रंग की वास्कट, हरे बिरजिस तथा पीले जूते पहनकर तथा रेम्ब्रेंट टोप और बड़े-बड़े लच्छेदार बालों का प्रयोग करके ऐंठे हुए साहित्य-शास्त्रीयों की रुष्टता को और भी वढ़ा दिया। अन्दर और बाहर अर्थात् चिन्तन और व्यवहार दोनों में वे पूरे, पक्के रोमांसवादी थे। काले वस्त्रों के समर्थक, प्राचीनता के पोषकों ने भी नवीनता का शंखनाद करनेवाले इन युद्ध-तत्पर जाज्वल्यमान रोमांसवादी युवकों का खुलकर सामना किया। द्वन्द्व-युद्ध हुए उत्तर-प्रति-उत्तर में पैम्फलेटबाज़ी हुई, जिसकी होलिका में शुरू से प्रायः सभी प्रदर्शन होम हो गये। किन्तु 'हर नानी' को फिर भी सफलता मिली। 'क्लासिसिज़्म' का सूर्य डूबने लगा और रोमांसवाद का सितारा चमक उठा।

रोमांसवाद और क्लासिसिज़्म के बीच संघर्ष का दूसरा दौर तब शुरू हुआ जब पेरिस में 'तैनहाज़र' के प्रथम प्रदर्शन को शोर-गुल करके सर्वथा असफल कर देने का प्रयत्न किया गया। रंगमंच के इतिहास में वह एक अत्यन्त ही क्षोभजनक घटना थी। पेरिस वालों ने ह्यूगो को मान्यता देने और वैगनर को बहिष्कृत करने का जो फैसला दिया था उसे अगली पीढ़ियों ने उलट दिया।

किन्तु १८३० ई० की विजय तथा १८६१ ई० की पराजय के मध्य पेरिस में नाटककारों का एक दूसरा वर्ग भी उद्भुत हो रहा था। जिसके न तो कोई चमत्कारपूर्ण क्रान्तिकारी विचार थे और न कोई घोषित रचना-सिद्धान्त थे। फिर भी उन

ाटककारों की लेखनियों में दुनिया को हिला देने की ताक़त थी। सच है कि यूजिन क्राइब को निर्द्वन्द सफलता पर सफलता मिलती चली गयी और जब अन्त में उसकी चनाओं की संख्या पूरी सौ हो गयी तब यूरोप और अमेरिका के रंगमंच उसकी तथा सी की शैली में रचित दूसरों की रचनाओं के प्रदर्शनों के लिए ठीके पर उठाने लगे। मरण रहना चाहिये कि इतनी अधिक सफलता ह्यूगो को भी मयस्सर नहीं हुई थी। सार के प्रायः तमाम रंगमंच इस नवीन जागरण से अभिभूत हो गये।

हम उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँच चुके हैं। इस युग की संज्ञा किसी ांसीसी विचारधारा पर आधारित न होकर इंगलैण्ड की अर्द्ध-जर्मन महारानी के नाम र आधारित है जो सादगी, प्रोटैस्टेंटिज़्म तथा बनावटी विनय की अद्वितीय मूर्ति ीं। वह युग कल्पना-शून्य कलाओं का युग है ––ऐसा युग जिसमें अतिवादी प्रवृत्तियों ो दूर ही रखा जाता है––सर्वथा मनहूस, वर्ण-हीन युग! सम्राटों की शक्तियाँ लगभग ामाप्त हो चुकी हैं और जो वास्तविक शासनकर्ता हैं वे या तो युग को किसी प्रकार का नेर्देशन देने के लिए बहुत दुर्बल हैं अथवा उन्हें कला एवं ज्ञान के उत्तेजनों के विषय में ारा भी चिन्ता नहीं है। प्रजातंत्र अपने पंथ पर किसी पथ-प्रदर्शन के बिना बढ़ने के लिए छोड़ दिया गया है। यही कुछ कारण है जिनसे महारानी विक्टोरिया के काल में अंग्रेज़ी ंगमंच पर शुष्कता अथवा सृजन-हीनता आ जाती है। अंग्रेज़ी सभ्यता ने चतुराई और भौतिकवाद के तत्व आ जाते हैं और इंगलैण्ड के बचे-खुचे रंगमंच पर स्क्राइब तथा उसी की शैली की अन्य फ्रांसीसी रचनाओं का प्रदर्शन होने लगता है।

१८२० ई० तथा १८५० ई० के मध्य रंगमंच के लिए स्क्राइब जो कुछ भी कर रहा था उसके पीछे न तो कोई प्रचारवादिता थी और न अभिनेताओं का मंच पर लाल विरजिस में प्रकट होकर दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने का कोई प्रयत्न था। उसकी रचनाओं से नाट्य-रचना का एक ऐसा ढांचा, ऐसा आकार, तैयार हो रहा था जो भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा सृजन और संगठन के लिए तो उपयुक्त था ही, उसमें भावुकतावादी सामग्री के प्रयोग के लिए भी यथेष्ठ अवसर था। उसका कृतित्व नाटकीय भाव पर नाटकीय शिल्प की महती विजय का उत्तम उदाहरण है। नाट्य-रचना की सर्वविदित आवश्यकताओं और गुणों, जैसे चरित्र-चित्रण तथा अन्य नाटकीय तत्वों के समुचित संचालन आदि बातों में कुशल न होने पर भी स्क्राइब ने जो सैकड़ों नाटक प्रस्तुत किये उनमें श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने की अपूर्व क्षमता थी। उसने प्रदर्शन-सम्बन्धी प्रायः हर विस्तार में दक्षता प्राप्त की तथा पटुवार्ता, सुखद अन्त, भावनाओं और घटनाओं के निपुण उलझाव-सुलझाव आदि गुणों का प्रयोग करके रंगमंचीय प्रभावोत्पादकता की एक नवीन पद्धति चलायी। विक्टोरियाकालीन श्रोताओं के सामने

उसने सीधी-सीधी बातें रखीं और निहायत सुकर कथानक पेश किये। वह जानता था कि कविता अथवा चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता के लिए वह युग सर्वथा अनुपयुक्त था।

फ्रांस की 'पीस बियेन फ़ेती' नाम से प्रचलित रचनाओं में सफल संवेगात्मक गुदगुदी थी। आकर्षक ढंग से सज्जित, ऊपर से भड़कीली, साहित्यिकता अथवा आध्यात्मिकता से हीन ये रचनाएं उस युग के लिए सर्वथा उपयुक्त थीं जिसे सौन्दर्य अथवा कला की रहस्यमयता से कोई सरोकार नहीं था। रंगमंच की टेकनीक की इस सुघरता का प्रभाव अन्य कलाओं पर भी पड़ा। फर्निचर और मूर्तियों में चिकनाहट पसन्द की जाने लगी, चित्रकला में लैंडसीयर (पशु-पक्षियों) के चित्र लोकप्रिय हुए और वास्तु-कला में "ऐक्लेक्टिक" (दर्शन की परम्परा जिसमें विचारों का चयन स्वेच्छा से संसार की किसी भी विचार-परम्परा से किया जा सकता है) शैली का बीजारोपण हुआ। किन्तु फिर भी सृजन-सुघरता तथा संगठन का गुण जितना अधिक रंगमंच पर परिलक्षित हुआ उतना किसी अन्य कला में नहीं हुआ।

तात्पर्य यह नहीं कि इस प्रगति का प्रभाव रचयिताओं की भावी पीढ़ियों पर नहीं पड़ा। इब्सन के सामाजिक नाटक बहुत कुछ स्क्राइब के ही नाटच-रूप में ढाले गये हैं, यद्यपि स्वयं स्क्राइब भी कदाचित 'सामाजिक नाटक' का अर्थ नहीं समझ पाता। नाटक का ध्येय मनोरंजन था और इससे अधिक चाहिए भी क्या? पुराने सुखान्त नाटकों का अनिश्चित आकार सामने रखकर उसे ढेर सारे आँसू और हँसी के घोल से कुछ और जटिल बनाकर उसमें कुछ आश्चर्य, कुछ कोमलता, कुछ मिठास भर दीजिए; विक्टोरिया के काल के शुष्क, भावहीन, भौतिकवादी श्रोता को और चाहिये ही क्या?

और इस प्रकार रोमांसवाद के शब्द-बहुल नाटकों के साथ ही विक्टोरिया कालीन, चिकने, सादे, सुथरे नाटक भी उभरते रहे जिनकी रचना के पीछे न तो कोई सिद्धान्त था और न कोई धारणा थी——और जो शुद्ध मनोरंजन की आकांक्षा अथवा उत्कंठा से उद्भूत हुए थे। यूजिन स्क्राइब की कोई भी रचना स्थायी न रह सकी, इसमें आश्चर्य की बात नहीं। उसने लगभग पाँच सौ नाटक लिखे (पारिश्रमिक पर नियुक्त अन्य लेखकों के सहयोग से), युग के रंगमंच की आकृति में अभिवृद्धि की, और इस प्रकार वह सुरचित नाटकों के जनक के रूप में स्मरणीय हुआ। किन्तु आज उसका एक भी नाटक प्राप्त अथवा प्रचलित नहीं है। उसके कृतित्व की अगम्भीरता का ज्ञान स्वयं उसके समय में भी कुछ लोगों को था, किन्तु ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही सीमित थी। कहा जाता है कि जब हेइन मृत्यु-शय्या पर था और उसका दम टूट रहा था तब उससे पूछा गया——'क्या तुममें फुफकारने की शक्ति अब भी शेष है?' उसने उत्तर दिया——

'नहीं ! अब मैं स्क्राइब के नाचीज़ नाटकों को भी फुफकारने का दम नहीं रखता।'

स्क्राइब की मृत्यु १८६१ ई० में हुई, और उसी वर्ष सार्दो का सितारा भी बुलन्द हुआ। इस प्रकार 'पीस बियेन फ़ेती' की परम्परा बेरोक चलती रही। कहा जाता है कि नाट्य-रचना की तकनीक में पूरी तरह पारंगत होने के लिए सार्दो स्क्राइब के नाटकों का पहला अंक पहले पढ़कर अपने शेष अंक बाद में लिखता था। इस विचित्र अभ्यास का परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय में ही वह अपनी कला में दक्ष हो गया। स्क्राइब के नाटकों का कोई अपना व्यक्तित्व अथवा स्वभाव-विशेष नहीं था और इसीलिए दूसरे नाटककार थोड़ी सी चतुरता के प्रयोग से उसकी शैली अथवा शिल्प से फायदा उठा लेते थे। सार्दो इस कला में भी दक्ष खूब था और इसीलिए फ्रांसीसी रंगमंच का उसको सबसे चालाक नाटककार कहते हैं।

किन्तु सार्दो की कुछ अपनी विशेषताएं भी थीं। चिन्तन और फ़ैशन के क्षेत्र में उसने राष्ट्र की रुझान पर भी दृष्टि रखी और सामयिक समुपयुक्त रचनाएं प्रस्तुत कीं। उसका प्रकृतिवाद एक परंपरा में परिणत हो गया। वह जानता था कि भावात्मक आकांक्षाओं से प्रेरित होकर हमारे और आपके जैसे साधारण जनों का स्वाभाविक व्यवहार कैसा हो जाता है। उसने रंगमंच की एक अपनी रंगमंचीय तर्कात्मकता स्थापित की और उस रोमांसवादी प्रकृतिवाद की, परम्परा चलायी जिससे प्रेरित होकर हम यह सोचने को बाध्य हो जाते हैं कि जो वस्तु रंगमंचीय दृष्टि से यथार्थ है वह कोई आवश्यक नहीं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सही हो। उसने नाटकीय परिस्थितियों का सृजन इतनी निपुणता के साथ किया कि सहसा यह ख्याल हो जाता है कि वे बिलकुल सत्य अथवा वास्तविक हैं। उसकी युक्तियाँ मधुर लगती हैं और उसके निर्णय बहुत ही व्यापक। उसकी रचनाओं में जो सहजता और गहराई की जो न्यूनता है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह नाटक को स्क्राइब की यांत्रिक शैली से दूर यथार्थवाद के उस क्षेत्र में ले गया जिसे हम पत्रकारिता कहते हैं ?

किसी जासूसी कहानी अथवा किसी औसत उपन्यास की तरह सार्दो के पटु किन्तु छिछले नाटकों में भी मनोरंजकता की मात्रा कम नहीं है। किन्तु एक समय वह भी आता है जब सार्दो के आलोचक उसकी रचनाओं को 'सारडूडिलडीडम' कहकर उसका उपहास करते हैं। कारण यह है कि उसकी रचनाओं में न तो कोई अभिव्यक्ति की ईमानदारी है, न कोई सौन्दर्य और न अनुभूति की गहराई। स्पष्ट है कि इन गुणों के बिना नाटक बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता।

किन्तु अमेरिका तथा युरोप के अनेक रंगमंचों पर ऐसे नाटक भी अधिक नहीं तो कम से कम पचास साल तक तो अवश्य प्रचलित रहे। जहाँ 'रिपोर्टरी-थियेटर'

सक्रिय थे वहाँ 'क्लासिक्स' का प्रदर्शन अब भी होता रहा। ऐसी स्थिति विशेष कर जर्मनी में थी। किन्तु जहाँ तक नवीन रचनाओं का प्रश्न है वे अधिकतर पेरिस की देन थीं। सुरचित नाटकों के इस काल में जर्मनी में कोई उल्लेखनीय 'सुरचित' नाटकों का लेखक नहीं हुआ; अधिकतर नाटककार या तो नक्काल थे या फिर रूपान्तरकार थे। ठीक उसी समय रूस में एक ऐसा नाटककार सामने आया जिसने स्क्राइब की कला को अच्छी तरह समझा तथा अपनाया था और जितने स्क्राइब की शैली में व्यंग्य का पुट देकर प्रसिद्ध सुखान्त 'दि इन्स्पेक्टर जेनरल' की रचना की जो स्क्राइब तथा सार्दो की रचनाओं से भी अधिक चिरस्थायी सिद्ध हुआ।

उधर जर्मनी में भी नाटकों के प्रदर्शन-सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग जारी थे। जैसा कि हम आगे देखेंगे, जर्मनी में एक नये प्रकार का रंगमंच भी सामने आया। किन्तु नाटक की नवीन यंत्र-आकृति को उनका योगदान सैद्धान्तिक मात्र था। १८६२ ई० में गुस्ताव फ्रेटैग की कृति 'दे टेकनीक डेस ड्रामा' (दि टेक्निक आफ दि ड्रामा; नाटक की तकनीक) प्रकाशित हुई जो कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में अब तक सम्मिलित थी। इस ग्रन्थ का प्रतिपादित विषय यह है कि प्रत्येक उत्कृष्ट नाटक की रचना के पीछे एक विशिष्ट योजना होनी चाहिए जिसके आधार पर नाटक का कई अंकों में सुयोजित विभाजन हो तथा उसमें प्रगति, पराकाष्ठा तथा प्रत्यावर्तन आदि गुणों का समावेश होना चाहिए। विश्लेषण करने पर हर नाटक में प्रस्तावना, प्रारंभिक संघर्ष, कर्मोत्थान अथवा जटिलता, पराकाष्ठा, पतनोन्मुखता तथा महानाश आदि गुण मिलने चाहिए। विवेचनात्मक विश्लेषण के लिए फ्रेटैग की यह पद्धति बहुत उपयोगी है और रंगमंचीय कार्यकर्ताओं के लिए भी कम लाभदायक नहीं है। किन्तु स्क्राइब की रचनाओं की तरह इस ग्रन्थ में भी प्रायः वे सारी बातें अछूती छोड़ दी गयी हैं जो अन्ततोगत्वा कला को कला बनाने के लिए आवश्यक है।

चातुरीपूर्ण नाटकों का प्रचलन जैसे एक भाषा में हुआ वैसे ही अन्य भाषाओं में भी हुआ। ऐसे नाटकों में न तो कोई स्थानीय रंग होता है और न कोई जटिल पात्र और अनुवाद की दृष्टि से कठिन न तो कोई दुरूह काव्यात्मकता ही होती है। बस थोड़े से, आसानी से समझ में आ जाने वाले पात्र होते हैं जो बड़ी चतुरता से निर्मित कपटपूर्ण परिस्थितियों में चक्कर लगाते हैं। इन चातुर्यपूर्ण नाटकों की विश्वव्यापी लोकप्रियता के कारण रंगमंच एक प्रकार से 'अन्तर्राष्ट्रीय' हो गये। जर्मनी, इंगलैंड और अमेरिका के रंगमंचों पर फ्रांस का प्रभाव सर्वोपरि रहा।

रूपान्तरों की संख्या इंगलैण्ड में असीमित थी। प्रहसन रूपान्तरकारों में जान मैडिसन मार्टन का नाम उल्लेखनीय है जिसने दो फ्रांसीसी प्रहसनों के आधार पर

अपनी चिर-नवीन रचना 'बाक्स ऐण्ड काक्स' प्रस्तुत की। जेम्स राबिन्सन प्लांच की परिधि और व्यापक थी। उसने अपने बर्लेस्क (एक प्रकार का परिहासात्मक नाटक) तथा कामेडी में स्क्राइब तथा अन्य फ्रांसीसी नाटककारों द्वारा प्रयुक्त विषय का प्रयोग किया। टामस विलियम राबर्टसन की रचनाएँ भी स्क्राइब तथा सार्दो की रचनाओं पर आधारित हैं। किन्तु सामाजिक नाटकों के सृजन की दिशा में भी वह सक्रिय था। उसकी इस रुझान का कारण या तो उसकी अपनी निरीक्षणात्मक प्रवृत्ति रही होगी या फिर उसने ऐसा आगियर और छोटे ड्यूमा के प्रभाव में किया होगा। उसकी 'सोसायटी' तथा 'कास्ट' शीर्षक रचनाओं को यथार्थवाद का पूर्वग्रह कहा जा सकता है। किन्तु उस समय लन्दन को हलके-फुलके मनोरंजन की आवश्यकता थी न कि गम्भीर बोझिल नाटकों की। इसलिए राबर्टसन निराश हो गया और बयालीस वर्ष की आयु में चल बसा। टाम टेलर के भी बहुत से रूपान्तर बहुत लोकप्रिय हुए और उस विल्की कालिन्स के नाटक भी कम प्रशंसित नहीं हुए जिसका सिद्धान्त था—'उन्हें खूब हँसाओ, खूब रुलाओ, और प्रतीक्षा कराओ।'

फ्रांसीसी नाटककारों की रचनाओं के आधार तो लिये ही गये, साथ ही हेनरी आर्थर जोन्स तथा आर्थर पिनरो की रचनाओं से भी इंगलैंड का सुरचित, सुगठित नाट्य-साहित्य अनुप्राणित होता रहा। नाटक के क्षेत्र में वे अपेक्षाकृत देर से आये थे इसलिए वे स्क्राइब से अधिक सार्दो से प्रभावित हुए। दोनों की अपनी अपनी मौलिक विशेषतायें थीं; अपना मौलिक अन्तर था। किन्तु दोनों उस आन्दोलन के चरमोत्कर्ष के प्रतीक भी थे जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी रंगमंच पर प्रदर्शन की टेकनीक की दृष्टि से सुगमता और अनुकूलता आ गयी थी। अपने समय के वे महान् नाटककार थे किन्तु उनका युग भी कुछ ऐसा था जिसमें युग के प्रायः सभी सुन्दर नाटककार तत्कालीन रंगमंच से सर्वथा पृथक कर दिये गये थे। उन्होंने फ्रांसीसी नाटकों के तुच्छ, मिथ्या रूपान्तरों से अंग्रेज़ी नाटक का उद्धार किया। आज उनकी रचनाओं का स्मरण उनके निपुण कहानी-तत्व के कारण किया जाता है न कि इसलिए कि वे ओजस्वी चरित्र-प्रधान नाटक हैं। रंगमंच की वाणी में आज जब उन्हें प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जाता है तो वे सर्वथा असफल सिद्ध होती हैं।

हेनरी आर्थर जोन्स ने बहुत-कुछ लिखा और आधुनिक नाट्य-साहित्य पर भी कम नहीं लिखा। उसका विश्वास था कि नाटककार को रंगमंच की कला में दक्ष होना चाहिए और नाटक का ध्येय मात्र लोक-रंजन न होकर कुछ और उत्कृष्ट होना चाहिए। उसकी धारणा थी कि नाटक का निकट का सम्बन्ध नाटक के बाहर के वास्तविक जीवन और समाज से भी होना आवश्यक है क्योंकि नाटक अथवा रंगमंच उन्हीं के

अनिवार्य अंग होते हैं। किन्तु फिर भी उसके नाटकों में प्रायः वे ही दोष पाये जाते हैं जिनका वह निवारण करना चाहता है। उसके नाटकों की कोई विशिष्ट साहित्यिक महत्ता नहीं है। मनोरंजन की दृष्टि से वे अवश्य प्रभावशाली हैं किन्तु विचारोत्पादकता उनमें कदापि नहीं है क्योंकि उनमें न तो कोई गम्भीर चरित्र-चित्रण है और न कोई गम्भीर दर्शन अथवा अन्तर्दृष्टि है और न इब्सन अथवा शा की सामाजिक जागरूकता ही है। पटुता अथवा प्रवीणता उनमें अवश्य है और कदाचित इसीलिए उनमें श्रोता अथवा दर्शक को क्षण-प्रतिक्षण अपने आकर्षण में बाँधे रखने की अपूर्व क्षमता है। वे निर्बन्ध, बेरोक बहते हुए-से जान पड़ते हैं। किन्तु अचानक मन पूछने लगता है कि आख़िर यह सब किसलिए है जब कि इन तमाम नाटकों में न तो कोई स्मरणीय चरित्र-चित्रण है और न कोई निष्कपट सच्चा भाव है और न तो कोई मस्तिष्क को मथ देने वाला विचार ही है।

'दि लायर्स' (झूठे) पढ़िए, आपका बड़ा मनोरंजन होगा और जोन्स की कला से भी आप अभिभूत हो जायेंगे। आप पायेंगे कि वह स्क्राइब और सार्दो को बहुत पीछे छोड़ आया है जिनके नाटकों से कभी-कभी आप खीझ भी जाते हैं। ज़रा ध्यान दीजिए कि निपुणता से निर्मित इस नाटक के कलेवर में, चौथे अंक में सर क्रिस्टोफर की वक्तृता कितनी भव्य लगती है! नाटक का अन्त बहुत ही उत्कृष्ट है। ऐसी चरमाभिव्यक्तिपूर्ण वक्तृताओं की उपयोगिता फ्रांस के नाटककारों को खूब मालूम थी। वे ऐसी वक्तृताओं को 'टायरेड्स' कहते थे। अंग्रेज़ी में इस शब्द का अर्थ यह नहीं होता। किन्तु विश्वास कीजिए कि अंग्रेजी के अभिनेता भी आकर्षक वाक्यों को कुछ जोरदार ढंग से पढ़कर उसे 'टायरेड्स' की श्रेणी में बिठला देने में पटु थे। सुखान्त नाटकों में ऐसे दृश्यों के अभिनय के लिए अभिनेताओं को ख़ास ढंग से प्रशिक्षित किया जाता था जो अवसर आते ही रंगमंच पर अवतरित होकर आरंभ से अन्त तक ऐसे दृश्यों का अभिनय कुछ इस ढंग से करते थे जैसे वे नाटक से पृथक हों। श्रोता को भी ऐसे ऐसे रंगीन क्षणों की बड़ी उत्सुकता रहती थी जो ऐसे उद्घोषात्मक वाक्यों को सुनने की धुन में नाटक की अन्य बातों पर ध्यान ही नहीं देते। वास्तव में 'टायरेड' का प्रयोग आपेरा तकनीक की ही देन है, बल्कि 'देन' न कहकर उसे 'हस्तक्षेप' कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। लघु तथा भव्य आपेराओं के क्षेत्र में स्क्राइब प्रायः उतना ही सफल हुआ जितना प्रहसन अथवा सुखान्त के क्षेत्र में। हाँ, दुःखान्त नाटककार के रूप में वह अवश्य ही बिल्कुल असफल रहा।

किन्तु जोन्स की कला के समर्थन में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। समय के उस प्रवाह में भी जब कि सुन्दर, सामाजिक, बौद्धिक नाटकों का सृजन हो रहा था और

मन को उद्वेलित कर देने वाले, पत्रकारों की लोकप्रिय शैली में रचित यथार्थवादी न नाटकों का विकास हो रहा था तब जोन्स ने, बुद्धिमत्तापूर्ण कथानकों पर आधारित, शिल्प की दृष्टि से परिपक्व नाटक रचकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया।

आर्थर विंग पिनरो का रचना-क्षेत्र और भी व्यापक था। शताब्दी के सातवें दशक में उसने कुछ महत्वहीन रूपान्तर किये, आठवें दशक में कुछ गम्भीर रचनायें भी प्रस्तुत कीं और नवें दशक के आरम्भ होते-होते उसने अत्यन्त ही मार्मिक ऐसे भावात्मक नाटक रचे जिन्हें वास्तव में सच्चे सामाजिक नाटकों की संज्ञा दी जा सकती है। जहाँ तक सृजन के शिल्प का प्रश्न है, वह जोन्स के समान ही कुशल तथा प्रवीण था। उदाहरणार्थ आप उसकी मोहक रचनाएं, 'स्वीट लैवेण्डर' तथा 'दि ग्रे लार्ड क्वेक्स' अथवा 'हिज हाउस इन आर्डर' को ले सकते हैं। इन रचनाओं में चरित्र-चित्रण की गहराई तथा अनुभूति की तीव्रता है। पाला टैंकरे तथा ईरिस प्रकृति पात्र, एस्किलस, शेक्स-पियर तथा मोलियर के पात्रों के समान अमर भले ही न हों, रंगमंचीय तथा मानवीय दृष्टि से महत्वपूर्ण अवश्य हैं। उसकी रचनाएँ कहीं-कहीं श्लथ अवश्य हैं, किन्तु रचनाकार में भावनात्मक तनाव उत्पन्न करने की जो अपरिमित शक्ति है उससे यह रंगमंचीय सज्जा-सम्बन्धी बाधाओं पर भी सरलता से विजय प्राप्त कर लेता है।

१८९३ ई० में पिनरो ने 'दि सेकेंड मिसेज़ टैंकरे' की रचना की। अंग्रेजी में रचित पहले के नाटकों की तुलना में वह नाटक इतना परिपक्व सिद्ध हुआ कि उसे लोग अंग्रेजी नाटकों में आधुनिकता की पूर्व सूचना के रूप में स्वीकार करने लगे। उसके बाद पिनरो ने नाटकों में भावनात्मक प्रभावोत्पादन-सम्बन्धी कुछ अपने सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये। उसने एक अवसर पर लिखा था—"कुशल नाट्य-रचना का अर्थ कथोप-कथन के माध्यम से पात्रों द्वारा किसी कथा-विशेष की अभिव्यक्ति मात्र कराना नहीं है बल्कि उस कथा-विशेष को ऐसे सुन्दर ढंग तथा क्रम से, प्रस्तुत करना है जिससे वह रंगमंच की सीमाओं के बावजूद एक ऐसा विशिष्ट भावनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में सफल हो सके जिसका प्रदर्शन नाटक का प्रमुख ध्येय होता है। इन पंक्तियों में स्क्राइब के नाटकों के आकार का ही समर्थन मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि स्क्राइब का ध्येय मनोरंजन था कभी हँसना और कभी रुलाना था, जब कि पिनरो कुछ और अधिक गहरी प्रतिक्रिया की अपेक्षा रखता है। उस प्रतिक्रिया को वह 'भावनात्मक प्रभाव' कहता है। 'दि सेकेण्ड मिसेज़ टैंकरे' में उस भावनात्मक प्रभाव की उपलब्धि अवश्य की गयी है यद्यपि नाटक की रचना में रचनाकार का ध्यान किसी और ही समस्या पर टिका हुआ था। वैसे यह रचना कुछ इतनी तीव्र, सामाजिक निरीक्षणात्मकता लिये हुए है कि उसकी चर्चा किसी दूसरे अध्याय में अधिक उपयुक्त होगी।

पिनरो की प्रतिभा का सच्चा परिचय हमें 'ईरिस' में मिलता है। इस रचना का विषय शुद्ध भावनात्मक है जिसकी अभिव्यक्ति और विस्तार में किसी व्यापक सामाजिकता का आरोप नहीं है। वह रंगमंच क्या है जहाँ हम नाटक देखने जाते हैं? क्या वहाँ हम 'ईरिस' देखने जाते हैं? नाटककार का लक्ष्य क्या है और दर्शकों की प्रतिक्रिया क्या होती है? प्रदर्शन की ख़ास शर्तें और ख़ास दशाएँ क्या हैं?

शुद्ध, सही अर्थ में यह एक भावनात्मक नाटक है जिसे देखने दर्शक इसलिए जाता है कि भावनाएँ उसे झकझोर सकें और उसके मर्म को वेदना से छू सकें। यहाँ स्क्राइब की टेकनीक का प्रयोग गम्भीर कारुणिक कथानक के लिए किया गया है। सार्दो की प्रगतिशील रचनाओं का ही प्रभाव है जो पिनरो के नाटक को वह ठोसपन, वह परिपक्वता दे सकने में समर्थ हुआ जो यूनानी नाटककारों के बाद उसे कभी नहीं मिला। और यूनानी दुःखान्तों की भाँति ही हमें अधिक से अधिक निर्मल बनाने के लिए हमारी आत्मा को निचोड़ लेना उसकी भी रचनाओं का ध्येय है। किन्तु नाटक की समाप्ति के के बाद ही हम यह भी महसूस किये बिना नहीं रहते कि सोफ़ोक्लीज़ के नाटकों और इन नाटकों के बीच एक भारी अन्तर है। जहाँ तक एक खास गहनता अथवा सीधेपन का प्रश्न है, दोनों समान हैं। किन्तु विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन नाटकों में दो ख़ास तत्वों की परम न्यूनता है। उनमें न तो यूनानी नाटकों की काव्यात्मकता है और न भावात्मक गरिमा। पिनरो का माध्यम गद्य हो जाता है और उस गद्य को भी यथार्थवादी बनाने के लिए हमारे दैनिक जीवन की बोली के इतने समीप लाने का प्रयत्न किया जाता है कि उसमें श्रम-साध्यता का दोष आ जाता है। नाटक के पात्र भी उतने गौरवपूर्ण नहीं रह जाते जितने यूनानी नाटकों के पात्र हैं, और न मनुष्यों और देवताओं के बीच कोई संघर्ष ही दिखलाया जाता है; मानवीय दुर्बलताएँ तथा आत्मा का अधःपतन नाटक के मुख्य विषय हो जाते हैं जो पिनरो के बाद भी नाटक के मुख्य विषय बने रहते हैं। जीवन के भौतिक यथार्थ से जूझने में असमर्थ, कमज़ोर नारी-पात्रों का सृजन नाटककार का अभीष्ट हो जाता है। भावनात्मक दृष्टि से यह बात प्रभावोत्पादक अवश्य है किन्तु उसकी कारुणिकता को अच्छी तरह समझने के लिए श्रोताओं में गहरी अन्तर्दृष्टि तथा विशिष्ट काव्य-ग्राह्यता की अपेक्षा होगी। अन्ततोगत्वा 'ईरिस' एक भावनात्मक नाटक मात्र होकर रह जाता है। अपनी विशिष्ट गरिमा तथा उच्चता रखने वाले यूनानी दुःखान्तों की, मन को करुणा के माध्यम से निर्मल बना देने वाली बात उनमें नहीं रह जाती।

'ईरिस' का पतन इसलिए होता है कि वह विलासिनी हो जाती है। वह अपने प्रेमी को प्राप्त अवश्य कर लेती है, किन्तु प्रेमी की प्रतीक्षा के दिनों में वह एक दूसरे व्यक्ति

के सामने अपना सब कुछ इसलिए सौंप देती है कि वह उसे ऐश के लिए धन देता है और उसके चित्त की अनियंत्रित तरंगों को सहलाता रहता है। फलतः जब उसका सच्चा प्रेमी उसके प्रेम की पुकार पर उसे अपनाने के लिए वापस आता है तब उसे अपने दोनों प्रेमियों को खो देना पड़ता है। नाटक की यही साधारण सी कथा है। कथानक का निर्वाह इतनी कुशलता से किया गया है कि कुल मिलाकर उसकी प्रभावोत्पादकता बनी रहती है और उसका आकर्षण अन्त तक अक्षुण्ण रहता है। नाटक के पाँचवें अंक में, उस काल में प्रचलित, चरमोत्कर्ष-सूचक उद्घोषात्मक वक्तृता भी है और कथानक के उलझाव को सहजता से सुलझाने के लिए स्क्राइब ने जैसे यंत्र आदि का प्रयोग किया है वैसा ही प्रयोग यहाँ भी मिलता है। नाटक में दर्शक अथवा श्रोता को, और कम से कम उसकी सतही भावुकता को, अपने आकर्षण में बाँधे रखने की क्षमता है।

इस प्रकार की यथार्थवादी भावनात्मक रचनाओं के लिए ऐसे रंगमंचों की अवतारणा हुई जो शताब्दी के प्रारम्भ के रंगमंचों से भिन्न थे। रंगमंच का अग्रभाग तो अवश्य पहले की तरह ही चित्र-मण्डित रहता है किन्तु लबादा पहनने और मंच के ठीक सामने मुख्य द्वार रखने का फ़ैशन समाप्त हो जाता है। साथ ही अभिनय-स्थली भी सामने के पर्दे के पीछे तक ही सीमित रह जाती है। पृष्ठभूमि की सज्जा मंच के तीन ओर फैले हुए, अधरंगे, अधबने चित्रों से की जाने लगती है। इन दीवारों के कारण एक प्रकार की एकता आ जाती है और आकर्षण का केन्द्रीकरण हो जाता है। रंगमंचीय सज्जा-सम्बन्धी इस मितव्ययिता के कारण भावनात्मक नाटक के भावनात्मक पक्ष को बल मिलता है, और आगे चलकर इब्सन के यथार्थवादी नाटकों के निमित्त स्वभाविक रंगमंचों के लिए उपयुक्त भूमि भी तैयार होती है। रंगमंच के क्षेत्र में यह एक ऐसा क़दम था जिससे रंगमंचीय यथार्थ तथा एकता को सहारा मिला और कृत्रिमता और बनावट को तिरस्कृत किया गया। अभिनय भी कम परंपरागत और अधिक स्वाभाविक हो गया। अतएव हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि पिनरो के रंगमंच की भाँति पिनरो के नाटकों में भी हमें जो विशिष्ट परिवर्तन दिखलायी दिये। वे भावी नाटकों पर प्रभाव की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण तो हैं ही, साथ ही बाद के नाटकों में भी जो सच्चाई तथा नाटकीय गहराई आयी उसका भी श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता सकता है।

इसी प्रसंग में, अत्यन्त ही प्रतिकूल दिशा में गतिशील आस्कर वाइल्ड पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। पुरानी, कृत्रिम सुखान्तकों की परम्परा का प्रचलन इक्के-दुक्के प्रतिभा-सम्पन्न नाटककारों के हाथों अब भी होता रहा था, यद्यपि अपनी रचनाओं में प्रकृतिवाद के सम्पन्न समन्वय के बन्धन से वे अपने को यदा-कदा
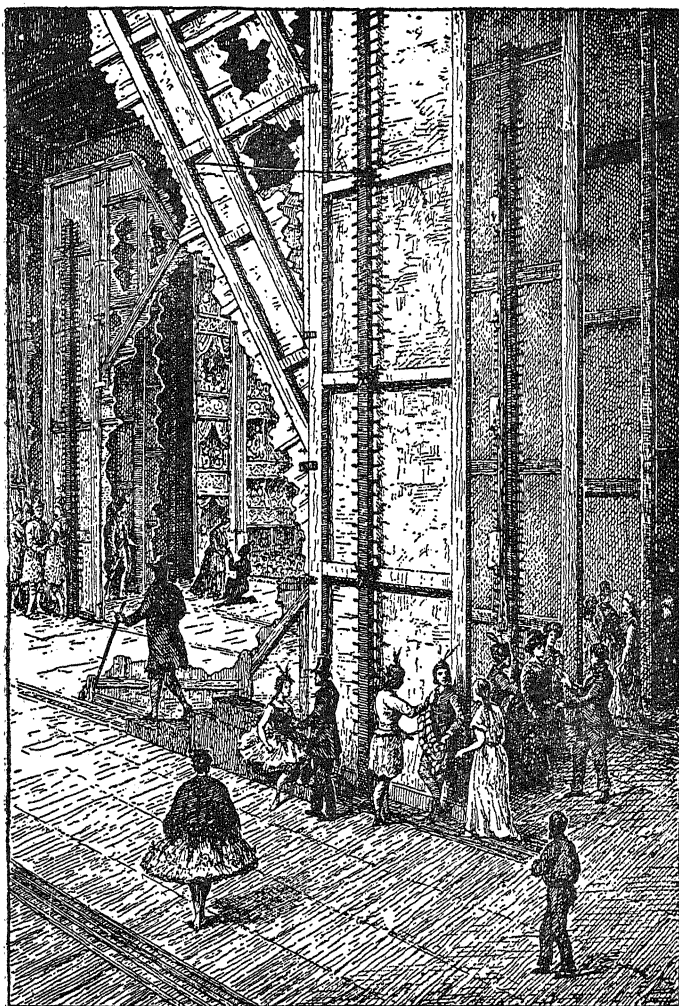
एक अभिनय के समय, दृश्य के पीछे। विंग के टुकड़ों को लम्बे खम्भों से बाँधने की प्रणाली दृष्टव्य है। (लोमान 'कृत ला मेलीनरी औ थियेतर' से।)

मुक्त भी पाते हैं। चार वर्षों की अल्प अवधि में ही (ठीक उसी समय जब 'दि सेकेण्ड मिसेज़ टैंकरे' की रचना हुई) आस्कर वाइल्ड ने 'दि लेडी विंडरमीयर्स फ़ैन', 'ए वूमन आव नो इम्पार्टेंस, ' तथा 'दि इम्पार्टेंस आव बीग अर्नेस्ट' प्रभृति नाटकों की रचना की। निःसन्देह, ये पुरानी परम्परा के ही सुखान्तक हैं और भावुकतावादी प्रभाव तो उनमें भी कभी-कभी सर्वथा न्यून हो जाता है किन्तु फिर भी उनके बौद्धिक चमत्कार तथा सुन्दर सूत्रात्मक अभिव्यक्ति के सामने श्रोता को घुटने टेक देने पड़ते हैं। हाँ, मंच पर प्रदर्शित किये जाने पर ये नाटक अब उतने प्रवाहपूर्ण नहीं जान पड़ते जितने वे उन्नीसवीं शताब्दी में समझे जाते थे। रंगमंच पर प्रदर्शन के निमित्त वे बस उतने ही उपयुक्त हैं जितने गोल्डस्मिथ अथवा शेरिडन के नाटक। किन्तु इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि शेरिडन और शा के बीच अंग्रेज़ी के सुखान्त नाटककार के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी केवल आस्कर वाइल्ड को ही मिली। उसके नाटकों में 'पीस बियेन फ़ेती' की प्रवीणता तो अवश्य निःशेष है किन्तु रमणीयता, दीप्ति, अथवा सृजन कौशल का अभाव उनमें कदापि नहीं है। पिनरो तथा गम्भीर पिनरो-पद्धति के अनुयायी नाटककारों से परे, अपेक्षाकृत कम बोझिल रंगमंचों पर वाइल्ड के नाटकों का स्थान स्थायी है। काव्य-नाटक के क्षेत्र में अपनी गीतात्मक प्रतिभा को रंगमंच की सेवा में वह अवश्य पूरा-पूरा अर्पित नहीं कर पाया था। 'सेलोम' का बहुत-सी अन्य भाषाओं में अनुवाद और प्रदर्शन अवश्य हुआ और शेक्सपियर के काव्य-नाटकों के अतिरिक्त 'सेलोम' ही एक मात्र ऐसा काव्य-नाटक है जिसे मंच पर बार-बार आना पड़ता है (अपनी इस उक्ति पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है किन्तु इस उक्त के विरुद्ध मेरे पास कोई प्रमाण भी तो नहीं है। वाइल्ड के बाद स्टीफेन फिलिप्स की रचनाओं में नवीन संभावनाओं के चिह्न अवश्य थे किन्तु अत्यधिक साहित्यिक होने से उसकी रचनाएँ बोझिल हो गयी हैं और उसकी सर्वोत्कृष्ट प्रथम रचना 'पावलो ऐण्ड फ्रैंसेस्का' के बाद उसकी प्रगति में नाटकों को रंगमंच के अनुकूल बनाने का कोई प्रयत्न नहीं देखा गया। हाँ, ईट्स तथा डनजेनी की रचनाओं से यह अवश्य प्रतीत होता है कि आगे चलकर लोकप्रियता में वे वाइल्ड के 'सेलोम' को भी मात दे जायँगी)।

अमेरिका में उन्नीसवीं शताब्दी का रंगमंच प्रायः अंग्रेजी रंगमंचों की लीक पर ही अग्रसर था। लन्दन के माध्यम से उसको पेरिस का प्रभाव भी कम उद्वेलित नहीं कर रहा था। अमेरिका का सर्वप्रथम उल्लेखनीय नाटककार प्रायः उन्हीं दिनों सृजन-रत था जिन दिनों पेरिस में 'पीस वियेन फ़ेती' का प्रचलन हो रहा था। ब्रांसन हावर्ड अमेरिका का कदाचित सबसे पहला मौलिक नाटककार था। 'सेराटोगा' तथा 'शेननडोआ' शीर्षक उसकी अत्यन्त ही लोकप्रिय रचनाओं में अमेरिका की जातिगत,

स्थानगत विशेषताओं की मौलिक गन्ध भी है। क्लाइड फिच हावर्ड से भी अधिक सृजनशील तथा सहजता-गुण-सम्पन्न था और सफलता भी उसे उससे कई गुनी अधिक मिली। उसकी उत्तम रचनाओं को आज हम प्रायः उसी तरह पढ़ते हैं जैसे पिनरो अथवा जोन्स की रचनाओं को। और यद्यपि उनके अध्ययन की प्रक्रिया में उनके
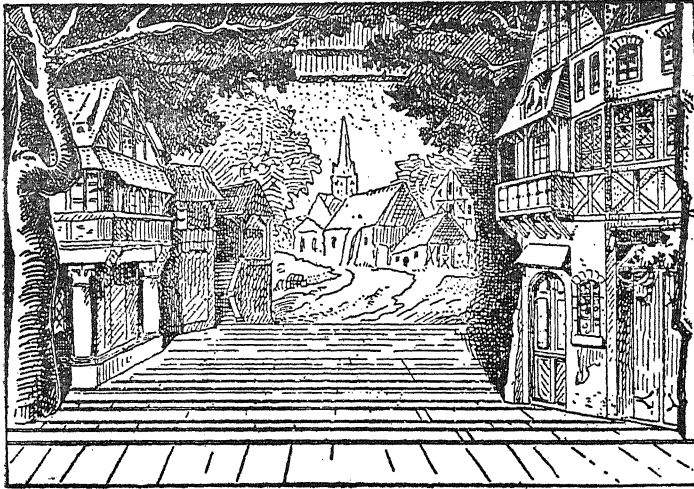
टेढ़े-मेढ़े टुकड़ों के कारण विंग-दृश्य बदलते जाते थे। (गुस्ताव कोक्वीओत कृत 'पीन्त्रेडेकोरेत्यूर दे थियेतर' से।)

प्रति हमारा आकर्षण न्यून होता है किन्तु साथ ही हम उनके रचना-कौशल के प्रति प्रशंसा के भाव से भी अभिभूत रहते हैं। किन्तु रचे जाने के बाद कोई पच्चीस वर्षों के भीतर ही फिच की रचनाओं का प्रचलन बन्द हो गया। बाद में आगस्टस टामस का नाम आता है जो उत्तरकालिक यथार्थवादियों से प्रभावित होने के कारण उपर्युक्त अमेरिकी नाटककारों से अधिक प्रगतिशील कहा जा सकता है किन्तु वह भी यंत्रों की तरह नाटकों को गढ़ देने वाली प्रवृत्ति से अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर पाया। अमेरिकी रंगमंच पर फ्रांसीसी रूपान्तरों के प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हावर्ड, फिच और टामस नामक ये तीन अमेरिकी नाटककार अपनी रचनाओं में अमेरिका की जन्मजात विशेषताओं का भी समन्वय करते रहे। किन्तु उनकी रचनाओं

को फ्रांसीसी परंपरा के सामने बलिदान हो जाना पड़ा क्योंकि उनमें भी प्रायः उन्हीं नाटकों की न्यूनताएँ रह गयी थीं। जिन्हें इस सम्पूर्ण प्रकरण में, अपेक्षाकृत अवहेलना-त्मक भाव से 'सुरचित' नाटक अथवा 'सजे-बजे' नाटक की संज्ञा दी गयी है। यहीं इस बात का भी उल्लेख कर देना चाहिए कि फ्रांसीसी परंपरा की ठीक उसी वेदी पर उन्नीसवीं शताब्दी में इटली तथा स्पेन को भी अपनी मौलिकताओं की बलि चढ़ानी पड़ी थी। पश्चिम के प्रायः प्रत्येक देश में सहजता अथवा सुगमता को रंगमंच का देवता समझा जाने लगा था।

शताब्दी के मध्य तक प्रारम्भ के दशकों में रंगमंच पर दृश्यों का युग आरम्भ हुआ। मंचीय सजावट के निमित्त प्रयुक्त प्राचीन चित्रों में विस्तार तथा भड़कीलापन तो अवश्य था किन्तु उनमें रचना और रंग-सम्बन्धी दोष भी थे और मंच पर प्रकाश के प्रबन्ध में भी पूर्ण दोष-हीनता नहीं थी। फलतः पृष्ठभूमि की दृश्य-योजना में अस्वाभाविकता आ जाती थी और उन्हीं चित्रों के बारम्बार प्रदर्शन के कारण नीरसता भी। पृष्ठ-पट तथा पार्श्व-विंग्ज़ के लगातार पंक्ति-बद्ध प्रयोग के कारण चित्रों की नीरसता और भी अधिक बढ़ जाती थी। बाद में जब यंत्र-निर्माण की दिशा में कुछ और भी प्रगति हुई तब चित्रों को सम्हाले रखने के लिए चूलदार कपाट तथा पाँवदार रोक तथा ऐसे ही अन्य प्रसाधन प्रयोग में लाये जाने लगे।

पीछे की ओर से दृश्यों के दो रेखा-चित्र (देखिए कुछ पृष्ठ पूर्व के दो चित्र) प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमें मंच के पार्श्व-भाग भी दिखायी पड़ते हैं। उन्हें देखने से पता चलता है कि चित्रों के आकार में बड़ी अनियमितता आ गयी थी। (अर्थात् हर आकार के चित्र प्रयोग में लाये जाने लगे थे) और उन्हें चौखटों में नीचे से ऊपर समा-नान्तर लगाने के ढंग में भी कोई ख़ास नियम अथवा विधान नहीं था। इस कारण चित्रों की पंक्तियों में जहाँ एक ओर एकरसता आ गयी थी वहीं उनकी चौखटों के अन्दर की वस्तु में विविधता भी थी। किन्तु शताब्दी के मध्य के वर्षों में एक दूसरी ही प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। समानान्तर चौखटों में चित्र कर्णरेखावत् सजाये जाने लगे। उन्हें सम्हाले रखने के लिए कील और पट्टे प्रयोग में लाये जाने लगे, क्योंकि चौखटों को ही पर्याप्त नहीं समझा गया। प्रस्तुत चित्र (देखिए चित्र प्लेट संख्या ४८) को देखने से पता चलता है कि चित्रों की सजावट के ढंग में कितना अन्तर आ गया था और उनकी सजावट की पारस्परिक नियम-बद्धता के स्थान पर कितनी स्वच्छन्दता आ गयी थी। किन्तु स्वाभाविकता उनमें अब भी नहीं आयी थी यद्यपि उसके आने में अब देर नहीं थी! नाटकों की रचना के क्षेत्र में जहाँ यथार्थवाद का प्रवेश होता जा रहा था वहीं रोमांसवाद-द्वारा उत्प्रेरित प्रदर्शनात्मक प्रवृत्ति के कारण चित्रों की ऐसी
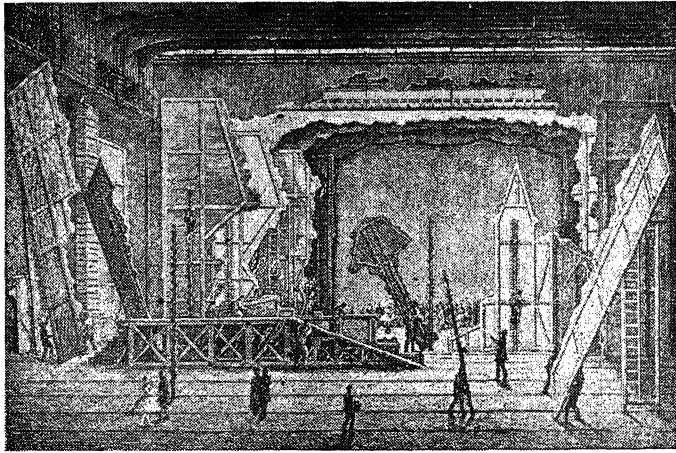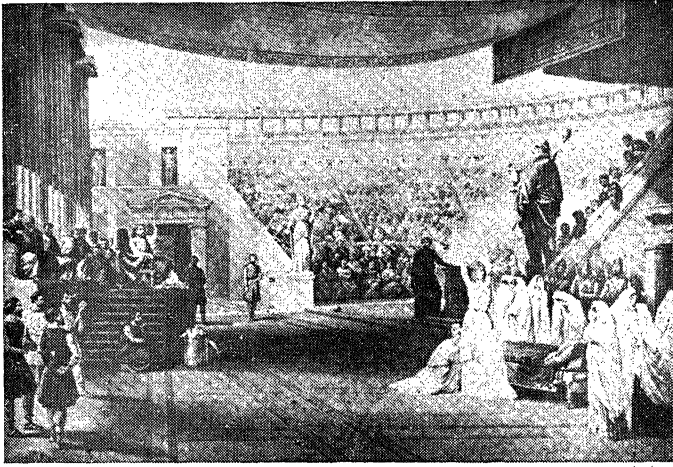
दृश्यावली में उन्नीसवीं शताब्दी का विस्तार । ऊपर, 'दि विन्टरटेल' में 'ट्रायल आव हरमियोन' का दृश्य, लूई हेघ, १८५६ ई०, के चित्र से । वास्तविक अभिनेताओं को चित्रित भीड़ के रूप में अंकित करने के प्रयास का एक क्लासिक उदाहरण—यद्यपि यह प्रयास हमेशा असफल रहा । नीचे, पीछे से देखने पर एक विंग सेटिंग, अपनी निर्माणावस्था में । (ई० एम० लौमान कृत 'ला मेशीनेरे औ थियेतर' से ।)
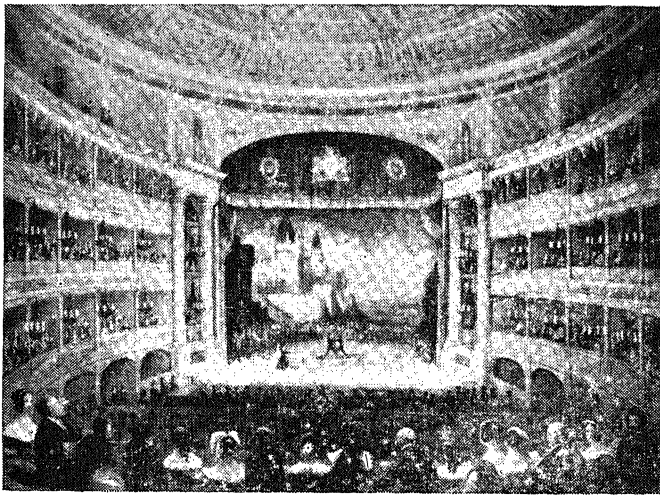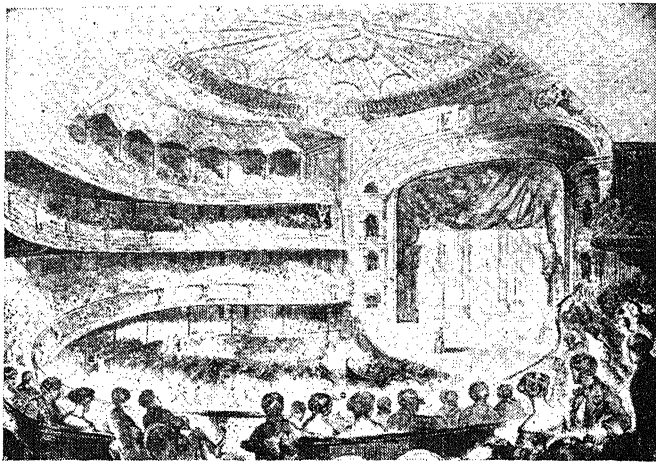
विशाल मध्य-शताब्दी रंगशालाओं में से दो रंगशालाएं। ऊपर, १८५५ ई० का बोस्टन थियेटर (जैसा कि वह बाल्लो के पिक्टोरियल ड्राइंग-रूम कम्पेनियन में चित्रित है); इस रंगशाला में विस्तृत मंचाग्र और बैठने की योजना में बढ़ती लोकतांत्रिक प्रवृत्ति दृष्टव्य है। नीचे, ड्र्रीलेन थियेटर, लन्दन, १८४२ ई०; इसमें मैकरेडी द्वारा प्रस्तुत 'ऐस यू लाइक इट' कुश्ती वाले दृश्य के लिए विस्तृत चित्र सेटिंग देखिए। (तत्कालीन रंगीन चित्र से।)
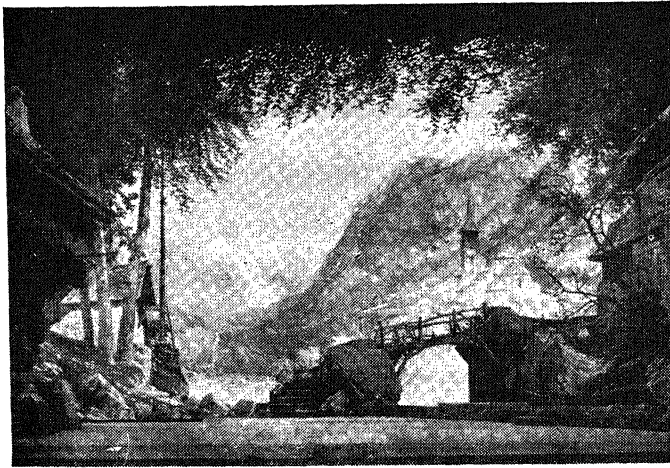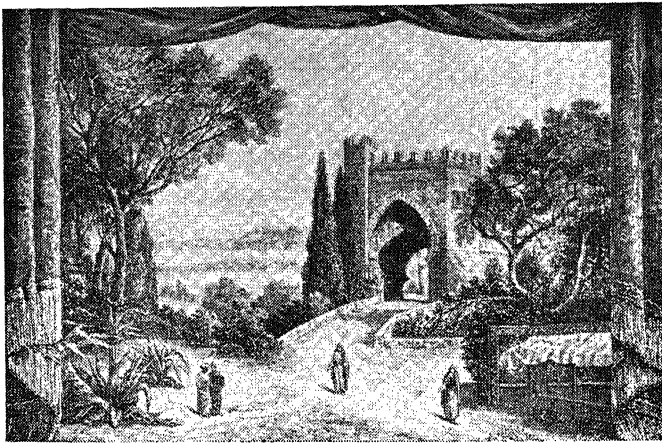
रोमाण्टिक दृश्य में बढ़ता हुआ यथार्थवाद। ऊपर, जे० बी० लावास्त्रे कृत 'त्रिव्युत दे ज़ामोरा,' जैसा कि वह पेरिस में अभिनीत हुआ था, की सेटिंग। (पूगिन कृत 'डिक्शनेयर दु थियेतर' से)। नीचे, मेट्रोपोलिटन आपेरा हाउस, न्यूयार्क, में 'विलियम टेल' के लिए एक सेटिंग। (व्हाइट स्टुडियोज़ के फ़ोटोग्राफ़ से)
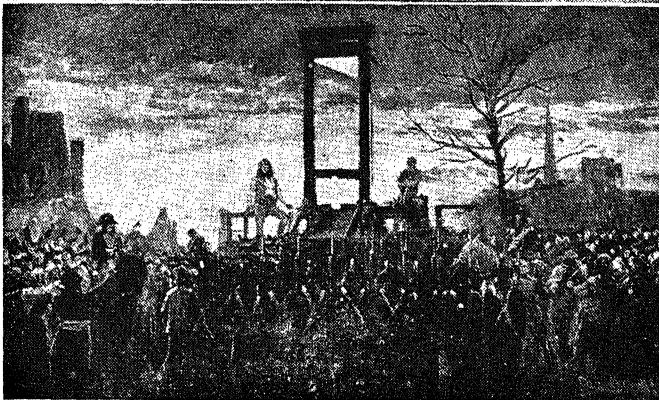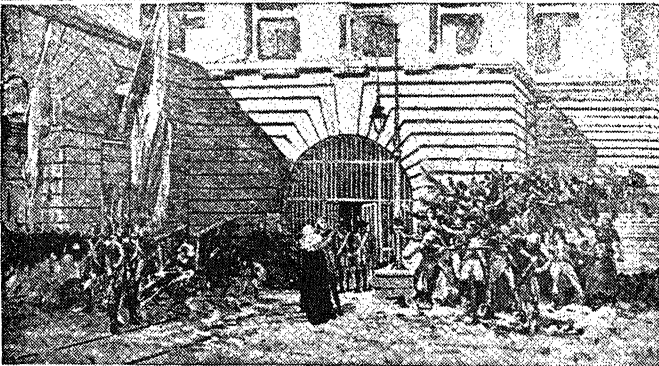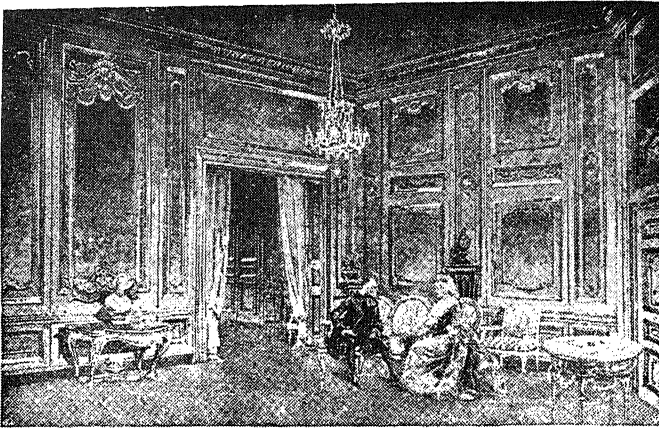
हेनरी इरविंग द्वारा प्रस्तुत 'डेड हार्ट' के तीन दृश्य, लेसियम थियेटर, लन्दन, १८८९ ई०, जिनमें ठोस यथार्थवादी सेटिंग्ज़ दृष्टव्य हैं। बीच वाले चित्र में प्रमुख अभिनेता हैं केथरीन डुबल और आर्थर दे सेंट वलेरी की भूमिका में एलेन टेरी और गोर्डन क्रेग।

उन्नीसवीं सदी के निर्माताओं में प्रचलित फ़ैशन के विरुद्ध, विना कहीं कोई परिवर्तन अथवा काट-छाँट किये ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जा सके। उनके प्रयत्नों को उन तमाम युग-प्रवर्तक परिवर्तनों का पूर्वाभास समझना चाहिये जो १९०० ई० के तुरंत बाद गोर्डन क्रेग एडोल्फ अप्पिया के प्रयत्नों से प्रस्फुटित हुए। किन्तु उस समय उनकी आवाज़ कैनवेस चित्रों तथा काग़जी इमारतों के नक्क़ारखाने में तूती की आवाज़ के समान थी।

इस शताब्दी में एकाध को छोड़कर प्रायः सभी रंगमंचों पर आपेरा का प्रचलन जारी था। अपवादों में बेरूथ स्थित वैगनर का 'फेस्टस्पालहास' नामक रंगमंच उल्लेखनीय है जिसकी रचना के पीछे आपेरा को एक सर्वथा नवीन दिशा में ले जाने की आकांक्षा थी, किन्तु दुर्भाग्यवश वैगनर को आपेरा की प्रचलित रीति को बदलने में सफलता नहीं मिली। हाँ, १८९० ई० में कुछ मंच और भवन-निर्माताओं के मस्तिष्क में यह बात अवश्य आयी कि वैगनर की दृष्टि वर्तमान मंच पर न होकर भविष्य की मंच-सज्जा पर है। १८०० ई० का आरंभ होते ही जहाँ कहीं भी एक प्रगतिशील' नाटचशाला (जो इटली अथवा फ्रांस के नमूनों पर आधारित न हो) के निर्माण की बात आती वहाँ सेम्पर का नाम अवश्य लिया जाता।

प्रकरण के प्रारम्भ में न्यूयार्क की एक नाटचशाला का चित्र दिया गया है जिसे देखने से पता चलता है कि 'एप्रन' तथा 'प्रोसीनियम' (रंगमंच का अग्रभाग) का प्रचलन शताब्दी के मध्यकाल में भी कितना प्रबल था। चित्र १८५३ ई० का है, स्थान है—'अमेरिकी अजायबघर : लेक्चर-रूम' (उस काल के प्यूरिटनों की भावुकता के सम्मान में निमिति रंगशालाओं को भी रंगशाला की संज्ञा देना वर्जित था, इसलिए वे 'लेक्चर-रूम' के नाम से प्रचलित थे। ऐसे 'लेक्चर-रूमों 'में श्रोताओं के बैठने का सुन्दर, सुखद प्रबन्ध तो था ही, रंगमंच-सम्बन्धी आवश्यक उपादान भी उपलब्ध थे। 'बोस्टन का अजायबघर' कई दसकों तक अमेरिका का प्रख्यात रंगमंच बना हुआ था)। प्लेट संख्या ४९ पर १८४२ ई० का ड्रूरी लेन थियेटर देखिये और १८५५ ई० का बोस्टन थियेटर देखिए। आपको पता चलेगा कि 'ऐप्रनों' का आकार छोटा होने लगा है और 'प्रोसीनियम' (मंच का अग्रद्वार) का प्रचलन लुप्त हो गया है। दृश्य-सजावट में भी अन्तर आ गया है। बोस्टन के मंच पर पुरानी परम्परा की 'विंग-सेटिंग' है और ड्रूरी लेन थियेटर पर वे अधबने और अधरँगे दृश्य दिखायी पड़ रहे हैं जो शेक्सपियर के नाटकों के प्रदर्शनों में स्वभाव-स्वरूप प्रयुक्त होते थे। 'ऐज़ यू लाइक इट' में यह एक द्वन्द्व का दृश्य है। आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इस चित्र की रचना करते समय जहाँ चित्रकार सचमुच

बैठा रहा होगा वहाँ बैठकर शेक्सपियर क काव्य का कितना अल्प आनन्द आप ले सकते हैं।

लन्दन में इतने बड़े-बड़े रंगमंचों और रंगशालाओं के निर्माण का एक कारण यह भी है कि उन दिनों नाटकों को प्रदर्शित करने की सरकारी अनुमति (अथवा-लाइसेंस) बस दो-तीन नाटचशालाओं को ही दी गयी थी। परिणाम यह हुआ कि पुर्ननिर्माण की प्रक्रिया में 'ड्रूरी लेन' तथा 'कोवेण्ट गार्डन' थियेटरों को कई बार पहले से और भी अधिक विस्तृत कर दिया जाने लगा ताकि उनमें अधिक से अधिक श्रोताओं अथवा दर्शकों के लिए स्थान हो। 'रेस्टोरेशन' (पुनर्प्रतिष्ठापन) के बाद, जब कि नाटकों के विरुद्ध प्युरिटनों का आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर समाप्त हो चुका था, तब लन्दन के दो-तीन नाटकघर ही नाटक देखने की इच्छा अथवा हिम्मत रखने वाले लन्दन-निवासियों के लिए पर्याप्त थे। उस समय के फ़ैशनेबुल और तथा-कथित रूप से तथ्य सुसंस्कृत नागरिकों के लिए नाटक-मनोरंजन का एक विशिष्ट साधन बना हुआ था। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में साधारण जनता में भी नाटक देखने की अभिरुचि उत्पन्न हुई इसलिए और भी अधिक नाटक-घरों तथा और भी तरह के नाटकों की माँग बढ़ने लगी। इस प्रकार बहुत से अवैधानिक (जिन्हें नाटक दिखलाने का लाइसेंस नहीं था) नाटकघर भी उत्पन्न हो गये जो वैधानिक रूप से नाटक तो नहीं दिखला सकते थे इसलिए जादू, संगीत तथा पशुओं के क़ारनामे जैसे खेल दिखलाकर लाइसेंस प्राप्त नाटकघरों से प्रतियोगिता में सामने आने से अपने को बचाते रहे। एक अनोखी बात यह थी कि उस समय नाटक-कार नाटकों की रचना इस इच्छा से नहीं करते थे कि उनकी रचनाएँ शेक्सपियर अथवा शेरिडन की रचनाओं की तरह मंचों पर प्रदर्शित की जायँगी। १८४३ ई० में जब 'थियेटर रेगुलेशन ऐक्ट' पास हुआ तब अधिक से अधिक नाटचशालाओं के निर्माण की अनुमति दी गयी किन्तु फिर भी सेंसर तथा भवनों के स्तर-सम्बन्धी कुछ प्रतिबन्ध अक्षुण्ण रहे।

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब नाटकों में स्वाभाविकता तथा संक्षिप्तता आने लगी तब विस्तृत आकारों वाली नाटचशालाएं बेकार साबित होने लगीं। अभिनय के ढंग में समानान्तर परिवर्तन आने लगे। पुरानी नाटचशालाओं के विस्तृत परिवेश में मंच पर बड़ी-बड़ी बातों और बड़े-बड़े भव्य अतिरंजित दृश्यों की आवश्यकता होती थी। अब नाटकों में उनके स्थान पर शांति, स्थिरता, आन्तरिकता तथा गहनता की अपेक्षा की जाने लगी। और ठीक उसी समय अभिनेताओं की अन्य सहायिका बिजली का आविष्कार हुआ जिससे मुखाकृति को और भी अभिव्यक्तिपूर्ण तथा

मंच पर अभिनेता की गति को और भी अधिक सूक्ष्म अर्थपूर्ण बनाने में सहायता मिली। अभिनय-प्रांगण के और भी पीछे नेपथ्य के समीप खिसक जाने के कारण बिजली की रोशनी से अभिनेता की आकृति को और भी नवीन तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से आलोकित करना सरल हो गया। मंच के और भी अधिक आन्तरिक हो जाने से एक लाभ यह भी हुआ कि अभिनेतागण नाटककार के इच्छित यथार्थवाद को और भी अधिक शांत, सुलभ तथा स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करने में समर्थ हुए।

कीन, देव्रायंत और लेमैत्री के बाद विश्व-रंगमंच पर कुछ और भी बड़े अभिनेता अवतरित हुए। आधुनिक दृष्टिकोण से हम उन्हें भी 'पुरानी परंपरा' के ही अभिनेता कहेंगे। इटली का अभिनय सर्वदा भव्य से भव्यतर और सर्वदा संवेगात्मक भावुकतापूर्ण रहा है, अन्य स्थानों से अधिक तूफ़ानी, क्योंकि शायद वही उनका राष्ट्रीय स्वभाव था——रंगारंग तथा आपेरा-प्रवण। रोमांसवादी नाटकों (शांत, 'सुरचित' नाटकों की परम्परा इटली में उस अर्थ में कभी नहीं रही जिस अर्थ में वह अन्य स्थानों में थी) के काल में तोम्मासो सालविनी तथा एडिलेड रिस्टारी प्रभृति अभिनेता अभिनय के समय अपने देश के रंगमंचों पर पीछे की ओर भूमि तक लटकते हुए परिधान पहनकर आते थे और बाद में वे अपने परिधान की इस भव्यता तथा चमत्कारपूर्णता को युरोप के अन्य देशों तथा अमेरिका में भी प्रचलित कर गये। उनकी तरह की अभिनय-परम्परा का प्रचलन अब तक, इस आधुनिक काल तक, अक्षुण्ण रहा है, विशेषकर गायोवानी ग्रैसो के अभिनय के रूप में, जिसमें रुक्षता के साथ ही उत्साहपूर्णता तथा प्रभावोत्पादकता के गुण थे। किन्तु इटली की सर्वोत्तम आधुनिक अभिनेत्री एलोनोरा ड्यूज़ थी जो अपनी भावनाओं से बिलकुल बीसवीं शताब्दी की अभिनेत्री थी। अनावश्यक रोमांसवादी विस्तार का बहिष्कार करके नाटक को व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति से समन्वित करके उसने और भी अधिक गहन तथा गौरवान्वित बनाया और अपने यथार्थवाद की सरलता को व्यक्तिगत अभिव्यक्तिपूर्णता से प्रकाशित तथा आलोकित किया।

लेमैत्री के बाद फ्रांस में बड़े अभिनेता कम हुए, अभिनेत्रियाँ अधिक हुईं। हाँ, उच्चश्रेणी के अभिनय की परंपरा को अब भी अक्षुण्ण रखने वालों में काकेलिन तथा मोनेत-सली काफ़ी दिनों तक स्मरणीय रहेंगे। रैचेल, रीजेन तथा बर्नहार्ड नामक अभिनेत्रियों का पेरिस के रंगमंचीय इतिहास को बड़ा ही रोमांचकारी योगदान रहा है। रैचल तथा बर्नहार्ड ने फ्रांस के सरकारी मंच, 'थियेटर फ्रांके' की नींव हिला दी थी, एक उसकी अभिनेत्री -सदस्या रहकर और दूसरी उसको मात्र इसलिए छोड़

कर कि वह अपेक्षाकृत प्रगल्भ अभिनेत्री थी। रैचेल को दुःखान्त-अभिनय का जन्मजात वरदान था और उसके अभिनय के ढंग में एक ऐसी मौलिक अनिर्वचनीयता थी जो अभिनय की स्वाभाविकता अथवा संभावनात्मकता-सम्बन्धी किसी भी नियम-अधीनियम का वन्धन अथवा नियंत्रण नहीं जानती थी। रेसीन के नाटक की वह साक्षात् नायिका थी और ऐसा लगता है——जैसे रोमांसवादी नाटकों की नायिकाओं के रूप में अवतरित होने के लिए ही उसका जन्म हुआ हो। उसके लगभग एक पीढ़ी बाद सारा बर्नहार्ड आती है। उसने रोमांसवादी अभिनयों के स्थान पर स्वाभाविक ढंग से भावुकतापूर्ण अभिनय किये किन्तु उसके अभिनय के ढंग पर पुराने अभिनेताओं की स्पष्ट छाप है। अभिनय के इतिहास में उसका स्वरों के उतार-चढ़ाव का अनोखा ढंग स्मरणीय रहेगा। अभिनेत्री का कार्य करने के लिए छिप छिप कर वेश्याओं को नियुक्त करने की प्रवृत्ति के प्रति उसकी यह धारणा थी कि निर्माताओं को उन्हें नियुक्त करने की स्पष्ट अनुमति मिल जानी चाहिए ताकि उनका दुराव-छिपाव बन्द हो जाय। उसका व्यक्तित्व रंगमंच पर, और रंगमंच के परे भी, आकर्षण का केन्द्र था और ऐसे अभिनयों के लिए, जिसमें शारीरिक बल की अपेक्षा होती थी, उसे इतनी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली जितनी उस शताब्दी की किसी अन्य अभिनेत्री को नहीं मिल सकी और उसके अनुसरणकर्ताओं की भी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। किन्तु आज जब कि ऐसी नाटक-कम्पनियों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसमें 'सामूहिक' अभिनय का प्रचलन है तब संभव है कि बर्नहार्ड का नाम कलाकारों की सूची में सबसे नीचे आ जाय, किन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं क्योंकि उस सूची में उसके अतिरिक्त आश्चर्य की कुछ और बातें भी अवश्य सम्मिलित होंगी।

एडमंड कीन के समय तक अमेरिकी रंगमंचों पर लन्दन के अभिनेताओं का बोलबाला था। कीन न्यूयार्क में सबसे पहले १८२० ई० में आया था जहाँ उसने जिस अपूर्व धूमधाम के साथ सफलता प्राप्त की उसी अपूर्व धूमधाम के साथ वह असफल भी हुआ। सबसे अधिक रोचक बात तो यह है कि उसको प्रायः उन्हीं प्रान्तीय श्रोताओं ने हतोत्साह करके वापस इंगलैण्ड भगा दिया जिन्होंने शुरू में उसका भव्य स्वागत किया था। इसके बस कुछ ही वर्ष बाद न्यूयार्क के प्रसिद्ध 'बावरी थियेटर' पर एडविन फ़ारेस्ट नामक अमेरिका का सबसे पहला प्रख्यात अभिनेता सामने आता है जो बाद में अमेरिकी अभिनेताओं में अग्रणी के रूप में तो मान्य होता है। शेक्सपियर के नाटकों में उसकी अभूतपूर्व अभिनय-शैली के कारण इंगलैण्ड में भी उसे काफ़ी प्रशंसा मिलती है। दुर्भाग्यवश अंग्रेजों के सबसे प्रिय अभिनेता मैक्रेडी से उसका झगड़ा हो गया जिसका कारण कदाचित् उसका क्रोधी, छुई-मुई का सा स्वभाव रहा होगा। आगे चलकर

इस झगड़े ने और भी विकराल रूप धारण किया, दो विरोधी दल तैयार हो गये और न्यूयार्क में १८४९ ई० का भयंकर ऐतिहासिक 'ऐस्टर प्लेस दंगा' हो गया। हुआ यह कि जब न्यूयार्क के ऐस्टर प्लेस आपेरा भवन में अभिनय करने के लिए अंग्रेज़ मैक्रेडी को निमंत्रित किया गया तब फ़ारेस्ट के सहायक इतने क्षुब्ध हो उठे कि उन्होंने भवन को भीतर और बाहर दोनों ओर से घेरकर उस पर हमला कर दिया, जैसे वह कोई क़िला हो जिसमें 'निरंकुश स्वेच्छाचारी अंग्रेज अभिनेता' मैक्रेडी छिपा पड़ा हो। उन्होंने पुलिस से और अन्ततोगत्वा मिलिटरी से भी लोहा लिया। परिणाम यह हुआ कि बाईस आदमी मारे गये। मैक्रेडी लन्दन भाग गया और फारेस्ट का सम्मान निर्विवाद तथा निर्विरोध हो गया।

उसके बाद अमेरिकी रंगमंच नित्य-नवीन प्रतिभाओं से अनुप्राणित होता रहा। कुछ प्रमुख नामों का उल्लेख करने का लोभ असंवरणीय है। प्रमुख अभिनेता-परिवारों में बूथों, हैकेटों, वैलेकों, जेफ़रसनों, ड्यूओं तथा डेवेनपोर्टों के परिवार उल्लेखनीय हैं। अभिनेत्रियों में अमेरिका की प्रथम प्रमुख तारिका चार्लट कुशमैन, आकर्षक तारिका एडा आइज़क्स मैन्केन, मेरी ऐंडर्सन, हेलेना मोजेस्का, क्लारा मोरिस और एडा रेहन के नाम उल्लेखनीय हैं। एडा रेहन ने आगस्टिन डेली की सुप्रसिद्ध कंपनी में बीस साल प्रमुख अभिनेत्री का कार्य किया। स्वयं डेली को भी उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे योग्य निर्माता कहा गया है। उन्हीं दिनों सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न, निर्देशक, अभिनेता, आविष्कारक, सज्जाकार स्टील मैकेई की भी कीर्ति फैल रही थी। उसका मस्तिष्क सुधारोन्मुख था और उसने रंगमंच-सम्बन्धी अनेक आविष्कार भी किये जो बाद के युगों में सक्रिय तथा साकार हुए।

एडविन बूथ तथा जोज़ेफ जेफ़रसन दोनों का उल्लेख सविस्तर होना चाहिए—एक अमेरिका का सबसे बड़ा अभिनेता है, दूसरा इस क्षेत्र में अमेरिका की प्रगति का अभिन्न अग्रदूत है। न्यूयार्क में बूथ की प्रारम्भिक प्रतिष्ठा इस बात का प्रमाण थी कि नाटकों में अमेरिका की राष्ट्रीय रुचि अब और भी व्यापक हो गयी है (शेक्सपियर के 'रिचर्ड थर्ड' में वह भी उसी भूमिका में उतरा था जिसके कारण उसके पिता को प्रसिद्धि मिली थी।) कैलिफ़ोर्निया की अपनी सबसे बड़ी विजय के बाद वह सम्पूर्ण देश में पूजनीय हो गया। उसके अभिनय में कीन अथवा फ़ारेस्ट की 'आग' तो नहीं थी किन्तु उसकी निश्चल, प्रशांत कला में एक ऐसी उत्कृष्टता थी जिसकी परिणति अभिनय की एक परिपूर्ण परम्परा में हुई। अपनी बौद्धिक तीक्ष्णता तथा आध्यात्मिक अन्तदृष्टि के कारण वह हैमलेट तथा शेक्सपियर के अन्य कठिन पात्रों की भूमिका में सफल उतरा। वह रोमांसवादी अभिनय से दूर प्रगति के नवीन पंथ पर भी था और

अभिनय की पुरानी परंपरा का समर्थक भी था। इस प्रकार संक्रान्ति काल का वह सबसे उदात्त तथा सबसे प्रभावशाली अभिनेता था। शताब्दी के छठें दशक में हैमलेट की भूमिका में उसे लगातार सौ दिन अभिनय करना पड़ा था। बाद में जब उसने एक निजी रंगमंच तैयार किया तब लन्दन में प्रचलित फ़ैशन के प्रभाव में, अपने प्रदर्शनों में भी उसने विस्तृत दृश्य-सज्जा का प्रयोग करना शुरू किया कर। मंच को सजा-सजा कर अधिक से अधिक भव्य बनाने की चिन्ता में उसका दिवाला ही निकल गया। किन्तु बाद में उसे अमेरिकी रंगमंच के सर्वोत्तम, सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि के रूप में मान्यता मिली जिसका कारण उसकी उत्कृष्ट अभिनयात्मक प्रतिभा थी।

इस क्रम में तीसरा नाम जोज़ेफ जेफर्सन का है। उसका स्तर अपेक्षाकृत कम उन्नत था, किन्तु लोकप्रियता में उसका स्थान एडविन बूथ के साथ था। अमेरिकी श्रोताओं के प्रिय सुखान्तों में विदूषक पात्रों के अभिनय में उसकी विशिष्ट प्रवीणता थी। उसके अभिनयों को ठीक उन्हीं कारणों से उत्तम समझा गया था जिन कारणों से 'दि ओल्ड होमस्टेड' शैली के अन्य नाटकों को सफलता मिली थी। दयालु, सज्जन पात्रों के अभिनय में वह बेजोड़ था। उसका रिप वान विंकिल का अभिनय सबसे सुन्दर सिद्ध हुआ जिसकी भूमिका में वह कई दशकों तक उतरता और अबाध प्रशंसित होता रहा।

कीन तथा मैक्रेडी के बाद और हेनरी इरविंग के पहले इंगलैण्ड में उनकी बराबरी का कोई अन्य अभिनेता उत्पन्न नहीं हुआ। बैनक्राफ्ट: ने प्रिंस आफ वेल्स थियेटर में अपनी कम्पनी निर्मित करके 'समूह-अभिनय' के क्षेत्र में अच्छा कार्य किया जिससे फ्रांसीसी प्रभाव से पीछा छुड़ाने के इच्छुक अंग्रेजी नाटककारों को भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। किन्तु नवीन युग का आरम्भ होता है हेनरी इरविंग के समय में। संक्रान्ति-काल का वह सर्वोत्तम अभिनेता था जिसने अपने कृतित्व में अतीत की भव्यता के प्रति औदार्य रखते हुए भी भावी पविर्तनों को स्पन्दित किया। बीसवीं शताब्दी की विशिष्ट दृष्टि से उसका अभिनय यथार्थवादी कम था, उसमें वैयक्तिकता तथा बौद्धिकता अधिक थी। साधारणत: वह पुरानी चाल के रोमांसवादी नाटकों अथवा शेक्सपियर की कृतियों में उतरता रहा, इसलिए नवीन युग में 'नवीन' रंगमंच पर उसकी सदस्यता न तो अभिनेता के रूप में स्वीकार की गयी और न नाटकों के नवीन चयन-कर्ता के रूप में। मंच पर दृश्य-सज्जा तथा दृश्य-निर्माण के क्षेत्र में उसके कृतित्व को विक्टोरिया काल की चित्री-करण की पराकाष्ठा कहा गया। उसके चित्रों की सजावट में बुद्धि का प्रयोग अन्य अभिनेता निर्माताओं से कहीं अधिक होता था, हाँ, उनमें आधुनिक काल की आधुनिकता अवश्य नहीं थी। इरविंग की उपलब्धि यह थी कि उसने अंग्रेजी

रंगमंच की महत्ता एक नवीन लोक में स्थापित की और अभिनेता-वर्ग को भी वह सामाजिक प्रतिष्ठा की उस सीमा पर ले गया जिसकी छाया भी गैरिक के बाद का कोई अन्य अभिनेता नहीं छू पाया था। कदाचित् उसकी ख्याति भी इन्हीं उपलब्धियों पर आधारित थी। यह स्वयं में एक महत्वपूर्ण बात अवश्य है कि रंगमंच के पवित्रतावादी विरोधियों के बावजूद इरविंग को अंग्रेज़ी दरबार ने 'नाइट' (सर) की उपाधि से सम्मानित किया था। उसका यह सम्मान इस बात का प्रमाण है कि रंगमंच को संस्था की प्रतिष्ठा दिलाने के लिए उसने कितनी ईमानदारी तथा लगन के साथ कार्य किया होगा और अभिनय की कला को अन्य कलाओं के समकक्ष स्थापित करने का कितना महत् प्रयत्न किया होगा। अभिनेता के रूप में उसने कभी चमत्कारिकता लाने का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु फिर भी उसका कार्य पूर्ण रूप से सन्तोषजनक था। हैमलेट तथा शायलाक की उसकी भूमिकाएँ संभवतः सर्वाधिक प्रख्यात हुईं।

इरविंग ने लन्दन के लीसियम थियेटर का प्रबन्धकार्य १८७८ ई० में स्वीकार किया, हालाँकि अभिनेता के रूप में जनता के स्नेह का भाजन उस मंच पर वह पहले ही बन चुका था। उसकी सेवाओं से 'अभिनेता-प्रबन्धक' पद को सम्मान मिला था—वैसे बाद में उस पद की काफ़ी कुख्याति भी हुई जब कि साधारण बुद्धि के अभिनेता भी मंच-प्रबन्धक बनने लगे और अभिनय-कला-शून्य व्यक्तियों को मंच पर नायकों के रूप में अवतरित करने लगे। अपने प्रबन्ध-काल के प्रथम वर्ष में ही इरविंग ने मुख्य अभिनेत्री का कार्य करने के लिए एलेन टेरी नामक एक अत्यन्त ही सुन्दर, प्रतिभा-सम्पन्न युवती को खोज निकाला। इरविंग और एलेन टेरी की मैत्री रंगमंच के इतिहास में सर्वाधिक सफल, कलात्मक मैत्री थी—कलाकारों की मैत्री। एलेन टेरी ने पहले साल ही ओफीलिया तथा पोर्शिया की भूमिकाएँ अभिनीत कीं और अंग्रेज श्रोताओं-द्वारा अभिनय की देवी के रूप में मान्य हुई। लीसियम कंपनी को कई बार अमेरिका की सैर भी करनी पड़ी, जहाँ इंगलैण्ड के अच्छे से अच्छे अभिनेताओं और सुन्दर से सुन्दर अभिनेत्रियों को सफलता बारबार मिली थी।

जैसे 'सुरचित', सजे-धजे नाटक हुआ करते हैं वैसे ही 'सुरचित सजे-धजे' अभिनय भी हुआ करते हैं—यह कहने का लोभ संवरण कर पाना कठिन है। अर्थात् ऐसे सजे-धजे अभिनय, जिनमें यंत्रवत् प्रभावोत्पादकता तो हो किन्तु गहराई और सच्चाई अथवा ईमानदारी न हो। यहाँ ऐसे अनेक मायावी तरीक़ों का उल्लेख किया जा सकता है जिनकी सहायता से नाटक को प्रभावोत्पादक बनाया जा सके और इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे मायावी तरीक़ों का शताब्दी के मध्य में बहुत बाहुल्य था। इरविंग तथा बूथ ने अपने बौद्धिक दृष्टिकोण तथा व्यक्तिगत प्रतिभा से ऐसे छलछन्दों को सर्वथा निःशेष

कर दिया। यदि वे स्टैनिस्लेवस्की और मोइसी के यथार्थवादी अभिनय तक नहीं पहुँच पाये अथवा 'समूह-अभिनय' के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर पाये तो इतना तो अवश्य है कि अपने कृतित्व से उन्होने उनके लिए मार्ग प्रशस्त किया।

शताब्दी के अन्तिम दशक में समूह-अभिनय तथा 'कलाकार द्वारा निर्देशन' के क्षेत्र में जो प्रयोग प्रस्तुत किये गये उससे एक लाभ यह हुआ कि मास्को के आर्ट थियेटर तथा बीसवीं सदी के जर्मन थियेटरों को नवीन प्रवर्तनों के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता मिली। जर्मनी में मीनिन्जेन के ऐक छोटे से नवाब के दरबार में वहाँ के ड्यूक ने एक नाट्यशाला बनवायी जिसमें एकाकी अभिनय का चलन बन्द कर दिया गया, भड़कीली निरर्थक चित्रात्मकता का बहिष्कार किया गया और प्रदर्शनों में ऐतिहासिक उपयुक्तता का ध्यान रखा गया। अभिनय में समूह-अभिनय की महत्ता ठहरायी गयी, निर्देशक-कलाकार को व्यापक अधिकार मिले, जिसे बाद के समालोचकों ने नाटक के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना माना और जब १८७४ ई० में मीनिन्जनों ने शेक्सपियर के 'जूलियस सीज़र' को एक अत्यन्त ही नवीन ढंग से प्रस्तुत किया तब उनकी समर्थकता पूर्ण रूप से स्वीकार कर ली गयी।

मीनिन्जेन के ड्यूक के सामने पहले के कुछ कलाकारों के आदर्श थे। उसकी पहली प्रेरणा एडमंड कीन की देन थी, बाद में उसने श्रोडर, वैगनर तथा रूसी कलाकारों से भी प्रेरणा की। उसकी पहली सफलता शेक्सपियर तथा शिलर की रचनाओं के प्रदर्शन से संभव हुई थी, किन्तु साथ ही वह इब्सन तथा तालसताय आदि की नयी यथार्थवादी परंपरा से भी नवीन आदर्श ग्रहण करता रहा। १८९० ई० तक उसकी कंपनी युरोप के प्रायः सभी प्रमुख भागों में प्रख्यात हो गयी थी और यदि उसने स्टैनिस्लेवस्की तथा उसके 'अमेच्योर' गैरपेशेवर अभिनेताओं को प्रेरणा देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया होता तो भी उसे नाटचकला के क्षेत्र में युग-प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त होता।

अध्याय २०

यथार्थवाद : रंगमंच पर फ़ोटोग्राफी तथा पत्रकारिता

और, इस प्रकार रंगशाला में यथार्थवाद का प्रवेश हुआ ! रंगमंच के सामने श्रोताओं में बैठकर अन्धकार में उत्सुकता से अब हम उस 'एप्रन-स्टेज' की कल्पना नहीं करते जिस पर अभिनेता प्रकट होकर गर्व की गरिमा से क़दम रखते हुए अपने अपने पाठ दुहराते थे। हमारे ठीक सामने एक पर्दा होता है जो मंच पर आगे की रोशनी के ठीक सामने गिरा हुआ होता है। अभिनय-मण्डप अब इस पर्दे के पीछे खिसक गया होता है। परंपरा के प्रतीक-स्वरूप 'प्रोसीनियम' (मंच का अग्रभाग) मात्र ही अक्षुण्ण रह जाता है।

धीरे-धीरे पर्दा उठता है और स्वाभाविक प्रकृति की तरह मंच का सम्पूर्ण संसार हमारे सामने आ जाता है। इस पर्दे को उस तिमिरकारी ढक्कन के समान समझना चाहिए जिसे चित्र उतारने के पहले फोटोग्राफर अपने कैमरे से हटा देता है। पर्दा के उठते ही मंच पर मर्यादित वास्तविकता का आभास होने लगता है। एक छिद्र से देखने के कारण वह कुछ कम वास्तविक नहीं रह जाता। सिद्धान्तवादियों का कथन है कि निर्माता का पर्दा उठाना कमरे की चौथी दीवार को हटाने के समान है। उस चौथी दीवार के हट जाने पर भी बची हुई तीन दीवारों के भीतर की दुनिया ठीक वैसी ही बनी रहती है जैसी वह चौथी दीवार के रहने पर होती। हम तटस्थ दर्शकों को मंचीय मानवों की नाटक जीवन-प्रक्रिया को बाधा पहुँचाने की कोई अनुमति नहीं होती। हमारे अस्तित्व से बेख़बर वे अपनी घृणा, प्यार तथा दुख-दर्द की ज़िन्दगी जीते रहते हैं। वे अपनी लक्ष्मणरेखा से बाहर नहीं निकल सकते और न उनका कोई व्यापार ही बाहर की, सड़क की, या सड़क के पार की घटनाओं का किसी तरह अतिक्रमण कर सकता है। हमारी कोई भी रोमांसवादी अथवा सौन्दर्यशास्त्रीय उत्कण्ठा उन्हें अपनी

वास्तविकता को भूल जाने को बाध्य नहीं कर सकती।

मंच का रूप बिल्कुल फोटोग्राफ के समान हो जाता है जिसमें चित्रकार की झूठी कल्पना को अब कोई स्थान नहीं। जो कुछ है बस कमरा है--नितान्त सही, नितान्त वास्तविक।

मंच पर अभिनेता वैसे ही पदार्पण करते हैं जैसे अपने घरों में। न कोई दिखावा, न बहाना। जो कुछ भी होता है वह सत्य का, वास्तविकता का आभास देता है। और कलाकार? यह श्रीमती जोन्स की अपनी बहन हो सकती है; और वह लड़की तो वृद्ध, विधुर स्मिथ की चिड़चिड़ी बेटी की याद दिलाती है--हम कहा करते थे कि वह रास्ता भटक जायगी, यदि उस पर निगरानी न रखी गयी।

और इस तरह शीघ्र ही हम अभिनेताओं की क्रियाओं में खो जाते हैं। घटनाएँ ठीक वैसी ही होती हैं जैसी अखबारों में छपती हैं। संभाषण मज़ेदार होते हैं और कितने स्वाभाविक! हम कभी चीख़ भी पड़ते हैं। दृश्यों में मार्मिकता होती है। ज़िन्दगी भी कितनी अजीब चीज़ होती है--हँसी और आँसू, आँसू और हँसी! लेकिन छिः, यह तो सिर्फ़ नाटक है! और नाटक के समाप्त होते ही जब हम बाहर सड़क पर आ जाते हैं तो मंच के जादू को बिल्कुल भूल चुके होते हैं, जैसे हम उस दिन के अख़बार को भूल जाते हैं।

ये वास्तविक, यथार्थवादी नाटक कभी-कभी हमारे अन्तर को उद्वेलित भी कर देते हैं--ठीक उसी तरह जैसे अख़बार का कोई समाचार कभी-कभी हमारे मन पर चिपका रह जाता है। निश्चित ही वह कोई भयानक घटना होती है जिसका प्रभाव स्थायी होता है--अख़बार या पत्रकारितापूर्ण नाटक दोनों के लिए यही बात है। अब दर्शक के मन पर जो प्रतिक्रिया होती है वह 'दि ट्रोजन वीमन' अथवा 'हेमलेट' की प्रतिक्रिया से भिन्न होती है। इन दिनों रंगमंच की अपनी भव्यता, अपना आकर्षण था; अब भावना का स्पन्दन, उद्वेलन होता है। अब मन को चोट लगती है। मगर अब वह कविता अथवा आध्यात्मिक गहराई अथवा सौन्दर्य डायोनिशस की वह अनुभूति नहीं रह जाती जिसमें मन की चोट के बाद प्राचीन नाटकों का उद्धारक-तत्व परिलक्षित हो।

आख़िर यह यथार्थवाद क्या है जिससे नाटक उतने ही स्वाभाविक लगने लगते हैं जैसे हमारे घर की घटनाएं--उतने ही जाने-पहिचाने जितनी पत्र-पत्रिकाओं की कहानियाँ? वह एक कला है, कला का धर्म है। उससे इस बात को बल मिलता है कि कला का ध्येय अनुकरण है, नाटकों को खेले जाने का लक्ष्य यथार्थ का आभास

है। निहित अर्थ यह है कि कला अवश्य जीवन के समीप हो, स्वाभाविक हो और उसमें कल्पना के स्थान पर प्रत्यक्ष दर्शन की अभिव्यक्ति हो।

आपको स्मरण होगा कि शताब्दियों से परंपरा से दूर सहजता-स्वाभाविकता की ओर एक प्रवृत्ति रही है। प्रकृति अथवा स्वाभाविकता का प्रवेश सबसे पहले रोमांसवादी नाटककारों में हुआ था किन्तु वे अपनी कला का अभीष्ट जंगल की प्रकृति से चित्रण, अनजान लोकों में विचरण और अतीत की आकर्षक किन्तु अपरिचित रीतियों एवं अनबूझी जलवायु के परिलक्षण में मानते थे : इस तरह का पलायन-वाद सच्चे यथार्थवादियों को बिल्कुल पसन्द नहीं था। वे अपनी सामग्री का चयन बहुत निकट की जानी-पहचानी प्रकृति, जाने-पहिचाने स्थान, स्थितियों और जाने-पहिचाने लोगों, जैसे पादरी, कसाई अथवा झाड़ू देने वाली औरत आदि के जीवन से करते थे।

अपने कृतित्व को रोचक बनाने के लिए वे यथार्थवादी कलाकार इन लोगों के अन्तर के उन भावों, उन घटनाओं तथा उन करवटों में डूबकर उन्हें ऊपर लाते हैं, जो अब तक संसार की नजरों से छिपी-छिपी फिरती थीं। वे भाव, वे घटनायें, वे करवटें छिपी हुई इसलिए होती हैं कि उनमें कोई असाधारण अस्वाभाविकता, दुर्बलता, अपराध अथवा रोग होता है। और इसलिए लगभग नब्बे प्रतिशत यथार्थवादी नाटकों के विषय अपराध, शारीरिक आकर्षण, इन्द्रियासक्ति तथा विकृति-निदान होते हैं और उनमें लोमहर्षक, आघातकारी अभिव्यंजनाओं तथा घटनाओं का भी अति आधिक्य होता है। ऐसे नाटक सौ में बस एक होते होंगे जिनमें पात्रों के अन्तर से उदात्तता, बलिदान अथवा माधुर्य का भाव परिलक्षित होता हो—उस कला में निपुण यदि कोई नाटककार उत्पन्न होगया तो निःसन्देह उसकी रचनाओं से हम इतने प्रभावित होते हैं कि नाट्यशाला से हम डायोनिशस का प्रभाव अथवा उन्माद लेकर बाहर जाते हैं। किन्तु अधिकतर यथार्थवादी नाटक हमें झकझोर कर रह जाते हैं, हमारी निम्नतर भावनाओं को उद्वेलित कर उन्हें उसी स्थिति में छोड़कर बिदा हो जाते हैं।

रंगमंच से यथार्थवाद का संघर्ष उतना ही कटु तथा दीर्घजीवी था जितना अन्य वादों का होता है। किन्तु फिर भी यथार्थवादी अपनी जगह पर स्थिर अथवा सुदृढ़ न हो पाये क्योंकि उनके विरुद्ध विवाद खड़े हो गये और उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय मानना पड़ा—वे उठे थे आक्रमण करने, स्वयं उन्हीं पर आक्रमण होने लगे। उनके विरुद्ध काफ़ी धूल उड़ायी गयी जिसकी मात्रा वातावरण में अब भी इतनी अधिक है कि अन्धकार में पथभ्रष्ट हुए बिना यथार्थवाद

को ठीक-ठीक समझ पाना और उसकी न्यूनताओं को जान पाना कठिन है ।

सबसे पहले हमें यह मानना होगा कि यथार्थ के कई प्रकार, कई स्थितियाँ होती हैं । यथार्थवाद की सर्वाधिक अतिवादी स्थिति वह है जिसमें निरीक्षण पर आधारित तथ्यों की न केवल प्रधानता होती है वरन् उन पर ज़ोर भी दिया जाता है। ऐसा यथार्थवाद उस चित्रकार की कला के समान होता है जो दाढ़ी का चित्रण करते समय उसके रेशे-रेशे को चित्रित करना चाहता है। ऐसे यथार्थवाद को 'प्रकृतिवाद' कहकर हमें भूल जाना होगा। सच्चा यथार्थवादी कलाकार प्रकृतिवादियों को नज़र से वैसे ही उतार देता है जैसे हम आप उतार देते हैं। क्योंकि उसका विश्वास होता है कि कला 'चयनात्मक' होती है। उसमें प्रकृति के किसी अंश का 'फोटोग्राफ' मात्र नहीं होता ; उसमें प्रकृति के किसी ऐसे विशिष्ट अंश की अवतारणा होती है जो कलाकार के मन पर अचानक अंकित हो जाता है और उसमें अनावश्यक विस्तारों का बहिष्कार तथा कलाकार की तूलिका का यथोचित स्पर्श भी होता है। साथ ही यथार्थवादी कलाकार का ध्यान इस बात पर भी होता है कि उसकी रचनाओं की रूपरेखा अथवा पृष्ठभूमि कहीं से संभावनाओं की सीमा का अतिक्रमण न करने पाये।

इस प्रकार यथार्थवादी रंगमंच पर चयनात्मक यथार्थवाद के रूप में हमें जीवन के कुछ ख़ास चुने हुए तथ्य भी दिखलायी पड़ सकते हैं और प्रकृतिवाद का विस्तार भी, संवेगात्मकता की संक्षिप्ति भी दृष्टिगोचर हो सकती है और रोमांसवाद अथवा भावुकतावाद का आभास भी मिल सकता है। किन्तु जीवन के निरीक्षण पर आधारित नाटक कला की श्रेणी में तब तक नहीं आ सकता जब तक उसमें बौद्धिकतावादी यथार्थ-वाद का समावेश न हो। १८५० ई० के बाद आधुनिक रंगमंच की यही स्थायी उपलब्धि थी कि उसमें निरीक्षणात्मक के साथ ही बहुत कुछ बौद्धिक अथवा विचारपूर्ण बात भी है। यदि नाटककारों में विचार-प्रवणता अथवा बौद्धिकता न आयी होती (जिसकी सहायता से जीवन को व्यर्थ 'फोटोग्राफ' मात्र बनकर रह जाने से बचा लिया गया) तो निःसन्देह यथार्थवादी नाटक बस कुछ दिन चमककर बुझ गया होता। नाटक चाहे वह इब्सन का 'अभिप्रायवादी' नाटक हो अथवा शा का तीक्ष्ण बुद्धि-चमत्कारवादी नाटक हो, वह यथार्थवादी नाटक पहले है और 'विचारपूर्ण' नाटक बाद में किन्तु, साथ ही, उसकी इस विचारपूर्णता में ही उसकी महत्ता है।

यहाँ यथार्थवाद के सौन्दर्यशास्त्र-सम्मत पक्ष पर विचार करना संभव नहीं । न तो हम इसी प्रश्न को उठाना चाहेंगे कि हमारे दैनिक जीवन पर आधारित यथार्थ-वादी नाटक मानवीय भावों को गहन से गहनतर बनाने की प्रतिक्रिया प्राकृतिक पदार्थों तथा मानुषी भावों के आरोपण में इतने असफल क्यों हैं ? हाँ, अतीत की लगभग

आधी शताब्दी की उपलब्धियों पर दृष्टि रखते हुए हम यह अवश्य कह सकते हैं कि यथार्थवादी नाटक सामाजिक क्षेत्र में अपने व्यापक प्रभावों तथा बौद्धिक उत्तेजनात्मकता के कारण दीर्घजीवी सिद्ध हुआ है।

जिन रंगमंचों पर ये यथार्थवादी-बुद्धिवादी नाटक खेले जाते थे वे 'रंगमंचीय' दृष्टि से इतिहास के सर्वाधिक न्यून रंगमंच थे। उनका प्रयोग कला के ऐसे दुर्निवार साधन अथवा सामग्री के रूप में नहीं होता था जिससे समूह-अभिनयों को कलात्मक महत्ता मिले। रंगमंच को जीवन के इतने निकट लाने का प्रयत्न किया गया कि वह जीवन की तसवीर के समान प्रतीत हुआ; उसके भव्य तथा आकर्षक तत्वों का यथोचित निवारण किया गया ताकि उससे वास्तविकता अथवा संभावनात्मकता का अतिक्रमण न हो जाय और इसी प्रकार अभिनयात्मक पक्ष को भी यथासंभव नियंत्रित रखा गया। अतिवादी स्वाभाविकतावादियों (डेविड बेलैस्को प्रमुखतः) ने तो मंचीय सज्जा और पृष्ठभूमि को इतना अधिक स्वाभाविक विस्तार दिया, उनको यथार्थ का ऐसा प्रतिरूप बना दिया, मानो कल्पना के चातुर्य के प्रति चिल्लाकर लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहे हों। किन्तु बाद के यथाथवादियों ने जीवन के 'चयनात्मक अनुकरण' को (न कि अतिवादी विस्तार को) जीवन से सामीप्य का आभास देने के लिए सर्वाधिक आवश्यक माना। इस प्रकार हर प्रकार से नाटककार का स्थान सर्वोच्च हो गया। १८९० ई० तथा १९१५ ई० के मध्य रंगमंच नाटककार का अपना क्षेत्र हो गया। वह एक विशेष अधिकार था जो नाटककार को पहले कभी नहीं मिला। उन्नीसवीं शताब्दी में साहित्य और रंगमंच के बीच जो असहयोग उत्पन्न हुआ था वह कदाचित् उसी की प्रतिक्रिया-स्वरूप उद्भूत हुआ था। इस प्रकार यथार्थवाद से रंगमंच की अपनी सच्ची आकर्षण-शीलता को भारी आघात पहुँचा और उसके प्रबन्ध का दायित्व कलाकार के हाथों से निकलकर शुष्क मानवता-रहित, सौन्दर्यानुराग-हीन बुद्धिवादियों के हाथ में चला गया।

यथार्थवाद के लगभग पच्चीस वर्षों के स्वर्णयुग पर दृष्टिपात करने के पूर्व उसे ठीक-ठीक समझने के लिए हमें यह जान लेना आवश्यक है कि विश्व के प्रमुख महायुद्ध के अन्तकाल तक यथार्थवाद की भी इति-श्री हो जाती है। इब्सन, स्ट्रिंडबर्ग, तालस्ताय, चेखव, हाप्टमैन तथा वेडेकिंड पूर्णतः तथा स्निज़लर, शा, ब्रियाक्स, बार्कर तथा गाल्सवर्दी अधिकांशतः महायुद्ध के पूर्व ही लिख और चमक चुके होते हैं और सेंट जान इरविन, सैंट जान हैकिन, स्टैनली हाटन, यूजिन वाल्टर तथा मैक्सिम गोर्की आदि अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण लेखक—जिनकी दो-तीन यथार्थवादी रचनाएँ महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं—यथार्थवाद के अपेक्षाकृत नये रंगमंच पर बहुत कम अवतरित हुए। १९२० ई० के बाद नाटकों के प्रदर्शन के क्षेत्र में नाटककार का हाथ बहुत कम रह गया था।

एलेक्जेंडर ड्यूमा के बेटे एलेक्जेण्डर ड्यूमा का जन्म १८२४ ई० में हुआ था। उसने लिखा है—"मैं अनुभव करता हूँ कि आँसू, हँसी, भावनाएँ, लालसा तथा उत्सुकता आदि तत्व नाटक की प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। ये जीवन के प्रतिबिम्ब हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि नाटकों में इनके समुचित समावेश से समाज को प्रभावित करने की क्षमता आ जाती है। यदि मैं 'कार्य' की चिन्ता न करके 'कारण' की ओर ध्यान दूँ, अपने नाटक में परस्त्रीगमन या पर-पुरुषगमन का वर्णन करने अथवा उस पर व्यंग्य करने की प्रक्रिया में लोगों को उस समस्या पर विचार करने के लिए भी बाध्य करूँ और विधान-निर्माताओं को विधान में सुधार लाने को उत्प्रेरित करूं तो मुझे सन्तोष होगा कि मैं अपना कर्तव्य मानव तथा कवि दोनों रूपों में अच्छी तरह निभा पाया हूँ।"[1] अपने इस सिद्धान्त को लेखक एलेक्जेंडर ड्यूमा के लेखक बेटे ने सचमुच कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न किया और संभवतः इसीलिए उसे यथार्थवादी सामाजिक नाटकों के प्रणेता होने का श्रेय है। साथ ही यह भी स्मरण रखना होगा कि ड्यूमा तथा उसके सहयोगी लेखक एमिल आनियर ने एक भी ऐसा 'शोध-नाटक' (समाज के यथार्थवादी शोध पर आधारित) नहीं लिखा जो अब तक स्मरणीय रहता। आगियर का स्मरण उसकी 'लि जेन्डर डि एम० प्वारियर' तथा कुछ अन्य सुखान्त नाटकों के कारण किया जाता है। एलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा का नाम 'ला डेम आक्स कैमिलियाज़' के कारण चिरस्थायी है जो एक भव्य किन्तु

---

१ बैरेट एच० क्लार्क द्वारा 'युरोपियन थियरीज आव दि ड्रामा' में उद्धृत (न्यूयार्क, १९४७)। विश्व के समकालीन नाट्य-साहित्य की विस्तृत विवेचना बैरेट एच० क्लार्क तथा जार्ज फ्रीडली द्वारा सम्पादित 'ए हिस्ट्री आव मार्डन ड्रामा' (न्यूयार्क, १९४७) में की गयी है। ग्रन्थ में संकलित निबन्धों के रचयिता स्कैण्डिनेविया, बाल्कन तथा बाल्टिक राष्ट्र, जर्मनी, फ्रांस, स्पेन तथा रूस प्रभृति देशों के प्रमुख लेखक हैं जो अपने अपने देश के नाट्य साहित्य के विशेष ज्ञाता हैं। लेखकों की यह सूची निःसन्देह अभूतपूर्व है। एलरडाइस निकोल की आधिकारिक कृतियाँ 'ए हिस्ट्री आव अर्ली नाइंटीन्थ सेंचुरी ड्रामा,' तथा 'ए हिस्ट्री आव लेट नाइनटींथ सेंचुरी ड्रामा' (दो-दो भागों में केम्ब्रिज से क्रमशः १९३० ई० तथा १९४६ ई० में प्रकाशित) भी अवश्य पठनीय हैं। तालमा से लेकर रैचेल तथा बर्नहार्ट तक तथा बूथ, कीन, इर्विंग, हेरी तथा ड्यूज़ आदि फ्रांसीसी अभिनेता-अभिनेत्रियों की जीवनियाँ भी उपलब्ध हैं जिनमें बहुत-सी रोचक तथा ज्ञान-वर्द्धक हैं। हाँ, आत्मकथाओं से सामान्यतः बचना चाहिए।

अपेक्षाकृत निम्न भावात्मक रचना है। आगियर तथा ड्यूमा की कुछ और अधिक अभिप्रायवादी रचनाएं इस दृष्टि से काफ़ी असफल भी सिद्ध हुईं कि उनमें युग के उन नवोदित रंगमंचों को उत्प्रेरित करने की क्षमता नहीं थी जिन पर सामाजिक चेतना का नवजागरण हो रहा था।

यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि फ्रांस की यथार्थवादी परंपरा के लेखकों में कोई एक भी नाटककार ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति में इब्सन, शा अथवा चेख़व के समकक्ष होता। हेनरी बर्नेस्टीन की लोकप्रियता सार्दो की तरह युरोप के बाहर भी अवश्य अक्षुण्ण थी किन्तु उसके नाटक जगत् के भावात्मक निरीक्षण-भाव मात्र होकर रह गये, उनमें न बौद्धिक चमत्कार था और न ब्यौरे-सम्बन्धी यथार्थवादी सत्याभिव्यक्ति ही थी। इसके काफ़ी पहले एमिल ज़ोला ने 'नेचुरलिज़्म' अथवा वास्तविकतावाद के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा के माध्यम से रोमांसवाद की भव्यता को जीवन की निम्नता पर उतारने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसकी भी साहित्यिक उपलब्धियों में उसके नाटकों की गणना सबसे पीछे होती है; हाँ, अल्पदर्शी वास्तविकतावादियों में हेनरी बेक को अवश्य अग्रणी माना जाता है। उसके बाद मारिस डोने, जार्ज दे पोर्त्तोरिच तथा हेनरी बेटेल प्रभृति नाटककारों का वह वर्ग सामने आता है जिसके सरल-सहज सदस्य अपने यथार्थवाद को पुराने नाटकों की विषय-वस्तु से समन्वित करके कभी उसे सुखान्त-नाटकों का रूप प्रदान करते हैं और कभी उसमें नाटकीय अथवा भावात्मक प्रभावोत्पादकता लाने का प्रयत्न करते हैं। इनके नाटकों के प्रकाशन और प्रदर्शन के बाद ही 'मनोवैज्ञानिक नाटक' शब्द की अवतारणा हुई और प्रचलन हुआ। विषय वस्तु की खोज में हेनरी लैवेडन तथा अल्फ्रेड केपस प्रभृति नाटककारों ने काफ़ी कोशिश की, किन्तु उनके नाटक यथार्थवाद की परंपरा में सीधे नहीं आते। एलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा के पुत्र एलेक्ज़ेंण्डर ड्यूमा तथा आगियर के नाटकों के समान रचित नाटकों में पाल हरव्यू तथा फ्रैंसिस दि क्यूरेल के नाटक आते हैं। ये दोनों नाटककार 'विचार-प्रधान' हैं। 'शोध-नाटकों' का चरमोत्कर्ष केवल यूजिन ब्रियाक्स के नाटकों में हो पाता है। ब्रियाक्स नीतिवादी, सुधारवादी है जो रंगमंच का प्रयोग स्पष्टत: समाज के दोष बताने के लिए करता है। नैतिक अस्त्र के रूप में नाटक का प्रयोग यहीं से आरम्भ होता है, किन्तु रंगमंच की उस कला के रूप में जिसमें 'रंगमंचीयता' की भी अपनी महत्ता होती है, यह बिलकुल निष्प्राण हो जाता है।

पेरिस में रहकर प्रेम, ईर्ष्या, बाधा, वियोग, मिलन आदि भावों वाले सुखान्त, सामयिक व्यंग्य, और सार्दो की शैली के भावात्मक नाटक लिखने वाले फ्रांस के तमाम

नाटककारों का उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं—–उन नाटककारों में न तो कोई गहराई थी और न कोई विचारोत्तेजकता—हाँ, ब्रियांक्स का उल्लेख अवश्य अपेक्षाकृत **विस्तार** से होना चाहिए क्योंकि उसकी रचनाओं में वैसे नाटकों के क्षेत्र में आन्दोलन की पराकाष्ठा सम्पन्न हुई जिन्हें 'समालोचक' सामाजिक-लक्ष्यपूर्ण नाटक कहते हैं। उसकी रचनाओं में न तो वह सौष्ठव है जो पाँच-सात दूसरे नाटककारों की रचनाओं में है, न तो कोई पैनी मनोवैज्ञानिकता है और न कोई सुरुचि-कुरुचि का ही प्रश्न उठाया गया है किन्तु फिर भी उनमें संसार के श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने की क्षमता थी। उसकी रचनाओं में पत्रकारितामूलक यथार्थवाद है और इच्छा-अनिच्छा से रंगमंच का प्रयोग भी वह सामाजिक कुरूपताओं के उद्घाटन के निमित्त ही करता है। 'ला रोब रोग' में उसने फ्रांस की न्याय-पद्धति की आलोचना की है। उस पद्धति का परिणाम यह हो गया था कि फ्रांस में कहीं कोई हत्या हुई नहीं कि पुलिस के सिपाही स्वेच्छा से जिसको चाहा पकड़कर बन्द कर देते थे अन्यथा उनपर अकर्मण्यता का दोष दिया जाता था। इस नाटक में एक निरपराध व्यक्ति इसी पद्धति का शिकार होकर प्राण गँवाता है, मुस्तैदी के पुरस्कार-स्वरूप सरकारी अभियोक्ता की पदोन्नति होती है, किन्तु अन्तोगत्वा अभियुक्त की पीड़ित पत्नी अभियोक्ता महोदय का भी काम तमाम कर देती है। इसी प्रकार 'मैटर्निटी' में उसने 'सन्तान-निग्रह' की वकालत करने के ध्येय से अवैधानिक सन्तानों के प्रति समाज की जुगुप्सा प्रदर्शित की है और अधिक से अधिक सन्तान उत्पन्न करने की पुरानी, भावुकतापूर्ण किन्तु सुखद रीति का विरोध किया है। 'लेस एवरीस' में, जो अंग्रेज़ी में 'डैमेज्ड गुडस' के नाम से खेला गया, एक दूसरी ही समस्या उठायी गयी है। एक उपदंश का रोगी अपने चिकित्सक के परामर्श के विरुद्ध विवाह करता है, अपना रोग दूसरों तक पहुँचाता है, पत्नी तलाक चाहती है और चिकित्सक अन्त में ज्ञान का उपदेश तो अवश्य देता है किन्तु रोगी पति से मुक्ति दिलाने में वह पत्नी की कोई सहायता नहीं करता। इस प्रकार रंगमंच दवाख़ाना और प्रवचन गृह बन जाता है। बड़ी अच्छी बात है जो ब्रियाक्स की परंपरा अब लुप्त हो चुकी है। एक समय था जब हम उसके नाटक देखते थे और उन्हें 'प्रगतिशील' कहकर उनकी सराहना करते थे। शुभ लक्षण है जो रंगमंच अब कम कोलाहलपूर्ण अन्य दिशाओं में गतिशील है और उसका नाता अब नीति से न होकर सौन्दर्य की अभिव्यंजना से जुड़ गया है। रंगमंच को सुधार का माध्यम नहीं, भावना, इच्छा, विह्वलता तथा आनन्द का माध्यम मानना चाहिये ।

यथार्थवाद के चरमोत्कर्ष काल में फ्रांस में 'थियेटर लिब्रे' नामक नाटचशाला ही एक मात्र ऐसा भवन था जो उस काल की अन्य व्यावसायिक नाटचशालाओं से भिन्न

था। आपको स्मरण होगा कि तालमा के समय में 'थियेटर फ्रांकेई' को नेपोलियन ने नाटकों के प्रदर्शन का एकमात्र अधिकार दे रखा था; किन्तु १८६४ ई० के बाद अन्य निर्माताओं को भी प्रदर्शन की पूरी स्वतंत्रता हो गयी थी। फिर भी प्रदर्शनों की घिसी-पिटी रीतियों में कोई अन्तर नहीं आया और कुछ निरीक्षकों का तो यह भी मत था कि फ्रांस के नाटकों में प्रान्तीयता का दोष आता जा रहा है और उनकी प्रगति भी प्रान्तीय सीमाओं के अन्दर ही अन्दर हो रही है। उन निरीक्षकों में प्रमुख आन्द्रे ऐंत्वाइने नामक एक व्यक्ति था जो किसी 'गैस-कम्पनी' में क्लर्क था। १८८७ ई० में उसने पेरिस में 'थियेटर लिब्रे' की स्थापना की (जिसकी स्थापना निश्चित ही स्वयं में एक प्रयोग थी) और उस पर खेले जाने वाले नाटक भी इसी प्रकार प्रयोगात्मक थे। यथार्थवाद की अनुगूँज वातावरण में अब भी अक्षुण्ण थी इसलिए ऐंत्वाइने के सुधारवादी प्रयत्न यथार्थवादी नाटकों के कार्यक्रम तक ही सीमित रहे। अन्त में नाटककार के रूप में उसे विश्वव्यापी ख्याति भी मिली। उसको उन 'अमेचर' तथा अर्द्ध-व्यावसायिक नाटकघरों में सर्वप्रथम व्यापक होने का श्रेय मिला जो बाद के साठ वर्षों में प्रगति की नयी दिशाओं में प्रयोगों द्वारा एक सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रदर्शन की ओर उन्मुख हुए। उत्तर के बड़े-बड़े लेखक, जैसे इब्सन, स्ट्रिंडबर्ग तथा तलस्ताय आदि भी ऐंत्वाइने के प्रयत्नों से ही पेरिस में भी 'प्रदर्शित' तथा प्रख्यात हुए थे। नौ वर्षों के पश्चात् 'थियेटर लिब्रे' बन्द हो गया और उसके बाद फ्रांस में रंगमंच अथवा प्रदर्शन के क्षेत्र में न तो कोई विशेष महत्वपूर्ण प्रयोग हुए और न कोई ऐसी प्रदर्शन-सम्बन्धी उपलब्धि ही हाथ में आयी जिसे नित्य की उपलब्धियों की तुलना में अद्वितीय अथवा असाधारण समझा जाय।

उन्नीसवीं सदी के नाटककारों अथवा यथार्थवादी नाटककारों में इब्सन सर्व-प्रमुख था। आज हम उसके व्यक्तिगत आडम्बर, धर्मयोद्धाओं जैसे उसके मिथ्याभिमान तथा उसकी चुस्त नैतिकता पर व्यंग्य से मुस्करा सकते हैं किन्तु साथ ही हमें भी स्वीकार करना होगा कि उसने प्रदर्शन की सीमित, संकुचित कला को व्यापक अभिव्यंजनाएं भी प्रदान कीं। उसने 'सजे-धजे' नाटकों का आकार अपनाकर उनकी निम्नताओं का बहिष्कार करते हुए अत्यन्त ही व्यापक प्रभावों वाले गम्भीर नाटक के रूप को और अधिक चुस्त तथा ठोस बनाया——इतना चुस्त और ठोस जितना वह पहले कभी नहीं था। नाटक की कला को भी उसने यथासंभव अधिक से अधिक संक्षिप्त करने का प्रयत्न किया और सर्वाधिक विध्वंसात्मक घटना की चरम-परिणति पर ही दृष्टि रखी। 'नाट्यशास्त्रीय मितव्ययिता' वाक्य को उसने इस प्रकार नये अर्थ दिये, नई संभावनायें दीं।

इब्सन का सर्वाधिक उल्लेखनीय तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि एलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा के नाटककार पुत्र एलेक्जेंडर ड्यूमा ने जिस लक्ष्य को अपनाया था उससे उसने पूरा किया। उसकी रचनाओं में श्रोताओं से मस्तिष्क को झकझोर देने तथा उनकी अन्तरात्मा को उजागर कर देने की अपूर्व क्षमता है। उसके नाटक क्रान्तिकारी, सामाजिक तथा सामयिक थे। उसने मानव जीवन की कुरूपताओं का निदान किया, भ्रमों का संहार किया और प्रान्तीयता, मिथ्याभिमान तथा पाखंड पर व्यंग्य के शर चलाये। इसीलिए सामाजिक बौद्धिकता के दृष्टिकोण से उसके कृतित्व को ध्वंसात्मक कहा गया किन्तु यथार्थवाद की क्रियात्मक परिणति यदि ध्वंसात्मक नहीं तो फिर और क्या होगी? तत्कालीन जीवन की घटनाओं पर आधारित अपने नाटकों के श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करके उसने संसार में हलचल मचा दी थी।

तीखे, पैने सामाजिक नाटकों की रचना में उसे व्यक्तिगत आर्थिक संकट, सामाजिक अन्याय, रंगमंच के प्रबन्ध-सम्बन्धी अनुभव तथा अपने देश नार्वे से दूर विषम परिस्थितियों में चिर-प्रवास आदि प्रायः सभी घटनाओं से प्रेरणा मिली थी। उसके प्रारम्भिक नाटक रोमांसवादी तथा काव्यात्मक थे। बाद के समस्या-नाटकों के साथ प्रारंभिक काल का केवल एक नाटक, 'पीयर जाइंट' ही जीवित रह सका। यह एक विशिष्टतः अ-रोमांसवादी रचना है—निरीक्षण पर आधारित, और कदाचित उतनी ही स्वाभाविक जितनी स्वाभाविक आपकी टोपी हो सकती है—इब्सन-शैली की एक प्रतिनिधि रचना।

एक औरत है जिसे उसका पति प्यार करके बिल्कुल पालतू बना लेता है। पति के हाथ में खिलौने की तरह वह जीती है और बिगड़ती जाती है। एक दिन अचानक वह बिल्कुल स्वतंत्र हो जाना चाहती है और स्वेच्छा से घर के बाहर निकल जाती है। 'ए डाल्स हाउस' नामक नाटक की यही संक्षिप्त कथा है। इसी प्रकार 'दि वाइल्ड डक' में एक लक्ष्यहीन आदर्शवादी है—स्वकेन्द्रित तथा निरर्थक—जो किन्हीं विशिष्ट सिद्धान्तों का नियामक बनना चाहता है किन्तु, बदले में उस पर दुःख, कष्ट टूटते हैं और वह मानसिक अनिश्चितता की स्थिति का शिकार हो जाता है। 'ऐन एनेमी आव दि पीपुल' में एक साधारण नागरिक एक साधारणतया सम्पन्न नगर की औसत नैतिकता से ऊपर उठकर जनता की भलाई के लिये बुराइयों का दमन करना चाहता है, किन्तु अन्त में वह स्वयं जाति से निष्कासित हो जाता है। इसी प्रकार 'घोस्ट्स' में एक चर्च का अधिकारी एक पीड़ित महिला को वैवाहिक शपथों की पवित्रता के सम्मान में अपने रोगी और चरित्र-हीन पति के पास लौट जाने को बाध्य करता है। वह लौट जाती है, उसे पुत्र होता है और वह भी अपने पिता की तरह रोगी हो जाता

है और अनियंत्रित रूप से प्यार करता फिरता है और उसके बाद जो स्थिति पैदा होती है वह पात्रों तथा दर्शकों दोनों के लिए अत्यन्त ही भयानक सिद्ध होती है। इब्सन की प्राय: सम्पूर्ण रचनाओं में इसी प्रकार के विचार निहित हैं। मानवीय धरातल पर वह उन विचारों की विवेचना करता है और उनके सन्दर्भ में पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी अपूर्व दक्षता प्रदर्शित करता है। किन्तु उसके कथानकों और स्थितियों की पृष्ठभूमि में प्राधान्य अथवा प्राबल्य उसकी विचारात्मकता का ही है, न कि पात्रों के चरित्र-चित्रण सम्बन्धी उसकी धारणाओं का।

इब्सन के नाटकों का प्रभाव स्कैंडिनेविया के बाहर भी फैला। उसकी प्रथम उल्लेखनीय कृति, 'दि डाल्स हाउस' की रचना १८७९ ई० में हुई थी। उसके बाद उसके कुछ और नाटक भी सामने आये और १८९९ ई० तक ऊपर उल्लिखित नाटकों के अतिरिक्त 'रोजनरशोलम', 'हेडा गैबलर' तथा 'दि मास्टर बिल्डर' तथा कुछ अन्य रचनाएं भी प्रस्तुत की गयीं। १८९० ई० से ही इन रचनाओं से जर्मनी तथा इंगलैंड प्रभावित होने लगे थे। प्राय: सभी प्रगतिशील नाटककार इब्सन से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं को अधिक से अधिक चुस्त, अपने कथोपकथन स्वाभाविक बनाने लगे और 'विचार-प्रधान' नाटकों की रचना को आदर्श मानने लगे। इस प्रकार यथार्थ-वाद को रंगमंचीय नहीं तो कम से कम एक नवीन सामाजिक महत्ता मिली।

नाटक के क्षेत्र में इस नवीन आत्म-जागरण की गति युरोप में अन्यान्य रंगमंचों पर कहाँ-कहाँ कैसी थी, इस बात की विवेचना यहाँ बड़ी वक्र प्रतीत होगी। ऐसे प्रश्नों की विवेचना करते समय हमें अपेक्षाकृत उन कम विद्वतापूर्ण रंगमंचों को भी दृष्टि में रखना होगा जो प्राय: सदा ही सक्रिय रहते हैं और जिन पर कभी प्रहसन, कभी मेलोड्रामा, कभी बर्लस्क (परिहासात्मक नाटक) आदि विविध नाटक तथा संगीत के कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। विचार-प्रधान समस्या-नाटकों के अन्य दिग्गज अथवा अर्द्ध-दिग्गज रचयिताओं में निम्नलिखित का उल्लेख अपेक्षित है।

नार्वे निवासी जार्न्सजर्न जार्न्सन इब्सन का साथी था किन्तु उसमें नाटककार के जन्मजात गुण नहीं थे। उसकी रचनाएं विशिष्टत: सामाजिक आलोचनाएं हैं। सर्वाधिक प्रख्यात नाटक 'ए गांटलेट' है जिसमें नाटककार ने 'लैंगिक शुद्धता' के प्रश्न को एक निश्चित, निर्धारित स्तर से आँकने का समर्थन किया है। आगस्ट स्ट्रिंडवर्ग अपेक्षा-कृत अधिक उत्कृष्ट नाटककार था जिसने मनुष्य की न्यूनताओं और विपदाओं की बड़ी किन्तु कटु विवेचना की। उसके दीर्घ नाटकों में 'दि फ़ादर' तथा लघु नाटकों में 'क्रेडिटर्स' और 'मिस जूलिया' उल्लेखनीय हैं जिनके अनुवाद मूल से भी अधिक लोकप्रिय हुए। स्ट्रिंगबर्ग के नाटक प्राय: उन सभी रंगमंचों पर बहुधा खेले जाते रहे जिन पर

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल के चार अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अभिनेता : ऊपर, मनोमोहक एलेन टेरी और महान् अभिनेता एडविन बूथ; नीचे, ओजस्वी तोम्मासो सालविनी और बौद्धिक दृष्टि से गौरवशाली हेनरी इरविंग ।
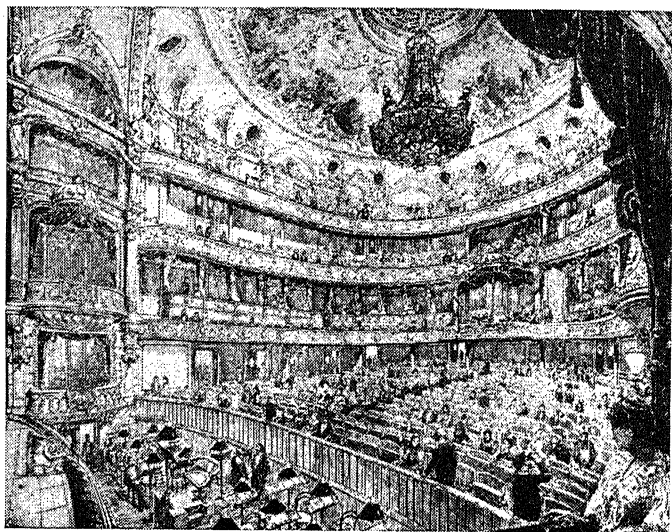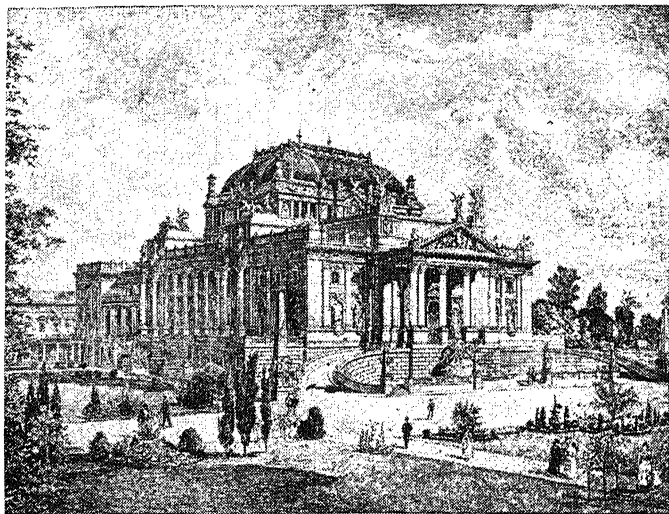
वीसबेडन का रायल थियेटर; जर्मनी में १८९४ ई० में निर्मित इस रंगशाला में अब भी मौजूद फ्रांसीसी दरबारी प्रभाव दृष्टव्य है। (वेड्डीगेनकृत 'गेशीख्ते डेस कोनीग्लीखेन थियेटर्स इन वीस वेडन' से ।)
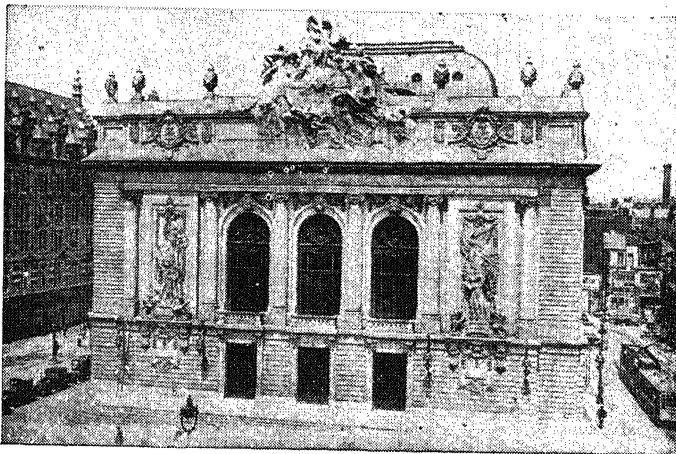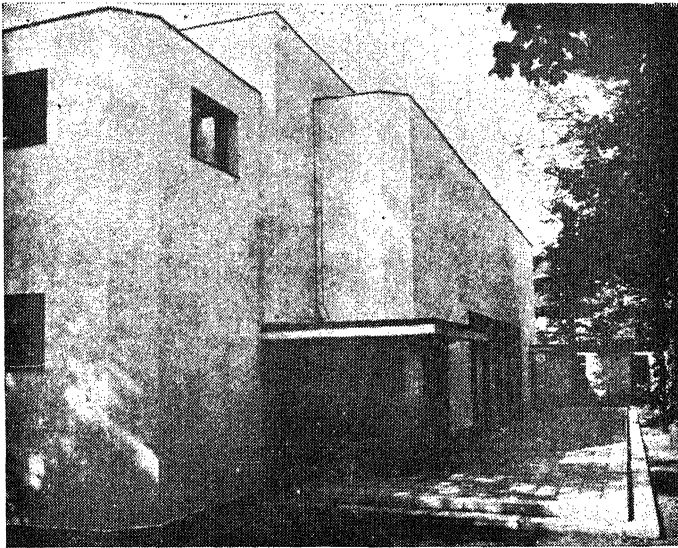
बीसवीं शताब्दी की रंगशालीय स्थापत्यकला में अन्तर-विरोध। ऊपर, वाल्टर ग्रोपियस और ए० मेयेर द्वारा पुनर्रचित जेना के स्टेट थियेटर का अत्यन्त सादा रूप। नीचे, दरबारी फ्रांसीसी शैली का एक अवशेष लिल्ले का म्युनिसिपल थियेटर।
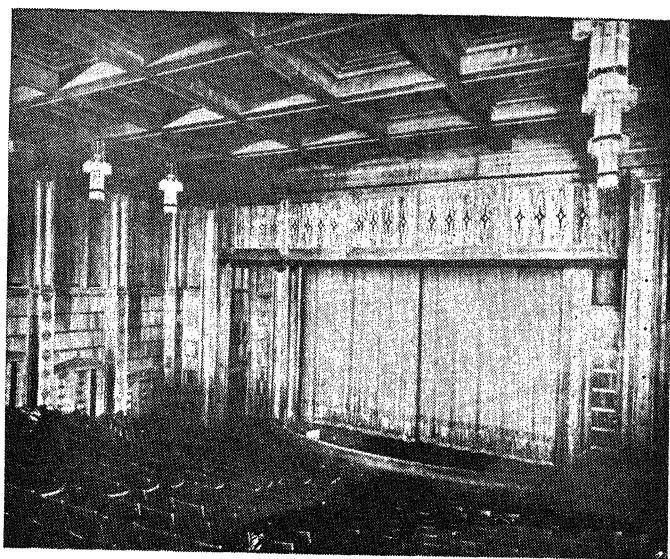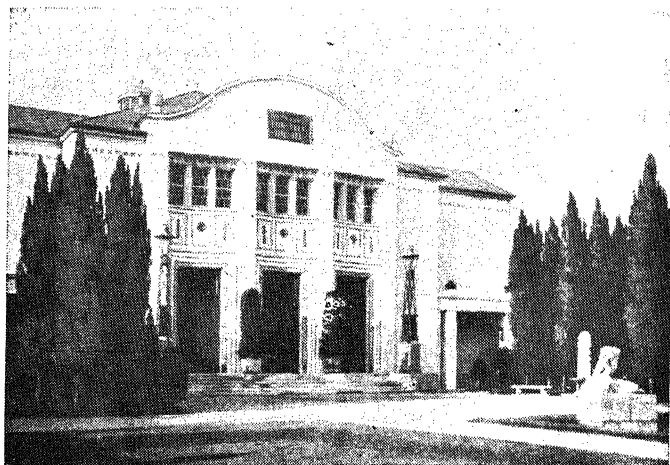
मैक्स लिटमैन द्वारा डिजाइन किया गया म्युनिच आर्ट थियेटर। यह एक सादा इमारत है जिसने थियेटर डिजाइन की कला से विवरण और प्रदर्शनात्मकता की ओर से लोगों की अभिरुचि हटा दी। इसकी तुलना, बीस वर्ष पूर्व निर्मित वीसबेडन रंगशाला (प्लेट ५३) से करिए।

यथार्थवाद के सर्वाधिक तीखे तथा उत्पीड़ित पहलुओं के प्रदर्शन की अपेक्षा थी। जर्मनी का लेखक गरहर्ट हाप्टमैन एक अर्थ में स्कैंडिनेविया के नाटकारों से भी आगे गया। उसने अपने 'दि वीवर्स' में समाज के पात्र-विशेषों का व्यक्तिगत चरित्र–चित्रण न करके एक सम्पूर्ण वर्ग की ही अवतारणा कर डाली है। यथार्थवादी नाटकों के अतिरिक्त उसने कुछ काव्यात्मक-प्रतीकात्मक रचनाएं भी प्रस्तुत कीं जो महायुद्ध के पहले के अनेक नाटककारों की रचनाओं से अधिक चिरस्थायी सिद्ध हुईं। हरमैन संडरमैन का यथार्थवाद सार्दो के यथार्थ की तरह अर्द्ध-यथार्थवादी है। उसकी रचनाओं में न गहराई है और न सच्चाई; किन्तु फिर भी उसे उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में हाप्ट-मैन से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली जिसका श्रेय होम (मैग्डा) को है। फ्रैंक वेडकिंड की रचनाओं से भी प्रायः उसी प्रकार की हलचल सी मची जो इब्सन के नाटकों के प्रदर्शन तथा ब्रियाक्स के नाटकों के प्रकाशन तथा प्रदर्शन से उत्पन्न हुई थी उसने कभी निर्दयता से और कभी कटुता से समाज की उन समस्याओं को उठाने का प्रयत्न किया जिन्हें सुनकर लोग चुप हो जाना अधिक पसन्द करते हैं।' 'दि एवेकेनिंग आव स्प्रिग' (वसंत का जागरण) सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें जवान होते हुए एक प्रेमोन्मुख कुमार की सुखद कहानी है। आस्ट्रिया में जहाँ रंगमंच पर प्रचलित भाषा तो जर्मन है किन्तु जहाँ के और लोगों की कला जर्मन कम और लैटिन (प्राच्य प्रभाव से अतिरंजित भी) अधिक है वहाँ यथार्थवादी नाटककारों में अग्रणी आर्थर स्निजलर था। उसने नाटक को एक अभूतपूर्व सौन्दर्य तथा सौष्ठव प्रदान किया। क्षणभंगुर प्रेम की कथाओं पर आधारित उसकी रचनाएँ इस प्रकार की फ्रांसीसी रचनाओं से अधिक उत्तम सिद्ध हुई क्योंकि उनमें जहाँ 'सत्य' है वहीं किंचित 'कृत्रिम' के पुट के कारण वे और भी उत्कृष्ट हो गयी हैं।

दूसरी ओर रूसी नाटककार भी हैं, अत्यन्त ही ईमानदार, संसार के दुःख-दर्द के चित्रण में भरपूर, मानव-चरित्र तथा मानव-जगत के अन्धकारमय पहलुओं के प्रति जागरूक! उन्होंने अपने श्रोताओं को नेचुरलिज्म अथवा स्वाभाविकतावाद की ओर फिर उन्मुख किया, उनकी रचनाओं में ज़िन्दगी के टुकड़े बोले, उसकी विपदाओं की कहानी व्यक्त हुई। मैक्सिम गोर्की ने नाटक के रूप अथवा आकार के प्रश्न को बिलकुल विस्मृत कर दिया था; पीड़ितों और वर्ग-बहिष्कृतों के जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका अभीष्ट था। जीवन को जैसे नाटकों में, पुस्तकों में, चित्रित अथवा अंकित करने का रिवाज था उसे वह सच्चा जीवन नहीं मानता था। उसने नाटकों में, जैसा कि वे मास्को आर्ट थियेटर के कलाकारों द्वारा खेले जाते हैं, जीवन का प्रतिबिम्ब है, प्रत्युत स्वयं जीवन की अवतारणा है; किन्तु साथ ही उनमें एक अजब

आकारहीनता अथवा अराजकता भी है जो रंगमंच की अनिवार्य कला से मेल नहीं खाती। तालस्ताय का शिल्प सुन्दर है किन्तु इब्सन अथवा स्क्राइब की तुलना में बस आधा ही सुन्दर है। उसकी रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं--हिंसात्मकता तथा संवेगात्मकता और वास्तविक जीवन के पात्रों से मिलते-जुलते पात्र, और कुछ ये ही विशेषताएँ हैं जो आकार के ढीलेपन को सन्तुलित करती रहती हैं। 'दि लिविंग कार्प्स' तथा 'दि पावर आव डार्कनेस' शीर्षक उसके नाटक अब भी व्यापकता से खेले जाते हैं। लियोनिड ऐंड्रूचूफ ने भी यंत्रणाग्रस्त, निरर्थक जीवन का चित्रण बड़ी गहराई से किया है, किन्तु किन्हीं-किन्हीं रचनाओं में वह कल्पना के छोर भी छू लेता है। रूसी नाटककारों में सबसे भिन्न प्रकार की प्रतिभा एंटन चेख़व की थी। उसके स्वाभाविकता-वादी जान पड़ने वाले नाटक सावधानी से रचित हैं और कुशल निर्देशन तथा निपुण अभिनय के माध्यम से रंगमंच पर भी काफ़ी जीवन्त सिद्ध होते हैं। चेख़व की कला के अभीष्ट हैं---सृजन की मृदुलता, अनुभूतियों की विविध भंगिमाएँ और जीवन के आध्यात्मिक पक्षों की अर्द्ध-गोचर अभिव्यक्ति। उसकी महत्ता अपेक्षाकृत देर से स्वीकार की गयी जबकि भारी-भरकम विचारों, बोझिल भावनाओं वाले यथार्थवादी नाटककार लोकप्रियता में फिसलने लगे थे ।

यथार्थवादी युग का आरम्भ होने के पहले रूस के नाटककार विदेशी परंपराओं का अनुसरण करते थे, इसलिए विश्व नाट्य-साहित्य को उनका कभी कोई मौलिक योगदान नहीं रहा। किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि युरोप की सबसे अधिक क्रियाशील नाट्यशालाओं में मास्को तथा पेत्रोग्राद की नाट्यशालाएं भी सम्मिलित थीं। सबसे अधिक प्रोत्साहन और संरक्षण 'बैले' को प्रदान किया गया और इसमें सन्देह नहीं कि रूस के यथार्थवादी नाटकों के साथ ही रूस के बैले-नर्तक भी संसार में काफी लोकप्रिय हुए। मास्को आर्ट थियेटर की ख्याति उसके कुछ महत्वपूर्ण प्रयोगों के लिए भी हुई और मूक-अभिनय के क्षेत्र में तो वह अद्वितीय तथा अभूतपूर्व सिद्ध हुआ। मास्को आर्ट थियेटर की ख्याति प्रायः एक पीढ़ी तक अक्षुण्ण रही और उसका अभिनेता-मण्डल भी विश्व-विख्यात रहा। बाद में जब ओवर-एमरगा के 'अमेचर' अभिनेता उदित हुए तब मास्को आर्ट थियेटर की विश्वख्याति ढलने लगी। यथार्थवादी अभिनय को आध्यात्मिक सार्थकता देकर मास्को आर्ट थियेटर ने अपना स्थान और भी सुरक्षित कर लिया था और बाद में जब रूसी निर्माताओं ने अयथार्थवादी तथा शुद्ध रंगमंचीय दृष्टि से उत्तम अभिनय के क्षेत्र में नवीन संभावनाएँ उत्पन्न कीं तब भी उसकी महत्ता अक्षुण्ण बनी रही।

'थियेटर लिब्रे' की भाँति १८८९ ई० में बर्लिन में भी 'फ्रेई ब्यून' की स्थापना

हुई जिसका सबसे बड़ा यथार्थवादी अभिनेता ओटो ब्राहम था। 'फ्रेई ब्यून' के रंगमंचीय उपादान तथा उसकी पृष्ठभूमि की सज्जा प्रायः उतनी ही साधारण, उतनी ही जानी-पहिचानी हो गयी थी जितना हमारा रसोईघर अथवा दफ्तर अथवा वेश्यालय। हाप्टमैन तथा संडरमैन के स्वाभाविकतावादी नाटक पहले-पहले यहीं खेले गये और यहीं इब्सन और तालस्ताय के नाटक भी प्रसिद्ध हुए। रेनहार्ट ने भी ब्राहम से ही निर्देशन प्राप्त किया था। और यह कदाचित् उसी की प्रेरणा और प्रभाव का परिणाम था जो उसने बर्लिन में 'डयूचेस थियेटर' की स्थापना भी की। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में मास्को आर्ट थियेटर के वाद डयूचेस थियेटर की ही ख्याति थी।

'थियेटर लिब्रे' तथा 'फ्रेई ब्यून' की तरह १८९१ ई० में लन्दन में भी 'इनडिपेंडेण्ट थियेटर' का निर्माण होता है। निर्माता था जे० टी० ग्रेहन। उस 'थियेटर' पर इब्सन (जो इंगलैण्ड में विवाद का कारण बना हुआ था), तालस्ताय तथा कुछ अन्य महाद्वीपीय लेखकों के नाटक प्रदर्शित होते रहे, साथ ही वार्ता और विवाद के कारण भी बनते रहे। तत्कालीन नाटककारों पर उस 'इनडिपेंडेण्ट थियेटर' का पर्याप्त प्रभाव पड़ता रहा। दो साल बाद पिनरो का विचार-प्रधान नाटक 'दि सेकेण्ड मिसेज़ टैंकरे' खेला गया, किन्तु उस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी—नवीन लेखक बर्नार्ड शा की रंगमंचोन्मुखता। उसके पहले नाटक, 'विडोअर्स हाउसेज़' की रचना इसी 'थियेटर' के लिए की गयी थी जिसमें लेखक ने गन्दी बस्तियों के मालिकों की बेशर्मी का रहस्योद्घाटन किया है। बाद के ग्यारह वर्षों में बर्नार्ड शा लन्दन के रंगमंच के लिए एक से अधिक सफल नाटक नहीं लिख सका किन्तु इस अवधि में वह अपने अभिप्रायवादी कथानकों को कुशाग्र संभाषणों से अवश्य सुसज्जित करता रहा। १९०४ ई० के बाद जब उसके नाटक मुद्रित तथा प्रकाशित होकर अत्यधिक प्रख्यात हुए (उसके सुप्रसिद्ध प्राक्कथन भी उसके नाटकों से कम रोचक अथवा मनोरंजक नहीं) तब कोर्ट थियेटर पर उनमें से वहुत सी रचनाओं को वेड्रेन-वार्कर की देखरेख में अभिनीत भी किया गया और तब इंगलैण्ड में एक नवीन आन्दोलन के प्रणेता के रूप में बर्नार्ड शा को जो सम्मान मिला वह अबतक अक्षुण्ण है। सत्य है कि १९५० ई० में उसकी मृत्यु तक उसकी प्रसिद्धि इतनी विश्व-व्यापक को हो चुकी थी कि संसार का कोई दूसरा जीवित नाटककार उसके सामने अपने को संसार का सबसे महान् नाटककार कहने की धृष्टता नहीं कर सका।

यथार्थवादी नाटक को मूलतः बौद्धिक तथा मनोरंजक बनाकर उसमें नयी शक्ति का संचार करना बर्नार्ड शा का ही कार्य था। वह औसत यथार्थवादियों से अधिक स्वाभाविक था और जहाँ अन्य नाटककार स्वाभाविकता का आह्वान संवेग अथवा भावोद्रेक से करते हैं वहाँ शा हमें अपने बौद्धिक चमत्कार से जीत लेता है। सुरचित

अथवा बने-ठने नाटकों के आकारात्मक सिद्धान्त को उसने अवश्य अपनाया किन्तु उनके रोमांसवादी अथवा भावुकतावादी अंशों (जो पिनरो तथा जोन्स में स्पष्टतः और इब्सन तथा हाप्टमैन में परोक्षतः परिलक्षित है) को उसने बहिष्कृत भी किया। रोमांस-वाद को वह महान् विडम्बना समझता था जिसका वहिष्कार जीवन तथा कला से होना ही चाहिए।

नाटक में जहाँ तक किसी सामाजिक लक्ष्य की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, उसने अपने 'प्लेजेण्ट प्लेज़' की भूमिका में लिखा है—"मैं झूठी नैतिकता अथवा झूठे सदाचार से सन्तुष्ट नहीं, और न ग़रीबी, रोग, भुखमरी, अपराध, शराबखोरी, लोभ, क्रूरता, युद्ध अथवा डकैती तथा सभ्यता के ऐसे ही दूसरे पहलू ही मुझे आकर्षित कर सकते हैं जिन्हें रंगमंचों पर देखने के लिए दर्शक टूटते रहते हैं और सोचते रहते हैं कि जो वे कर रहे हैं वही प्रगति है, नैतिकता है, धर्म है, विज्ञान है, राष्ट्रीयता है, साम्राज्यवाद का गौरव है, और राष्ट्र की महानता है और वह सव कुछ है जो वे अख़बारों से सीखते हैं। मैं जीवन के दुःखान्तकों और सुखान्तकों को उन परिणामों में ढूँढ़ता हूँ जो कभी भयानक होते हैं और कभी असंगत; मानव जीवन की अपूर्ण आकां-क्षाओं से उत्पन्न कल्पनाओं से प्रसूत आदर्शों पर आधारित उन संस्थाओं में पाता हूँ जिनके निर्माण में हम सतत प्रयत्नशील रहते हैं, न कि मानव-इतिहास की सच्ची, स्वाभाविक, वैज्ञानिक प्रगति में।"

जहाँ तक बौद्धिक-वैज्ञानिक ईमानदारी का प्रश्न है शा के पात्र अत्यन्त ही स्वाभाविक हैं। किन्तु उनके बहुत से पात्र पारंपरिक और रोमांसवादी भी हैं और उनके कृतित्व की कदाचित यही विभिन्नता है जो संसार को अच्छी लगती है। फ़ौजी जीवन का गौरव, चिकित्सकों की भूलें, उचित स्वभाववादी प्रवृत्ति तथा सतही इज्ज़त और ऐसे ही कुछ और प्रश्नों को अपने पाठकों में उठाने के बहाने बर्नार्ड शा अपनी बौद्धिकता तथा नैतिकता का भव्य प्रदर्शन करते हैं और मानव जीवन के आधारभूत तत्व तक पहुँचने का सशक्त प्रयास करते हैं।

उनके यथार्थवादी नाटकों में वह रंगमंचोपयोगी उष्णता अथवा मनुष्योचित दीप्ति प्रायः निःशेष है जो अतीत की रंगमंचीय कला की मुख्य परिधान वनी हुई थी। बर्नार्ड शा कदाचित उस कला को रोमांसवादी अथवा काल्पनिक कह कर बहिष्कृत कर देते। अपने को रंगमंचीयता से यथासम्भव वंचित रखने के लिए प्रायः इन गुणों का भी उन्होंने वहिष्कार किया था जो सोफोक्लीज़ तथा शेक्सपियर की रचनाओं को रंगमंच के योग्य बना सके थे। जो लोग कला में इन्द्रियपरक तत्व की अभिव्यक्ति को भी समीचीन मानते हैं और रंगमंच पर प्रदर्शित नाटकों में गहन आध्यात्मिक तथा

संवेगात्मक अर्थ का अन्वेषण करना चाहते हैं उन्हें बर्नार्ड शा के कृतित्व की परिधि बहुत ही सीमित प्रतीत होगी क्योंकि उनकी सफलता और श्रेष्टता संवेगात्मकता में नहीं, बौद्धिकता में निहित है। बड़ी विचित्र बात है कि बर्नार्ड शा रंगमंच से अपने को बचाते भी हैं और अपनी बात दृढ़ता तथा भव्यता के साथ कहने के लिए रंगमंच का उपयोग भी करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि यथार्थवादी युग में बर्नार्ड शा ने हमारे मनोरंजन तथा हमारे बौद्धिक उद्वेलन एवं उत्पीड़न के लिए इतना कुछ लिखा कि हम उनके कृतित्व से आक्रांत हैं। 'कैंडिडा', 'दि डेविल्स डिसाइपिल', 'यू नेवर कैन टेल', 'मैन ऐण्ड सुपरमैन', 'गेटिंग मैरीड', 'मिसेज़ वारेंस प्रोफेशन', 'आर्म्स ऐण्ड दि मैन', 'ऐण्ड्राक्लीज़ ऐण्ड दि लायन 'तथा 'हार्ट ब्रेक हाउस' प्रभृति रचनाएँ यथार्थवादी युग की ही देन हैं। अमेरिका के रंगमंचों पर इन रचनाओं से हमारी शामें, प्रायः दो दशाब्दियों तक चिरस्मरणीय होती रहीं। 'पिगमेलियन' में बर्नार्ड शा ने विशेष रंगमंचीय ज्ञान का परिचय दिया है और और १९२३ ई० में 'सेंटजोन' के प्रदर्शन से उनकी प्रतिष्ठा विश्वव्यापी हो गयी। किन्तु उसके बाद उनकी शक्तियाँ क्षीण होने लगीं।

इब्सन की कृतित्व-सम्बन्धी विवाद तथा 'इंडिपेंडेंट थियेटर' के आदर्शों के परिणाम-स्वरूप 'स्टेज सोसायटी' की स्थापना हुई जो एक ऐसी प्रयोगात्मक संस्था थी जिसके संरक्षण में अव्यावसायिक रंगमंचों को प्रेरणा मिली। एक लाभ यह भी हुआ कि व्यावसायिक रंगमंचों पर लगाये गये सरकारी नियन्त्रणों से अभिनेताओं को मुक्ति मिली, लन्दन के तीन वर्षों में 'कोर्ट थियेटर' की प्रसिद्ध कम हुई और कुछ इने-गिने श्रोताओं के लिए समुचित रंगमंच स्थापित हुए। बार्कर के प्रबन्ध तथा निदेशन में, स्टेज सोसाइटी के अन्तर्गत, नाटकों के लगभग एक सहस्त्र प्रदर्शनों का उल्लेख है जिनमें कोई सौ प्रदर्शन तो अकेले बर्नार्ड शा के ही नाटकों के थे। स्टेज सोसाइटी की व्यापक नीति से प्रोत्साहित होकर कुछ और भी नाटककार प्रकाश में आये। जान गाल्सवर्दी, सेंट जान हैनीकन, तथा प्रसिद्ध निर्देशक ग्रैनविल बार्कर के नाटकों का भी कोर्ट थियेटर द्वारा प्रदर्शन किया गया तथा गिलबर्ट मरे द्वारा अनूदित तीन यूनानी दुःखान्त भी अभिनीत हुए। दूसरी नाट्यशालाओं के 'मैटिनी' प्रदर्शनों में जान मेस-फील्ड का 'दि ट्रेजिडी आव नान' भी खेला गया।

शा के बाद गाल्सवर्दी के नाटक फ़ैशन में आये। उसके नाटकों में सर्वाधिक लोकप्रिय उसके अत्यन्त ही गम्भीर, भावात्मक, विचार-प्रधान नाटक थे। शा की तरह गाल्सवर्दी ने भी रंगमंच को मनुष्य की कमज़ोरियों, अन्यायों और असंगतियों के प्रत्यक्षीकरण का माध्यम माना। 'दि सिलवर बाक्स', 'स्ट्राइफ़', 'जस्टिस' 'रायल्टीज़'

तथा 'इस्केप' शीर्षक रचनाओं में उसने अपने इस लक्ष्य की अभिव्यक्ति मार्मिकता तथा सुस्पष्टता के साथ की है। नाटकों में गहराई की उपलब्धि उसने पात्रों के सम्यक् सहानुभूति चरित्र-चित्रण से की है। किन्तु उसकी सबसे बड़ी विजय उसकी विचारात्मकता है और वही एक वस्तु है जो नाटक के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी दर्शक के मन पर मँडराती रहती है।

ग्रैनविल वार्कर अभिनेता, निर्देशक और नाटककार, सव कुछ था। उसके विचार-प्रधान नाटक अंग्रेजी के सर्वाधिक सुकोमलता तथा मार्मिकता से रचे गये नाटक कहे गये हैं। लालित्य तथा शैली की स्थिरता में वह चेखव के समकक्ष है। किन्तु उसके नाटकों के प्रदर्शन अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक थे——कदाचित् वे यथार्थवादी रंगमंचों से कुछ कम कोलाहलपूर्ण रंगमंचों के अवतरण की प्रतीक्षा में थे। और वस्तुतः उसकी 'दि सीक्रेट लाइफ़' प्रभृति रचनाओं के अध्ययन से प्रतीत भी होता है कि उन्हें किसी ऐसे रंगमंच की आवश्यकता थी जिन पर आध्यात्मिक मूल्यों की सही अभिव्यक्ति का भी अवसर हो। आरंभ में वार्कर ने शा की परम्परा में रचित 'दि मद्रास हाउस' से सफलता प्राप्त की थी जो शा की रचनाओं की तरह ही प्रभावोत्पादक भी है और व्यंग्यात्मक भी।

मैसफील्ड ने 'दि ट्रेजेडी आव नान' के द्वारा भावनात्मक, यथार्थवादी रचनाओं में कविता के पुट की परम्परा चलायी। लक्षण कुछ ऐसे प्रतीत हुए जैसे वह नाटकों की पुरानी भव्यता में नवीन गहनताओं का समावेश करना चाहता है किन्तु 'दि ट्रेजेडी आव नान' के अतिरिक्त उसकी लेखनी से दूसरी कोई ऐसी रचना नहीं आयी जो उस प्रारंभिक लक्षण की पूर्ति का आभास देती। जे० एम० बैरी ने यथार्थवाद को हास्य, भावना तथा कल्पना की तरंग से सजाना चाहा। इसलिए उसके नाटक विचार-प्रधान नाटकों से बोझिल अंग्रेज़ी रंगमंच के थकित दर्शकों को रोचक प्रतीत हुए। उसके नाटकों में न तो शा का चमत्कार अथवा धारणाओं की दृढ़ता है और न गाल्सवर्दी की तप्त ईमानदारी है, किन्तु फिर भी उनके कुछ अपने गुण हैं जिनके बल पर वे मंच पर प्रायः उतने ही दीर्घजीवी हो सकते हैं जितने शा या गाल्सवर्दी के नाटक। 'व्हाट एवरी वोमन नोज़' अथवा 'दि ट्वेल्व-पाउंड लुक' के व्यंग्यों को कौन भूल सकता है ? और अपेक्षाकृत कम विचारोत्तेजक 'पीटर पैन' तथा 'डीयर ब्रूटस' की मृदुलता (जो कभी अत्यधिक भावुकता में भी बदल जाती है) भी क्या कभी भुलायी जा सकती है ? रंगमंचीय दृष्टिकोण से ये नाटक अन्य संस्थात्मक नाटकों से अधिक समीचीन हैं।

यथार्थवादी युग के अन्तिम वर्षों में अमेरिका के रंगमंच भी युरोपीय रंगमंचों पर निर्भर रहना छोड़ चुके होते हैं और उनमें अपनी मौलिकता, वैयक्तिकता तथा आत्म-निर्भरता आ जाती है। बहुत, बहुत पहले अमेरिकी रंगमंचों पर दो तीन

उत्कृष्ट, प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेता भी अवतरित हो चुके थे, किन्तु नाटकों की रचना के क्षेत्र में जब अमेरिका ने सामग्री तथा शैली के लिए पेरिस का मुँह ताकना बन्द कर दिया तब प्रायः शताब्दी से अधिक काल तक उसे लन्दन पर निर्भर रहना पड़ा। अमेरिकी रंगमंच को नाटकों के अन्य छोटे-मोटे प्रकारों से प्रतिष्ठा यदा-कदा अवश्य मिलती थी। इण्डियन नाटक, हब्शियों के संगीत, हैरिगन तथा हार्ट के प्रहसन, 'दि ओल्ड होमस्टेड' तथा 'शोर एकर्स' जैसे घरेलू नाटक तथा स्थानीय मेलोड्रामा आदि भी उनपर बहुधा स्थान पाते रहे। किन्तु 'सुरचित' नाटकों के काल में अमेरिका के उगते हुए साहित्यिक नाटककार नाटकों की रचनाओं में युरोपीय पद्धति का ही अभ्यास करते रहे और रंगमंचों पर प्रदर्शित अधिकतर नाटक तो विदेशों की ही देन थे।

नयी शताब्दी के प्रथम दशक में अमेरिका के भरपूर जीवन में मनोविनोद की जो नयी आकांक्षा तरंगित हुई वह वहीं के नाटककारों द्वारा रचित नाटकों से अनुप्राणित व्यावसायिक रंगमंचों पर अभिव्यंजित हुई। स्वतंत्र वैयक्तिक प्रयोग अथवा निर्देशन का ज़माना लद चुका था और संघीय व्यवस्था का युग आरंभ हो गया था। किन्तु फिर भी श्रोताओं की अनवरत माँग पर नाटकों को यंत्रवत् लिखते जाने में अमेरिका के नाटककारों ने आश्चर्यजनक प्रवीणता का परिचय दिया। अमेरिकी नाटककारों का प्रिय कार्य-क्षेत्र पत्रकारी-नाटकों की रचना करना था। इसलिए अधिकतर नाटक छिछले, संस्कार-हीन तथा भावुकतावादी होते थे और मनोरंजन के अतिरिक्त उनका कोई और ध्येय भी नहीं होता था। इस सक्रियता का एक उत्तम परिणाम यह हुआ कि कुछ ऐसे देशी रंगमंचों की स्वतंत्र उत्पत्ति हुई जो अप्रौढ़ अथवा अपरिपक्व होते हुए भी सशक्त थे।

मनोरंजनपूर्ण, यथार्थवादी नाटकों के अविराम सृजन की इसी पृष्ठभूमि में शताब्दी के बाद के दशकों में नाटक के क्षेत्र में (यद्यपि व्यावसायिक रंगमंचों की संख्या काफ़ी घट गयी थी) कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं जिनसे अमेरिकी रंगमंच की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट हुए बिना न रहा। अमेरिका को यूजिन ओ' नील तथा थार्नटन वाइल्डर जैसे क्रान्तिकारी, सृजनात्मक नाटककारों की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त हुआ और रंगमंचीय दृश्य-सज्जा में भी उसका स्तर संसार के अन्य देशों की भाँति काफ़ी ऊँचा उठा। साथ ही उसको स्टानिस्लावस्की की तथा कोपू तथा रीनहार्ट आदि संसार की प्रमुख नाटक कंपनियों का अतिथि-सत्कार करने का भी अवसर मिला। नाटकों को मंच पर प्रस्तुत करने की स्वाभाविकतावादी पद्धति को भी परीक्षा की कई प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ा, विशेषकर डेविड बेलास्को तथा उसके अनुयायी नाटककारों की रचनाओं के प्रदर्शन में, —यह एक ऐसा प्रयोग था जिसकी परिणति चुने हुए यथार्थवादी नाटकों के परिपक्वा प्रदर्शनों में हुई। किन्तु पेरिस, बर्लिन,

मास्को तथा लन्दन की तरह अमेरिका में भी कुछ ऐसे क्रान्तिकारी अथवा 'बलवाई' रंगमंच उत्पन्न हो गये और उत्पन्न होकर महत्वपूर्ण समझे जाने लगे जो व्यावसायिक रंगमंचों से अधिक कलात्मक होने के कारण व्यावसायिक रंगमंचों की छिछली तथा सामान्य कुशलता के प्रति विद्रोह प्रकट करने लगे ।

छोटी-छोटी, अव्यावसायिक अथवा अभ्यासी नाटचशालाओं की कहानी बाद में कही जायेगी। यहाँ बस इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि उनकी उत्पत्ति किसी विशेष उच्चस्तरीय यथार्थवाद की स्थापना के लिए उतनी अधिक नहीं हुई थी जितनी बाद में अभिव्यक्तिवादी रंगमंचों के प्रति उनके अस्पष्ट, आदर्शवादी लगाव के कारण हुई थी। विद्रोहियों ने क्रैग, शा तथा इब्सन, तीनों नाटककारों को पढ़ा था। यहीं ऐसे कुछ अन्य नाटककारों का भी उल्लेख अनिवार्य है जिन्होंने नाटक में सच्चाई तथा ईमानदारी का स्तर क्लाइड फ़िज तथा आगस्टस टामस की रचनाओं से ऊंचा उठाया। यहाँ विलियम वान मूडी तथा यूजिन वाल्टंर प्रभृति व्यक्तियों के नाम मस्तिष्क में बार बार उभरते हैं। किन्तु अमेरिका के निजी समाजवादी यथार्थ की अभिव्यक्ति एडवर्ड शेलडन, सुसान ग्लैस्पेल, सिडनी हावर्ड, मैक्सवेल ऐंडर्सन, फिलिप बैरी, एल्मर राइस तथा यूजिन ओ' नील आदि अपेक्षाकृत युवक नाटककारों की रचनाओं में अधिक हुई। अमेरिकी रंगमंच पर समाप्त होते हुए पत्रकारी यथार्थवाद तथा तेज़ होते हुए दार्शनिक अथवा विचार-प्रधान यथार्थवाद के बीच कोई स्पष्ट सीमारेखा खींचना कठिन है क्योंकि अमेरिका के नाटककार अन्य देशों के नाटककारों की अपेक्षा अपने घोषित लक्ष्य का अतिक्रमण अधिक सफलता से कर जाते हैं।

अन्त में अमेरिका के यथार्थवादी नाटककारों में केवल ओ' नील रह जाता है। न्यूयार्क में उसके नाटकों के प्रथम प्रदर्शनों की सफलता के पश्चात् उनका स्वागत विश्व की अन्य राजधानियों में भी हुआ। वह केवल, हाप्टमैन, शा तथा गाल्सवर्दी की यथार्थवादी परंपरा के प्रति सच्चा और ईमानदार था और उसे छोटे से, विद्रोहात्मक 'प्राविन्स टाउन प्लेहाउस,' की देन के रूप में भी स्मरण किया जा सकता है किन्तु एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि वह यथार्थवाद के क्षेत्र से बाहर भी गया। ओ' नील के नाटकों के उस पक्ष पर विचार हम अन्यत्र करेंगे।

अमेरिकी रंगमंच पर चार्ल्स रैन कैनेडी के नाटकों से एक दूसरे ही प्रकार की हवा चली। मूलतः वह अमेरिका का निवासी नहीं था किन्तु उसकी रचनाएँ अमेरिकी नाटकों से ही प्रभावित थीं। कोई चालीस वर्ष बाद जब उसका प्रतीकात्मक-यथार्थवादी नाटक 'दि सर्वेण्ट इन दि हाउस' प्रदर्शित हुआ तब उसे अभूतपूर्व सफलता मिली। 'दि सर्वेण्ट इन दि हाउस' कहीं-कहीं भावुकतावादी होते हुए भी अपने क़िस्म का सर्वोत्तम

नाटक है। बाद में उसने और भी नाटक लिखे जो कभी यथार्थवादी, कभी साहित्यिक प्रतीकात्मक और कभी-कभी अभिव्यक्तिवादी होते थे। व्यावसायिक नाटचशालाओं में ऐसे गम्भीर तथा असामान्य नाटकों के लिए स्थान नहीं था। इसलिए कैनेडी तथा उसकी प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेत्री-पत्नी एडिन विन मैथिसन को इन 'नियमित' रंगमंचों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना पड़ा। लगभग एक दशक की छोटी अवधि में ही जो प्रायः एक सहस्र नियमित, व्यावसायिक रंगमंच उभर आये थे उनसे प्रेरित होकर केनेडी ने भी अपनी तीन एक्टरों की एक कंपनी स्थापित की और किसी भी रंगमंच पर नाटक दिखला कर आर्थिक आत्म-निर्भरता भी प्राप्त कर ली। अपनी मंडली के लिए केनेडी को ऐसे नाटकों की आवश्यकता पड़ी जिनमें उस समय के अन्य नाटकों से अधिक काव्यात्मक मधुरिमा हो और जो प्रदर्शन की दृष्टि से भी काफ़ी मनोरंजक हों; क्योंकि केनेडी के श्रोता एक विशिष्ट अभिरुचि के विशिष्ट श्रोता थे, जो ओबर-एमरगा के प्रेम-लिप्सा-परक नाटकों को 'डेथ आव ए सेल्समैन' की तरह के नाटकों से अधिक अच्छा समझते थे। इस छोटी-सी नाटक कंपनी (जो अभिनय के लिए 'नियमित' मंचों पर वहुत कम उतरती थी) की उपलब्धियाँ १९२५ ई० के बाद अमेरिकी रंगमंच पर होने वाले उन तमाम परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करती हैं जो उसे प्रगति की ओर ले जाने में समर्थ हुए। उनका उल्लेख बाइसवें तथा तेइसवें अध्यायों में किया जायगा।

अमेरिका में यथार्थवाद का अन्त न तो रोमांसवाद की पुनरावृत्ति में हुआ और न रोमांसवाद के धीरे-धीरे विनाश में। वस्तुतः हुआ यह कि कुछ एक दूसरे से सर्वथा पृथक, आत्म-निर्भर अभिनेता और नाटककार, ब्राडवे से सर्वथा अप्रभावित होकर, यथार्थवाद की विरोधिनी भावनाओं को परिलक्षित करने लगे और प्रहसनों तथा संगीत-नाटिकाओं की तरह यथार्थवाद भी अल्पदर्शी नाटककारों की ही वस्तु रह गया। नाटक के क्षेत्र में एक नये इतिहास का सृजन करने वालों की दृष्टि किन्हीं और ही दिशाओं की ओर थी जो अपने अभिनय वड़े-बड़े व्यावसायिक मंचों पर न दिखलाकर शिक्षा-संस्थाओं तथा अन्य संस्थानों के अपेक्षाकृत लघु रंगमंचों पर दिखलाते थे।

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के जीवन पर भी यथार्थवादी कला का प्रभाव पड़े बिना न रहा। उस युग में, जब कि वैज्ञानिक अनुसन्धानों का ज़ोर था और सामान्य जनता को भी सामाजिक समानता का अधिकार मिल चुका था और अन्ध-विश्वास तथा आडम्बर दूर हो रहे थे, कला अथवा साहित्य को भी जीवन की तरह सामान्य बनना पड़ा, उनमें विश्लेषणात्मकता तथा सूक्ष्म-दर्शनात्मकता आयी। यहीं इस बात का भी स्मरण होगा कि आत्म-संहार की ओर भी मनुष्य इसी युग में उन्मुख हुआ। इसलिए मनुष्य के लिए रंगमंचों की भी अन्त्येष्टि कर देना स्वाभाविक था।

इसमें सन्देह नहीं कि शा और इब्सन के नाटक हमें बहुत पसन्द आये, किन्तु साथ ही उनसे उन रंगमंचों को भारी क्षति भी पहुंची जिनपर युरीपिडीज़, शेक्सपियर, शेरिडन, स्कारामूशिया तथा ग्रिमाल्डी के नाटकों का प्रदर्शन होता था। यथार्थवादियों ने भी इस कार्य में उनकी सहायता की, परिणाम यह हुआ कि ऐसे रंगमंच सर्वथा अस्तित्वहीन हो गये और वास्तविक रंगमंचीय तत्वों का लोप हो गया। किन्तु वे क्रान्तिकारी, जो नाटकीय अभिव्यक्ति की खोज में एक सहस्र छोटे-छोटे मंचों की स्थापना करने में सफल हो गये थे, और वे नाटककार को सर्वथा भिन्न प्रकार के नाटकों का सृजन कर रहे थे, यथार्थवाद की न्यूनताओं, दुर्बलताओं और अन्ततोगत्वा, उसके ह्रास के प्रतीक थे।

सेटिंग में यथार्थवाद अब अपनी चरम, ठोस अवस्था को प्राप्त हो रहा है। 'फ़ास्ट' का अलबर्ट रोलर कृत एक इमारती दृश्य, जिसमें अभिनय के लिए समुचित स्थान छोड़ा गया है।

अध्याय २१

रंगमंच तथा तत्सम्बन्धिनी कलाएँ : अन्य कलाएँ

रंगमंच के क्षेत्र में युग-प्रवर्तक प्रवृत्तियों का प्रारम्भ ईसवी १९०० से मानना अध्ययन की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक होता है। यह सच है कि उन्नीसवीं शताब्दी के सुरचित भावुकतापूर्ण नाटकों और पत्रकारी शैली के वास्तविकतावादी नाटकों की दो समानान्तर धाराएँ बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी प्रवाहित रहीं। किन्तु संसार के अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील रंगमंचों को यदि दृष्टि में रखकर देखा जाय तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि नाटक की कला इस नयी शताब्दी में एक सर्वथा भिन्न दिशा की ओर अग्रसर थी और उन्नीसवीं शताब्दी के यथार्थवाद से अत्यन्त ही क्रान्तिकारी रूप से भिन्न होते हुए भी वह यूनानी, एलिज़ाबेथकालीन अथवा प्राच्य नाटकों की कला से बिलकुल असम्बद्ध नहीं थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि बीसवीं शताब्दी में नाटक का रूप भी समकालीन जीवन और सभ्यता तथा यन्त्रयुग के नवीन आविष्कारों के अनुरूप ही ढलने लगा था।

नाटक अथवा रंगमंच की इस नवीन कला का सम्बन्ध नाटकों के प्रदर्शन से न होकर उस सिद्धान्त अथवा चेतना से है जो संसार भर में फैल रहा था। पर यह नहीं कि नाटकों के प्रदर्शन बन्द हो गये थे; यदि ऐसा होता तो यह सब लिखना ही व्यर्थ था। प्रदर्शनों की चर्चा हम तीन अगले अध्यायों में करेंगे। यहाँ सर्वप्रमुख उल्लेखनीय बात यह है कि नवीन शताब्दी में नाटकों के क्षेत्र में उतने अधिक परिवर्तन नहीं देखे गये जितने उनके लक्ष्य तथा उनकी आन्तरिक भावना के क्षेत्र में। यथार्थवाद के बाद के युग को अच्छी तरह समझने के लिए उन परिवर्तनों को दृष्टि में रखना आवश्यक है और लेखक के लिए भी यह अनिवार्य हो गया है कि वह नाटक के कालक्रमानुसारी वृत्तान्त को तोड़कर इस अध्याय में उसके अनावृत्त सिद्धान्त पर दृष्टिपात करे।

आधुनिक नाटक अथवा रंगमंच से सम्बद्ध अपने सहयोगियों की ओर से मुझे इस बात के लिए कोई अधिकार नहीं दिया गया है कि रंगमंचीय कला के सौन्दर्य-शास्त्र समस्त पक्ष पर यहां मैं अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करूं। यहां मैं इस बात के प्रति भी सचेत हूं कि जो बात मैं कहने जा रहा हूं, या कहने का प्रयत्न कर रहा हूं, वह अभी तक कदाचित् किन्हीं दूसरों ने नहीं कह पायी है। नवीन रंगमंचीय आन्दोलन को मैंने व्यापक ढंग से परखने का प्रयत्न किया है और मुझे विश्वास है कि रंगमंच के नवीन प्रयोगों तथा प्रगतियों का सम्बन्ध वास्तुकला, चित्रकला तथा नृत्यकला आदि अन्य कलाओं से भी अवश्य है। तात्पर्य यह है कि आधुनिक कलाओं के अन्य रूपों से आधुनिक नाट्य-कला तथा आधुनिक नाटककार और अभिनेता भी काफ़ी गहराई तक प्रभावित हुए हैं। इसलिए यहां मैं रंगमंचीय कला के आधुनिक सिद्धान्तों का अध्ययन आधुनिक काल की अन्य सामान्य कलाओं के सन्दर्भ में करना चाहूंगा।

रंगमंच को अन्य कलाओं के रचयिताओं ने, विशेषकर समालोचकों तथा सिद्धान्तवादियों ने, सर्वदा हेय दृष्टि से देखा है। किन्तु साथ ही रंगमंच की ओर उनकी दृष्टि लालायित भी रही है। कवि रंगमंच पर अपनी ललित कविता को अधिक मार्मिकता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। चित्रकार को रंगमंच इसलिए प्रिय है कि उस पर वह अपनी चित्रकला के गौरव को अधिक सरलता से प्रयुक्त कर सकता है और प्रायः एक शताब्दी तक उसने ऐसा किया भी। और संगीतकार तो उसे भुलावा देकर किसी और ही लोक में भगा ले गया जहां उसने अपनी कला से रंगमंच का गठबन्धन करके अनाहूत सन्तान, 'आपेरा' की उत्पत्ति की। नृत्यकार ने भी नाटक को नृत्य की ही देन माना और एक समय ऐसा आया जब उसने रंगमंच को अधिकृत कर लेने का भी प्रयत्न किया। किन्तु फिर भी इन कलाकारों ने, और उनके समर्थकों ने रंगमंच को एक निम्नतर कला माना। किन्तु इतना ही क्या कम है जो उन्होंने उसे कलाओं का मिश्रण न कहकर एक पृथक और अपने में सम्पूर्ण कला की उपाधि दी?

रंगमंच पर जो क्रियाओं का व्यापक विस्तार, पात्रों की विविधता, प्रयोग में लाये जाने वाले भौतिक प्रसाधनों की जटिलता, मानवीयतत्व की अनवरत परिवर्तन-शीलता और प्रतीकों तथा अभिव्यक्तियों का जो विच्छिन्न, इधर-उधर फैलाव होता है उसे देखते हुए ऊपर वर्णित आचरण के कारण जानना कठिन नहीं है। सही भी है कि नाटक में हर वस्तु संयत अथवा संयोजित नहीं होती; कोई स्पष्ट अथवा साफ-सुथरे नियम नहीं होते, न तो कोई ऐसा विधान ही होता है जिसकी कसौटी पर कस कर नाटकों को चिरस्थायी अथवा चिरन्तन रूप से परिपक्व कहा जा सके। एक समय था जब नाटक के तत्वों को विभिन्न वर्गों अथवा विभागों में बांटकर निरीक्षण करना विद्वानों तथा

समालोचकों को अभीष्ट था। किन्तु तब अराजकता और भी अधिक व्यापक उलझन उत्पन्न करने वाली थी। कोई भी चित्रकला के दस-बारह उदाहरण चुनकर कह सकता था—"ये चित्र सोलहवीं शताब्दी की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरण हैं, इसलिए उस काल की विशेषताएँ निम्नलिखित रही होंगी, आदि, आदि।" इसी प्रकार काव्य-कला, वास्तुकला तथा मूर्तिकला पर भी यह बात लागू हो सकती है। संगीत-कला के साथ भी यही बात है; अन्तर केवल इतना है कि संगीत में गायक अथवा नर्तक श्रोता और संगीतज्ञ के बीच माध्यम का कार्य करता है। इसलिए संगीतकला की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होती है कि उसे गायकों के माध्यम से श्रोताओं के समक्ष किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। लिखित नाटकों के साथ यह बन्धन नहीं है। यूनानी तथा एलिज़ाबेथकालीन नाटककारों के मुद्रित नाटकों को आप जब चाहें स्वेच्छा से ख़रीद कर पढ़ सकते हैं। किन्तु इससे आप यूनानी अथवा एलिजाबेथकालीन रंगमंचीय दशा का अल्प अनुमान भी नहीं पा सकते। उसके लिए तो आपको यूनानी अथवा एलिज़ाबेथ-कालीन नाटकों को स्वयं देखना होगा अथवा उन तथ्यों की कल्पना करनी होगी जिनसे उन नाटकों का रूप ढला; रंगमंच के भौतिक रूपों, जैसे वर्ण, प्रकाश, वास्तुकला, अभिनेता, संगीत, नृत्य, वेश और सज्जा, उपकरण, पृष्ठभूमि, यंत्र तथा प्रसाधन आदि से अवगत होना पड़ेगा और इन तथ्यों और तत्वों के सम्मिलित बहाव और उलझाव की पृष्ठभूमि में नाटककार किस बात पर बल देना चाहता है, कब, कहां ठहराव अथवा मध्यान्तर उत्पन्न करता है और इन सब को मिलाकर वह किस विन्दु-विशेष पर ले जाना चाहता है, आपको यह सब भी जानना होगा।

कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वान् लेखकों ने नाटक की कला की व्याख्या पुस्तकालयों में उपलब्ध मुद्रित नाटकों के आधार पर करने का प्रयत्न नहीं किया। रंगमंच पर नाटकों के प्रदर्शन की कला को वे साहित्य का एक छोटा-सा विभाग कहकर टाल गये और नाटकों के मुद्रित पाठ में निहित गुणों का विश्लेषण करके उसी के आधार पर नाटकों की रचना के सिद्धान्त ठहराने लगे। नृत्य-नाटिका, मूक-अभिनय, हास्य तथा तड़क-भड़कपूर्ण तमाशे आदि नाटक की उन अनिवार्य अभिव्यंजनों को वे भूल गये जिनके सन्दर्भ में नाटक का पाठ-भाग गौण होता है। अभिनय को वे प्रदर्शन की एक निम्नकला मात्र मानते रहे और निर्देशन, दृश्य-सज्जा और प्रदर्शन को उन्होंने कोई सृजनात्मक मान्यता नहीं दी। इस प्रकार नाटक की कला को श्रोताओं के सन्दर्भ में समझने की चेष्टा न करने के कारण वे नाटक की आत्मा से प्रायः अछूते रह गये।

यदि इस क्रियाशीलता को सोफ़ोक्लीज़, शेक्सपियर तथा मोलियर के नाटकों

के बावजूद साहित्य का एक अंग कहना कठिन हो तो फिर रंगमंच में ऐसी कौन-सी बात होगी जिसके आधार पर उसे अन्य मान्य कलाओं के समकक्ष ठहराया जा सकता है ? उन्नीसवीं शताब्दी में जब कि दृश्य-कलाएँ साधारण जीवन से दूर होती जा रही थीं, चित्रकला तथा मूर्तिकला संग्रहालयों की चीजें बनती जा रही थीं और कलाकार विभिन्न संस्थाओं और परंपराओं की सदस्यता में व्यस्त थे, तब रंगमंच की कला एक नवीन मार्ग पर अग्रसर थी। प्रदर्शनों के स्तर में निम्नता आ गयी थी इसलिए वह जन-साधारण के साथ खेमों, बाज़ारों और नाचघरों में घूमा करती थी। ऐसी हो गयी थी हमारी रंगमंच की कला। और वह चाहे कितनी भी असंगत अथवा असम्बद्ध हो गयी हो, बिल्कुल गौरवहीन कभी नहीं हुई और उसकी लोकप्रियता अक्षुण्ण रही। यही कारण है कि उच्च, ललित कलाएँ उसे हेय दृष्टि से देखती हैं। लोकतंत्र में यदि किसी वस्तु को एक ही साथ इतने अधिक लोग अपना प्रिय बना लें तो उसे निम्नस्तरीय समझकर हेय दृष्टि से देखा भी जाता है।

रंगमंच अथवा नाटक को जो किसी विशेष सिद्धान्त अथवा विचार-परंपरा में सीमित नहीं किया जा सका उससे नाटक के विद्यार्थियों का अहित हुआ। सही यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में कुछ विद्वान् विचारकों ने कलाओं के उलझे हुए सूत्रों को सुलझाने के प्रयत्न किये और चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्यकला और संगीत-कला प्रभृति कलाओं पर मोटे-मोटे ग्रन्थ भी लिखे (उनमें से कुछ ग्रन्थ उपयोगी अवश्य हैं)। किन्तु जहां तक रंगमंचीय कला की व्याख्या और विश्लेषण का प्रश्न है उन्होंने इस प्रकार का कोई भी गम्भीर ग्रन्थ नहीं लिखा जिसमें दर्शकों के मन पर प्रदर्शित नाटकों का जो प्रभाव पड़ता है उसकी प्रकृति अथवा स्वभाव की व्याख्या होती अथवा निर्माता द्वारा नाटकों को रंगमंच पर लाने की प्रक्रिया का वर्णन होता। ऐसी पुस्तक से प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक जैसे उन सभी व्यक्तियों का भला होता जो रंगमंच से बहुत निकट का सम्पर्क रखते हैं, और इस विषय के अध्ययन की ओर उन प्रबुद्ध दर्शकों का भी ध्यान आकर्षित होता जो रंगमंच के आकर्षण का जादू सर्वदा स्वीकार करते रहे हैं। इतना ही नहीं, उनसे उन नाट्य-समालोचनाओं को भी बल मिलता जो प्रायः हर काल में सैकड़ों नहीं, सहस्रों लेखनियों से अवतरित होती रहती है; उन भाषणों और वक्तृताओं में भी प्राण पड़ता जो विश्वविद्यालयों की कक्षाओं, महिला-समाजों तथा अन्य संघों और संस्थाओं में प्रतिध्वनित होती रहती हैं। किन्तु खेद है कि रंगमचीय सिद्धान्त-विषयक किसी अधिकारिक ग्रन्थ को कौन कहे, लोकप्रिय शैली में रचित, पढ़ने योग्य कोई एक पुस्तिका भी नहीं है।

यदि हमें बीसवीं शताब्दी के रंगमंच की प्रकृति को ठीक-ठीक समझना है,

प्रतिपादित करें या मेरे सिद्धान्तों को स्वीकार करें। वे चाहें तो हीगल, रस्किन, क्रोचे, फ्रायड और बेल या फिर अरस्तू, वाल्तेयर, लेसिंग, फ्रेटाग, मेयरहोल्ड, ग्रेनविल-वार्कर, मिचेल तथा यंग का भी अध्ययन कर सकते हैं।

रंगमंच के भीतर अथवा बाहर, कला का सम्बन्ध मनुष्य की उन गतिविधियों से है जिनसे उन वस्तुओं अथवा 'कृतित्व' का सृजन होता है जो एक विशिष्ट दृष्टि से अन्य मनुष्यों के लिए भी उपयोगी हों। एक चित्रकार को ही उदाहरण के लिए लीजिये। वह एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखता है, सेबों के गुच्छे हैं या एक गाय है जिसमें उनकी कलात्मक रुचि है, जिसे वह अन्य साधारण जनों से भिन्न दृष्टिकोण से देखता है और वह इन समस्त उपादानों में एक कलात्मक एकता अथवा सामंजस्य का दर्शन करता है और अन्त में अपनी कला के माध्यम से एक ऐसी नवीन वस्तु उत्पन्न कर देता है जो अपने में सम्पूर्ण होती है। ऐसी 'वस्तु' अथवा ऐसे चित्र में प्रकृति के प्रति न तो कोई सामान्य दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है और न तो किसी'फोटोग्राफर' द्वारा प्रकृति का कोई छायांकन ही होता है। ये दोनों बातें गौण हो जाती हैं और संसार में एक सर्वथा नवीन 'वस्तु' उत्पन्न हो जाती है जिसमें दूसरों की आध्यात्मिक अथवा भावनात्मक तृष्णा को तृप्त करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है, या यों कहें कि उससे मनुष्य के सौन्दर्य-बोध को बड़ी तुष्टि मिलती है। कोई दूसरा कलाकार कोई ऐसा ही दूसरा चित्र कदापि नहीं बना सकता जिसमें वही आकर्षण हो, वही तुष्टि अथवा तृप्ति हो।

कलात्मक 'कृतित्वों' की बाहरी विशेषताओं को बस इन्हीं थोड़ी-सी पंक्तियों में समझा जा सकता है। एक विशेष प्रकार की तृष्णा अथवा भूख को शांत करने के लिए कला को अपने में सर्वथा सम्पूर्ण तथा अनुपम अथवा अभूतपूर्व बनना पड़ता है। कला-दर्शक के लिए सौन्दर्यबोध का साधन तथा कलाकार के लिए प्रत्यक्ष अनुभूति की देन होती है।

आज विद्वान् शोधकों में कला को जीवन के उन क्षेत्रों से तटस्थ कर देने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिनसे पहले कला का निकट का सम्पर्क था—जैसे नीतिशास्त्र, मनोविनोद अथवा उद्योग के क्षेत्र। कला को वे जीवन की एक विशिष्ट, पृथक् अनुभूति मानते हैं जिसका ध्येय आपको सुन्दर से सुन्दर बनाना नहीं होता, न तो आपको किसी विशेष तथ्य अथवा मार्ग का स्मरण ही दिलाना होता है, और न तो वह किसी उत्कृष्ट छायांकन के रूप में ही स्वीकार की जाती है। कला और प्रकृति के बीच जो मौलिक अन्तर होता है उसका ज्ञान भी वे आवश्यक मानते हैं और कला के 'रचित' (न कि प्राकृतिक) स्वभाव को समझने पर बल देते हैं। किसी प्राकृतिक दृश्य अथवा वस्तु की तरह एक कलात्मक कृति भी 'सुन्दर' हो सकती है और इसी प्रकार अभिनीत नाटकों

की तरह जटिल रचनाएँ भी कभी उतनी ही मर्मस्पर्शिनी हो सकती हैं जितनी किसी न्यायालय में किसी अभियुक्त की वास्तविक पेशी। दर्शकों की प्रतिक्रिया भी कभी-कभी बिलकुल समान हो सकती है। अंशतः यही कारण है जो बहुत से सिद्धान्तवादी कलात्मक अनुभूति, अथवा कला के दर्शन से उत्पन्न भाव को जीवन के किसी वास्तविक दृश्य अथवा वास्तविक घटना से उत्पन्न भाव से अलग मानना चाहते हैं। यहां हम 'सुन्दर' शब्द का प्रयोग न करें तो अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि वह जीवन और कला दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। हमें यहां केवल इस बात का स्मरण रखना होगा कि कला के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त विषयों का उतना महत्व नहीं होता जितना उस विषय में कलाकार की अपनी प्रतिभा के प्रतिष्ठापन का होता है। हमें इस बात की भी समुचित चेतना होनी चाहिए कि कला का भी एक अपना पृथक् अस्तित्व होता है, अपने गुण और अपनी विशेषताएँ होती हैं और उनमें चतुर दर्शकों के मन को अपनी ओर खींच लेने की अपूर्व क्षमता होती है। यदि हमारे पाठक इस तथ्य को अच्छी तरह समझ सकें तब वे निश्चित ही कला को जीवन के उन व्यापारों से अलग समझने की योग्यता रख सकेंगे जो वैयक्तिक होने के कारण निम्न होते हैं।

कला को स्मृतियों की गुदगुदी, विचारों की जननी, सुकर्मों की प्रेरिका और चुस्त गल्पों अथवा सम्मोहक कथानकों के सम्पुट के रूप में प्रयुक्त न करना एक कठिन कार्य है। हम ऐसे पले और बढ़े हैं कि इन्हीं बातों को हम कला का मन्तव्य मान लेते हैं। हम उस युग से अभी-अभी मुक्त हुए हैं जब कला का महत्व केवल इसलिए माना जाता था कि उसका सम्बन्ध स्वयं से न होकर अन्य बातों अथवा व्यापारों से है। वह युग था ऐसी कृतियों की रचनाओं का जिनमें मात्र आकर्षित कर लेने की क्षमता ढूँढी जाती थी, पंकिल भावुकता का युग, अनुकरण तथा अनुकूलीकरण का युग, उस शिल्प-चातुर्य का युग जिसका ध्येय केवल शिल्प-चातुर्य होता है। प्रकृति के जाने-पहचाने दृश्यों, सुन्दर लड़कियों, आदर्श मानकर चित्रित नग्न स्त्री-पुरुषों, बिल्लियों और उनके बच्चों, पुराने जर्जर मकानों, तथा 'राष्ट्रपिताओं' के चित्रण आदि ही कला के विषय थे। इसी प्रकार बैठकों की गप्पबाज़ियां, झनझन-टनटन, चर्चों की नवगोथिक' तथा पुनर्जागरण काल की नवीन इमारतें, 'नियो-क्लासिकल' महाकाव्य, सुखद अन्त, भावुकतापूर्ण और जीवन की तरह स्वाभाविक, जीवन के टुकड़े के समान रचित तथाकथित नाटक आदि ही कला के मिश्रित, सिंचित, मीठे, तीखे, पतित अथवा उच्च विषय थे जिनको रचित करने की प्रक्रिया में कभी अनुकरणीयता, कभी प्राकृतिक चित्ताकर्षण अथवा सौन्दर्य को कला की आकृति देने का भयानक प्रयत्न और कभी परिपक्वता अथवा सम्पूर्णता के प्रति कलाकार की अ—रचनात्मक पूजा-भावना का परिलक्षण होता था। यह बात

अभिनन्दनीय है कि हम अब कला को उसकी उपयोगिता के कारण नहीं, उसके अपने, निजी अस्तित्व के कारण पूज्य मानने लगे; कला वह अनुभूति है जो स्वयं में सम्पूर्ण है; वह शक्ति है जो मनुष्य की एक विशिष्ट बुभुक्षा को शांत करती है।

एक कलाकार जैसे एक भिन्न प्रकार का व्यक्ति होता है वैसे ही वह भिन्न प्रकार की दृष्टि भी रखता है--परंपराओं के प्रति लापरवाह, भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का शौक़ीन और अपने बालों की ओर से बिल्कुल बेफ़िक्र ! कुछ समालोचकों का विचार है कि उत्कृष्ट कलात्मक कृतित्व के सृजन के लिए कलाकार को जगत् की ओर ऐसे निहारना पड़ता है जैसे वह उस अवस्था में हो जिसे 'आनन्द' की अवस्था कह सकते हैं अथवा ऐसे क्षणों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब जीवन अथवा प्रकृति के सत्य उसके मन पर बिजली की तरह कौंध जांय। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि कलाकार को इस तरह से चित्रित करने से प्रभाव यह पड़ता है जैसे वह हमेशा शीघ्रता में हो। प्रकृति अथवा जीवन का ज्ञान उसे 'आनन्द' की अवस्था में नहीं, शान्ति अथवा वेदना की 'परम' अनुभूति में होता है।

कलाकार की रचना-प्रक्रिया में तीन बातें मुख्य हैं। एक ही समय में, वास्तविकता के एक ही सन्दर्भ में, प्रकृति से जो तथ्य एक कलाकार निकाल सकता है वह संसार का कोई अन्य प्राणी नहीं निकाल सकता। कलाकार मन को खटकने वाले विस्तारों की ओर से आँखें बन्द कर लेता है और अपना ध्यान तथ्यों के उन आकारात्मक विशेष-गुणों की ओर लगाता है जो साधारण जन की दृष्टि में नहीं आते और जिनकी कलात्मक परिणति में वह अपूर्व परिपक्वता अथवा सम्पूर्णता का आभास देता है। और तब वह उनका रूप ढालना आरंभ करता है, मिटाता है, बनाता है, सँवारता है, एकात्म करता है और उनकी आन्तरिक अर्थ-गूढ़ता को अपनी क्षमता के अनुसार स्पष्ट करता है। इस प्रक्रिया में वह कला के आकार और प्रवाह-सम्बन्धी अपनी भावनाओं अथवा अनुभूतियों का भी सामंजस्य करता है, उनके जटिल स्वभाव को सामने रखकर परखता है और इस प्रकार उनका 'मानसिक मानचित्र' तैयार कर लेता है। और तब वह अपने कलात्मक माध्यम के अनुकूल प्रसाधन चुनकर, (जैसे शब्द अथवा वर्ण अथवा प्रस्तर) उनको वह अन्तिम रूप देता है जिसमें वे संसार को दिखायी देते हैं। अपनी कला की माध्यम-सम्बन्धी सीमाओं और मर्यादाओं के बावजूद वह एक ऐसी 'रचना' तैयार कर देता है जिसमें दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

कुछ लेखक इस प्रक्रिया के अन्तिम अंश को बड़ी शीघ्रता से पार कर जाते हैं। उनका अधिकतर ध्यान तथ्य के दर्शन, उसके भावनात्मक पक्ष और स्वप्न-संतरण की ओर होता है। किन्तु उपलब्ध माध्यम के प्रसाधनों (जैसे काव्य में शब्द अथवा चित्रकला

में रंग आदि) की भी, अभिव्यक्ति के सौष्ठव की दृष्टि से, अपनी महत्ता होती है क्योंकि उन्हीं के सहयोग से चित्रकला में रंगों अथवा वर्णों का सुन्दरतम प्रयोग, और रंगमंच अथवा नाट्य-कला में कथोपकथन, अभिनय अथवा प्रकाश आदि में प्रभावोत्पादकता संभव है। रंगमंचीय कला में मंच पर प्रयुक्त होने वाले जटिल उपकरणों का सृजनात्मक संयोजन तो और भी अधिक अनिवार्य है। अन्यथा प्रदर्शित नाटक के प्रदर्शनात्मक गुण समाप्त हो जाते हैं और जो कुछ शेष रह जाता है वह या तो केवल काव्यात्मक होता है या फिर केवल परिहासात्मक अथवा सूचनात्मक।

इसलिए कला की रचना जब उपर्युक्त प्रक्रिया से होती है तो वह कला स्वयं में सम्पूर्ण होती है। उसकी एक अपनी एकता होती है जो किसी स्वाभाविक, विश्लेषणीय सत्य अथवा तथ्य से परे की वस्तु होती है। इसलिए कला स्वयं में संश्लिष्ट, तथा पूर्ण होती है। किन्तु अभी तक मैं कला के केवल लघुतर अंग का ही उल्लेख कर पाया हूं। मेरी व्याख्या में अभी तक उस तत्व का समावेश नहीं हो पाया है जिसे 'सौन्दर्य' कहते हैं। अभी हाल ही में कला के इस अनिर्वचनीय गुण को अधिक सरलता से समझने के लिए 'रूप' अथवा 'आकार' की संज्ञा देने की प्रथा चली है। क्लाइव बेल ने कला के इस महत्वपूर्ण 'रूपात्मक' पक्ष को दृश्य-काव्य में सर्वाधिक अनिवार्य ठहराने के लिए एक पूरा ग्रन्थ ही रच डाला है। और, अनुभवों के बाद एल ग्रेको तथा सेज़ेनी के चित्रों, माइकेल एंजलो की मूर्तियों तथा बाख, शेक्सपियर और सैफो की रचनाओं पर चतुरायाम गुणों का भी आरोप किया जाने लगा है।

तात्पर्य यह है कि कलाकार, रहस्यात्मक ढंग से प्रेरित, (यदि रहस्यात्मक शब्द आपको पसन्द आये) वह प्राणी होता है जो एक विशेष दृष्टि से देखता हुआ, प्रकृति से जो पाता है उसमें थोड़ा कुछ अपना भी जोड़ता है, और वह उसमें जो जोड़ता है वह सृजन अथवा संगठन, रेखा, रंग अथवा ध्वनि से परे की वस्तु होती है, वह एक ऐसा गुण होता है जो साधारण धरातल से दूर उसके स्वप्नों से उत्पन्न होता है; उसकी अनुभूतियों से उत्पन्न वह एक ऐसा संसार होता है जो स्थूलता की परिधि में नहीं आता और जिसकी सृष्टि अपने माध्यम की क्षमता अथवा समृद्धता के प्रति कलाकार की चेतना से होती है। और उसकी कला का यह रूप, उसकी कला का यह 'अभिव्यक्त आकार' उस भावनात्मक संवेदनशीलता को जागरित करता है जो, अल्प अथवा अधिक, प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती है। उसे आप सौन्दर्यबोध अथवा कलात्मक चेतना भी कह सकते हैं। यदि दर्शक अथवा श्रोता या पाठक अपने को विषय अथवा शिल्प अथवा व्यक्तिगत रुचि-अरुचि के प्रश्नों में उलझा नहीं लेता तब उसको उसकी मूल-प्रवृत्तियां कला के उन गुणों की ओर उन्मुख होने को उत्प्रेरित करेंगी जिनका सम्बन्ध अन्तर अथवा

आत्मा की गूढ़ता से होता है। यदि वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि सेज़ेनी-द्वारा चित्रित सेब उसकी मेज़ पर के सेबों से अधिक मोटे या रसीले हैं या नहीं तो इसमें सन्देह नहीं कि सेज़ेनी के सबों में, उसके चित्रों में उसे ऐसा विधान, एक ऐसी रचना मिलेगी जिससे उसका मन उद्वेलित और आन्दोलित हो उठेगा। मैं चाहता हूं कि सेज़ेनी और सेज़ेनी की तरह संसार के अन्य कलाकारों का भी मूल्यांकन उनके कृतित्व की गहराई, और कठिनता से पहचान में आने वाले, मन को छूने वाले उनके समृद्ध गुणों के आधार पर होना चाहिए और उन्हीं के अनुपात से उनकी महत्ता भी समझनी चाहिए।

जब हेमलेट कहता है :—

ओह, कितना दुष्ट और कृषक-दास हूँ मैं !

या

बना रहूं या विनष्ट हो जाऊँ : प्रश्न यह है :
श्रेयस्कर यह है कि क्रूर दुर्भाग्य की ठोकरों और तीरों को सहूँ,
अथवा, मुसीबतों के सागर के विरुद्ध शस्त्र उठा लूँ,
उनका सामना करूँ, उन्हें समाप्त करूँ ? मर जाऊँ, सो जाऊँ. . .

तब उन पंक्तियों को मैं मन ही मन दुहराता हूं, फिर चेष्टा करता हूं पहले उनके भाव अथवा तर्क को समझने की, और तब उनके काव्य, छन्द, और ध्वनि-सम्बन्धी गुणों पर जाता हूं और सब के अन्त में मुझे प्रतीत होता है कि इन पंक्तियों में एक ऐसा जादू, जल्दी पकड़ में न आने वाला एक ऐसा आकर्षण है जो इन गुणों की सीमाओं से परे हैं। उसे आप 'रूप' कह सकते हैं—नाटक रूपी कविता का अभिव्यक्त रूप। किन्तु आपको आपत्ति हो सकती है। क्या 'रूप' अनिवार्यतः इसी को कहते हैं? यह वह गुण है, वह वस्तु है जिससे कविता, कविता बनती है। मैं आपको वह आधार देना चाहता हूं जिससे आप चित्रकला के दिल को पकड़ पायें; उस वस्तु से कविता सचमुच काव्यात्मक हो जाती है और नाटक सचमुच रंगमंचीय दृष्टिकोण से उत्कृष्ट। वह आधार आपकी सहायता करेगा—नाटककारों, अभिनेताओं-अभिनेत्रियों, श्रोताओं तथा रंगमंच-सम्बन्धी अनिवार्य बातों को क्षण भर में समझ लेने में। दूसरे शब्दों में, 'रूप' उन तत्वों के सम्मिश्रण को कहते हैं जिनकी न कोई व्याख्या हो सकती है और न कोई भाव-चित्र बनाया जा सकता है, किन्तु फिर भी उसमें क्षमता होती है श्रोता अथवा दर्शक अथवा पाठक में सौन्दर्यबोधात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की।

क्लाइव बेल ने जब से नाटक के रूप-सम्बन्धी अपने विचारों का प्रतिपादन किया और रूप को ही नाटक का प्राण घोषित किया तब से समालोचना के क्षेत्र में एक अजब-सा 'नाटक' छिड़ा हुआ है। विश्वविद्यालयों के तथाकथित गम्भीर प्राध्यापकों

ने क्लाइव पर निर्दयता से आक्रमण आरम्भ कर दिये और कला-सम्बन्धी उसके विचारों को अत्यन्त ही 'मूर्खतापूर्ण' घोषित कर दिया। और बाद में जब उनसे स्वयं उनके सिद्धान्तों की अपेक्षा की गयी तब उन लोगों ने भी प्रायः उतने ही गूढ़ तथा रहस्यपूर्ण ढंग से कला के सर्वोत्तम गुण को कभी 'लयात्मकता' बतलाया और कभी 'ध्वन्यात्मक संघटन' कहा या फिर कुछ ऐसे ही दूसरे शब्द प्रयुक्त किये जिनके कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलते। और फिर बेचारे क्लाइव बेल के 'रूप' के प्रश्न को लेकर आपस में इतना अधिक लड़ने और जूझने लगे कि उनमें से बहुतों की 'साहित्यिक हत्या' भी हो गयी। परिणाम यह हुआ कि साधारण साहित्यकार के पास क्लाइव के प्रयत्नों की अब केवल स्मृति मात्र बच रही है।

प्राध्यापकों के पारस्परिक विवाद की बात यदि हम भूल भी जायँ तो भी हमें सुविधा के लिए यह कहना ही पड़ेगा कि कला में, अथवा किसी कलात्मक कृतित्व में एक ऐसा गुण अवश्य होता है जिसे अनिवर्चनीय कहना चाहिए। उस गुण की अनुभूति हमें अवश्य होती है, और मैं समझता हूं कि उसे 'रूप' की संज्ञा देना उपयुक्त होगा। 'रूप' के स्थान पर कभी-कभी 'सौन्दर्य' अथवा 'लय' अथवा 'प्रवाह' शब्द का प्रयोग भी करना पड़ेगा किन्तु फिर भी 'रूप' की संज्ञा को हम सर्वाधिक अनुकूल मानेंगे।

कुछ समालोचकों का यह भी विचार है कि रंगमंच की कला तब तक कला नहीं होती जब तक दर्शकों अथवा श्रोताओं के सामने उसे सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत न किया जाये। मैं इस बात को इस तरह कदापि नहीं कहता। यह पहले तो एक तत्ववादी प्रश्न हैं और दूसरे श्रोताओं के मनोविज्ञान में गहराई तक जाना बहुत समीचीन भी नहीं। किन्तु साथ ही हमें यह भी चुपचाप स्वीकार कर लेना होगा कि नाटक के श्रोताओं का भी नाटक को एक अनिवार्य योगदान होता है। ऐसा किसी अन्य कला में नहीं होता। श्रोता नाटक के प्रवाह में सहयोग देते हैं और इस प्रकार उनका योगदान भी 'रचनात्मक' होता है। हां, जहां तक कला के प्रति, किसी भी कला के प्रति, किसी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का प्रश्न है, हमें उसके अध्ययन से लाभ ही होगा। रंगमंच पर अभिनीत नाटकों को हम अधिक प्रबुद्धता तथा आनन्द के साथ देख सकेंगे।

यहां एक उल्लेखनीय मनोरंजक बात यह है कि नाटक देखने पर नाटक के दर्शक जो अनुभव करते हैं उसे साहित्य के कुछ विवादियों ने एक विशेष प्रकार का 'भाव' कहा। किन्तु फिर तुरन्त ही सिद्धान्तवादियों का एक दूसरा वर्ग उभर आता है जो इनको परास्त कर देता है और बेचारे व्यग्र दर्शकों के मनों में उठने वाली प्रतिक्रियाओं को 'आनन्द' की संज्ञा दे डालता है क्योंकि उसका विचार होता है कि 'भाव' शब्द से कोई विशेष अर्थ नहीं निकल पाता है। बात यहीं समाप्त नहीं होती। कहीं किसी

दूसरे कोण से विचारकों का एक दल और आ जाता है और घोषणा करता है : 'आनन्द' की बात तो कोई बात नहीं, क्योंकि 'आनन्द' का उद्भव तो उस 'भावना' से होता है जिसे 'सौन्दर्य बोध' कहना चाहिये। और आप जानना चाहते हैं कि अपनी बात को अभिव्यक्त करने के लिए ये समालोचक किस शब्द का प्रयोग करते हैं? उनका कहना है कि दर्शक नाटक को 'जान' लेता है अथवा उसका 'ज्ञान' एक विशिष्ट प्रकार का 'ज्ञान' होता है और अन्य ज्ञानों से भिन्न होता है। और अन्त में किसी दूसरे कोने से कोई और दहाड़ता है—अरे, वह तो 'ज्ञान' की नहीं, 'अनुभूति' की बात है।

मैं आपसे सच बताऊं, वे अपना विवाद इस प्रकार कभी भी समाप्त नहीं करेंगे और यदि हम उसी में उलझे रह गये तो समस्या को ठीक-ठीक समझना भी कठिन हो जायगा। जहाँ तक शब्दों का प्रश्न है, हम कला के क्षेत्र के बाहर जाकर चाहे जिस शब्द का प्रयोग करें जहां तक कला के अन्तर का प्रश्न है मैं व्यक्तिगत रूप से यह समझता हूं कि 'ज्ञान' अथवा 'अनुभूति' आदि शब्द इतने निश्चयात्मक नहीं हैं कि उस प्रतिक्रिया को ठीक-ठीक व्यक्त कर सकें जो हमारे मस्तिष्क में एल ग्रेको की रचनाएँ अथवा चीन की सुन्दर मूर्तिकला देख कर उत्पन्न होती है, और इन शब्दों से न तो उन क्षणों का ही आभास मिल सकता है जब रंगमंच के सामने अन्धकार में बैठे हुए नाटक देखने में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि हमारे होंठ तो चुप रहते हैं किन्तु आत्माएं मुखरित हो जाती हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से कदाचित् उन साहित्यिक विवादियों की ओर आर्कर्षित हूं जो दर्शक के मन में भाव अथवा भावना की बात कहते हैं और यह विश्वास करते हैं कि कला जितनी ही उत्तम, उत्कृष्ट होगी, दर्शक की भावनात्मक प्रतिक्रिया भी उतनी ही उत्तम और उत्कृष्ट होगी और इसीलिए सबसे उत्तम नाटक वे हैं जिनमें गहन भावनात्मकता उत्पन्न करने की अधिक-से-अधिक से क्षमता हो। मैं अपनी ओर से केवल यह समझाना चाहता हूं कि भाव अथवा भावना का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक होता है और उसकी सीमा कदाचित मानव-जीवन के उस पहलू का भी स्पर्श कर लेती है जिसे 'आध्यात्मिक' कहा जाता है। सौन्दर्यबोध-जन्य प्रतिक्रिया के वास्तविक निवास के अन्वेषण में हमें आत्मा से भी अधिक गहराई तक डूबना सम्भव नहीं।

कला के प्रति दर्शक की प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त 'भाव' शब्द की जो कुख्याति हुई उसका एक कारण है। उन्नीसवीं शताब्दी में उन बहुत से लोगों ने, जो अपने को कला का प्रेमी कहते थे, अपने सच्चे भावों को दबाना प्रारम्भ कर दिया था—उनकी आकांक्षाएँ, भावुकतावादी रचनाओं का आनन्द उठाने तक सीमित रहीं और उन्होंने जीवन की नीरसता अथवा शुष्कता को कला से मिटाने का प्रयत्न किया। साथ ही उन्होंने कला को आध्यात्मिकता से बहुत दूर भावना के एक क्षेत्र में

स्थापित करने का प्रयत्न किया जहां भावना अत्यन्त ही व्यक्तिवादी हो जाने के कारण मीठी, मृदुल किन्तु स्थूल हो जाती है। उन्होंने कला को पृथ्वी पर स्वर्ग को पाने में सहायक एक अस्पष्ट आदर्श माना और उसे अपने भावुकतापूर्ण स्वप्नों में बाँधे रहने का प्रयत्न किया। भावुकता में वे अपने को नायक कहने लगे और स्वयं को प्रेमी समझने का सपना देखने लगे। कला को उन्होंने एक ऐसे संसार की जननी माना जिसमें उनका जीवन मीठा और आमोदपूर्ण प्रतीत होने लगे।

और कलाकारों ने भी उनका साथ दिया। यही कारण है कि जहां सच्चे, अपनी कला के प्रति ईमानदार नाटककार की संख्या एक थी वहीं भावुकतापूर्ण नाटकों की मांग पर सस्ते सुखान्तक लिखने वालों की संख्या सौ थी। और भावुकता का गन्दा पानी पैदा करने वाले ये नाटककार जैसे अल्पजीवी सिद्ध हुए, वैसे ही वे दर्शक भी अल्पजीवी रहे जो सस्ते नाटकों को देखकर भ्रष्ट और छिछली भावुकता से भरी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करने लगे।

इस प्रतिक्रिया के संदर्भ में एक और भी दृष्टिकोण सामने आ जाय यदि हम इस बात को स्मरण करें कि उन्नीसवीं शताब्दी में कला पलायनवादिनी थी। लोगों का तर्क था कि हमारा जीवन, जैसे हम उसे जीते हैं, अत्यन्त ही कठिन और कल्पनाहीन है, जैसे वह एक प्रकार का कारावास हो। कला का यह धर्म है कि वह यदा-कदा हमें इस जीवन से दूर ले जाय और एक ऐसे नवीन संसार की रचना करे, जहां हमारी क्लान्त भूखी आत्मा को विश्राम मिले, उसका मनोरंजन तथा नवीनीकरण हो, वास्तविक जीवन की थका देने वाली भाग-दौड़ तथा निम्नताओं के अत्याचार से हमारा त्राण हो। साथ ही वह संसार हमारे दैनिक जीवन से इतना भिन्न हो जितना भिन्न वह हो सकता है, किन्तु प्रकृति के बाहरी रूप में कोई विकृति, अथवा हमारी मान्यताओं में कोई अन्तर अथवा व्यवधान न आने पाये और उस संसार में हमें क्रूर कठिन सत्यों के अन्वेषण की ही आवश्यकता न पड़े। हमारी इसी भावना के कारण उस वास्तविकतावादी रोमांस-वाद का जन्म हुआ जिसमें परियों की कथाओं की मधुरिमा थी, मिथ्या परिकल्पना नहीं; बड़ी-बड़ी क्रियात्मक उपलब्धियां थीं, आध्यात्मिक धारणा नहीं; यथार्थ की मीठी मिथ्या कहानी थी, वैभव था और प्रचलित गुणों के लिए प्रतिष्ठा थी, पुरस्कार था। ऐसी कला में दर्शक नाटक के पात्रों से, अथवा वस्तु-विषय से, अपनी आत्म-प्रशंसात्मक तुलना भी करता है जो इस प्रकार की कला की अनिवार्य आवश्यकता मानी जाती है। कला और मनोविनोद के बीच दर्शक अपने अहं को भी सहलाने से नहीं चूकता। कला अथवा नाटक के विषय की भी खूब धज्जी उड़ती है और जो विषय सबसे प्रमुख होता है, अथवा प्रमुख सिद्ध किया जाता है, उसका लक्ष्य जीवन को अधिक से

अधिक आमोदपूर्ण चित्रित करने की ओर होता है।

कला की इस विक्टोरियाकालीन विचार-परम्परा के विरोध में अभी हाल ही में यथार्थवाद का एक और रूप उभरना आरंभ हुआ है। उसमें जीवन के कम से कम भावुकतावादी और अधिक-से-अधिक पार्थिव पक्षों की, हमारा जीवन ऊपर-ऊपर, सतह पर जैसा है उसकी, अभिव्यक्ति होती है। दुष्ट अथवा धूर्त चरित्रों का गुणगान और वीभत्सता से प्रेम उस कला का मुख्य लक्ष्य है। उन वीभत्स कलाकारों का सर्वप्रिय माध्यम नाटक है। जीवन के निकृष्ट, कलुषित मार्गों का क्रूर चित्रण उन कलाकारों का अभीष्ट है। वे प्रत्येक वस्तु में एक दोष अथवा विकृति, प्रत्येक कार्य के पीछे एक नीच भावना तथा प्रत्येक नायक में कुछ ख़ास बुराइयां ढूँढने में प्रवीण हैं। ऐसे यथार्थवाद को नाली की गन्दगी का यथार्थवाद कहना चाहिए जिसमें मलिन अन्धकार भी है और अश्लीलता भी। 'सेक्स' के प्रश्न को असंगत, निरर्थक ढंग से सामने लाकर महत्वपूर्ण केवल इसलिए समझ लिया जाता है कि उस पर अभी तक पर्दा पड़ा था। साथ ही यह भी विश्वास कर लिया जाता है कि जीवन की अधम मलिनता सच्चे और ईमानदार व्यक्ति की स्वाभाविक परिणति है। भ्रमाच्छन्नता और मनुष्य-द्वेष सब-कुछ हो जाता है और 'जो है, जो दिखलायी पड़ता है' उसी को सत्य मान लिया जाता है और समझ लिया जाता है कि एक विचारशील मनुष्य के लिए इससे अधिक और चाहिये ही क्या ?

यह भावुकता का पोषण करने वाली कला के विरुद्ध, कला की किसी दूसरी मीठी दुनिया में पलायन करने की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया थी। यहां हमारे प्रिय पाठक इस बात की ओर ध्यान दे रहे होंगे कि इन तथाकथित यथार्थवादियों ने भी कला को उतना ही अधिक विकृत किया जितना 'सुखान्त नाटककारों' ने। कला को वे ऐसी नलिका बनाते जा रहे हैं जिसमें दर्शक अपनी आँख डालकर सतही जीवन की कुरूपता को देखकर अपनी मानव-द्वेषात्मक प्रवृत्ति को सहला सकें। कला बन्दनवारों से सजा वह सिंहद्वार नहीं रह गयी जिसके उस पार स्वर्ग दिखलायी देता है। एक कला कहती है—'जीवन में बस दुःख ही दुःख है' और दूसरी कला का सन्देश है—'जीवन में जो कुछ है वह सब सुखद-सुहावन है।' अपने-अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करने में, अपने-अपने विचारों को पुष्ट करने में, ये कलाएँ इतनी व्यस्त हैं कि वे मानव-जीवन की आन्तरिक गहराई और उसके वास्तविक आधार को ही विस्मृत कर चुकी हैं। सतही तथ्यों से परे जीवन में कुछ ऐसा भी है जो उन्नत और आदर्श है, और जिसे आवश्यकता है औपचारिक अभिव्यंजना की। इस बात की ओर उनका ध्यान नहीं।

मुझे बड़ा आवेश आ रहा है। मैं रंगमंच पर चढ़कर ललकारना चाहता हूं—

'पलायन ! चित्रण ! अंधकार! किन्तु कला से उनका क्या वास्ता ? वे तो कला को रोकते हैं। यदि तुम कला को एक ऐसी गतिविधि नहीं मानते, जो स्वयं में सम्पूर्ण है और स्वयं में महत्वपूर्ण है और दर्शक के लिए भी जिसकी एक विशिष्ट महत्ता है; यदि तुम्हें कला में जीवन की गहनता और गूढ़ता अथवा जीवन को गहन-गूढ़ करने की क्षमता के दर्शन नहीं होते और उसमें तुम जीवन की कोई मिथ्या मिठास या जीवन का कोई मटमैला पहलू ढूँढते हो तो याद रखो कि वह कला नरक की मिट्टी से भी निकृष्ट है। कला जीवन की गूढ़ता की एक शैली है, जीवन की जानी और अनजानी ललित सूक्ष्मताओं का किसी विशेष विन्दु पर मिलना और केन्द्रीभूत होना है। कला मानवीयता और दिव्यता की सम्मिलित मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है, जीवन की अनवरत धड़कन है, आत्म की अध्यात्म में परिणति है, तल्लीनता है।'

रंगमंच अथवा नाटक की कला में (इस क्षण अपने को नाटक के श्रोताओं के बीच कल्पना करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है) कलाकारों, स्रष्टाओं तथा अन्य कार्यकर्ताओं के लगभग एक पूरे समूह की आवश्यकता होती है जब कि अन्य कलाओं में केवल मूर्तिकार अथवा चित्रकार अथवा एक कवि ही पर्याप्त होता है। और इस कला के लिए अनिवार्य सामग्री की तो कोई सीमा ही नहीं होती। नाटककार, सज्जाकार, संगीतकार, अभिनेता, यहां तक कि प्रकाश का प्रबन्धक और बढ़ई भी इसके लिए अनिवार्य है और प्राय: ये सभी व्यक्ति मिल-जुलकर शब्द, संगीत,पद चालन,मुद्रा अथवा हाव भाव,प्रकाश, मूक अभिनय, पर्दे, चित्र, सजावट के अन्य उपकरण तथा अभिनेताओं के वस्त्र आदि सभी वस्तुओं का समुचित उपयोग करते हैं। किन्तु इन सारे व्यक्तियों और वस्तुओं से परे, रंगमंच अथवा नाटक की कला में जो गुण सबसे महत्वपूर्ण है वह है नाटक का 'रूप'। यहाँ हम न तो नाटककार के योगदान की बात करेंगे और न अभिनेताओं की महत्ता की। यहां हमारा ध्यान केवल पुनःसर्गक निर्देशक (रिचेस्योर) पर होगा जो बीसवीं शताब्दी की रंगमंचीय कला में कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और श्रोताओं के सामने नाटक को प्रस्तुत करने का दायित्व भी उसी का है।

हम अपने सामने के रंगमंच को देखते हैं, (नाटककार की पांडुलिपि अथवा अभिनेता के अभिनय से प्रारंभ न करके हम अपना अध्ययन यहीं से आरंभ करेंगे।) और हमारा ध्यान उस रचना अथवा कृतित्व पर है जो अपने सम्पूर्ण, केन्द्रीभूत रूप में हमारे सामने आ रहा है। रंगमंच के कलाकार ने इस नाटक में वह कौन-सी बात कही है, वह कौन-सी चीज़ बनायी है जो नाटक की कथा और कविता, नाटक के प्रवाह, अभिनेता के सृजनात्मक अभिनय तथा रंगों और प्रकाश के आयोजन से भी अधिक समय उत्तम है ?

उस वस्तु अथवा सृजन को आप इन सम्पूर्ण साधनों का सम्मिलित मेला कह सकते हैं अथवा मिला-जुला बहाव कह सकते हैं क्योंकि प्रायः ये सभी तत्व की प्रधानता से दूर, उस बहाव के अन्तर में नाटक का रूप अथवा लय सन्निहित होता है जो नाटक का विशेष गुण माना जाता है और दर्शक भी संभवतः उसी गुण अथवा विशेषता में नाटक का जीवन देखता है, आत्मा का अजस्र प्रवाह देखता है और उन दूरस्थ तथ्यों की झांकी पा लेता है जो नाटक के बाह्य अर्थ अथवा दृष्टिगोचर होने वाले सतही तत्वों से विलग निवास करते हैं। और जैसे चित्रकला में रंग की अनिवार्यता है—रंगों की निहिति के बिना चित्रकला के महत्वपूर्ण रूप की कल्पना हो ही नहीं सकती—और जैसे मूर्तिकला में पिंड की अनिवार्यता है, उसी तरह नाट्य-कला में एक विशिष्ट परिपूर्णता, दीप्ति और नाटक की क्रिया में भरपूर जटिलता अथवा उलझाव की परिणति भी अनिवार्य हैं। रंगमंचीय कला की वही आत्मा है, वही अनुभूति है, प्रतीति है।

कुछ विशिष्ट प्रकार के नाटकों में इन्द्रियपरक तत्वों को नाटक की गति अथवा प्रवाह में अनिवार्य माना जाता है। ऐसे नाटकों में नाटक के रूप के उन पहलुओं पर विशेष बल दिया जाता है जो दर्शन की ऐन्द्रिकता को सुख पहुँचाते हैं और नाटककार अथवा निर्माता उनसे पर्याप्त लाभ भी उठाता है। ऐसी रचनाओं में प्रवाह अधिक संगीतात्मक होता है, रंगीनी होती है और उनकी लयात्मकता में भी एक ख़ास नज़ाकत होती है, भंगिमा होती है। ऐसे नाटकों में आकर्षण का केन्द्र तर्क-संगत शब्दों अथवा सधे-सधाये भाव अथवा कथानक के नपे-तुले उन्मेष में नहीं; विभिन्न तत्वों के स्वच्छन्द, उष्ण प्रवाह अथवा बहाव में होता है। किन्तु अपेक्षाकृत कम रंगीन और अधिक साहित्यिक नाटक को भी रंगमंच पर अटूट, धारा-प्रवाह रूप से प्रस्तुत करना पड़ता है, अन्यथा रंगमंच की दृष्टि से वह कम सफल होता है और अन्ततोगत्वा कार्यकर्ता इस बात का वस्तुतः इतना गहरा विश्लेषण नहीं करते किन्तु इन बातों को व्यक्त करने के लिए उनके पास भी कुछ ख़ास शब्दावलियां अवश्य हैं। किसी नाटक-विशेष के लिए वे कह सकते हैं कि वह नाटक चला नहीं अथवा उसके क़दम डगमगा गये।

संसार में यदि कोई बौद्धिक कला जैसी चीज़ भी हो तो स्मरण रखना होगा कि रंगमंच की कला उससे कोसों दूर है। उन शांत, अद्भुत् तथा अत्यन्त ही अलौकिक क्षणों में, जब बुद्धि का कार्य गौण हो जाता है और दर्शक की आत्मा नाटक की आत्मा से घुल-मिल जाती है तभी, रंगमंचीय कला के वास्तविक वैभव, जीवन, अथवा प्राण का आभास मिलता है। यह बात अनेक बार कही जा चुकी है कि 'क्रिया' नाटक की आत्मा होती है और रंगमंच पर नाटकों के प्रदर्शन में भी वही एक ऐसी चीज़ है जो सर्वाधिक अनिवार्य है। किन्तु नाटक की इस क्रिया की परिभाषा को और भी विस्तृत

करना होगा, उसमें इन्द्रियों को उत्सुक करने वाले उन विशेष गुणों का भी समावेश मानना होगा जो अन्ततोगत्वा दर्शक को नाटक के चरम क्षणों तक ले जाते हैं। बुद्धिमान् निर्देशक इस तथ्य को जानते रहते हैं और साथ ही वे यह भी जानते हैं कि नाटक की क्रिया का जो साधारण अर्थ होता है उसके अनुसार नाटक के प्रदर्शन में दो बातें मुख्य मानी जाती हैं---शारीरिक गति (अभी हाल ही में इस तथ्य की ओर अभिनेता-निर्देशकों का ध्यान काफ़ी तेज़ी से गया है) और नाटक की कथा की प्रगति, अर्थात् कथानक का बहाव जिससे नाटक में निहित मर्म का स्पष्टीकरण होता है।

नाटक में 'क्रिया' की बात करते हुए कुछ समालोचक नाटक की कला की व्याख्या इस प्रकार करते हैं : नाटक के क्रियात्मक पक्ष को साकार करने के लिए अभिनेताओं की आवश्यकता होती है। अभिनेताओं को दर्शकों की दृष्टि के सामने अपने को स्पष्टतः प्रस्तुत करने के लिए एक ऊंचे मंच की आवश्यकता होती है और इस प्रकार स्वयं रंगमंच को भी नाटक को प्रस्तुत करने के लिए अनिवार्य सामग्री की सूची में आना पड़ता है। और तब नाटक के आकार, रूप तथा प्रकाश आदि का प्रश्न भी सामने आता है और यदि रंगमंच इस प्रकार का है जिस पर सजावट अथवा अलंकार-गुण को सर्वोपरि समझा जाता है अथवा जिस पर निर्माता की आविष्कारिका बुद्धि को भी प्रश्रय देना होता है तब मंचीय सज्जा-सम्बन्धी कुछ और भी व्यापक सिद्धान्तों का प्रतिपालन होता है। नाटककार नाटक का 'सिनेरियो 'अथवा रूपरेखा तैयार करता है जो अभिनय की आधार-शिला होती है; वह शब्दों को अभिव्यक्ति अथवा प्रत्यक्षी-करण का विशेष माध्यम मानता है जिन्हें कभी-कभी वह कविता से मंडित और सज्जित भी करता है। किन्तु अब (और यही एक बात है जो नाटक के सिद्धान्त को बीसवीं शताब्दी की अपनी मौलिक देन है) हम यह मानते हैं कि नाटक के प्रदर्शन में नाटककार, अभिनेता, सज्जाकार, नाटक के प्रवाह अथवा बहाव, नाटक की कथा, कवित्व, सजावट आदि सभी व्यक्तियों और तत्वों की अनिवार्यता स्वीकार कर लेने के बाद भी उसमें वास्तविक कलात्मक एकता का भंडार तब तक नहीं हो पाता जब तक कोई अन्यतम कलाकार उत्पन्न होकर उन्हें एकता के एक सूत्र में बाँध न दे। इसके लिए एक नवीन सर्जक अपेक्षित होता है जो अन्य कार्यकर्ताओं को पारस्परिक सहयोग और संविधान में बाँधकर उनके कार्यों को उनकी महत्ता के अनुसार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभाजित और आयोजित कर दे। यह कार्य करता है वह निर्देशक जो स्वयं भी एक कलाकार होता है।

यह कलाकार-निर्देशक प्रायः सम्पूर्ण प्रक्रिया को फिर से रचकर अभिनय के बहाव को अटूट और अनवरत बनाता है और रचना की उत्प्रेरिका शक्तियों को समन्वित

तथा संश्लिष्ट करता है। रंगमंच पर उसकी अवतारणा अपेक्षाकृत एक नई घटना है। उसके पहले वह इतना महत्वपूर्ण कभी नहीं हो सका कि नाटक के इतिहास में उसका स्मरण किया जाता। हां, यदि वह साथ ही कोई प्रमुख, प्रख्यात अभिनेता भी होता था तो उसे नाटक के इतिहासकार अवश्य उल्लेखनीय समझते थे। किन्तु अब दशा यह है कि आज के ये कलाकार-निर्देशक अभिनेताओं और नाटककारों से भी अधिक महत्व-पूर्ण हो गये हैं (बर्नार्ड शा को इस बात का अपवाद समझना चाहिये)। गार्डन क्रेग, मैक्स रीनहार्ट तथा स्तानिस्लावस्की प्रभृति कलाकारों की ख्याति अब पौराणिक हो चुकी है। किसी अगले अध्याय में नाटकों के प्रदर्शन-पक्ष को भी जब एक नयी कला के रूप में स्वीकार किया जायेगा तब कलाकार-निर्देशक तथा नाटक की 'क्रिया' को एक नवीन अर्थ-गाम्भीर्य देने की दिशा में उसके महत्वपूर्ण योगदानों का और विस्तृत अध्ययन संभव हो सकेगा। यहां मेरा मन्तव्य केवल इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना है कि हम अब नाटक के प्रदर्शन में प्रयुक्त सामग्री को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी समझना सीख गये हैं, इस कला के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल गया है, और हमारा ध्यान अब रंगमंच के गौण कार्यकर्ताओं से खिंचकर उसके सर्वप्रमुख कार्यकर्ता, कलाकार-अभिनेता पर केन्द्रित हो गया है।

कोई निर्देशक किसी नाटक के 'रूपात्मक' पक्ष को रंगमंच पर प्रदर्शित करने के निमित्त किस मार्ग का कैसे अनुसरण करता है इसको समझने के लिए यहां हम दो, एक दूसरे से भिन्न, प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। हम एक नृत्य-नाटिका अथवा 'बैले' देखने जाते हैं। हमारी इन्द्रियाँ रचना में संगीत, नृत्य, वातावरण, रंगीनी लय और रचना की पकड़ में आ जाती हैं। रचना का रूप इन्द्रियपरक हो जाता है और हमें ज्वार की तरह अपने में डुबो लेता है। निर्देशक कहानी के एक सूत्र मात्र को पकड़ कर रंगमंचीय परिधान दे देता है। और ऐसा वह प्रदर्शन के बहाव को रंगीनी की एक विशिष्ट निर्झरिणी में प्रवाहित करके संभव बनाता है।

दूसरे दिन हम एक आधुनिक यथार्थवादी नाटक देखने जाते हैं, जिसका नाम, मान लीजिए, 'जान फर्गुसन' है। यह नाटक पत्रकारिता-शैली की कोई निम्न-स्तरीय दुनियाबी रचना नहीं; किन्तु यह उतनी ही नंगी, अपने दृष्टिकोण में उतनी ही सीमित और वास्तविकता पर निर्भर है जितनी ऐसी हर रचना होती है जिसकी प्रतिक्रिया आपके मन पर औपचारिक भी होती है और औपन्यासिक भी। कहना यह चाहता हूँ कि जब इस रचना को न्यू यार्क थियेटर गिल्ड के लिए आगस्टिन डंकन जैसा निर्देशक प्रस्तुत करता है तो उसमें वह क्षमता आ जाती है जो दर्शक को अपने आकर्षण में उसी विषय के केवल एक उपन्यास की तरह ही नहीं खींचती बल्कि उसे कुछ ऐसे

क्षणों की भी अनुभूति कराती है जब उसका मस्तिष्क बिल्कुल नीरव हो जाता है और उसकी आध्यात्मिक चेतना मुखरित हो जाती है। रंगमंच पर नाटक देखने की अनुभूति की यह सच्चाई है। अभिनेताओं, अभिनेत्रियों का चुनाव भी इतना सही होता है और उन्हें ऐसे प्रशिक्षित किया जाता है कि दर्शक का ध्यान किसी एक अभिनेता अथवा अभिनेत्री के अभिनय की ओर न जाकर सामूहिक अभिनय की ओर टिका रहता है; रंगमंचीय सज्जा का प्राय: विस्मरण हो जाता है, अभिनेताओं की शारीरिक गति तथा उनके हावभाव भी इतने सन्तुलित रहते हैं कि ध्यान उन पर भी नहीं जाता, किन्तु फिर भी दर्शक पर उसका प्रभाव इतना सच्चा पड़ता है कि उसका अर्द्धचेतन मन मुखरित और प्रतिध्वनित हो उठता है। संक्षेप में, यदि नाटक के कथा भाग को हम भूल भी जायें, तो भी हमें मानना पड़ेगा कि रंगमंचीय प्रसाधनों के प्रयोग से निर्देशक ने एक ऐसी रचना का सृजन कर दिया है जो दर्शक के मन को उद्वेलित कर सकती है। उपर्लिखित नृत्य-नाटिका की तरह रंगशाला के इस के 'रूप' ने भी हमें अपने में कर लिया है। अधिकार में कर लिया है।

अब हम अध्याय के शीर्षक की ओर लौटेंगे। रंगमंच की सम्बन्धिनी-कलाओं ने बहुधा रंगमंच पर पूरा-पूरा हावी हो जाने का प्रयत्न किया है। साहित्य की कला ने तो रंगमंच को अधिकृत कर लेने के बारम्बार प्रयत्न किये। और उन लोगों ने, जिन्होंने कभी कोई नाटक देखा भी नहीं था, 'साहित्यिक नाटकों' की रचना करना आरंभ कर दिया और रंगमंच के व्यवस्थापकों और कुछ 'नाट्य-सभाओं' ने भी उन्हें मंच पर प्रस्तुत करने का प्रबन्ध करके रंगमंचीय कला का 'स्तर' ऊंचा करने का प्रयत्न किया। ऐसा अधिकांशत: 'रेनेसां' अथवा पुनर्जागरण-काल अथवा उन्नीसवीं सदी के 'क्लोज़ेट-ड्रामा' (ऐसा नाटक जो पढ़ने के लिए लिखा गया, रंगमंच पर प्रदर्शन के लिए नहीं) के युग में हुआ था। क्लासिकल साहित्य की परंपरा के समाप्त हो जाने के बाद भी साहित्य के कुछ सुधारवादियों ने क्लासिकल नाटकों की परंपरा को चलाते रहने का प्रयत्न किया और उन्हीं को रंगमंच पर प्रदर्शन के लिए उपयुक्त सच्चा साहित्य भी बताया। इन सुधारवादी निर्माताओं का ध्यान इसलिए प्रदर्शन के अन्य तालों पर न होकर नाटक के शाब्दिक पाठ मात्र की ओर टिका रहा; उनके प्रयास-मात्र साहित्यिकता की सीमा तक ही संचरित रहे; उनकी कृतियाँ पुस्तकालयों में अध्ययन की दृष्टि से तो उत्तम अवश्य सिद्ध हुईं और यद्यपि रंगमंच की दृष्टि से भी भूतकाल में उनका एक अच्छा जमाना था, किन्तु रंगमंच की आज की वाणी में उनका मुखरित न हो पाना उनकी नीरसता का एक कारण बन रहा है।

जब मैं युवा था तब निर्माताओं की एक सम्पूर्ण पीढ़ी ऐसे ही तथा-कथित

'क्लासिकल' नाटकों के भ्रष्ट प्रदर्शनों में होम हो जाने की प्रक्रिया में थी। उस समय यह विश्वास किया जाता था कि शेक्सपियर के 'हेमलेट', 'किंग लियर,' तथा 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' प्रभृति नाटक पढ़ने के नाटक हैं और नाटक की अपेक्षा काव्य-दृष्टि से बहुत अधिक उत्तम हैं। किन्तु बाद में रंगमंचीय कला की ओर और भी व्यापक महत्ता का जब निर्माताओं को ज्ञान हुआ तब शेक्सपियर एक बार फिर रंगमंच का सम्राट् बना। उसके नाटकों में उत्कृष्ट काव्यगुण तो हैं ही, मंचपर प्रदर्शन की दृष्टि से भी उतने ही उत्तम हैं जितना उन्हें शेक्सपियर के अन्तर का 'अभिनेता-कलाकार' बना सकता था। उनमें अभिनय की दृष्टि से उत्कृष्ट भूमिकाएं हैं, क्रियात्मकता है, गति है, प्रवाह है, मूक तथा मुखरित क्षण हैं, बाढ़ हैं, बहाव है। उसके नाटक उस रंगमंचीय रूप में सरलता से ढल भी जाते हैं जो नाटक के 'प्रदर्शन' को नाटक के 'साहित्य' से एक भिन्न कला सिद्ध करता है। शेक्सपियर का शब्द-सौष्ठव भी इतना अद्भुत है कि अभिनय के रूप में उसका सौन्दर्य और भी उन्मुक्त होकर सामने आता है। अपने को आहत करने के पहले जब ओथेलो कहता है :

आप कहें मेरे बारे में जैसा हूँ मैं,
न कुछ बढ़ाकर, और द्वेषवश, न कुछ घटाकर।
आप कहें उसके बारे में, प्यार खूब जो
कर सकता था, लेकिन नहीं समझदारी से।
उसके बारे में जो जल्दी शक में पड़ना
न जानता था, पर उकसा देने पर उसकी
उद्भ्रांति की थाह नहीं थी।

तब नाटक की क्रियात्मकता में अचानक एक ऐसा ठहराव आ जाता है कि श्रोता के मस्तिष्क में, आरंभ से अन्त तक, प्रायः सम्पूर्ण नाटक एक बार फिर नाच उठता है और दो क्षण बाद जब ओथेलो मरणासन्न हो जाता है तब उन क्षणों का नाटकीय प्रभाव और भी अधिक तीव्र और व्यापक हो जाता है। इसी प्रकार 'ओ रेमियो ! रोमियो ! तुम कहाँ हो मेरे रोमियो !' आदि शब्द भी केवल शब्द मात्र नहीं हैं, उनमें नाटक की सम्पूर्ण दुःखान्तता छिपी हुई है।

बहुधा ऐसा समय भी आता रहा कि रंगमंच बहुत व्यावसायिक हो गये

और दशाएँ इतनी गिर गयीं कि नाटककार की महत्ता निःशेष हो गयी। वे अन्य छोटी-मोटी चीजें लिखने लगे जिससे रंगमंच की पर्याप्त हानि भी हुई। डिकेंस, ब्राउनिंग और स्टीवेंसन जैसे महान् लेखक भी नाटक के द्वार खटखटाकर वापस लौट चुके हैं। किन्तु दोष दोनों पक्षों का है। नाटक की कला एक ऐसी कला है जिसमें ईर्ष्या और स्पर्धा बड़ी जल्दी हो जाती है। नाटक को सफल बनाने के लिए आवश्यकता है प्रायः सभी कार्यकर्ताओं के सम्मिलित प्रयत्न और सामूहिक लगन की। और इसीलिए जब रंगमंच को साहित्यकार का 'खेल का मैदान' बनाने का प्रयास किया जाता है तब रंगमंच के वास्तविक कार्यकर्ताओं का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही हो जाता है। यदि नाटक का लेखक प्रदर्शन की दशाओं और आवश्यकताओं का समुचित अध्ययन करने से इन्कार करता है तो अच्छा है कि वह नाटक से दूर ही रहे, क्योंकि वैसी दशा में नाटक के प्रदर्शन-पक्ष के प्रति उसकी भावना बहुत सच्ची नहीं हो सकती। किन्तु जहाँ प्रदर्शन की दशाएं एक लम्बी अवधि तक स्वाभाविक अथवा सच्ची न होकर कृत्रिम और झूठी रही हैं (जैसी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में न्यूयार्क की अधिकेन्द्रित और व्यावसायिक रंगमंचों पर पायी जाती थीं), जहाँ नाटककारों को निम्न-बुद्धिवाले निर्माताओं के साथ भी कार्य करना पड़ता है वहाँ नाटककारों के पक्ष में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। जो कुछ भी हो, स्वागत उसी कलाकार का होना चाहिए जिसमें साहित्यिक प्रतिभा के साथ ही रंगमंचीय योग्यता भी हो। स्मरण रखना होगा कि रंगमंच का कोई भी भाग स्वयं रंगमंच से भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। केवल कविता को अथवा केवल संगीत को अथवा केवल नृत्य को नाटक नहीं कहा जा सकता।

रंगमंचीय कला पर चित्रकला कभी बहुत हावी नहीं हो सकी, किन्तु प्रायः तीन शताब्दियों तक वह रंगमंचीय कला की एक अनिवार्य और अविभाज्य सहेली बनकर अवश्य रही। चित्रों से रंगमंच की सजावट की प्रथा को, जो सोलहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर १८९० ई० तक प्रचलित थी, झूठी अथवा फालतू सिद्ध करने की हिम्मत प्रायः किसी भी समालोचक में नहीं थी। किन्तु बीसवीं शताब्दी का आरम्भ होते ही, कुछ ही दशकों में, पश्चिम के प्रायः सम्पूर्ण देशों में प्रगतिशील रंगमंचों पर दृश्य-सज्जाकार का स्थान गौण हो गया और ऐसा होकर अच्छा ही हुआ क्योंकि चित्रों के कारण दर्शकों का ध्यान नाटक से विलग हो जाता है और उनसे नाटक की आन्तरिक लयात्मकता को भी तो कोई लाभ नहीं होता। किन्तु रंगों का प्रयोग तब भी होता रहा। हाँ, अब पृष्ठभूमि की सजावट में नहीं प्रत्युत प्रकाश के प्रबन्ध में। (१९०० ई० के आसपास ऐसे चित्रों का प्रयोग आरंभ हुआ जिसमें प्रकृतिवादी कलाकारों की उस कला

का समावेश हुआ जिसमें जीवन को ठीक वैसे ही अंकित करने की प्रथा थी जैसा वह दृष्टिगत होता है। चित्रण की जगह फोटोग्राफी का, तब चित्रकला का रंगमंच के साथ निकट का सम्बन्ध नहीं रह गया)।

चित्रकला रंगमंच पर अचानक आ गयी थी, और वह आही नहीं गयी थी उसने निर्माताओं को वशीभूत भी कर लिया था और प्राय: तीन सौ वर्षों तक राज्य करती रही थी। किन्तु महारानी विक्टोरिया के काल के साथ ही वह भी तिरोहित होने लगी। रंगमंच की सज्जा अब बिलकुल नाममात्र को रह गयी है--सपाट, दृश्य-रहित और इतनी साधारण कि रंगमच अब रिक्त दिखलायी पड़ता है। यथार्थ को चित्रों के माध्यम से समझाने का प्रयास अब बिलकुल बन्द है; हाँ, रंगों और प्रकाश के माध्यम से वातावरण की सृष्टि करने का प्रयास अब भी किया जाता है। प्रगति का विस्तार अब रंगमंचों के विस्तृत आकार तथा उनकी वास्तुकला की दिशाओं में हो रहा है। चित्रकला को पूर्ण ग्रहण लग चुका है और सजावट के लिए बड़े-बड़े चित्रों के प्रयोग का भी ज़माना अब लद चुका है।

रंगमंच से संगीत का सम्बन्ध अब भी निकट का है। रंगमंच की कला दृश्यों और ध्वनियों की सम्मिलित कला है। किन्तु उसकी भव्यता और आकर्षणशीलता बहुत कुछ रंगों के आयोजन पर भी निर्भर होती है। संभाषणों को पढ़ने का ढंग, मुख्य तथा गौण स्वरों में उनकी प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार कभी धीरे से, कभी ज़ोर से, पढ़ना और दुहराना, और शांत वातावरण की पृष्ठभूमि में मुखरित होता हुआ वाद्य-संगीत आदि भी उसकी अनिवार्य विशेषताएँ हैं। नाटक में संगीत के इस सामंजस्य का विरोध होता रहा है। किन्तु मैं समझता हूँ कि यदि नाटक से कवित्व-पक्ष को निकाल देने का कोई कारण नहीं तो वैसे ही उसका संगीत-पक्ष भी अनिवार्य है। नाटक के जटिल स्वभाव में कविता और संगीत खूब सुहाते हैं; वे आवश्यक प्रवाह उत्पन्न करते हैं। चित्रकला से यह कार्य कभी नहीं हो सका।

नाटक में संगीत का विरोध इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि वह नाटक से एक भिन्न कला है। हाँ, जब संगीत को अभिनय और नाटक से अनावश्यक रूप से सम्बद्ध करने का प्रयत्न होता है तब उसका विरोध अनिवार्य हो जाता है। नाटकों के कुछ विशिष्ट प्रकारों, जैसे नृत्य-नाटिका में, संगीत अवश्य ही सम्मान्य तथा आवश्यक है। आपेरा तथा संगीत-सुखान्तक आदि यदि उसकी निपट असम्माननीय संतति नहीं तो कम से कम संदिग्ध संतति अवश्य हैं।

आपेरा की कला अब भी सब से अधिक अभिजात कला है। उसकी चाह लोगों में बहुत है और वह सब से फ़ैशनेबुल कला है। इसीलिए विभिन्न कला-मन्दिरों में वह

प्रधान देवालय के समान है। किन्तु क्या आपने सुना है कि वे लोग उसकी उत्पत्ति के बारे में क्या कानाफूसी करते हैं? आपेरा की कला को बहुत से समालोचक संकर कला कहते हैं। आपेरा को देखने अथवा सुनने हम सामाजिक तथा अन्य कई कारणों से जाते हैं। आपेरा की ओर हम या तो वैगनर अथवा फ्लैगस्टैड के संगीत के कारण आकर्षित होते हैं अथवा किसी नवीन विज्ञापित रचना के कारण। दर्शकों के भड़कीले कपड़े अथवा कुछ खास नर्तक-नर्तकियों के हावभाव भी हमारा मन बहुधा मोह लेते हैं। किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमें अबतक एक भी ऐसा, स्वयं में सम्पूर्ण और परिपक्व, आपेरा देखने को नहीं मिला जिसमें हमें भावनात्मक एकता की वही अनुभूति अथवा प्रतीति हो जो हम अच्छे नाटकों के दर्शन से पाते हैं अथवा किसी सुन्दर संगीत में पाते हैं अथवा 'ओ कप्तान! मेरे कप्तान! हमारी भयानक यात्रा अब समाप्त होती है...?' आदि शब्दों के श्रवण अथवा पठन से पाते हैं। आपेरा निश्चित ही एक मिश्रित तथा विशृंखल कला है जिसमें सुन्दर तथा मोहक पैबन्द भी यदा-कदा अवश्य आ जाते हैं। संगीत-सुखान्तकों के बारे में मुझे बस इतना ही कहना है कि यद्यपि आरम्भ में उनका रूप संगीत अथवा नृत्य-नाटिका का था किन्तु बाद में वे स्वयं में सम्पूर्ण सुन्दर सृजनात्मक कृतियों के रूप में समादृत हुए। उनका अन्त भावुकतापूर्ण और मधुर होता है। जिनमें 'बैलेड' (वीर-कथाओं-पर आधारित लोकगीत) संगीत की भी प्रतिध्वनि होती है। किन्तु ऐसे संगीत-सुखान्तक अन्ततोगत्वा थके हुए व्यापारियों के मनोरंजन की वस्तु मात्र होकर रह जाते हैं।

रंगमंच पर नृत्य का सर्जनात्मक कला के रूप में प्रवेश तब होता है जब नाटक की आधारभूत प्रेरणा इन्द्रियों का मनुहार हो। किन्तु अतीत काल में तो नृत्य को यों भी दुःखान्तकों का एक अनिवार्य अंग मानते थे। यूनान के उत्तम दुःखान्त-नाटकों में तो उसके लिए विशेष स्थान निर्धारित होते थे और विश्वास तो यह भी किया जाता था कि भावनात्मक गहराई अथवा तनाव को कम करने के लिए नृत्य का समावेश परम कलात्मक भी है। आरंभ में तो वह यूनानी दुःखान्तों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व थी और उसी को डायोनिशस की कला की सच्ची अभिव्यक्ति माना गया। बाद में जब उसका प्रयोग आपेरा में भी किया जाने लगा। तब उसका स्तर गिर गया, उसमें कृत्रिमता आ गयी और ऐसा आभास होने लगा जैसे नाटक पर उसे योंही थोप दिया गया हो और वह पंगु हो गयी हो। इसलिए जो नाटक केवल नाटक थे, और सच्चे अर्थों में नाटक थे, उनसे उसका बहिष्कार कर दिया जाने लगा। किन्तु नृत्य के नवीन मूल्यांकन का समय एक बार फिर आया है और स्वप्नदर्शियों का विश्वास है कि निकट भविष्य में नाटक के किसी अन्य गम्भीर रूप में उसका प्रयोग एक बार फिर आरम्भ होने वाला है।

नाटक के 'रूप' के प्रति निर्देशकों, नाटककारों और आदर्शवादियों का विचार जैसे-जैसे सुधरता जायगा और स्पष्ट होता जायगा वैसे ही वैसे नृत्य, संगीत तथा चित्रकला आदि प्राय: सभी लयात्मक कलाएं नाटक के माध्यम से एक दूसरे के समीप आती जायेंगी। किन्तु अभी यह कहना कि संसार के नित्य बनने और मिटने वाले नाटकों में नृत्य को कब, कैसे एक अनिवार्य अंग मान लिया जायगा, हमारी कल्पना मात्र होगी।

पाश्चात्य देशों की अन्य कलाओं की भाँति पाश्चात्य नाटक भी अपनी यथार्थवादी पूर्वधारणाओं को छोड़ते जा रहे हैं और साथ ही नाटककार भी पूर्व के देशों के उन प्राचीन रंगमंचों की दशाओं से अपने को अवगत कराते जा रहे हैं जिन पर यथार्थवाद के चरण कभी नहीं पड़े थे। प्राच्य नाट्य-साहित्य की इस परीक्षण के परिणाम उन नाट्यशालायों में भी बड़े विचित्र निकल रहे हैं जो जीवन के सतही यथार्थ को चित्रित करने के लिए ही निर्मित किये गये थे। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों के 'मिरेकिल' ' (चमत्कार) नाटकों के प्रदर्शन में तो ऐसा भी होता था कि सिरकटे पात्र कभी-कभी अचानक जी उठते थे और फिर अपना ही कटा हुआ सिर उठाकर रंगमंच से चुपचाप निकल जाते थे। इसी प्रकार चीन के रंगमंचों पर रंगमंचीय उपकरणों का मालिक श्रोताओं की ठीक उपस्थिति में रंगमंच पर बार-बार आता है—कभी सिंहासन लगाने के बहाने, कभी चंदोवा उठाने के बहाने और कभी नायक को तलवार अथवा नायिका को 'हेयरपिन' थमाने के बहाने। पहली अवस्था में दर्शक नाटक को स्वयं अपने जीवन में उतारने की कल्पना में इतना व्यस्त रहता है कि किसी मृत पात्र का अचानक जीवित होकर अपना कटा हुआ सिर अपने हाथ में उठा लेना कोई असंगत बात नहीं लगती और दूसरी अवस्था में दर्शक मंचीय उपकरणों के मालिक को अपनी चेतना से परे रखता है और इसलिए उसे भी कहीं कोई असंगति नहीं दीखती। इन दोनों प्रकार के दर्शकों का चित्त नाटक की कथा, नाटक के क्रियात्मक बहाव की ओर होता है। नाटक की कथा अथवा बहाव के बाहर स्वाभाविक अथवा अस्वाभाविक क्या है, उनको इसकी चिन्ता बिल्कुल नहीं होती। यदि नाटककार और अभिनेता एवं दृश्य-सज्जाकार अपने कृतित्व को सतही प्रकृति से ऊपर उठा कर अधिक से अधिक सच्चा या स्वाभाविक बनाने का दम भरते तो दर्शक भी अवश्य ही इस दृश्य से क्षुब्ध हो जाता कि जो पात्र अभी-अभी मारा गया है वह अचानक उठकर कैसे चलने लगा और मंचीय उपकरणों का अधीक्षक का कार्य भी उसको एक अनावश्यक हस्तक्षेप प्रतीत होता। किन्तु इस प्रकार के दर्शक इस मतिभ्रम में कभी नहीं पड़ते कि वे नाटक नहीं, जीवन देख रहे हैं। नाटक का ऊपरी रूप ही उनको इस बात का स्मरण दिलाता है कि वे नाटक देख रहे हैं। वे परंपराओं को स्वीकार करते हैं और जो ख़ास नाटक

है अथवा ख़ास नाटक-सम्बन्धी ही कोई अन्य बात है उनका ध्यान बस उसी पर होता है और उनका आभास भी वे किसी भी क्षण पा लेते हैं।

हमारे रंगमंच इस प्रकार बदलने लगे। किन्तु अभी तक हमें ऐसा कोई कारण नहीं दीखता जिसके बल पर हम यह कह सकें कि बीसवीं शताब्दी के मध्य की नाट्य-कला अपनी कलात्मक पराकाष्ठा पर है। यदि सच पूछिये तो यथार्थवाद की नीरस शुष्कता के बाद आधुनिक नाटक अब बीमार होकर जी रहा है। मनुष्य के प्रति उसकी सेवाएं अब सीमित हो चुकी हैं; रंगमंच अब दर्शक के बहुत समीप आ गया है, बीच में बस एक पर्दा पड़ा रहता है; उसमें पात्रों के व्यक्तिगत जीवन के अन्तरंग तथ्यों की अभिव्यक्ति होने लगी है और कहीं-कहीं यदा-कदा 'सुरचित' सुखान्तकों की भी झलक मिल जाती है। इस प्रकार नाटक तथा उनके प्रदर्शनों में प्रायः उन सभी लक्षणों का सम्मिश्रण हो गया है जो कलाओं में क्रान्ति की नयी तरंग उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। चीनी तथा मध्यकालीन नाट्य-साहित्य की परंपराओं का जो पुनर्जागरण होने की संभावना है उससे हम इसका अनुमान लगा सकते हैं कि हमारा नाटक अथवा हमारा रंगमंच अब किस दिशा की ओर बढ़ने वाला है। इसी प्रसंग में हम अपनी कला-सिद्धान्त-सम्बन्धी अन्तिम बात भी कहना चाहेंगे।

आधुनिकतावादी कहते हैं कि रंगमंच को जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं, जीवन का प्रत्यक्षीकरण करना चाहिए। एक समय था जब वह केवल जीवन का प्रतिनिधित्व करता था और उसकी मंचीय सज्जा भी वास्तविक दृश्यों से यथा-संभव मिलती-जुलती सी निर्मित की जाती थी। पर अब से रंगमंच जीवन की अनुकृति करना छोड़ देगा और अब सबके ऊपर जीवन का आभास प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य नहीं होगा। रंगमंच बस रंगमंच रह जायगा (यथार्थवादियों ने रंगमंच को एक प्रकार से छिपा रखा था—पर्दा उठते ही ऐसा मालूम होता था कि सामने की चीज़ रंगमंच न होकर कोई वास्तविक सच्ची जगह हो)। परंपराओं और अस्वाभाविकताओं को स्वीकार करके, उन्हें विस्मृत कर दिया जायगा। रंगमंच और भी अधिक सृजनात्मक हो जायगा और निर्माताओं का ध्यान उसके अपने, औपचारिक रूप को सँवारने की ओर रहेगा। नाटक के प्रवाह, प्रदर्शन और प्रभाव-सम्बन्धी तत्वों तथा सीमाओं का भी नाटक की रचना में यथेष्ट हाथ रहेगा। उसमें जीवन के निरीक्षित व्यापारों, और फोटोग्राफों के समान जीवन के यथावत् चित्रणों का स्थान कम से कम रहेगा: साथ ही दर्शक को भी इस बात का भ्रम नहीं रह जायगा कि वह नाटक नहीं, जीवन की सच्ची, सही घटनाएं देख रहा है। उसे इस बात की निरन्तर चेतना रहेगी कि वह नाट्य-शाला में बैठा हुआ है और उसे जो अनुभूतियाँ हो रही हैं वे सर्वथा काल्पनिक तथा भावनात्मक हैं—साधारण जीवन से

सर्वथा परे, नाटच-रंग-रंजित ।

आधुनिक काल की रंगमंचीय कला की पद्धतियों का अनुशीलन करते हुए अन्त में कुछ इस तरह की बात कहना आवश्यक था । सत्य पूछिए तो हम आज वहाँ खड़े हुए हैं जहाँ किसी नवीन युग का आरम्भ होने के पहले की अराजकता अथवा अनि-यंत्रण है। हमारे दिन-प्रति-दिन के व्यावसायिक रंगमंचों पर यथार्थवाद की बुलन्दी अब भी कम नहीं हुई है। किन्तु साथ ही प्रयोगवादियों का वह सृजनशील दल भी सक्रिय है जो यथार्थवाद के विरोध में नवीन अभिव्यक्तिवादी मतों का प्रतिपादन कर रहा है। रंगमंच की कला को 'उपस्थितीकरण' की कला सिद्ध करने की दिशा में भी उनका प्रयास सराहनीय है। उनके नवीन प्रदर्शनों में नाटकों के गौरवपूर्ण भविष्य का पूर्व-संकेत है और प्राचीन औपचारिक रंगमंचों की विशेषताओं और यंत्रयुग के अत्यन्त ही अभि-व्यक्तिवादी जीवन का समुचित समन्वय है। नाटक का भविष्य उन्हीं के प्रयासों पर निर्भर है ।

यहाँ, जब कि लिखने को चार अध्याय अब भी शेष हैं, सहसा विश्वास करने को मन नहीं चाहता कि मेरे पाठक इन सिद्धान्तों और विवादों से थक और ऊब गये हैं। इस पुस्तक की रचना नाटक प्रेमियों की अपेक्षाकृत नवीन पीढ़ी को ध्यान में रखकर की जा रही है और साथ ही मैं चाहता यह भी हूँ कि अपने पाठकों के सामने नाटक तथा रंगमंच-विषयक कोई नवीन दृष्टिकोण भी रख सकूँ। प्रतिपादन तो वैसे मैं इस बात का भी करना चाहता हूँ कि नाटक-सम्बन्धी पुरातन धारणाओं से दूर भी अथवा नाटक को पलायनवाद की अभिव्यक्ति समझने के परे भी नाटक का अस्तित्व और रंगमंच को यथार्थ के चित्रण का माध्यम मात्र मानना हमारी भूल है। नाटक का एक साधारण दर्शक नाटक देखते हुए सोच सकता है कि जो घटनाएं नाटक में घटित हो रही है उनका जीवन की वास्तविक घटनाओं से कोई तादात्म्य है या नहीं और नाटक का मूल्यांकन भी वह कदाचित् इसी आधार पर करना चाहेगा। वास्तव में बात यह है कि इस प्रकार का दर्शक यथार्थवाद के अतिरिक्त और कुछ जानता भी नहीं है और इसीलिए अन्य प्रकार के नाटकों को भी वह यथार्थवादी नाटकों की ही कसौटी पर परखना चाहता है।

अगले अध्यायों में हमारा ध्यान इस तथ्य के प्रतिपादन पर होगा कि नाटक यथार्थवाद की अभिव्यक्ति की सीमाओं से परे, जीवन की गहन से गहन अनुभूतियों, भावों और तथ्यों का एक ऐसा संगम है जो हमें एक ऐसे लोक में ले जाता है जो हमारे साधारण, वास्तविक जीवन से बहुत दूर है। पहले जब किसी क्लासिकल ड्रामा में, क्लासिकल रंगमंच पर किसी ऐसे दृश्य को दिखलाने की आवश्यकता होती थी जिसमें फ़ौजों का आना-जाना अथवा संग्राम आदि वर्णित हों तो दर्शक इस बात की अपेक्षा नहीं

करता था कि रंगमंच पर भी नाटक का निर्देशक एक फ़ौज लाकर प्रस्तुत कर दे या एक पूरी लड़ाई ही दिखलाने लगे। सबसे अधिक आवश्यक बात मानी जाती थी ऐसी भावनाओं, अनुभूतियों अथवा कल्पनाओं का सृजन जिसके प्रभाव में दर्शक की आत्मा इस प्रकार आन्दोलित हो उठे जैसे वह सचमुच ही एक संग्राम देख रहा हो। यह सोचना भ्रामक होगा कि मिसेज़ टैंकरे ओफीलिया से उत्तम इसलिए है कि मिसेज़ टैंकरे हमारी तरह गद्य बोलती हैं अथवा उसके जैसे पात्र हमारे भी घरों में मिलते हैं, या मिल सकते हैं। आधुनिक रंगमंच का अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व हमें अपने मस्तिष्क से इस प्रकार की पूर्वधारणाओं का बहिष्कार कर देना होगा। कोई आवश्यक नहीं कि नाटक में म्लान, नीरस अथवा मनहूस सतही जीवन के चित्रण पर ही हम अधिक ज़ोर दें। समझना यह होगा कि नाटक वस्तुतः एक कला है जिसे जीवन के यथार्थ छायांकन से कोई सरोकार नहीं।
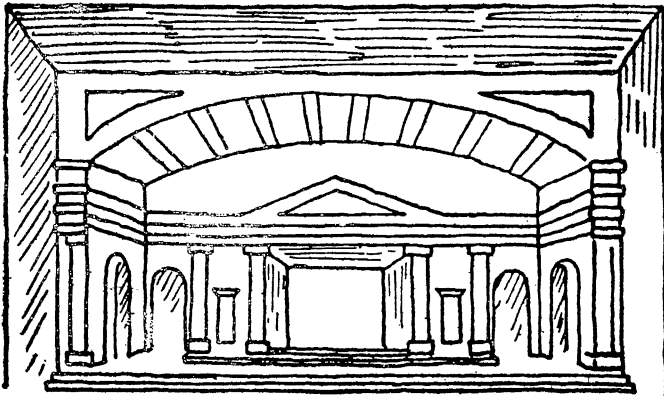
जर्मनी में, लगभग १८४० ई० में, शेक्सपीरियन नाटकों के पुनरुत्थान के लिए कार्ल इमरमान कृत रंगमंच। दृश्य डिज़ाइन में यथार्थवाद के विरुद्ध बिल्कुल आरम्भिक विद्रोह—उन आधुनिक इमारती रंगमंचों की ओर प्रथम क़दम जिन पर दृश्य-परिवर्तनों के लिए इन्तजार किए बिना ही अनवरत अभिनय की गुंजायश थी।

अध्याय २२

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की रंगशालाएँ

यथार्थवादी नाटककार की कहानी एक निजी दुःखान्त नाटक है। रंगशाला में उसका पदार्पण भी ऐसी रंगशाला में हुआ जो स्पष्टतः अस्वस्थ थी और अत्यधिक भावुकतावादिता, यंत्रात्मकता तथा बोझिल दृश्य-सज्जा के बोझ के नीचे दबकर दम तोड़ने लगी थी। यथार्थवादी कलाकार को असन्तोष इसलिए भी हुआ कि उसके सामने नाटकों के जो उदाहरण थे उनमें असंगति और कृत्रिमता थी, दृश्यों की सजावट में अवास्तविकता और अस्वाभाविकता थी और नाटक की प्रायः प्रत्येक वस्तु को इतना अधिक मधुर बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता था कि उनका वास्तविक जीवन से सम्बन्ध-विच्छेद-सा हो जाता था। यथार्थवादी नाटककार ने नाटक को स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी बनाने का प्रयत्न किया, जैसे वह नाटक न होकर हमारा सच्चा स्वाभाविक जीवन हो।

तो यथार्थवादी ने जमकर मोर्चा लिया। दर्शकों के संघर्ष के बाद उसने बने-ठने, सुरचित नाटकों के समर्थकों के छक्के छुड़ा दिये। अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए उसने यथार्थ पर आधारित नाटक भी लिखे और तत्सम्बन्धी सिद्धान्त भी प्रतिपादित किये। रंगमंच पर जड़ जमाने के लिए उसे जमकर लोहा लेना पड़ा। यथार्थवाद के नारे को उसने अपनी रणभेरी भी समझा और अपना धर्म भी, और इस प्रकार कठिन संघर्ष और लगन के द्वारा उसने विजय प्राप्त की और रंगमंचों पर यथार्थवाद का केतु फहराने लगा—उस यथार्थवाद का केतु जो 'यथार्थ' को कला की प्रथम कसौटी मानता है।

सफलता के प्रथम अरुणोदय में यथार्थवादी को आभास हो गया कि नाटक की जिस परम्परा को उन्होंने विजय दिलायी है, और जिसे कदाचित् अक्षुण्ण भी रखने की

इच्छा प्रकट की है, वह तुरन्त ही मरणासन्न होने लगी है। जीवन भर के अथक, अनवरत परिश्रम के पश्चात् तो यथार्थवाद का सितारा चमका था और पश्चिम के रंगमंचों पर उसकी तूती बोली थी। इसलिए यथार्थवादी को जब इस बात की प्रतीति हुई कि उसके नाटकों के प्रदर्शन व्यर्थ हैं और यथार्थवाद की मान्यता कला के रूप में नहीं हो सकती तो उसे निराशा हुई। संघर्ष से जूझने और विजय का आनन्द उठाने की प्रक्रिया में वह अभी व्यस्त ही था कि संसार कुछ और आगे बढ़ गया। दृष्टिशील कलाकारों और मनीषियों ने कलाओं की नयी बीथियां खोल दी थीं और संसार नाट्य-कला के ऐसे दूरगामी आधार निर्मित करने लगा था जहां पहुंचने के लिए यथार्थवाद के सामने कोई भी राह नहीं थी।

यथार्थवादी नाटककार की दशा ठीक उस योद्धा की तरह है जो लड़ाई के मैदान में खड़ा होकर अपनी ही विजय से व्यग्र और चकित हो रहा है। किन्तु उसके पास सन्तोष का एक बहुत बड़ा साधन है। वह अपनी ही व्यग्रता की थाह पा सकता है और हारे हुए लोगों की राख को हाथ में देखते हुए विजयी की मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता है। यही उसका सबसे बड़ा शौक़ है। मनुष्य के जीवन में जो कुछ भी नाटकीय है उसके प्रति पत्रकारी भावना लेकर वह जीवन के चिकित्सालय में प्रवेश करता है, मनुष्य के अन्तर के कड़ुवे भावों का विश्लेषण करता है, अनुभूतियों और विचारों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करता है। उसके सामने उसकी दुर्बलताओं, न्यूनताओं और उसकी स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को स्पष्ट करके रख देता है। मनुष्य के मानसिक जीवन के सामने दर्पण टिकाये वह इस बीसवीं शताब्दी में भी अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहा है।

जीवन के निरीक्षण पर आधारित तथ्यों से निर्मित यथार्थवाद का उल्लेख एक अध्याय में पहले भी किया जा चुका है। जिससे यह भ्रम हो सकता है कि यथार्थवाद बीसवीं शताब्दी का नहीं, उन्नीसवीं शताब्दी का गुण था। किन्तु स्मरणीय बात यह भी है कि यथार्थवाद की कहानी बीसवीं शताब्दी में भी कई दर्शकों तक चलती रहती है। युरोप और अमेरिका के बहुत से रंगमंचों पर यथार्थवाद की पताका अब भी उन्नत है। यथार्थवाद के प्रचलन को बीसवीं शताब्दी का अपवाद न कह कर उसकी एक विशिष्ट परम्परा कहना विशेष समीचीन है। ऐसा लगता है कि यथार्थवादी नाटकों की रचना अपने आप हो जाती है और अपने आप उनका प्रदर्शन भी हो जाता है। किन्तु दर्शकों को अपने आकर्षण में बाँधे रखने के लिए यथार्थवादी नाटककार वर्ष प्रति वर्ष लोमहर्षक कथानकों का भी समावेश करते जा रहे हैं। उनकी रचनाओं में भयावह तत्वों का सम्मिश्रण तो हो ही रहा है उनमें दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए छिपे हुए

मानसिक विकारों की भी अभिव्यंजना होने लगी है जिसे वे कला के नाम पर उपस्थित करते जा रहे हैं। मनोविश्लेषण विज्ञान ने इसके लिए एक अच्छा शब्द भी खोज लिया है---एक्सबिशनिज़्म अथवा प्रदर्शनवाद। यथार्थवादी रंगमंच के साथ यही एक भारी संकट है कि वे केवल उभार कर दिखाने के लिए ही उन सब वस्तुओं का प्रदर्शन करने की झक से ग्रस्त हैं जो सामान्यतः मानव के अवचेतन मन में दबी या शांत पड़ी रहती है।

कला के इतिहास में यथार्थवादी युग को जब सर्वाधिक शुष्क युग के रूप में स्वीकार कर लिया गया तब इस बीच रंगमंच के बाहर एक भारी आन्दोलन छिड़ा हुआ था। चित्रकला तथा मूर्तिकला के क्षेत्रों में जिन सिद्धान्तों को पिछले तीन सौ वर्षों से पवित्र माना जाता रहा है उन्हें सिंहासन से नीचे फेंक दिया जाता है और १९०० ई० के पश्चात् कला-निकेतनों और संग्रहालयों के रूप बिलकुल बदल जाते हैं। वास्तुकला के क्षेत्र में भी कुछ नवीन आयाम उत्पन्न हो जाते हैं तथा पुराने भवनों को ही तनिक इधर-उधर घटा-बढ़ाकर वास्तुकला में परिवर्तन लाने की कई सौ वर्ष पुरानी प्रथा का पतन हो जाता है। यह अवश्य है कि नाटकों की रचना इस काल में अपेक्षाकृत कम हुई किन्तु साथ ही कुछ ऐसे विद्वान् मनीषी भी उत्पन्न हुए जो रंगमंच को कला की मान्यता देने को प्रयत्नशील थे। इस दृष्टि से नाटकों की रचना से इतर भी पर्याप्त प्रगति हुई। रंगमंच के रूप तथा सज्जा-सम्बन्धी कुछ बहुत ही कान्तिकारी परिवर्तन सामने आये, निर्देशन को भी एक रचनात्मक ,सृजनात्मक कार्य समझा गया, नाट्यशालाओं के निर्माण में वास्तुकला की ऐसी प्रथाओं का अन्त हो गया जिनसे रंगमंच को अधिक से अधिक 'रंगमंचीय' अथवा 'रंगमंचानुकूल' बनाया जाता था और प्रदर्शन की संगठनात्मक पद्धति में भी सामाजिक, औद्योगिक तथा पूंजीवादी दशाओं को विचार करके कुछ विशिष्ट परिवर्तन किये गये। आशा यह की जाती है कि इन परिवर्तनों का प्रतिफल यथार्थवादी नाटकों के युग के पूरा-पूरा समाप्त हो जाने के पश्चात् ही सबसे अधिक मिल सकेगा।

नाट्यशालाएँ कोई तीन दशकों तक अपना शोधन एवं संस्कार करने में लगी रहीं, आडम्बरपूर्ण आपेरा-प्रदर्शनों में प्रयुक्त सामग्री की प्रथा कम होने लगी; सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों में राजमहलों के नाचघरों और असृजनशील उन्नीसवीं शताब्दी की नाट्यशालाओं की अलंकारपूर्ण वास्तुकलाओं का बहिष्कार किया जाने लगा। प्राचीन ढंग की दृश्य-सज्जा को ही उस काल की वास्तुकला का मुख्य अंग माना गया और भवन-निर्माता नाट्यशालाओं के आन्तरिक रूप का विचार न करके उन्हें बाहर से ही सजाने में व्यस्त रहे। वे स्वयं तो बिलकुल अमौलिक तथा असृजनशील थे, इसलिए

भूतकाल में प्रचलित प्रथाओं का आधार मानकर वास्तुकला की शैली को अधिक से अधिक अलंकृत करने में ही वास्तुकला की सिद्धि समझने लगे।

और जब नाट्यशालाओं की सजावट की बात आयी तब अलंकारों के प्रति
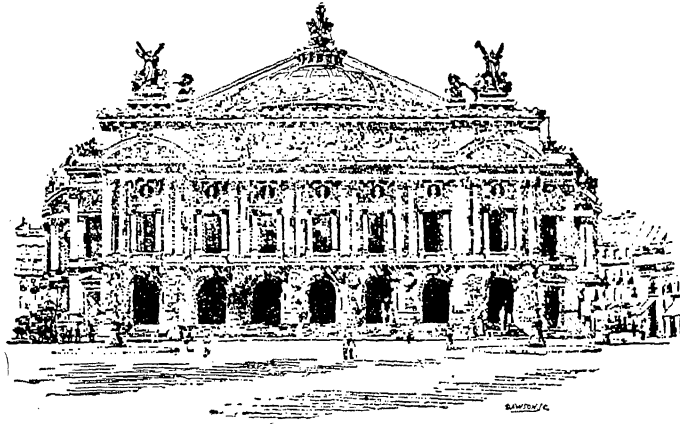
पेरिस आपेरा हाउस। (फ़िलिप गिलबर्ट हेमर्टन कृत 'पेरिस इन ओल्ड एण्ड प्रेज़ेन्ट टाइम्स' से।)

उनका जो राग था वह अबाध रूप से उमड़ पड़ा। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे उस समय की हर नाट्य-शाला पेरिस के आपेरा-भवनों में परिलक्षित फ्रांसीसी अभिरुचि की साकार, दैवी प्रतिमा बन जायगी। प्रस्तुत चित्र में दिखाये गये भवन में बहुत ही कम स्थल ऐसे होंगे जिनके लिए पाठक कह सकें कि उनके निर्माण में सच्चाई है अथवा ईमानदारी है। प्रत्येक इंच आडम्बरपूर्ण है, प्रत्येक इंच में मूर्ति कला की प्रदर्शनी सजायी गयी है; कहीं पत्थरों में बनी मालाएँ लटक रही हैं, कहीं देखने में सुन्दर स्तम्भ हैं। तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी है वह दिखावे के लिए है, वास्तुकला की 'राजसी' अभिव्यक्ति है—स्थूल, मोटी, किन्तु छिछली। हो सकता है कि प्रस्तुत चित्र फ्रांसीसी वास्तुकला की उत्कृष्ट उपलब्धि हो किन्तु प्राचीनता का अनादर करने में हमारी पटु

नवीन पीढ़ी यह आवश्यक नहीं मानती कि इस प्रकार की कला को संसार की नाट्यशालाओं के लिए आदर्श-स्वरूप माना ही जाय।

यदि आप प्राग के नेशनल थियेटर, अथवा सोफ़िया या मेक्सिको या मैड्रिड या वियेना या ओसलो की नाट्यशालाओं, या फ्रांस के बड़े-बड़े नगरों की नाट्यशालाओं को ध्यान से देखें तो आपको इसी प्रकार की वास्तुकला के उदाहरण मिलेंगे, बोझिल, व्ययपूर्ण; और उनकी राजसी शैली मिथ्या प्रतीत होगी, उनकी वास्तु कला झूठी जान पड़ेगी और उनमें वह सरलता, सहजता अथवा घनिष्टता नहीं दृष्टिगोचर होगी जो प्रथम श्रेणी के नाटकों के प्रदर्शन के लिए, यथार्थवादी नाटकों के प्रदर्शन के लिए भी आवश्यक है।

आइये, यहां हम फ्रांसीसी वास्तुकला की एक आदर्श कृति (देखिए प्लेट—५४) का अध्ययन करें। इस भवन में १९१० ई० के पूर्व के पचास वर्षों की समस्त वास्तुकलात्मक गतिविधि का प्रतिबिम्ब है। उचित बात तो यह है कि ऐसे भवनों का निर्माण नाट्यशालाओं की आन्तरिक आवश्यकताओं और रंगमंच पर नाटकों के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त सुविधाओं को ध्यान में रखकर हो। एक आधुनिक चिन्तक पूछ सकता है कि यदि ऐसी बात है तो फिर क्या कारण है जो प्रस्तुत चित्र में दिखाये गये भवन के ऊपर घड़े सजा दिये गये हैं और क्या कारण है जो भवन के ऊपर के भाग में ठीक बीचोबीच, वास्तुकला में मिट्टी की मूर्तिकला का भी सामंजस्य कर दिया गया है ? इसी प्रकार भवन के नीचे की ओर चौखटों में अति ही नाटकीय ढंग से मूर्तियां क्यों बना दी गयी हैं ? भवन की बाहरी दीवारों पर पुराने, अप्रचलित अलंकारों के चित्र क्यों गढ़ दिये गये हैं और ऐसा क्यों नहीं है कि दीवारों में सन्तुलित ढंग से बस दो-तीन द्वार हों और दो-तीन खिड़कियां खोल दी गयी हों ? इन प्रश्नों के उत्तर में बस इतना ही कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी की नाट्यशालाओं की यही वास्तुकला थी, यही रीति थी। ठीक है कि इस भवन का उद्घाटन १९२२ ई० में होता है किन्तु यह भवन जिस देश का है उस देश के लोग नाट्यशालाओं की बनावट आदि में वस्तुतः अब भी उन्नीसवीं शताब्दी में ही पड़े हुए हैं। उन्नीसवीं सदी की वास्तुकलात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति भवन की बाहरी दीवारों पर ही नहीं हुई है; अति अधिक अलंकृत ढंग से निर्मित दर्शकों का प्रतीक्षालय, संगमर्मर की बनी सीढ़ियां तथा अतिशय सजे-धजे 'आडिटोरियम' की वही कहानी दुहराते हैं। अन्दर की सजावट में तो मूर्तियों की और भी अधिक बहुलता है, चटपटापन है, हार हैं, मालाएँ हैं। कुल मिलाकर जो कुछ है वह बड़ा ही भव्य है, राजसी है, सोने के समान आकर्षक हैं, रंगीन है, कृत्रिम है, उसमें दिखावटीपन है और चारों ओर बस आडम्बर ही आडम्बर है।

यूरोप की ये नाट्यशालाएँ संसार के अन्य भागों में भी उसी प्रकार आदर्श समझी गयीं जैसे पेरिस में प्रचलित वस्त्र आदर्श समझे जाते थे। किन्तु ऐसी नाट्यशालाओं से सर्वथा भिन्न कुछ व्यावसायिक नाट्यशालाओं का भी उन दिनों प्रचलन हो रहा था जिनके निर्माण में व्यर्थ की सजावट अथवा स्थानों के अपव्यय का अधिक से अधिक बहिष्कार किया गया था। ऐसी नाट्यशालाओं की सामान्य वास्तुकला रंगमंचीय दृष्टि से उपयुक्त तो अवश्य होती है, किन्तु उसमें भी यदा-कदा आडम्बरपूर्ण अलंकारकिता की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है। किन्तु इन, एक-दूसरे से समन्वय की भावना रखने वाली, नाट्यशालाओं के अतिरिक्त कहीं-कहीं यंत्र युग की प्रतीक-स्वरूपा कुछ सर्वथा भिन्न नाट्यशालाएँ भी उत्पन्न हो रही थीं जो यत्र-तत्र नवीन वास्तुकलात्मक विशेषताओं की अभिव्यक्ति के कारण भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त कर रही थीं और कुछ पुरानी रीतियों के अनुसरण के कारण भूतकाल की कतिपय विशेषताएँ भी रखती थीं। जेना स्टेट थियेटर की दीवारों और उनसे फूटते हुए द्वारों को देखने से इस बात का पता चलता है कि आधुनिक नाट्यशालाओं के निर्माता वास्तुकला की किस दिशा में अग्रसर हो रहे थे। जेना स्टेट थियेटर का यह रूप (देखिये प्लेट ५४) वास्तुकला के क्षेत्र में एक चुनौती रहा है——सर्वाधिक उद्धरणीय और सर्वाधिक विवादग्रस्त! अब संसार की प्रायः सभी अपेक्षाकृत लघु आकार की नाट्यशालाओं की बनावट इसी तरह सादा, सरल और अन्दर से सुविधाजनक होने लगी है।

किन्तु आज बहुत से देश ऐसे भी हैं जहाँ के सिनेमाघरों की बनावट हालीवुड-शैली की अट्टालिकाओं के समान है——यंत्रों की तरह नपी-तुली, स्वच्छ और चमकदार, रंगीन और मीठी गर्म रोशनियों से भरपूर। जर्मनी में मैक्स लिटमैन तथा ओस्कर काफ़मैन प्रभृति आधुनिक वास्तुकलाविदों ने नाटकघरों को अलंकृत करने की प्रथा का बहिष्कार किया और ऐसी शैली चलायी जिसमें श्रोता और रंगमंच के मध्य अधिक से अधिक तादात्म्य हो। आवश्यक सजावट के लिए भी उन्होंने एक मौलिक, सर्वथा नवीन ढंग निकाला। मैक्स लिटमैन द्वारा निर्मित 'म्यूनिख आर्ट थियेटर' (देखिए प्लेट ५५) की वास्तुकला क्रान्तिकारियों द्वारा सर्वत्र समादृत हुई। १९२५ ई० के पश्चात् उसका प्रभाव भी बहुत व्यापक सिद्ध हुआ। किन्तु संसार नाट्यशालायों की वास्तुकलात्मक शैली में अभी उस स्थिति अथवा स्तर पर नहीं पहुंच पाया था जिसे राजसी ढंग से सजावट करने की उन्नीसवीं शताब्दी की परंपरा से पृथक् और इस नाते विशिष्ट समझा जाय। फ्रैंक लायड राइट तथा नार्मन बेल गेड्स आदि सृजनशील, कल्पनाशील कलाकारों के चित्रों में भावी नाट्यशालाओं के वास्तुकलात्मक पक्ष के प्रति स्वप्नों का संयोजन आज अवश्य हो रहा है। किन्तु जब तक उनके स्वप्न स्थूल और साकार न

हों तब तक हमारे दृष्टिकोण से उनका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के नाटकघरों की वास्तुकला को केवल प्रतीकात्मक रूप से 'आपेरानुकूल' कहा जा सकता है, किन्तु उस काल की रंगमंचीय सज्जा तो प्रतीकात्मक रूप से नहीं, वास्तव में आपेरा के अनुकूल थी। वह आपेरा के लिए सज्जित हो या भव्य रोमांसवादी नाटकों के लिए (अथवा मनोवैज्ञानिक नाटकों के लिए), यथार्थवादी युग के पहले उसकी सज्जा में लम्बे-चौड़े रंगीन चित्र, अत्यन्त ही आकर्षक और चमत्कारपूर्ण तथा काफ़ी स्थान घेरने वाले बड़े-बड़े दृश्य अवश्य होते थे। उस समय दर्शक और श्रोता जब अपने सामने के रंगमंच की ओर देखते थे तब मंच के अग्रभाव को पार करती हुई उनकी दृष्टि अनेक पंक्तियों और अनेक मंज़िलों में सजी मंच की सज्जा की ओर जाती थी। बड़ी अजीब, बड़ी भयानक चित्रकला थी वह जिससे रंगमंच को सजाया जाता था—मटमैले, बेढंगे रंग और रचना भी बहुत श्लथ और अर्थहीन।

बाद में जब यथार्थवादी आये तब उन्होंने मात्र यथार्थवाद पर बल नहीं दिया। एक के बाद एक उन्होंने प्रायः प्रत्येक रंगमंच पर 'आपेरानुकूल' सज्जा की कृत्रिमता को निःशेष कर दिया और उसके स्थान पर वास्तविक जीवन में काम आने वाले वास्तविक उपादानों के चित्रों का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। उनके चित्र इतने स्वाभाविक, इतने यथार्थवादी होते थे कि लगता था जैसे वे जीवन के ही अनेक छायांकन हों। डेविड बेलास्को ने यथार्थवादी सज्जा को अधिक-से-अधिक स्वाभाविक बनाने के लिए छोटी से छोटी चीज़ों का भी महत्व समझाया और उसने इस तरह की, छोटी से छोटी, सैकड़ों-हज़ारों चीज़ें इकट्ठी भी कीं। यथार्थवादी नाटकों का दर्शक मंच पर टेलीफ़ोन, दरवाज़ों के सच्चे ढांचे, कई तरह के यंत्र, सच्ची शराब और शराबख़ाने, सच्चे फूल, होटल और रेस्ट्रां और वास्तविक प्रणयस्थलियां देखकर दंग रह जाता था। इन छोटी-मोटी सच्ची चीजों, इन छोटे-मोटे विस्तारों से घिरकर अभिनेता भी अपने को अब भी वैसे ही भूल जाते हैं जैसे वे अपने को पहले के चित्र-सज्जित, चित्र-मण्डित रंगमंचों पर भूल जाया करते थे। वह युग था स्वाभाविकतावाद का—चयनात्मक स्वाभाविकतावाद का नहीं, ऐसे स्वाभाविकतावाद का जिसमें जीवन के यथार्थ को फोटो-चित्रों की तरह बस ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना ही अभीष्ट हो।

उसके बाद रंगमंचों को सजाने वाले, सज्जाकार आये। उन्होंने पुरानी, कृत्रिम, चित्रित दृश्य-सज्जा का भी विरोध किया और स्वाभाविकतावादियों का भी। बीसवीं शताब्दी के नवीन नाटकों के लिए उपर्युक्त नवीन रंगमंचों के प्रति उनकी एक अपनी विशिष्ट धारणा थी। गोर्डन क्रेग ने अपनी उस शैली से संसार के रंगमंचों में आन्दोलन उत्पन्न कर दिया था जिसको अमेरिका के एक प्रमुख प्राध्यापक-समालोचक

ने 'साहसपूर्ण किन्तु प्रमत्त' कहा था। यहां यह स्वीकार करना होगा कि क्रेग के कृतित्व से रंगमंच पर अभिनय की महत्ता को सर्वोपरि मानने के लिए मार्ग तैयार हुआ। कठिनाई केवल यह थी कि क्रेग तथा अन्य प्रतिभाओं के समय में अभिनय के लिए केवल यथार्थवादी नाटक ही उपलब्ध थे। उन्होंने दृश्यों को अधिक से अधिक सहज बनाया, चित्रों का प्रयोग मितव्ययिता के साथ किया और रंगमंचों पर रंगों और रोशनियों का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण प्रस्तुत किया कि इस प्रकार जो समन्वित सज्जा तैयार हुई वह उन पर खेले जाने वाले नाटकों से भी अधिक ललित और मोहक प्रतीत हुई। उन्होंने ऐसी पृष्ठभूमि की रचना की जो यथार्थवादी केवल उस सीमा तक होती थी जिस सीमा तक स्वयं नाटककार की रचना में उसकी अपेक्षा हो। जीवन अथवा प्रकृति में जो सहज रूप से दिखलायी पड़ता है उसके परे जाने का प्रयत्न उन्होंने कदापि नहीं किया; किन्तु यथार्थ की अपनी सीमाओं में ही उन्होंने अपने रंगमंचों को ऐसे ढंग से सुसज्जित किया कि उनका इन्द्रिय-परक आकर्षण, उनका रंग तथा रेखा-विधान, उनकी सम्मिलित सामूहिक प्रभावोत्पादकता कहीं से कम नहीं होने पायी।

'शैलीकरण' शब्द का प्रयोग आधुनिक रंगमंच के सन्दर्भ में बहुधा बहुलता के साथ किया जाता है। 'शैलीकरण' का सम्बन्ध रंगमंच की सज्जा में सौन्दर्य की सतत् अवतारणा और उन डिज़ाइनों की एकता से होता है जो नाटक की पृष्ठभूमि में सतत् रूप से सक्रिय रहते हैं। सज्जाकार उसका प्रयोग कभी नाटक को और भी सम्मोहक बनाने के लिए करता है और कभी नाटक में निहित किसी अभिप्राय-विशेष को अभिव्यंजित करने के लिए। नाटकों के प्रदर्शन में छिपी हुई अनुभूतियों को 'दृश्य' के धरातल पर लाने के लिए यह बहुत आवश्यक है।

१९२० ई० तथा १९५० ई० के बीच नाटककार अथवा अभिनेता का महत्व उतना नहीं रह गया था जितना दृश्य-सज्जाकार का। दृश्य-सज्जाकार ने नाटक के दृश्य-पक्ष को और भी अधिक संवर्द्धित करने के लिए रंगमंच की क्षमताओं को अभूतपूर्व रूप से बढ़ा दिया था। रंगमंच पर ललित, चमत्कारपूर्ण दृश्यों की अवतारणा करके उसने दर्शकों के मानसिक बोध को इन्द्रिय-परक आनन्द से अभिसिंचित किया और इस प्रकार नाटक के गुण और गौरव को और निकट से समझने में सहायक सिद्ध हुआ। बाद में जब इन नाटकों में शुष्कता आने लगी और उनमें वास्तविक जीवन का छायांकन किया जाने लगा तब रंगमंच की सज्जा और भी सरल और सुविधाजनक कर दी गयी और नाटकों की शुष्कता को सुन्दर रंगों तथा रोशनियों के योग से सन्तुलित करने का प्रयास किया गया।

इस समय ऐसा भी था जब रंगमंच को समुचित रूप से आलोकित करने का प्रश्न एक भारी समस्या बना हुआ था। कभी मोमबत्तियों का प्रयोग होता था और
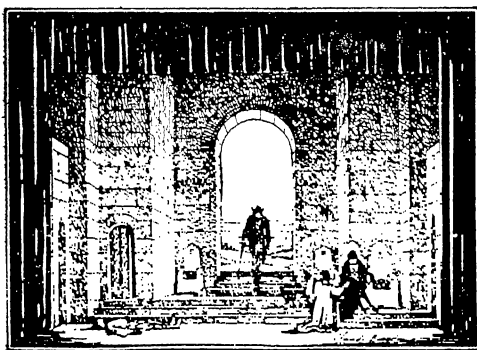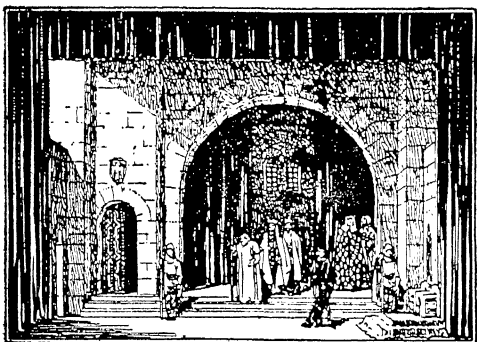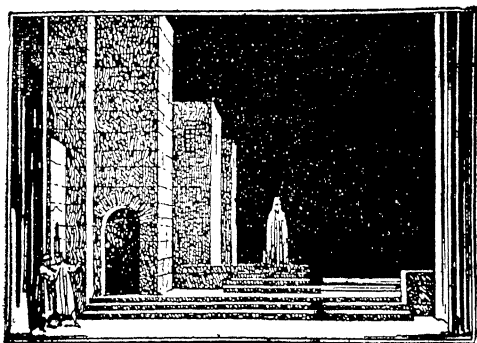
एक 'युनिट' सेटिंग की तीन व्यवस्थाएं, जिनमें कई भाग अनेक बदले दृश्यों में एक ही प्रकार स्थिर रहते हैं। दृश्य परिवर्तनों का एक आधुनिक उपाय।
वाल्टर हैम्पडेन द्वारा 'हेमलेट' के अभिनय के लिए क्लाड ब्रागडन की ड्राइंग। ('आर्कीटेक्चरल रेकार्ड' के सौजन्य से।)

कभी तेल अथवा गैस के लालटेन जलाये जा देते थे। किन्तु जब बिजली का आविष्कार हुआ तब एक पुरानी समस्या का हल तो निकला ही, रंगमंचों को नये ढंग से सौन्दर्य-सज्जित करने के लिए एक नवीन प्रसाधन भी सामने आया। बिजली के बटनों की सहायता से रंगमंच पर आलोक को आवश्यकतानुसार घटाने-बढ़ाने में सरलता प्रतीत हुई और किसी एक विशेष दृश्य पर प्रकाश की बाढ़ उत्पन्न करने अथवा किसी दूसरे दृश्य पर इच्छानुसार आलोक को मन्द करने में सहायता मिली। रंगमंच पर रंगों का विधान और भी अधिक कलात्मक हो सका और नाटक की भावना के अनुसार कभी आँखों को तेज़ लगने वाले प्रकाशपुंज फेंक दिये जाने लगे और कभी प्रकाश के नाम पर बस प्रकाश का मन्द आभास मात्र उत्पन्न कर दिया गया। अपेक्षाकृत मन्द प्रकाश वाले बल्ब प्रकाश की एक पूरी आँधी उत्पन्न कर देने वाले बल्ब, आवश्यकता के अनुसार नीचे, ऊपर, दायें-बायें, छोटे-छोटे जलते हुये लट्टुओं के लच्छे और ऐसे ही बहुत से अन्य प्रसाधनों के प्रयोग से नाटक के माध्यम को इतना मुखर और इतना लचीला बना दिया गया कि दर्शकों की भाव-ग्राह्यता को भी उसी के अनुसार घटाना और बढ़ाना सरल हो गया। तात्पर्य यह है कि बिजली के आलोक से प्रायः वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करना संभव हो गया जैसा पहले, पृष्ठभूमि में संगीत के सृजन से संभव था।

रंगमंच की दृष्टि से बिजली को अभिव्यक्ति का अब इतना महत्वपूर्ण माध्यम मान लिया गया है कि आधुनिक मंच-सज्जा में उसका एक अपना, मौलिक स्थान हो गया है। कदाचित् बिजली के प्रभाव में ही आधुनिक काल के बहुत से विचारकों का यह मत भी होने लगा है कि संसार को पहले के वास्तुकलात्मक रंगमंचों का पुनर्निर्माण करना चाहिए और रंगमंच पर बस किसी एक तटस्थ दृश्य के लिए उपयुक्त सामग्री इकट्ठी करके नाटक के अन्य दृश्यों के लिए भी उसीं को पर्याप्त समझना चाहिए। जहाँ तक अभिनय में विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, नाटक का निर्देशक बिजली की रोशनी से, उसे अपेक्षाकृत घटा-बढ़ाकर, उन भावों की अवतारणा सरलता से कर सकता है। नाटक में निहित घटनास्थलों का संकेत एकाध पर्दों, स्तम्भों अथवा कुछ अन्य प्रसाधनों के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु यदि रंगमंच प्रदर्शन के मंच न होकर वास्तुकला के विभिन्न उदाहरण होने लगें तो उन्हें अधिक से अधिक सरल करने के प्रति जो हमारा प्रयास हो रहा है उसकी समाप्ति हो जायगी। यह कोई आवश्यक नहीं है कि बिजली के विभिन्न प्रभावोत्पादक प्रयोगों के साथ ही रंगमंच की वास्तुकला भी परिवर्तित होती रहे।

प्रदर्शन की आधुनिक रीतियों की खोज में कुछ सर्वथा नवीन प्रवृत्तियां भी उत्पन्न हो गयीं। आधुनिक नाटकों के लिए उपयुक्त रंगमंचीय पृष्ठभूमि का निर्माण

अभिव्यक्तिवादी चित्रों के प्रयोग से किया जाने लगा। किन्तु ऐसे चित्रों से दर्शकों का मनोरंजन भी हुआ और नाटक के मूल तत्व से उनका ध्यान भी विचलित हुआ। आधुनिक काल की निर्माणात्मक प्रवृत्ति से वास्तुकलात्मक रंगमंचों की रचना को वल मिला और उससे प्रेरित होकर कुछ ऐसे विशाल, वास्तुकलात्मक रंगमंच खड़े किये गये जिन पर, पृष्ठभूमि में कोई परिवर्तन लाये बिना ही, कई तरह की घटनाओं का दिखाना संभव हो गया। इस रीति के अनुसार रंगमंच पर कोई एक ही संश्लिष्ट, सुयोजित दृश्य-सज्जा नाटक के अन्य दृश्यों के लिए भी उपयुक्त होती थी। अत्यधिक सजावट की प्रवृत्ति का बहिष्कार किया जाता था और दर्शक और अभिनेता के बीच पर्दे का व्यवधान अनावश्यक माना जाता था। प्रयोगवादियों के एक दूसरे वर्ग ने एक सर्वथा दूसरे ही प्रकार के रंगमंच रचे। वे रंगमंच को बिल्कुल अँधेरा कर देते हैं और बिजली की रोशनी अभिनेताओं पर फेंककर बस उन्हें ही आलोकित करते रहते हैं। इन नयी रीतियों का एक उत्तम परिणाम तो यह हुआ कि दृश्यों के बीच दर्शक को जो दूसरे दृश्य अथवा दूसरे अंक के आरम्भ के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी वह बन्द हो गयी—और वह प्रतीक्षा अनिवार्य भी थी क्योंकि दृश्य अथवा अंक-परिवर्तन के साथ ही साथ मंचीय सज्जा को भी परिवर्तित करने की प्रथा थी।

बिजली के आविष्कार के पश्चात् वास्तुकलात्मक रंगमंचों का पुनः अवतरण हुआ और श्रोताओं अथवा दर्शकों के समक्ष नाटक को अधिक से अधिक सफलता के साथ प्रस्तुत करने की दिशा में भी अनेक नयी रीतियां चल निकलीं। सबसे अधिक मनोरंजक बात तो यह हुई कि कुछ ऐसे घूमने वाले रंगमंचों का आविष्कार हुआ—अपने ही केन्द्र पर चक्कर लगाने वाले ऐसे रंगमंचों का—जिन पर एक ही घुमाव में लगभग एक दर्जन दृश्यों को प्रदर्शित करना संभव हो गया। (देखिए पृष्ठ ६०३ पर बने हुए रेखा-चित्र)। दर्शक के सामने जब तक एक दृश्य चलता रहता है तब तक पीछे एक दूसरा दृश्य भी तैयार होता रहता है और एक दृश्य के समाप्त होने के तुरंत बाद पर्दा गिरते ही बिल्कुल दूसरा दृश्य सामने आ जाता है। इन आविष्कारों का एक परिणाम यह भी हुआ कि पहले की चमत्कारपूर्ण सज्जा वाली रीति को अब और भी अधिक सरलता से अपनाया जा सकता था और यथार्थवादी नाटकों के यथार्थवादी रंगमंचों की स्वाभाविकतावादी सजावट भी अब और अधिक आसान हो गयी। किन्तु बाद की प्रगति से तो यह आभास होने लगा कि आपेरा को छोड़कर अन्य प्रकार के नाटकों के प्रदर्शन में ये दोनों प्रकार की रीतियां बहिष्कृत कर दी जायँगी और रंगमंच पर जो कुछ रह जायगा वह बस साधारण, विस्तृत अभिनय-स्थली होगी, वास्तुकला होगी और बिजली के प्रकाश का सृजनात्मक प्रयोग होगा।
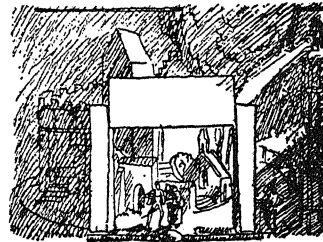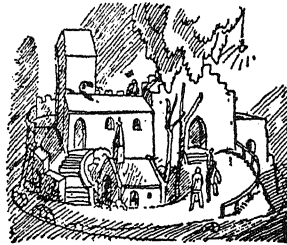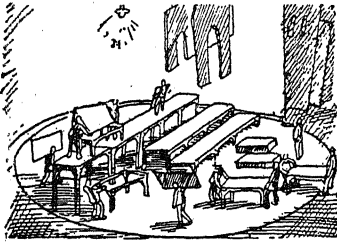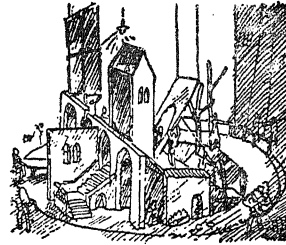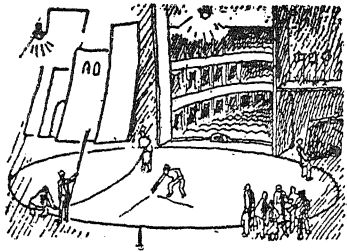
मैक्स रीन्हार्ट कृत घूमते रंगमंच का रेखाचित्र जिसमें मिश्रित दृश्य संयोजित किए जा रहे हैं। सेटिंग की निर्माण-विधि पर ग़ौर कीजिए। किसी स्थान को चित्रित करके उसका मूर्त स्वरूप तैयार नहीं किया जा रहा है, वरन् उसे थोड़ा-थोड़ा करके ढाला जा रहा है। प्रोसीनियम से हर दृश्य में निर्मित भाग का एक अंश दिखायी दे रहा है। नीचे दाहिनी ओर प्रोसीनियम दिखायी दे रहा है। ऐसे रंगमंच पर घुमाने वाले यंत्र को थोड़ा सा घुमा देने पर ही दृश्य परिवर्तन फ़ौरन दिखाया जा सकता है।

(अर्न्स्ट स्टर्न और हीन्ज हेरल्ड कृत 'रीन्हार्ट अण्ड सीने बुहने' के लिए अर्न्स्ट स्टर्न द्वारा अंकित ड्राइंग से।)

विस्तृत और व्यापक सज्जा वाले रंगमंचों का लोप होने लगा और उन्हीं के साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित भारी-भरकम यंत्रों और उपकरणों से बोझिल रंगमंच भी कम होने लगे। रंगमंच पर छोटे-छोटे दृश्यों को दरबों के रूप में प्रस्तुत करने की वह प्रथा भी मन्द पड़ने लगी जिनका अब तक प्रचलन रहा है। भारी-भरकम यंत्रों वाले रंगमंचों के उदाहरण-स्वरूप म्यूनिख के प्रिंस रीजेंट थियेटर का एक चित्र (देखिए प्लेट ५६) प्रस्तुत कर रहा हूं। रंगमंच के व्यापक आकार के सामने 'आडिटोरियम' (प्रेक्षागृह) बहुत ही छोटा (केवल ११०६ व्यक्तियों के लिए बैठने का स्थान है) प्रतीत हो रहा है। रंगमंच के ऊपर की ओर व्यापकता के साथ फैले हुए खुले स्थान की तुलना में स्वयं रंगमंच पर खड़ा, दिखलायी देता हुआ व्यक्ति कितना छोटा मालूम हो रहा है। पीछे की ओर चित्रों का संग्रहकक्ष देखिए। नीचे की ओर सामानों का एक पूरा हाल है और रंगमंच के ऊपर भी दो मंजिलों तक सामान ही सामान भरे पड़े हैं। जो लोग बीसवीं शताब्दी की नवीन रंगशालाओं के सृजन की दिशा में सक्रिय हैं वे इस प्रकार के जटिल, बोझिल रंगमंचों की कृत्रिमताओं के प्रति जागरूक हैं और बीसवीं शताब्दी के रंगमंचों को वे अधिक से अधिक सामान्य तथा सरल बनाना चाहते हैं। चित्र में दिखलायी देने वाले प्रायः वे सभी उपकरण उनके लिए व्यर्थ हैं और उन सबको वे रंगमंच से हटा देना चाहते हैं।

उस चित्र के ठीक नीचे एक सर्वथा भिन्न प्रकार के रंगमंच का चित्र दिया गया है। इस चित्र के कलाकार हैं ऐडोल्फ एप्पिया। रंगमंच पर नाटकों के प्रदर्शन की रीतियों पर उनका प्रभाव बहुत गहरा पड़ा और प्रदर्शन के भावी सिद्धान्तों पर भी उनकी छाप अमिट है। उनका विश्वास था कि रंगमंच को किसी साधारण कक्ष से बस थोड़ा ही भिन्न होना चाहिए और अन्तर भी केवल वास्तुकलात्मक होना चाहिए। ऐसे रंगमंचों पर प्रकाश के कलात्मक संयोजन तथा नियंत्रण-द्वारा अभिनय और अभिनेता दोनों को और भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है और दूसरे प्रकार के, सामानों से बोझिल रंगमंचों की अपेक्षा ऐसे रंगमंचों पर सौन्दर्य की अवतारणा भी अधिक सरलता से होती है।

शताब्दी के आरम्भ में ही ऐडोल्फ एप्पिया तथा गोर्डन क्रेग (जिनके बारे में कुछ अधिक कहना किसी दूसरे अध्याय में संभव होगा) के प्रयत्नों से रंगमंचीय सज्जा के प्रति लोगों की भावना बदलने लगी। इन दोनों कलाकारों ने अपने समय के बहुत व्यस्त रंगमंचों से दूर रहकर कार्य किया है। अपनी भावनाओं में उनको असीम आस्था थी और कदाचित् इसीलिए नवीन रंगमंच के प्रति अपनी धारणाओं का बलिदान न करके देश से निष्कासित होना उन्होंने अधिक सम्मानजनक समझा। वे एकाकी रहे, और
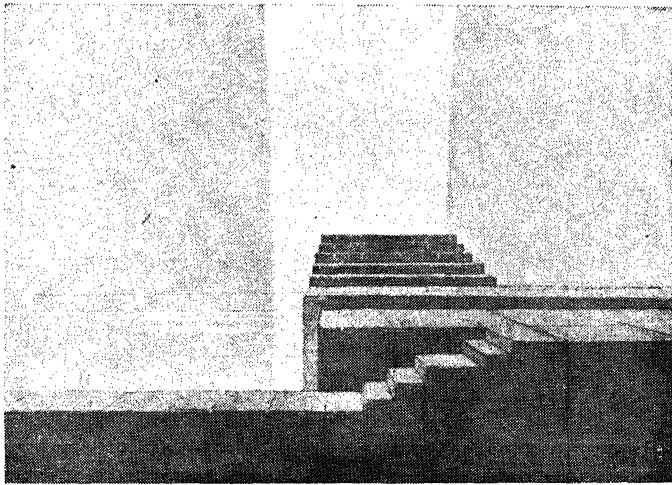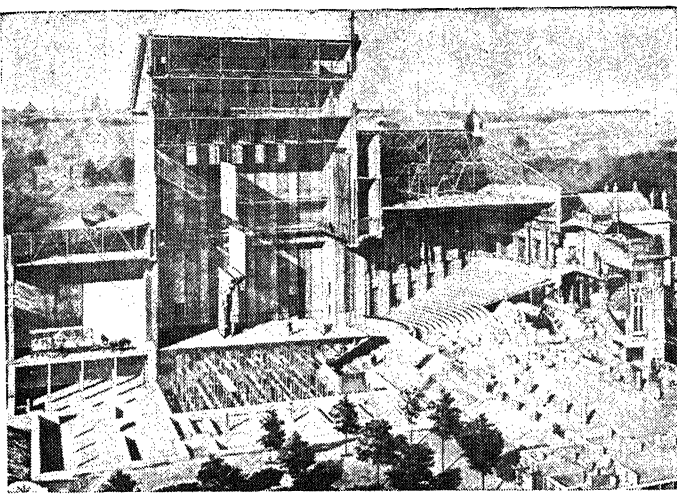
ऊपर रीजेन्ट थियेटर, म्युनिच, का एक खुला दृश्य। इसमें रंगमंच की विशालता और यंत्रों की व्यवस्था दृष्टव्य है। इसमें प्रेक्षागृह को अत्यन्त सादा बना दिया गया है, बैठने के लिए गोलार्ध में सीटें लगी हुई हैं। परन्तु रंगमंच उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के अत्यधिक अलंकृत चित्र-सेटिंग की याद दिलाता है।) (निर्माता मैक्सलिटमान)। नीचे, इसी के विपरीत, एडाल्फ़े अप्पिया कृत एक सादा रंगमंच की डिज़ाइन (उसी के 'ल' ओव्रे द' आर्त विवान्त' से।)
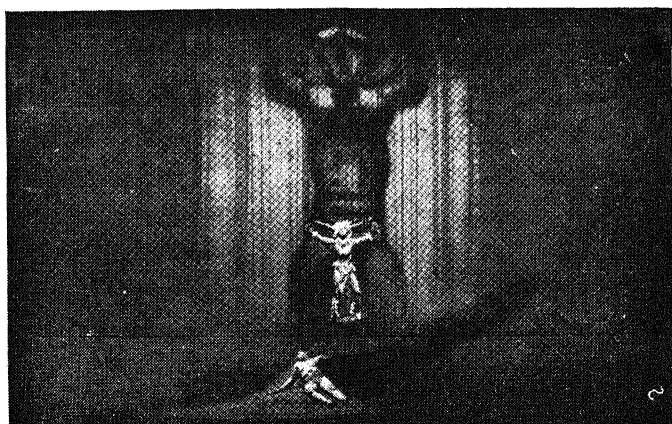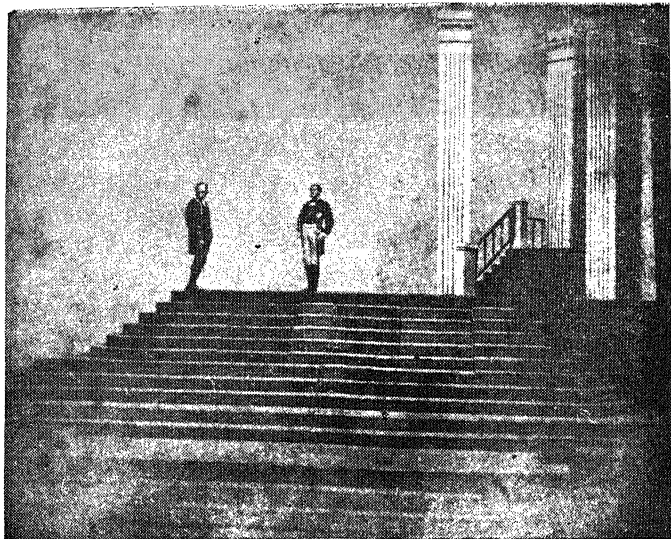
योरोपियन आर्ट थियेटर्स और अमेरिकन लिटिल थियेटर्स के सादा दृश्य। ऊपर, 'लुई फ़र्डिनेन्ड' के लिए टी० सी० फिलार्टज़ कृत एक जर्मन सेटिंग। नीचे, 'दी एम्परर जोन्स' के 'आइडल' दृश्य के लिए डोनाल्ड ओयेनस्लेगर की एक ड्राइंग। १९३१ ई० में येल युनिवर्सिटी थियेटर में यह इसी रूप में प्रदर्शित हुआ था——१९२५ ई० और १९४० ई० के बीच महत्वपूर्ण छोटी और कालेज रंगशालाओं में दृश्यांकन की कला में जो महान् विकास हुआ था उसी का प्रतीक।

१९२० ई०–१९३० ई० के बीच सरलीकृत अभिनय वाली संस्थागत रंगशालाओं के दो उदाहरण। ऊपर, वोक्सबुह्ने, बर्लिन में, ब्जोर्नसन कृत 'बियान्ड अवर पावर' का एक दृश्य। अभिनेताओं में फ्रेडरिक केसलर घुटनों के बल बैठे हुए और हेलेने फेहदमेर, शैया पर हैं। नीचे, लेनोरमाण्ड कृत 'दी फ़ेल्योर' का एक रेलरोड स्टेशन दृश्य है। ली सिमोन्सन कृत डिज़ाइन में, न्यूयार्क थियेटर गिल्ड द्वारा प्रस्तुत होने पर यह दृश्य ऐसा ही लगता था। मंच के अँधेरे स्थानों पर कुछ यथार्थपरक छोटे-छोटे टुकड़ों का प्रभावशाली प्रयोग दृष्टव्य है। (आगस्ट शेर्ल और वन्डाम
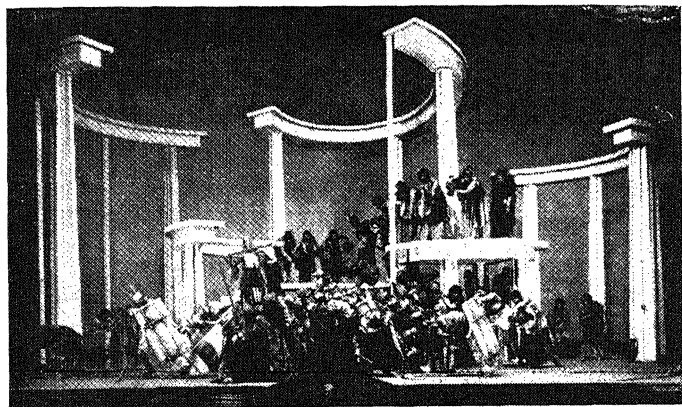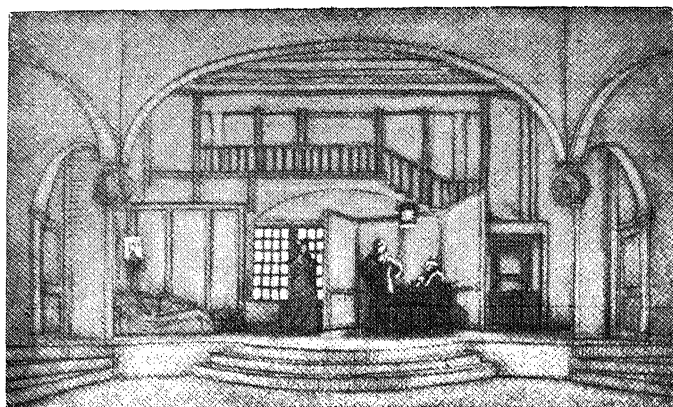
मंच पर अंकित दृश्यावली के स्थान पर बीसवीं शताब्दी की दो अन्य व्यवस्थाएं। ऊपर, जेक्स कोपूकृत 'थियेतर दु वियु कोलम्बियेर,' पेरिस, में इमारती मंच। 'दी ब्रदर्स करमाज़ोव' के अभिनय के लिए, इसकी व्यवस्था इसी रूप में हुई थी। (राबर्ट एडमण्ड जोन्स की एक ड्राइंग से।) नीचे, 'लिस्ट्राटा' का एक दृश्य; मास्को आर्ट थियेटर म्युज़िकल स्टूडियो द्वारा यह इसी रूप में मंच पर प्रस्तुत किया गया था। इसके मंच को ऐसे ढंग से निर्मित किया गया था कि वह परिवर्तित किया जा सकता था; इसके मंच पर पर्दा नहीं था। (आइज़क राबिनोविख़ की ड्राइंग से।)

ग़लतफ़हमियों के शिकार हुए। परिणाम यह हुआ कि १९२० ई० तक उनका नाम उस समय के उन सहस्रों क्रान्तिकारियों की जिह्वा पर था जो अपने समय के कलात्मक रंगमंच का निर्माण कर रहे थे। काफ़ी समय पश्चात् उनकी भावनाओं का सम्मान कुछ औरों ने भी किया और व्यावसायिक रंगमंचों के यथार्थवादियों से मिलकर यथार्थवादी प्रदर्शनों को सुन्दर किन्तु साधारण परिवेश में प्रस्तुत किया। किन्तु एक तरह से इन समन्वयवादी कलाकारों ने एप्पिया तथा क्रेग की प्रणाली का विरोध भी किया। उनके प्रदर्शन इतने नीरस नहीं होते थे कि मन को ठेस लगे और बौद्धिक, विश्लेषणात्मक अथवा लोमहर्षक प्रवृत्तियाँ भी उनमें अपेक्षाकृत कम थीं। उस समय के सज्जाकारों में कुछ वे निर्देशक और कलाकार भी थे जो नवीन रंगशाला अथवा नवीन नाटकों की स्थापना की दिशा में गतिशील थे। अमेरिका के क्रान्तिकारी सज्जाकारों में, अभूतपूर्व क्षमता के धनी, कल्पनाशील, राबर्ट एडमंड जोन्स तथा नार्मन बेल गेड्स के नाम उल्लेखनीय हैं। जोन्स ने प्रायः तीस वर्षों की लम्बी अवधि में अत्यन्त ही उपयुक्त और अत्यन्त ही आकर्षक मंच-सज्जाएँ प्रस्तुत की हैं। गेड्स इस क्षेत्र में एक साहसी आविष्कारक सिद्ध हुआ। उसकी सज्जाओं में कल्पना का निखार और विस्तार है। अन्य सज्जाकारों में ली साइमंसन, जोसेफ़ अर्बन, क्लाड ब्रैगडन, रोलो पीटर्स तथा हर्मन रौसं उल्लेखनीय हैं। ली साइमंसन ने 'थियेटर गिल्ड' के प्रदर्शनों को अनुप्राणित किया। जोज़ेफ अर्बन न्यूयार्क में युरोप से आया था और वह वियेना शैली की रंगीन सज्जा में दक्ष था। १९३५ ई० के पूर्व कुछ और सज्जाकार सामने आये जिनमें जो मीलज़ाइनर, डोनल्ड ओयेनस्लेजर, बोरिस एनिसफेल्ड, मार्डिकार्ड गोरलिक, तथा स्टिवर्ट चेनी के नाम उल्लेखनीय हैं। अपेक्षाकृत उत्तम श्रेणी के नाटकों का अभाव इस शताब्दी में प्रायः सर्वदा रहा है, किन्तु कुछ छोटी-छोटी रंगशालाओं में प्रदर्शन और प्रकाश के आयोजन के क्षेत्र में सचमुच ही कुछ चमत्कारपूर्ण प्रयास किये गये।

पिछले चालीस वर्षों में अमेरिका के कलात्मक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना यह रही है कि वहाँ अपेक्षाकृत लघु आकार की रंगशालाओं की बाढ़-सी आ गयी। और यदि उतनी महत्वपूर्ण नहीं, तो ठीक उसी प्रकार की घटनाएँ योरोप के अन्य देशों, और योरप के बाहर भी, जापान, दक्षिणी अमेरिका तथा कुछ अन्य सुदूर देशों में भी घटित हो रही थीं। इस प्रकार की चेतना अथवा क्रियाशीलता अमेरिका के कलात्मक जीवन में पहले से ही परिलक्षित होती रही है, किन्तु उस क्रियाशीलता की उन्मुक्त अभिव्यक्ति सबसे पहले १९१४–१५ ई० में ही हो पायी। अचानक यह मालूम हुआ कि छोटी-छोटी रंगशालाएँ हर ओर खुलने लगी हैं; उनके प्रवर्तक उत्पन्न होने लगे हैं, प्रदर्शन की नवीन कला की प्रदर्शनियां सजायी गयीं, पत्र-पत्रिकाओं में

तत्सम्बन्धी लेख लिखे गये और इन 'अ-व्यावसायिक' रंगमंचों पर पुस्तकें छापी गयीं। अभ्यासी कलाकारों ने पेशेवर कलाकारों का भी ध्यान आकर्षित किया जिनमें कुछ तो इतने क्षुब्ध हो गये कि उनमें से एक ने 'विज़र्ड आव ब्राडवे' उपनाम से एक लेख लिखा जिसमें उसने अभ्यासियों को नाटक की कला के पतन का प्रतीक कहा। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन विद्रोही कलाकारों के प्रयत्नों से ही उस समय के अमेरिकी नाट्य-प्रदर्शनों के लगभग पचास प्रतिशत प्रदर्शन सफल तथा रोचक सिद्ध हो सके। उनकी रंगशालाएँ आडम्बरहीन थीं; किन्तु फिर भी ब्राडवे की व्यावसायिक रंगशालाओं से वे खुलकर टक्कर ले सकीं।

ये छोटी-छोटी रंगशालाएँ क्या हैं ? शिकागो के 'लिटिल थियेटर' को प्रयोगों का केन्द्र, और कदाचित सुन्दरतर प्रदर्शनों का केन्द्र, बनाने के लिए मारिस ब्राउन को पांच साल तक शिकागोवासियों की असहिष्णुता से लोहा लेने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? ज़ोना गेल तथा अन्य महिलाओं को नाटक की रचना और उसके प्रदर्शन में विसकांसिन की आत्मा के संचार की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई ? लास एंजिल्स के 'लिटिल थियेटर' की स्थापना के लिए एलाइन बर्न्सडेल को क्यों तीन निर्देशकों की नियुक्ति करनी पड़ी ? प्राविंसटाउन के कलाकारों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इतना संग्राम क्यों करना पड़ा ? स्टुअर्ट वाकर को अपने छोटे से 'चल' रंगमंच को लेकर ब्राडवे से गोल्डेन गेट की यात्रा क्यों करनी पड़ी ? इन वातों को अच्छी तरह समझने के लिए आवश्यक है कि हम अमेरिकी नाट्य-जगत् में प्रचलित कुव्यवस्थाओं और उसकी न्यूनताओं की जानकारी प्राप्त करें। छोटी-छोटी रंगशालाओं के निर्माण की कथा किसी आन्दोलन की कथा नहीं, एक प्रवल विद्रोह की कहानी है। विद्रोहियों ने व्यावसायिक रंगशालाओं की उन मनोविनोदात्मक प्रवृत्तियों अथवा मनोरंजन-प्रियता का विरोध किया जो किसी अन्य देश में नहीं पायी जाती थी। प्रदर्शनों में मनोरंजन के अंशों को अधिक से अधिक ठूंसकर व्यावसायिक रंगशालाओं ने तेल, इस्पात अथवा ऊन के व्यापार की तरह अपना भी एक नाटकों का व्यापार खोल लिया था और सब प्रकार की प्रतियोगिताओं को समाप्त करके लाखों की आमदनी कर रहे थे।

व्यावसायिक रंगशालाओं के प्रबन्धकों ने प्रबन्ध के जो तरीक़े अपनाये उनका पूरा-पूरा वृत्तान्त देना यहाँ संभव नहीं। हाँ, परिणामों पर दृष्टिपात अवश्य किया जा सकता है। १८९० ई० तथा १९१० ई० के बीच कुछ व्यवसायियों ने यह सोचा कि यदि वे रंगशालाओं को खरीद लेते हैं तो नाटकों के प्रदर्शन पर, उनकी कला और सज्जा, और साथ ही अभिनेता-अभिनेत्रियों पर भी उनका पूरा-पूरा अधिकार हो जायेगा। अतएव कुछ महत्वपूर्ण नगरों की रंगशालाएँ उन्होंने ख़रीद लीं और जो कंपनियाँ उनकी शर्तों

पर अभिनय कर सकती थीं उनके अतिरिक्त दूसरी कंपनियों के लिए घूम-घूमकर नाटक दिखाना असंभव कर दिया। वे प्रतियोगी कलाकारों में से एक को प्रदर्शन का अधिकार सस्ते में बेचकर उनका मूल्य कम कर देते थे, और जब प्रतियोगिता की भावना समाप्त हो जाती थी तब उनके प्रदर्शनों का मूल्य वे फिर मनमाना बढ़ा देते थे। इतना ही नहीं कुछ दूसरी छोटी-मोटी रंगशालाओं को, जिन पर उनका कोई अधिकार नहीं होता था, वे अपने अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के नाटकों के प्रदर्शन के लिए बाध्य करते और परिणाम यह होता था कि न्यूयार्क की मुख्य नाटक-प्रबन्धकारिणी समिति उन्हें और उत्तम नाटकों के प्रदर्शन की अनुमति नहीं देती थी। इस प्रकार छोटी-छोटी रंगशालाओं को बहिष्कृत करके और उन्हें सर्वथा अस्तित्वहीन तथा धनहीन बनाकर वे नाटकों के स्वतंत्र प्रदर्शनों की प्रथा को बिलकुल समाप्त करते जा रहे थे। दर्शकों के बहुत प्रिय अभिनेता-अभिनेत्रियों को भी अपने प्रवन्धकों के सामर्थ्य के समक्ष घुटने टेक देने पड़ते थे; क्योंकि यदि वे ऐसा नहीं करते तो उन्हें अभिनय के लिए रंगमंच ही न मिल पाते। कलाकार को इस कठिन बन्धन से मुक्ति दिलाने के लिए बाद में फ्रांसिस विलसन, श्रीमती फिस्क तथा कुछ अन्य कलाकारों ने प्रबन्धकों से लोहा भी लिया।

जो भी हो, नाटकों और रंगशालाओं के व्यावसायिक प्रबन्धकों के संगठन के आगे अमेरिकी नाटक को झुकना ही पड़ा। इसके कुछ अच्छे परिणाम भी निकले। टिकटों की बिक्री में पहले से अधिक सुरक्षा की व्यवस्था हुई, नाटक-मंडलियों की गतिविधियों के परिचालन के लिए एक उत्तरदायित्वपूर्ण केन्द्रीय व्यवस्थापिका तैयार हुई और यदि दर्शकों और कलाकारों को नहीं तो प्रबन्धकों को अधिक से अधिक लाभ होने लगा। नाटकों को बदल-बदल कर दिखलाने की प्रथा समाप्त हो गयी और एक ही नाटक लगातार कई सप्ताहों तक दिखलाया जाने लगा। अभिनेता-अभिनेत्री एक ही भूमिका में लगातार महीनों और बरसों उतरने लगे और उनकी प्रतिभा की सर्वतोमुखी प्रवृत्ति, उसकी गहराई, उसका वैभव आदि सब कुछ सपना हो गया। नाटककारों को एक ऐसे विशेष प्रकार के नाटकों की रचना करने को बाध्य होना पड़ा जिनकी दर्शकों में मांग थी; साथ ही कुछ पारंपरिक ढंग के अंग्रेज़ी या फ्रांसीसी नाटकोंका अनुकूलीकरण भी किया गया। नयी भावनाओं और नयी प्रेरणाओं वाले नाटककारों के लिए रंग-शालाओं के द्वार बन्द हो गये। नये प्रयोगात्मक नाटकों अथवा पुराने 'क्लासिक्स' का प्रचलन समाप्त हो गया और अधिक से अधिक टिकटों की बिक्री को ध्यान में रखकर न्यूयार्क के व्यापारियों ने जो मीठे, मनोरंजक नाटक प्रदर्शित कराये वे ही श्रोताओं और दर्शकों के प्रिय बने।

बात अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है; लेकिन मैं कहना यह चाहता हूं कि 'लिटिल

थियेटरों' अथवा छोटी-छोटी रंगशालाओं ने इन्हीं कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठायी। उन्होंने ऐसे नाटकों के प्रदर्शन किये जो कहीं और नहीं दिखलाये जाते थे; प्राचीन काल के 'क्लासिक्स' प्रस्तुत किये, और शा, इब्सन तथा स्ट्रिंडबर्ग प्रभृति नाटककारों के 'नये क्लासिक्स' भी प्रस्तुत किये। फ्रांस के प्रभावों से सर्वथा मुक्त अमेरिका के नाटककारों की रचनाओं को भी उन्होंने प्रश्रय दिया, अन्यथा वे अपने छोटे से दायरे में ही बढ़कर विस्मृत हो जाते और सम्पूर्ण अमेरिका के प्रतिनिधि नाटककारों के रूप में सम्मानित कभी नहीं हो पाते। प्रदर्शनों के प्रति उनकी नयी मौलिक धारणाएँ थीं जिन्हें उन्होंने कार्य रूप में भी परिणत किया, और पहले की रंगमंचीय सज्जा में चित्रों की भरमार करने की प्रथा को उन्होंने अपने कार्यों-द्वारा एक चुनौती-सी दी। उन्होंने गोर्डन क्रेग की विचित्र सज्जाओं को देखा था और पुरानी रंगशालाओं तथा नवीन कलाकार-निर्देशकों के प्रति उनकी क्रूर आलोचनाओं को भी जाना-समझा था। तो इन छोटी-छोटी रंगशालाओं में अभिनय करने के लिए यदि केवल अभ्यासी अभिनेता ही मिले तो क्या हुआ ? मास्को के प्रसिद्ध 'आर्ट-थियेटर' की भी तो आरंभ में वही दशा थी। और आयरलैंड के अभिनेताओं को भी तो अभ्यासी कलाकारों की सरलता और सहजता में ही अभिनय के गुण दिखलायी दिये थे ? इसी प्रकार योरोप के तथा-कथित 'आर्ट-थियेटर' भी तो साहित्यिक गोष्ठियों अथवा नाटक-संघों जैसे अव्यावसायिक संस्थानों से ही उद्भूत हुए थे ? पेरिस में भी तो नाटकीय दृष्टि से सबसे आकर्षक स्थान छोटा 'थियेतर दु वियु कोलम्बियेर' ही था ।

अमेरिका में ऐसी छोटी-छोटी रंगशालाओं की संख्या इतनी अधिक हो गयी कि उन्हें गिनना कठिन हो गया। बीच-बीच में कुछ रंगशालाएँ काल-कवलित भी होती रहीं, किन्तु फिर भी उनकी संख्या बढ़ती ही रही। हाँ, शताब्दी के चौथे दशक में उन्हें अवश्य कई झटके सहने पड़े। ये छोटी-छोटी रंगशालाएँ फिर भी इन तमाम वर्षों में अमेरिका के नाटकीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती गयीं——स्थानीय नाट्य-संघों के रूप में, और साथ ही स्कूलों और कालेजों के नाटकघरों के रूप में जो उन दिनों अभ्यासी अभिनेताओं के लिए प्रख्यात हो रहे थे। इनमें से बहुत-सी नाट्यशालाएँ तो बहुत ही क्षणभंगुर सिद्ध हुईं किन्तु उनके अल्प-से कृतित्व से ही कुछ दूसरे आदर्शवादी, विद्रोही कलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। ऐसे प्रोत्साहन प्राप्त करने वालों में 'शिकागो लिटिल थियेटर' के निदेशक सैम ह्यूम तथा प्राविंसटाउन के कलाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। एक बड़ा लाभ यह भी हुआ कि कुछ सृजनशील कलाकारों का एक ऐसा रचनात्मक गुट तैयार हो गया जिसने प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के बीच अमेरिकी दर्शकों को अपेक्षाकृत उत्तम श्रेणी के प्रगतिशील नाटक दिखलाये। उनके प्रदर्शनों का माध्यम पैसाडेना, क्लीवलैंड तथा पेनसिलवेनिया की रंगशालाएँ थीं और

साथ ही उनके नाटक रोज़ वैली के 'हेजरो थियेटर' में भी दिखलाये जाते थे।

एक समय तो ऐसा भी आया कि लगा जैसे ये विद्रोही कलाकार अपने लिए स्थान ब्राडवे के रंगमंच पर भी बना लेंगे और व्यापारियों के व्यावसायिक नाटकों के साथ ही अपने कलात्मक नाटकों का प्रदर्शन करने लगेंगे। १९२४–१९२५ ई० के मध्य इन कलाकारों ने इब्सन, शा, कांग्रीव, ओ'नील, मोलनर तथा केनेडी के कोई तेरह नाटक न्यूयार्क तथा ब्राडवे की रंगशालाओं में प्रस्तुत किये। इन नाटकों के प्रदर्शन के पीछे छोटी-छोटी रंगशालाओं में कार्य करने वाले अभ्यासी कलाकारों के पांच संगठनों के सामूहिक प्रयत्न सम्मिलित थे, जिनसे नाटक की सेवा तो हो ही रही थी, न्यूयार्क को भी प्रयोगात्मक प्रदर्शनों का, कदाचित उन्हीं के कारण, एक केन्द्र समझा जाने लगा था। उनका प्रदर्शन 'नेबरहुड प्लेहाउस', 'थियेटर गिल्ड', ऐक्टर्स थियेटर', 'दि स्टेजर्स' तथा 'प्राविंसटाउन प्लेयर्स' नामक नाट्य-संस्थानों में भी किया गया। शक्तिशाली व्यावसायिक रंगशालाओं के विरुद्ध अभ्यासी कलाकारों की लड़ाई का वह सबसे महत्व-पूर्ण काल था। कुछ वर्षों के पश्चात् ब्राडवे के आदर्शवादी कलाकारों का रंग फीका पड़ने लगा और विद्रोही कलाकार भी हताश होने लगे और कलाकारों के उन दलों को भी हतोत्साहित हो जाना पड़ा जो नाटकों के स्थायी प्रदर्शनों की दिशा में कार्यशील थे।

एक बहुत अस्थायी लाभ यह हुआ कि प्रगतिशील कलाकारों और नाट्य-संघों के साथ प्रतियोगिता में नाटकों के कुछ व्यावसायिक निर्माताओं ने भी अपने प्रदर्शनों में कुछ विशिष्ट सुधार किये : सामूहिक अभिनय के प्रति उनका दृष्टिकोण उत्तम हुआ, रंगमंचीय सज्जा में सुधार आया और नाटकों के चुनाव में भी स्तर की उत्तमता का ध्यान रखा जाने लगा। किन्तु फिर कुछ ही वर्षों में इन्हीं व्यापारियों ने स्थायी प्रदर्शनों के प्रति पुनर्जागरित भावनाओं का दमन करना आरम्भ कर दिया और महत्वपूर्ण विद्रोही कलाकारों, नाटककारों और निर्देशकों को धन का प्रलोभन देकर अपनी व्यावसायिक रंगशालाओं में सम्मिलित करने लगे। यहाँ इस बात का उल्लेख न करना अन्यायपूर्ण होगा कि बहुत थोड़े ऐसे लोग भी थे जिनको व्यावसायिक रंगशालाओं के व्यवस्थापकों में स्थान भी मिल गया था और उनके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन संस्थागत प्रदर्शनों की भाँति ही कलात्मक थे। इस प्रसंग में आर्थर हापकिंस का नाम उल्लेखनीय है। उसने न्यूयार्क में कुछ ऐसे उत्तम नाटक प्रदर्शित किये जो संस्थाओं की रंगशालाओं में ही संभव थे। विन्थ्राप एम्स भी हापकिंस की तरह ही काफ़ी चिन्तनशील व्यक्ति था किन्तु उसकी निर्देशन-प्रतिभा उतनी उत्कृष्ट नहीं थी जितनी हापकिंस की थी। बाद में ब्राक पेम्बर्टन तथा ऐडी डाउलिंग प्रभृति प्रतिभाएँ भी सक्रिय हुईं। ये सारे निदेशक निदेशक होने के साथ ही कलाकार भी थे और इसीलिए उन्होंने अपने को बस

उन्हीं रंगशालाओं तक सीमित रखा जो वास्तव में ठीक वैसी ही थीं जैसी रंगशालाओं को होना चाहिए।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक, संभवतः विश्व के प्रथम महायुद्ध के शुरू होने तक, युरोप की रंगशालाओं को राष्ट्रीय, राजकीय संरक्षण मिलता रहा है। बहुत-सी रंगशालाओं के नाम, जो पहले 'कोर्ट थियेटर' से शुरु होते थे, महायुद्ध के बाद 'स्टेट थियेटर' से शुरू होने लगे। दर्शकों में जहाँ पहले सामन्तों और सरदारों, राजाओं और राजकुमारों की संख्या अधिक होती थी वहाँ सामान्य लोगों की संख्या बढ़ गयी। किन्तु कुछ देशों में, विशेषकर जर्मनी में, रंगशालाओं को सरकारी अधिकारियों द्वारा राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक होने का सम्मान अब भी प्राप्त था। महायुद्ध के समाप्त होने के दस वर्ष बाद बर्लिन, म्यूनिख, ड्रेस्डेन, डर्मस्टेड, स्टटगर्ट तथा फ्रैंकफर्ट के 'स्टेट थियेटरों' में नाटकों के अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील तथा अधिक उन्नतिशील प्रदर्शन किये जाने लगे। सोवियत रूस के रंगमंचों पर कुछ और अधिक रोमांचकारी और उत्तेजनापूर्व रचनाओं का प्रचलन चल निकला। लेकिन जर्मनी की रंगशालाएँ 'जन-सेवा-आयोग'' अथवा 'नाटक सेवा आयोग' जैसी चीज़ों की तरह कार्य कर रही थीं। यह एक ऐसी विशेषता थी जो जर्मनी की अपनी विशेषता थी और किसी अन्य देश में या किसी अन्य समय में नहीं देखी गयी थी। जर्मनी की ऐसी रंगशालाओं में जीवन्त किन्तु कृत्रिम भाववाले यथार्थवादी नाटक भी खेले गये और प्रदर्शन के आधुनिक रूपों में ढालकर कुछ बहुत पुराने, उत्तम श्रेणी के 'क्लासिक्स' भी प्रस्तुत किये गये। सामूहिक प्रदर्शन अथवा सामूहिक अभिनय-सम्बन्धी उनके आदर्शों की चर्चा अगले अध्याय में की जायगी।

फ्रांस की रंगशालाएँ राज्य अथवा नगर-पालिकाओं के संरक्षण में बढ़ रही थीं। अभिनेताओं की, अपनी निजी टोलियाँ थीं; वे अपनी रंगशालाओं में ही रहते थे और 'रिपर्टरी' (ऐसी रंगशालाएँ जो कुछ विशिष्ट नाटकों के 'रेडी-मेड' स्टाक रखती हैं और आवश्यकतानुसार उन्हीं को यथासंभव उन्हीं अभिनेता-अभिनेत्रियों के सहयोग से प्रस्तुत करती रहती हैं—अनुवादक) ढंग से नाटक खेलते थे। फ्रांस में ऐसी रंगशालाओं का अस्तित्व पहले से ही रहा है, वे परंपरा की रक्षा करती रही हैं और नवीन प्रगतिवादियों के प्रभाव से सर्वथा अछूती रही हैं। हाँ, 'ओडियन' के कृतित्व में आधुनिकतावादी प्रदर्शन को कुछ समझदारी से, कुछ ग़ैरसमझदारी से, प्रश्रय अवश्य दिया गया। १९३० ई० में वहाँ मैंने 'दि ब्लू बर्ड' का एक प्रदर्शन देखा जिसकी पृष्ठभूमि-सज्जा में म्यूनिख की सज्जा का आभास था और अभिनय में प्राचीन शैली की उद्घोषात्मकता एवं उद्बोधनात्मकता भी थी और नवीन शैली की स्वाभाविकता भी।

मैंने उसी सप्ताह मोलियर के एक नाटक का भी अभिनय देखा जो मुझे सचमुच ही अजायबघर में रखने योग्य चीज़ जैसा प्रतीत हुआ।

महायुद्धों के मध्य के काल में फ्रांसीसी 'कामेडी' द्वारा प्राचीनकाल की एक गौरवपूर्ण परंपरा की रक्षा होती रही। किन्तु साथ ही एक खेदजनक बात यह भी होती रही कि फ्रांस की रंगशालाओं पर राजनीति का नियंत्रण था इसीलिए उनके प्रदर्शनों में पुरानापन और नाटकों के चुनाव में निम्नबुद्धि का समावेश तो था ही, साथ ही षडयंत्रों की भी कमी नहीं थी। सत्तर या उससे कुछ अधिक कलाकारों का एक समूह तैयार किया जाता जिसके प्रबन्ध तथा परिचालन के लिए सरकार द्वारा मनोनीत एक प्रशासक होता था, जो समाज के कुछ सम्मानित प्रतिनिधियों की एक व्यवस्थापिका की सहायता से कार्य करता था। (यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि इन सत्तर या उससे अधिक सदस्यों में बत्तीस सदस्य सामाजिक रूप से सम्मानित नागरिक होते थे, जो एक प्रकार से उसके स्थायी सदस्य थे, और पेंशन पाने वाले, कुछ दूसरे अवकाश-प्राप्त लोग भी होते थे) समूह के प्रशासक, और ललितकलाओं के मंत्री अपने निर्णयों में सर्वथा पक्षपात-रहित नहीं थे; वे अपने सम्बन्धियों और प्रियजनों को 'समाज के सम्मानित नागरिक' के रूप में व्यवस्थापिका के सदस्य बना लेते थे। 'कामेडी' का प्रचलन फ्रांस में पहले काफ़ी लम्बी अवधि तक रहा है। नैपोलियन तृतीय ने कहा है—'रंगशालाएँ राष्ट्रीय गौरव का अंग हैं, इसलिए उनका संरक्षण अनिवार्य है।' दूसरे देशों के नये आदर्शवादियों को रंगशालाओं को राष्ट्रीय गौरव का प्रदर्शन प्रतीक मानने वाली फ्रांसीसी भावनाओं की सराहना करनी पड़ी।

सहायता-प्राप्त रंगशालाएँ युरोप के अन्य देशों में भी थीं और उनमें अन्तर केवल इतना था कि कुछ अपनी विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण थीं और कुछ महत्वहीन। मुख्य राजधानियों में 'रिपर्टरी' रंगशालाएँ अब भी स्थिर थीं। वियेना का 'वर्ग थियेटर' (जो १७७६ ई० में वियेना का 'नेशनल थियेटर' हो गया था) कई दशकों तक आकर्षण का केन्द्र बना रहा और कुछ सिद्धहस्त निदेशकों द्वारा उत्प्रेरित, अन्य देशों में भी कुछ ऐसी 'रिपर्टरी' रंगशालाएं निर्मित की गयीं जिनकी ओर संसार के अन्य देशों का ध्यान आकर्षित हुआ। ये रंगशालाएँ अधिकतर १९१० ई० तथा १९३० ई० के बीच अवतरित हुई थीं। उदाहरण-स्वरूप, विश्व के प्रथम महायुद्ध के बाद निर्मित प्राग के 'नेशनल थियेटर' और कदाचित् उसी काल में निर्मित स्टाकहोम के 'नेशनल थियेटर' को लिया जा सकता है। अमेरिका के प्रगतिशील आन्दोलनात्मक रंगमंचों पर प्राग तथा बुडापेस्ट की नाटयशालाओं

में खेले जाने वाले नाटकों का प्रभाव पड़ने लगा—विशेषकर कैरेल कैपेक की अभि-व्यक्तिवादी रचना 'आर० यू० आर०', तथा कैरेल केपेक और जोज़ेफ केपेक द्वारा सम्मिलित रूप से रचित 'दि इंसेक्ट कामेडी' का प्रभाव सबसे गहरा रहा।

इंगलैंड और अमेरिका दोनों देशों से 'रिपर्टरी' रंगशालाओं की प्रथा का लोप हो गया। इसका कारण यह था कि लन्दन में रंगमंचों के प्रवन्धों का स्थान रंगमंच के अभिनेता ही लेने लगे और न्यूयार्क में रंगशालाएं शनैः शनैः व्यावसायिक होने लगीं। इंगलैंड और अमेरिका में १९१५ ई० के बाद ही नाटक खेलने वाली शायद ही कोई ऐसी कंपनी रही हो जिसे योरोप में प्रचलित रिपर्टरी के अनुसार उत्तम कहा जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि शेक्सपियर के नाटकों के जितने प्रदर्शन अंग्रेज़ी भाषी देश इंगलैंड और अमेरिका में कुल मिलाकर हुए उससे दस गुने अकेले जर्मनी में हुए। और यही कारण है जो अमेरिकी नाटकों के दर्शकों की एक पूरी पीढ़ी 'क्लासिक्स' के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के आनन्द से वंचित रह गयी।

इंगलैंड और अमेरिका में 'रिपर्टरी' रंगशालाओं के समर्थकों ने 'रिपर्टरी' प्रथा के समाप्त हो जाने पर जो हानि हुई है उसका उल्लेख किया है। सबसे बड़ी हानि तो यही हुई कि शेक्सपियर, वाइल्ड, शा, सिंज तथा यूनानी नाटककारों की रचनाओं का कभी पुर्नप्रदर्शन न हो सका। व्यावसायिक प्रवृत्ति के निर्माताओं की कृपा से दर्शकों को जो कुछ भी मिल जाता था वे उसे चुपचाप स्वीकार कर लेते थे। किन्तु उन्हें वास्तव में क्या क्या मिलता रहा होगा इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनके अधिकतर प्रदर्शन आय की भावना से परिचालित होते थे। यह बात सबको मान्य हो चुकी थी कि 'रिपर्टरी' रंगशालाएँ ही ऐसी रंगशालाएँ हैं जिनमें अभिनेताओं को निरन्तर और विविध प्रकार के प्रशिक्षण का अवसर मिल सकता है और यह भी सर्वविदित हो चुका तथा कि 'मास्को आर्ट थियेटर' की तरह के उत्कृष्ट, अद्वितीय सामूहिक अभिनय के लिए 'रिपर्टरी' रंगशालाओं के माध्यम से अभिनेता-अभिनेत्रियों का एक साथ, बार-बार बरसों तक अभिनय करते रहना अनिवार्य है।

अमेरिका में 'रिपर्टरी' थियेटर का गौरवपूर्ण उपसंहार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में आगस्टिन डैली की सुप्रसिद्ध कम्पनी के साथ होता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में 'रिपर्टरी थियेटर' को पुनर्जागरित करने के कुछ छिटपुट, प्रयोगात्मक प्रयत्न अवश्य किये जाते हैं। १९०९ ई० तथा १९११ ई० के मध्य एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे न्यू यार्क के 'न्यू थियेटर' की उपलब्धियाँ इस क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी। किन्तु सामूहिक जीवन के अनिवार्य गुणों के अभाव में

उसका भविष्य अन्धकारमय हो गया। 'न्यू थियेटर' की असफलता का एक कारण यह भी है कि आरंभ में ही बहुत सारा धन भवन को अधिक से अधिक भव्य बनाने में व्यर्थ व्यय कर दिया गया और बाद में भी उस पर नाटकों के प्रदर्शनों में, और प्रदर्शनों को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने में आवश्यकता से अधिक पैसे ख़र्च किये गये। शताब्दी के तीसरे दशक में 'रिपर्टरी' आन्दोलन ने फिर ज़ोर पकड़ा जिससे प्रेरित होकर 'नेबरहुड प्लेहाउस' के मालिकों ने न्यूयार्क ज़िले में एक और रंगशाला स्थापित की। किन्तु बाद में उसके 'रिपर्टरी' ढंग से परिवर्द्धन करने पड़े और अन्त में उसे बिल्कुल बन्द ही कर देना पड़ा। प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेत्री ईवा ली गैलियेन द्वारा स्थापित 'दि सिविक रिपर्टरी थियेटर' न्यूयार्क का अन्तिम 'रिपर्टरी थियेटर' था। अन्त में १९३३ ई० में 'रिपर्टरी थियेटरों' के द्वार सदा के लिए बन्द हो गये।

लन्दन के 'रिपर्टरी थियेटर' अमेरिका के रिपर्टरी थियेटरों से अधिक भाग्यवान् निकले। इसका कारण कलाकारों का वह गुट है जो 'ओल्डविक' के नाम से प्रख्यात था। ओल्डविक कलाकारों की एक रंगशाला भी थी जो नदी के किनारे बनी हुई थी (१९४० ई० में बम गिरा कर उस रंगशाला को नष्ट कर दिया गया था) और उस रंगशाला में १९१४ ई० के बाद शेक्सपियर के नाटकों के प्रदर्शन लगातार होते रहे। १९२३ ई० तक लिलियन बेलिस के निर्देशन में प्रायः उसके सभी नाटक अभिनीत हो गये। विश्व के द्वितीय महायुद्ध के दिनों में अभिनेताओं और कलाकारों का यह दल यात्राएं करता रहा। इस दल में इंगलैंड के प्रायः सभी उत्तम अभिनेता और अभिनेत्रियाँ सम्मिलित थीं। दल की यात्राएँ १९५० ई० में समाप्त हुईं और उसके कलाकार तथा अभिनेता सदस्य घर लौटने ही वाले थे कि एक घटना हो गयी किन्तु उस घटना की चर्चा कहीं और की जायगी। यहाँ बस इतना जान लेना अवश्य महत्वपूर्ण मालूम होता है कि प्रारम्भिक बीसवीं शताब्दी की रंगशालाओं के इतिहास में जो एक रिपर्टरी रंगशाला बन गयी थी और जीवित थी उसे सिद्धान्ततः तो क्रान्तिकारिणी समझा जाता था, किन्तु जब वह इंगलैंड की एक सबसे अधिक रोचक रंगशाला के रूप में मान्य हुई तब उसका वह रूप बदल चुका था।

रंगशालाओं की धनिकों की निजी सम्पत्ति होने की वह परम्परा, जो अमेरिका में पर्याप्त उच्चस्तरीय मान्यता प्राप्त कर चुकी थी, और इंगलैंड में भी मान्यता प्राप्त कर रही थी, धीरे-धीरे जर्मनी में भी फैलने लगी। प्रायः सम्पूर्ण यूरोप में व्यापारियों-द्वारा व्यावसायिक दृष्टिकोण से परिचालित ऐसी रंगशालाओं की संख्या बढ़ने लगी और रिपर्टरी रंगशालाओं की तुलना में बहुत अधिक हो गयी। जर्मनी और आस्ट्रिया में ऐसी चार रंगशालाओं के साथ कलाकार मैक्स रीनहार्ट

का नाम भी जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार ठीक इसी तरह की कुछ दूसरी महत्वपूर्ण रंगशालाओं के अस्तित्व का भी उल्लेख है। किन्तु अभिनय तथा प्रदर्शन के क्षेत्र में उत्तम कार्य जर्मनी की उन रंगशालाओं में हुआ जो या तो राजकीय थीं अथवा किन्हीं संस्थाओं से सम्बद्ध थीं। जर्मनी में विश्व के प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते ही एप्पिया तथा क्रेग के नाटक-सम्बन्धी आदर्शों को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न किया गया और उन्हीं के आदर्शों से प्रेरित होकर नाटकों के प्रदर्शन को भी कला की मान्यता दी गयी। शताब्दी के प्रारम्भ के पच्चीस वर्षों में फ्रांस में नाटकों के सृजन तथा प्रदर्शन के क्षेत्र में बहुत कम रचनात्मक कार्य हो सका।

किन्तु अमेरिका की तरह फ्रांस में भी नाटक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य लघु और विद्रोहिणी रंगशालाओं में ही हो रहा था। फ्रांस की प्रायः ये सभी रंगशालाएं पेरिस में स्थित थीं। फ्रांस के प्रान्तीय क्षेत्रों में चलचित्रों को छोड़कर प्रायः प्रत्येक वस्तु का अभाव था। फ्रांस के उन नगरों की दशा भी शोचनीय थी जो पहले रंगशालाओं के गौरवपूर्ण प्रतीक माने जाते थे। अपनी राह में कुछ देर के लिए उन नगरों में रुक कर अपने घिसे-पिटे नाटकों से, तथा अपनी घिसी-पिटी मंच सज्जा से उन नगरों के दर्शकों का मनोरंजन कर देते थे। ये कलाकार अपने नाटक अधिकतर नगरपालिकाओं की रंगशालाओं में दिखाते थे। नाटक के प्रति एक पीढ़ी पहले की वह भावना समाप्त हो चुकी थी जिससे 'थियेटर लिब्रे' की स्थापना हुई थी और पेरिस की छोटी-छोटी रंगशालाओं की चुनौती का सामना करना पड़ा था। वह भावना जर्मनी में अधिक समाहृत होने लगी थी और कदाचित् उसी भावना से प्रेरित होकर १८९० ई० में 'फ्रेई ब्यूने' का निर्माण किया गया। उस भावना का प्रचार और प्रसार बाद में अमेरिका और इंगलैंड में भी हुआ। विश्व के प्रथम महायुद्ध तथा उसके बाद के वर्षों ने फ्रांस की प्रगतिशील रंगशालाओं की प्रायः सम्पूर्ण शक्ति निचोड़ ली थी।

किन्तु फिर भी जेक्स कोपू ने पेरिस के एक थियेटर (दू वियू कोलम्बिएर) में यथार्थवादी रंगशाला के विरुद्ध अपने सफल प्रयोगों द्वारा उत्तम कार्य किया। उसने अभिनेताओं और कलाकारों की एक संस्था स्थापित की, जो व्यावसायिक नहीं थी। सामूहिक अभिनय की श्रेष्ठता के दृष्टिकोण से कोपू के कलाकारों को फ्रांस के सर्वोत्तम कलाकार माना गया। उसने एक ऐसी रिपर्टरी रंगशाला बनायी जो व्यावसायिक रंगशालाओं की यथार्थवादी प्रवृत्ति और यथार्थवादी प्रदर्शन से प्रत्येक दृष्टिकोण में भिन्न थी। आरम्भ में उसने मोलियर और शेक्सपियर के नाटकों के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य-नाटक, तथा प्रतीकवादी और अभिव्यक्तिवादी नाटक भी प्रस्तुत किये। अपेक्षाकृत नये लेखकों को भी उसने पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। विश्व

के प्रथम महायुद्ध के दिनों में शुभकामनाओं का राजदूत होकर वह न्यूयार्क भी आया और 'गैरिक थियेटर' में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। और वहाँ से जब वह फिर पेरिस लौटा तो उसने फ्रांस की क्रान्तिकारिणी रंगशालाओं के इतिहास में बड़े ही गौरवपूर्ण अध्याय की रचना की।

इब्सन और शा की रचनाओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के साहसपूर्ण, प्रयोगात्मक प्रयासों के पश्चात् इंगलैंड की विद्रोहिणी रंगशालाएँ निष्क्रिय हो गयीं। क्रेग के विचारों की अवहेलना होने लगी और जर्मनी से लायी गयी प्रेरणा के प्रभाव में प्रदर्शनों में 'शैलीकरण' का विरोध होने लगा और यथार्थवादी नाटकों के विरुद्ध भी कुछ नये प्रदर्शनात्मक प्रयोग सामने आये। हार्ली ग्रैनविले-बार्कर ने शेक्सपियर के नाटकों को अभिनीत किया और स्वयं अभिनेता, नाटककार और निर्माता होकर सामूहिक अभिनय के क्षेत्र में भी नवीन आदर्श स्थापित किये। 'ओल्ड विक' थियेटर के साथ ही , जिसे एक समय इंगलैंड की राष्ट्रीय रंगशाला कहा जाता था, मैनचेस्टर और लिवरपूल में कुछ 'रिपर्टरी ' रंगशालाएं भी निर्मित की गयीं। जिनमें अधिकतर ऐसे नाटक दिखलाये जाते थे जो घूम-घूमकर नाटक दिखलाने वाली कंपनियों द्वारा प्रदर्शित नहीं होते थे और उनका अभिनय का स्तर भी उनसे कुछ ऊँचा था। रिपर्टरी नाटकों के प्रदर्शन की 'ऋतुएं' अनेक थीं, उनका अभिनय छोटी तथा बड़ी दोनों प्रकार की रंगशालाओं में होता था और कभी-कभी तो ऐसा होता था कि प्रदर्शनों की कोई-कोई 'ऋतु' तो कई-कई वर्ष तक लगातार चलती रहती थी। इस प्रसंग में 'बर्मिघम रिपर्टरी थियेटर' का उल्लेख उस समय की सर्वाधिक आदर्शपूर्ण रंगशाला के रूप में होना चाहिए। उसकी स्थापना १९१३ ई० में बैरी जैक्सन द्वारा हुई थी। शताब्दी के तीसरे दशक में लन्दन के 'गेट थियेटर ' तथा 'एवरीमैन थियेटर' (हैम्पस्टेड में स्थित) अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण के केन्द्र बने। इन रंगशालाओं का निर्माण अमेरिका की आन्दोलनात्मक रंगशालाओं के आधार पर ही हुआ था। यहाँ इस बात का उल्लेख भी अनिवार्य प्रतीत होता है कि लन्दन की 'रिपर्टरी' रंगशालाएँ किसी एक सप्ताह में किन्हीं अनेक नाटकों के प्रदर्शन में विश्वास नहीं रखती थीं। अभिनेताओं की वे बस एक कंपनी मात्र होती थीं जिससे उसके कलाकार सदस्य प्रायः स्थायी रूप से सम्बद्ध रहते थे और उन्हें लम्बे-लम्बे प्रदर्शनों के प्रलोभन को दबाना पड़ता था। उनका लक्ष्य अर्थ-प्राप्ति न होकर कला की सेवा होता था।

अमेरिका की तरह इंगलैंड में भी शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में रंगशालाओं को राजकीय संरक्षण अथवा अनुदान की प्रथा नहीं थी। हाँ, निजी अथवा प्राइवेट संरक्षक अवश्य होते थे। व्यावसायिक नियंत्रण के विरुद्ध विद्रोह की कहानी के कतिपय

अत्यन्त वीरतापूर्ण अध्याय प्रगतिशील कलाकारों और उनके कार्य में दिलचस्पी लेने वाले संरक्षकों के बीच सहयोग के कारण ही लिखे जा सके थे। जान मेसफील्ड ने एक बार लिखा था—'मनुष्य के लिए इससे बढ़कर गौरवपूर्ण बात क्या हो सकती है कि वह एक ऐसी वस्तु की रचना करे जो सदियों तक ज्ञान, सौन्दर्य और आमोद का निकेतन बनी रहे ?' किन्तु अमेरिका की रंगशालाओं को अनुदान अथवा संरक्षण देने की प्रथा एक क्षणभंगुर प्रवृत्ति मात्र होकर रह गयी; उन्हें कोई ऐसा माध्यम न मिल सका जिससे उनको स्थायी लाभ होता रहे।

आइरिन तथा एलिस लेविसन ने न्यूयार्क के 'दि नेबरहुड थियेटर' को इतनी अधिक सहायता दे रखी थी कि उसमें लगभग दस वर्षों तक प्रदर्शन के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग होते रहे और वह दर्शकों के आकर्षण और कलाकारों के लिये नये प्रयोगों का केन्द्र बना रहा। इसी प्रकार 'प्राविंसटाउन' के कलाकार भी दूर-दूर फैले विभिन्न स्रोतों से थोड़ी बहुत आर्थिक सहायता पाते रहे और प्रदर्शन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे। 'दि ऐक्टर्स थियेटर' का कार्यक्षेत्र और भी विस्तृत था; उससे सम्बद्ध कलाकार अपने समय के प्रख्यात कलाकार थे और एक बार तो उसे उसके शुभचिन्तकों द्वारा ढाई लाख डालर की आर्थिक सहायता भी मिली जो शीघ्र ही समाप्त हो गयी। इस अपव्यय का कारण यह था कि उसके अन्तर्गत डडले डिगीज़ के निर्देशन में 'दि वाइल्ड डक' तथा 'हेडा गैबलर' और 'शी स्टूपस टु कांकर' आदि अव्यावसायिक नाटकों के ऐसे प्रदर्शन हुए जिनमें प्रायः सभी प्रमुख कलाकारों ने अभिनय किया और 'अव्यावसायिक' रूप से पैसे की खूब बर्बादी भी हुई। इससे एक लाभ यह अवश्य हुआ कि कलाकारों को साधारण नींव से ऊपर धीरे-धीरे ऊंचे भवन बनाने की महत्ता मालूम हुई और उन्होंने कार्यरूप में ऐसा करके भी दिखा दिया।

१९१० ई० तथा १९२३ ई० के मध्य नाटकों के प्रदर्शन-सम्बन्धी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से न्यूयार्क में जो सबसे महत्वपूर्ण, नवीन रंगमंचीय संगठन था, उसे 'दि थियेटर गिल्ड', के नाम से स्मरण किया जाता है। वस्तुतः 'थियेटर गिल्ड' की स्थापना शताब्दी के दूसरे दशक में हुई थी और उसके स्थापक अमेरिका के कुछ ऐसे कलाकार थे जो प्रथम महायुद्ध के पहले भी कई छोटी-छोटी रंगशालाओं से सम्बद्ध थे। 'दि थियेटर गिल्ड' को नाटकों के प्रदर्शन के लिए एक भवन भी मिला हुआ था जिसके लिए गिल्ड को कोई किराया नहीं देना पड़ता था और जब 'सेन्ट ज्वान इर्विन' द्वारा रचित 'जान फर्गुसन' का अभिनय प्रस्तुत किया गया तब गिल्ड को बहुत बड़ा आर्थिक लाभ हुआ। शीघ्र ही कुछ आन्तरिक विवाद उत्पन्न हो गये तथा आगस्टिन डंकन तथा रोलो पीटर्स आदि निर्देशकों को गिल्ड से सम्बन्ध तोड़ लेना पड़ा। इससे थियेटर

गिल्ड के 'रिपर्टरी' आदर्शों को बहुत धक्का लगा और वे धराशायी हो गये। उसके बाद थियेटर गिल्ड का संचालन निर्माताओं के एक ऐसे सामूहिक दल द्वारा होने लगा जिसमें अभिनेता, निर्देशक, नाटककार तथा मंच सज्जाकार आदि सभी सम्मिलित थे। प्रदर्शनों के लिए दर्शकों और श्रोताओं से चन्दा एकत्र करने के रूप में टिकट बेंचे जाने लगे।

१९२० ई० तथा १९३० ई० के मध्य थियेटर गिल्ड के प्रदर्शनों में न्यूयार्क के सर्वाधिक मौलिक नाटकों तथा पुराने नाटकों के सर्वाधिक मौलिक पुनर्प्रदर्शनों को भी सम्मिलित किया जाता है। (१९२५ ई० के पश्चात् श्रोताओं द्वारा एकत्र चन्दे से थियेटर गिल्ड का एक अपना सुन्दर भवन निर्मित हो गया था)। न्यूयार्क के श्रोताओं तथा दर्शकों को थियेटर गिल्ड के माध्यम से ही 'फ्राम मार्न टु मिडनाइट,' 'लिलियम' 'दि ब्रदर्स कारामेज़ोव', 'दि ऐडिंग मशीन', 'स्ट्रेन्ज इंटरल्यूड' तथा 'हार्ट ब्रेक हाउस' जैसे अत्यन्त ही असाधारण तथा असामान्य नाटकों को देखने का सुख, आनन्द और कभी-कभी आघात भी प्राप्त हुआ। 'गिल्ड' (हिन्दी में उसका अर्थ 'समाज' अथवा 'संघ' होता है—अनुवादक) का नाम 'गिल्ड' इसलिए पड़ा कि उसके बहुत से सदस्य 'समाजवाद' में विश्वास रखते थे और शताब्दी के तीसरे दशक में उन्होंने अपने विश्वास की पर्याप्त अभिव्यंजना भी की। किन्तु तुरन्त ही एक समय ऐसा भी आया जब उन्होंने अपने सारे सिद्धान्तों और आदर्शों को त्याग दिया। साथ ही, उन्होंने अभिनेताओं का एक स्थायी दल बनाने का विचार भी छोड़ दिया। उसमें 'गिल्ड' के बाहर के भी, उस समय के उत्तम, अमेरिकी कलाकार सम्मिलित होने लगे, और कुछ विशिष्ट नाटकों के प्रदर्शन में 'गिल्ड' ने अतिथि -रूप में कुछ दूसरी संस्थाओं के कलाकार-निर्देशकों को भी आमंत्रित करना शुरू कर दिया। १९३० ई० के बाद 'गिल्ड' की कलात्मक महत्ता कम होने लगी क्योंकि उसके बहुत से कलाकार उससे अलग हो गये और अगल होकर उन्होंने 'ग्रुप थियेटर' नाम से एक दूसरा संघ स्थापित कर लिया। अमेरिका की प्रयोगात्मक रंगशालाओं में धीरे-धीरे 'गिल्ड' का महत्व भी कम होने लगा क्योंकि उसको 'व्यावसायिक' रंगशालाओं के समकक्ष स्थापित करने के प्रयास होने लगे थे और कदाचित् इसी अभिप्राय से उसमें 'संगीतात्मक सुखान्तकता' की अवतारणा भी की जाने लगी थी।

जो लोग विश्वास करते थे कि कलाकारों के स्वामित्व में रहने वाली रंगशालाएं प्रेक्षकों की सेवा उन रंगशालाओं की तुलना में अधिक कर सकेंगी जिनका स्वामित्व व्यवसायियों के हाथ में था, वे १९२४–१९२५ ई० में, उस समय बहुत उत्साहित हुए जब आधुनिक आन्दोलन के तीन महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने आपसी साझीदारी के आधार पर न्यूयार्क में नाट्याभिनय प्रस्तुत करने का निश्चय किया। पहिले उन्होंने छोटे से

प्राविन्सटाउन प्लेहाउस में अपने कार्यक्रम रखे। बाद में विशाल ग्रीनविच विलेज थियेटर में, राबर्ट एडमण्ड जोन्स, यूजीन ओ'नील और केनेथ मेकगोवन ने प्रचलित थियेटर गिल्ड के कार्यक्रमों से अच्छे और आगे बढ़े हुए कार्यक्रम प्रस्तुत किए। उन्होंने स्थानीय नाटककारों की प्रयोगात्मक रचनाओं पर विशेष बल दिया। बाहर से लाए गये नाटकों में, कांग्रीव कृत 'लव फ़ार लव' से लेकर स्ट्रिनबर्ग कृत 'दी स्पूक सोनाटा' तक थे; मगर चिरस्मरणीय रचनाएं थीं ओ'नील कृत 'डिज़ायर अण्डर दी एल्म्स' और 'दि ग्रेट गाड ब्राउन।' १९२६ ई० के बाद कोई भी संस्था न्यूयार्क में 'कलात्मक रंगशाला' वस्तुतः क्या है, इसका प्रदर्शन इतने अच्छे ढंग से नहीं कर सकी, जितने अच्छे ढंग से इन लोगों ने किया।

न्यूयार्क के बाहर संस्थापरक रंगशालाओं का प्राबल्य हो रहा था और कदाचित् ऐसी ही रंगशालाओं में रिपर्टरी रंगशालाओं के आदर्शों की सुरक्षा भी हो सकती थी और नाटक के प्रदर्शनों को व्यावसायक मनोवृत्ति के चंगुल से बचाकर प्रयोगों की नवीन दिशाओं की ओर अग्रसर भी किया जा सकता था। १९१० ई० तथा १९२० ई० के मध्य स्थापित रंगशालाओं में बहुत कम रंगशालाएं ऐसी रह गयी थीं, और इस तरह के बहुत कम ऐसे संगठन रह गये थे, जो १९४० ई० के बाद भी जीवित रहते। किन्तु 'पैसेडेना कम्युनिटी प्लेहाउस' (१९१७ में स्थापित) तथा 'क्लीवलैण्ड प्ले हाउस' समय की परिवर्तनशीलता और सांस्कृतिक संस्थानों के प्रति प्रस्तुत शताब्दी की उदासीनता के बावजूद एक तरह से स्थायी बने रहे। गिल्मर ब्राउन जैसे कुशल निदेशक के साहसपूर्ण निदेशन में पैसेडेना की रंगशाला भूतकाल के कुछ उत्तम नाटकों तथा वर्तमान् युग के अधिक प्रायोगिक नाटकों से भी दर्शकों की सेवा करती रही है। ओ'नील के 'लाज़ेरस लाफ़्स' जैसे कठिन नाटकों का प्रदर्शन भी—जो अमेरिका अथवा इंगलैंड की किसी अन्य रंगशाला में प्रदर्शित नहीं हो सकता था—पैसेडेना की रंगशाला का ही कमाल था। उसमें एक ही वर्ष में 'दि मेरी वाइव्स आफ विंडसर', 'मेजर बारबेरा,' 'हेडा गैबलर,' 'दि मैक्रोपोलस सीक्रेट,' 'दि ग्रेड गाड ब्राउन', 'पिगमेलियन' तथा 'सीज़र ऐंड क्लियोपेट्रा' प्रभृति महत्वपूर्ण नाटक अभिनीत किये गये।

'क्लीवलैंड थियेटर' का प्रारंभ १९१६ ई० में 'अभ्यासी' रंगशाला के रूप में हुआ था। किन्तु धीरे-धीरे उसका संगठन इतना दृढ़ होता गया कि १९२६ ई० में उसका एक अपना आदर्श भवन हो गया। तब से फ्रेडरिक मैक्कोनेल के निदेशन में उस रंगशाला में कुछ परिष्कृत ढंग के रिपर्टरी नाटकों के अभिनय की प्रथा रही है। प्रयोग के बाद प्रयोग करने की भावना से उत्प्रेरित क्लीवलैंड रंगशाला के निदेशक उसी भवन में एक प्रयोगशील नाटक-संगठन की भी स्थापना कर रहे थे और क्लीवलैंड

की रंगशाला प्रयोगात्मक उपकरणों से परिपूर्ण एक पूरी प्रयोगशाला बन गयी थी। इंगलैंड की 'रिपर्टरी' पद्धति के समान ही, प्रदर्शन के लिए क्लीवलैंड रंगशाला में भी नये से नये खेलों का प्रबन्ध रहता था।

युरोपीय पद्धति पर परिचालित, अमेरिका की ऐसी रिपर्टरी रंगशालाओं में, जहाँ प्रत्येक सप्ताह नाटकों को बदल बदलकर बारम्बार प्रदर्शित करने की प्रथा है, रोज़ वैली का 'हेजरो थियेटर' उल्लेखनीय है जिसके माध्यम से प्रदर्शन की दिशा में बहुत उत्तम कार्य हो रहा था और उन दर्शकों की भी अच्छी सेवा हो रही थी जो बड़े नगरों में रहने की सुविधा से वंचित थे। निदेशक था जेस्पर डीटर। अमेरिका की अन्य प्रगतिशील संस्थाओं में—जो कलात्मक रंगशालाओं के आदर्शों के प्रति जागरूक थीं और रंगमंच की कला को 'कला' की मान्यता दिलाने को व्यग्र थीं—जो उल्लेखनीय हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—डलस लिटिल थियेटर, ड्रेट्रायट-स्थित आर्ट्स ऐंड क्रफ्टस थियेटर, सेंटा बारबेरा कम्युनिटी थियेटर (जिसकी रुचि बाद में चलचित्रों के प्रदर्शन की ओर उन्मुख हो गयी), शिकागो-स्थित गुडमैन मेमोरियल थियेटर (कला के सर्वोत्तम संग्रहालय शिकागो आर्ट इन्स्टीटयूट द्वारा अधिकृत), तथा न्यू ओरीलियन्स स्थित ले पेटिट थियेटर इ वियु कार्री।

उस काल में प्रख्यात छोटी-छोटी तथा कलात्मक रंगशालाओं की संख्या कालेजों और विश्वविद्यालयों की रंगशालाओं से शायद ही अधिक रही हो। १९१५ ई० के आसपास एक ऐसी तरंग-सी उठी कि कालेजों और विश्वविद्यालयों के अहाते नवीन प्रगतिशील भावनाओं और नाटकों के प्रदर्शनों के प्रति नवीन उत्साह से आन्दोलित हो उठे। इन संस्थाओं के पुराने नाटक-संघों में, जो किसी अध्यापक के निदेशन में कभी-कभी कोई बहुत पुराना, शास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण नाटक खेल लेते थे, और अपने को अत्यन्त ही पुरानी सज्जाओं से किसी तरह विभूषित कर लेते थे, रगमंच की कला के नवीन आदर्शों के प्रति जागरूकता आने लगी और यूरोप भर में फैले हुए 'अ–विश्वविद्यालयी' रंगशालाओं के 'रिपर्टरी' स्वभाव की सच्ची महत्ता मालूम होने लगी। इसके पहले हारवर्ड विश्वविद्यालय में प्रदर्शन के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कार्य हो चुका था और प्रोफेसर जार्ज पीयर्स बेकर ने वहाँ कई वर्ष तक नाटकों की रचना पर अध्यापन कार्य भी किया था।

१९२५ ई० में जब प्रोफेसर बेकर को येल में नाटकों की रचना और प्रदर्शन -विषयक स्नातकोत्तर अध्यापन-कार्य के संचालन के लिए आमंत्रित किया गया और योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए येल-नाट्य-संघ, एक विशाल भवन, रंगशाला, प्रयोगशाला, पुस्तकालय तथा अध्यापन-कक्ष आदि का निर्माण

किया गया तब आशा कुछ और भी बलवती हुई। पिट्सबर्ग-स्थित कारनेगी प्रौद्योगिकी विद्यापीठ (कार्नेगी इंस्टिटयूट आव टेक्नालाजी) के नाटक-विभाग ने १९१३ ई० में एक पूरी रंगशाला बनवा डाली थी और उसके बाद भी विद्यार्थियों के अनवरत अनुरोध के सम्मान में बहुत-सी अन्य शिक्षा-संस्थाओं ने भी या तो रंगशालाएं बनवायीं अथवा संस्था के किसी प्रस्तुत भवन को ही रंगशाला के रूप में परिवर्द्धित कर दिया। ई० सी० मैबी के निदेशन में १९३६ ई० में इओवा के विश्वविद्यालय में भी एक नयी रंगशाला बनवाने का कार्य सम्पन्न हुआ और इसमें सन्देह नहीं कि उस रंगशाला को 'कम्युनिटी' रंगशालाओं (संघ तथा सहयोग पर आधारित रंगशालाएं) के मान्य आदर्शों के साथ नवीन रंगशालाओं की प्रयोगशील कलात्मकता को समन्वित करने में पर्याप्त सफलता मिली। उसके बाद १९३९ ई० में विसकांसिन विश्वविद्यालय में भी एक सुन्दर रंगशाला का निर्माण किया गया।

यह बात रंगशालाओं पर लिखने वाले भावी इतिहासकारों को कुछ अजीब-सी मालूम हो सकती है कि शताब्दी के आरम्भ के दशकों में नाटकों की धारा ब्राडवे के वृत्तिक अथवा व्यावसायिक प्रदर्शनों से परे, शिक्षा-संस्थाओं की अभ्यासी रंगशालाओं की ओर बड़े महत्वपूर्ण रूप से अबाध प्रवाहित होती जा रही थी। सचमुच ही इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ऐसी रंगशालाओं का अप्रत्याशित उद्भव एक सर्वथा नवीन घटना थी। नाटकों के चुनाव में साहित्यिक रुचि का समन्वय होने लगा और रंगमंचीय कला के नवीन आदर्शों के प्रति जागरूकता उत्पन्न होने लगी। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि उस काल में, जब कि व्यापारियों-द्वारा संचालित रंगशालाओं में अभिनय, नाटक-रचना अथवा प्रदर्शन के प्रशिक्षण के लिए भावी कलाकारों को कोई स्थान नहीं था, तब ऐसी रंगशालाओं में नये नाटककारों, अभिनेताओं, सज्जा-कारों और कलाकार-निर्माताओं को अपनी-अपनी रुचि का परिष्कार करने को पूरी स्वतंत्रता और सुविधा थी।

उसी समय योरोप में एक सर्वथा नवीन प्रकार की, भिन्न रंगशालाओं का जन्म हो रहा था। समाजवाद का प्राबल्य हो रहा था और प्रायः सम्पूर्ण महाद्वीप समाजवाद के सिद्धान्तों में रुचि लेने लगा था; और यद्यपि उस समय समाजवाद का प्रभाव साहित्य अथवा कलाओं पर नहीं पड़ रहा था किन्तु कदाचित् उसी से उत्प्रेरित होकर जर्मनी में विश्व के प्रथम महायुद्ध के पहले एक 'लोकतांत्रिक' रंगशाला की स्थापना की गयी। शताब्दी के दूसरे तथा तीसरे दशकों में बर्लिन में एक रंग-शाला थी जिसे जनता की रंगशाला की संज्ञा देना विशेष समीचीन प्रतीत होता है। उस रंगशाला का नाम 'वाक्सब्यून' था। वह कोई छोटी-मोटी रंगशाला नहीं

थी, उसका एक अपना बहुत बड़ा पत्थर का भवन था, प्रदर्शन और रंगमंच के नवीन, आविष्कृत प्रसाधनों की भी बहुलता थी और श्रोताओं अथवा दर्शकों की सुख-सुविधा का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध था। उसके श्रोता और दर्शक ही उस रंगशाला के मालिक थे। जो कुछ विशिष्ट नाटकों के प्रदर्शनों के दिन चन्दे के रूप में टिकट की दर से भी अधिक पैसे देकर उसको अपने पंथ पर प्रशस्त करते जा रहे थे। विशेष महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनों के दिन दर्शकों की उपस्थिति भी इतनी अधिक हो जाती थी कि मालिक-दर्शकों को उन्हें उनको देखने के लिए अमेरिका तथा इंगलैं के साधारण टिकटघरों से केवल दशमांश पैसे व्यय करने पड़ते।

नाटक अधिकतर दो प्रकार के होते थे—सभी भाषाओं से चुने हुए 'क्लासिक्स' तथा आधुनिक नाटक। हाप्टमैन या टोलर के समाजवादी रंग-रंजित नाटक बहुत पसन्द किये जाते थे। अभिनय का स्तर ऊंचा था; मंचीय सज्जा में प्रगतिशील का परिवेश था, और वह कभी-कभी रूसी रंगमंच-सज्जा की भाँति ही असाधारण तथा अद्वितीय होती थी। टोलर के 'मैसे–मेंश'' के प्रदर्शन को अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि दिलाने का श्रेय भी इसी रंगशाला को है। किन्तु दुर्भाग्यवश अन्य रंगशालाओं की भांति, इस रंगशाला को भी नाज़ी सरकार की असहिष्णुता का शिकार होना पड़ा था। किन्तु फिर भी इस रंगशाला को रूस के बाहर की उस समय की एक मात्र ऐसी रंगशाला के रूप में याद किया जाता है जिसकी गति-विधियों में भविष्य की समाजवादी, श्रमिक-संचालित रंगशालाओं का पूर्वाभास था—ऐसी रंगशालाओं का पूर्वाभास जो विश्व के द्वितीय महायुद्ध के पूर्व अन्य देशों में भी प्रचलित होने लगीं।

'बीसवीं' शताब्दी के प्रारंभ में, सामूहिक अभिनय के परे, एकाकी अभिनय के क्षेत्र में कोई इतनी महत्वपूर्ण प्रगति न हो पायी जिसका उल्लेख रंगमंच के इतिहास में आवश्यक हो। रंगशालाओं की व्यावसायिक प्रणाली में व्यक्तिगत अभिनेता-अभिनेत्री को महत्वपूर्ण स्थिति में लाने के सतत् प्रयत्नों के बावजूद अमेरिका में फ़ारेस्ट अथवा बूथ अथवा जेफ़र्सन-जैसे प्रथम श्रेणी के अभिनेता उत्पन्न न हो सके।

हां, सुन्दर, सम्मोहक अभिनय तथा आकर्षक व्यक्तियों की कमी अमेरिकी रंगमंच पर अवश्य नहीं थी। उदाहरणार्थ जान ड्रयू को ही लीजिये—वह पुरानी परंपरा का सज्जन-कलाकार था, आनन्द के सृजन में पटु, दर्शक को सहानुभूति की डोर से खींचने में प्रवीण। अभिनय की कलात्मक पराकाष्ठा पर पहुंचने का प्रयत्न उसने कभी नहीं किया और उसी में उसकी श्रेष्ठता थी। चिरन्तन सौन्दर्य की प्रतिभा ईथेल बैरीमूर के साथ ड्रयू का अभिनय भी चिरन्तन सिद्ध हुआ। इसी प्रसंग में जान बैरीमूर का उल्लेख होना चाहिये जो अमेरिका का कदाचित् सबसे पहला अभिनेता था जिसे

हैमलेट की भूमिका में अमर सफलता मिली। माड ऐडम्स का स्मरण उसके अनिर्वचनीय व्यक्तिगत आकर्षण तथा 'पीटर पैन' में उसके अभिनय के कारण किया जाता है। श्रीमती फिस्क, ई० यच० सोदर्न, जूलिया मार्लो, जार्ज आर्लिस तथा ओटिस स्किनर प्रभृति कलाकार भी यदि अपने समय के स्तम्भ नहीं तो प्रथम श्रेणी के कलाकार अवश्य थे। शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशकों में आदर्श-रूप में मान्य कलाकारों अथवा अभिनेताओं में जेन कावल, लारेट टेलर, मैज केनेडी तथा वाल्टर हैम्पडेन आदि उल्लेखनीय हैं। प्रायः इन सभी अभिनेता-अभिनेत्रियों को अपने कलाकार-जीवन में कुछ वर्षों का बलिदान करना पड़ा था क्योंकि बहुधा कुछ अवधि के लिए वे व्यावसायिक रंगशाला प्रबन्धकों द्वारा आमंत्रित कर लिये जाते थे।

उन्हीं दिनों युवा कलाकारों की एक नवीन, जाज्वल्यमान पीढ़ी भी अभिनय-परिपक्वता की ओर अग्रसर थी। उनमें जो मुख्य थे उनके नाम हैं—हेलेन हेज़, क्लेयर ईमिज़, पालिन लार्ड, कैथेरिन कार्नेल, ईवा लिगैलियेन, लिन फांटेन तथा एल्फ्रेड लुंट। किन्तु स्वयं अमेरिका के नाटककारों द्वारा रचित नाटकों के अभिनय में १९०० ई० के पश्चात् कोई ऐसा उत्तम कलाकार नहीं उत्पन्न हो सका जिसका स्मरण पुराने कलाकारों के साथ किया जा सकता। ईवा लिगैलियेन जिन दिनों स्वनिर्मित 'सिविक रिपर्टरी थियेटर' में अभिनय करती थी उस समय उसकी कलात्मकता के चिरस्थायी होने की संभावना अवश्य थी। किन्तु वह भी बस कुछ ही वर्षों तक संभव हुआ। वाल्टर हैम्पडेन को अपने समय का सबसे प्रबुद्ध और सबसे उदार अभिनेता होने का सम्मान अवश्य प्राप्त हुआ और वह संभवतः इसलिए संभव हुआ कि उसने अभिनेताओं के ही रंगमंचों के प्रबन्धक होने की प्रथा पुनः चलायी और १९२५ ई० तथा १९३० ई० के बीच अपने ही व्यक्तिगत रंगमंच पर अपनी ही पसन्द के नाटक प्रस्तुत करके एक उदाहरण उपस्थित किया। 'साइरेनो डि बर्गरैक', 'रिचिल्यू' तथा 'दि मर्चेन्ट आव वेनिस' प्रभृति रचनाओं में उसका अभिनय उत्कृष्ट सिद्ध हुआ और अमेरिका में प्रस्तुत 'हेमलेट' के अन्य अभिनयों की तुलना में 'हेमलेट' की भूमिका में उसका अभिनय सर्वाधिक सन्तोषजनक था। किन्तु खेदजनक बात यह है कि उस समय के अन्य कलाकारों की भाँति १९३० ई० के पश्चात् अमेरिकी रंगमंचों पर हैम्पडेन का अवतरण भी दिन पर दिन कम होने लगा।

सामूहिक अभिनय से परे, व्यक्तिगत अभिनय के क्षेत्र में अमेरिका में ही नहीं, इंगलैंड में भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। इरविंग की मृत्यु तथा एलेन टेरी के अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् इंगलैंड में उस श्रेणी का अभिनेता बहुत दिनों तक फिर उत्पन्न न हो सका। किन्तु फिर भी दर्शकों को यह प्रत्याशा अवश्य थी कि हो सकता है कि कुछ

नवोदित कलाकार कुछ और ऊंचा उठें और अभिनय-कला की इस सीमा को छू लें। नवोदित कलाकारों में आदर्श रूप में 'हेमलेट' की भूमिका में दक्ष अभिनेता जान गिलगड तथा लारेंस ओलिवियर का उल्लेख किया जाता था। उस समय की अभिनेत्रियों में सिविल थार्न डाइक तथा एडिथ ईवंस के अनुसरणकर्ताओं की संख्या अपरिमित थी। उनके प्रिय नाटकों में आधुनिक काल के कुछ उत्तम नाटकों के साथ ही कुछ पुराने 'क्लासिक्स' भी थे। इन दोनों अभिनेत्रियों का रंगमंचीय जीवन अव्यावसायिक रंगशालाओं से आरम्भ हुआ था; और ये दोनों ही 'ओल्ड विक' तथा अन्य 'रिपर्टरी' रंगशालाओं से भी समय-समय पर सम्बद्ध हो जाया करती थीं। उस समय इंगलैंड और अमेरिका के अधिकतर अभिनेता अपने अभिनयों में इतने वैयक्तिक होते जा रहे थे कि उनके यथार्थवादी पक्ष के अतिरिक्त उनके अभिनयों के किसी भी अन्य पक्ष का किसी दूसरे अभिनेता द्वारा अनुसरण अथवा अनुकरण असंभव था और जब 'रिपर्टरी रंगशालाएँ' व्यावसायिक रंगशालाओं से पृथक हो गयीं तब उन्हें अपनी कला को प्रशिक्षित करने का साधन भी दुर्लभ हो गया। सफल अभिनेताओं को एक ही नाटक को कई दिनों तक बारम्बार दिखलाते रहने को बाध्य होना पड़ता था।

एकाकी अभिनय (सोलो ऐक्टिंग) को जर्मनी में कुछ और भी पहले से ही कोप-भाजन बनना पड़ रहा था और सामूहिक अभिनय के आदर्श को स्वीकार कर लिया गया था। 'वाक्सव्यूने' तथा बर्लिन के 'डूयूचेज़ थियेटर' तथा इसी तरह की कुछ अन्य रंगशालाओं में सम्मानित कलाकारों की संख्या असीमित थी। एलेक्ज़ेण्डर मोइसी का नाम तो संसार के प्रसिद्ध जीवित अभिनेताओं के साथ लिया जाने लगा था। इसमें सन्देह नहीं कि मोइसी एक उत्तम अभिनेता था; किन्तु उससे भी उत्तम था उसका निदेशक मैक्स रीनहार्ट। प्रदर्शन या नाट्य-प्रस्तुति की कला को विशेष मान्यता मिलने लगी थी और अभिनय की कला को गौण समझा जाने लगा था।

फ्रांस में गिट्री के अनुयायी उत्पन्न हुए जिसमें एकाध प्रदर्शन प्रिय अभिनेत्रियां भी थीं। हां, सारा बर्नहार्ट की कोई उत्तराधिकारिणी नहीं पैदा हुई। यहाँ तक कि काकेलिन की ख्याति की भी कोई प्रतियोगिनी न हुई। कोपू की रंगशाला के अभ्यासी कलाकार बाद में कुछ और सन्तोषजनक कार्य करने लगे जिनमें स्वयं कोपू, तथा सुज़ेन बिंग, लुई जोवेट तथा चार्ल्स डलिन आदि अन्य कलाकारों के भी नाम उल्लेखनीय हैं। रूस में 'मास्को आर्ट थियेटर' के माध्यम से सामूहिक अभिनय की पद्धति की पराकाष्ठा यथार्थवादी युग में हो चुकी थी और बाद में कैचेलोव को एक अद्वितीय अभिनेता मान लिया गया था। उस समय एक ही रंगशाला से लगभग सम्बद्ध आधे दर्जन कलाकार ऐसे अवश्य रहें होंगे जिन्हें कैचेलोव के समान ही श्रोताओं का प्रेम तथा

प्रशंसा मिली होगी। किन्तु इन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि रूस में सामूहिक अभिनय का आदर्श अत्यन्त ही आश्चर्यजनक रूप से कार्यान्वित किया गया था। बीसवीं शताब्दी में सामूहिक अभिनय के आदर्श रंगमंचीय कला के प्रति एकांगी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया—स्वरूप उद्भूत हुए थे। परिणाम यह हुआ कि पुरानी चाल के आडम्बरपूर्ण उद्घोषात्मक अभिनय की परंपरा समाप्त हो गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि शताब्दी के मध्य तक श्रोताओं का लक्ष्य नाटक की समाप्ति के बाद नाटक के सम्मिलित प्रभाव के मूल्यांकन की ओर ही अधिक रहेगा, न कि किसी अभिनेता-विशेष के वैयक्तिक अभिनय पर।

(जहां तक चलचित्र का प्रश्न है, हमें स्मरण रखना होगा कि वहां स्थितियां भिन्न थीं, क्योंकि चलचित्रों के दर्शक अथवा श्रोता उतने प्रबुद्ध नहीं होते जितने नाटकों के दर्शक। यह, बात प्राय: निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि 'चार्ली चैपलिन' शताब्दी के आरम्भ में चलचित्र जगत् का सर्वाधिक सम्मानित अभिनेता था और उसके अभिनय में भी मौलिकता तथा रचनात्मकता थी। चार्ली चैपलिन का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि उसने परंपरागत प्रहसनात्मक अभिनय को एक नया मोड़ दिया। चलचित्रों के माध्यम से, जिसमें छायांकनों के सहारे कलाकारों के अभिनय को संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाना सम्भव होता है, चार्ली चैपलिन ने संसार के इतने अधिक दर्शकों को मुग्ध कर लिया था जितना नाटक के इतिहास में पहले कभी भी सम्भव न हो सका।)

अभिनय के क्षेत्र में एक और बड़ी बात यह हुई कि अमेरिका में अभिनेताओं के संघ स्थापित होने लगे और 'ऐक्टर्स इक्विटी एसोसियेशन' की भी स्थापना हुई जिससे व्यावसायिक रंगशालाओं के क्षेत्र में भी अभिनेताओं के स्वर सशक्त तथा सर्वोपरि होने लगे। अभिनेताओं के इस प्रकार के संघ भूतकाल में भी बनाये गये थे, जैसे यूनानी रंगशालाओं में 'आर्टिस्ट्स आव डायोनिशस' नायक संघ, किन्तु बीसवीं शताब्दी के संघ पुराने संघों से भिन्न इस अर्थ में थे कि उनके माध्यम से अभिनेताओं को अपनी नैतिक, आर्थिक तथा शारीरिक दशा को सुधारने में सरलता हुई। आधुनिक काल के ऐसे संघों को कभी-कभी हड़ताल जैसी क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता था क्योंकि समाज तथा क़ानून की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा तभी ऊंची हो सकती थी और तभी प्रदर्शन की दिशा में सुधार भी सम्भव थे। व्यावसायिक रंगशालाओं में कार्य करने वाले अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को यूनानी रंगशाला से लेकर प्राय: बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक इतना अधिक सम्मान कभी नहीं मिल सका था। यह सच है कि अभिनेताओं को भी कभी-कभी व्यापारिक संघों की निम्न नीतियों का अनुसरण करना

पड़ा, किन्तु कदाचित् वही एक मार्ग था जिसके माध्यम से वे अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा तथा गरिमा और अपनी प्रतिभा तथा कलात्मकता की रक्षा कर सकते थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों की नाटकीय तथा रंगमंचीय चेतना के साथ समुचित न्याय तब तक नहीं हो सकता जब तक आयरलैंड के ईट्स, बेल्जियम के मैटरलिंक तथा अमेरिका -निवासी ओ'नील और जर्मनी के अभिव्यक्तिवादियों की चर्चा न की जाय। यथार्थवादी नाटक का वर्णन पिछले अध्याय में सविस्तर किया जा चुका है, किन्तु स्मरण यह भी रखना होगा कि नाटक की यथार्थवादी धारा के साथ ही साथ कुछ अन्य छोटी-मोटी धाराएँ भी प्रवाहित होती रही हैं। उनका भी उल्लेख, संक्षेप में ही सही, आवश्यक मालूम होता है। नाटक की उन छोटी-मोटी धाराओं में कभी-कभी तो ऐसी उत्ताल तरंगें दिखलायी देने लगती थीं कि प्रतीत होने लगता था जैसे आधुनिककाल के नाटक में कोई और एक नया मोड़ आने वाला हो।

यदि किसी में इतना धीरज हो कि वह १९१० ई० तथा १९३० ई० के मध्य खेले गये, समय के सबसे महान् नाटककार शेक्सपियर तथा अन्य नाटककारों की रचनाओं की सूची तैयार करे तो उसे मालूम होगा कि शेक्सपियर की रचनाओं के अभिनय बहुत सीमित थे। इसका कारण यह था कि जो लोग अंग्रेज़ी तथा अमेरिकी रंगशालाओं से सम्बद्ध थे, और उन पर उनका नियंत्रण तथा प्रशासन था, उनमें इतना साहस अथवा इतनी मौलिकता नहीं थी कि वे शेक्सपियर जैसे उत्कृष्ट कवि एवं नाटककार के नाटकों को रंगमंच पर अभिनीत कर सकें। (शेक्सपियर की रचनाओं के प्रदर्शनों को देखने के लिएं लोगों को जर्मनी, वियेना तथा स्टाकहोम जाना पड़ता था। शेक्सपियर की रचनाएँ इन नगरों में बहुधा 'रिपर्टरी' रंगशालाओं में प्रस्तुत की जाती थीं।) किन्तु कभी-कभी शेक्सपियर के काव्यात्मक नाटकों के प्रति लोगों की चेतना जागरित भी हो उठती थी। आयरलैण्ड के नाटककारों द्वारा रचित नाटकों के प्रदर्शन की परंपरा अवश्य सशक्त थी। जिन दिनों आयरलैण्ड का प्रसिद्ध कवि–नाटककार विलियम बटलर ईट्स अपने नाटकों की रचना कर रहा था उन दिनों वहाँ परिस्थितियों के सुखद संयोग के कारण डबलिन में 'एबी थियेटर' मण्डली का उदय हुआ। इन्हें सामान्यतः आइरिश अभिनेताओं के नाम से पुकारा जाता था।[1]

---

१. बीसवीं शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशकों को आधुनिक नाटक का स्वर्ण-युग कहा गया है, और यद्यपि यह सच है कि उसके बाद नाटक के क्षेत्र में पतनोन्मुखता आने लगी, किन्तु फिर भी यह मान्य होना चाहिए कि उस काल में अन्य प्रकार के नाटकों की तुलना में आयरलैंड के नाटकोंका अध्ययन और मूल्यांकन अपेक्षाकृत अधिक सन्तोषजनक

उन्हें न केवल ईट्स के सूक्ष्म काव्यात्मक नाटकों में रुचि न थी, वरन् संभाषणों के पाठ की शैली में भी उन्होंने एक नवीन मधुरता उत्पन्न की। इन गुणों के साथ ही उनमें अभिनयात्मक सहजता तथा सरलता भी थी और संभवतः यही कारण है जो वे अंग्रेज़ी के दर्शकों और श्रोताओं की परिधि को और भी विस्तृत कर सके।

आयरलैंड के अभिनेताओं को जे० एम० सिंज के नाटकों में विशेष आकर्षण प्राप्त हुआ। कारण कदाचित् यह है कि सिंज ने नाटक की यथार्थवादी विषय-वस्तु को आयरलैण्ड की बोली की काव्यात्मकता से अभिसिंचित करके एक सर्वथा नवीन अभिनयात्मक सम्भावना स्थापित की। अपने सीमित क्षेत्र में सिंज के नाटकों तथा लेखकों के नाटकों की तुलना की जाय तो शिन्ज के नाटकों में एक ऐसा खरापन अथवा निरालापन मिलेगा जो अन्य नाटककारों के यहां दुर्लभ है। सिंज ने यथार्थवाद में शब्द–सौष्टव का समन्वय किया और उसे व्यंग्य के मिश्रण से कुछ और मधुर-तिक्त बना दिया। व्यंग्य के प्रति उसका आकर्षण इतना तीव्र था कि उसने अपने व्यंग्य-वाणों से स्वयं अपने देशवासियों को भी मुक्त नहीं रखा। एक रोचक परिणाम यह हुआ कि जब एबी थियेटर के कुछ अभिनेता सिंज की प्रसिद्ध रचना 'दि प्ले ब्वाय आव दि वेस्टर्न वर्ल्ड' के अभिनय के लिए अमेरिका आये तब अमेरिका स्थित आयरलैड के नागरिकों ने उसके प्रदर्शन का तीव्र विरोध किया। एबी

रहा। इस प्रसंग में पीटर कैवानाघ द्वारा रचित 'दि स्टोरी आव दि एबी थियेटर' (न्यूयार्क, १९५०) तथा लेनाक्स राबिसन द्वारा सम्पादित 'दि आइरिश थियेटर' (लन्दन, १९३९) शीर्षक ग्रन्थों का अध्ययन किया जा सकता है। बर्नार्ड शा, ओ'नील, पिरैंडेलो तथा अन्य नाटककारों की कुछ प्रामाणिक जीवनियां भी प्रकाशित हो चुकी हैं जो सुपाठ्य हैं और जिनसे तत्कालीन नाटक पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। अर्नेस्ट रेनाल्ड्सकृत 'माडर्न इंगलिश ड्रामा : ए सर्वे फ्राम १९००' (नार्मन, १९५१) में भी संक्षेप में तत्कालीन नाटक का उत्तम विवरण उपलब्ध है। लिटन हडसन रचित 'दि इंगलिश स्टेज १८५०–१९५०' (लन्दन, १९५१) भी एक अच्छा ग्रन्थ है। इसी प्रकार छोटी-छोटी रंगशालाओं, कलात्मक रंगशालाओं और अन्य प्रकार की रंगशालाओं पर भी पुस्तकें लिखी गयीं; किन्तु उनमें से ऐसी रचनाएँ बहुत कम हैं जिन्हें उत्तम कहा जाय। केनेथ मैकगोवन रचित 'दि थियेटर आव टुमारो' (न्यूयार्क, १९२१) अवश्य एक उत्तम ग्रन्थ है। नाटक के सिद्धान्त-सम्बन्धी जानकारी के लिए गार्डन क्रेग के 'आन दि आर्ट आव थियेटर' (लन्दन, १९११) को देखा जा सकता है। 'पेंगुइन पुस्तकमाला' में प्रकाशित रचनाओं में जेनेट लीपर

रंगशाला के अन्य रचनाकारों में ईट्स तथा सिंज के साथ ही लेडी ग्रेगरी का भी उल्लेख किया जाता है। उनकी रचनाएँ अधिकतर कृषकों के जीवन पर आधारित, प्रवीणता से रचित, छोटे-मोटे सुखान्त नाटकों के रूप में सामने आयी हैं।

किन्तु शताब्दी के प्रथम दशक में नाटक के क्षेत्र में जो बातें बहुत उत्तम सिद्ध हो रही थीं वे धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगीं। संसार की प्रायः सम्पूर्ण रंगशालाओं में प्रचलित यथार्थवाद का प्रभाव एबी थियेटर के अभिनेताओं तथा नाटककारों पर भी परिलक्षित होने लगा और ईट्स प्रभृति नाटककारों की काव्यात्मकता तथा कल्पना-शीलता के दिन उतार पर आने लगे। आयरलैंड के अभिनेताओं ने ईट्स का हाथ छोड़कर अन्य नाटककारों का हाथ पकड़ा। उन्होंने एक प्रकार से अपना पहला मार्ग ही छोड़ दिया

रचित 'एडवर्ड गार्डन क्रेग : डिज़ाइंस फ़ार दि थियेटर' (हरमान्ड्सवर्थ, १९४८) अवश्य ही बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। ओलिवर एम० सेलर द्वारा सम्पादित 'मैक्स रेनहार्ट ऐण्ड हिज़ थियेटर' (न्यूयार्क, १९२४) भी पठनीय है। प्रख्यात जीवनियों में कांस्टैन्टिन स्टैनिस्लावस्की कृत 'माइ लाइफ़ इन आर्ट' (न्यूयार्क, १९४८) का उल्लेख होता है। रूसी रंगशालाओं में प्रस्तुत प्रयोगात्मक रचनाओं की चर्चा नोरिस हाटन के 'मास्को रिहर्सल' (न्यूयार्क, १९३६) तथा जोजेफ़ मैक्लीयड कृत 'दि न्यू सोवियत थियेटर' (लन्दन, १९४३) में मिलती है। किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना थामस एच० डिकिन्सन रचित 'दि थियेटर इन ए चेंजिग युरोप' (न्यूयार्क, १९३१) है जिसमें विभिन्न देशों की रंगशालाओं तथा नाटकों पर अलग-अलग उत्तम अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ली साइमेन्सन की 'दि स्टेज इज़ सेट' (न्यूयार्क, १९३२) में रंगमंचों पर दृश्य-सज्जा-सम्बन्धी प्रश्नों पर आकर्षक किन्तु पक्षपातपूर्ण ढंग से विचार किया गया है। इस रचना में साइमेंसन, गार्डन क्रेग की बड़ी कटु आलोचना करता है और उसके कृतित्व के प्रति जुगुप्सा व्यक्त करते हुए उस पर दिवास्वप्न देखने का आरोप करता है और उसे चित्र-सज्जाकार मात्र कहकर उसकी अवहेलना करता है। इसी प्रकार वह कुछ अन्य कुछ आदर्शवादियों (इन पंक्तियों का लेखक भी उससे मुक्त नहीं) की भी खिल्ली उड़ाने से नहीं चूकता; किन्तु फिर भी यदि पाठक के अन्दर यथार्थवादी चेतना का अभाव नहीं है तो वह इस पुस्तक में रंगमंच तथा नाटक सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें अवश्य पायेगा। केनेथ मैकगोवन तथा राबर्ट एडमण्ड जोन्स द्वारा संयुक्त रूप से रचित 'कांटिनेंटल स्टेजक्राफ़्ट' (न्यूयार्क, १९२२) भी एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में युरोपीय रंगमंचीय कला की उत्साहवर्धक तथा प्रेरणापूर्ण व्याख्या की गयी है। पुस्तक को सुचारु रूप से सचित्र बनाने का प्रयास भी सराहनीय है।

और एक सर्वथा नवीन दिशा में अपने पाँव बढ़ाए। सीन ओ'केसी ने अपने नाटकों में डबलिन के निम्नतर जीवन का यथार्थवादी चित्रण करना आरम्भ कर दिया और अपनी रचनाओं में सुस्वादु सुखान्तों के साथ ही कटु दुःखान्तकों का समन्वय स्थापित किया। जीवन के निरीक्षित तत्वों के विस्तृत तथा स्वाभाविकवादी वर्णन होने लगे और नाटकों के माध्यम से भावात्मक आघात उत्पन्न करने की प्रथा चल निकली। ईट्स ने नाटक लिखना बन्द करके कविता का सहारा ले लिया और अभिनेता भी ईट्स को भूलकर यथार्थवाद की ओर चल पड़े।

फ्रांस में रोमांसवादी नाटक प्रायः विश्व के प्रथम महायुद्ध तक रचे जाते रहे और प्रायः ऐसे सभी नाटकों का विषय प्रेमी, प्रेमिका तथा खलनायक का पारस्परिक संघर्ष होता था जिसे देखने से फ्रांसीसी दर्शक कभी न थकते थे। इस प्रकार के रोमांसवादी नाटक एडमण्ड रोस्ताँ तथा मारिस मेटरलिंक द्वारा ही विशेषतः रचित होते थे। रोस्ताँ की अत्यन्त ही सफल रचनाओं में 'साइरेनो डि बर्गेरेक' तथा 'ल एग्लान' हैं। प्रथम रचना में प्रमुख भूमिका में कांस्टेण्ट काकेलिन का अभिनय हुआ था और दूसरी रचना में नायिका भी भूमिका में सारा बर्नहार्ट ने अभिनय किया। किन्तु रोस्टाँ की ख्याति प्रदर्शन की कला में अभूतपूर्व दक्षता के लिए अपेक्षाकृत अधिक थी। उसने नाटकों के प्रदर्शन में रोमांसवादी, काव्यात्मक दृष्टिकोण से अपनी रंगमंचीय कला को अभिसंचित करके उसे थोड़ा निम्नस्तरीय भी बना दिया था। किन्तु जहां तक मेटरलिंक का प्रश्न है, वह साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधि अवश्य था जो जीवन से दूर जाकर प्रवाहित होती है। उसकी सर्वाधिक प्रमुख रचना 'दि ब्लू बर्ड' एक प्रतीकात्मक कृति है जिसमें हमारे दृश्य संसार से दूर किसी पारलौकिक जगत् की कथा कही गयी मालूम होती है। यह रचना अपने प्रभाव में इतनी अधिक मधुर हो गयी है कि वह वास्तविक जीवन से परे चली गयी है। इस रचना के प्रदर्शनों में भी आवश्यकता से अधिक सजावट की जाती थी। मेटरलिंक ने बहुत ही कम ऐसे नाटक लिखे जिनमें वह रोमांसवाद के जगत् को छोड़कर सच्चे, स्वाभाविक, काव्यात्मक, दुःखान्तों के संसार में आ जाता है। किन्तु स्मरणीय बात एक यह भी है कि विश्व के दोनों महायुद्धों में मध्यकाल में ऐसी साहित्यिक, काव्यात्मक कृतियों को विश्व की रंगशालाएँ यथोचित स्थान अथवा सम्मान नहीं दे पाती थीं। फिर भी फ्रांस और बेल्जियम की बहुत-सी रोमांसवादी, रहस्यवादी अथवा पारलौकिक रचनाएँ बाद की रिपर्टरी रंगशालाओं में अभिनीत की गयीं।

इसी प्रसंग में प्रख्यात नाटककार हाप्टमैन का उल्लेख भी होना चाहिए, किन्तु उस हाप्टमैन का नहीं जिसने 'दि वीवर्स' शीर्षक रचना में एक प्रकार का धर्मयुद्ध-सा

छेड़ रखा था बल्कि उस हाप्टमैन का जिसने 'दि संकन बेल' शीर्षक रचना में एक चिरस्मरणीय प्रतीकवादी रोमांसवाद की अवतारणा की तथा 'हैनेल' शीर्षक रचना में एक मर्मस्पर्शी मानवीय संवेदन की अभिव्यक्ति की। उस समय के विदेशी नाटककारों ने भी हाप्टमैन से प्रेरणा ली और उसका 'हैनेल' तो नाटक के क्षेत्र में अभिव्यक्तिवाद का पूर्वग्रह सिद्ध हुआ। उस समय के अन्य ऐसे जर्मन नाटककारों में जो काव्य-नाटक लिखने में पटु थे, ह्यूगो हाफ्समैनस्थल का नाम स्मरणीय है। उसने अपने अधिकतर नाटक पुराने, विशेषकर यूनानी दन्तकथाओं की पृष्ठभूमि में रचे थे, और एक रोचक बात यह है कि उसके रचना-काल में दन्तकथाओं की अभिव्यक्ति को ही आधुनिकता का लक्षण माना जाता था। किन्तु उसकी नव-क्लासिकल रचनाओं का आकर्षण अब बहुत-कुछ क्षीण पड़ गया है। हां, यह अब अवश्य ही एक सन्तोषजनक तथ्य है कि पुराने नाटकों पर आधारित उसके अनेक नाटक 'मैक्स रेनहार्ट' के प्रयत्नों से रंगमंच पर बहुत सफल उतरे। उदाहरण-स्वरूप 'फ़ेडरमैन' का बहुधा स्मरण किया जाता है।

स्वीडेन-निवासी आगस्ट स्ट्रिंडबर्ग ने, जिसके अधिकतर नाटक जर्मनी में खेले गये, हाप्टमैन की तरह पहले यथार्थवादी अथवा स्वाभाविकतावादी नाटक लिखे, किन्तु बाद में अभिव्यक्तिवादी रचनाएँ कीं। और वस्तुतः 'ए ड्रीम प्ले' शीर्षक रचना को इस प्रकार की अभिव्यक्तिवादी रचनाओं का प्रथम महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। इस रचना का अभिनय प्रयोगवादी रंगशालाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य रंगशालाओं में भी किया गया। हंगरी-निवासी फेरेंक मोलनर की रचना-धारा कृत्रिम यथार्थ से तनिक हटकर प्रवाहित होती रही। उसकी 'लिलिओम' शीर्षक रचना में (१९०९ में अभिनीत) कल्पना और वास्तविकता का अद्भुत सम्मिश्रण है और कदाचित् इसीलिए यह रचना क्रान्तिकारी प्रदर्शकों की आवश्यकता के अनुकूल सिद्ध हुई। १९२१ ई० में इस रचना का प्रदर्शन 'थियेटर गिल्ड' नामक रंगशाला में भी प्रस्तुत किया गया।

इनके अतिरिक्त, बीसवीं शताब्दी में कुछ ऐसे भी नाटककार उत्पन्न हुए जो नाटककार से अधिक कवि थे। उनमें आप की भाषा में लिखने वाला गैब्रियेल डी'एननज़ियो प्रमुख है जिसकी रचनाओं ने सबसे अधिक हलचल पैदा की। रंगशालाओं में प्रदर्शन की दृष्टि से भी उसकी रचनाएँ बहुत उपयुक्त सिद्ध हुईं। किन्तु 'ला गियोकोंडा' (जिसके प्रदर्शन में एलियोनोरा ड्यूज़ ने उत्कृष्ट अभिनय करके उसे अन्तरराष्ट्रीय ख्यादि दिलायी) तथा 'डाटर आव फ़ोरियो' को एक प्रकार के प्रवल रोमांसवाद के पुनर्जागरण का लक्षण माना जाता है, न कि नये नाटक के काव्यात्मक पक्ष की अभिव्यंजना। इंगलैंड के नाटककारों में जान मेसफील्ड ने भी 'दि ट्रेजेडी आव

नान' शीर्षक से एक मात्र उत्तम नाटक लिखा जो छोटी-छोटी रंगशालाओं के अतिरिक्त 'रिपर्टरी' रंगशालाओं में भी काफ़ी सफलता के साथ खेला गया।

अमेरिका के नाटककारों में प्रमुख था पर्सी मैकेयी जिसकी 'दि स्केयरक्रो' शीर्षक काव्यात्मक रचना स्वाभाविक ढंग की काव्यात्मक रचना होते हुए भी आधुनिक प्रदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। उसने एक प्रकार के 'मास्क' (प्रहसनात्मक, विदूषकीय तत्वों से भरपूर स्वांगात्मक नाटक) भी लिखे जो अधिकतर व्यावसायिक और कलात्मक रंगमंचों से परे खेले जाते थे। दर्शकों के प्रिय एडना सेंट विंसेंट मिले ने भी, जो एक समय 'प्राविंसटाउन प्ले हाउस' का प्रसिद्ध अभिनेता था, कुछ नाटकों की रचना की है। किन्तु उसकी रचनाओं में 'एरिया दा केपो' शीर्षक एकांकी नाटक ही बाद की रिपर्टरी रंगशालाओं में पुनर्प्रदर्शित हो सका। अल्फ्रेड केम्बर्ग ने छोटी-छोटी रंगशालाओं के लिए मुक्त छन्द में सुन्दर, सुबोध काव्य-नाटक लिखे। इस प्रकार के छोटे-छोटे, सुन्दर, काव्य-नाटकों के रचयिताओं में आयरलैंड-निवासी लार्ड डनसेनी भी स्मरणीय है किन्तु साथ ही स्मरण यह भी रखना होगा कि आयरलैंड के 'एबी थियेटर' के अभिनेताओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। छोटी-छोटी रंगशालाओं के साथ ही साहित्यिक, कलात्मक रंगशालाओं में भी उसकी रचनाओं का सम्मान हुआ किन्तु उस समय की व्यावसायिक रंगशालाओं को वे बिल्कुल प्रभावित न कर सकीं।

कारण इसका यह है कि इन सारे कवि-नाटककारों में कोई एक भी नाटककार इतना सक्षम नहीं सिद्ध हो सका कि वह अपनी काव्यात्मक रचनाओं से दर्शकों अथवा श्रोताओं के अपेक्षाकृत अधिक व्यापक संसार को आकर्षित करता और यथार्थवादी नाटकों और संगीत-सुखान्तकों और 'अकाव्यात्मक' दृश्यों और घटनाओं से उनका ध्यान अपनी काव्यात्मक रचनाओं की ओर लाता। क्रान्तिकारी रंगशालाओं को भी तो ये काव्यात्मक नाटक प्रभावित अथवा आकर्षित करने से चूक गये। इसका कारण यह था कि यथार्थवादी नाटककारों की तुलना में कवि-नाटककारों के सामने उनकी रचनाओं के प्रदर्शन की कोई निश्चित योजना का अभाव था। हाँ, कुछ समय पश्चात् जब युद्ध अथवा युद्ध की भयानक संभावनाओं से रंगशालाओं जैसी सांस्कृतिक संस्थाएँ मुक्त हो गयीं तब इनमें से कुछ काव्य-नाटकों को 'रिपर्टरी' रंगशालाओं में स्थान अवश्य मिला। हाप्टमैन, जिसकी अधिकतर रचनाएँ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में रची गयीं, मेटरलिंग, जिसका 'पेलियज़ ऐण्ड मेलिज़ैंदे' १८९२ ई० में तथा 'दि ब्लू बर्ड' १९०८ ई० में सामने आया, और ईट्स, जिसकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ १९०४ ई० में 'एबी थियेटर' की स्थापना के बाद लिखी गयीं—कुछ ऐसे ही कवि-नाटककार हैं जिनकी रचनाएँ युद्ध की संभावनाओं की समाप्ति पर अभिनीत हुईं।

अभिव्यक्तिवादी नाटककारों ने विश्व के प्रथम महायुद्ध के बाद के वर्षों में नाटक के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यथार्थवाद का विरोध करने वाले अन्य वादों, (जैसे रोमांसवाद और प्रतीकवाद) की तुलना में अभिव्यक्तिवाद अपने लक्ष्य में, तथा परम्परागत धारणाओं का खंडन करने में अपेक्षाकृत अधिक सक्षम सिद्ध हुआ।

कला की दृष्टि से अभिव्यक्तिवाद में चित्रण उस वस्तु का नहीं होता जो कलाकार की भावना को उद्वेलित करती है। इसकी जगह उसमें कलाकार की भावना की ही अभिव्यक्ति होती है। उसमें परिचित तथ्य के उद्घाटन को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना उन तथ्यों की अभिव्यक्ति के रूपात्मक अथवा आकारात्मक पहलू को। अभिव्यक्तिवादी साहित्यकार का अभीष्ट जगत में आँखों को दिखलायी दे, वहीं तक सीमित नहीं रहता; वह उसके भी परे जाता है और जीवन का चित्रण मात्र न करके जीवन को और भी गहन बनाता है। नाटक के क्षेत्र में अभिव्यक्तिवादी साहित्यकार जीवन का प्रतिनिधित्व न करके जीवन का उपस्थितीकरण करता है और आवश्यकता-नुसार प्रदर्शन के प्रसाधनों में कभी प्रवाह को अधिक प्रभावशील बनाता है, कभी अभि-नय और प्रकाश को और इसी प्रकार कभी शब्दों और उनके अर्थ को। वह यथासंभव 'वास्तविकता' के गुण से पीछा छुड़ाता है और यदा-कदा वास्तविकता का अतिक्रमण भी कर जाता है और अपनी रचनाओं में भावनात्मक रूप से प्रभावोत्पादक घटनाओं का अम्बार भी उपस्थित कर देता है।

अभिव्यक्तिवादी नाटककार (यद्यपि अभिव्यक्तिवादी शब्द किसी भी जीवित नाटककार को अच्छा नहीं लगता) एक ऐसे लोक का भ्रमण करना चाहता है जहाँ उसकी विस्तृत कल्पना-परिधि, आध्यात्मिक चेतना और साथ ही इन्द्रिय-परक प्रभावों को नाटक में समन्वित करने का अवसर हो (वस्तुतः इनमें से कोई भी बात यथार्थवाद में संभव नहीं)। अभिव्यक्तिवादी नाटककार माध्यम की स्वतंत्रता चाहता है—इसलिए नहीं कि वह यूनानी अथवा एलिज़ाबेथकालीन ढंग के नाटक लिखे, प्रत्युत इसलिए कि वह अपने नाटकों में आधुनिक जीवन की जटिलता और गहनता की अभिव्यक्ति कर सके। अभिव्यक्तिवादी नाटककार की सबसे बड़ी विजय यह है कि उसने अपनी रचनाओं में यथार्थवादी साहित्य के पैनेपन, खरेपन और कठिन सच्चाई के साथ ही पुराने नाटकों की भव्यता भी उत्पन्न की है और आधुनिक जीवन की गहराई का स्पन्दन भी।

इस काल में बहुत-से नाटककार ऐसे आये जिनकी वृत्ति स्पष्टतः अभिव्यक्तिवादी थी। इनमें उल्लेखनीय हैं जर्मन-नागरिक अर्न्स्ट टोलर तथा जार्ज कैसर जिनकी रचनाएँ अमेरिकी रंगशालाओं में बहुलता के साथ खेली जाती थीं; और अमेरिका

निवासी, प्रयोगवादी जान हावर्ड लासन। किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं जोर्डन क्रेग, जो 'अभिव्यक्तिवादी' संज्ञा से चिढ़ा करता था, इतना अधिक अभिव्यक्तिवादी था कि रंगमंचों पर सच्ची, सन्तुलित अभिव्यक्तिवादिता को उसी के नाटकों से आयी हुई कहा जाता है। उसने यथार्थवाद का तीव्र विरोध किया, रंगशालाओं से पुरानी चित्रमय परिसज्जा की प्रथा का बहिष्कार किया; अभिनेता, रंगमंच, तथा प्रकाश और रंगों अथवा वर्णों के समुचित समन्वय को नाटकीय कला का अनिवार्य, सृजनात्मक माध्यम माना और दर्शकों को कल्पना के एक ऐसे परीलोक में ले गया जहाँ से सतही जीवन की वास्तविकता का किंचित आभास भी नहीं आता। साथ ही, नाटकों में उभरती हुई 'स्वाभाविकतावादिता' का भी उसने खंडन किया और उसके स्थान पर एक प्रकार की आदर्श, उन्नत, कलात्मक 'कृत्रिमता'को स्थापित किया। रंगमंच को वास्तविक जीवन की यथार्थवादी छाया से मुक्ति दिलाकर अभिव्यक्ति के एक उन्मुक्त माध्यम के रूप में मान्यता दिलाने वाले उस समय के सैकड़ों कलाकार-निर्देशकों पर उसका वरद हस्त था।

अभिव्यक्तिवादी नाटक का सबसे प्रारंभिक उदाहरण कैसरकृत 'फ्राम मार्न टु मिडनाइट' है जिसमें लेखक ने समकालीन जीवन का विविध, रंगीन चित्रण किया है। इस नाटक का एक रूपान्तरित प्रदर्शन 'थियेटर गिल्ड' द्वारा १९२२ ई० में न्यूयार्क में तो प्रस्तुत किया ही गया, मैक्स रेनहार्ट द्वारा जर्मनी में भी अभिनीत हुआ और दोनों ही स्थानों में उसकी प्रभावोत्पादकता समान रूप से मान्य हुई। अभिव्यक्तिवाद की प्रगति और प्रथा से अमेरिका के लेखक, निर्देशक और निर्माता भी प्रभावित हुए बिना न रहे। नाटकों के पुराने रूप जो अब तक उत्तरोत्तर प्रगति के पंथ पर बढ़ते ही चले जा रहे थे, और उनमें पत्रकारिता की स्वाभाविकता और सहजता आयी थी, तथा सर्वदा किसी व्यक्तिगत कहानी अथवा व्यक्तिगत समस्या की अभिव्यंजना होती थी, अब तेजी से ढलने लगे थे। कारण यह था कि उनमें नये अभिव्यक्तिवाद की न तो संवेदनाशीलता थी और न भावनात्मक घटना-शृंखला, संभाषणों की न तो रंगीनी और विविधता थी और न सज्जा की उत्तेजक कल्पनापरकता। सच पूछिए तो अभिव्यक्ति-प्रधान नाटकों की कथाएँ जब रंगशालाओं में अवतरित होती थीं तो ऐसा लगता था जैसे वे किसी व्यक्ति-विशेष की अनुभूति न होकर समष्टि की अनुभूति हों। अभिव्यक्तिवाद के माध्यम से रंगमंच पर 'अ—यथार्थ' का पुनर्प्रतिष्ठापन हुआ। 'फ्राम मार्न टु मिडनाइट' अभिव्यक्तिवादी शैली की कोई बहुत उत्तम रचना नहीं है; न तो उसका लेखक ही मानव-जीवन का कोई गम्भीर द्रष्टा है। इसका महत्व केवल इसलिए है कि इस रचना से साहित्य के इतिहास में एक नवीन प्रकरण आता मालूम पड़ता है।

अर्न्स्ट टोलर रचित 'मासमेन्श' (अंग्रेजी में 'मैन एण्ड दि मासेज़' शीर्षक से अनूदित) अभिव्यक्तिवादी परंपरा की एक और भी उत्तम रचना है। उसका प्रदर्शन पहली बार १९२२ ई० में बर्लिन में हुआ और इसमें सन्देह नहीं कि उसके प्रदर्शन को बीसवीं शताब्दी के प्रदर्शनों में बहुत ऊंचा स्थान दिया गया। दृश्य-सज्जा का प्रयोग प्रायः बिल्कुल नहीं किया गया था और अभिनेताओं को नाटक की आवश्यकतानुसार कभी एकाकी और कभी समूह में, अन्धकार की पृष्ठभूमि में प्रकाश की किरणें छोड़कर बड़े ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया था। नाटक का आरम्भ होते ही नाटक का विषय स्पष्ट हो गया और उसके बाद घटनाएँ एक के बाद एक इस तरह अवतरित होने लगीं जैसे एक के बाद एक धड़ाधड़ गोलियां छोड़ी जा रही हों। कल्पना के विस्तृत परिवेश में यथार्थ के छींटे भी कम नहीं थे। नाटक की कला बस साधारण है। एक औरत कुछ श्रमिकों को निर्मम मालिकों की दासता से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह करने को उत्प्रेरित करती है और अपने प्रयत्न में सफल होती है।और, बाद में जब उनका कृत्य हिंसात्मक और ध्वंसात्मक हो जाता है तब वह उन्हें रोकना चाहती है। किन्तु तुरन्त ही वह पकड़ ली जाती है और दंडित की जाती है। नाटक में समष्टि की वेदना से अधिक व्यक्ति की वेदना की अभिव्यक्ति है। परन्तु नाटककार का लक्ष्य सामूहिक अनुभूति अथवा सम्मिलित भावात्मकता की अवतारणा करना है, न कि व्यक्ति की किसी निजी पराजय का उल्लेख। यहाँ इस बात की चर्चा भी अनिवार्य है कि जर्मनी के क्रान्तिकारी रंगमंचों पर समूह-गान अथवा समूह-नृत्य की प्रथा भी ऐसे ही नाटकों से चली है और मनोरंजक बात एक यह भी है कि वह प्रथा रंगशालाओं तक ही सीमित न रही, बल्कि साम्यवादियों और समाजवादियों की राजनीतिक सभाओं में श्रोताओं का मनोरंजन भी उन्हीं से किया जाने लगा।

अभिव्यक्तिवाद की परिणति शीघ्र ही एक विश्वव्यापी क्रान्ति में हो गयी, किन्तु टोलर अथवा कैसर की प्रतिभा के अभिव्यक्तिवादी नाटककार बहुत कम हुए। सर्वप्रमुख अभिव्यक्तिवादी नाटककार ज़ेकोस्लोवाकिया–निवासी कैरेल कैपेक था जिसकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'आर० यू० आर०' (रोसम्स-युनिवर्सल रोबोट्स) रंगशालाओं में निरन्तर खेली जाती रही—और उसके अभिनय में 'मेलोड्रामा' की प्रभावोत्पादकता थी, इसमें सन्देह नहीं। अमेरिका में जान हावर्ड लासन ने एक औद्योगिक जीवन पर आधारित नाटक, 'प्रोसेशनल' लिखा और एलमर राइस ने भी अन्त में अपनी यथार्थवादी कला का प्रयोग 'दि ऐडिंग मशीन' शीर्षक एक अभिव्यक्तिवादी रचना के लिए ही किया। राइस की रचना के विषय हैं यंत्र-युग में श्रमिक। 'दि ऐडिंग मशीन' की रचना हुई १९२३ ई० में और तब से वह संसार के प्रायः सभी

प्रगतिशील रंगमंचों पर खेला जा रहा है। कुछ बाद में सीन ओ'केसी ने भी यथार्थवाद का साथ छोड़कर अभिव्यक्तिवाद के अपेक्षाकृत कम प्रशस्त मार्गों पर चक्कर लगाना आरम्भ कर दिया था।

इटली के सर्वोत्तम आधुनिक नाटककारों में लुइगी पिरैंडेलो को भी अभिव्यक्तिवादी कहा जाता है और वह कदाचित् इसलिए कि उसने अपने नाटकों में वास्तविकता का समावेश बड़े विचित्र ढंग से किया है—या शायद इसलिए कि अभिव्यक्तिवादी ही एक ऐसा शब्द है जिससे उसकी रचनाओं की व्याख्या हो सकती है। पिरैंडेलो की तुलना 'क्यूबिस्ट परंपरा' (चित्रकला की एक परंपरा) के उन चित्रकारों से की जा सकती है जो वास्तविकता का चित्रण कुछ ऐसे ढंग से करते हैं कि उनकी रचनाओं में बड़ी अभिव्यक्ति उत्पन्न हो जाती है। पिरैंडेलो को इस बात का ज्ञान रहता है कि पात्रों की चेतना की अनेक तहें होती हैं और इसी ज्ञान के आधार पर वह सृजन भी करता है। यह प्रक्रिया विशुद्धतः यथार्थवादी होती है किन्तु उसका उद्भव फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित यथार्थवाद से ही होता है। कहना यह चाहिए कि पिरैंडेलो अभिव्यक्तिवाद के मार्ग पर आधी राह जाकर वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं के चित्रण के निमित्त लौट आता है।

शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशकों में अमेरिका के विश्व-विख्यात नाटककार यूजिन ओ'नील ने अमेरिकी नाटक को प्रान्तीयता की भावना तथा अत्यधिक चिंतनशीलता के अवगुण से रक्षित किया और अभिव्यक्तिवाद को नाटक की अभिव्यंजना की सर्वाधिक सशक्त शैली के रूप में स्थापित करने में सफल हुआ। अमेरिका में लिखे गये नाटक उन दिनों मास्को, वियेना, बर्लिन, रोम तथा लन्दन की रंगशालाओं में दिखलाये जाने लगे थे। किन्तु उनमें से अधिकतर नाटक अपेक्षाकृत निम्नतर के होते थे जिनमें लोकप्रिय होने के प्रायः सभी गुण—जैसे प्रहसनात्मकता, भदेसपन, प्रचलित, प्रवाहपूर्ण सुखान्तात्मकता, पत्रकारिता, चित्रात्मकता तथा संवेगात्मकता—विद्यमान थे। इसका तात्पर्य केवल यह है कि व्यावसायिक रंगशालाओं के आकर्षण का केन्द्र अब लन्दन न रहकर न्यूयार्क हो गया था और विश्व की निम्नस्तरीय, निकृष्ट रंगशालाओं में अमेरिका की रंगशालाएँ अग्रणी बनी हुई थीं। किन्तु ओ'नील की अवतारणा एक अपवाद थी क्योंकि उसके नाटक जहां भी दिखलाये गये वहीं उनका पर्याप्त सम्मान हुआ और यह अनुभव किया गया कि परंपरागत नाटकों के मूल को मरोड़ देने की उनमें पर्याप्त क्षमता है।

ओ'नील पहले यथार्थवादी था। उसकी चयनात्मक बुद्धि पैनी थी और कभी-कभी वह ऐसे सरल किन्तु सही और तीखे शब्दों का प्रयोग भी करता था जो यथार्थ की असुन्दरता को नग्न रूप में ही उपस्थित कर देते थे। यथार्थ की सीमा का अतिक्रमण उसने कभी नहीं किया। हां, 'दि एम्परर जोन्स', 'दि हेयरी एप' तथा 'लैज़ेरस

लाफ़्स' शीर्षक रचनाओं में यथार्थवाद की अनुकरणात्मक प्रवृत्ति का बहिष्कार करके रंगमंचीय अभिव्यक्ति की सीमा को उसने और भी विस्तृत किया। इस लक्ष्य की उपलब्धि में उसकी वृत्ति तेज़ तथा हिंसात्मक थी। नाटकों में भाव की विपुल अवतारणा को उसने गूढ़ता अथवा गहनता के सृजन से अधिक अनिवार्य माना। उसने नाटककारों के पुराने सुरचित, सुप्रचलित नाटकों के प्रति अनुराग को खंडित किया, किन्तु सर्व-गुण-सम्पन्न नाटक का कोई आधुनिक रूप अथवा आकार प्रस्तुत करने में भी वह सर्वथा असमर्थ रहा। संभवतः इसीलिए अपने नाटकों के लिए भी उसने वही पुराना रूप ही चुना था। हां, उसकी रचनाओं में एक ऐसा नाटकीय खरापन अथवा सीधापन, एक ऐसा आकर्षण, एक ऐसा आनन्द अथवा उल्लास, एक ऐसी अचूक अभिव्यंजना अवश्य थी जो दर्शकों को अपने आकर्षण में बाँध लेती थी।

व्यावसायिक रंगशालाओं के प्रबन्धकों के दृष्टिकोण से बीसवीं शताब्दी में नाटककारों का एक और दल भी था जो व्यावसायिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत 'उच्च' नाटकों की रचना करता था—यद्यपि उनकी रचनाओं में कोई भी साहित्यिक अथवा कलात्मक गुण ऐसा नहीं था जो उन्हें स्थायी बनाता। ऐसे नाटककारों की भावुकतापूर्ण यथार्थवादी रचनाएँ, जो सामयिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थीं (जैसे 'व्हाट प्राइस ग्लोरी?' तथा 'जर्नीज़ एण्ड' आदि) अधिकतर लन्दन की 'वेस्ट एण्ड रंगशालाओं' और न्यूयार्क की 'ब्राडवे' रंगशालाओं में खेली जाती थीं। उन दिनों अभिनेताओं द्वारा घूम-घूम कर नाटक दिखलाने की प्रथा बहुत कम होगयी थी। हां, कैथेरिन कार्नेल तथा वाल्टर हैम्पडेन प्रभृति विवेकी अभिनेता तथा अभिनेता-प्रबन्धक उस प्रथा को थोड़ा-बहुत अब भी चलाये जा रहे थे। कुछ अन्य निर्माताओं ने भी अपनी रंगशालाओं के द्वितीय श्रेणी के अभिनेताओं को नाटकों के प्रदर्शन के निमित्त बाहर भेजने की परंपरा को बन्द नहीं किया था। सर्वोत्तम नाटकों में हैम्पडेन द्वारा प्रस्तुत 'क्लासिक्स' के अतिरिक्त मैक्सवेल ऐण्डर्सन, राबर्ट शेरउड, सिडनी हावर्ड तथा फिलिप बैरी की रचनाएँ थीं। यूजिन ओ'नील तथा एल्मर राइस जिस प्रकार अभिव्यक्तिवादी होते हुए भी उत्तम श्रेणी के यथार्थवादी नाटककार थे, उसी प्रकार मैक्सवेल एण्डर्सन काव्य-नाटकों का रचयिता होते हुए भी आधुनिक जीवन की अकाव्यात्मकता को भी स्पन्दित कर सका था। किन्तु स्मरणीय तथ्य यह है कि शताब्दी के चौथे और पाँचवें दशकों में नाटक की जो प्रवृत्तियां सामने आयीं उनके मूल में अभिव्यक्तिवाद का ही प्रचलन था और कदाचित् अभिव्यक्तिवाद से ही प्रेरित होकर थार्नटन वाइल्डर की कल्पनापूर्ण रचनाएँ भी सामने आयीं। नवीन सामयिक चेतना से मुखर, श्रमिक जीवन के स्पन्दन पर आधारित नाटक भी अभिव्यक्तिवादी भावधारा से ही तरंगित हुए थे।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बीसवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल, नाटक को कला के रूप में स्थापित करने की दृष्टि से, संक्रान्ति का युग था। सच यह है कि इस अवधि में न तो कोई बहुत बड़ा अभिनेता उत्पन्न हुआ और न तो कोई बहुत बड़ा नाटककार (शा का स्थान उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रकाशित इब्सन की परंपरा के नाटककारों में अवश्य ही बहुत महत्वपूर्ण है)। किन्तु एक महत्वपूर्ण बात यह अवश्य हुई कि सामाजिक संगठन की दृष्टि से नाट्यशालाओं के जीवन में एक युगान्तरकारी चेतना प्रस्फुटित हुई। व्यावसायिक रंगशालाएँ प्रगति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर पतनोन्मुख हो गयीं। संस्थाओं की रंगशालाएँ फिर से अनुप्राणित होने लगीं। छोटी-छोटी, तथा राजकीय रंगशालाएँ नाट्य-कला के विश्वव्यापी विद्यार्थीवर्ग के लिए अध्ययन की सुविधा तथा साधन प्रदान करने लगीं। नाटक-रचना की एक सर्वथा नवीन शैली उत्पन्न हुई—ऐसी शैली जिसका अस्तित्व पाश्चात्य नाटक के इतिहास में पहले कभी नहीं था, ऐसी शैली जिससे यथार्थवाद को चुनौती मिली—और सबसे उत्तम बात यह हुई कि निर्माताओं तथा निर्देशकों द्वारा उस शैली का सर्वत्र सम्मान हुआ। नाटकों के प्रदर्शन-सम्बन्धी नयी धारणाएँ उत्पन्न हुई, उनके लक्ष्य-सम्बन्धी नये सिद्धान्त प्रकट हुए और प्रदर्शन की कला को (अगले अध्याय में) अभिनय, कथावस्तु, मंचीय सज्जा, प्रकाश तथा प्रवाह की समन्वियत कला के वर्णित रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

अध्याय २३

नाटकों के प्रस्तुतीकरण की कला का विकास

नाटकों के प्रदर्शन में जब रंगमंच पर नाटककार की सर्वोपरि सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हो गया और रंगमंच के इतिहास को नाटकों के पाठ के अध्ययन अथवा विवेचन तक ही सीमित रखने का विरोध किया जाने लगा तब (१९०० ई० के कुछ बाद ही) क्रान्तिकारियों के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह आया कि नाटकों के प्रदर्शन में यदि नाटककार की सत्ता सर्वोपरि नहीं है, तो फिर किसकी सत्ता को सर्वोपरि माना जाय? अभिनेता को तो वह मान्यता दी नहीं जा सकती थी क्योंकि 'कमेडिया डेल आर्ते' के प्रचलन के समाप्त हो जाने के बाद किसी पीढ़ी में इक्के-दुक्के ही पड़ते थे। सामान्य वातावरण से ऊपर सिर उठाने वाले सर्जनात्मक प्रतिभा वाले अभिनेता दिखायी पड़ते थे। युग के सामान्य अभिनेता सृजनशील न होकर, पात्रों का प्रतिनिधित्व मात्र कर देते थे और सामूहिक अभिनय के प्रवाह में एक गति अपनी भी जोड़कर पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाते थे। (उन कलाकारों की बात दूसरी है जो कलाकार अथवा अभिनेता होने के साथ ही प्रबन्धक भी थे। वे अभिनेताओं का एक दल तैयार कर लेते थे और कहीं किसी रंगशाला को किराये पर लेकर व्यावसायिक आधार पर आधुनिक नाटकों के साथ प्रतियोगिता में सम्मिलित हो जाते थे।)

यथार्थवादी युग के साहित्यकारों और कलाकारों को इस बात का बड़ा खेद था कि नये युग के सज्जाकारों के सामने नाटककारों की सत्ता क्षीण होती जा रही है। कारण यह था कि 'रंगशालाओं' में नवीन सज्जात्मक प्रवृत्तियों का प्रवर्तक, गोर्डन क्रेग, जो अभिनेता, निर्देशक और सज्जाकार आदि सब कुछ था, रंगमंच को नये ढंग से सज्जित करने के लिए ऐसे दृश्य और चित्र अंकित करने लगा जो १८९० ई० में प्रचलित दृश्यों और चित्रों से भिन्न थे। और, यद्यपि वह उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ी

रंगमंच की सब से सम्मानित, सबसे लोकप्रिय तारिका एलेन टेरी का पुत्र था, फिर भी कुछ लोगों ने उसकी नवीनताओं के कारण उसे 'आधा पागल', बल्कि उससे भी अधिक कुछ कहना आरम्भ कर दिया था।

१९०५ ई० में क्रेग ने अपनी पहली पुस्तक में लिखा है :

"रंगमंच की कला न तो अभिनय है और न नाटक, न तो दृश्य है और न नृत्य; बल्कि वह उस सम्मिलित प्रभाव में है जो उन इन समस्त वस्तुओं के समन्वय से उत्पन्न होता है। क्रिया अभिनय का प्राण है; शब्द नाटक के शरीर हैं, रंग और रेखाएँ सज्जा को अनुप्राणित करती है; लय और गति नृत्य की आत्मा हैं. . इन में से किसी का भी महत्व सर्वोपरि नहीं है; कलाकार के लिए जैसे प्रत्येक रंग और प्रत्येक रेखा की समान महत्ता होती है, संगीतकार के लिए जैसे प्रत्येक स्वर महत्वपूर्ण होता है, वैसे ही नाटक के लिए इन समस्त तत्वों की समन्वित आवश्यकता और महत्ता है--

"यदि आपको कलात्मक दृष्टि से सुन्दर, वास्तविक नाटकों को देखने का अवसर मिले तो नाटक की कला के नाम पर आज जो कुछ भी दिखलाया जा रहा है उससे आपको विरक्ति हो जायगी। रंगमंच पर आज यदि उत्कृष्ट कलात्मक रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की जातीं तो इसका कारण यह नहीं है कि दर्शक ऐसी चीजें पसन्द नहीं करते या आधुनिक रंगमंच पर ऐसे कुशल शिल्पी अथवा शैलीकार नहीं, बल्कि इसका कारण यह है कि अभी रंगमंच का अपना कोई 'कलाकार' नहीं हुआ--ऐसा कलाकार जो रंगमंच की 'कला' का कलाकार हो, कवि, चित्रकार अथवा संगीतकार नहीं।"

बाद में उसने फिर लिखा--"मैं इस बात को फिर से बतला देना चाहता हूँ कि रंगशाला में, या रंगमंच पर लेखक का कोई काम नहीं, चित्रकार का कोई काम नहीं, संगीतकार का कोई काम नहीं, रंगमंच के लिए इनकी कृतियाँ बेकार हैं, निरर्थक हैं। ये लेखक, ये चित्रकार, ये संगीतकार अपने ही क्षेत्रों तक सीमित रहें तो अच्छा है। रंगमंच की 'कला' के लिए तो बस रंगमंच के 'कलाकार' आयें।" और रंगमंच पर जितने कार्यकर्ता और जितने अधिकारी कार्य-व्यस्त दिखलायी पड़ते हैं उनकी गणना करते हुए वह आगे कहता है--

"एक की जगह सात-सात निर्देशक और एक की जगह नौ मत। स्मरण रखना होगा कि जिस नाटक के प्रदर्शन में इतने लोगों का निदेशन है, इतने लोगों के विचार हैं, वह नाटक कुछ भी हो, 'कलात्मक' नाटक बिलकुल नहीं है। और यदि आधुनिक

रंगमंचों पर 'कलात्मक' नाटक दुर्लभ हैं तो इसका यही कारण है--वैसे बहुत-से और कारण भी हो सकते हैं।"

दूसरे शब्दों में, साहित्यकार को अलग कर दीजिए और उसको अलग कर देने के बाद रंगमंच पर जो व्यक्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण जान पड़े और जिसका रंगमंचीय कला के समस्त साधन, समस्त सामग्री पर पूरा-पूरा अधिकार हो, उसे ही नाटक का सच्चा, सर्वश्रेष्ठ कलाकार समझना होगा। नाटक की कला का वास्तविक कलाकार वही है।

अब तक ऐसा आश्चर्यजनक व्यक्ति नहीं उत्पन्न हो सका है जो नाटककार भी हो, संगीत-निर्माता भी हो, सज्जाकार भी हो और अभिनय-निर्देशक भी। जिस दुनिया में एक ही क्षेत्र में शताब्दियों के बीच कोई एक प्रतिभा दिखायी पड़ती है और जहाँ एक में विशेषज्ञता प्राप्त करने का ही नियम है वहाँ इस प्रकार के आदर्श की उपलब्धि बहुत कठिन है। क्रेग रंगमंच से सम्बद्ध कार्यकर्ताओं में सबसे महत्वपूर्ण स्थान उस व्यक्ति को देता है जो नाटक को रंगमंच पर लाता है। वह व्यक्ति अब तक या तो प्रवन्धक होता था या रंगशाला का मालिक या व्यवसायी। लेकिन अब वह स्थान एक कलाकार, एक विशेष ज्ञाता को देना होगा जिसकी कलात्मक, प्रदर्शनात्मक शक्तियाँ और क्षमताएँ अमित हों।

रंगमंच को सजाने के लिए पहिले चित्रों अथवा दृश्यों का उपयोग सन्दर्भ का विचार किये बिना ही दूसरी रंगशालाओं से मँगाकर कर लिया जाता था लेकिन आधुनिक काल का कालाकार-निर्देशक रंगमंच की सज्जा में अपनी कल्पना से भी काम लेता है और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी दृश्यों का सृजन करता है। पहले अभिनेतागण अभिनय की प्रक्रिया में झक में आकर मनमाना अभिनय करने लगते थे किन्तु अब उन्हें कलाकार-निर्देशक बस उतनी ही स्वच्छन्दता देता है जितनी नाटक के प्रदर्शन के सम्मिलित प्रभावात्मकता के लिए अहितकर न हो। रंगमंच की कला को इस प्रकार संभवतः पहली बार प्रभाव की सम्पूर्णता की दृष्टि से समझने का प्रयत्न किया गया। ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि दर्शक अथवा श्रोता के मन पर प्रदर्शन के किसी एक पक्ष का प्रभाव नहीं होता, वल्कि उसके समस्त पक्षों का सम्मिलित प्रभाव होता है।

पहले दशा यह थी कि नाटकों का निर्देशक-कलाकार व्यवस्थापक का किराये पर लिया हुआ दास होता था, मुख्य अभिनेत्री के इंगित पर नाचता था और एक महत्वहीन सहायक मात्र माना जाता था। लेकिन इन बीस वर्षों में उसका स्थान सबसे महत्वपूर्ण हो गया है। कारण यह है कि प्रस्तुतीकरण (प्रोडक्शन) का

इन सूक्ष्म और स्थूल, दृश्य और अदृश्य माध्यमों की सहायता से वह कार्य करता है और नाटक के प्रदर्शन में रंगमंच पर वह प्रभाव, वह प्रवाह उत्पन्न करता है, वह अटूट, असीम आकर्षण उत्पन्न करता है जो प्रदर्शन के 'रूप' अथवा 'आकार' को प्रतिबिम्बित करते हैं। एक यही विशेषता है जो आधुनिक रंगमंच को पुराने रंगमंच से अलग, एक पृथक सत्ता देती है।

मैक्स रेनहार्ड उस प्रकार का प्रारंभिक कलाकार--निर्देशक था। पश्चिम के निर्देशकों में वह क्रान्तिकारी समझा जाता था। प्रदर्शन की इस नवीन पद्धति को प्रचलित करने के लिए भी उसने प्रशंसनीय प्रयत्न किये। आरंभ में वह एक अभिनेता मात्र था---वाद में निर्माता हुआ और तब यथार्थ से उसकी सहज सहानुभूति थी। उसने क्रेग तथा एप्पिया की पुस्तकों के पृष्ठ-पृष्ठ से लाभ उठाया और कुछ ऐसे ही अन्य आदर्शवादियों की रचनाएं भी पढ़ीं और मंचीय-सज्जा-सम्बन्धी उनके सुझावों को यदा-कदा कार्यान्वित करने का प्रयत्न भी किया। कुछ उत्तम, अत्यधिक विज्ञापित कलाकारों अथवा चित्रकारों को उसने सरल, सुन्दर, प्रभावोत्पादक मंचीय चित्र बनाने को उत्प्रेरित भी किया। निर्देशक के रूप में उसकी क्षमताएँ बढ़ती गयीं, उसके अधिकार बढ़ते गये और नाटकों के साथ भी उसने पूरी स्वच्छन्दता की। अभिनय के किसी भाव या मुद्रा को, या सज्जा के किसी विशेष पक्ष अथवा अंग को वह अक्सर इतना महत्वपूर्ण समझने लगता था कि कभी-कभी शेक्सपियर तथा यूनानी नाटककारों-जैसे बड़े नाटककारों की रचनाओं के पाठ उनके नीचे दबे रह जाते थे। नाटकों के प्रदर्शन में उसका हाथ अचूक रूप से सिद्धहस्त था और नाटक भी उसने ऐसे प्रदर्शित किये जिनकी प्रभावोत्पादकता असन्दिग्ध थी।

नाटक की सज्जा तथा क्रिया-संचालन में वह कभी-कभी 'अति' कर देता था। किन्तु साथ ही कभी-कभी उसने ऐसे रंगमंचीय प्रभाव भी उत्पन्न किये जिनके बिना अभिनय निष्प्राण हो जाता। उसने 'दि मिरैकिल' जैसे निम्न स्तर के नाटक भी दिखलाये। ऐसे नाटकों के उत्तम दृश्यों को उसने मुख्यतः अनुप्राणित किया और शेष दृश्यों को उसने प्रकाश, संगीत तथा मंच पर अभिनेताओं की भीड़ के प्रवाह में बह जाने दिया। 'साल्ज़बर्ग' महोत्सव जैसी विश्व-विख्यात घटनाओं के प्रदर्शन में उसने जहाँ एक ओर अपनी प्रतिभा का समुचित परिचय दिया, वहीं अपनी प्रतिभा से हटकर उसने अनावश्यक चमत्कार भी उत्पन्न किये। मंचीय दृष्टिकोण से उसने 'क्लासिक्स' का पुनर्प्रतिष्ठापन किया और उनकी ऐसी रंगमंचीय परिणति की जिसमें उनके नाटकीय तत्वों को समन्वित करके प्रवाहित करने का उसे अवसर हो। रंगमंच पर सामूहिक प्रभाव उत्पन्न करने में तो वह बिल्कुल बेजोड़ था और अभिनेता-

अभिनेत्रियों की फ़ौज खड़ी करने का भी उसे भारी शौक था।

उसकी सर्वोत्तम कृतियों में उसके निर्देशन का सृजनात्मक पक्ष इतना प्रबल हो उठा है कि इस दृष्टि से उस समय के अन्य निर्देशक निम्न सिद्ध होते हैं। जर्मनी और आस्ट्रिया से लेकर उसने अपने कृतित्व को इंगलैंड और अमेरिका तक फैलाया और इसके लिए उसका नाम उदाहरण स्वरूप माना जाता है। पर उसके अन्तिम दिन हालीवुड में बीते जिसका कारण नाटक अथवा रंगमंच-सम्बन्धी न होकर यह था कि वह यहूदी होने के कारण 'नाज़ियों' के अत्याचार का शिकार हुआ और उसे हालीवुड जाना पड़ा। किन्तु हालीवुड के चलचित्र-जगत् में उसको वह सफलता, वह सम्मान न मिल सका जो उसे नाटकों के प्रदर्शन और निर्देशन में मिला था।

जर्मनी के कुछ अन्य निर्देशक—कलाकारों ने भी प्रदर्शन में रंगमंचीय सृजनात्मकता की उपलब्धि की किन्तु उनमें मैक्स रहार्ड का चमत्कार नहीं था। किन्तु फिर भी विश्व पर उनका प्रभाव था। बर्लिन के 'स्टेट थियेटर' में लियोपोल्ड जेसनर ने 'शैलीकरण' के प्रश्न को नयी गहराई दी, नया अर्थ दिया। 'शैलीकरण' का वही तत्व उसके अभिनय, उसकी रंगमंचीय सज्जा उसके प्रदर्शनों के प्रवाह, गति में व्याप्त है। प्रदर्शन के 'दृश्य' और 'श्रव्य' पक्षों में भी उसी की महत्ता है। मंचीय सजावट को उसने न्यून से न्यूनतर किया, यहाँ तक कि मंच पर नंगी दीवारों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया। मंच को उसने अपेक्षाकृत और ऊंचा किया ताकि अभिनेताओं का दर्शन और भी स्पष्ट हो सके? जेसनर के निर्देशन में काम करने वाले अभिनेताओं की गति इतनी प्रख्यात हो गयी थी कि उसे 'जेसनर की गति' कहने लगे थे—ठीक वैसे ही जैसे क्रेग की ख्याति पर्दों के उपयोग तथा रूसी निर्देशकों की ख्याति रंगमंच की बनावट के लिए थी। इस प्रकार नाटक के प्रवाह में जेसनर का अपना मौलिक योगदान था—उससे नाटक के प्रवाह-सम्बन्धी नये गुणों की अवतारणा हुई। इसके सज्जाकार एमिल पिरचन का भी इसमें पर्याप्त हाथ था और यह उसी की प्रतिभा थी जो चित्रों से रहित रंगमंच भी रंगीन जान पड़ता था। अभिनय में प्रकाश के विविध पक्ष प्रयोगों द्वारा भी उसने रंगमंच की चित्र-हीनता को सन्तुलित करने का प्रयत्न किया था।

बर्लिन में जर्गन फेहलिग 'क्लासिक्स' का प्रदर्शन कर रहा था और कुछ आधुनिक जीवित नाटककारों की रचनाएँ भी अभिनीत कर रहा था और इसमें सन्देह नहीं कि उसके प्रदर्शनों में जो सफ़ाई और जो ज़िन्दगी दिखलायी देती थी उसके कारण उसे समय के सर्वोत्तम निर्देशक-कलाकारों में ऊंचा स्थान मिला। सामूहिक अभिनय की पद्धति को और अधिक सशक्त बनाने के लिए और पाठकों का
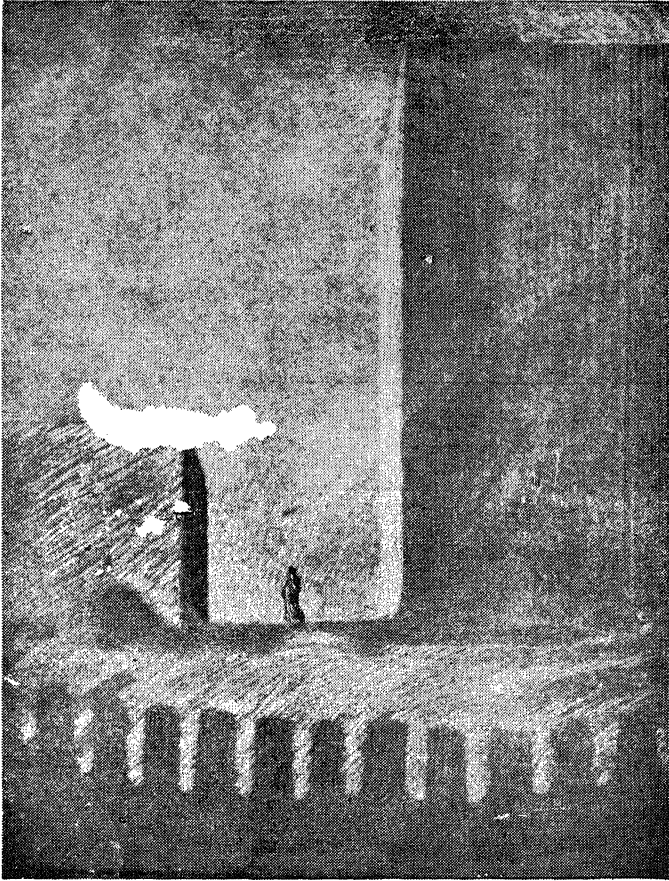
हेमलेट में भूत-प्रेत वाले दृश्य के लिए गोर्डन क्रेग कृत डिज़ाइन। क्रेग ने आधुनिक युग में रंगशाला को जितना अधिक प्रभावित किया, उतना किसी भी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया। उसने दृश्य को अधिक से अधिक सादा बनाने पर बल दिया, सत्यमेव नाटकीय अभिव्यंजनावाद की ओर वापिस जाने पर ज़ोर दिया, और यह भी कहा कि जब कलाकार-निदेशक व्यवस्था करेगा, तभी एकता की स्थापना हो सकेगी। यह सादा किन्तु नाटकीय डिज़ाइन, जो १९०७ ई० में ही अत्यन्त क्रान्तिकारी मानी जाती थी, चालीस वर्ष बाद भी उत्कृष्ट रचना [illegible] पूरी तरह मेल खाती है। (क्रेग कृत 'टुवर्डस ए न्यू थियेटर' से।)।
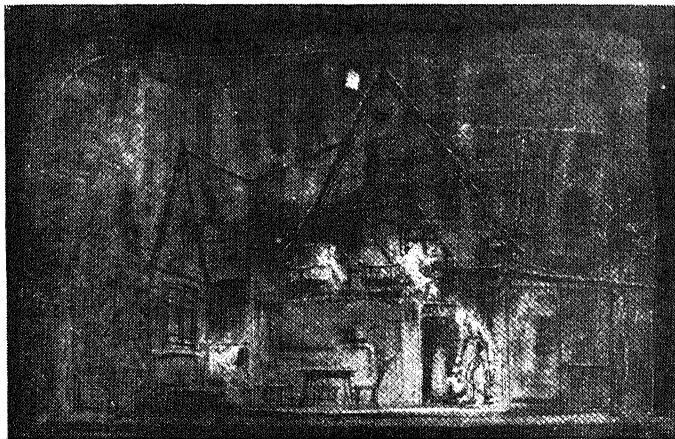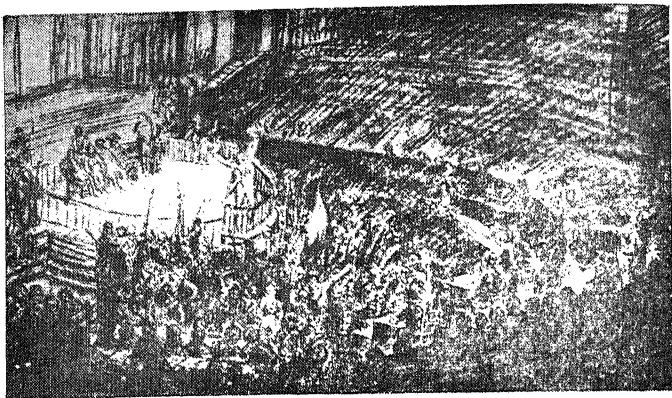
ऊपर, 'डान्टन' में एक विशिष्ट 'भीड़ का दृश्य', जैसा कि बर्लिन में, १९२२ ई० में, मैक्स रीनार्ट द्वारा' गोसेस शासपीलहौस' में यह प्रस्तुत किया गया था। यह वृत्ताकार रंगशाला की ओर बढ़ते हुए क़दम का एक उदाहरण है। (अर्न्सट स्टर्न कृत एक ड्राइंग से)। नीचे, 'डेथ आव ए सेल्समैन' न्यूयार्क, १९४९ ई०, के लिए जोमिल जीनेर कृत सेटिंग के लिए डिजाइन। यह नाटक मूलतः यथार्थवादी था। कथोपकथन में यह संवादमूलक था, इसमें किसी भी प्रकार का उपदेश न था, परन्तु अभिनय की सक्रियता में, बार-बार दरवाज़े के बाहर जाने और भीतर आने, तथा अनेक कमरों के होने का प्रभाव उत्पन्न किया जाता था। प्रकाश व्यवस्था से इन परिवर्तनों का नियमन होता था। मध्य शताब्दी में अमेरिका के व्यावसायिक अभिनयों में लेखक, डिजाइनर, अभिनेता और निदेश के बीच संपूर्ण सामञ्जस्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण। (पीटर जूली कृत फोटोग्राफ़ से)।
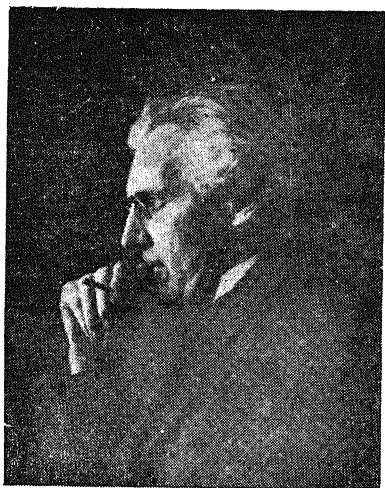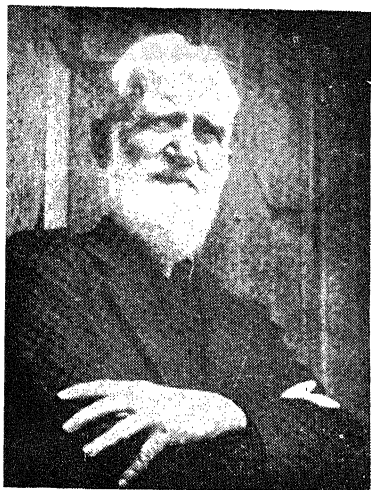
बीसवीं शताब्दी की रंगशाला के तीन सबसे महान् कलाकार : बरनार्ड शा, युग का सब से महान् नाटककार; गोर्डन क्रेग, सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्धान्तवेत्ता और डिज़ाइनर; और एल्योनोरा डुसे, जिसे अनेक लोग सर्वाधिक ओजपूर्ण, संतोषजनक अभिनेत्री मानते हैं ।

प्लेट ६३
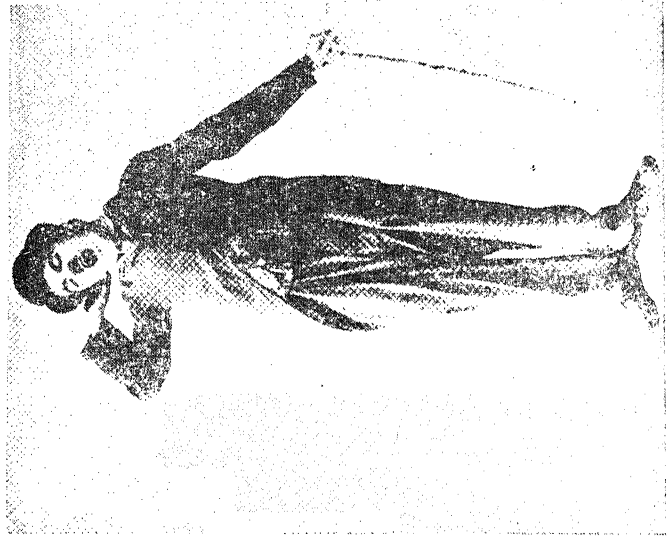
रंगमंच से रजतपट तक––बीसवीं शताब्दी का एक विशिष्ट विपर्यय। सारा बर्नहार्ट, नियमित रंगमंच की, भावुकतापूर्ण एवं भावना प्रवण अभिनेत्रियों की परंपरा की अंतिम अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अभिनेत्री। चार्ल्स चैपलिन, रजतपट-युग का प्रथम अमर अभिनेता।

ध्यान यथासंभव अधिक से अधिक अभिनेताओं के अभिनय की ओर लगाये रखने के लिए उसने रंगमंच को सज्जाओं से खाली कर दिया। अभिनय करने के लिए रंगमंच पर उसने अभिनेताओं को विस्तृत भूमि दी ताकि वे अबाध डग भरते हुए अभिनय करें और उनकी गति-विधि को प्रकाश के विभिन्न प्रभावों के माध्यम से परिलक्षित करते रहने की प्रथा भी चलायी। विस्तृत रंगमंच पर निर्बन्ध तथा उन्मुक्त अभिनय लिए उसके अभिनेता विश्व-विख्यात थे। क्रेग की तरह उसका भी विश्वास था कि मंच पर दृश्यों और चित्रों का अम्बार लगा देने से दर्शक का ध्यान बँट जाता है। एप्पिया की परंपरा के अनुसार विस्तृत रंगमंचों पर प्रकाश के विविध कलात्मक संयोजन से सौन्दर्य तथा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने में भी वह दक्ष था। इस प्रकार नाटकों के क्षेत्र में फेलिंग एक प्रयोगवादी कलाकार-निर्देशक मात्र नहीं था; उसका एक विशिष्ट ऐतिहासिक स्थान है। अपनी कल्पना की परिधि में घेरकर, खेले जाने वाले नाटक के समन्वित प्रभाव का सम्यक मानसिक मूल्यांकन करना उसे खूब आता था और उनका प्रदर्शन भी वह तभी करता था जब प्रदर्शन की सभी दशाओं को समन्वित करके उन्हें मानसिक रूप से अच्छी तरह से निरख और परख लेता था। बाद में लोकतांत्रिक भावना से सहानुभूति रखने के कारण उसकी कंपनी को नाज़ी सरकार ने विनष्ट कर दिया किन्तु उसके पहले 'मैस-मेंश' प्रभृति नाटकों के प्रदर्शन से वह जगत-प्रसिद्ध हो चुका था।

'रिपर्टरी' रंगशालाओं की जो प्रथा जर्मनी में प्रचलित थी उसके निर्देशक-कलाकारों को अपनी प्रतिभा का विकास करने का अच्छा अवसर मिला। लगभग एक दर्जन ऐसे निर्देशक-कलाकार राजकीय तथा अन्य रंगशालाओं में उन दिनों काम कर रहे थे। 'आपेरा' को भी—जिसमें अबतक संगीत और अभिनय का कोई अनिवार्य, कलात्मक सम्बन्ध नहीं जुट पाया था—अब निर्देशक-कलाकारों की निर्देशक-परिधि में आना पड़ा। म्यूनिख में, 'प्रिंस रीजेंट थियेटर' में किये गये आपेरा के प्रदर्शनों में दर्शकों को संगीत और अभिनय के बीच एक ऐसी कलात्मक एकता का दर्शन हुआ जो पहले कभी संभव न था। 'प्रदर्शन' को कला की मान्यता दिलाने के क्षेत्र में, इस इस प्रकार, रेनहार्ड, जेसनर तथा फेह्लिंग की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रसंग में इरविन पिस्केटर का भी उल्लेख होना चाहिए। उसके लिए कहा जा सकता है कि वह [illegible] नवीन आन्दोलन का सबसे अतिवादी प्रणेता था। बर्लिन में उसकी अपनी रंगशाला थी जिसमें वह राजनीतिक दृष्टि से 'वोक्सब्यून' से भी ज़्यादा वामपंथी के रूप में अपने प्रदर्शनों को उपस्थित करता था और लेखक के मूल पाठ को एक एकीकृत

स्फूर्तिप्रद और अविस्मरणीय आकार में ढाल देता था। लेकिन कभी-कभी नाटक के मूल पाठ को वह इतना अधिक बदल डालता था और रंगशालाओं के भीतर और बाहर साम्यवाद के साथ अपनी सहानुभूति का ऐसा डंका पीटने लगता था कि प्रशंसा के साथ ही साथ उसे भर्त्सना भी मिलती रहती थी। बाद में अमेरिका में उसने व्यावसायिक रंगशालाओं से मुँह मोड़ लिया और शताब्दी के मध्यकाल में न्यूयार्क की अपनी नाट्यशाला को प्रयोगशाला जैसा बना कर वह अपनी निर्देशन-पद्धति का प्रदर्शन करता रहा।

शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में, दलगत आस्थाओं पर बल देने की प्रथा के पूर्व, रूसी रंगशालाओं में क्रान्ति के लक्षण सबसे अधिक दिखलायी दिये और उनकी प्रयोगवादी गतिविधियाँ भी सबसे अधिक सफल सिद्ध हुईं। वहाँ भी कलाकार-निर्देशकों अथवा निर्देशक-कलाकारों का ही बोलबाला था। विसिवोलोद, मेयरहोल्ड, यूजिन वाशतैंगोफ़ तथा एलेक्ज़ेन्द्र तेरोफ़ आदि कुछ ऐसे ही साहसी निर्देशक-कलाकार थे। उन्होंने रंगशाला-संगठन की दिशा में नयी क्रान्ति उत्पन्न की, श्रोता और अभिनेता में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किये, नयी संगीत-नाटक की भी सर्जना की, सृजनात्मक मंचसज्जा को बल दिया, अभिनय में नट-तत्व का समावेश किया और 'क्लासिक्स' के पुनर्लेखन तथा प्रदर्शन के नये आयाम उत्पन्न किये। (और एक ही रचना में प्राय: इन समस्त गुणों को व्यवहृत कर दिखाया)।

इन सब बुद्धिमत्ता और मूर्खतापूर्ण प्रयोगों की पृष्ठभूमि में 'मास्को आर्ट थियेटर' की उपलब्धियों का उल्लेख भी अनिवार्य है। 'मास्को आर्ट थियेटर' के माध्यम से कलाकार निर्देशकों तथा सामूहिक अभिनय को बल मिला। रेनहार्ट के पूर्व, कलात्मक निर्देशन के क्षेत्र में विश्व-विख्यात निर्देशक कांस्टेन्टाइन स्तानिस्लावस्की के निर्देशन में प्रारंभिक काल के कुछ अभ्यासी अभिनेताओं ने 'आभासिक' यथार्थवाद के क्षेत्र में उत्तम कार्य किया। लेकिन स्टानिस्लावस्की अपनी उस रंगशला में, जिसका निर्देशन-संचालन, ब्लदिमीर नेमिरोविच-देनचेंको के सहयोग से वह १८९८ ई० से ही करता आया था, शेक्सपियर कृत 'हैमलेट' तथा मेटरलिंक-कृत 'दि ब्लू बर्ड' प्रभृति अत्यन्त ही अ-यथार्थवादी नाटकों के प्रयोगात्मक प्रदर्शन भी करता रहा। बाद में मास्को आर्ट थियेटर के कुछ युवक अभिनेताओं ने सृजनात्मक निर्देशन तथा अ-यथार्थवादी प्रदर्शन की कल्पना से अभिभूत होकर 'आर्ट थियेटर' से विलग हो जाना ही श्रेयस्कर समझा।

प्रदर्शन की यथार्थवादी पद्धति के विरुद्ध कार्य-रत, सर्वाधिक सशक्त

क्रान्तिकारी निर्देशक मेयरहोल्ड था जो १९१७ ई० की क्रान्ति के बाद रूसी रंगशालाओं के कलाकार-निर्देशकों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। प्रतीकवादियों के नाटकों के प्रदर्शन में, तथा दर्शक और अभिनेता के बीच एक प्रकार का तादात्म्य स्थापित करने में उसे पर्याप्त सफलता मिली। उसके द्वारा निर्दिष्ट प्रदर्शनों में शैली के प्रति उसकी निरन्तर जागरूकता का स्पष्ट बोध होता रहता है। 'बोलशेविक सरकार' द्वारा उसे प्रदर्शनों के लिए एक रंगशाला की प्राप्ति हुई जिसमें उसकी निर्देशन-कला सर्वदा निखरती थी। अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे वह नाटकों के मूल-रूप को परिवर्तित भी कर डालता था और मंच पर ऐसी सज्जा प्रस्तुत करता था जिसमें स्वाभाविकतावादी सज्जा-परंपरा की गन्ध भी नहीं होती थी। उसकी सज्जा त्रि-आयामी, कपोल-कल्पित किन्तु रचनात्मक होती थी——तरह तरह की मंचवेदियाँ, सेतु तथा ढाल आदि बनाकर वह रंगमंच की बनावट को जटिल भी कर देता था, किन्तु इससे अभिनेताओं की गति को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलती थी। अन्त में मेयर पर यह अभियोग लगाकर उसे नौकरी से अलग कर दिया गया कि वह अपने 'प्रदर्शनों' में रुसी सरकार के हितों का विचार नहीं करता। राजनीतिक तानाशाही में काम करनेवाले अतिवादी, व्यक्तिवादी कलाकारों के साथ यही होता भी है।

वाशटैंगोफ़, स्तानिस्लावस्की का शिष्य था। 'मास्को आर्ट थियेटर' के अन्तर्गत उसने कुछ नाटकों का निर्देशन भी किया था। रूस की क्रान्ति के बाद वह रंगशाला आत्म-निर्भर हो गयी। उसमें 'क्लासिकल' नाटकों के नवीन, अनूकूलीकृत प्रदर्शन होने लगे और कुछ आधुनिक नाटक भी दिखलाये गये। प्राय: प्रत्येक प्रदर्शन रंगमंचीय शैली के विशिष्ट दृष्टिकोण से अभिभूत थे। 'त्यूरेनदोत' के प्रदर्शन में जो बुद्धि-चातुर्य और रसीलापन था वह स्मरणीय है। जिस वर्ष त्यूरेनदोत का प्रदर्शन हुआ उसी वर्ष वाशटैंगोफ़ की मृत्यु हो गयी किन्तु रूसी सरकार ने उसके नाम पर अनुदान देकर रंगशाला को बनाये रखा और उसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक नाटक दिखलाये जाते रहे।

प्रमुख कलाकार-निर्देशकों के अन्त्यन्त ही आधुनिकतावादी दल के तृतीय व्यक्ति एलेक्जेंद्र तैरोफ़ का नाम भी उल्लेखनीय है। विश्व के प्रथम महायुद्ध के आरंभ में मास्को में उसने एक व्यक्तिगत रंगशाला खोली किन्तु प्रदर्शन के क्षेत्र में विस्तृत तथा स्वच्छन्द प्रयोगात्मक गति का अवसर उसे तभी मिला जब रूसी सरकार से उसे अनुदान प्राप्त हुए। एक उत्तम अश्वारोही की दृष्टि जैसे अश्व की गति पर होती है वैसे ही तैरोफ़ की दृष्टि नाटकों और उनके प्रदर्शनों पर थी। प्रदर्शनों में शैली और प्रभावों की

संश्लेषणात्मकता पर उसका विशेष ध्यान होता था। वह उसी के प्रयासों का परिणाम था जो केमर्नी थियेटर आधुनिक रंगशालाओं में विश्व-विख्यात हुआ।

१९१७–१९३५ ई० के मध्यकाल में कुछ और भी अद्वितीय प्रतिभावान् कलाकार निर्देशक थे। सोवियत रूस से हम आक्रान्त हो सकते हैं, या उसको जुगुप्सा की दृष्टि से देख सकते हैं, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह सोवियत रूस के ही प्रयत्नों का फल था जो बीसवीं शताब्दी में प्रदर्शन-कला के क्षेत्र में इतने अधिक प्रयोग सामने आये और इतने सफल नाटक अभिनीत हुए। किन्तु साथ ही यह भी सही है कि पश्चिमी राष्ट्रों से जाने वाले यात्रियों को मास्को और लेनिनग्राद तथा कुछ सुदूर प्रदेशों में प्रदर्शित नाटकों में कुछ ऐसी बातें दिखलायी दीं जिनसे वे व्यग्र भी हुए और भयभीत भी। उदाहरणार्थ, उनको ऐसे भी नाटक देखने पड़े जो नाटकीय भाव अथवा रंगमंच-सुलभ संवेग उत्पन्न करने के अपने मौलिक लक्ष्य में विचलित थे—उनमें चिन्त्य तथा भयानक, धर्म-विरोधी भावनाओं का अतिरेक था और राजनीतिक सिद्धान्त, विशेषकर, साम्यवाद, के प्रतिपादन और प्रचलन का उन्हें माध्यम बनाया गया था।

शताब्दी के चौथे दशक में यह स्पष्ट ो गया कि साम्यवाद के प्रभाव में तात्सताय, चेखब अथवा गोर्की जैसे सच्ची प्रतिभावाले नाटककार उत्पन्न न हो सके। अधिक स्मरणीय बात तो यह है कि उस काल में रूस में उस श्रेणी के नाटककार भी न उत्पन्न हो सके जैसे नाटककार उस समय फ्रांस, इंगलैंड तथा अमेरिका में सृजन-रत थे। क्रेमलिन के 'नीति-निर्धारकों' का हाथ नाटक के क्षेत्र में भी कम शक्तिशाली नहीं था और कदाचित् यही कारण है जो रूसी नाट्च-निर्देशन के क्षेत्र में चौथे दशक के प्रारंभिक काल में पतनोन्मुखता के आभास उभरने लगे। अभिनेताओं के एक पूरे समूह को तो रूस का बिल्कुल परित्याग ही कर देना पड़ा। 'हाबिमा ज्यूविश थियेटर' को तो रूस छोड़कर इसराइल की शरण लेनी पड़ी—स्मरण रखना होगा कि यह वही 'थियेटर' था जिसे लेनिन के समय में उसकी उदार सांस्कृतिक नीतियों की छाया में फलने का अवसर दिया गया था और जिसे वाशटैंगोफ के निर्देशन में खेले गये 'दि डाइबक' शीर्षक नाटक के प्रदर्शन के बाद विश्व-विख्यात होने का सम्मान मिला था। 'हाबिया ज्यूविश थियेटर' के अन्तर्गत एक नाटकघर अब भी तेल-अबीब में सक्रिय है जिसका नाम है—'हाबिया : दि नेशनल थियेटर आव पैलेस्टाइन।'

फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का सबसे पहला कलाकार-निर्देशक जैक्स कोप्यू था। वह स्वयं लेखक और अभिनेता तो था ही, उस में दार्शनिक बुद्धि की भी कमी नहीं थी और कदाचित् यही कारण है जो उसमें द्रष्टा अथवा स्रष्टा की

वह कल्पना भी थी जो कलाकार-निर्देशकों के लिए आवश्यक होती है। पिछले अध्याय में उसकी रंगशाला 'वियेक्स कोलम्बियेर' के बारे में बतलाया जा चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त फ्रांसीसी कलाकार-निर्देशकों कोप्यू के सहयोगी लुई जोवेत का उल्लेख भी बहुधा होता है। सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न वह एक उत्तम अभिनेता, सज्जाकार तथा निर्देशक था और उसके द्वारा निर्देशित नाटकों में विनोदात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की प्रवृत्ति विशेष रूप से परिलक्षित हुई थी। मोलियर के नाटकों के प्रदर्शन में उसे विशेष सफलता मिली और यह कदाचित् उसी का प्रयास था जो मोलियर के नाटक दक्षिणी अमेरिका तथा मिस्र में भी प्रचलित हुए। १९५१ ई० में उत्तरी अमेरिका की यात्रा उसने अन्तिम वार की और उसी के बाद उसकी मृत्यु भी हो गयी। उन दिनों अमेरिकी नगर मांट्रियल और न्यू यार्क में 'दि स्कूल फ़ार वाइव्स' के (रंगमंच की दृष्टि से) अत्यन्त ही उत्कृष्ट प्रदर्शन प्रस्तुत किये गये। इस नाटक के अभिनय के लिए रंगमंच को एक साधारण मंच अथवा चबूतरे का रूप दे दिया गया था और मंच का सज्जा-शृंगार भी बस उतना ही किया जा था जितना अभिनय को मुखर बनाने के लिए आवश्यक था (आधुनिक काल के प्रतिनिधि कलाकार क्रिश्चियन बेरर्ड के चित्रों का उपयोग भी किया गया था)। कुल मिलाकर अभिनय ऐसा था जैसे बस जोवेत ही निर्देशित कर सकता था।

शताब्दी के तीसरे दशक में पेरिस आधुनिक रंगमंच आन्दोलन के नेताओं को 'चार वड़े' के नाम से याद करता था। इसका तात्पर्य यह है कि जोवेत के अतिरिक्त तीन कलाकार-निर्देशक और थे जिनको नवीन, क्रान्तिकारी, शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट प्रदर्शनों के लिए राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। उनके नाम हैं—चार्ल्स डलिन, जो कोपू की कंपनी में भी काम कर चुका था; जार्जेज़ पितोयेफ, जिसके वंशज रूसी थे, और गैस्टन बेटी। फ्रांसीसी नाट्य-रचना की पुरानी, गतिहीन परंपरा में अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति का बीज बोने वाले विदेशी नाटककारों का प्रभाव भी उन्हीं के माध्यम से संभव हुआ था। इस प्रकार फ्रांसीसी नाट्य पर पिरैंडेलो, शा, ओ'नील तथा मध्य-युरोपीय अभिव्यक्तिवादियों का प्रभाव परिलक्षित हुआ। परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के इन 'चार बड़ों या प्रमुखों' के हाथ में अ-यथार्थवादी शैली में अनुकूलीकृत 'क्लासिक्स' के अतिरिक्त आधुनिक परंपरा के नये नाटक भी आ गये। फ्रांस के 'नेशनल थियेटर' में अपने प्रदर्शनों को प्रस्तुतत करने का उन्हें अवसर दिया गया और उन्हीं के प्रयत्नों के फल-स्वरूप फ्रांसीसी रंगशालाओं में प्रचलित प्रदर्शन-सम्बन्धी उन तमाम कुरूपताओं का बहिष्कार संभव हुआ जिनके कारण 'कामेदिया फ्रांके' को विश्व की सबसे अधिक पिछड़ी हुई रंगशालाओं में एक कहा जाता था।

उन दिनों आधुनिक रंगशालाओं की परपाटी को उत्प्रेरित करने का श्रेय निःसन्देह गोर्डन क्रेग को था। बाद में उसकी यह उत्प्रेरिका-शक्ति इतनी सूक्षम सिद्ध हुई कि कलात्मक निर्देशन-सम्बन्धी उसके प्रारंभिक प्रयास प्रायः विस्मृत कर दिये गये। उसके पास कोई अपनी रंगशाला नहीं थी, इसलिए उसे दूसरे निर्देशक-कलाकारों के सहयोग से अन्य रंगशालाओं में कार्य करना पड़ता था। १९६२ ई० में उसने 'मास्को आर्ट थियेटर' में 'हेमलेट' के प्रदर्शन में स्तानिस्लावस्की का साथ दिया—और उसका साथ वह सर्वदा देता रहा। १९२६ ई० में कोपेनहेगेन के 'रायल थियेटर' में उसके सहयोग से 'दि प्रिटेण्डर्स' का प्रदर्शन संभव हुआ। कोपू (जिसने क्रेग के सहयोग से प्रदर्शन-कला का एक विद्यालय स्थापित करने का प्रयत्न किया था।), स्तानिस्लावस्की तथा अन्य कलाकार-निर्देशकों के माध्यम से उसने निर्देशन और प्रदर्शन की कला को वास्तविक कला के रूप में प्रस्थापित करने का सफल प्रयत्न किया। क्रेग के पास परामर्श के लिए जो भी कलाकार-निर्देशक आया वह असली कल्पनाशक्ति से अभिसिंचित तथा उत्प्रेरित होकर लौटा। हार्ले ग्रैनविल-बार्कर का उल्लेख भी इसी प्रसंग में अपेक्षित है जो कलाकार-निर्देशक के रूप में अपने देश, इंगलैंड के बाहर भी प्रख्यात हुआ। क्रेग का प्रभाव उसपर सीधा न होकर रेनहार्ड तथा स्टानिस्लावस्की के माध्यम से था। उन्हीं दिनों 'ओल्ड विक' में भी जो नाटक खेले जा रहे थे उनपर भी कलात्मक निर्देशन के गुणों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित था। सामूहिक अभिनय, सन्तुलित सज्जा, नाटकीय तत्वों का सम्मिलित, समन्वित, प्रभावोत्पादक प्रवाह आदि गुण 'ओल्ड विक' की रंगशालाओं में उसी के माध्यम से संभव हुए थे। अन्तर केवल इतना था कि 'ओल्ड विक' में कोई उत्तम श्रेणी का निर्देशक-कलाकार नहीं उत्पन्न हो सका।

सृजनात्मक निर्देशन का महत्व अमेरिका में भी पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया था, किन्तु वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का कोई सृजनात्मक कलाकार-निर्देशक न उत्पन्न हो सका। आगस्टिन डंकन का नाम इस क्षेत्र में अवश्य ही सर्वप्रमुख है। उसने यथार्थवादी नाटकों को एक प्रकार की ऐसी भावनात्मक एकता प्रदान की जो श्रोताओं के मन को बहुत भा गयी थी। उसका चरित्र-चित्रण अद्भुत था, अद्वितीय था (यदि आगस्टिन डेकन को एक अपनी रंगशाला और अभिनेताओं के अपने दल की सुविधा प्राप्त होती तो वह अमेरिका में निर्देशन अथवा प्रदर्शन कला को सम्भवतः उतना ही आगे ले जाता, जितना मास्को में स्तानिस्लावस्की तथा दैंतशैंको के माध्यम से सम्भव हुआ था)। ब्राडवे के निदेशकों में आर्थर हार्पकिंस का नाम बार-बार लिया जाता है। वह निर्देशन में बहुत से निर्देशकों के सम्मिलित सहयोग की प्राचीन परंपरा का विरोधी था। उसने अतिशयोक्तिपूर्ण निर्देशन अथवा अभिनय का

बहिष्कार किया और मौलिक प्रतिभा वाले सृजनात्मक अभिनेताओं की खोज की। अभिनेताओं को अपनी प्रतिभा का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए पूरी स्वच्छन्दता उसने दे दी थी और कदाचित् यही कारण है जो उसके द्वारा निर्देशित नाटकों का सम्मिलित प्रभाव अत्यन्त ही उत्कृष्ट होता था। १९२१ ई० में उसने न्यूयार्क में राबर्ट एडमड जोंस के सहयोग से शेक्सपियर रचित 'मेकबेथ' का अभिव्यक्तिवादी प्रदर्शन प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त 'दि पूअर लिटिल रिच गर्ल,' 'दि डेविल्स गार्डन', 'दि जेस्ट', 'रिडेम्शन,' 'हेमलेट', 'रिचर्ड थर्ड' तथा 'एन्नाक्राइस्टी' प्रभृति नाटकों को भी उसने सफलतापूर्वक अभिनीत किया। नाटकों के निर्देशन तथा प्रदर्शन-सम्बन्धी उसने अपने कुछ सिद्धान्त भी प्रतिपादित किये। उन्हें उसने 'अचेतन अभिव्यक्ति' की संज्ञा दी। इसी सन्दर्भ में एडी डाउलिंग का नाम भी उल्लेखनीय है। वह ब्राडवे में एक निर्देशक भी था और अभिनेता भी। उसके द्वारा निदेशित नाटकों में कलात्मक रंगमंचों पर अभिनीत नाटकों के प्रायः सभी गुण विद्यमान थे। उसने अपनी निजी मौलिक प्रतिभा से नाटकों के प्रदर्शन को एक ऐसा रूप प्रदान किया जिसमें आध्यात्मिक गुणों का भी समावेश था। विलियम सेरोयन रचित 'दि टाइम आव योर लाइफ़', फिलिप बैरी रचित 'हियर कम दि क्लाउन्स', टेनेस विलियम रचित 'दि ग्लास मेनाजिरी' प्रभृति रचनाएँ रंगमंच पर एडी डाउलिंग द्वारा प्रदर्शित होकर रंगमंचीय दृष्टिकोण से उत्कृष्ट तथा प्रवाहपूर्ण सिद्ध हुई। उन रचनाओं को मंच पर देखकर हृदय की धड़कन आज भी बढ़ जाती है।

अमेरिका के कलाकार-निर्देशकों में नार्मन बेल गेडेस का स्थान भी उच्च है। उसकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय थी। उसके द्वारा प्रदर्शन के लिए प्रस्तुत वे नाटक अधिक उत्तम माने जाते हैं जिनका प्रदर्शन कभी सम्भव न हो सका। ब्राडवे में उसके नाटक कुछ दिखलाये भी गये किन्तु न दिखलाये जाने वाले नाटक यदि प्रदर्शित होते तो कदाचित् उसका स्थान और ऊंचा होता। दान्ते की सुप्रसिद्ध रचना 'डिवाइन कामेडी' का रंगमंचानुकूल रूपान्तर करना उसी का कार्य था। वह रचना बाद में प्रकाशित भी हुई। अभिनेताओं की विभिन्न अभिनय-शैलियों का समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने में तथा प्रकाश और अन्धकार के अद्भुत समावेश से दृश्य-सज्जा का आनन्द उत्पन्न करने में उसकी प्रशिक्षा अत्यन्त ही प्रवीण थी। क्रेग की तरह अमेरिका के नवोदित निदेशकों और निर्माताओं पर गेडेस का प्रभाव भी कम गम्भीर नहीं था। 'डिवाइन कामेडी' की तरह उसने शेक्सपियर-रचित 'किंग लियर' का भी रंगमंचानुकूल रूपान्तर किया था; किन्तु किन्हीं कारणों से उसका प्रदर्शन केवल योजना बनकर रह गया। १९२४ ई० में न्यूयार्क में जब उसने अपने निर्देशन में 'दि मिरेकल' शीर्षक रचना का अभिनय

प्रस्तुत किया तब श्रोताओं को इस बात का आभास मिला कि यदि उसके आयोजित नाटकों को भी प्रदर्शित किया जाता तो उसका स्थान प्रदर्शनों के इतिहास में अनूठा तथा आश्चर्यजनक होता। अभिनय, प्रकाश-प्रबन्ध, प्रवाह, लयात्मकता तथा शब्द और ध्वनि से समन्वित सामञ्जस्य के लिए गेडेस स्मरणीय रहेगा।
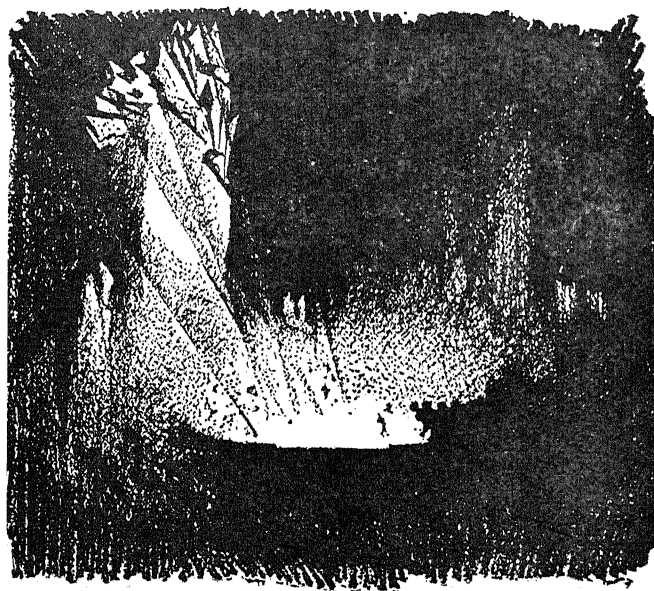
दान्ते कृत 'डिवाइन कामेडी' के एक काल्पनिक अभिनय के दो दृश्य जिसका चित्रण नार्मन वेल गेडेस ने, १९२१ ई० में किया। यह एक विशिष्ट रूप से निर्मित मंच है, जिसमें ढालुवा पहाड़ी दृश्य दिखाया गया है, बीच में एक दरार भी है। पीछे उठी हुई कुर्सी है जिससे अभिनेता प्रकाश के सहारे सेटिंग बदलने के बाद भी अपनी सक्रियता जारी रख सकें।

कलाकार के निदेशन सिद्धान्त को छोटी-छोटी रंगशालाओं में पहले ही स्वीकार कर लिया गया था। सच तो यह है कि उन छोटी-छोटी रंगशालाओं के निदेशक तथा निर्माता, स्वयं भी सृजनात्मक कलाकार होते थे और कदाचित् यही उनके गुणों का रहस्य था। छोटी-छोटी रंगशालाओं के ऐसे कलाकार-निदेशकों में 'शिकागो लिटिल

थियेटर' से सम्बद्ध मारिस ब्राउन, 'क्लीवलैंड प्ले हाउस' से सम्बद्ध फ्रेडरिक मैकोनेल, 'डलस लिटिल थियेटर' से सम्बद्ध ओलिवर हिंसडेल तथा केलिफोर्निया तथा अन्य स्थानों की छोटी-छोटी रंगशालाओं से सम्बद्ध सैम ह्यूम तथा इर्विंग पिशेल प्रभृति कलाकार निदेशकों ने अपनी-अपनी मौलिक प्रतिभाओं से उत्प्रेरित होकर अपने ढंग की नवीन कलात्मक रचनाएं प्रस्तुत कीं। व्यावसायिक रंगशालाओं में शिकागो-स्थित 'गुडमैन मेमोरियल थियेटर' का नाम भी उल्लेखनीय है। इस रंगशाला से सम्बद्ध टामस उड
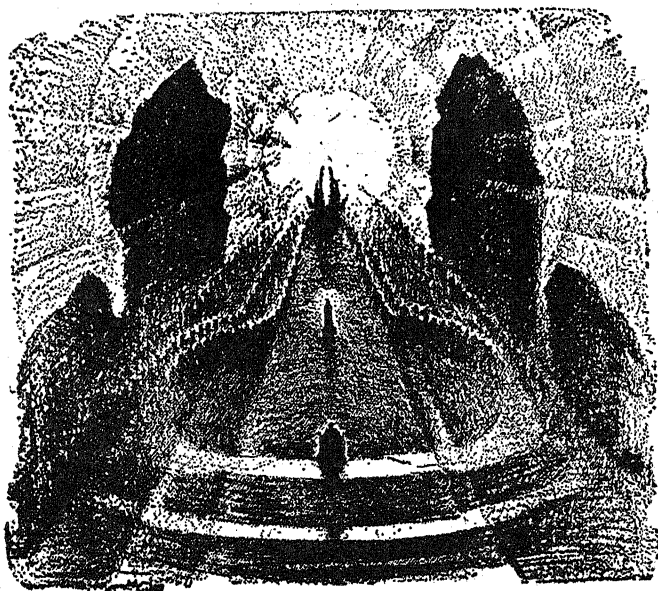
स्टीवेंस ने रंगशाला के वास्तुकलात्मक निर्माण से लेकर विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न नाटकों के विभिन्न प्रदर्शनों तक प्रायः हर कार्य में नाटकों के प्रदर्शन-सम्बन्धी अपनी कलात्मक धारणा से काम लिया था। इसी प्रकार पैसेडेना कम्युनिटी प्ले हाउस भी गिलमर ब्राउन की रंगमंचीय तथा सामाजिक धारणाओं के फलस्वरूप अवतरित हुआ। इन निदेशकों की एकात्मक सृजनात्मकता कुछ ऐसी थी जो वे स्वयं कलाकार, सज्जाकार तथा निदेशक तो होते ही थे, साथ ही वे अपने समय के नाटककारों और अभिनेताओं से भी कलात्मक क्षेत्र में बहुत अधिक आगे थे।

यदि नाटक के 'रूप' अथवा आकार को नाटक का अन्तिम गुण माना जाये या कल्पना-रंग-रंजित कलात्मक निदेशन को नाटक का अभीष्ट समझा जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि उस दृष्टि से 'नृत्य-नाटिकाओं' के नाम से प्रख्यात रचनाएं उत्कृष्ट रचनाएँ हैं क्योंकि नाटक के रूप का जितना उत्तम, समन्वित प्रवाह अथवा बहाव उनमें दृष्टिगोचर होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। १९०५ ई० तथा १९२५ ई० के मध्य के दो दशकों में, विशेषकर रूसी-बैले-नृत्यों में, नाटक के इसी रूप का विकास हुआ है और विकास की प्रक्रिया में नवीन आयाम भी उभरते गये हैं। प्रतीति तो इस बात की भी होने लगी थी कि नाटक के क्षेत्र में एक नयी कला का जन्म हो रहा है किन्तु वास्तव में वह कला कोई सर्वथा नवीन कला नहीं थी, बल्कि बैले-नृत्य की पुरानी कला ही थी। अन्तर यह अवश्य था कि रंगमंच को नयी चित्र-कला-विधियों से सजाने, नृत्य के प्रति सुप्रसिद्ध नर्तकी आइसाडोरा डंकन के क्रान्तिकारी विचार और योगदानों तथा विद्युत-प्रकाश के विभिन्न प्रयोगों के समन्वय से नाटकों के प्रदर्शनों में जो एकता स्थापित हुई वह पहले अलभ्य थी।

पर नाटक को इस प्रकार नृत्य-बद्ध करने की यह कला-परंपरा, उच्चरित शब्दों के माध्यम से नाटक प्रस्तुत करने की बात कला -परंपरा की प्रतियोगिनी होकर नहीं उभरी। नृत्य-नाटकों के प्रदर्शन के लिए रंगमंचीय कला में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं थी। रंगमंच पर नृत्य-नाटक अत्यन्त ही सहज तथा स्वाभाविक ढंग से सामने आये थे और उनके अस्तित्व का स्वागत भी हुआ क्योंकि उनसे बहुत-से अभावों की पूर्ति हुई। दूसरे शब्दों में, नृत्य-नाटकों अथवा नृत्य-नाटिकाओं से रंगमंच का वह अंग अलंकृत हुआ जो नाटक के साहित्यिक, बौद्धिक अथवा मनोवैज्ञानिक पक्षों से परे रंगों, ध्वनियों और गतियों की दुनिया में विचरण कर रहा था।

नाटकों के प्रदर्शन के प्रति उसी समय एक नवीन कला सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया गया जिसका सारांश यह था कि जो नाटक संगीत के जितना ही समीप हो उसे उतना ही अधिक 'कलात्मक' समझना चाहिए। इस सिद्धान्त का उद्भव नाटकों को अत्यधिक साहित्यिकता, कथात्मकता और चित्रात्मकता से भर देने की प्राचीन परंपरा के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ था। सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से कम उत्तम और अधिक उत्तम कलाओं के बीच अन्तर समझा जाने लगा और तर्कात्मक तथा अनुकरणात्मक कलाओं के बीच भी दुराव की भावना आने लगी। इन सब का परिणाम यह हुआ कि रंगमंच पर प्रदर्शित नाटकों के भी दो स्पष्ट, विभिन्न भाग हो गये और नृत्य-नाटिकाओं को 'सौन्दर्यात्मक नाटक' तथा अन्य प्रकार के नाटकों

को 'विचार-प्रधान' नाटक कहा जाने लगा। एक का माध्यम ध्वनि अथवा संगीत था और दूसरे का माध्यम तर्क-संगत ढंग से प्रस्तुत शब्द थे। संगीत अथवा ध्वनि की सृष्टि के लिए गम्भीर संगीतकार निर्झर की ध्वनि अथवा संग्राम के तुमुल नाद प्रभृति प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण में आस्था नहीं रखता था—न तो शब्दों अथवा शब्दनिर्मित गीतों पर ही उसका विश्वास होता था। चित्रकार जैसे रंगों और रेखाओं का भावात्मक प्रयोग करता है वैसे ही नवीन बैले-नृत्यों का संगीतकार ध्वनियों का भावात्मक प्रयोग करता है और संगीत में ध्वनि को वह यथा-संभव वही स्थान देता है जो नृत्य में गति को दिया जाता है। नृत्य-नाटकों में न तो किसी तर्कात्मकता की आवश्यकता होती है और न किसी जटिल कथानक के उलझाव-सुलझाव की और न नृत्य को उपयुक्त अथवा संगत ठहराने के लिए किसी किंवदन्ती को गढ़ने की आवश्यकता होती है। नृत्य-नाटकों को देखने की प्रक्रिया में दर्शक की बुद्धि सोती रहती है और उसकी इन्द्रियाँ सजग रहती हैं।

कल्पना कीजिए कि आप किसी अत्यन्त ही अलंकृत, अत्यन्त ही रंगीन रंगशाला के अन्तःकक्ष में खड़े हुए हैं और रोशनियाँ बुझा दी गयी हैं। फिर विभिन्न कोणों से प्रकाश की किरणें फूटती हैं और संगीत आप पर छाता जा रहा है। पर्दा उठता है और रगमंच के रंगारंग सागर में आप डूबने-उतराने लगते हैं। दृश्यों की बाढ़ पर बाढ़ आती है और समाप्त हो जाती है। अत्यन्त ही कलात्मक ढंग से चित्रित, रंगीन, भारी-भरकम पर्दे गिरते हैं, बीच में रुक जाते हैं और फिर बिखर जाते हैं। आपके सामने अलंकृत मेहराब के आकार के पर्दे, आवरण तथा पार्श्वपट उठते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं। नारंगी, सिन्दूरी, मोरपंखी, सुनहरी, रुपहली, गुलाबी रंगों की यह कितनी अद्‌भुत सृष्टि है। और उसमें आप डूब जाते हैं। संगीत चलता रहता है—आपकी चेतना से परे। संगीत मंद पड़कर रंगों का सम्बल लेकर एक बार फिर उभरता है और आपकी इन्द्रियाँ उसमें डूब जाती हैं। फिर नृत्य की मुद्रा में एक आकार सामने आता है, फिर एक के बाद एक नये कई आकार सामने आते और फिर सैकड़ों आकार नृत्य, गति, लय, नर्तकों-नर्तकियों की परिवर्तित होती हुई पंक्तियाँ आदि सभी कुछ संगीत के गर्भ में समाहित हो जाते हैं। ध्वनियों, रंगों और गतियों का जो समन्वय उपस्थित किया जाता है वह सर्वथा रंगमंचीय, सर्वथा रंगमंचानुकूल होता है।

नाटक खेला जा रहा है—नाटक में क्या है, इसकी चिन्ता नहीं। स्थायी आनन्द की सृष्टि हो रही है, दर्शकों की इन्द्रियाँ अनुभूतियों की लहरों में गोते लगा रही हैं, और यही सब कुछ है। इच्छा केवल यह रहती है कि प्रकाश, सज्जा, संगीत तथा नृत्य की गति नाटक के अन्त तक बस यों ही निर्विघ्न बनी रहे।

आपकी दशा प्रमत्तों की सी हो जाती है और यह प्रमत्तता आपके स्मृति पटल पर चिपकी रह जाती है और आप को सुखद प्रतीत होती है। आपकी इन्द्रियाँ प्लावित हो जाती हैं—आपमें इन्द्रियात्मक तल्लीनता आ जाती है। यूनानी दुःखान्तों को देखने के बाद आपकी यह प्रतिक्रिया नहीं होती। यूनानी दुःखान्तों में अनुभूति के माध्यम से भावनात्मक शुद्धीकरण की क्षमता अवश्य होती है—आप एक दूसरी दुनिया में रम जाते हैं और वह दुनिया भी तल्लीनता अथवा प्रमत्तता की दुनिया होती है। किन्तु आज की नृत्य-नाटिकाओं में आप किसी दूसरी दुनिया में नहीं रमते, आप अपनी ही दुनिया की सरसता तथा इन्द्रिय-परकता का सुख भोगते हैं। रूसी बैले-नृत्यों से जिस आनन्द अथवा उल्लास का संचार होता है वह यूनानी नाटकों में नहीं पाया जाता और न वह सेज़ेन अथवा एलग्रेको की गम्भीरता लयात्मक में ही पाया जाता है। बैले-नृत्य मूलतः सज्जात्मक नाटक होते हैं, उनमें न तो कोई कहानी होती है और न कोई कथोपकथन अथवा संभाषण। उनमें जो कुछ भी होता है वह बस एक सतही उल्लास मात्र होता है।

बैले-नृत्यों की कहानियाँ यदा-कदा प्राच्य होती हैं। 'स्खेहरज़ेड' शीर्षक बैले की कहानी 'अरेबियन नाइट्स' के राजाओं और उनके अन्तःपुरों, उनसे सम्बद्ध षडयंत्रों तथा लिप्साओं पर आधारित है। उसमें प्रणय और हिंसा का अतिरेक है। किन्तु ये तत्व इन्द्रियोचित सज्जा-सम्पन्नता की बाढ़ में परिलक्षित नहीं हो पाते। अन्य बैले-नृत्यों की कहानियाँ कम प्रभावोत्पादक तथा कम संवेगात्मक हैं। कहानियों का चुनाव कथा-तत्व के कारण न होकर सज्जा की दृष्टि से होता था। प्रदर्शनों की सम्पूर्ण अवधि में स्वर, संगीत, नृत्य तथा वर्ण के प्रति निर्देशक का अनुराग स्पष्ट होता रहता है।

रुसेस बैले-नृत्यों की पृष्ठभूमि तथा वस्त्र-सज्जा को सर्वाधिक समृद्ध बनाने का श्रेय लियों बाक्स्त को है। सज्जा को अधिक से अधिक साधारण बनाने के आधुनिक फ़ैशन पर उसका अविश्वास था। रंगमंच को फीके, मटमैले चित्रों और रंगों से सज्जित करने की पुरानी परंपरा से उसने प्रेरणा ग्रहण की और उसने फीके, मटमैले रंगों के निर्झर में धोकर रंगों और वर्णों की जो सन्तुलित सृष्टि की वह संसार के लिए एक नयी बात थी। बेनोइस, रोरिख़, गोलोवाइन तथा एनिसफेल्ड आदि उसके अन्य रूसी सहयोगी भी अपने कृतित्व में प्रायः उतने ही भव्य थे जितना लियों बाक्स्त। बाक्स्त (रूसी बैले-नृत्यों के इतिहास में जिसका नाम आज भी चिरस्थायी है) स्वयं एक कलाकार-निर्देशक था या नहीं, इस बात को जानने की आवश्यकता नहीं। सबसे अधिक प्रख्यात रूसी बैले-कंपनी डायागिलेफ की थी और अनुमानतः डायागिलेफ एक कलाकार-निर्देशक था।

शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में रूस के रसीले तथा प्राच्य रंग-रंजित बैलै-नृत्यों में अनेक परिवर्तन हुए। निजिंसकी, पावलोवा, करसेविना तथा फोकिने प्रभृति नर्तकों के स्थान पर कुछ दूसरे नर्तक अवतरित हुए। प्रायः ये सभी नर्तक अद्वितीय

'बैले रुसेस' के लिए बाक्स्त कृत वस्त्रों की डिजाइनें। (आर्थर एडविन क्रोज़ कृत 'प्ले प्रोडक्शन इन अमेरिका' के पुनर्रेखांकनों से।)

कलाकार भी थे और १९०९ ई० में इम्पीरियल पैलेस थियेटर के साथ पेरिस आये थे। पश्चिम के दर्शकों और श्रोताओं ने उनका भव्य स्वागत किया था। 'प्रिंस इगोर' तथा 'पेत्रुश्का' शीर्षक बैले-नृत्यों में निहित विदेशी कथानकों का हाथ छोड़कर इन नर्तकों तथा सज्जाकारों ने बैले नृत्यों के क्षेत्र में नयी सामग्री तथा नयी सम्भावनाएं प्रस्तुत कीं। धीरे-धीरे डायागिलेफ की कंपनी तितर-बितर होने लगी और मौलिक रुसेस बैले-नृत्यों का प्रयोग कुछ दूसरी कंपनियाँ करने लगीं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी मिली।

स्वेडिश बैले तथा सैडलर वेल्स के बैले नृत्यों में रूसेस बैले परंपरा की पूर्ण अभिव्यक्ति थी, हाँ, उनमें रूसेस बैले परंपरा की वह भव्यता तथा रंगीनी नहीं आ पायी थी जो डायागिलेफ के बैले नृत्यों की मौलिक विशेषता थी। इनके अतिरिक्त फ्रांस, रूस तथा अमेरिका के कुछ व्यवसायियों के सम्मिलित प्रबन्ध में भी कुछ बैले कम्पनियाँ स्थापित की गयीं।

जब आइसाडोरा डंकन तथा सेंट डेनिस की नृत्य-कला का प्रभाव अत्यन्त ही व्यापक हो गया तब जर्मनी तथा अमेरिका के कुछ निदेशकों ने एक अत्यन्त ही मिश्रित प्रकार की नृत्य नाटिका का आविष्कार किया। जर्मनी में जूस बैले तथा मेरी विगमैन के रूप में बैले नृत्यों की नयी परम्पराएं उद्भूत हुईं। इनका प्रभाव संसार के अन्य देशों पर भी पड़ा। अमेरिका में मार्था ग्राहम के प्रयत्नों से नृत्य नाटिकाओं में एक विशिष्ट प्रकार की मौलिकता तथा कल्पना-सम्पदा सम्भव हुई और कदाचित् यही कारण है जो वहाँ की नृत्य-नाटिकाओं में एक विशिष्ट प्रकार की निराकारता भी उत्पन्न हो गयी। आइसाडोरा डंकन की नृत्य-कला की प्रगति के बाद संसार में नृत्य-कला का पुनर्जीवन अथवा पुनर्जागरण आरम्भ हो गया। इस पुनर्जागरण का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि किसी एक विशेष नर्तकी के नृत्य तथा हावभाव के दर्शन में दर्शकों की अविचलित तन्मयता परिलक्षित होने लगी, संगीत में उनका मन डूबने और उतराने लगा। इस पुनर्जागरण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विविधता थी। पेत्रुश्का की रंगीन, सज्जात्मक, अत्यन्त ही अलंकृत और शीतल बैले-बाटिका का प्रभाव कम होने लगा और कुर्टजूस प्रभृति कलाकारों की 'दि ग्रीन टेबुल' जैसी रचनाओं में अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक सम्मेलनों पर प्रखर व्यंग्य उभरने लगे और इस तरफ़ नृत्य-बाटिका के क्षेत्र में एक अत्यन्त ही अतिवादी आयाम सामने आया। इसी प्रकार बाक्स्त तथा डायागिलेफ की रचनाओं के समकक्ष विरोधी भावनाओं के उदाहरण-स्वरूप मार्था ग्राहम की उन रचनाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है जिनका कलेवर अत्यन्त ही आधुनिक था और जिनकी नृत्य-योजना अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक तथा जिनकी सृजनात्मकता अत्यन्त ही विस्तृत थी। प्राय: यह सभी प्रवृत्तियाँ तथा परंपराएं अब इतिहास के पृष्ठों पर ही जीवित हैं। किन्तु इतना तो अवश्य मान्य होगा कि जब ये प्रवृत्तियाँ अथवा परंपराएं सक्रिय थीं तब उनमें वही सजीवता थी जो हम आज उन प्रवृत्तियों अथवा परंपराओं में सचमुच देखते हैं। बड़ी अजीब बात तो यह है कि १९२० ई० के बाद रूसी सरकार ने लेनिनग्राद के 'ज़ारिस्ट थियेटर' में बैले-नृत्यों की उन पुरानी परंपराओं का ही पोषण करना आरम्भ कर दिया जिनके विरुद्ध विश्व के प्रथम महायुद्ध के पहले डायागिलेफ तथा फोकिन प्रभृति कलाकारों ने आवाज़ उठायी थी।

साहित्यिक प्रवृत्ति के पोषक समालोचकों ने नाटकों के इस प्रकार के भव्य प्रदर्शनों के विरुद्ध रोष प्रकट करना कुछ पहले से ही आरम्भ कर दिया था। ऐसा उन्होंने नाटककारों के अस्तित्व की दृष्टि से किया था। भय यह था कि भव्य-नृत्य-नाटिकाओं का समर्थन करने वाले कलाकार निर्देशक नाटकों के मूल पाठ को या तो अत्यन्त ही दुर्बल कर देते या फिर उनका अस्तित्व ही हरण कर लेते थे। इसी भय से आक्रांत होकर ऐसे समालोचकों ने गोर्डन क्रेग तथा मैक्स रेनहार्ट के अतिवादी भव्यात्मक प्रदर्शनों का विरोध किया था। जो भी हो, इतना तो अवश्य मानना होगा कि शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में निर्देशकों की कल्पनाप्रियता का भी जो कुछ परिणाम हुआ उससे कला के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कुछ ऐसी भी रंगशालाएं सक्रिय अवश्य थीं जिनमें नाटक के मूल पाठ अथवा मूल संभाषणों की ही सर्वोपरि सत्ता होती थी, किन्तु ऐसी रंगशालाओं पर भी कलाकार-निर्देशकों तथा सामूहिक-अभिनय के आदर्शों का प्रभाव क्रान्तिकारी सिद्ध हुए विना नहीं रहता था। यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि जिस समय इन कलात्मक रंगशालाओं में इन नवीन प्रवृत्तियों का बोलवाला था उसके ठीक ३० वर्ष पश्चात् कुछ अन्य क्षेत्रों में यथार्थवादी नाटकों के भी प्रदर्शन प्रस्तुत किये जाते थे और आश्चर्यजनक बात तो यह है कि ऐसे यथार्थवादी नाटकों में भावानात्मक एकता तथा प्रभावोत्पादकता और रंगमंचीय अथवा रंगमंचानुकूल नाटकीय प्रवाह की भी न्यूनता नहीं होती थी। यथार्थवाद से दूर जाने के प्रयत्न में कुछ यथार्थवादी कलाकारों की प्रतिक्रिया का ही यह परिणाम था।

इस प्रकार की विरोधी प्रवृत्तियों के अस्तित्व की चेतना होते ही हमें मास्को के उस आर्ट थियेटर का स्मरण हो आता है जिसके जीवन के प्रारम्भिक काल में यथार्थवादी नाटकों का बोलबाला था तथा सामूहिक-अभिनय के क्षेत्र में जिसे प्रायः उतनी ही सम्पूर्णता तथा सफलता मिली थी जो शेक्सपियर अथवा मेटरलिंक की रचनाओं के प्रदर्शन में आवश्यक थी। कुछ नाटकों के पाठ इतने यथार्थवादी तथा प्रभावोत्पादक होते हैं कि कलाकार-निर्देशकों की क्षमता पंगु हो जाती है। ऐसे नाटकों को विचार-प्रधान नाटक कहा जा सकता है। ऐसे विचार-प्रधान नाटकों के प्रदर्शन में किसी भी प्रकार की भव्यता अथवा रंगमंचीयता की आवाश्यकता नहीं होती। इस तथ्य का उल्लेख भी आवश्यक है कि जो नाटक वास्तविक जीवन के किन्हीं यथार्थवादी पक्षों पर आधारित होते हैं उनका प्रदर्शन अनुकरणात्मक शैली के माध्यम से ही सम्भव होता है। साथ ही, कुछ ऐसे भी यथार्थवादी नाटकों का अस्तित्व होता है (जैसे इब्सन तथा चेखव की रचनाएं) जिनके प्रदर्शन में कुछ रंगमंचीय भव्यताओं का समावेश भी सम्भव हो सकता है यदि कलाकार-निर्देशक उन्हें वाद्य वृन्द में बाँध कर प्रस्तुत करने का

प्रयत्न करे। आगस्टिन डंकन द्वारा निर्देशित 'जान फर्गुसन' के चिस्मरणीय प्रदर्शन का उल्लेख मैं कर चुका हूँ। इसी प्रकार की रंगमंचीय भव्यता तथा गहनता डडले डिगिस द्वारा निर्देशित इब्सन के 'दि वाइल्ड डक' तथा आर्थर हार्पकिंस द्वारा निर्देशित ओ'नील के 'अन्ना क्रिस्टी' और आयरलैंड के अभिनेताओं द्वारा कुछ अन्य रचनाओं में देखने को मिलती है। किन्तु जो गुण तथा जो परिपक्वता मास्को आर्ट थियेटर के प्रदर्शनों में सम्भव हुई वह अत्यत्र दुर्लभ थी।

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि मास्को आर्ट थियेटर के निर्देशक नाटकों को तैयार करने की प्रक्रिया में नाटककार के मन्तव्य को इतनी अच्छी तरह समझ लेते थे कि जो नाटक वे प्रस्तुत करते थे उनमें सतही यथार्थवाद से परे एक आध्यात्मिक यथार्थवाद का समावेश हो जाता था। उन निर्देशकों की रचनाओं के प्रदर्शन में एक क्षण ऐसा भी आता था जब जगत् के निरीक्षित तथ्य विस्मृत हो जाते थे और दर्शकों की चेतना किसी ऐसे लोक में विचरण करने वाली थी जहाँ उन्हें अनुभूति के नये क्षितिज दृष्टिगोचर होने लगते थे। दर्शकों को उनके स्थान से मानसिक रूप से उठाकर बुद्धि अथवा चेतना अथवा अनुभूति के किसी दूसरे जगत में स्थापित कर देने में मास्को आर्ट थियेटर के कलाकार अत्यन्त ही पटु थे। उल्लेख इस बात का भी होना चाहिए कि कांस्तांतिन स्तानिस्लवास्की के निर्देशन में प्रस्तुत रचनाओं में ब्राडवे के नाटककारों का पत्रकारी यथार्थवाद नहीं था, बल्कि चेखव का गम्भीर संतुलित यथार्थवाद था तथा दोस्तोवेत्सकी के 'दि ब्रदर्स करमाज़ोव' की पात्र-विविधता थी। कदाचित् इसे यथार्थवाद कहना ठीक नहीं होगा, कम से कम यह यथार्थवाद के लिए नहीं था। यथार्थवाद तो एक आवरण अथवा परिवेश मात्र था जिसके अन्तर में किसी विशिष्ट आध्यात्मिक सत्य के पर्यवेक्षण की अपेक्षा होती थी। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी जिस रंगमंचीयता का समावेश होता था वह स्वाभाविक यथार्थवाद अथवा वास्तविकतावाद से परे की वस्तु थी।

कलाकार निर्देशक स्तानिस्लावस्की कल्पनाशील तो था यही, व्यावहारिक दृष्टि से भी उसकी क्षमताएं अनन्त थीं और कदाचित् यही कारण है जो रंगमंच के इतिहास में स्तानिस्लावस्की की कंपनी सामूहिक अभिनय के क्षेत्र में सर्वोच्च समझी गयी। 'दि ब्लू बर्ड तथा 'हेमलेट' शीर्षक रचनाओं के प्रदर्शन में उसने उस गुण का समुचित परिष्कार किया जिसे 'शैलीकरण' कहा जाता है और जिसकी उपलब्धि के लिए प्रायः सभी कलाकार -निर्देशक सदैव प्रयत्नशील रहा करते थे। शैलीकरण का लाभ यह हुआ कि नये नाटकों को (और यथार्थवादी नाटकों को भी) प्रदर्शित अथवा रंगमंच पर प्रस्तुत करने की दिशा में सृजनात्मक, कलात्मक निर्देशन को प्रश्रय मिला, अभिनय में

यंत्रों की सहजता तथा सच्चाई उत्पन्न हुई तथा रंगों और रेखाओं तथा ध्वनियों की अभिव्यक्ति में नये आयाम सामने आये। नाटकों के निर्देशन अथवा प्रदर्शन को इधर पच्चीस वर्षों में जो कला की मान्यता अथवा महत्ता दी गयी है उसको देखते हुए ऐसा आभास होता है कि इब्सन तथा चेखव की रचनाओं को जिस सर्वथा नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया उसमें कला की कोई दुर्निवार पुकार रही होगी। रंगमंचीय गुणों अथवा मानों के प्रति नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ, नयी धारणा बनी जिससे प्रेरित होकर नाटककारों और निर्देशकों की नयी पीढ़ी के नवोदित सदस्यों ने अपना ध्यान अ-यथार्थवादी, अभिव्यक्तिवादी तथा विशिष्टत: रंगमंचानुकूल नाटकों की ओर अग्रसर किया।

जहाँ तक अमेरिकी रंगशालाओं का प्रश्न है, हमें इस तथ्य का समुचित ज्ञान होना चाहिए कि यथार्थवादी नाटकों की सूची में जितनी सुन्दर तथा जितनी स्मरणीय रचना 'दि ग्रीन पास्चर्स' है उतनी और कोई रचना कदापि नहीं। इस रचना का प्रथम प्रदर्शन १९३० ई० में हुआ था। १९३८ ई० में प्रदर्शित 'अवर टाउन' शीर्षक रचना भी इसी श्रेणी की थी। आश्चर्यजनक बात यह है कि इस रचना में प्रत्येक क़दम पर 'यथार्थ' अथवा 'स्वाभाविक' अथवा 'प्राकृतिक' के प्रति नकारात्मक भावनाओं के प्रदर्शन होते हैं। 'दि ग्रीन पास्चर्स' को मार्क कोनली ने रोर्क ब्रैडफोर्ड रचित, बाइबिल की कथाओं से ली गयी , एक रचना के आधार पर नाटक-बद्ध किया था। इस रचना के प्रदर्शन से रंगमंच पर धार्मिक, कर्मकांडी दृश्यों की अवतारणा बहुत दिनों बाद एक बार फिर भव्य हो उठी। राबर्ट एडमंड जोंस के निर्देशन में नाटक की सज्जा अत्यन्त ही आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक हो गयी थी। समूह-गान तथा वाद्य-वृन्द का प्रबन्ध भी सुन्दर तथा मार्मिक था और कदाचित् इसीलिए नाटक के संगीतात्मक तथा आध्यात्मिक पक्ष प्रभावशाली सिद्ध हुए।

थार्नटन वाइल्डर द्वारा निर्देशित 'अवर टाउन' शीर्षक रचना 'न्यू इंगलैंड' के एक छोटे से गाँव की एक छोटी-सी कहानी पर आधारित थी। पात्र अधिकतर व्यक्तिवादी थे किन्तु उनमें समष्टिगत संभावनाएँ भी कम नहीं थीं और उनके क्रियाकलाप से सम्पूर्ण मानवता के समस्त जीवन प्रवाह पर भी प्रकाश पड़ता था। रंगमंच की सजावट में उसने दृश्यों अथवा सज्जाओं के प्रयोग का पूर्ण विरोध किया जो कदाचित् उसकी अ-यथार्थवादी धारणाओं का परिणाम था। नाटक के अन्तिम अंक की पृष्ठभूमि एक क़ब्रिस्तान थी और आश्चर्यजनक बात तो यह है कि वह क़ब्रिस्तान स्वर्ग में स्थित था। कदाचित् यह भी उसके अ-यथार्थवादी विचारों की ही प्रतिक्रिया थी। तीस वर्ष पहले इसी नाटक को कोई अन्य निर्देशक प्रदर्शित करने का साहस भी

नहीं करता, किन्तु इस समय वही नाटक विश्व की रंगशालाओं में बेधड़क खेला जा रहा था। नाटकों के प्रदर्शन के क्षेत्र में १९१० ई० तथा १९४० ई० के मध्य जो सब से महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई उसका यह एक विशिष्ट उदाहरण था। रंगशालाओं में प्रदर्शन-पद्धति का पुराना जादू एक बार फिर सजीव हो उठा था। इसका श्रेय निःसन्देह गोर्डन क्रेग को ही दिया गया जाना चाहिये क्योंकि ऐसी पद्धति का द्वार उसने ही पहली बार खोला था और इस क्षेत्र में कार्य करने वाले आदर्शवादी निदेशकों को भी प्रेरणा उसी से मिली थी।

अध्याय २४

यंत्र-युग में विकसित : चलचित्र, रेडियो तथा टेलीविज़न

कला के इतिहास में पचास वर्षों की अवधि कोई बहुत लम्बी अवधि नहीं मानी जाती। किन्तु जहाँ तक रंगमंचीय कला का प्रश्न है बीसवीं शताब्दी के प्रथम पाँच दशकों में परिणाम की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। आज हमारे सामने रंगशालाओं की जो दशा है, वह पहले कभी नहीं थी। किन्तु फिर भी इस बात का भय लगता है कि आज की रंगशालाओं में न तो पहले की ईमानदारी तथा सच्चाई रह गयी है और न तो पहले की गहराई। एक और बात यह भी है कि रंगशालाओं के दो विशिष्ट रूप उभर आये हैं जिनमें एक को तो वास्तविक रंगशाला कहा जा सकता है किन्तु दूसरे को रंगशालाओं की संज्ञा देना कदाचित् समीचीन न हो।

पहले की तरह व्यावसायिक रंगशालाओं का अस्तित्व आज भी कम नहीं हुआ है। किन्तु फिर भी यह मानना पड़ता है कि शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों के बाद गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से रंगशालाओं की दशा खराब होने लगी है। परिणाम की दृष्टि से रंगशालाओं की हानि अमेरिका में हुई और गुण की दृष्टि से सोवियत रूस में। सोवियत रूस में तो कोई भी सृजनात्मक योजना कला के क्षत्र में तब तक सफल नहीं हो पाती जब तक इसकी पृष्ठभूमि में किसी राजनीतिक प्रचार की भावना निहित न हो। व्यावसायिक रंगशालाओं के समकक्ष छोटी-छोटी रंगशालाएं भी उभरती रहीं। किन्तु यदि हम प्रथम अध्याय में दिये गये मानचित्र का अध्ययन करें तो हमें प्रतीत होगा कि आधुनिक काल में छोटी अथवा बड़ी, व्यावसायिक अथवा अव्यावसायिक वास्तविक रंगशालाओं की संख्या 'चलचित्र-थियेटरों' की संज्ञा से विख्यात रंगशालाओं से कम होने लगी है।

कोई पचास वर्ष पहले रंगशालाओं के मंचों पर जीवित अभिनेता और अभिनेत्री

अवतरित हुआ करते थे। किन्तु शताब्दी के मध्यकाल तक विश्व में लगभग ८५००० ऐसी रंगशालाएँ पनप गयीं जिनमें जीवित कलाकारों के अभिनय की कोई अपेक्षा नहीं रह गयी थी। ऐसी रंगशालाओं को चलचित्र रंगशालाएँ कहना चाहिए क्योंकि उनमें अभिनय के चित्रों अथवा अभिनय-छायाओं का प्रदर्शन होता है। ऐसी रंगशालाएं अपना एक पृथक स्तर और अस्तित्व रखती हैं। ऐसी रंगशालाओं में रंगमंच का स्थान एक पर्दा ले लेता है जो श्रोताओं के सामने स्थित रहता है। कोई आवश्यक नहीं कि इन रंगशालाओं में प्रदर्शित रचनाएं पुराने नाटकों की तरह हमें केवल दो घंटे का मनोरंजन प्रदान करें। कभी-कभी ऐसा होता है कि इन नये प्रकार की रंगशालाओं में नाटक अपना खेल लगातार काफ़ी देर तक चलते रहते हैं और दर्शक बिना किसी हिचक के प्रदर्शन के बीच से उठकर बाहर आ और जा सकते हैं। बीच-बीच में वे संतरे, टोस्ट तथा अन्य चीज़ें भी खाते रहते हैं तथा बादाम और मूँगफली फोड़ते रहते हैं। कुल मिलाकर परिणाम यह होता है कि हमारा ध्यान लगातार विचलित होता रहता है तथा सम्पूर्ण रंगशाला का वातावरण कुछ इतना अराजकतापूर्ण प्रतीत होता है कि सहसा बहुत प्राचीन काल की वे रंगशालाएँ याद आ जाती हैं जहाँ दर्शक की सनक को कलाकार के मन्तव्य से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था।

कई दृष्टियों से इन चलचित्रों का महत्व बहुत ही व्यापक है। सृजनात्मक दृष्टि से चलचित्र की सम्भावनाएँ तथा क्षमताएं अपरिमित हैं। वास्तव में हमारी आँखों के सामने कोई सच्चे जीवित कलाकार नहीं होते, केवल चित्र अथवा छायाएं होतीं हैं किन्तु फिर भी उनका नाटकीय अथवा कलात्मक प्रभाव इतना व्यापक होता है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे हम सचमुच कोई सच्चा नाटक देख रहे हों और उनसे हमारा मनोविनोद मात्र न होकर हमारा आध्यात्मिक परिष्करण भी हुए बिना नहीं रहता। यह सच है कि सृजनात्मक दृष्टि से इतनी उत्कृष्ट रचनाओं के साथ कुछ ऐसे तुच्छ तथा महत्वहीन चलचित्र भी सामने आते रहे हैं जिनसे हमारी कलात्मक प्रवृत्ति को भारी क्षति पहुंची है। ऐसे चित्रों से हम अपने को इतना अधिक बचाते भी रहे हैं कि शताब्दी के पाँचवें दशक में हालीवुड की कंपनियों को अपनी योजनाओं में भारी परिवर्तन तथा परिष्करण करने पड़े हैं।

जो भी हो, चलचित्रों के आगमन से वास्तविक रंगशालाओं के बिलकुल विघटित हो जाने का भय उत्पन्न हो गया है। हाँ, यह अवश्य मान्य है कि आज के चलचित्र पहले के नाटकों से अधिक लोकप्रिय हो गये हैं। किन्तु इस बात को भी स्मरण रखना चाहिए कि जो वस्तु, गुण तथा पैसा दोनों दृष्टियों से सस्ता हो जाता है उसको लोकप्रिय होने में देर नही लगती। ऐसी चलचित्र रंगशालाओं की संख्या विश्व में बहुत अपरिमित

हो गयी है। चलचित्रों के साथ ही एक प्रकार की दूसरी रंगशालाएं भी बीसवीं शताब्दी में सामने आयी हैं और ये रंगशालाएं आज हम विश्व के हज़ारों-लाखों घरों में देख सकते हैं। इस प्रकार की पहली रंगशाला रेडियो है जिसे अन्धा रंगमंच कहना उपयुक्त होगा क्योंकि ऐसी रंगशालाओं में कलाकारों के स्वर तो सुनायी पड़ते हैं किन्तु उनके चेहरे नहीं दिखायी पड़ते। टेलीविजन भी एक प्रकार की नयी रंगशाला ही है जो रेडियो से कम से कम इस दृष्टिकोण से काफ़ी आगे है कि उस पर अभिनेताओं के चित्र भी उभर आते हैं। नाटक के क्षेत्र में आधुनिक काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है।

मैंने इस पुस्तक में रंगमंचीय कला तथा इतिहास को मानवीय सभ्यता की प्रक्रिया में उभरने वाले परिवर्तनों के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। मैंने बतलाया है कि नाटक का विकास यूनान में हुआ और नाटक का पतन भौतिकवादी रोमन सभ्यता में हुआ। मैंने यह भी बतलाया है कि इस प्रकार के सम्मान्य नाटक पहले गिर्जाघरों में भी खेले जाते थे जिनका प्रचलन मध्यकालीन सभ्यता के अन्तर्गत क्षीण हुआ था। उसके बाद रेनेसां अथवा पुनर्जागरण काल में नाटक का सितारा एक बार फिर चमका और महारानी एलिजाबेथ के काल में उसकी पराकाष्ठा हुई। फिर लोकतंत्र की उत्पत्ति हुई और राजतंत्र का सूरज डूबने लगा। इस परिवर्तन का प्रभाव यह हुआ कि नाटकों के क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार का घरेलूपन आने लगा; वास्तविकता अथवा यथार्थ के प्रति नाटककारों का अनुराग बढ़ने लगा; वे जीवन का प्रतिनिधित्व न करके जीवन का अनुकरण करने लगे और यथार्थवाद के नाम पर काव्य तथा कल्पना-तत्वों को विजातीय समझने लगे।

हममें से बहुतों को ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे शताब्दी के तीसरे दशक में नाटक के क्षेत्र में पुनर्जीवन आयेगा। इस प्रतीति का कारण यह था कि वास्तुकला के क्षेत्र में हमारी आधुनिक आवश्यकताओं तथा कल्पनाओं के अनुकूल छः शताब्दियों के बीच एक नयी शैली उभर आयी तथा चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्रों में भी एक पीढ़ी में इतनी भारी क्रान्ति हो गयी कि कला के प्रति हमें अपने ३०० वर्ष पुराने विचारों अथवा धारणाओं का परित्याग करना पड़ा। चित्रकला-प्रदर्शनियों के रूप बिलकुल भिन्न हो गये थे और उनमें भी क्रान्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। इस प्रकार वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला तथा नृत्यकला के क्षेत्रों में जो विशद परिवर्तन हमारे सामने आये उन्हें देखते हुए यह समझना स्वाभाविक ही था कि नाट्यशाला के क्षेत्र में भी पुनर्जीवन आने वाला है। यथार्थवाद के विरुद्ध नाटक के अन्य प्रकारों तथा पद्धतियों की भी छानबीन की गयी जिसके परिणामस्वरूप हमारे नाटककारों ने अभिव्यक्तिवादी नाटक तथा काव्य-नाटक रचे जो अपने स्वभाव में तो क्रान्तिकारी थे ही रंगमंचीय दृष्टिकोण

से भी काफ़ी उत्कृष्ट थे। १९२३ ई० के आसपास नाटकों के क्षेत्र में एक विशेष गतिशीलता अथवा चंचलता देखी गयी जिसके सबसे प्रबल लक्षण उस समय की छोटी-छोटी कलात्मक रंगशालाओं में अभिव्यक्त हुए थे।

कठिनाई यह थी कि हमारी वास्तविक रंगशालाएं स्वभाव से इतनी अपरिवर्तनशील, इतनी भारी-भरकम तथा इतनी व्ययशील होती हैं कि उनमें नये युगों की नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल अपने को परिवर्तित कर लेने की क्षमता नहीं होती। एक बात यह भी थी कि रंगशालाओं के मालिक अधिकतर व्यापारी होते थे जिनका अन्तिम दृष्टिकोण व्यापार होता था और कदाचित् यही कारण है जो वास्तविक रंगशालाओं की प्रगति चलचित्रों के सन्दर्भ में स्थगित ही नहीं हुई बल्कि बिल्कुल समाप्त हो गयी। ब्राडवे की रंगशालाओं में यथार्थवादी नाटक उस समय भी दिखलाये जाते थे किन्तु ब्राडवे की रंगशालाओं के अतिरिक्त ऐसी भी रंगशालाएं थीं जिनमें यात्रियों और थके हुए व्यापारियों के मनोरंजन के लिए हास्य-नाटक, प्रहसन, नौटंकी तथा संगीत-सुखान्त भी प्रस्तुत किये जाते थे। ऐसी दशा में नाटकों के वास्तविक प्रदर्शन तथा वास्तविक अभिनय के क्षेत्रों में दुर्भाग्य का आना स्वाभाविक था। प्रश्न अब यह है कि आज के व्यापारी तथा आविष्कार-पटु युग में चलचित्र, रेडियो तथा टेलीविज़न हमारी नाटक देखने की प्रवृत्ति तथा रंगशालाएं बनाने की आकांक्षा का समुचित प्रतिनिधित्व कर पाती हैं या नहीं ?

यह रंगमंचीय कला की पुरानी गतिविधियों की यंत्रयुगीन परिणति थी। इसका आविष्कार बीसवीं शताब्दी में सम्भव भी था। यात्रा तथा परिवहन की सुविधाओं से भरपूर इस विस्तृत जगत् में ही मनोविनोद के इस सर्वथा नवीन साधन का विकास भी हो सकता था। कुछ लोगों का मत यह भी हो सकता है कि आधुनिक काल के चलचित्र-सम्बन्धी विकास रंगमंचीय दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नहीं कहे जा सकते क्योंकि नाटक की कला की निहित चलचित्रों में नहीं बल्कि जीते-जागते कलाकारों के अभिनय में है। अभिनय के माध्यम से अभिव्यंजित नाटक की कला का जो सच्चा आनन्द उठा चुका है वह चलचित्र के पर्दे पर उभरते हुए अभिनय को सच्चे अभिनय अथवा सच्ची क्रिया का निर्जीव अनुकरण मात्र समझेगा। यह सही है कि चलचित्रों के दर्शन से उसे आनन्द भी आ सकता है किन्तु वह आनन्द ठीक वैसा ही होगा जैसा किसी सच्ची मूर्तिकला को न देखकर उस मूर्तिकला की छाया को देखने से होता है। सच्ची अनुभूति तो स्वयं मूर्ति को देखने में निहिति है, न कि मूर्ति की छाया को देखने में।

टेलीविज़न अथवा चलचित्र के क्षेत्र में उपर्युक्त बन्धन अथवा अक्षमता तब तक विद्यमान रहेगी जब तक उनके निर्माता उनको रंगमंच पर प्रदर्शित नाटकों के समान

प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते रहेंगे। चलचित्र जगत् की सबसे बड़ी देन यह अवश्य है कि जिन विशाल दृश्यों का अवतरण रंगमंच पर असम्भव होता है, उन्हें चलचित्र के माध्यम से दर्शकों के सम्मुख सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ डाक्यूमेंटरी अथवा सूचनात्मक चलचित्र भी सामने आये जिनका निर्माण सबसे पहले राबर्ट फ्लेहर्टी ने 'नानुक आव दि नार्थ,' तथा 'मोना' शीर्षक से किया था। डाक्यूमेंटरी चित्रों का चरम विकास रूसी कलाकार ईसेनस्टाइन के हाथों से हुआ। चलचित्र के क्षेत्र में भावात्मक दृश्य सज्जा-सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग वाल्ट डिज़्ने ने अपनी 'फैंटेशिया' शीर्षक रचना में किये जिसमें चलचित्रात्मक सौन्दर्य की प्रतिनिधि अभिव्यक्ति हुई है। चलचित्र के विकास की कहानी सुनाने के पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि चलचित्र की उत्पत्ति के पूर्व नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण यान्त्रिक परिवर्तन हुए थे।

रंगशालाओं में यंत्रों का प्रयोग रोमन नाटकों के अत्यन्त ही प्रारम्भिक काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के अपनी धुरी पर घूमने वाले रंगमंचों तक उत्तरोत्तर बर्धित होता रहा है। प्रश्न यह है कि यन्त्रों के आधुनिक युग में नाटकों के प्रदर्शन-सम्बन्धी विभिन्न प्रसाधनों में क्या कोई नयी जटिलता उत्पन्न हो गयी है अथवा कोई नया गौरव अथवा नवीन सौन्दर्य समाविष्ट हो पाया है? प्रदर्शनों की प्रगति में क्या कोई तेज़ी आयी है और श्रोताओं को किसी आश्चर्य लोक में स्थापित कर देने में क्या कोई अभूतपूर्व सफलता सम्भव हुई है? सच पूछिये तो रंगमंच-सम्बन्धी इस प्रकार का कोई यंत्र आविष्कृत करने की दिशा में कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया। सज्जाकारों, निर्माताओं तथा निदेशकों की प्रगतिशील पीढ़ी ने वास्तविक रंगमंच-सम्बन्धी प्रायः सभी लोगों ने यांत्रिक प्रसाधनों का बहिष्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी की यंत्रयुगीन दशा में ही हमारे वास्तविक रंगमंचों पर यंत्रों का अकाल हो गया। सच पूछिए तो रंगमंच-सम्बन्धी रचनात्मक अथवा सृजनात्मक प्रगतियों की वास्तविक प्रकृति से यंत्रों की मैत्री कभी सम्भव भी नहीं थी। यंत्र अभिनय में सहारा न देकर बाधा उत्पन्न करते हैं, हाँ, चित्रों की अवतारणा में यंत्रों का योगदान अवश्य ही अनिवार्य है। यथार्थवादी अथवा वैज्ञानिक विचारों के किसी युग में यंत्रों की उपादेयता मानी भी जा सकती है। रंगमंच की दृष्टि से यंत्रों से कोई बहुत उत्तम कार्य सम्पादित न हो सका। बस प्राचीन शैली के तिरोहित होते हुए नाटक यंत्रों की सहायता से मृत न होकर पुनः जागरित होते रहे। आधुनिक काल के कलाकार यंत्रों का प्रयोग रंगमंच पर यथा-सम्भव कम से कम करना चाहते हैं।

प्रदर्शन की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रान्ति विद्युत् प्रकाश के आविष्कार

से सम्भव हुई जिसके विभिन्न प्रयोगों से रंगमंच पर समन्वित आश्चर्य तथा अनूठेपन का सृजन अधिकाधिक सरल होता गया। अभिनय की कला में गति तथा लय की नितान्त आवश्यकता होती है और गति तथा लय को प्रतिबिम्बित करने के लिए विद्युत् प्रकाश की उपादेयता अकाट्य है। आज का कलाकार निर्देशक रंगारंग विद्युत् प्रकाशों की
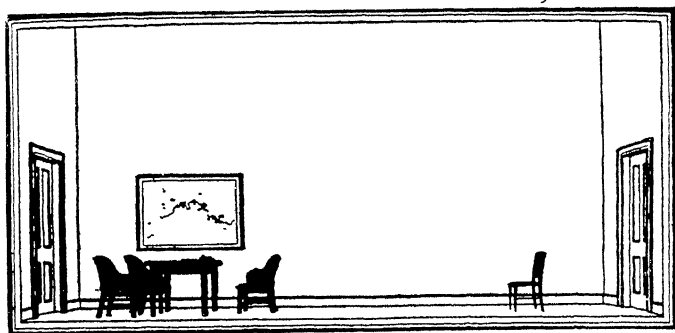
एक ब्राडवे यथार्थवादी नाटक में दृश्य का अतिशय सरलीकरण जिससे अभिनेताओं पर ही लोगों का ध्यान केन्द्रित रह सके। 'दि डेविल्स गार्डेन' के परीक्षा—दृश्य के लिए राबर्ट एडमाण्ड जोन्स द्वारा निर्मित सेटिंग।

छटा छिटकाकर विशिष्ट नाटकीय अथवा अभिनयात्मक अनुभूति तथा गहनता की सृष्टि करता है। इसमें सन्देह नहीं कि विद्युत् का प्रकाश यंत्र-युग की ही देन है जो बीसवीं शताब्दी के पूर्व सम्भव नहीं था। विद्युत् के प्रयोग से रंगमंच की गरिमा बढ़ी है, उसका आकर्षण बढ़ा है। आधुनिक काल के प्रायः सभी प्रदर्शनों में कलाकारों के अभिनय को विद्युत् के रंगीन प्रकाश के विविध उपयोगों से सन्तुलित तथा अभिव्यंजित करने का प्रयत्न किया जाता है और विद्युत् के प्रयोग से ही जहाँ एक ओर इन्द्रियात्मक सुख का सृजन है, वहीं दूसरी ओर नाटक के अनुरूप हमारी आध्यात्मिक चेतना भी निखरती चलती है। बीसवीं शताब्दी में रंगमंच की दृष्टि से विद्युत् का सुन्दर कलात्मक प्रयोग करने वाले निर्देशकों में जर्मनी के सज्जाकार तथा निर्देशक एडोल्फ लाइनेबाख़ का नाम सर्वप्रमुख है जिसने एप्पिया तथा क्रेग के प्रदर्शन-सम्बन्धी सपनों को बिजली के सहयोग से सच कर दिखलाया।

न्यू जर्सी में १८८९ ई० में थामस ए० एडीसन की प्रयोगशाला में कुछ व्यक्तियों ने एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया जिससे चलचित्रों का दिखलाना सम्भव हुआ।

उस यंत्र के आविष्कार में बहुत से दूसरे वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा आविष्कारों का सम्मिश्रण था और लगभग आधे दर्जन वैज्ञानिकों ने भी उसका आविष्कार किया, जिनमें कुछ न्यूयार्क तथा लन्दन और कुछ केलीफ़ोर्निया तथा युरोप के पूर्वी भागों से आये थे। किन्तु उस विशिष्ट यंत्र का आविष्कार एडीसन ने ही किया था जिसकी सहायता से चलते-फिरते लोगों का कम से कम तेरह सेकेण्ड तक चलते-फिरते चित्र उतार लेना और फिर उन्हें चलते-फिरते रूप में प्रस्तुत कर देना सम्भव हो गया। ठीक उसी के बाद पन्द्रह फुट लम्बे चलते-फिरते चित्रों का प्रस्तुतीकरण सम्भव हुआ और तब उन्हें चलचित्र के पर्दे पर भी उतारने का प्रयत्न किया गया। उस समय की सबसे बड़ी फिल्म दो हज़ार फुट लम्बी थी जिसमें ओबर-एमरगा का 'पैशन प्ले' दिखलाया गया था। फिर फ्रांस तथा इँगलैंड के आविष्कारकों ने भी डाक्यूमेंटरी अथवा सूचनात्मक दृश्यों के चित्र उतारने तथा उन्हें चलचित्र के पर्दे पर प्रस्तुत करने की दिशा में अच्छा कार्य किया।

१९०३ ई० में न्यूयार्क में प्रदर्शित एडिसन-द्वारा निर्देशित 'दि ग्रेट राबरी' शीर्षक चलचित्र संसार का .सबसे पहला चलचित्र था। उसके बाद चलचित्र की कला में उत्तरोत्तर विकास होता गया, आत्मनिर्भरता आती गयी तथा उसका क्षेत्र विस्तृत से विस्तृततर होता गया। आश्चर्य होता है यह सोचकर कि जो बात शुरू में फोटोग्राफरों का खिलौना थी वह बाद में प्रदर्शन की कला की चरम अभिव्यक्ति सिद्ध हुई, जिसमें नाटककार, अभिनेता तथा रंगशालाओं के व्यावसायिक बुद्धि रखने वाले, मालिक आदि, सभी समाहित हो गये।

चलचित्रों के निर्माण से मनोरंजन के इस माध्यम की ओर संसार बड़ी तेज़ी से उन्मुख हुआ। चलचित्र की कला अभी अपने शैशव काल में ही थी कि उसकी अवतारणा के लिए बड़े-बड़े चलचित्र गृह बनाये जाने लगे। अकेले अमेरिका में लगभग बीस हज़ार या कदाचित् उससे भी अधिक सिनेमाघर खोल दिये गये और बड़ी-बड़ी रंगशालाएं भी जितनी अधिक अमेरिका में निर्मित की गयीं उतनी संसार के किसी अन्य देश में न बन सकीं। चलचित्रों के निर्माण के लिए बड़े-बड़े स्टूडियो बनाये गये तथा स्टूडियो-सम्बन्धी सम्पत्ति को रखने के लिए बहुत बड़े-बड़े भवन बने, संग्रहालय खड़े किये गये और पता नहीं और भी क्या-क्या बनाया गया। हालीवुड, जो कि पहले एक साधारण-सा गाँव था, अब चलचित्रों के निर्माण की दृष्टि से विश्व का एक प्रख्यात नगर हो गया। हालीवुड में ही आज चलचित्र-सम्बन्धी अगणित आश्चर्यजनक घटनाएं घटित होती हैं, सुन्दर लड़कियों की सेना पर सेना तैयार की जाती है, और देशी तथा विदेशी कलाकारों का जत्था सामने आता है। मनोविनोदात्मक अथवा मनोरंजक साहित्य के इतिहास में सहस्त्रों मीलों लम्बी फ़िल्में, अच्छी-बुरी तथा अन्य प्रकारों की

जितनी अधिक हालीवुड तैयार कर रहा है उतनी पहले संसार का कोई अन्य नगर न कर सका है और न भविष्य में ही कर सकेगा।

चलचित्र देखनेवालों की संख्या भी नाटक देखने वालों की संख्या से बहुत अधिक बढ़ी है। यह विश्वास करना कठिन नहीं कि आज एक सप्ताह में लगभग २५ करोड़ आदमी चलचित्र देखते होंगे। २५ करोड़ की संख्या बहुत कम करके बतलायी गयी है किन्तु यदि केवल इतने ही आदमी प्रति सप्ताह चलचित्र देखते हों तो भी यह संख्या कोई कम नहीं है। यदि हम यह जोड़ने का प्रयत्न करें कि सम्पूर्ण संसार में आज एक पूरे वर्ष में कितने लोग चलचित्र देखते होंगे तो शून्य की सहायता से भी इनकी संख्या की अभिव्यक्ति नहीं कर पायँगे। आज संसार में लगभग ८६,००० सिनेमाघर कार्य कर रहे हैं और इसमें सन्देह नहीं कि इन ८६,००० सिनेमा घरों में जितने लोग एक सप्ताह में उपस्थित होते होंगे उतने लोग यूनानी तथा रोमन नाटकों को देखने के लिए आठ शताब्दियों में भी नहीं उपस्थित हुए होंगे। भविष्य में हालीवुड कोई ऐसा फिल्म भी निर्मित कर सकता है जिसे देखनेवालों की संख्या पिछले साढ़े तीन सौ वर्षों में शेक्सपियर के 'हेमलेट' देखने वालों की संख्या में भी कई गुना अधिक हो। इसका कारण यह है कि चलचित्रों का निर्माण आज एक बहुत बड़ा उद्योग बना हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि चलचित्र-निर्माण संसार का तीसरा या चौथा सबसे बड़ा उद्योग है और समाज पर उसका प्रभाव भी प्रायः उसी अनुपात से पड़ता है।

आधुनिक काल में चलचित्र ही नहीं प्रायः सभी प्रकार के उद्योगों का अस्तित्व जन-समुदाय की इच्छा और आवश्यकता पर निर्भर होता है। यहां उल्लेखनीय बात यह है कि जब किसी कला की परिणति उद्योग में हो जाती है तब उसे अप्रबुद्ध, असावधान तथा अशिक्षित जन-समूह की इच्छा पर निर्भर होना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ कि चलचित्रों के निर्माता चलचित्रों की आर्थिक सफलता को दृष्टि में रखकर उनके साहित्यिक अथवा कलात्मक गुणों का बलिदान करते रहे हैं, और उनसे कलात्मक परिपक्वता दूर भागती रही है। दर्शकों की बचकानी तथा तुच्छ प्रकृति के पोषण के लिए उन्हें निम्नस्तर के सस्ते फ़िल्मों का निर्माण भी करना पड़ता है। यदा-कदा कुछ उत्तम चित्र भी सामने आ जाते हैं जिनकी चर्चा आगे होगी।

चलचित्रों के निर्माण से एक बड़ा लाभ यह अवश्य हुआ कि एक प्रकार की लोकतांत्रिक रंगशालाएं अथवा सिनेमाघर निर्मित किये जाने लगे जिनमें सहस्त्रों और लाखों की संख्या में मनोरंजन अथवा मनोविनोद के लिए ऐसे लोग भी एकत्र होते रहे जो जीवित कलाकारों के अभिनयों द्वारा परिचालित नाटकघरों में प्रदर्शित नाटकों को देखने कदापि न जाते। अब बहुधा इस दृष्टि से चलचित्रों के निर्माताओं की कटु

आलोचना की जाती है कि वे कृत्रिम तथा कुत्सित फ़िल्मों की रचना करके दर्शकों की आस्था को आघात पहुँचाते हैं और उनकी कुत्सित प्रवृत्तियों को सहलाने तथा उकसाने का प्रयत्न करते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से चलचित्रों का प्रभाव अवश्य ही अत्यन्त नकारात्मक तथा हानिकर सिद्ध हुआ है। हालीवुड के चलचित्रों ने तो हमारे सामने जीवन के प्रति कुछ ऐसे गन्दे तथा भ्रामक आदर्श प्रस्तुत किये हैं कि हम भौतिक सफलता को ही सब कुछ मानने लगे हैं, क्लबों में रात-रात भर पड़े रहने में जीवन की उपलब्धि समझने लगे हैं तथा धर्मच्युत प्रणय की उपासना में दिन बिताने लगे हैं। अपराध तथा संग्राम की ओर हमारी प्रवृत्ति जागृत कर दी गयी है और हम ऐसी सफलता की कामना करने लगे हैं कि जिसे पाने का हमें अधिकार न हो।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में प्रचलित हमारी कला का यही संक्षिप्त इतिहास है। एक दूसरी दृष्टि से क्षति की मात्रा और भी अधिक भयानक प्रतीत होती है। चलचित्र टेलीविज़न के प्रतियोगी रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि टेलीविज़न की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होने के उन्माद में चलचित्रों को उनके निर्माता संगीत तथा अधिक से अधिक अभिनेत्रियों की सहायता से अधिक से अधिक कुत्सित बनाते जा रहे हैं। अपराधों पर आधारित फ़िल्म-कथानकों की बाढ़ आ रही है जिनका सबसे अधिक सृजन अमेरिका में हो रहा है और जिनकी प्रशंसा अमेरिका में ही नहीं चीन, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली में भी आज बहुत अधिक की जा रही है। अपराधों पर आधारित ऐसे बहुत से चलचित्र 'निक कार्टर' की साहित्यिक परंपरा पर ही रचे जा रहे हैं। अधिक खेद की बात यह है कि हालीवुड के निर्माता जब गम्भीर चलचित्रों का निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं तो उनमें एक विशेष प्रकार की अस्वस्थता तथा कृत्रिमता आ जाती है और उनका प्रभाव सस्ते क़िस्म के उपन्यासों का सा हो जाता है।

किन्तु किसी कला का इतिहास उस कला की निम्न स्तर की कृतियों पर आधारित न होकर उसकी उत्तम कृतियों पर आधारित होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि चलचित्र-जगत् में भी ऐसी उत्तम कृतियों की संख्या बहुत कम भी नहीं रही है। १९१० ई० में, जब कि रंगमंचों पर पुरस्कार पाने के अभिप्राय से प्रस्तुत नाटकों का प्रचलन समाप्त हो गया और ऐसे चलचित्रों की रचना करना सम्भव हो गया जिनमें कई फुट लम्बी रीलों का प्रयोग किया जा सकता था, तब चलचित्रों के निर्माताओं ने चलचित्रों के पर्दों पर पहले ठीक वैसे ही 'चलचित्रित' नाटक प्रस्तुत करने आरम्भ कर दिये जो रंगमंचों पर दिखलाये जाते थे। अन्तर केवल इतना था कि चलचित्रों में अभिव्यक्ति यथार्थवादी जीवन के और समीप, और इसलिए स्वाभाविक, प्रतीत होने

लगी, क्यों कि पृष्ठभूमि में परिपक्वता तथा विस्तृत सजीवता सम्भव हुई तथा पात्रों की भावनाओं की अभिव्यक्ति में अधिक सक्रियता सम्भव हुई। चलचित्रों के निर्माताओं ने जीवन अथवा प्रकृति के सजीव अनुकरण में जहां कठिनाई का अनुभव किया वहां

दृश्य-डिजाइनर के लिए चलचित्रों के 'एफ़ेक्टस' के लिए एक नयी दुनिया के द्वार खोल दिए। मूलतः यथार्थवादी रहते हुए भी, कलाकार जलूसों और भीड़ वाले दृश्य के आदर्श सेटिंग्ज बना सकते थे—ऐसी सेटिंग्ज जो रोमाण्टिक ढंग ढंग से चित्रात्मक परन्तु स्थापत्य की दृष्टि से ठोस होती थी। यह रेखाचित्र और आगे वाला रेखाचित्र भी, जर्मनी में 'कार्निवल इन टोलेडो' के अन्स्र्टलुबित्श अभिनय के लिए क्लास रिख्तेर द्वारा तैयार किए गए थे। चित्र का कम्पोजिशन बहुत अच्छा है, अभिनय के लिए स्थान अत्यन्त कौशल के साथ निश्चित किया गया है।

उन्होंने कथा की अभिव्यक्ति के लिए अंकित शब्दों का सहारा लिया जो पर्दे पर कलाकारों की भाँति ही घटनाक्रम के बीच-बीच में प्रत्यक्ष होते रहते थे।

सबसे पहले 'कामिक' तथा सुखान्त चलचित्रों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

हास्य तथा प्रहसन की अवतारणा के लिए निर्माताओं ने सबसे पहले एक ऐसे दृश्य का सृजन किया जो रंगमंच पर सम्भव नहीं था। वह दृश्य था एक कलाकार का दूसरे कलाकार का पीछा करने का। चलचित्रों के उस प्रारम्भिक चरम काल में सेनेट के प्रहसनात्मक अभिनय अत्यन्त ही उत्कृष्ट सिद्ध हुए। इसी प्रसंग में चैपलिन द्वारा प्रस्तुत

हास्य-दृश्यों का भी स्मरण हो आता है। पीछा करने के एक ऐसे ही दृश्य का भी स्मरण हो जाता है। जिसमें चैपलिन चतुरता से पुलिस के आदमियों को चकाचौंध कर देता है। वह भी स्मरणीय दृश्य है। चैपलिन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि उसने हास्य में गम्भीरता का भी समावेश किया। बीसवीं शताब्दी के इस सर्वोत्तम हास्य अभिनेता का प्रारम्भिक फ़िल्मी जीवन इसी प्रकार उदित हुआ था। उसके पहले लन्दन में वह कुछ नृत्य तथा संगीत गृहों में भी कार्य करता रहा था। चलचित्र के पर्दे पर वह सबसे पहले १९१४ ई० में सेनेट के साथ अवतरित हुआ था। १९१५ ई० में वह दो रीलों के एक फ़िल्म में नायक बना। १९१६ ई० में वह विश्वविख्यात हो गया और उसका वेतन भी कई गुना अधिक बढ़ा दिया गया।

हालीवुड में, जो चलचित्रों के निर्माण की दृष्टि से देशी और विदेशी प्रायः

सभी अन्य निर्माण-केन्द्रों से अधिक महत्वपूर्ण हो रहा था, १९१४ ई० के पश्चात् गम्भीर फिल्मों के निर्माण की दिशा में भी सक्रियता देखी गयी। इस प्रकार का सबसे पहला गम्भीर चित्र 'दि बर्थ आव ए नेशन', शीर्षक था जिसमें एक राज्यक्रान्ति की कथा एक सुन्दर महाकाव्यात्मक शैली में चित्रित की गयी थी। निर्देशक थे डी० डब्लू० ग्रिफ़िथ। संसार का कदाचित् वह पहला भव्य गम्भीर चलचित्र था। इसी प्रसंग में एडोल्फ जुकोर द्वारा निर्देशित 'को वाडिस' का स्मरण भी किया जाता है। 'को वाडिस' की रचना से ही चलचित्र जगत् में भव्य मेलोड्रामा की शैली में ऐतिहासिक मनोरंजन के प्रस्तुतीकरण की प्रथा चली। इसी प्रकार 'बेनहूर', 'दि टेन कमांडमेंट्स' 'सैम्सन एण्ड डिलाइला' तथा 'डेविड एण्ड बाथशेबा' शीर्षक गम्भीर चलचित्र भी सामने आये और 'को वाडिस' का एक परिवर्धित रूप भी प्रस्तुत किया गया। प्रायः इन सभी चलचित्रों में धर्म तथा योनि-सम्बन्धी विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय देखने को मिलता है। इन चलचित्रों की कहानियों का निर्वाह अत्यन्त ही भड़कीली सज्जा, भव्य परिवेश, कलाकारों के जुलूस तथा सहस्त्रों 'एक्स्ट्रा' अथवा सहायक कलाकारों के प्रयोग से किया गया है। उस समय एक निर्देशक-निर्माता का तो यह दावा था कि उसके द्वारा निर्मित एक चित्र को करोड़ो लोगों ने देखा और इस प्रकार लगभग ३६ करोड़ बीस लाख डालरों के टिकट बिके। यह सुनकर कौन नहीं स्वीकार करेगा कि चलचित्रों का निर्माण आज एक बहुत बड़ा उद्योग हो गया है।

रंगमंचों पर जो नाटक अभिनीत भी किये जाते थे उन्हें सफलता तभी मिलती थी जब उनमें हालीवुड के चलचित्रात्मक प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण होता था। हालीवुड मूलतः एक छोटा सा गाँव था किन्तु विश्व के प्रथम महायुद्ध के बाद जब फ्रांस, जर्मनी, इँगलैंड तथा इटली की चलचित्रात्मक गतिविधियाँ मन्द पड़ गयीं तब हालीवुड चलचित्र निर्माण का सबसे बड़ा केन्द्र हो गया। व्यावसायिक दृष्टि से विश्व के प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के बीच अमेरिका का स्थान इस प्रकार बहुत ऊँचा हो गया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ तथा सबसे अधिक बिकने वाले उपन्यास फिल्मी कहानियों के आधार बने और उस काल के बहुत से लेखक भी हालीवुड में जाकर रहने लगे। किन्तु चलचित्रों के निर्माण पर उन लेखकों का कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव न पड़ सका क्योंकि चलचित्र निर्माण-सम्बन्धी टेकनीक में दक्ष निर्माताओं की इच्छा तथा चलचित्रों के दर्शकों की अभिरुचि के सामने लेखकों की एक भी न चलती।

टेकनीक की दृष्टि से चलचित्र के क्षेत्र में सफलता पर सफलता मिलती गयी तथा कुछ विशिष्ट प्रकार के चलचित्र भवन भी निर्मित किये गये। धीरे-धीरे पाँच, सात तथा आठ रीलों की फिल्में भी बनने लगीं। १९१८ ई० का आरम्भ होते-होते रंगीन

चलचित्रों का निर्माण भी सम्भव हो गया। १९३० ई० तक पूरी-पूरी फिल्म को पूरी तरह रंगीन करना आसान बात हो गयी। प्रारम्भ में दिखलाये जाने वाले चलचित्र मूक चलचित्र होते थे किन्तु १९२८ ई० में जब अमेरिका के २० हजार चलचित्रगृहों में बोलने वाले चलचित्रों के प्रदर्शन की यांत्रिक सुविधा सम्भव हो गयी तब 'टाकी' अथवा बोलने वाले चलचित्रों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ तथा मूक चलचित्र इतिहास के विषय रह गये।

प्रारम्भ में चार्ली चैपलिन को छोड़कर कोई दूसरा उत्तम श्रेणी का अभिनेता न उत्पन्न हो सका; किन्तु कुछ ऐसे अभिनेता अवश्य थे जिन्हें फिल्मी जनता के स्नेह का सौभाग्य प्राप्त था। इस प्रकार के अभिनेता लोकप्रिय तो अवश्य थे किन्तु उनमें कोई उत्तम अभिनयात्मक प्रतिभा नहीं थी। उनका महत्व केवल इसलिए था कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी और उन्हें विश्व के लाखों फ़िल्मी दर्शकों का स्नेह प्राप्त था। १९१४ ई० तथा १९२५ ई० के मध्य के काल में चलचित्र देखनेवालों को मेरी पिकफ़ोर्ड, विलियम एस० हार्ट, टाम मिक्स, डगलस फेयरबैंक्स तथा रूडोल्फ वैलेंटिनो के नाम बरबस याद आ जाते हैं। कलाकारों का एक दूसरा भी गुट, जो यूरोप से आया हुआ था, अभिनय के क्षेत्र में साहित्यिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत अधिक उत्तम कार्य कर रहा था। उस गुट के मुख्य कलाकार थे—पोला नेग्री, ग्रेटा गार्बो, एमिल जैनिंग्स, एरिच वान स्ट्रोहेम, ग्लोरिया स्वेंसन तथा मार्लिन डीट्रिच। अभिनेता अभिनेत्रियों के इसी दल के साथ अमेरिकी कलाकार लिलियन गिश तथा फ्रेडरिक मार्च का भी स्मरण किया जाता है।

शताब्दी के पाँचवें तथा छठें दशकों तक निर्मित चलचित्रों में बहुत कम चलचित्र उत्तम श्रेणी के थे। कुछ चलचित्र ऐसे भी निर्मित किये गये जिनके कथानक ताल्सताय, डिकेंस, ओ'नील तथा अन्य सुप्रसिद्ध कथाकारों की कृतियों से लिये गये थे। इनके अतिरिक्त अपेक्षाकृत और आधुनिक लेखक जैसे स्टीनबेक, हिल्टन तथा क्रोनिन आदि भी चलचित्र-निर्माण के लिए अपनी कथाओं का बलिदान करते रहे और होता यह रहा कि उन कथाओं को फिल्म के अनुरूप अनुकूलीकृत करने की प्रक्रिया में अपना व्यक्तित्व, अपना सौन्दर्य तथा अपनी मौलिकता आदि सब कुछ खो देनी पड़ती थी। कुछ ऐसे चलचित्र भी अवश्य होते थे जिनमें किसी प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेता अथवा किसी प्रतिभा-सम्पन्न निर्देशक की कलात्मक प्रवृत्ति से प्राण पड़ जाता था और मूल लेखक का मन्तव्य भी पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता था। कुछ उल्लेखनीय चलचित्रों में जेम्स स्टीवर्ट की रचना 'मिस्टर स्मिथ गोज़ टु वाशिंगटन टु हार्वे', गे कूपर रचित 'फ़ार हूम दि बेल टाल्स, 'सर्जेन्ट यार्क' तथा 'बाल आव फायर' प्रभृति चलचित्र हैं। 'नीनोचका'

उधर रूस में भी सर्जी आज़ेनस्टाइन के निर्देशन में 'पोटेमकिन' शीर्षक एक द्वारा अत्यन्त ही अद्भुत् चलचित्र का निर्माण किया गया जिसकी कथा ज़ारिस्ट सरकार के अन्तर्गत युद्ध के लिए बने हुए कुछ जहाज़ी बेड़ों में एक विद्रोह पर आधारित की गयी। उस फ़िल्म की पृष्ठभूमि तथा सज्जा आदि बहुत ही उत्कृष्ट थे। बाद में आई ज़ेसटाइन ने कुछ और भी फिल्म निर्मित किये जिनमें से अधिकतर १९१७ के आन्दोलन अथवा उस आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित थे। प्रायः ये सभी चित्र डाक्यूमेंटरी अथवा सूचनात्मक शैली में निर्मित होते हुए भी कुछ विदेशी दर्शकों को बहुत अच्छे लगे। उन चलचित्रों को सबसे बड़ा गुण यह था कि वे भावात्मक दृष्टि से मार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली थे। इस प्रकार के चलचित्र संसार के पश्चिमी भाग में बहुत कम निर्मित हो पाते थे।

संसार के दूसरे महायुद्ध के बाद भी हालीवुड में विदेशों से फ़िल्मों का आना जारी रहा। कुछ ऐसे चलचित्र भी युरोप से आयात किये गये जिनसे हालीवुड के चलचित्रों के समालोचकों को हालीवुड की कृतियों की आलोचना करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा मिली। फ्रांस से आये हुए चलचित्रों में 'दि बेकर्स वाइफ़' 'दि वेल डिगर्स डाटर' तथा कुछ अन्य रचनाएं उल्लेखनीय हैं जिनसे हालीवुड के निर्माताओं को चलचित्र-निर्माण की आधुनिक टेकनीक से अपने को अवगत कराने में पर्याप्त सहायता मिली। इटली से आये हुए चलचित्रों में 'दि बाइस्किल थीफ़,' 'दि ओपेन सिटी' तथा 'टुलिव इन पीस' शीर्षक चलचित्र उल्लेखनीय हैं। इन चलचित्रों की वास्तविकता अथवा यथार्थवादिता इतनी स्वाभाविक, सच्ची तथा अकृत्रिम थी कि उनका प्रभाव हमारे हृदयों पर बिल्कुल सीधा पड़ा। अभी हाल ही में इंगलैण्ड में पुस्तकों में प्रकाशित कहानियों पर फिल्म बनाने की प्रथा चली है। 'लव आन दि डोल' 'पासपोर्ट टू पिमलिको', 'आड मैन आउट,' 'इन ह्विच वी सर्व' तथा ओलिवियर द्वारा, निर्देशित 'हेनरी फ़िफ़्थ' आदि चलचित्र ऐसे ही हैं।

चलचित्र-जगत् में १९३५ ई० के पश्चात् जो गतिविधियां अमेरिका में देखी गयीं उनसे पता चलता है कि अमेरिका में भी चलचित्र के निर्माण-सम्बन्धी अच्छी प्रगति हुई थी। 'दि ग्रेप्स आव राथ', 'गान विद दि विण्ड' (एक अत्यन्त ही लम्बा चलचित्र जिसको लगभग १० करोड़ लोगों ने देखा होगा और जो लन्दन में लगभग ४ वर्षों तक लगातार चलता रहा), 'दि आक्स-बो इंसीडेंट' तथा 'दि सांग आव वर्नाडेटी' और 'दि ट्रेजर आव सायरा माद्रे' प्रभृति चलचित्र उल्लेखनीय हैं। अपेक्षाकृत कम भव्य एवं अधिक सच्चे तथा स्वाभाविक चलचित्रों में 'गुड बाई मिस्टर चिप्स' तथा 'अवर टाउन' शीर्षक चलचित्र दर्शकों को स्मरण रहेंगे। प्रायः यह सभी चलचित्र लोकप्रिय उपन्यासों'

कहानियों तथा नाटकों पर आधारित हैं। हालीवुड में काम करने वाले वेतनभोगी नाटककारों अथवा लेखकों द्वारा रचित नाटक तब तक झूठे तथा कृत्रिम प्रतीत होते थे जब तक उनके रचनाकारों का अभिप्राय उन्हें असंगत तथा रोमांचकारी बना देना नहीं होता था। सच्चाई, ईमानदारी, नाटकीयता तथा गहन भावानुभूति की दृष्टि से सुन्दर चलचित्रों में 'दि इनफ़ार्मर' शीर्षक चलचित्र सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसका निर्देशन जान फ़ोर्ड ने किया है और कथानक क्रान्ति के दिनों के आयरलैंड की घटना पर आधारित है।

फ़िल्मी जगत् के इन सम्पूर्ण अभिप्रायों, पद्धतियों तथा परिणामों से परे कार्य करने वाले महान् निर्माता वाल्ट डिज़्ने की सज्जाओं का उल्लेख भी अनिवार्य है। वाल्ट डिज़्ने ने अत्यन्त ही मौलिक ढंग के सजीव कार्टूनों की रचना तो की ही, 'बाम्बी', 'स्नो व्हाइट' तथा 'पिनोशियो' शीर्षक लम्बे चित्रों में संसार के सामने मनोरंजन का एक अत्यन्त ही अनूठा तथा अभूतपूर्व रूप प्रस्तुत किया। डिज़्ने के कार्टून पात्रों में 'मिकी माउस', जो बच्चों को वहुत प्रिय है, 'सिडरेला' 'एलिस' तथा 'ब्रेर रैबिट' आदि विश्वविख्यात हैं। डिज़्ने के उपर्युक्त चलचित्र सुन्दर तथा कलात्मक दृष्टि से भव्य तो हैं ही, साथ ही उनमें यह कमी भी है कि उनकी रचनाएँ कभी-कभी कैलेंडर बनाने की तुच्छ कला का समावेश मालूम होती है तथा उनकी सज्जा में वही तुच्छ मिठास प्रतीत होती है जो बच्चों को बहलाने के लिए दी गयी मिठाइयों में होती हैं।

डिज़्ने की सबसे उत्तम रचना 'फैन्टेशिया' है जिसकी रचना में रचनाकार ने भावात्मक' सज्जा-सम्पन्नता तथा अभिव्यक्ति से काम लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि रंगों तथा प्रकाश की विविध छटाओं के 'सहयोग से चलचित्र के माध्यम-द्वारा 'फैन्टेशिया' शीर्षक जो रचना डिज़्ने ने प्रस्तुत की है वह चलचित्र जगत् की सर्वाधिक मौलिक कृति है। 'फैन्टेशिया' में एक ऐसा दृश्य आता है जिसमें सृजन का समारम्भ दिखलाया गया है। इस दृश्य की सज्जा में एक विशिष्ट लयात्मकता है जिसके पीछे सौन्दर्य का साम्राज्य है और मार्मिकता की अनन्त रसधारा है। इस रचना को आप चाहें तो केवल एक साँचा या रूप कह लें या केवल एक अजस्र गति कह लें (जो सिनेमा की पहिली शर्त है); जिसे एक नाटकीय भावक्रम में अवतीर्ण किया गया है और जो कल्पनात्मक आनन्दोपलब्धि के गुण से पूर्ण है। यह चलचित्र-संसार में अपने ढंग की अकेली रचना है। डिज़्ने तथा उसके सहयोगियों को कदाचित् इस बात की प्रतीति हुई होगी कि मानव-पात्रों के सृजन के बिना रचना की कथात्मकता शून्य हो जायगी। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अपनी इस भावात्मक रचना में कार्टून

कृतियों के साथ ही साधारण जीवन के वास्तविक दृश्यों का पुट भी प्रस्तुत किया है।

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि चलचित्रों के जीवन के प्रथम पचास वर्षों में डिज़्ने की एक यह रचना सफलता का महत्वपूर्ण, कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण शिखर है।[1] इसके पहले चार्ली चैपलिन के अभिनय-द्वारा एक अत्यन्त ही विरोधी दिशा में भी सफलता का एक ऐसा ही शिखर देखा गया था। चार्ली चैपलिन अभिनेता तथा विदूषक था और अपने समय का सबसे बड़ा रंगमंचीय कलाकार। उसने विदूषकीय अभिनय की पुरानी परंपरा को व्यक्तिगत प्रतिभा तथा चलचित्रात्मक माध्यम द्वारा पुनर्प्रतिष्ठापित किया। 'सिटी लाइट्स', 'दि गोल्ड रश' तथा 'दि किड' शीर्षक रचनाओं में चार्ली चैपलिन की रंगमंचीय कलात्मकता, सृजनात्मकता तथा मौलिकता पूर्णरूपेण परिलक्षित हुई है।

१९१९ ई० तथा १९२५ ई० के मध्यकाल में जब रेडियो का चमत्कार सामने आया तब लाखों नेताओं को घर बैठे ही विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित समाचार, संगीत तथा नाटक सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। रेडियो की उत्पत्ति तार तथा टेलीफ़ोन की पृष्ठ-भूमि में हुई थी। १९२२ ई० तथा २३ ई० के दो वर्षों में ही अमेरिका में इतने अधिक रेडियो सेट बिक चुके थे कि अमेरिकी सरकार को विविध कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए प्रायः ६०० प्रसारण-केन्द्र खोलने पड़े। प्रारम्भ में ध्वनि-तरंगों में आपस में टकराहट आ जाती थी। इसलिये आवश्यकता इस बात की हुई कि ध्वनि-तरंगों की विभिन्न स्पष्ट धाराएँ निर्मित कर दी जायँ और सरकार को के बीच में पड़कर ऐसा करना भी पड़ा। रेडियो कार्यक्रमों का मार्ग और प्रसारण कार्य प्रारम्भ में जब व्यवसायियों के हाथ में था तब उसके माध्यम से विभिन्न वस्तुओं के विज्ञापनों की भरमार होती थी। १९२५ ई० तथा १९२६ ई० में युरोप के कुछ देशों ने रेडियो का राष्ट्रीकरण आवश्यक समझा तथा

---

१. चलचित्रों के इतिहास पर रचित पुस्तकें अल्प तथा अपूर्ण हैं। सच पूछिए तो गम्भीर शैली में रचित पढ़ने योग्य पुस्तक अभी तक प्रकाशित ही नहीं हो सकी है। 'फ़िल्म' शीर्षक से रोजर मैनवेल द्वारा रचित, १९५० ई० में पेलिकन बुक सिरीज़ में प्रकाशित पुस्तक अवश्य कुछ संतोषजनक है, जिसकी शैली तो सुन्दर है ही, फ़िल्मों के सामाजिक तथा कलात्मक पक्षों को भी उसमें अच्छा विवेचन हुआ है। इस पुस्तक के चौथे परिवर्धित संस्करण में चलचित्र पर लिखित कुछ अन्य पुस्तकों के भी नाम दिये गये हैं तथा १९५० ई० तक प्रकाशित कुछ पुस्तकों की समुचित विवेचना भी प्रस्तुत की गयी है।

स्वीज़रलैंड में रेडियो का मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित करके अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम भी प्रसारित करने आरम्भ कर दिये। धीरे-धीरे रेडियो-द्वारा कार्यक्रमों के प्रसारण की प्रथा सम्पूर्ण संसार में फैल गयी।

रेडियो के चमत्कार से रंगमंच के कलाकार अपनी कला को नवीन आयामों की ओर से ले जाने को अग्रसर हुए। कठिनाई केवल यह थी कि रेडियो पर नाटकों के प्रसारण में माध्यम और आधार-शिला ध्वनि होती थी किन्तु फिर भी रेडियो से नाटक का कम लाभ होने की सम्भावना नहीं थी। किन्तु कुछ दिनों के निरर्थक प्रयोगों के पश्चात् यह विदित हो गया कि रेडियो के आविष्कार से नाटक की कला को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। रेडियो का सबसे बड़ा लाभ रेडियो के श्रोताओं को था क्योंकि वे अपने घरों में ही बैठे-बैठे संगीत, समाचार, नाटक तथा मनोविनोद के अन्य कार्यक्रमों का आनन्द उठा सकते थे। तीस वर्ष पश्चात् यह भी विदित हुआ कि रेडियो के सन्दर्भ में नाटक की कला में ही नहीं, अभिनय की कला में भी कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई और रेडियो नाटकों के क्षेत्र में कोई उत्तम अभिनेता भी उत्पन्न नहीं हुआ। रंगमंच की कला के रूप में १९५० ई० तक रेडियो अपने शैशव काल में ही था। सच पूछिए तो १९३५ ई० तथा १९५० ई० के मध्य अमेरिका से कोई एक भी ऐसा नाटक न प्रसारित हो सका जिसकी प्रतीक्षा श्रोताओं को होती। इन दृष्टि से टस्केनिनी तथा स्तोकोवस्की द्वारा प्रसारित संगीत-नाटिकाएँ अवश्य ही उत्तम थीं। 'इन्फ़ार्मेशन प्लीज़' शीर्षक क्विज़ में भी मनोविनोद की मात्रा कम न थी।

रेडियो-नाटकों के लेखकों ने प्रसारण के निमित्त जो नाटक लिखे उनमें एक तो धारावाहिक प्रकार के होते थे जो कभी-कभी महीनों अथवा वर्षों धारावाहिक रूप से प्रसारित होते रहते थे, और दूसरे वे होते थे जिनमें अपराधी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती थी। इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों प्रकार के नाटकों से श्रोताओं की अभिरुचि कुत्सित ही हुई है। कुछ केन्द्रों ने साहित्यिक अथवा कलात्मक दृष्टि से भी उत्तम स्तरों की रचनाओं के प्रसारण का प्रयत्न किया किन्तु उनमें भी प्रायः वे ही गुण अथवा अवगुण आ गये जो तथाकथित रूप से सफल कहे जाने वाले चलचित्रों में होते हैं। कभी-कभी तो बेब्राडवे के रंगमंचों पर प्रसारित पुराने क्लासिकों के संक्षिप्तीकरण मात्र जान पड़ते थे। कभी-कभी कुछ उत्तम नाटक भी प्रसारित हो जाते थे, किन्तु उनका प्रसारण एक अपवाद मात्र होता था, न कि एक नियम।

रेडियो-प्रसारण के क्षेत्र में इस पतन के कारण दो हैं। पहला कारण तो यह है कि अमेरिका तथा अन्य देशों में प्रसारण के माध्यम को विज्ञापन का एक साधन मान लिया गया था और यह समझा जाने लगा था कि प्रसारित कार्यक्रमों में कलात्मक

दृष्टिकोण का अभाव जितना ही अधिक गहन होगा श्रोताओं की संख्या उतनी ही अधिक वर्धित होगी। दूसरा कारण यह था कि नाटकों के निर्देशकों, लेखकों तथा निर्माताओं के सामने समय की जो पाबन्दी तथा प्रसारण अवधि की जो अल्पता होती थी उससे वे नाटक को संक्षिप्त करने तथा स्थल-स्थल पर परिवर्तित करने को बाध्य हो जाते थे और इस प्रकार नाटक की सच्चाई को भारी आघात पहुँचता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि किसी विशिष्ट घटना के घटित होने पर नाटकों के कार्यक्रम स्थगित भी कर दिये जाते थे। रेडियो के माध्यम का महत्व सबसे अधिक उन्हीं क्षणों में प्रतीत होता था जब या तो राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की मृत्यु हो गयी हो या तो किसी पर्लहार्बर पर हमला किया गया हो। ऐसे 'क्षणों में समय का बन्धन तोड़ दिया जाता था। किन्तु ऐसा कभी न हुआ कि किसी नाटक के प्रसारण के लिए समय का बन्धन तोड़ दिया जाय या किसी दूसरे कार्यक्रम को उस नाटक के सम्मान में स्थगित कर दिया जाय। जिन देशों में, जैसे इंगलैंड में, रेडियो को विज्ञापन का माध्यम नहीं माना गया उन में प्रसारित नाटकों का स्तर अपेक्षाकृत अधिक उत्तम रहा। इसमें सन्देह नहीं कि इंगलैंड के श्रोताओं को अमेरिका के श्रोताओं की अपेक्षा अधिक उत्तम नाटक सुनने को मिले और उन नाटकों का प्रसारण भी कुछ अधिक उत्तम ढंग से किया गया था। शेक्सपियर के नाटकों का प्रसारण बहुधा हो जाया करता था, यूनानी क्लासिक्स भी बहुलता के साथ प्रसारित किये जाते थे तथा बर्नार्ड शा, चेखव एवं इब्सन प्रभृति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नाटककारों के नाटक भी प्रसारित किये जाते थे। किन्तु इंगलैंड तथा अमेरिका प्रायः दोनों ही देशों में नाटककारों ने रेडियो को मौलिक लेखन के लिए उपयुक्त न समझ कर उसका बहिष्कार किया।

रेडियो के विरुद्ध जहाँ इतनी बातें कहीं गयी हैं वहीं यह भी स्वीकार करना होगा कि प्रसारित विज्ञापनों पर ध्यान न देने वाले अमेरिकी श्रोताओं को रेडियो के माध्यम से उत्तम श्रेणी के हास्य का भी रसास्वादन करने का अवसर मिला है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि रंगमंच पर प्रख्यात अभिनेत्रियां तथा अभिनेता सहसा रेडियो पर खेले जाने जाने वाले नाटकों में उतर आये हैं और किसी पुराने क्लासिक के रेडियो रूपान्तर अथवा किसी तात्कालिक नाटक के संक्षिप्तीकृत खेल को प्रस्तुत किया है। ऐसे कलाकारों में ईवा लिगैलियन, ईथेल बैरीमूर, हेलेन हेज, लेजली हावर्ड, फ्रेडरिक मार्च तथा रोनाल्ड कोलमैन आदि बहुत लोकप्रिय हैं।

रेडियो नाटकों को चमत्कृत करने वाले अभिनेताओं में सबसे प्रतिभा-सम्पन्न अभिनेता ओर्सन वेलीज़ माना जाता है। उसकी प्रतिभा की विशेषता इस बात में थी कि वह अपने स्वरों में भावों की गहनता तथा ध्वनियों में परिस्थितियों के तनाव को

अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त था। रेडियो पर प्रसारित उत्तम नाटकों को याद रखना तो सम्भव नहीं। हाँ, इतना अवश्य याद है कि वेलीज़ द्वारा अभिनीत पात्रों का चरित्र-चित्रण रेडियो पर खूब निखर आता था। १९३६ ई० तथा १९३७ ई० के आसपास फ़ेडरल थियेटर द्वारा अभिनीत कुछ नाटकों का स्मरण कदाचित् अब भी वेलीज़ के अभिनय के कारण ही किया जाता है। वेलीज़ के अभिनय के माध्यम से ही रंगमंच पर अभिनीत नाटकों का रेडियो-नाटक रूपान्तर संभव तथा सफल हुआ और उनमें वही प्रभावोत्पादकता तथा वही काव्यगत सौन्दर्य लक्षित हुआ जो रंगमंच पर देखा गया था। नार्मन कार्विन लेखक भी था और निर्देशक भी और उसने नाटक के नाम पर जो कुछ भी प्रसारित किया उनमें प्रायः वे ही सूचनात्मक गुण थे जो 'डाक्युमेंटरी' फिल्मों में होते हैं। किन्तु साथ ही उनकी सामाजिक चेतना भी कम प्रदीप्त नहीं थी। पाल रोबसन ने जब 'बैलेड फ़ार अमेरिकन्स' को अपने स्वरों में उतारा तब नार्मन कार्विन की निर्देशन तथा प्रसारण-प्रतिभा अपनी चरम सीमा पर आ गयी। ठीक उसी समय (१९३७ ई०) सुप्रसिद्ध कवि आर्कीबाल्ड मैक्लेइश द्वारा रचित रेडियो-नाटक पर्याप्त प्रसिद्धि पा रहे थे जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ—'दि फाल आव दि सिटी' शीर्षक नाटक, जिसमें ओरसन वेलीज़ तथा बर्गेस मेरेडिथ ने मुख्य भूमिकाओं में कार्य किया था।

कार्विन ने सामूहिक स्वर अथवा सामूहिक सम्भाषण की उस कला का बहुत प्रभावोत्पादक प्रयोग किया जो पहले-पहल जर्मनी के कुछ श्रमजीवियों द्वारा अभिनीत सामाजिक दृष्टि से सचेत नाटकों में पायी जाती थी। इसी प्रकार मैक्लेइश ने आकर्षक पद्यों के संभाषणों को और भी अधिक उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न किया। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों बातें रेडियो नाटकों के लिए वरदान सिद्ध हुईं। किन्तु दस वर्षों के बाद ही रेडियो नाटकों के क्षेत्र में प्रगति का अवरोध देखा गया और कदाचित् एक भी ऐसा नाटक सामने नहीं आया जिससे रेडियो के माध्यम द्वारा प्रस्तुत नाटकों की मौलिकता सिद्ध होती। हां, ऐसे कार्यक्रम अवश्य प्रसारित होते रहे जो गृहकार्य से अवकाश प्राप्त करने के बाद रेडियो सुनने को आतुर गृहणियों का मनोरंजन (अत्यन्त ही भावुकतापूर्ण, कृत्रिम तथा अस्वाभाविक धारावाहिक कहानियों के समावेश से) प्रायः करते रहे। ये कहानियां होमियोपैथिक दवाइयों की तरह होती थीं और कुछ समाजशास्त्रियों का तो मत है कि ऐसे ही कार्यक्रमों के कारण अमेरिकी शिक्षा प्रणाली अपने अभिप्राय में असफल हुई है तथा अमेरिका की राष्ट्रीय चेतना कलुषित हुई है। नाटकों के रूप में प्रस्तुत इन कहानियों को उस समय लोग 'सोप' आपेरा कहते थे जिनमें अभिनेता अपने सम्भाषणों के बीच-बीच कहानियां कहकर श्रोताओं का मनोरंजन करते थे। किन्तु जहां तक कला का सम्बन्ध है इस प्रकार के नाटक कला की विकृति ही कहे जा

सकते हैं। प्रायः प्रत्येक रात को रेडियो चालू करने पर अमेरिकी नागरिक को जो कार्य-क्रम सुनने को मिलते थे उनमें अपराधी व्यक्तियों पर आधारित नाटकों की भरमार होती थी और हत्याओं के दृश्य अभिव्यक्त करना तो जैसे एक साधारण सी बात थी। विज्ञापनों से बोझिल व्यावसायिक रेडियो-केन्द्रों के संचालकों को हत्याकांडों में ही अधिक से अधिक श्रोताओं को आकर्षित करने की सम्भावना दिखलायी देती थी। यही कारण है जो उन दिनों प्रसारित नाटकों में पैशाचिकता, हत्या के विभिन्न ढंग तथा दाँव-पेंच तथा अमानवीयता प्रभृति तत्वों का बाहुल्य होता था। उन दिनों रेडियो सुनने वाला प्रायः प्रत्येक नागरिक इस बात का साक्षी था।

इसी प्रकार कई वर्षों तक रेडियो को ऐसे ही कार्यक्रमों का माध्यम समझा जाता रहा और इस तथ्य का अनुभव कभी नहीं किया गया कि शिक्षा की दृष्टि से भी रेडियो की क्षमताएं अनन्त हैं। शताब्दी के छठें दशक के प्रारम्भ में कुछ धार्मिक संस्थाओं तथा शिक्षा-शास्त्रियों को रेडियो द्वारा प्रसारित ऐसे कार्यक्रमों में बहुत से परिवर्तन करने पड़े और टेलीविज़न की प्रतियोगिता में रेडियो को शैक्षिक दृष्टिकोण से भी एक उत्तम माध्यम मान लेना अनिवार्य हो गया। रेडियो द्वारा कुछ धार्मिक नाटक भी प्रसारित किये गये जिनकी सफलता निर्विवाद सिद्ध हुई। ऐसे धार्मिक नाटकों में बाइबिल की कहानियों पर आधारित वे प्रभावशाली नाटक सम्मिलित हैं जिनका प्रसारण प्रत्येक रविवार को 'दि ग्रेटेस्ट स्टोरी एवर टोल्ड' शीर्षक से किया जाता था। इसी प्रकार 'दि इटर्नल लाइट' शीर्षक कुछ यहूदी कहानियां भी नाटक रूप में प्रायः प्रत्येक सप्ताह प्रसारित होती रहीं, जो अपेक्षाकृत कम परिपक्व थीं। किन्तु वे अधिक प्रशंसित हुईं। इस क्षेत्र में ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस कारपोरेशन के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट कार्यक्रम अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक तथा साहित्यिक प्रसारणों के लिए सुरक्षित रहते थे तथा गम्भीर संगीत, गम्भीर नाटक तथा गम्भीर वार्ताएं आदि ऐसे ही कार्यक्रमों में प्रसारित होती थीं। डोरोथी एल० सेयर्स द्वारा रेडियो रूपान्तरित, बारह भागों में वितरित, महात्मा ईसा के जीवन पर आधारित 'दि मैन बार्न टु बी किंग' शीर्षक रचना जब प्रसारित हुई तब ब्रिटिश ब्राटकास्टिंग कारपोरेशन के प्रति गम्भीर श्रोताओं का ध्यान भी आकर्षित हुआ।

१९४५ ई० तथा १९५० ई० के मध्यकाल में जब टेलीविज़न सामने आया तब एक भारी कमी की पूर्ति हुई क्योंकि रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों से केवल स्वर अथवा ध्वनि का आनन्द लिया जा सकता था। किन्तु जब टेलीविज़न आया तब ध्वनियों के साथ ही साथ घरों में ही बैठे-बैठे दृश्यों का भी आनन्द उठाना सम्भव हो गया। प्रारम्भ में टेलीविज़न के सेटों पर अभिनेताओं के चित्र मात्र उतरते थे किन्तु इतना ही क्या कम

है जो रेडियो सुनने वालों को अपने कानों के साथ ही साथ अपनी आँखों को भी तृप्त करने का अवसर मिला। रेडियो द्वारा श्रोता प्रसारित शब्द-मात्र का आनन्द ले सकता था, किन्तु टेलीविज़न के आविष्कार से उसके छोटे से घर में एक छोटा सा सिनेमागृह तैयार हो गया। नाटक के क्षेत्र में टेलीविज़न का आगमन यंत्र-युग का तृतीय चमत्कार था।

टेलीविज़न का आविष्कार अभी हाल ही में हुआ है और वह अभी अपने शैशव काल में ही है। इसलिए उसे अभी ऐतिहासिक प्रतिपादन के योग्य नहीं समझना चाहिए। शताब्दी के छठें दशक के प्रारम्भिक वर्षों तक कला तथा उद्योग दोनों ही दृष्टियों से टेलीविज़न का प्रयोग अनिश्चित तथा अनियमित रहा है। टेलीविज़न पर उतरने वाले अभिनेता तथा प्रयुक्त होनेवाले नाटक हालीवुड से उधार लिये हुए होते थे या कुछ ऐसे अभिनेता भी होते थे जो रेडियो पर प्रख्यात हो चुके होते थे। टेलीविज़न के आविष्कार से अपराधी प्रवृत्तियों पर आधारित कथानकों की बाढ़ आ गयी और कुछ ऐसे कार्यक्रम भी प्रसारित किये जाने लगे जो विशेषकर महिलाओं अथवा किशोरों के लिए संचालित होते थे। कभी-कभी पुरानी फ़िल्मों के छोटे-छोटे टुकड़े प्रस्तुत करने की प्रथा भी कम न थी। हालीवुड में तो कुछ चलचित्र निर्माताओं ने टेलीविज़न पर प्रसारित तथा चित्रित करने के लिए वैसे ही चलचित्र बनाने आरम्भ कर दिये।

जिन तीन देशों के पास टेलीविज़न कार्यक्रम निर्मित तथा प्रसारित करने की यांत्रिक सुविधा थी उनमें फ्रांस द्वारा प्रसारित टेलीविज़न कार्यक्रमों में अधिकतर चल-चित्रों के टुकड़े होते थे जो फ्रांस के टेलीविज़न केन्द्रों से रिले किये जाते थे। टेलीविज़न की दृष्टि से भी इंगलैंड की दशा अपेक्षाकृत अधिक उत्तम थी। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इंगलैंड में टेलीविज़न के माध्यम से नाटक की कला का कोई कल्याण हो रहा था। प्रारम्भिक चलचित्रों की तरह प्रारम्भिक टेलीविज़न भी समाचारों के प्रसारण, खेल-कूद-सम्बन्धी घटनाओं के चित्रमय प्रस्तुतीकरण तथा वार्त्ताओं और बड़े-बड़े लोगों से भेंटों के लिए अत्यन्त ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ। रेडियो में प्रचलित हास्य कार्यक्रमों तथा सामयिक घटनाओं की प्रथा का प्रचलन टेलीविज़न के क्षेत्र में भी कम न हुआ। इस प्रकार प्रतीत होता है कि टेलीविज़न की मौलिकता, कम से कम नाटक अथवा रंगमंच की दृष्टि से, बस इतनी थी कि उसके माध्यम से संगीत तथा सुखान्तों के कार्यक्रमों में विविधता आयी किन्तु साथ ही इस कटु सत्य को भी स्वीकार करना होगा कि ऐसे कार्य-क्रमों के संचालन तथा सम्मिश्रण में कोई कलात्मक प्रवृत्ति निहित नहीं होती थी। टेलीविज़न के माध्यम द्वारा नाटक की प्रगति कितनी अधिक हुई होगी वह लास एंजिल्स में प्रकाशित इस समाचार से जाना जा सकता है कि टेलीविज़न के दर्शकों को एक ही

सप्ताह में प्रसारित विभिन्न नाटकों में लगभग ८० या ९० हत्याओं का दर्शन करना पड़ता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यही क्या कम महत्वपूर्ण बात है जो टेलीविज़न का आविष्कार हुआ और फिर कुछ ही वर्षों में वह इतना लोकप्रिय हो गया और यांत्रिक दृष्टि से भी इतना परिपक्व हो गया कि संसार के किसी भी भाग में प्रदर्शित आपेरा अथवा नाटक का घर बैठे आनन्द उठाना नितान्त संभव हो गया। घर के अन्दर आराम से कुर्सी पर बैठकर टेलीविज़न के पर्दे पर कार्यक्रमों का आनन्द उठाना सचमुच ही एक सुखद कल्पना है—विशेषकर घर के ऐसे शांत वातावरण में जहां रंगशालाओं के न तो वे दर्शक होते हैं जो मूंगफली खाने के शौकीन होते हैं और न मूंगफली अथवा अन्य वस्तुओं के तोड़ने अथवा उन्हें अभिनेताओं पर फेंकने से उत्पन्न बाधा ही होती है। १९५० ई० में अकेले एक देश अमेरिका में ही कोई सत्तर लाख टेलिविज़न सेट बनाये गये होंगे और लक्षण तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे संसार में टेलीविज़न भी प्रायः उतना ही प्रचलित हो जायगा जितना रेडियो। १९५० ई० में अमेरिका में दस करोड़ रेडियो सेट तथा एक करोड़ चालीस लाख टेलीविज़न सेट हो गये। इसी प्रकार लगभग तीन हज़ार रेडियो केन्द्र तथा एक सौ टेलिविज़न केन्द्र थे। कुछ यांत्रिक कारणों से टेलिविज़न केन्द्रों की स्थापना बस उन्हीं स्थानों में हो सकी जिनकी जनसंख्या अधिक थी। यह सही है, किन्तु इससे भी कौन इन्कार कर सकता है कि टेलीविज़न-प्रसारण के चमत्कार से विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक एक विशिष्ट प्रकार के नाटकों के प्रसारण के लिए आज एक ऐसी सुविधा उपलब्ध हो सकी है जो आज से पचास साल पहले के नाटक-प्रेमियों के भाग्य में नहीं थी। रेडियो के माध्यम से काव्य-नाटकों की एक सर्वथा नवीन कला के प्रसारण की प्रथा चल पड़ी है। और, यद्यपि वह कला अभी बहुत विकसित नहीं हो पायी है, किन्तु कौन जानता है कि उसी से प्रेरणा लेकर टेलीविज़न के क्षेत्र में भी नाटकों की रचना, अभिनय तथा प्रदर्शन-सम्बन्धी कुछ नवीन प्रगतियां सामने आयें।

जीते-जागते अभिनेताओं के माध्यम से नाटक की क्रिया की अभिव्यक्ति ही नाटक की शाश्वत कला हो सकती है। मेरा विश्वास है कि वही कला चिरन्तन होगी और आगे चलकर प्रगति की उस सीमा को भी छू लेगी जिसकी आज हमें कल्पना भी नहीं है। यह सच है कि रेडियो, चलचित्र तथा टेलीविज़न के युग में वास्तविक नाटकों के अभिनय को भारी क्षति पहुंची है किन्तु इसका कारण निर्माताओं की वह लोलुप प्रवृत्ति रही है जो उन्हें सच्ची, सृजनशील कृतियों से विमुख करके कुत्सित, लोकप्रिय अभिरुचि को सहलाने वाली कृतियों के निर्माण को प्रेरित करती है। इसमें

चलचित्र अथवा रेडियों के माध्यमों का कोई दोष नहीं। नाटक तथा मनोरंजन के क्षेत्र में अन्य दिशाओं में भी प्रगति का होना निश्चित है। किन्तु ऐसे नाटकों की प्रतिष्ठा सदैव रहेगी (और उनके लिए लोग सदैव एकत्र होते रहेंगे) जिनमें दर्शकों के सामने अभिनेता होते हैं और अभिनेताओं के सामने दर्शक होते हैं।

कुछ क्षेत्रों में कुछ इस प्रकार की चर्चा भी चल रही है कि शीघ्र ही वह समय आनेवाला है जब अभिनय के लिए किसी अभिनेता अथवा अभिनेत्री की आवश्यकता नहीं होगी—यंत्र-परिचालित आकार अथवा छायाएँ ही अभिनय करेंगी। किन्तु उस संभावना की चर्चा अभी किसी नाटक के इतिहास में समीचीन नहीं होगी। हां, लकड़ी के बने अभिनेता-अभिनेत्री तथा कठपुतलियों का उल्लेख अवश्य किया जा सकता था। किन्तु ये वस्तुएँ भी प्रस्तुत पुस्तक के प्रतिपादित विषय से इतनी भिन्न हैं, और उनका इतिहास इतना विस्तृत है कि उनकी चर्चा के लिए एक पूरी पुस्तक ही लिख डालने की आवश्यकता होगी। ऐसे अभिनेता-अभिनेत्रियों की व्यक्तित्वहीनता, निर्माताओं के प्रति उनकी निर्जीव आज्ञाकारी प्रवृत्ति तथा दर्शकों पर उनका विविध प्रभाव आदि कुछ ऐसे विषय हैं जो रंगमंच के प्रस्तुत इतिहास में बहुत उपयुक्त नहीं सिद्ध होंगे। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शताब्दियों से जहां जीते-जागते अभिनेता-अभिनेत्री कार्य करते रहे हैं वहीं कठपुतलियों का अस्तित्व भी प्रायः सदैव रहा है—और यदि पश्चिमी देशों में नहीं तो पूर्वी देशों में तो अवश्य रहा है। एक लम्बी अवधि के ह्रास के बाद आज युरोप और अमेरिका में कठपुतलियों का प्रचलन एक बार फिर प्रारंभ हो गया है।

अध्याय २५

मध्य-शताब्दी की रंगशालाएँ

सन् १९३० ई०-१९४० ई० वाले दशक के प्रारम्भिक वर्षों के बाद से परंपरागत रंगमंच का इतिहास, जब कि कला की रंगशालाओं में विकास करने की भावना प्रायः समाप्त हो चुकी थी, शायद ऐसा नहीं है जिससे रंगमंचीय नाटकों के प्रेमी हृदयों में उत्साह पैदा होगा। विश्वव्यापी आर्थिक संकट के वर्षों में यह पतन आरम्भ हो गया था। उसके बाद संसार के इतिहास का सबसे बड़ा विनाशकारी युद्ध आरम्भ हुआ। यूरोप के कुछ हिस्सों में नगरों के ध्वस्त हो जाने और मिट जाने तथा आबादियों के यहाँ से वहाँ हो जाने के कारण सृजनात्मक रंगशाला का बिलकुल सफ़ाया हो गया। यद्यपि इस संकट के समय में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब कि बमबारी होते हुए भी लोगों ने अभिनय करने वाली कम्पनियों का साथ नहीं छोड़ा, साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जबकि कम्पनियों ने गुप्त वास करने वाले सैनिकों के मनोरंजन के लिए अभिनय आयोजित किये। जहाँ तक अमेरिका का सम्बन्ध है, व्यावसायिक रंगमंच का पतन युद्धकाल में और उसके बाद भी होता रहा। न्यू यार्क अमेरिका का एक मात्र ठोस व्यावसायिक नाट्याभिनय का केन्द्र था। १९५० ई० में वहाँ कुल बत्तीस रंगशालाएं रह गयी थीं, जब कि वहीं सन् १९३० ई० में पचहत्तर रंगशालाएँ थीं। प्रत्येक ऋतु में जो महत्वपूर्ण नाटक खेले गये उनकी संख्या और भी स्पष्ट रूप से घट गयी। रूस में दलीय नीति के हस्तक्षेप के कारण अभिनय कला का और भी अधिक ह्रास हुआ, फिर भी जहाँ-तहाँ अलग-अलग रूप में कुछ इस प्रकार के कार्य हुए जिनकी चर्चा इतिहास में होगी।

यहाँ हम उन अवसरों की चर्चा नहीं कर रहे हैं जो कि टेलीविज़न का माध्यम खुल जाने से प्राप्त हो गये। यह आशा बँधी थी कि रेडियो नाटकों के द्वारा लोगों को
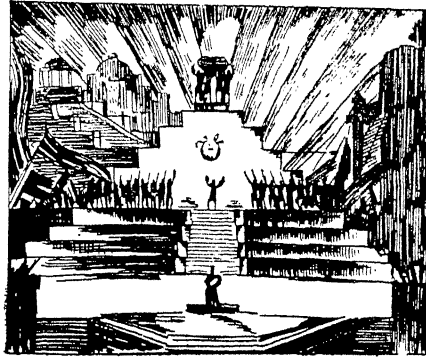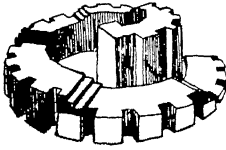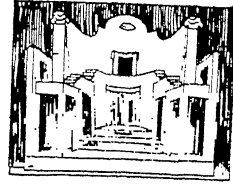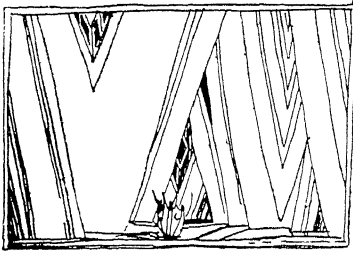
१९२० ई० १९२५ ई० के बीच नाट्य-सेटिंग के क्षेत्र में किए गए प्रयोगों के विस्तृत क्षेत्र के उदाहरण के रूप में रेखाचित्र। ऊपर, बाएं हरमन रोसे कृत प्राचीन फ़्लैट्स और पर्दों की पृष्ठभूमि का आधुनिक वायवी स्वरूप। ऊपर, दाहिने, एलेक्ज़ेन्डर बक्शी कृत स्थायी मंचीय इमारत जिसमें परिवर्तन-शील अंग भी हैं। नीचे बाएं, एक ढला हुआ मंच जो बायरन के 'मानफ्रेड' के अभिनय के लिए निर्मित हुआ था। एडुअर्ड स्टर्म ने इसे मंच के विभिन्न अंधेरे स्थलों को अवसरानुकूल प्रकाशित करने की दृष्टि से निर्मित किया। नीचे, दांये, एक रूसी मंच-दृश्य एक ऐसे स्थल पर जहाँ रचनावाद और नव-यथार्थवाद का सम्मिलन होता है।

नाटक का आनन्द आ जायगा, परन्तु वह आशा अपूर्ण रह गयी। इसी प्रकार फ़िल्म चित्रों की शाश्वत निरर्थकता और शायद ही कभी प्राप्त होने वाली सफलता से भी लोगों का जी नहीं भरा। हम फिर उस परंपरागत कला की ओर अभिमुख हो रहे हैं जब कि जीवित अभिनेता टोलियों में बैठे प्रेक्षकों के सामने अपना अभिनय प्रस्तुत करता है। हम यह भी देखते हैं कि महान् 'आपेरा' सदैव की भाँति अब भी चल रहा है, यद्यपि अमेरिका में इसकी अवधि कम होती जा रही है; और यह कि संगीत-नाट्य हल्के-फुल्के रूप के प्रति, चाहे वे छोटे आपेरा हों, संगीतमय सुखान्त नाटक हों या उनके मिले-जुले रूप हों, १९५० ई०के बाद भी लोकरुचि बढ़ी ही, घटी नहीं। ऐसा भी हुआ कि बड़े नगरों में संगीत-नाट्य शुद्ध नाटकों से अधिक प्रचलित हुए। 'ओकलाहोमा' और 'साउथ पेसिफ़िक' को अभूतपूर्व और अविश्वसनीय सफलता प्राप्त हुई। ऐसा कुछ तो इसलिए हुआ कि रिचर्ड रोजर्स और आस्कर हैमरस्टीन द्वितीय जैसे रचनाकार हुए। गिलबर्ट और सुलिवन के बाद इतने उत्कृष्ट रचनाकार नहीं हो पाये थे; ऐसा कुछ इसलिए भी हुआ कि न्यूयार्क की प्रेक्षक-जनता की रुचि में भी परिवर्तन हुआ था। अब तक गम्भीर नाटकों की प्रेमी जनता का एक बहुत बड़ा भाग ब्राडवे रंगशालाओं में अत्यन्त महँगे टिकटों के कारण प्रवेश नहीं पा सकता था। जो बाहरी यात्री आते थे वे अपने मनोरंजन के लिए नाटक देखते थे, अथवा व्यापारी लोग नगर के बाहर के लोगों के हाथ मँहगे टिकट बेचा करते थे। न्यू यार्क की पेशेवर रंगशालाओं के मालिक बहुत दिनों से प्रतियोगिता का काम तमाम कर चुके थे; उन्होंने स्वतंत्र रूप से भ्रमण करने का काम भी प्रायः छोड़ ही दिया था। १९३५ ई० के बाद उनके ऊपर यह नयी ज़िम्मेदारी आ गयी थी कि वे किसी न किसी प्रकार प्रेक्षकों का मनोरंजन करें, इसलिए इन रंगशालाओं ने अधिकाधिक मात्रा में अपने संरक्षकों के ऐसे नाटक प्रस्तुत करने आरम्भ किये जो क्षणिक रूप से हँसा सकते थे, सनसनीख़ेज़ थे अथवा लोगों को निद्रालु बना देते थे। इस समय अमेरिका में नाट्यकला के नाम पर जो कुछ बना था, उसमें सर्वश्रेष्ठ वही था जो कि प्राचीन कलात्मक रंगशालाओं के ज़माने से अब तक बचता चला आया था। ये अवशेष पसादेना और क्लीवलैण्ड और रोज़ वैली जैसी रंगशालाओं में मिल जाते थे या उन थोड़े से केन्द्रों में देखने को मिलते थे जो इनकी छाया की तरह ही निर्मित हुए थे।

इस समय कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ भी चलती रहीं या विकसित हुईं। जहाँ तक रंगमंच की कला का सम्बन्ध है, विशेषतः 'अलंकरण' का प्रश्न है, हर जगह दृश्यावलियों ने ही रंगपट का स्थान ले लिया था अर्थात् रंगमंच-निर्माता पहिले यह तय कर लेता था कि अभिनय के लिए कितनी जगह लम्बाई चौड़ाई एवं ऊंचाई नीचाई की दृष्टि से, चाहिए। इतना कर लेने के बाद ही वह संकेतात्मक एवं अतिशय सामान्य

पृष्ठभूमि की रचना करता था। इस प्रकार नाटकों के रंगमंच पर प्रस्तुत करने की सारी व्यवस्था कलाकार-निर्देशकों के हाथ में रहती थी। सिद्धान्त रूप से इस बात पर जो बल गोर्डन क्रेग के ज़माने से दिया जाने लगा था और इसे जो व्यावहारिक रूप भी मीनिंजेन हनेयर्स, मास्को आर्ट थियेटर, रीनहार्ड, जेसनर और फेह्लिंग द्वारा मिला, वह जारी रहा। कलाकार-निर्देशक को अब स्थायी महत्व मिल चुका था; यद्यपि रूस ने रंगमंचीय कला के लिए प्रयोगशाला बनने में सबसे आगे बने रहने की अपनी स्थिति छोड़ दी थी और अपने क़दम पीछे हटा लिये थे। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि नेतृत्व प्रदान करने और निर्देशन करने के प्राचीन तरीकों को अपनाने वाला यह कोई प्रतिक्रियावादी क़दम था। रीनहार्ड और स्तानिस्लावस्की, जेसनर या मेयर होल्ड और वाशतांगोफ़ जैसे पहिले जमाने के निर्देशक अब युद्धकाल में अथवा युद्धोत्तर काल में किसी भी देश में नहीं हुए। मगर यदि इतने महान् कलाकार नहीं भी हुए तो कोई बात नहीं; इतना तो सच ही है कि जहाँ कहीं भी सम्पूर्ण रूप से रंगमंच पर नाटकों के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न आया, वहीं कलाकार-निर्देशक की स्थिति एवं उपस्थिति असंदिग्ध हो गयी। रंगशालाओं ने खुलकर घोषणा की कि अमुक नाटक 'मार्गरेट वेब्स्टर द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है', अथवा 'इसका निर्देशन इलिया कज़ान ने किया है।' इस क्षेत्र में जो अनेक अत्यधिक प्रतिभासंपन्न कलाकार थे उनमें से ये दो ही नाम यहाँ गिनाये गये हैं।

जब सन् १९२० ई० से आरंभ होने वाले दशक में आदर्शवादियों ने इस चित्रावली का, जो रंगमंचीय सक्रियता की अभिव्यक्ति में सहायक न होते हुए भी प्रचलित थी, दमन किया था तो उन्होंने उस महान् अभिनेता पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था जो इस चित्रावली को अपना 'समर्थन' प्रदान करने के कारण धुँध से भरे आसमान में राकेट के समान चमकता दिखायी देता था। उस समय अभिनय की समन्वित शैली के आदर्श को जो मान्यता मिल गयी थी वह कभी कम नहीं हुई और मध्यशताब्दी के आते-आते यह स्वीकार कर लिया गया था कि प्रत्येक अभिनय करने वाली कम्पनी संतुलन से काम लेगी और हर अभिनय में सहजता और अन्तर्गठन होगा। अब भी प्रमुख अभिनेताओं के नाम पर ही प्रचार किया जाता था। हम जब भी किसी नाटक को देखने जाते थे तो यह समझा जाता था कि हम किसी जान गीलगुड, या किसी विवियन ले, अथवा किसी वाल्टर हैम्पडन या जुडिथ ऐंण्डर्सन के अभिनय का ही आनन्द लेने जा रहे हैं। मगर यदि उस प्रमुख अभिनेता की कला में सहजता न होती, प्रवहमान अन्तर्गठन न होता, और उसमें तथा उसका साथ देने वाले अभिनेताओं के बीच कोई अलगाव होता तो हमें गहरा धक्का लगता था। ऐसे प्रेक्षक, जिन्हें

१९२० ई० के पहिले के रंगमंच की याद नहीं है, हम नहीं बता सकते कि केवल एक पीढ़ी पहिले 'ताल ठोंकने वाला' अभिनय प्रचलित था और उत्कृष्ट अभिनेताओं की कंपनियों में कोरी ग़ैरपेशेवर कला व्याप्त थी ।

युरोप और अमेरिका दोनों में समन्वय के आदर्श को, नाटच-रचना एवं प्रदर्शन में एक ही शैली, एक ही गठन-आदर्श को स्वीकार करना, जिसमें रंगमंचीय शिल्प का प्रत्येक तत्व सहायक सिद्ध होता है, ही शायद इस युग की मौलिक ऐतिहासिक उपलब्धि है। १९०० ई०-१९५० ई० के बीच की रंगमंचीय कला का यही सर्वाधिक स्मरणीय तथ्य है। १९३० ई० के बाद जो महान् अभिनेता प्रमुख होकर सामने आये, वे महान् तो हैं ही, मगर उनमें से एक भी ऐसा नहीं हुआ जो दूसरे युगों के महान् अभिनेताओं से प्रतिस्पर्धा कर सकता। फ्रांस में कोई नया बर्नहार्ट पैदा नहीं हुआ, इंगलैंड में हेनरी इरविंग अथवा एलन टेरी का कोई प्रतिस्पर्धी उत्पन्न नहीं हुआ, अमेरिका में किसी बूथ या फ़ारेस्ट या जेफ़र्सन ने जन्म नहीं लिया ; अब तीर की तरह बढ़कर आगे निकल जाने वाले अभिनेता का कहीं पता न था। कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में अब भी अभिनय की समन्वित कला का सैद्धान्तिक दृष्टि से आदर किया जाता था, ऐसी सूचना मिलती है। अनेक फ्रांसीसी प्रान्तों में ये अभिनय ज्यों-त्यों चलते रहे, और अमेरिका में, जहाँ ग्रीष्म रंगशालाओं की अच्छी-ख़ासी व्यवस्था हो गयी थी, सामान्यतया यदि शैलीविहीन नहीं तो नाहमवार स्तर की ही अभिनय-शैली का विकास हो गया था। ब्राडवे के प्रसिद्ध अभिनेता, जो अतिथि के रूप में आते थे, स्थानीय पात्रों में शामिल हो जाते थे और हर नाटक में सप्ताह भर रिहर्सल करने के बाद ही रंगमंच पर उतर आते थे। उन नाटकों के प्रेक्षक उदार थे, वे इन अभिनयों को बर्दाश्त कर लेते थे। इसलिए ये ग्रीष्म कम्पनियां समृद्ध होती रहीं।

इंगलैंड में संस्थागत और नियोजित रंगशालाएँ युद्ध के बाद विकसित हुईं। ऐसा कुछ तो इसलिए हुआ कि पहिली बार सरकार ने नाटचकला को आर्थिक सहायता प्रदान की और अभिनय करने वाली कम्पनियाँ (संगीत-कम्पनियों के अतिरिक्त) अमेरिकी रंगशालाओं से आगे बढ़ गयीं। लारेंस ओलीवियर और जान गुलगुड जैसे व्यक्तितत्व के अभिनेता अब निर्देशक का काम कर रहे थे। दोनों 'ओल्ड विक' और इसी प्रकार की अन्य कम्पनियों के अनुभवों के आधार पर काम कर रहे थे और वे तथा उनसे भी कम प्रसिद्ध साथी निर्देशक समुचित पात्र-संचय और सहज प्रवहमान अभिनय के अत्यन्त ऊँचे मानदण्ड की स्थापना कर रहे थे। इसके अतिरिक्त इंगलैंड का रंगमंच अधिक गंभीर नाटकों को अभिनय के लिए चुनने लगा था। १९५१ ई० तक आते आते यह कहा जा सकता था कि राष्ट्र के क्लासिक नाटक लोकप्रिय हो चले हैं। अब

शेक्सपियर और शा सबसे अधिक विकने लगे थे। युद्ध के पहिले जर्मनी के प्रेक्षक और नाट्य-दिग्दर्शक शेक्सपियर के नाटकों के प्रति अत्यन्त आस्थावान् थे; अब अंग्रेज़ी में भी यह आस्था जागृत होने लगी थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि काव्यात्मक नाटकों के प्रति भी रुचि उत्पन्न होने लगी थी।

जिन देशों में प्रतिस्पर्धी व्यावसायिक रंगशालाएँ थीं, उनमें वास्तविकतावादी नाटकों का प्रचलन था ही, वहाँ वे अभी भी अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। ऐसे नाटक राज्य की रंगशालाओं में भी खेले जाते थे। रुस और दूसरे सभी साम्यवादी प्रभाव वाले देशों की प्रचारवादी रंगशालाओं में भी ऐसे नाटक विशेष रूप से प्रचलित थे। लगभग एक शताब्दी से ऐसे नाटककार होते आये थे जो जन-साधारण की भाषा में दैनन्दिन जीवन की भावुकतापूर्ण एवं समाचार-मूलक घटनाओं को लेकर नाटकों की रचना किया करते थे; विशेषत: १९४० ई० के बाद पत्रकारिता-मूलक वास्तविकता को नाटकों में सँजोने की प्रवृत्ति युद्धपरक नाटकों और राजनीतिक नाटकों में दिखायी देने लगी थी। परन्तु इसके साथ ही इस बात की कोशिश नाटककारों के बीच फिर से चलने लगी थी कि उन कल्पनामूलक तत्वों को, काव्यात्मक अभिव्यक्तियों को और विकारों की व्यापकता को भी प्रश्रय दिया जाय जो वास्तविकता से परे थीं। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने लगे! यदि हम काव्यात्मक नाटक की परिभाषा को थोड़ा विस्तृत कर दें, यदि उसे पद्यात्मक नाटकों की सीमा में ही बाँध दें, और उसमें 'हन्नेली' के हाफ़-मैन, 'मासी मेंश' के टालर की कल्पनाशील रचनाओं तथा उनके साथ ही किसी ईट्स अथवा किसी द' अनंज़ियो के वास्तविकता-मूलक काव्य की भी सम्मिलित कर लें तो हम देखेंगे कि काव्य के क्षेत्र में भी अत्यन्त स्पष्ट पुनरुज्जीवन हुआ है।

इंगलैंड और आयरलैंड में विशेष रूप से इस प्रकार की रचनाएँ हुईं जो दूसरे देशों में सफलतापूर्वक अभिनीत हुईं। मगर नवीन वास्तविकता-विरोधी नाटकों को उनकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में तो सचमुच फ्रांस की जनता ने देखा। फ्रांस के कुछ नये तरुण नाटककारों ने उस समय ऐसे नाटकों की रचना की जिनमें कल्पना की भव्यता और दार्शनिक गहराई की फिर से प्रतिष्ठा की गयी थी। जब 'ज़्याँ अनोविल' के नाटकों का अभिनय फ्रांस के बाहर के युरोपीय नगरों में होने लगा, और अन्त में वे न्यूयार्क तक पहुँचे तो वह फ्रांस का सबसे बड़ा नाटककार बन गया। वह एक ऐसा लेखक था जिसमें दुःखान्त नाटकों की पूरी समझ थी। उसे उठा-पटक और हिंसा में दुःख़ान्त नाटकों के तत्व उतना अधिक नहीं दिखायी देते थे जितना भावुकता पूर्ण एवं आध्यात्मिक परि-स्थितियों के शान्तिपूर्ण और सौम्य वातावरण में। उसने आधुनिक वातावरण में अनेक यूनानी नाटकों को रूपान्तरित करके रखा। उसके यूरीडाइस, अंटिगोन और मीडिया

जिन सब की रचना १९४० ई० के बाद हुई, थी के सारे पात्र तत्कालीन समाज के थे, परन्तु उनका नाम पुराना था, और वे स्पष्टतः जाने-पहिचाने कथानकों और दुःखान्त परिस्थितियों को अभिनीत करते थे। इन नाटकों में बारबार यही बात दोहरायी जाती है कि इस संसार में आनन्द अथवा सुख प्राप्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है, और भाग्य ही सचमुच परोक्ष रूप में मानव जीवन का नियामक है।

अनोविल्ह ने अति-काल्पनिक तथा बेढंगे सुखान्त नाटकों की रचना से अपना कार्य आरम्भ किया था, बाद में वह इस प्रकार के दार्शनिक महत्व के नाटक लिखने लगा। समकालीन फ्रांसीसी नाटककारों का एक बड़ा दल अ-वास्तविकतामूलक नाटकों की रचना के ढंगों का अनुसंधान करने में उसके साथ हो गया। यद्यपि उनमें से कोई भी भी उसकी तरह लगातार विकास नहीं कर सका, न कोई उतना सफल ही हो सका। 'दी मैड वीमन आव शैलोत' ज़्याँ गिरादो की अन्तिम रचना थी। यह अति काल्पनिक दार्शनिक नाट्य रूप का अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण है। लुई जोवेत ने इसे १९४५ ई० में पेरिस में रंगमंच पर प्रस्तुत किया। १९४८ ई० में संतोषजनक रीति से रूपान्तरित होकर यह न्यूयार्क में अभिनीत किया गया। ज्योर्ज कैसर ने अपने अभिव्यक्तिवादी नाटक 'फ्राम मार्न टू मिडनाइट' में जो कुछ किया उसमें यह एक शिष्ट और चातुर्यपूर्ण सुधार ही था।

फ्रांस का प्रेक्षक जिन अन्य छः नामों का उल्लेख कर सकता है उनमें ज़्याँ-पाल सार्त्र का नाम अवश्य आयेगा। वह पहिले अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि जिस दार्शनिक विचारधारा को उन्होंने जन्म दिया था उसका तीव्रगति से युद्ध के बाद प्रचार हुआ, मगर अपने नाटकों में वह इतने पूर्ण नहीं दिखते। सच्चे अर्थ में वह अनोविल्ह से कम दुःखान्तवादी हैं। अ-वास्तविक साधनों और तरीक़ों को इस्तेमाल करने में वह अत्यन्त कुशल हैं ; फिर भी वह धरती के निकट रहते हैं, वह मानवता के अशिष्ट, यहाँ तक कि गन्दे पक्ष के भी निकट हैं। आज के जीवन में वह यूनानी दुःखान्तवादी नाटकों को लागू करना चाहते हैं, परन्तु लगता है कि उन्होंने हिंसा, क्रूरता और करुणाजनक पतन को ही क्लासिकल नाटकों की उच्च मर्यादाहीनता और पवित्र प्रायश्चित का पर्याय मान लिया है। वह १९४८ ई० में विशेष तौर से अमेरिका में तब प्रसिद्ध हो गये, जब न्यूयार्क में उनका नाटक 'दी रेस्पेक्टफुल प्रास्टीटयूट' एक लम्बे अरसे तक खेला गया। यह नाटक अन्तर्विरोधों और कटुताओं से पूर्ण है। परन्तु इसमें बहुत अधिक गहराई नहीं हैं। अमेरिकनों को सामान्य रूप से आकृष्ट करने के लिए इसमें एक मसाला था क्योंकि दक्षिण राज्य में फाँसी पर लटकाने की एक घटना की संभावना इस नाटक में थी।

इंगलैण्ड में १९४०-१९५० ई० के दशक में वास्तव में पद्यबद्ध कथोपकथन की ओर झुकाव -सा हो गया था। इंगलैण्ड में एक लम्बे अर्से तक बायरन, ब्राउनिंग स्टीफ़ेन फिलिप्स, मेस्फील्ड जैसे कवि हुए जिन्होंने कभी-कभी नाटकों की भी रचना की। मगर क्रिस्टोफर फ्राई ही ऐसे नाटककार हुए जिन्होंने मूलतः कविता को ही अपने नाटकों का स्वाभाविक और समुचित सहज माध्यम बनाया। उनका नाटक 'दी लेडी'ज़ नाट फ़ार बर्निंग' न्यूयार्क और लन्दन में भी व्यावसायिक दृष्टि से सफल सिद्ध हुआ। १९५१ ई० में उनका प्रभावशाली धार्मिक नाटक 'ए स्लीप आव प्रिज़नर्स' न्यू यार्क के एक चर्च में खेला गया। इसमें पेशेवर अंग्रेज अभिनेताओं ने अभिनय किया। इन सफल नाटकों के साथ टी० यस० इलियट के नाटक 'दी काक्टेल पार्टी' का नाम भी आता है। यह महाशय अमेरिका से निकाले जाकर इंगलैण्ड में बस गये थे। यह ब्रिटेन के आधुनिक कविता सम्बन्धी आन्दोलन के अगुआ के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। 'काकटेल पार्टी' एक पद्य-नाटक है जिसका कथानक आधुनिक है। इस नाटक में ज़रा घुमा-फिरा कर मनुष्य की मनोवैज्ञानिक दशा का अध्ययन किया गया है। १९५०-५१ ई० में ब्राडवे थियेटर्स के सबसे अधिक संतोष जनक नाटकों में इस नाटक को गिना जा सकता है।

इसके पन्द्रह वर्ष पहिले इलियट ने 'मर्डर इन दी कैथेड्रल' नाम का इससे भी अधिक प्रभावपूर्ण कथानक और अधिक काव्यात्मक समृद्धि से भरपूर सफल नाटक प्रस्तुत किया था। इस नाटक का सम्बन्ध थामस ए' बेकेट की हत्या से था। मौलिक रूप में जब वह नाटक इंगलैण्ड में प्रदर्शित किया गया तो अत्यन्त सफल उतरा था। अमेरिका में इसे 'फेडरेल थियेटर आव दी वर्क्स प्रोग्रेस एडमिनिस्ट्रेशन' ने बहुत ठाट-बाट से रंगमंच पर प्रस्तुत किया था। तब से अक्सर यह छोटी रंगशाला और सामुदायिक रंगशाला के कार्यक्रमों में रखा जाता रहा है। डबलू० एच० आंडेन और क्रिस्टोफर ईशर-उड ने भी काव्यात्मक नाटक के पुनरुत्थान में सहयोग किया। उन्होंने राजनीतिक व्यंग्य के लिए अभिव्यक्तिमूलक असम्बद्धता और तोड़-मरोड़ की शैली को अपनाने का प्रयास किया। मगर उनके नाटक 'दी डाग बिनीथ दी स्किन' अथवा 'व्हेयर इज़ फ्रांसिस ?' नाटक मनोरंजक तो थे, परन्तु प्रस्तुतीकरण का दृष्टि से उसमें सीमित नाटकीय प्रभाव दिखायी दिया।

सीन ओ' केसी मूलतः कवि नहीं थे, मगर उनकी रचनाओं में इस क़दर प्रभूत कल्पनातिरेक मिलता है, भाषा की इतनी समृद्धि है, कि वह भी रंगशाला के काव्यात्मक पुनरुत्थान में सहायक सिद्ध हुए। यदि हम उन्हें दुःखमूलक भावनाओं को प्रभूत अभिव्यक्ति देने वाला कलाकार मान लें, और यह भी मान लें कि उनके कान भाषा की लय के अभ्यस्त थे, तो हमें लगेगा कि शायद वह उस वर्ग से बहुत दूर नहीं थे

जिस वर्ग में इतिहास ने अनोविल्ह और इलियट को रख दिया है। जहाँ तक अमेरिका का सम्बन्ध है हम मैक्सवेल ऐंडर्सन और पर्सी मैके जैसे कवियों के सामने सच्ची श्रद्धा से नत हो जायँगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि इस युग की सबसे बड़ी घटना यह थी कि काव्यात्मक रंगशालाओं में राबिसन जेफ़र्स के नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण नाटक था 'मीडिया' का रूपान्तर जिसे १९४७ ई० में न्यूयार्क में देखा गया। इस नाटक के नायक के रूप में जुडिथ ऐंडर्सन ने अत्यन्त शानदार अभिनय किया था।

१९२० ई० और १९३० ई० के बाद अति काल्पनिक, कल्पनाशील अथवा आध्यात्मिक तरह के औसत दर्जे के नाटक व्यावसायिक रंगमंचों पर अधिक संख्या में खेले गये थे। १९२९ ई०–३० ई० के एक पत्र में न्यूयार्क के प्रेक्षकों ने 'दी ग्रीन पास्चर्स' के अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रभावपूर्ण नाटक देखे जिनमें आध्यात्मिकता पर अधिक बल दिया गया था : यथा जान बाल्डरस्टन कृत 'बर्कले स्क्वायर', फ़िलिप बैरीकृत 'होटेल युनिवर्स' और अलबर्टो केसेला के इटालियन से रूपान्तरित 'डेथ टेक्स ए हालीडे।' यह सही है कि इसके बाद किसी भी सत्र में इस प्रकार के अध्यात्मपरक नाटक फिर नहीं अभिनीत हुए, फिर भी इससे मिलते-जुलते नाटक कभी-कभी खेले जाते थे। पाल विंसेंट कैरोल (एक आयरिश नाटककार) के नाटकों में 'शैडो ऐंड सब्स्टेंस' नामक नाटक में उसके चिह्न मिल जाते हैं। इस नाटक में एक ऐसी अशिक्षित लड़की का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो सपने देखती है, तथा एक ऐसे रूढ़िबद्ध पादरी की प्रतिक्रियाओं का चित्रण है जो उसके विश्वासों के प्रति 'उदार' हैं। इनका दूसरा नाटक था 'दी व्हाइट स्टीड'। फिर 'फ़ादर मलाचीज़ मीराकिल' में भी यही बात मिलती है। ब्रूंस मार्शल कृत एक उपन्यास का ब्रायन डोहर्टी ने नाट्य रूपान्तर किया था। इन सीमावर्ती नाटकों के रचयिताओं में सबसे अन्तिम थे जे०बी० प्रीस्टले, मगर उन्हें उतनी अधिक सफलता नहीं मिली।

यद्यपि अमेरिकी रंगमंच सामान्य ब्राडवे नाटकों को वास्तविकता के स्तर से ऊपर नहीं उठा सका, फिर भी एक नये नाटककार आर्थर मिलरकृत 'डेथ आव ए सेल्समैन' की तरह के सफल नाटक भी अभिनीत हुए, या लिलियन हेलमैन कृत 'दि लिटिल फ़ाक्सेज़' खेला गया, जिसमें दक्षिण अमेरिका की अधोगति का नैराश्यपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। फिर भी कुछ अति काल्पनिक अथवा आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न नाटक खेले जाते रहे और कम से कम दो नाटककार इस क्षेत्र में प्रौढ़ प्रभावित हुए। ये थे थार्नटन वाइल्डर और टेनेसी विलियम्स। व्यावसायिक दृष्टि से ये सब नाटक सदैव सफल नहीं हुए, परन्तु इन नाटकों और इनके रचयिताओं ने

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

जहाँ तक हलके-फुलके भावुकतापूर्ण अतिकाल्पनिक नाटकों का सम्बन्ध है, १९३० ई० के बाद पाल ओसबर्न का 'आन बारोड टाइम' नाटक अत्यन्त सफल हुआ। १९४४ ई० में मेरी चेज़ कृत हार्वे नाटक खेला गया। यह नाटक अन्य नाटकों से सर्वथा भिन्न और मनोरंजक था। उसके बाद १९५२ ई० में मिस चेज़ का 'मिसेज़ मैकथिंग' नामक अ-परंपरावादी और कल्पनाशील नाटक खेला गया। परियों की कथा-जैसे इस सुखान्त नाटक में हास्य-विनोद, व्यंग्य तथा कोरी बकवास का सम्मिश्रण प्रभावशाली ढंग से किया गया था। १९४५ ई० में टेनेसी विलियम कृत 'दी ग्लास मैनेजरी' नाटक खेला गया। इसमें लारेट टेलर, एडी डाउनिंग और जूली हेडन ने अभिनय करके इसे स्मरणीय बना दिया। इसके बाद उनका दूसरा नाटक 'ए स्ट्रीट कार नेम्ड डिज़ायर' अभिनीत हुआ। व्यावसायिक दृष्टि से यह नाटक सफल था, परन्तु इसमें वह कोमल एवं अति काल्पनिक प्रभाव नहीं था, वरन् इसमें आत्म-प्रवंचनापूर्ण रोमान्स के पागल-पन में फँसी एक लड़की के अधःपतन का अनुशीलन किया गया है। १९४० ई० के बाद, जो सबसे महत्वपूर्ण घटना हुई, वह थी एक दूसरे नाटक थार्नटन वाइल्डर कृत अत्यन्त लोकप्रिय 'अवर टाउन' नाटक का रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण के बाद 'दी स्किन आव अवर टीथ' का अभिनय न्यूयार्क में हुआ। इस नाटक को सीमित सफलता मिली। इस नाटक के कथानक में मनुष्य के अतीत का पूरा इतिहास और भविष्य की समस्त सम्भावनाओं को समेट लिया गया है। और, यद्यपि अनभ्यस्त दर्शकों को इस नाटक में कभी-कभी उलझन हुई फिर भी इसमें उत्तेजनापूर्ण अवसर भी आये और व्यापक अर्थवत्ता के प्रमाण भी मिले। अमेरिका से अधिक इस नाटक को केन्द्रीय युरोपियन रंगशालाओं में सफलता प्राप्त हुई। शायद यह इस बात का प्रमाण था कि जिन प्रेक्षकों के हृदयों में समृद्ध नाट्य-परम्परा अब भी बनी हुई थी वे चलचित्रों और संगीत-सुखान्त-नाटकों का नहीं वरन् दार्शनिक दृष्टि से पुष्ट नाटकों का आनन्द अधिक ले सकते थे।

'दि स्किन आव अवर टीथ' विशेषतया जर्मनी की आयोजित और अब भी जीवित रंगशालाओं में अभिनीत हुआ। अमेरिकनों को बहुत अधिक आश्चर्य हुआ। वे इसकी विशेषता को पहिचान न सके थे। जर्मनी के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि वहाँ की रंगशाला को यद्यपि पहिले हिटलरी शासन ने निर्ममतापूर्वक, कठोरतापूर्वक 'सेन्सर' किया, परन्तु इसको जनता का समर्थन मिलता रहा। द्वितीय महायुद्ध के अन्त में इसे घोर क्षति उठानी पड़ी। फिर भी अनेक कम्पनियाँ अब भी अभिनय करती रहीं, कभी-कभी तो ये अभिनय टूटी-फूटी अर्धध्वस्त रंगशालाओं अथवा

स्थायी रूप से बनाये हुए रंगीन मंचों पर होते रहे। ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ, घनघोर ग़रीबी और कमी के बावजूद, कभी-कभी ध्वस्त खंडहरों में नाटक खेले जाते थे, और प्रेक्षक भी उपस्थित होते थे। अस्थायी रूप से आयोजित रंगशालाएँ फिर पनपने, फलने-फूलने लगीं। क्लासिकल नाटकों का फिर उत्थान होने लगा। सभी देशों के प्रगतिशील स्रोतों से नाटक खिच-खिच कर आने लगे।

१९३० ई०—१९५० ई० के काल में अन्तरराष्ट्रीय महत्व की और एक बात हुई जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। सबसे प्रथम हमारा ध्यान जर्मनी की ओर जाता है; हमारा तात्पर्य श्रमिक रंगमंच से है। यह याद होगा कि बर्लिन में 'वोक्स ब्रून' १९३० ई० के बाद युग का अद्वितीय सहयोगी अथवा समाजवादी आधार पर संगथित रंगमंच था। इसकी रंगशाला एक विशाल प्रासाद में थी; इसके स्वामी भी मज़दूर प्रेक्षक ही थे। जरगेन फेहलिंग ने वहां अनेक जानदार नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये जिनके कारण उसकी प्रसिद्धि बढ़ गयी। उदाहरण-स्वरूप, वहाँ टालर कृत 'मासे मेन्श', हाप्टमैनकृत 'दी वीवर्स' नाटक तथा इस प्रकार के अन्य नाटक अभिनीत हुए। ये नाटक सामाजिक संदेश से पूरी तरह भरे थे। दूसरे स्तरों पर वामपक्षी, समाजवादी अथवा साम्यवादी पार्टियों के सदस्य 'समाज-चेतना-संपन्न' अनेक नाटक लगातार देखते रहे। पिस्केटर की रंगशाला जैसी छोटी अथवा प्रयोगवादी रंगशालाओं में ही ये नाटक अभिनीत होते थे। फिर अभिनेताओं के ऐसे अनेक दल थे जिनका कोई ऊंचा उद्देश्य न था। वे मज़दूरों की क्रान्ति के लिए आन्दोलन करते थे और इसी आन्दोलन से सम्बन्धित नाटक और रेखाचित्र साधारण जनता के सामने खेलते थे, उनके नाटक बिलकुल प्रारम्भिक हूआ करते थे, परन्तु नाज़ी कम्युनिस्ट संघर्ष के दिनों में जो कोई भी उन नाटकों को देखता वह स्वीकार कर लेता कि उन नाटकों में लोगों को उत्तेजित कर देने की अद्भुत शक्ति थी। उनमें जीवन्त नाटकीय प्रभावोत्पादकता थी, कुछ बहुत अच्छे और प्रभावशाली रेखाचित्र उन कम्पनियों द्वारा अभिनीत हुए जिनमें बहुत थोड़े से अभिनेता और समवेतगान की बड़ी टुकड़ियाँ थीं।

इसी अवसर पर 'स्प्रेश्शर' अथवा 'बात करती गान मडली' की टेकनीक स्पष्ट रूप से विकसित हुई। इस प्रणाली के नाटकों में मर्दों की टोली को आदमी आगे आकर कहता कि क्रान्ति असफल हो गयी। फिर समवेतगान होता। इसके बाद महिलाओं की टोली में एक महिला आगे बढ़कर क्रान्ति की इस असफलता को स्वीकार करती। फिर समवेत गान होता। सबके अन्त में एक बच्चा आगे आता। वह सभी एकत्र पात्रों के सामने भाषण देता और कहता कि संसार के बच्चों के लिए यह संघर्ष चलता रहना चाहिए। बच्चे समवेत रूप ये गाकर इस माँग का समर्थन करते और एकाएक सभी लोग खुशी-

खुशी इस संघर्ष को जारी रखने के लिए तैयार हो जाते। इतने साधारण से कथानक को १९३० ई० के बाद के दिनों में बर्लिन के रंगमंचों पर 'स्प्रेश्शर' की टेकनीक में प्रस्तुत किया जाता था। इनके ज़ोरदार प्रदर्शनों से अनेक विदेशी दर्शक अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने इनके भरपूर नाटकीय महत्व को स्वीकार किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस वामपक्षी अभिनेता दलों का सम्बन्ध फलती-फूलती प्रयोगवादी रंगशालाओं और रूस की चलती-फिरती 'एजिटप्रोप' टुकड़ियों से था। निस्सन्देह इस आन्दोलन का भी एक ही उद्देश्य था : क्रान्ति।

उधर नाज़ियों ने एकाएक जर्मनी में उदारतावादी और कम्यूनिस्ट अतिवाद आन्दोलन का दमन कर दिया और इधर पता चला कि सम्पूर्ण युरोप में मज़दूरों के रंगमंच स्थापित हो गये हैं। 'एजिटप्रोप' दल सर्वत्र फैल गये थे, विशेष तौर से वे ऐसे देशों में अधिक व्यापक रूप से फैल गये थे, जिनमें मज़दूरों की स्थिति बहुत ख़राब थी, यथा आस्ट्रिया-हंगरी, बेलजियम और फ्रांस यहाँ तक कि स्कैंडीनेविया में भी। जसुइट नाटकों के बाद ये मज़दूर रंगमंच ही स्पष्ट रूप से प्रचारात्मक नाटकों के प्रतिनिधिरूप में सर्वप्रथम सामने आये। यह ऐसा युग था, जब कि चमत्कारपूर्ण नाटकों के दिन ढल चुके थे और धर्म-निरपक्ष पेशेवर नाटकों का युग आरम्भ नहीं हुआ था।

इंगलैण्ड में सर्वहारा वर्ग का अभिनय-सम्बन्धी आन्दोलन कम स्पष्ट था। यह हो सकता है कि शा-जैसे पूर्ण रूप से पेशेवर नाटककार का मद्धिम समाजवाद अतिवादी क्रान्तिकारी दलों की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से पुराने राजनीतिक दलों को खोखला बना सका था और पुरानी सामाजिक मिथ्या धारणाओं को विनष्ट कर सका था, और इस प्रकार श्रमिकों की राजनीतिक विजय को निकट ला सका था, परन्तु अन्य समाजवादी देशों की ही भाँति इंगलैण्ड में भी मज़दूरों की ग़ैर-पेशेवर रंगशालाओं का जाल सा बिछ गया था। अमेरिका में इसका आन्दोलन इतिहास अधिक अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि वहाँ सामाजिक चेतना-सम्पन्न अभिनय दलों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन भी १९३५ ई० के आस-पास हुआ था, एक पत्रिका प्रकाशित हुई थी और अनेक प्रतिभा-सम्पन्न नाटककार भी सामने आये थे। १९२९ ई०-१९३० ई० में ही अमेरिका में अनेक ऐसे दल बन गये। इनमें दूसरे देशों से आये कुछ भगोड़े भी थे जो अमेरिका में रहने लगे थे। ये मज़दूर रंगशालाओं के अनुरूप ही अपनी रंगशालाओं का संगठन करते थे। कभी-कभी वे इन नाटकों में अपने-अपने देश की भाषाओं का भी प्रयोग करते थे। कुछ समय तक नामों में भी युरोपीय परिपाटी की छाया मिल जाती थी—यथा 'एजिटप्रोप' दल, 'शाक ट्रूप', 'ब्लू ब्लाउज़ेज़, 'रिबल प्लेयर्स,' आदि। परन्तु कुछ ही समय बाद जिन रंगशालाओं का नाम बार-बार सुनायी पड़ने लगा था

वे थे 'वर्कर्स लेबोरेटरी थियेटर (शिकागो), 'ज्यूविश वर्क्स थियेटर' (न्यू यार्क) आदि। इसके कुछ समय उपरान्त 'लीग आव वर्कर्स थियेटर्स' नामक संस्था संगठित हुई जिसमें देश के इस पार से उसपार तक के लोग सदस्य थे।

यद्यपि इन ग़ैर-पेशेवर कम्पनियों के अभिनय हृदय को आन्दोलित कर देते थे और प्रायः सदा उनमें एक निष्ठा रहती थी और विशिष्ट प्रकार की एक सामाजिक चेतना का समावेश रहता था; फिर भी यह सम्पूर्ण प्रक्रिया इतना अधिक महत्व न प्राप्त कर सकती (या इतिहास के लिए इतनी प्रचुर सामग्री न प्रदान कर सकती) यदि न्यूयार्क की पार्टियों ने १९३५ ई० में ऐसे अनेक अभिनय न प्रस्तुत किये होते जो भावनात्मक रूप से प्रभावोत्पादक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण ब्राडवे के पेशेवर अभिनयों के लिए एक चुनौती बन गये। 'पीस आन अर्थ' जार्ज स्कलर तथा अलबर्ट माल्तज़ कृत एक जुझारू युद्ध-विरोधी नाटक है। इसे बड़ी शान के साथ थियेटर यूनियन ने अभिनीत किया था। इस यूनियन ने ईवा लेगालीन के 'सिविक रिपर्टरी थियेटर' की इमारत किराये पर ले ली थी। नाटक में जो कुछ कमी थी उसे उसके शक्तिशाली सन्देश और चोट करने वाली नाटकीयता ने पूरा कर दिया। इसके बाद 'स्टीवेडोर' नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। नाटक की दृष्टि से वह भी अपूर्ण था, परन्तु अतिशय उत्तेजक और मन को रमा लेने वाला था। शायद किसी हद तक इसकी सामाजिक महत्ता भी थी, क्योंकि इसमें प्रथम बार नीग्रो जाति के साथ किये भेदभाव की समस्या को रंगमंच पर लाया गया था। जब ग्रूप थियेटर (इसमें मुख्यतः वही लोग थे जिन्होंने 'थियेटर गिल्ड' से सम्बन्ध तोड़ लिया था) में 'वेटिंग फ़ार लेफ़टी' और 'अवेक ऐण्ड सिंग' नामक क्लिफर्ड ओडेट कृत नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये थे तो श्रमिक नाटकों और अभिनेताओं के समाज चेतना-सम्पन्न दल को संभ्रान्त, कुलीन आलोचकों द्वारा भी मान्यता प्राप्त हो गयी। एक चरम स्थिति तब आयी जब दूसरा नवीन नाटककार इरविन शा सामने आया। उसका नाटक 'बरी दी डेड' इस नाटक माला का सबसे अधिक प्राणवन्त और उत्तेजक नाटक था। अब रंगशाला की सेवा के लिए नवीन जाज्वल्यमान प्रतिभाएँ सामने आने लगीं। ये प्रतिभाएँ परंपरागत ब्राडवे-प्रतिभाओं से उतनी ही भिन्न थीं जितनी भिन्न एक दशाब्दी पूर्व कला रंगशालाएँ और छोटी रंगशालाएँ थीं।

बाद में मज़दूरों की रंगशालाओं की चर्चा कम होने लगी। इसका सम्बन्ध विश्वव्यापी आर्थिक संकट से भी कुछ था और एक कारण यह भी था कि कुछ नाटककार दूसरे क्षेत्रों में, यहाँ तक कि, हालीवुड में चले गये थे। 'फ़ेडरेल थियेटर आव दी डब्ल्यू पी ए', में वामपक्षीय नाटककार तो आये ही, उसमें ब्राडवे के पेशेवर अभिनेता

और टेकनीशियन भी सम्मिलित हो गये। और निश्चय ही अधिकांश में वे बुद्धिजीवी, जो कभी एक ज़माने में सर्वहारा वर्ग के नेतओं के हमजोली थे, अब फ़ेडरेल थियेटर की राजनीति और नाटचाभिनयों को सँभालते थे। १९३६ई०-३९ ई० के वर्षों में उनकी ही सहायता से डब्लू पी ए के नाटक अमेरिकन रंगमंच की सर्वश्रेष्ठ रचना बन गये। तब से आज तक कभी वह अवसर नहीं आया जब कि इतनी उत्तेजनक नाटच सामग्री प्रस्तुत की गयी हो। और इस दृष्टि से देश की और भी महती सेवा यह हुई कि समुद्र के इस तट से उस तट तक के नगरों में डब्ल्यू पी ए अभिनय कम्पनियाँ बन गयीं।

बेकार अभिनेता और रंगमंच के अन्य कार्यकर्ता केवल अपना कष्ट दूर करने के लिए ही पिछले दरवाज़े से इस रंगशाला में प्रविष्ट हुए थे। मगर उन्होंने वैविध्य, ओजस्विता और तीव्रता की दृष्टि से अद्वितीय नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करके अपना औचित्य प्रमाणित कर दिया। केवल नीग्रो अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत 'मेकबेथ' और 'दी स्विंग मिकाडो', 'अथवा 'दी लिविंग न्यूज़पेपर' के अविस्मरणीय संस्करण विशेषतः 'ट्रिपिल ए प्लाउड अण्डर,, और 'वन-थर्ड आव ए नेशन' जैसे अभूतपूर्व और उत्तेजक तथा समाज को चुनौती देने वाले अभिनय जो इतिहास में दुर्लभ हैं, नहीं मिलते। ये 'लिविंग न्यूज़पेपर' नाटक, जिन्हें 'फ़ेडरल थियेटर' के कार्यकर्ताओं से टेकनीक प्राप्त हुई थी और जो रूस के अत्यन्त आगे बढ़े हुए प्रयोगवादी रंगमंचों से काफ़ी मिलते-जुलते थे, बिलकुल नाटकीय थे, एकदम विचारोत्तेजक थे और निश्चय ही ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं की व्याख्या करने के कारण विवाद-ग्रस्त भी थे। दूसरी ओर ऐसे लोगों को, जो बहुत दिनों से काव्यात्मक रंगशाला स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे, अपनी कल्पना को साकार बनाने का अवसर भी मिल गया था। इन्हीं लोगों ने 'मर्डर इन दी कैथेड्रल' नामक नाटक को रंगमंच पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया था और यह निश्चय ही है कि सभी 'फ़ेडरल थियेटर' दलों में इन नाटकों के चुनाव का स्तर बहुत ऊँचा था। यूनानियों तथा शेक्सपियर से लेकर शा और ओ' नील तक के नाटक अभिनीत हुए थे, फिर भी अनेक ऐसे नये नाटककार हुए जिन्हें प्रथम बार अपना नाटक रंगमंच पर अभिनीत होते हुए देखने का अवसर मिला।[1]

---

१. 'अरेना' (न्यूयार्क, १९४० ई०) में फ़ेडरल थियेटर की कहानी उसके सुयोग्य निर्देशक हेली फ्लानागन ने कही है। आड्रे विलियम्सन कृत सचित्र 'ओल्ड-विक ड्रामा' (लन्दन, १९४९ ई०) में इंगलैण्ड की महत्वपूर्ण, प्रगतिशील, रंगशाला की नाटच-प्रस्तुति का आलेख मिलता है। एक विशिष्ट प्रसिद्ध नाटच-पत्रिका 'थियेटर आर्ट्स' है। इसके पृष्ठों में, १९१६-१९५० ई० के बीच की विश्व रंगशाला की घटनाओं

'फ़ेडरल थियेटर' का नाटकों के प्रस्तुत करने का इतिहास बहुत गौरवशाली रहा है। समाज की सेवा करने के साथ-साथ उसने बेकारी की समस्या को भी हल किया था। एक समय उसके पास दस हज़ार कर्मचारी थे, परन्तु १९३९ ई० के ग्रीष्म में सरकार से उसका सम्बन्ध उस समय टूट गया जब कि कुछ कांग्रेसमैनों को उसके कुछ नाटकों में सरकार-विरोधी रुझान दिखायी देने लगी। इस प्रकार अमेरिका में नाट्यकला को जो सरकारी सहायता मिलती उसके बन्द होने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण मिल गया।

एक अवशेष अब भी बाक़ी था। पाल ग्रीन कृत 'दी लास्ट कालोनी' का जो ऐतिहासिक काव्यात्मक नाटक शुरू किया गया था वह अब भी नार्थ कैरोलिना के रौनेक द्वीप में ग्रीष्म ऋतु में प्रदर्शित होता है। १९४० ई० के बाद इस तरह के मौसमी यात्रा नाटकों की स्थापना स्थायी खुली रंगशालाओं में हुई थी। ये रंगशालाएं अक्सर सामाजिक अथवा सरकारी सहायता से बनायी जाती थीं। पाल ग्रीन इस आन्दोलन का नेता बना रहा। उसका अधिक महत्व विलियम्सबर्ग में अभिनीत 'दी कामन ग्लोरी' और वाशिंगटन में अभिनीत 'फ़ेथ आव अवर फ़ादर्स' के रचयिता के रूप में था।

प्रगतिशील नाट्याभिनयी पार्टियों को सबसे अधिक उत्साह-वर्द्धक सरकारी सहायता यदि नहीं मिली तो वह इंगलैंड में थी। यह वह देश था जिसमें अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के दिनों में राज्य और दरबार ने अपने को रंगशाला से काफ़ी दूर रखा था।

का सर्वाधिक संपूर्ण आलेख प्राप्त होता है जिसमें रंगमंच-कला के सभी पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है। इसकी प्रतियों से संपादकों ने लगभग सौ निबन्धों और समालोचनाओं का संग्रह करके एक खण्ड का एक सरल संस्करण तैयार किया है जिसका नाम है 'थियेटर आर्ट्स ऐन्थालोजी : ए रेकार्ड ऐण्ड ए प्राफ़ेसी' (न्यूयार्क, १९५० ई०); इसके संपादक हैं रोज़ामान्ड गिल्डर, हरमाइन रिच आइज़क्स, राबर्ट एम० मैक्ग्रेगोर और एडवर्ड रीड। संयुक्त राज्य अमेरिका में बाद में छोटी और प्रगतिशील रंगशालाओं की जो रिपोर्टें निकलीं उनमें सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ है नोरिस होटन कृत 'एडवान्स फ्राम ब्राडवे : १९००० माइल्स आव अमेरिकन थियेटर' (न्यूयार्क, १९४१ ई०)। इस प्रगति की आन्तरिक भावना को समझने के लिए और विशेष रूप से दो रोचक अनु-अनुशीलनों के लिए पढ़िए राबर्ट एडमण्ड जोन्स कृत 'दी ड्रामेटिक इमेजिनेशन : रेफ़लेक्शन्स ऐण्ड स्पेकुलेशनन्स आव दी आर्ट आव दी थियेटर' (न्यूयार्क, १९४१ ई०) इसके ठीक विपरीत एक मनोरंजक, अप भाषा-युक्त, वृहत सूचनाओं से पूर्ण पुस्तक है अबेलग्रीन और जो लारी (जुनियर) कृत 'शो बिज़' (न्यूयार्क, १९५१ ई०)। यह ग्रंथ १९०० ई० के बाद की व्यावसायिक रंगशाला के सम्बन्ध में है।

१९४० ई० में एक परमार्थी संस्था ने 'कौंसिल फ़ार दी इनकरेजमेंट आव आर्ट एण्ड म्यूज़िक' (कला एवं संगीत के प्रोत्साहन के लिए एक समिति) का संगठन किया। उसने यह कार्य सरकार से सहायता लेकर विस्थापित तथा सुरक्षा के लिए अपने घर-बार से हटाये गये लोगों को संगीत तथा नाटक सिखाने के लिए किया था। युद्ध के समाप्त हो जाने जाने पर इस संस्था का नाम बदल कर 'आर्टस कौंसिल आव ग्रेट-ब्रिटेन' रख दिया गया। अब यह संस्था पूरी तरह सरकारी सहायता के बल पर चलती है। इससे उन नाट्य संस्थाओं को फिर से उबर जाने का मौक़ा मिला जो पूरी तरह समाज की सेवा करने के लिए संघर्ष कर रही थीं। साथ ही इस सहायता के कारण उसे अपनी कुछ कम्पनियों और रंगशालाओं को संचालित एवं शासित करने का अवसर मिला। इससे 'ओल्ड विक कम्पनी' और 'सैडलर कोवेलस बैले' को पुनर्गठित और विकसित करने में सहायता मिल गयी।

१९४५–१९५० ई० के बीच लन्दन के रंगमंचों के स्तर में स्पष्ट रूप से जो उन्नति हुई उसके लिए यह आर्ट्स कौंसिल अधिकांशतः श्रेय का दावा कर सकती है। यह ऐसी प्रगति थी जिसमें क्लासिक्स का पुनरुत्थान हुआ, अनेक प्रकार के नये गंभीर नाटक सामने आये, रंगमंच की कला में उन्नति हुई। लगे हाथों यहाँ यह भी बता देना चाहिए कि स्ट्रेटफोर्ड-आन-एवान में शेक्सपियर मेमोरियल थियेटर, जो कि वर्षों तक प्रयत्न करने के बावजूद आगन्तुक प्रेक्षकों की दृष्टि में औसत दर्जे का और प्रभाहीन था, १९५१ ई० में आकर उन्नति के प्रवाह में आ गया और योग्य निर्देशन में ऐसे उत्सव-नाट्य-प्रस्तुत करने लगा जो कि उस रंगशाला के सुनाम के अनुकूल था। १९१६ ई० में जब शेक्सपियर की ३००वीं वर्षगांठ -सम्बन्धी उत्सव आयोजित किया गया, उस समय लन्दन में एक नेशनल थियेटर निर्मित करने के लिए धन संग्रह किया गया था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के आरम्भ हो जाने के कारण यह इमारत न बन सकी, और जब १९२९ ई० में फिर यह लगा कि इस योजना को कार्यान्वित किया जा सकता है तो द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और इस काम को स्थगित करना पड़ा। कहा जाता है कि जब यह इमारत पूरी हो जायगी तो 'ओल्ड विक कम्पनी', जिसे बहुत दिनों से बाहरी लोग ब्रिटेन की वास्तविक राष्ट्रीय रंगशाला समझते चले आये हैं, सम्भवतः इस इमारत पर आधिपत्य प्राप्त करेगी।

अमेरिका में, फ़ेडरल थियेटर के अन्त के बाद नाट्योत्सवों के लिए, केवल एक महत्वपूर्ण प्रयास, वैसा ही हुआ था जैसा कि १९२० ई० के बाद आर्ट थियेटरों द्वारा किया गया था। न्यूयार्क में ओरसन वेल्स ने 'मर्करी थियेटर' की स्थापना की और इस संस्था ने 'जुलियस सीज़र' द्वारा अत्यन्त मौलिक सामाजिक चेतना-संपन्न कृति तथा

इसी प्रकार की अन्य रचनाओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करके दर्शकों को चमत्कृत कर दिया। मगर दो सत्रों के बाद वह रेडियो में चले गये। 'मर्करी थियेटर' संस्थागत रंगशाला का अन्तिम प्रयास था और ब्राडवे के प्रतिभासंपन्न कलाकार-निर्देशक का भी आखिरी जलवा था।

१९५० ई० तक आते-आते एक नये प्रकार के नाट्याभिनय में लोगों की रुचि बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ने लगी। इसे गोल घेरे में नाट्याभिनय कहा जा सकता है। ग्रीष्मकालीन खेमों में बनी रंगशालाएँ, होटलों के नाचघरों में तथा पेशेवर छोटी रंगशालाओं में भी, रंगमंच हटा दिये जाते थे, कलाकार कासानुमा गोल कमरों में एकत्र होकर अभिनय करते थे, और उनके चारों ओर बैठे दर्शक वह अभिनय देखते थे। एक नयी ताज़गी, एक नयी वास्तविकता इन रंगशालाओं में अभिनीत नाटकों में देखने को मिलती थी। परन्तु जो सुबुद्ध प्रस्तुतकर्ता थे वह समझने लगे थे कि भविष्य में विकास का मार्ग, रंगपीठ और रंगमंचवाली, रंगशाला में कुछ हेर-फेर करने से ही खुलेगा। इस परिवर्तन में यह ध्यान रखना पड़ेगा कि दर्शकों और अभिनेताओं के बीच कुछ दूरी अवश्य रहे और दर्शक अभिनेताओं का मुँह अवश्य देख सकें। सही यह है कि उपर्युक्त अखाड़ानुमा रंगशाला कोई नयी चीज़ न थी। सीटिल के 'पेन्ट हाउस थियेटर' में ग्लेन ह्यूज़ वर्षों से इसी प्रकार गोल घेरे में नाट्याभिनय आयोजित करते आ रहे थे। इस प्रकार के 'अखाड़ों' में अनेक दूसरी छोटी रंगशालाएँ भी प्रयोग कर रही थीं। डालास के एक कलाकार-निर्देशक मर्गोजोन्स ने, जिसकी प्रसिद्धि न्यू यार्क में भी थी, इस प्रणाली का उपयोग बहुत अच्छे ढंग से किया था। अमेरिकन प्रयोगों के बहुत पहिले मैक्स रीनहार्ट ने अक्सर अपने अभिनेताओं को 'अखाड़े' की फ़र्श पर ला खड़ा किया था, मगर इस रंगशाला में प्रेक्षक गोलाई के केवल तीन चौथाई हिस्से में बैठते थे; एक चौथाई हिस्सा ख़ाली ही रहता था।

प्रत्येक ऋतु में अच्छी तरह जमे हुए नाटकों, लम्बे अर्से तक होने वाले प्रदर्शनों और उनको प्रस्तुत करने वाले लोकप्रिय अभिनेताओं का वर्णन करने के स्थान पर यदि कोई इतिहासकार इन विशिष्ट बातों और घटनाओं को—मज़दूर रंगमंच, राजकीय सहायता की आधुनिकतम उपलब्धियाँ, विभिन्न प्रकार के रंगमंचों का निर्माण, नाट्य रचना की काव्यात्मकता या कल्पनाशीलता के अनेक पहलू के रूप में अंकित करे तो वह ऐसा केवल इसलिए करेगा कि अन्तोगत्वा इतिहास क्रमगत रूप से नये नये अनुसंधानों का अंकन ही है और है कल्पनाशील और गहरे दार्शनिक तत्वों की एक कथा मात्र। इतिहासकार तो परम्परागत 'व्यावसायिक' नाटकों में, जाने-माने यथार्थवादी नाटककारों की सफलता में, भावुकतापूर्ण सुखान्त रचनाओं में, भावनात्मक समस्यामूलक कृतियों

में रुचि रखता है, उनसे प्रभावित होता है। निस्सन्देह वह आधुनिक युग की अधिकांश नाटय-रचना में आनन्द प्राप्त करता है। किन्तु एक बड़ा तथ्य यह ज़रूर है कि अमेरिका में ब्राडवे में पिछले बीस सालों से अभिनीत नाटकों की संख्या बराबर घटती गयी है। इतना ही नहीं, अभिनीत नाटकों का स्तर भी विशेषरूप से गिरता ही गया है।

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि एक परंपरागत सुखान्त नाटक 'लाइफ़ विद फ़ादर,' जिसका मूल लेखक क्लेरेंस डे है और जिसका नाटय रूपान्तर हावर्ड लिंडसे और रसलक्राउज़ ने किया था, अकेले न्यूयार्क में लगातार ३,२२४ बार रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया (इससे अधिक दिनों तक शायद 'अंकिल टाम्स कैबिन' नामक नाटक ही खेला गया, पर लगातार नहीं)। ऐसा अवसर न्यू यार्क कम ही आता है जबकि शाम के समय इस प्रकार का कोई न कोई 'अच्छा' नाटक अभिनीत न रहा हो। तो भी, इस समय, १९५१ ई० के अन्तिम दिनों में, जब कि यह लिख रहा हूँ, मैं देखता हूँ कि जो सर्वश्रेष्ठ संगीतविहीन नाटक इस समय अभिनीत हो रहा है, वह प्राचीन कलात्मक रंगशाला की ही वस्तु है, जिसे फिर से रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है। वह है शा कृत 'सेंट जोन'। उटा हैगन ने ही नायक की प्रेरणाप्रद भूमिका अभिनीत की है। प्रस्तुतीकरण में भी पूरी समझदारी से काम लिया गया है, परन्तु अभिनय में एक प्रकार की परिष्कार की कमी है, जिस से इस दुखद बात की सहसा याद आ जाती है, कि इस नाटक को उत्कृष्टतम रूप में अभिनीत करने के लिए पहिले जैसी बड़ी संख्या में काव्यात्मक शब्द-योजना प्रस्तुत करने वाले अथवा कल्पनाशीलता पूर्वक व्याख्या करने वाले अभिनेता नहीं रह गये हैं। यदि मैं अगली रंगशाला में जाऊं या उसके बाद वाली या फिर उसके भी आगे वाली रंगशाला में जाऊं तो मुझे ऐसे अभिनेता तो मिल जायँगे जो निश्चित रूप से दैनन्दिन जीवन के सामान्य व्यक्ति की वास्तविक भूमिका करने की क्षमता रखते हैं, जो अत्यन्त सुन्दर अभिनय करते हैं, परन्तु वर्तमान् यथार्थवादी युग में, प्रतिभासंपन्न अभिनय, उत्प्रेरित अभिनय, काव्यात्मक अभिनय का पतन हो गया है।

निस्सन्देह, अब भी रंगशाला का आकर्षण बाक़ी है, विशेषतौर से न्यूयार्क में, क्योंकि वहाँ एक छोटे से स्थान पर ही अनेक रंगशालाएँ केन्द्रित हो गयी हैं। संसार में शायद यही अकेला स्थान है जहाँ इतनी अधिक मात्रा में नाटय-जीवन केन्द्रीभूत है। नाटयमूलक सक्रियता, और रंगशाला-सम्बन्धी इतनी अधिक शान-बान अन्यत्र न मिलेगी। आज की रात में एक बड़ी भीड़ उस जाज्वल्यमान केन्द्र की ओर बढ़ रही है; हज़ारों व्यक्तियों के चेहरे रंगशाला जाने की खुशी में दमक रहे हैं। उनमें वही

पहिले जैसी पूर्वधारणा, वही पुरानी उत्तेजना है; भागते, आगे बढ़ते लोग, टैक्सियों का जमघट, चमकती-दमकती रंगशालाएं, उनके लम्बे-चौड़े खुले फाटक, नगर का एक पूरा भाग सुसज्जित, रंगीन बिजली की बत्तियों से सुप्रकाशित। ये सब बातें ब्राडवे को रात साढ़े आठ बजे पश्चिमी संसार के मोहक स्थानों में से एक बना देती हैं। सिनेमा-गृहों को याद किये बग़ैर, टेलीविज़न और रेडियो को भी विस्मृत करके, हम यह जानते हैं कि यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन रंगशाला अभी जीवित है और यह कि जीवित अभिनेताओं का रंगमंच अब भी लोगों का मनोरंजन करता है, रंगशाला की बाह्य शोभा और भी आकर्षक बन गयी है, और यह कि वह पुराने जादू से हमें अब भी अपनी ओर खींचती है।

अन्त में, रात तो बीत ही जाती है। सबेरा होने पर ये असंख्य बिजली की बत्तियाँ बुझ जाती हैं, सारी चमक-दमक समाप्त हो जाती है; निरभ्र प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में हमें यह सन्देह होने लगता है कि बीती रात में हमें जो अनुभव प्राप्त हुआ था, क्या उसमें कोई गहराई भी थी? कुछ समय के लिए रंगशाला सजीव हो उठी और उसने हमें चतुर्दिक आनन्द के प्रकाश से आविष्ट कर दिया, कुछ समय के लिए उसने हमें आत्मा की सेवा करने की अपनी शपथ को पूरा करने का आश्वासन दे दिया। मगर कहीं कोई असफलता भी थी; जो नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया (जब तक हम 'सेंट जोन' जैसी अन्य कृति को न देखते रहे हों) वह हमें आध्यात्मिक प्रदीप्ति देने में असफल रहा, हमारी भावनाओं को पवित्र न कर सका, तत्वबोध का क्षण नहीं आया।

मेरा ध्यान एक पुराने विक्षोभ की ओर फिर जाता है। मैं देख रहा हूँ कि आधुनिक व्यवसायी जीवन का सस्तापन यहाँ भी घुस आया है। और सौन्दर्य के, राग के, अध्यात्म के मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया है। अक्सर षडयंत्र और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा ने यंत्र की गति को रोक दिया है; आत्मा क्षुद्र हो गयी है, आस्था सीमित हो गयी है। मैं देख रहा हूँ कि फोटोग्राफी से आक्रान्त, विश्लेषणात्मक छिद्रान्वेषी तरीक़े ने रंगमंच को सीमित और दूषित दृष्टिकोण तथा निचुड़ी हुई, शुष्क अभिव्यक्ति वाला बना डाला है; जीवन की दृष्टि गहरी तो नहीं हुई, सीमित हो गयी है, और यदि प्रत्येक नाटक की परीक्षा की जाय तो पता लगेगा चलेगा कि वह इतना क्षुद्र है कि उसमें अधिक गौरव या आनन्द या स्वप्न समा ही नहीं सकता। अब रंगशाला कृत्रिम, यांत्रिक, भोंड़ी हो गयी है।

तो क्या यही हमारे इतिहास का अन्त है? क्या हमारी उस कहानी का अन्त विक्षोभ और अनास्था में ही होगा? जैसा कि हमने देखा है, बीते हुए अनेक 'कल'

के दिनों में रंगशाला ने आकर्षण एवं प्रदीप्ति में गहन सक्रियता, सनसनी तथा क्षोभ में अधिक गहरी उत्तेजना एवं उद्वेलन, जोड़ दिया था, तब आगामी कल या आने वाले दिनों में क्या होगा ? तो फिर क्या हम यूनानियों के रंगमंचों तथा शेक्सपियर के रंगमंचों और आज के न्यूयार्क के अतिशय सक्रिय परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से नपुंसक रंगमंचों के बीच की दूरी ही नापते रह जायँगे ? क्या हम विफलताओं का ही लेखा-जोखा करते रह जायँगे, सफलताओं का नहीं ? नहीं, प्रत्येक व्यक्ति नवीन उन्मेषों की सम्भावनाओं को देख सकता है—यदि वे सीमित हैं तो केवल मानव-आत्मा की महत्वाकांक्षाओं से; यदि संसार का रंगमंच क्षुद्र, सीमित अथवा असंस्कृत रहा है तो उसका कारण यह है कि युग की दृष्टि , विचारधारा और जीवन ही वैसा रहा है। मानव-आत्मा के जीवन में एक प्रकार का चक्र रहता है, मानवता एक युग से जागती है और दूसरे युग में प्रवेश करती है; एक विज्ञप्ति क्षितिज को पार कर दूसरे क्षितिज की ओर बढ़ती है; वह जाज्वल्यमान् ऐश्वर्य की ओर बढ़ती है। जो कुछ यूनान में हुआ, ऐलिज़ाबेथ-कालीन लन्दन में हुआ, वह फिर हो सकता है, अवश्य होगा। उसका रूप अवश्य बदल जायेगा, मगर उसमें भी एक शान रहेगी। बाज़ारूपन, कुघड़ता तथा व्यावसायिकता-मूलक प्रत्येक पतन के बाद, आदर्शवाद अवश्यम्भावी रूप से अपना प्रभाव फिर से दिखाता है। कला ही वह बैरोमीटर, वह मापयंत्र है जिससे उत्कृष्ट रूपों में जीवन की परिणति की सूचना मिलती है।

रंगमंच की कला सभी कलाओं में सर्वाधिक मानवीय है; वह आत्मा के सब से अधिक निकट है। उसके अपने नये साधन हैं। लगता है कि यथार्थवादी नाटकों के परे, प्राचीन अरुचिकर वैविध्यपूर्ण मनोरंजन से भी अलग, छिछले हास्य विनोद और सनसनीपूर्ण रचनाओं से भी ऊपर रहकर वह अपने अवसर की राह देख रही है। शायद ये वस्तुएं उस के लिए तैयारी सरीखी हैं, उसके पास ऐसे कलाकार हैं जिन्हें सामुदायिक रंगशालाओं में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है। ऐसे हज़ारों लोग हैं जो विश्व-विद्यालयों के नाटच-विभागों से आदर्शवादी योजनाओं को लेकर और नवीन ज्ञान प्राप्त कर प्रतिवर्ष निकलते हैं। इन नौजवानों को कला की सम्यक् दृष्टि फिर से प्राप्त हुई है। यह केवल साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि नहीं है, या यह उस दर्शक की ही दृष्टि नहीं है, जो जीवन से ऊबकर मनोरंजन की ओर भागता है, यह उत्कृष्टतम छवि-अंकन भी नहीं है ; यह एक ऐसी दृष्टि है जो स्वयं अपने में ही महत्वपूर्ण सक्रियता है, अपने में ही पूर्ण है। मुझे आशा है कि आपने जो इसके संपूर्ण इतिहास का अनुशीलन किया है उससे मेरे साथ आपको भी इस विश्वास में आस्था हो गयी होगी कि अनिवार्य रूप से यह कला फिर अपनी पुरानी स्वास्थ्य-श्री, संपूर्ण सौन्दर्य और सृजनशीलता को प्राप्त करेगी और

यह कि मेरे साथ आप भी विश्वास करेगें कि अन्य सभी कलाओं में यह कला उदीयमान नवयुग के महान् सत्यों, वैभवों और पूर्णताओं को सबसे अधिक मात्रा में अपने में आविष्ट कर सकती है, आलिंगित कर सकती है ।

सहायक साहित्य

अनेक अध्यायों की पादटिप्पणियों में विशिष्ट युगों की रंगशालाओं से सम्वन्धित सहायक ग्रंथों की सूची दे दी गयी है। फ़रवरी १९५२ ई० में इन पाद-टिप्पणियों का पुनर्लेखन कर दिया गया है। यहां सामान्य ग्रंथों का परिचय जोड़ते समय मुझे लगा कि परंपरागत रूप से पुस्तकों की नामावली दे देने से अच्छा होगा कि केवल कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों पर विशेष बल दिया जाय।

रंगशाला के विद्यार्थी का सर्वश्रेष्ठ मित्र और सहयोगी और सूचनाओं का एक मोहक कोश 'दी आक्सफ़ोर्ड कम्पेनियन टू दि थियेटर' है, जिसका संपादन फ़िलिस हार्टनाल (लन्दन, १९५१) ने किया है। यह ८८८ पृष्ठों का एक वृहद् ग्रंथ है जिसमें रंगमंचीय कला, युगों, व्यक्तियों, प्रसिद्ध रंगशालाओं आदि के विभिन्न पक्षों का अनुशीलन किया गया है। जहां जीवनी-सम्वन्धी रेखाचित्र मिलते हैं उनमें प्रसंगतः कलाकार अथवा नाटक अथवा आलोचना की प्रकाशित पुस्तकों की सूची भी दे दी गयी है। साथ ही वर्गीकृत पुस्तक सूची भी जोड़ दी गयी है जिसमें १,००० से अधिक पुस्तकों के नाम हैं। दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक, जो पाण्डित्य की दृष्टि से क्रमानुसार दूसरी है, का नाम 'वर्ल्ड ड्रामाः फ्राम एस्किलस टु अनोविल्ह' है। इसके लेखक हैं अलर्डाइस निकोल (न्यूयार्क एन० डी०)। यह पुस्तक १९५० ई० में प्रकाशित हुई थी। १,००० पृष्ठों के इस ग्रंथ में ४९० ई० पू० से मध्य बीसवीं शताब्दी के बीच रचित और अभिनीत नाटकों की सम्पूर्ण सूची है। इसमें ६४ प्लेट्स हैं, सहायक ग्रंथ-सूची नहीं है। एक तीसरा आधार-ग्रंथ है बैरेट एच० क्लार्ककृत 'युरोपियन थियरीज आव दि ड्रामा, विद ए सप्लीमेंट आन दी अमेरिकन ड्रामा : ऐन एन्थालोजी आव ड्रामेटिक थियरी ऐण्ड क्रिटिसिज़्म फ्राम अरिस्टाटिल टू दी प्रेजेन्ट डे, इन ए सीरीज़ आव सेलेक्टेड टेक्ट्स, विद कमेन्ट्रीज़, बायोग्राफ़ीज़, ऐण्ड बिवलियोग्राफ़ीज़' (न्यूयार्क, १९४७)। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह ग्रंथ समग्र दृष्टि से पूर्ण है। यह ग्रंथ ठस नहीं है, सत्यमेव प्रशंसनीय कोश है।

एक दूसरा ग्रंथ है 'दि थियेटर हैण्डबुक ऐण्ड डाइजेस्ट आव प्लेज़'। इसका सम्पादन बर्नार्ड सोबेल ने किया। (न्यूयार्क, संशोधित संस्करण, १९४८) यद्यपि

'दि आक्सफ़ोर्ड कम्पेनियन टू दी थियेटर' अपनी समग्रता एवं पूर्णता तथा विद्वत्ता के कारण इस पुस्तक पर छा गयी है, फिर भी इसके ९०० पृष्ठ आवश्यक सूचनाओं से भरे हुए हैं। संदर्भ के लिए पुस्तकों के सम्बन्ध में दी गयी सूचनायें पर्याप्त हैं। इसी प्रकार निकोलकृत 'वर्ल्ड ड्रामा' नामक ग्रंथ, जान गैसनर कृत 'मास्टर्स आव दी ड्रामा' (न्यूयार्क, १९४०) पर हावी हो गया है। परन्तु यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है और निश्चय ही इसकी अपनी उपयोगिता है, इसके अपने गुण भी हैं।

सामान्यतया प्रणीत इतिहास-ग्रंथों में, (उनमें से एक आपके हाथ में ही है), जिनमें विश्वनाट्य, अभिनय और मंचशिल्प की कहानी समन्वित रूप से कही गयी है, जार्ज फ्रीडले और जान ए० रीव्ज़ कृत 'ए हिस्ट्री आव दी थियेटर' (न्यूयार्क, १९४१) का भी नाम लिया जा सकता है। इस ग्रंथ में नामों, शीर्षकों और तिथियों की असाधारण सूची है। इसमें ४१८ चित्र हैं। यद्यपि लेखक की दृष्टि आलोचनात्मक नहीं है और उसकी लेखन-शैली में ओजस्विता की भी कमी है, मगर किसी न किसी हद तक, इस कमी की पूर्ति असामान्य रूप से लिखित प्रमाणों के कारण हो जाती है। ग्लेन ह्यूज़ कृत 'दि स्टोरी आव दी थियेटर' (न्यूयार्क,१९२८) इस विषय का साधारण-सा रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। यह पुस्तक विशेषतया कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों की दृष्टि से लिखी गयी है। इसमें रंगशाला और अभिनय पर तो ध्यान दिया गया है, मगर नाटकों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। 'ए हिस्टरी आव थियेट्रिकल आर्ट इन एनशीयेण्ट ऐण्ड मार्डन टाइम्स' (छः भाग, लण्डन ऐण्ड न्यूयार्क, १९०३–१९२१) एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। कार्ल मान्तज़ीयस ने इसकी रचना डैनिश भाषा में की थी। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी मौजूद है। इसे पढ़ कर आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु यह रचना अपूर्ण है और इसमें कहीं-कहीं अशुद्धियां भी रह गयी हैं।

जहाँ तक मौलिक रंगशाला, दृश्यमूलक डिज़ाइन और साज-सज्जा के इतिहास का सम्बन्ध है एक सुरचित और पूरी तरह से सचित्र ग्रंथ है अलरडाइस निकोलकृत 'दि डेवलपमेण्ट आव दी थियेटर' (तृतीय संस्करण, संशोधित और परिवर्धित, न्यूयार्क, १९४८)। मंचसज्जा के सम्बन्ध में अनेक अच्छी पुस्तकें हैं, परन्तु उनमें से एक पुस्तक जो छपी है और जो चित्रों से भी अच्छी तरह भरी-पूरी है वह है ली साइमंसन कृत 'दि आर्ट आव सीनिक डिज़ाइन' (न्यूयार्क, १९५०)। इस ग्रंथ के आधुनिक भाग में काफ़ी चित्र खुद लेखक के हैं। परंतु संक्षिप्त ऐतिहासिक भागों में भी काफ़ी संख्या में चित्र हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो अभिनय के इतिहास से सम्बन्धित अन्य कोई पुस्तक नहीं है, परन्तु रोजामाण्ड गिल्डर कृत 'इण्टर दी एक्ट्रेस' (बोस्टन और न्यूयार्क, १९३१) नामक पुस्तक में अभिनेत्रियों की कला के सम्बन्ध में कौशल

और योग्यता के साथ चर्चा की गयी है। एक अत्यन्त सुन्दर नयी पुस्तक सामने आयी है जिसमें साज-सज्जा और दृश्य-अंकन-सम्बन्धी डिज़ाइनें हैं। इसमें ब्रिटिश सामग्री असामान्य रूप से अधिक है। पुस्तक है जेम्स लेवर कृत 'ड्रामा, इट्स कास्ट्यूम ऐण्ड डेकोर' (लन्दन और न्यूयार्क, १९५१)। रंगशाला की कला के दृश्य-पक्षपर जितनी पुस्तकें इस समय प्रचलित हैं सम्भवतः उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। ग़लती से अध्याय २५ के अंत की पुस्तक-सूची में एक पुस्तक का नाम देने से रह गया है। यह पुस्तक बहुत अच्छी तरह चित्रित है और सामने जितनी भी पुस्तकें हैं उनमें से यह एक अत्यन्त विचारपूर्ण और उत्तेजक रचना है। इस पुस्तक का नाम है मोरडेकाइ गोरेलिक कृत 'न्यू थियेटर्स फ़ार ओल्ड' (न्यूयार्क, १९४९)। हम इस पुस्तक की सिफ़ारिश करते हैं। यह पुस्तक विशेष रूप से आधुनिक रंगशाला के सामाजिक पक्षों, विशेषतया वामपक्षी रुझानों से सम्बन्धित है। और अन्त में, जो नवीनतम पुस्तकें सामने आयी हैं वे हैं ग्लेनह्यूज़ कृत 'ए हिस्टरी आव अमेरिकन थियेटर, १७००–१९५०' (न्यूयार्क, १९५१)। यह इतिहास ग्रंथ सचमुच विश्वकोशात्मक है। यद्यपि इसके अध्याय तिथि-क्रम के अनुसार व्यवस्थित हैं परन्तु कक्षा में पढ़ाने की दृष्टि से तथा संदर्भ के रूप में प्रयुक्त होने के लिए विषयों का समुचित वर्गीकरण भी किया गया है। यद्यपि इस विशेषता के कारण लगातार पढ़ने वाले पाठक को इसे पढ़ने में कम आनन्द आता है, परन्तु इस ग्रंथ के बिना काम भी नहीं चल सकता। बड़े कौशल के साथ इसको संक्षिप्त किया गया है। ऐसी कोई दूसरी पुस्तक मौजूद नहीं है।

अमेरिका का सौभाग्य है कि ब्रुक्स एर्टकिसन और जान मैसन ब्राउन के रूप में ऐसे दो आलोचक मिल गये हैं जिनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और तीव्र नाटकीय समझ सचमुच अद्वितीय है। उनकी समीक्षाओं के संग्रह विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों को मनोरंजन तथा सूचनाओं से भरपूर लगेंगे। अमेरिकन नाट्य-समीक्षकों के अग्रणी जार्ज जीन नाथन की कई पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें ढूँढ़कर पढ़ना चाहिए। लन्दन के आलोचकों में परलोकवासी जेम्स एगेट की पुस्तक भी ऐसी ही है।

मान्तज़ीयस की पुस्तकों और शायद एक और पुस्तक को छोड़कर, अन्य सभी पुस्तकें, जिनकी चर्चा हमने की है, इस समय (फरवरी, १९५२) में दूकानों में प्राप्त हैं। ऐसी पुस्तकें जो अप्राप्य हैं अथवा जिनका नाम ऊपर नहीं लिया गया है उनके संबंध में अच्छी संक्षिप्त जानकारी (१९३२–१९४८ तक की) राय स्टर्लिंग्स और पाल मायर्स कृत 'ए गाइड टू थियेटर रीडिंग' (न्यूयार्क, १९४९) में मिल सकती है। रोज़ामाण्ड गिल्डर कृत 'ए थियेटर लाइब्रेरी' (न्यूयार्क, १९३२) में १९३२ ई० से पहले की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों का सारांश मिल सकता है।